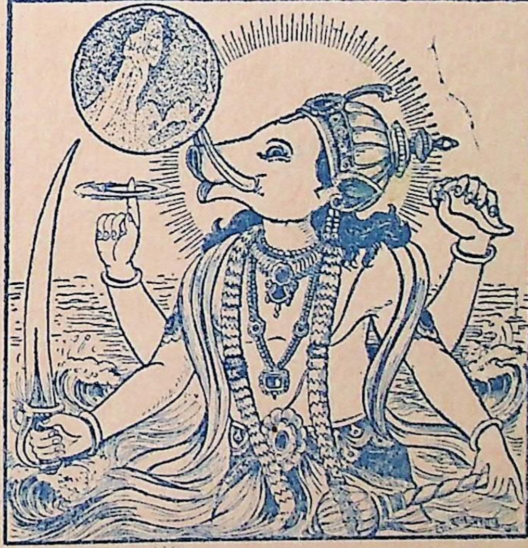
५६१

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

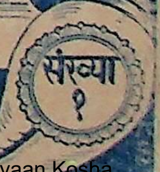
कल्याण









संक्षिप्त वराहपुराणाङ्क

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय ।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय ॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर ।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा । जय गणेश जय शुभ-आगारा ॥
जयति शिवाशिव जानकिराम । गौरीशंकर सीताराम ॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम । व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम ॥
रघुपति राघव राजाराम । पतितपावन सीताराम ॥

(संस्करण १,५०,०००)

जय जगदीश हरे !

(पृथ्वीसहित भगवान् वराहकी जय हो !)

वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना ।
शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना ॥
केशव ! धृतशूकररूप ! जय जगदीश हरे !

जगदीश्वर प्रभो ! आपके वराहविग्रहकी दाढ़पर उठी पृथ्वी इस प्रकार सुशोभित होती है, मानो बालचन्द्रमाके अन्तर्गत शशकका चिह्न । केशव ! आपके ऐसे लीलावराह-विग्रहरूपकी जय हो ! (महाकवि जयदेवकृत 'गीतगोविन्द'से)

वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० १४.००
विदेशमें रु० २९.२०
(२ पौण्ड)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट् जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

इस अङ्कका मूल्य
भारतमें रु० १४.००
विदेशमें रु० २९.२०
(२ पौण्ड)

आदि सम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
मुद्रक-प्रकाशक एवं [illegible] सम्पादक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

कल्याण

संक्षिप्त



वराहपुराणाङ्क



'कल्याण'के प्रेमी पाठकों और ग्राहकोंसे नम्र निवेदन

१—'संक्षिप्त श्रीवराहपुराणाङ्क' नामक यह विशेषाङ्क प्रस्तुत है। इसमें प्रायः ४७२ पृष्ठोंकी पाठ्यसामग्री है। सूची आदिके ८ पृष्ठ अतिरिक्त हैं। कई बहुरंगे तथा इकरंगे चित्र भी दिये गये हैं।

२—जिन सज्जनोंके रुपये मनीआर्डरद्वारा आ चुके हैं, उनको अङ्क जानेके बाद ही शेष ग्राहकोंके नाम वी० पी० जा सकेगी। अतः जिनको ग्राहक न रहना हो, वे कृपा करके मनाहीका कार्ड तुरंत लिख दें, जिससे वी० पी० भेजकर 'कल्याण'को व्यर्थ हानि न उठानी पड़े।

३—मनीआर्डर-कूपनमें और वी० पी० भेजनेके लिये लिखे जानेवाले पत्रमें अपना पूरा पता और ग्राहक-संख्या स्पष्टरूपसे अवश्य लिखें। ग्राहक-संख्या स्मरण न होनेकी स्थितिमें 'पुराना ग्राहक' लिख दें। नया ग्राहक बनना हो तो 'नया ग्राहक' लिखनेकी कृपा करें। मनीआर्डर 'व्यवस्थापक—कल्याण-कार्यालय' के नाम भेजें, उसमें किसी व्यक्तिका नाम न लिखें।

४—ग्राहक-संख्या या 'पुराना-ग्राहक' न लिखनेसे आपका नाम नये ग्राहकोंमें लिख जायगा। इससे आपकी सेवामें 'संक्षिप्त श्रीवराहपुराणाङ्क' नयी ग्राहक-संख्यासे पहुँचेगा और पुरानी ग्राहक-संख्यासे वी० पी० भी चली जायगी। ऐसा भी हो सकता है कि उधरसे आप मनीआर्डरद्वारा रुपये भेजें और उनके यहाँ पहुँचनेके पहले ही इधरसे वी० पी० चली जाय। दोनों ही स्थितियोंमें, आपसे प्रार्थना है कि आप कृपापूर्वक वी० पी० लौटायें नहीं, प्रयत्न करके किन्हीं सज्जनको नया ग्राहक बनाकर उनका नाम-पता साफ-साफ लिख भेजनेकी कृपा करें। आपके इस कृपापूर्ण सहयोगसे आपका 'कल्याण' हानिसे बचेगा और आप 'कल्याण' के प्रचारमें सहायक बनेंगे।

५—'संक्षिप्त श्रीवराहपुराणाङ्क' सब ग्राहकोंके पास रजिस्टर्ड-पोस्टसे जायगा। हमलोग शीघ्राति-शीघ्र भेजनेकी चेष्टा करेंगे तो भी सब अङ्कोंके जानेमें लगभग ४-५ सप्ताह तो लग ही सकते हैं। ग्राहक महानुभावोंकी सेवामें विशेषाङ्क ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार जायगा। इसलिये यदि कुछ देर हो जाय तो परिस्थिति समझकर कृपालु ग्राहक हमें क्षमा करेंगे। उनसे धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करनेकी प्रार्थना है।

६—आपके 'विशेषाङ्क'के लिफाफेपर आपका जो ग्राहक-नम्बर और पता लिखा गया है, उसे आप खूब सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री या वी० पी० नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये और उसीके उल्लेखसहित ही पत्र-व्यवहार करना चाहिये।

७—'कल्याण-व्यवस्था-विभाग' तथा गीताप्रेसके नाम अलग-अलग पत्र, पारसल, पैकेट, रजिस्ट्री, मनीआर्डर, बीमा आदि भेजने चाहिये। उनपर केवल 'गोरखपुर' ही न लिखकर पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ० प्र०)—इस प्रकार पता लिखना चाहिये।

८—'कल्याण-सम्पादन-विभाग', 'साधक-सङ्घ' तथा 'नामजप-विभाग'को भेजे जानेवाले पत्रादिपर भी पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ० प्र०)—इस प्रकार पता लिखना चाहिये।

९—सजिल्द अङ्क देरसे ही जा सकेंगे। ग्राहक महोदय कृपापूर्वक क्षमा करें।

व्यवस्थापक—कल्याण-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस (गोरखपुर) उ० प्र०

व० पु० अं० क—

श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस विश्व-साहित्यके अमूल्य रत्न हैं। दोनों ही ऐसे प्रासादिक एवं आशीर्वादात्मक ग्रन्थ हैं, जिनके पठन-पाठन एवं मननसे मनुष्य लोक-परलोक दोनोंमें अपना कल्याण कर सकता है। इनके स्वाध्यायमें वर्ण, आश्रम, जाति, अवस्था आदिकी कोई बाधा नहीं है। आजके नाना भयसे आक्रान्त भोग-तमसाच्छन्न समयमें तो इन दिव्य ग्रन्थोंके पाठ और प्रचारकी अत्यधिक आवश्यकता है। धर्मप्राण जनताको इन मङ्गलमय ग्रन्थोंमें प्रतिपादित सिद्धान्तों एवं विचारोंका अधिकाधिक लाभ पहुँचानेके सदुद्देश्यसे गीता-रामायण-प्रचार-सङ्घकी स्थापना की गयी है। इसके सदस्योंको, जिनकी संख्या इस समय लगभग साढ़े चालीस हजारसे भी अधिक है, श्रीगीताके छः प्रकारके, श्रीरामचरितमानसके तीन प्रकारके एवं उपासना-विभागके अन्तर्गत नित्य इष्टदेवके नामका जप, ध्यान और मूर्तिकी अथवा मानसिक पूजा करनेवाले सदस्योंकी श्रेणीमें रखा गया है। इन सभीको श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीरामचरितमानसके नियमित अध्ययन एवं उपासना-की सत्प्रेरणा दी जाती है। सदस्यताका कोई शुल्क नहीं है। इच्छुक सज्जन परिचय-पुस्तिका निःशुल्क मँगाकर पूरी जानकारी प्राप्त करनेकी कृपा करें एवं श्रीगीताजी और श्रीरामचरितमानसके प्रचार-यज्ञमें सम्मिलित हों।

पत्र-व्यवहारका पता—'मन्त्री, श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ, गीताभवन, पत्रालय—स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश), जनपद—पौड़ी-गढ़वाल (उ० प्र०)।

साधक-संघ

मानव-जीवनकी सर्वतोमुखी सफलता आत्म-विकासपर ही अवलम्बित है। आत्म-विकासके लिये सदाचार, सत्यता, सरलता, निष्कपटता, भगवत्परायणता आदि दैवी गुणोंका संग्रह और असत्य, क्रोध, लोभ, द्वेष, हिंसा आदि आसुरी लक्षणोंका त्याग ही एकमात्र श्रेष्ठ उपाय है। मनुष्यमात्रको इस सत्यसे अवगत करानेके पावन उद्देश्यसे लगभग २९ वर्ष पूर्व साधक-संघकी स्थापना हुई थी। सदस्योंके लिये ग्रहण करनेके १२ और त्याग करनेके १६ नियम हैं। प्रत्येक सदस्यको एक 'साधक-दैनन्दिनी' एवं एक 'आवेदन-पत्र' भेजा जाता है, जिन्हें सदस्य बननेके इच्छुक भाई-बहनोंको ४५ पैसेके डाक-टिकट या मनीआर्डर अग्रिम भेजकर मँगवा लेना चाहिये। साधक उस दैनन्दिनीमें प्रतिदिन अपने नियम-पालनका विवरण लिखते हैं। सदस्यताका कोई शुल्क नहीं है। सभी कल्याणकामी स्त्री-पुरुषोंको इसका सदस्य बनना चाहिये। विशेष जानकारीके लिये कृपया नियमावली निःशुल्क मँगवाइये। संघसे सम्बन्धित सब प्रकारका पत्रव्यवहार नीचे लिखे पतेपर करना चाहिये।

संयोजक—साधक-संघ, द्वारा-'कल्याण' सम्पादकीय-विभाग, पत्रालय—गीताप्रेस, जनपद—गोरखपुर (उ० प्र०)

श्रीगीता-रामायणकी परीक्षाएँ

श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीरामचरितमानस मङ्गलमय, दिव्यतम ग्रन्थ हैं, इनमें मानवमात्रको अपनी समस्याओंका समाधान मिल जाता है और जीवनमें अपूर्व सुख-शान्तिका अनुभव होता है। प्रायः सम्पूर्ण विश्वमें इन अमूल्य ग्रन्थोंका समादर है और करोड़ों मनुष्योंने इनके अनुवादोंको पढ़कर भी अचिन्त्य लाभ उठाया है। लोकमानसको इन ग्रन्थोंके प्रचारसे अधिकाधिक उजागर करनेकी दृष्टिसे श्रीमद्भगवद्गीता और रामचरितमानसकी परीक्षाओंका प्रबन्ध किया गया है। दोनों ग्रन्थोंकी परीक्षाओंमें बैठनेवाले लगभग २० हजार परीक्षार्थियोंके लिये ४५०० (साढ़े चार हजार) परीक्षा-केन्द्रोंकी व्यवस्था है। नियमावली मँगानेके लिये कृपया निम्नलिखित पतेपर कार्ड डालें—

व्यवस्थापक—श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति, गीताभवन, पत्रालय—स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश), जनपद—पौड़ी-गढ़वाल (उ० प्र०)

संक्षिप्त श्रीवराहपुराणाङ्ककी विषय-सूची

सं० श्रीवराहपुराण समाप्त

निबन्ध

चित्र-सूची

बहुरंगे चित्र

इकरंगे चित्र

नरकोंके दृश्य और उनके नाम—

रेखाचित्र

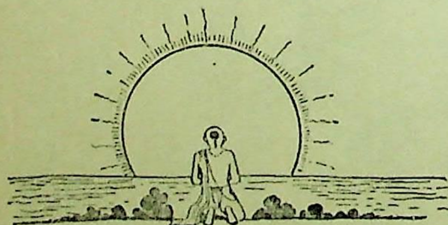


श्रीवराहपुराणकी प्रशस्ति

सर्वस्यापि च शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित् । यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत्तत्केन गृह्यताम् ॥

सभी शास्त्रों और किसी भी कर्मके लिये आवश्यक है कि उसका प्रयोजन कहा जाय— ऐसा करनेपर ही उसकी उपादेयता होती है । यह वराहपुराण, महाप्रलयके जलौघसे उद्धृत माता पृथिवीसे भगवान् वराह-वपुधारी श्रीविष्णुके द्वारा प्रत्यक्षतः कथित होनेसे साक्षात् 'भगवत्-शास्त्र' है । इसकी महिमा अनूठी है । यहाँ प्रकृत पुराण (वराहपुराण)के २१७ वें अध्यायके १२वें श्लोकसे २४वें श्लोकतक मूल पाठ 'फल-श्रुति'के रूपमें पाठ करने हेतु दिया जा रहा है—

यश्चैव कीर्त्तयेन्नित्यं शृणुयाद्वापि भक्तितः ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् । प्रभासे नैमिषारण्ये गङ्गाद्वारेऽथ पुष्करे ॥
प्रयागे ब्रह्मतीर्थे च तीर्थे चामरकण्टके । यत्पुण्यफलमाप्नोति तत्कोटिगुणितं भवेत् ॥
कपिलां द्विजमुख्याय सम्यग्दत्वा तु यत्फलम् । प्राप्नोति सकलं श्रुत्वा चाध्यायं तु न संशयः ॥
श्रुत्वास्यैव दशाध्यायं शुचिर्भूत्वा समाहितः । अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां फलं प्राप्नोति मानवः॥
यः पुनः सततं शृण्वन्नैरन्तर्येण बुद्धिमान् । पारयेत्परया भक्त्या तस्यापि शृणु यत्फलम् ॥
सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम् । सर्वतीर्थाभिषेकेन यत्फलं मुनिभिः स्मृतम् ॥
तत्प्राप्नोति न संदेहो वराहवचनं यथा । य एतत्पारयेद् भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम्॥
अपुत्रस्य भवेत्पुत्रः सपुत्रस्य सुपौत्रकः । यस्येदं लिखितं गेहे तिष्ठेत्सम्पूज्यते सदा ॥
तस्य नारायणो देवः संतुष्टः स्याद्धि सर्वदा । यश्चैतच्छृणुयाद्भक्त्या नैरन्तर्येण मानवः ॥
श्रुत्वा तु पूजयेच्छास्त्रं यथा विष्णुं सनातनम् । गन्धपुष्पैस्तथा वस्त्रैर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः ॥
यथाशक्ति नृपो ग्रामैः पूजयेच्च वसुन्धरे । श्रुत्वा तु पूजयेद्यः पौराणिकं नियतः शुचिः ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥





शेषशायी भगवान् नारायण

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



कल्याण

वेदा येन समुद्धृता वसुमती पृष्ठे धृताप्युद्धृता दैत्येशो नखरैर्हतः फणिपतेर्लोकं बलिः प्रापितः ।
क्ष्माऽक्षत्रा जगती दशास्यरहिता माता कृता रोहिणी हिंसा दोषवती धराप्ययवना पायात् स नारायणः ॥

वर्ष ५१ } गोरखपुर, सौर माघ, श्रीकृष्ण-संवत् ५२०२, जनवरी १९७७ { संख्या १ पूर्ण संख्या ६०२

भगवान् वराह कामादि शत्रुओंको नष्ट करें

दंष्ट्राग्रेणोद्धृता गौरुदधिपरिवृता पर्वतैर्निम्नगाभिः
साकं मृत्पिण्डवत् प्राग्बृहदुरुवपुषानन्तरूपेण येन ।
सोऽयं कंसासुरारिर्मुरनरकदशास्यान्तकृत् सर्वसंस्थः
कृष्णो विष्णुः सुरेशो नुदतु मम रिपूनादिदेवो वराहः ॥

(वराहपुराण १ । ३)

'जिन अनन्तरूप भगवान् विष्णुने प्राचीन कालमें समुद्रोंसे घिरी, वन-पर्वत एवं नदियोंसहित पृथ्वीको अपने अत्यन्त विशाल शरीरके द्वारा केवल दाढ़के अग्रभागपर मिट्टीके (छोटे-से) ढेलेकी भाँति उठा लिया था, वे कंस, मुर, नरक तथा रावण आदि असुरोंका अन्त करनेवाले कृष्ण एवं विष्णुरूपसे सबमें व्याप्त देवदेवेश्वर आदिदेव भगवान् वराह मेरी सभी बाधाओं (काम, क्रोध, लोभ आदि आध्यात्मिक शत्रुओं) को नष्ट करें (तथा विश्वका परम मङ्गल करें)।'

वेद-पुराणोंमें भगवान् श्रीयज्ञ-वराहका स्तवन

एकदंष्ट्राय विद्महे महावराहाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ॥

हम एक दाढ़वाले महाविराट् रूपी भगवान् विष्णुका ध्यान-स्मरण करते हैं, वे हमारी बुद्धिको सन्मार्गकी ओर प्रेरित करें।

दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे।
हस्ते बिभ्रद् भेषजा वार्याणि शर्मवर्म छर्दिरस्मभ्य यंसत् ॥

(ऋक्० १ । ११४ । ५)

श्रेष्ठ आहारसे सम्पन्न अथवा वराहके सदृश दृढ़ अङ्गोंवाले, सूर्यके सदृश प्रकाशमान, जटाओंसे युक्त, तेजस्वी रूपवाले वराह-विष्णुको हवि देकर अथवा नमनद्वारा हम द्युलोकसे यहाँ आनेके लिये आह्वान करते हैं। वे अपने हाथमें वरणीय ओषधियोंको लिये हुए हमारे लिये आरोग्य, रूप, सुख, रक्षा, कवच और आवास प्रदान करें।

जितं जितं तेऽजित यज्ञभावन त्रयीं तनुं स्वां परिधुन्वते नमः।
यद्रोमगर्तेषु निलिल्युरध्वरास्तस्मै नमः कारणसूकराय ते ॥

(श्रीमद्भा० ३ । १३ । ३४)

(**ऋषिगण कहते हैं—**) भगवान् अजित ! आपकी जय हो ! जय हो !! यज्ञपते ! आप अपने वेदत्रयीरूप विग्रहको फटकार रहे हैं, आपको नमस्कार है। आपके रोम-कूपोंमें सम्पूर्ण यज्ञ लीन हैं। आपने पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये ही यह सूकररूप धारण किया है, आपको नमस्कार है।

नमो नमस्तेऽखिलमन्त्रदेवताद्रव्याय सर्वक्रतवे क्रियात्मने।
वैराग्यभक्त्यात्मजयानुभावितज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नमः ॥

(श्रीमद्भा० ३ । १३ । ३९)

समस्त मन्त्र-देवता, द्रव्य-यज्ञ और कर्म आपके ही स्वरूप हैं, आपको हमारा नमस्कार है। वैराग्य, भक्ति और मनकी एकाग्रतासे जिस ज्ञानका अनुभव होता है, वह आपका स्वरूप ही है तथा आप ही सबके विद्यागुरु हैं, आपको पुनः-पुनः प्रणाम है।

जयेश्वराणां परमेश केशव प्रभो गदाशङ्खधरासिचक्रधृक्।
प्रसूतिनाशस्थितिहेतुरीश्वरस्त्वमेव नान्यत् परमं च यत्पदम् ॥

(श्रीविष्णुपुराण १ । ४ । ३१)

हे ब्रह्मादि ईश्वरोंके भी परम ईश्वर ! हे केशव ! हे शङ्ख-गदाधर ! हे खड्ग-चक्रधारी प्रभो ! आपकी जय हो ! आप ही संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और नाशके कारण हैं तथा आप ही ईश्वर हैं और जिसे परम पद कहते हैं, वह भी आपसे अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

पादेषु वेदास्तव यूपदंष्ट्र दन्तेषु यज्ञाश्चितयश्च वक्त्रे।
हुताशजिह्वोऽसि तनूरुहाणि दर्भाः प्रभो यज्ञपुमांस्त्वमेव ॥

(श्रीविष्णुपुराण १ । ४ । ३२)

हे यूपरूपी दाढ़ोंवाले प्रभो ! आप ही यज्ञपुरुष हैं, आपके चरणोंमें चारों वेद हैं, दाँतोंमें यज्ञ हैं, मुखमें (श्येन, चित आदि) चितियाँ हैं। हुताशन (यज्ञाग्नि) आपकी जिह्वा है तथा कुशाएँ रोमावलि हैं।

स्रुक्तुण्ड सामस्वरधीरनाद प्राग्वंशकायाखिलसत्रसंधे।
पूर्तेष्टधर्मश्रवणोऽसि देव सनातनात्मन् भगवन् प्रसीद ॥

(श्रीविष्णुपुराण १ । ४ । ३४)

'प्रभो ! स्रुक् आपका तुण्ड (थूथनी) है, सामस्वर धीर-गम्भीर शब्द है, प्राग्वंश (यजमानगृह) शरीर (यज्ञ) है तथा सत्र शरीरकी संधियाँ । देव ! इष्ट (श्रौत) और पूर्त (स्मार्त) धर्म आपके कान हैं । हे नित्यस्वरूप भगवन् ! आप प्रसन्न होइये ।'

त्रिविक्रमायामितविक्रमाय महानृसिंहाय चतुर्भुजाय ।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥
(हरिवंश०, भविष्यपर्व ३४ । १८)

(भगवान् वराहसे पृथ्वी कहती हैं—) जो तीनों लोकोंको अपने चरणोंसे आक्रान्त कर लेनेके कारण 'त्रिविक्रम' कहलाते हैं, जिनके पराक्रमका कोई माप नहीं है तथा जो अपने हाथोंमें शार्ङ्ग-धनुष, सुदर्शनचक्र, नन्दक खड्ग और कौमोदकी गदा धारण करते हैं, उन महानृसिंहस्वरूप, चार भुजाधारी पुरुषोत्तम भगवान् 'वराह'को मेरा नमस्कार है ।

कल्याणमङ्कुरति यस्य कटाक्षलेशाद्यस्य प्रिया वसुमती सवनं यदङ्गम् ।
अस्मद्गुरोः कुलधनं चरणौ यदीयौ भूयः शुभं दिशतु भूमिवराह एषः ॥
(श्रीवेङ्कटाध्वरिकृत वराहाष्टक ६)

जिनकी कृपा-दृष्टिके लेशसे भी परम कल्याणका प्रादुर्भाव हो जाता है, धन-धान्यमयी भगवती पृथ्वी जिनकी पत्नी हैं और सवन (सोमरस निकालना तथा उससे हवन करना) यज्ञादि जिनके अङ्ग हैं और जिनके दोनों चरण ही हमारे गुरुको परम्परासे प्राप्त धन हैं, वे भगवान् भूमिवराह अनन्त कल्याण करें ।

पातु त्रीणि जगन्ति संततमकूपारात् समभ्युद्धरन्
धात्रीं कोलकलेवरः स भगवान् यस्यैकदंष्ट्राङ्कुरे ।
कूर्मः कन्दति नालति द्विरसनः पत्रन्ति दिग्दन्तिनो
मेरुः कोशति मेदिनी जलजति व्योमापि रोलम्बति ॥
(शार्ङ्गधरपद्धति ४०१७)

प्रलयके अगाध समुद्रसे अपनी दाढ़के अग्रभागपर रखकर पृथ्वीका उद्धार करते हुए वे वराह-विग्रहधारी भगवान् तीनों लोकोंकी रक्षा करें, जिनकी इस लीलाके समय कच्छप कमल-कन्दके समान, शेषनाग कमल-दण्ड (नाल)के समान, दिग्गज पत्तोंके समान, सुमेरुपर्वत कमल-कर्णिका-कोशके समान, भूमण्डल कमल-पुष्पके समान और आकाश उसपर मँडरानेवाले भौंरेके समान चक्कर खा रहा था ।

पातु श्रीस्तनपत्रभङ्गमकरीमुद्राङ्कितोरःस्थलो
देवो सर्वजगत्पतिर्मधुवधूवक्त्राब्जचन्द्रोदयः ।
क्रीडाक्रोडतनोर्नवेन्दुविशदे दंष्ट्राङ्कुरे यस्य भू-
र्भाति स प्रलयाब्धिपल्वलतलोत्खातैकमुस्ताकृतिः ॥
(महानाटक १ । ९, हनुमन्नाटक १ । २*)

मधु दैत्यके संहारद्वारा उसकी स्त्रियोंके मुखकमल (को मलिन करने)के लिये चन्द्रोदयके तुल्य एवं भगवती श्रीलक्ष्मीजीके स्तनपर विरचित मकरके आकारकी चन्दनादिकी पत्रिकाकी मुद्रासे चिह्नित हृदयस्थलवाले वे जगदीश्वर भगवान् विष्णु विश्वकी रक्षा करें—जिन लीलापूर्वक वराह-शरीर धारण करनेपर उनके द्वितीयाके नवीन चन्द्रके आकारवाली दाढ़के अग्रभागपर स्थित प्रलयकालीन अगाध सागरके अन्तस्तलसे उद्भूत पृथ्वी नागरमोथाके समान (लघु) प्रतीत हो रही थी ।

---

* यह श्लोक 'सदुक्तिकर्णामृत'के पृष्ठ ५१ पर किन्हीं 'नग्न' कविके नामसे भी संगृहीत है—'कुवलयानन्द चन्द्रिका' तथा 'चित्रमीमांसा'के अनुसार इसमें 'परम्परित रूपकालंकार' है ।

पुराण

(अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य श्रीमद्ब्रह्मानन्द सरस्वतीजी महाराजके उपदेशामृत)

पुराण भारतका सच्चा इतिहास है। पुराणोंसे ही भारतीय जीवनका आदर्श, भारतकी सभ्यता, संस्कृति तथा भारतके विद्या-वैभवके उत्कर्षका वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। प्राचीन भारतीयताकी झाँकी, प्राचीन समयमें भारतके सर्वविध उत्कर्षकी झलक यदि कहीं प्राप्त होती है तो पुराणोंमें। पुराण इस अकाट्य सत्यके द्योतक हैं कि भारत आदि-जगद्गुरु था और भारतीय ही प्राचीन कालमें आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक उन्नतिकी पराकाष्ठाको पहुँचे थे। पुराण न केवल इतिहास हैं, अपितु उनमें विश्व-कल्याणकारी त्रिविध उन्नतिका मार्ग भी प्रदर्शित किया गया है।

कालान्तरके पश्चात् भारतमें दासताका युग आया। भारतकी संस्कृतिपर बारंबार घातक विदेशी आक्रमण हुए। वेद-पुराणोंका पठन-पाठन न होनेसे यहाँ अज्ञानान्धकार छा गया। परिणाम यह हुआ कि विदेशी प्रकाशके सहारेमें पुराण तो 'मिथ'—मिथ्या ही समझे जाने लगे। लोगोंकी श्रद्धा उनपरसे हटने लगी और निजज्ञान-विहीन भारत इतस्ततः भटकने लगा। भारतीय जन-समुदाय अपनी सभ्यता और संस्कृति, अपने धर्म और उत्कर्ष आदिको भूलकर मूढ़ बालककी भाँति पाश्चात्त्य एवं अन्य विदेशी भौतिक चाकचिक्यसे चकित होने लगा। अब पाश्चात्त्य जगत् यदि किसी बातका आविष्कार कर पाता है तो संसारको पौराणिक बातोंकी सत्यताकी प्रतीति और पुष्टि होती है। परंतु ये सब भौतिक आविष्कार हैं।

निरी भौतिक उन्नतिका परिणाम कितना भयंकर होता है, यह विगत विश्वव्यापी युद्धोंसे स्पष्ट सिद्ध हुआ है। त्रिविध उन्नति ही विश्व-कल्याणकारिणी हो सकती है। पुराणोंद्वारा ही हमें त्रिविध उन्नतिका मार्ग मिल सकता है। अतएव अपने परिवारके, अपनी जातिके, अपने देशके तथा विश्वके कल्याणके लिये भूत-भविष्यके ज्ञानके लिये पुराणोंका पठन-पाठन नितान्त आवश्यक है। विश्व-कल्याणके लिये श्रीभगवान् भारतीयोंको कल्याण-पथ-प्रदर्शक पुराणोंके प्रति आदर, श्रद्धा और भक्ति प्रदान करें, यही उनसे प्रार्थना है।

भगवान् यज्ञवराह

(पूज्यपाद अनन्तश्री स्वामीजी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

स जयति महावराहो जलनिधिजठरे चिरं निमग्नोऽपि।
येनान्त्रैरिव सह फणिगणैर्बलादुद्धृता धरणी॥

'उन वराह भगवान्‌की जय हो, जिन्होंने समुद्रके अन्तस्तलमें चिरमग्न रहनेपर भी उस (समुद्र)की आँतोंके समान साँपोंके साथ बलपूर्वक पृथ्वीको उसमेंसे ऊपर निकाल लिया था।'

इदानींतन प्राप्त वेदोंकी शाखाओंमें यद्यपि भगवान्‌के अन्य अवतारोंके भी सुस्पष्ट मूल प्राप्त हैं, तथापि इनमें वामन एवं वराह-अवतारोंका विशेष वर्णन उपलब्ध होता है। पर यदि 'यज्ञपुरुष'को जिन्हें भागवत ३।१३, विष्णुपुराण १।४ आदिमें 'यज्ञवराह' कहा गया है, वराह-अवतारमें सम्मिलित कर लें तो वह निःसंदेह अपरिमित संख्याको प्राप्त होगा। वैसे **'अनन्ता वै वेदाः', 'यज्ञो ह वै विष्णुः,' 'एवं बहुविधा यज्ञाः वितता ब्रह्मणो मुखे,' 'विष्णोर्नुकं वीर्याणि'** (ऋक् १।१५४।१) **'कतमोऽर्हति यः पार्थिवानि कविर्विममे रजांसि'** इत्यादिसे गणना कठिन ही है।

यद्यपि 'निरुक्त' निघण्टु ४।१।१०, नैगमकाण्ड ५।१।४ आदिमें 'वराह'शब्दके शिव, मेघ, सूकर, एक राक्षस आदि भी अर्थ हैं, तथापि ऋक् १०।९९।६, तैत्ति० सं० ७।१।५, कौथुमसंहिता १।५२४ आदि, तै० ब्राह्मण १।१।१३, तै० आरण्यक १०, मैत्रायणीय १।६।३ आदिमें 'वराहावतार'का सुस्पष्ट उल्लेख है। विष्णुपुराण १।४, भागवत १।३, २।७, ३।१३, ५।१६, नरसिंहपु० ३९, महाभारत, मत्स्यपुराण ४७। ४७, वायुपुराण ६।१—३७ तथा मार्कण्डेयपु० ८८।८ आदिके **'यज्ञवराहमतुलं'** आदिमें यज्ञावतार भगवान् वराह-विष्णुका सुस्पष्ट उल्लेख तथा रमणीय चरित्र प्राप्त होता है। इनकी मुख्य कथा यह है कि सनकादिके शापसे विजय ही दितिके गर्भसे हिरण्याक्षरूपमें उत्पन्न हुआ और वह जनमते ही विशाल राक्षसके रूपमें परिणत हो गया। कुछ दिनों बाद वह पृथ्वीको चुराकर पातालमें ले गया। स्वायम्भुवमनुका जब ब्रह्माजीने प्रजापालक 'आदिराज'के पदपर अभिषेक किया तो उन्होंने अपनी प्रजाके निवासके योग्य भूमि माँगी, साथ ही पृथ्वीके पातालमें जानेका भी संकेत किया। इसपर निरुपाय ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुका ध्यान किया। थोड़ी ही देर बाद उनके नासा-विवरसे एक श्वेत वर्णका वराहशिशु प्रकट हुआ, जो देखते-ही-देखते 'ऐरावत' हाथीके आकारका बन गया। ब्रह्माजी उसे देखकर स्वयं आश्चर्यमें पड़ गये, फिर उन्होंने बोधात्मिका बुद्धिद्वारा निश्चय किया कि 'ये मङ्गलमय भगवान् 'यज्ञवराह-विष्णु' ही हैं।'

अब पृथ्वीके उद्धारके लिये 'यज्ञ-पुरुष'ने अपनी लीला फैलायी। वे अपनी पूँछ उठाकर गर्दनके केसरोंसे तथा पैरके आघातोंसे मेघोंको विदीर्ण करते हुए घ्राण-शक्तिद्वारा पृथ्वीका अन्वेषण करने लगे। फिर उन्होंने समुद्रके जलमें प्रवेश किया और रसातलमें पहुँचकर पृथ्वीको देखा। पृथ्वीने उन्हें देखकर पूर्वकल्पानुसार अपने पुनरुद्धारकी प्रार्थना की—

मामुद्धरास्मादद्य त्वं त्वत्तोऽहं पूर्वमुत्थिता॥
(विष्णुपुराण १।४।१२)

पृथ्वीकी प्रार्थनापर भगवान् यज्ञ-वराहने उसे अपनी दाढ़पर उठा लिया। इसपर हिरण्याक्षने युद्धद्वारा बाधा उत्पन्न की। भगवान्‌ने उसका वधकर पृथ्वीको यथास्थान लाकर स्थित किया। इसके बादकी कथा वराहपुराणमें है। जहाँ श्रीभगवान् पृथ्वीको लेकर समुद्रसे बाहर होकर प्रकट हुए वह भारतभूमिका 'वराह-क्षेत्र' कहलाया।

उस समय ऋषियोंने उनके यज्ञरूपकी स्तुति करते हुए बतलाया था कि उनका थूथना (मुखका अग्रभाग) ही स्रुक् है, नासिकाछिद्र स्रुवा है, उदर ही इडा (यज्ञीय भक्षणपात्र) है, कर्ण ही चमस (सोमरस पान-पात्र) है,

मुख ही प्राशित्र (ब्रह्मभागपात्र) है और कण्ठछिद्र ही ग्रह (सोमपात्र) है। तदनुसार भगवान् वराहका चबाना ही अग्निहोत्र है, उसका बार-बार अवतार लेना ही यज्ञोंकी दीक्षा है, उनकी (गर्दन) उपसद (तीन इष्टियाँ) है, दोनों दाढ़ें प्रायणीय (दीक्षाके बादकी इष्टि) और उदयनीय (यज्ञसमाप्तिकी इष्टि) है, जिह्वा प्रवर्ग्य (प्रत्येक 'उपसद'के पूर्व किया जानेवाला 'महावीर' नामक कर्म) है, सिर सभ्य (होमरहित अग्नि) और आवसथ्य (उपासना-सम्बन्धी अग्नि) है तथा प्राण चिति (इष्टकाचयन) हैं। सोमरस भगवान् वराहका वीर्य है, प्रातःसवनादि—तीनों सवन उनका आसन (बैठना) है; अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम* नामकी सात संस्थाएँ ही उनके शरीरकी सात धातुएँ हैं तथा सम्पूर्ण सत्र उनके शरीरकी संधियाँ (जोड़) हैं। इस प्रकार वे सम्पूर्ण यज्ञ (सोमरहित याग) और क्रतु (सोमसहित याग) रूप हैं। यज्ञानुष्ठानरूप इष्टियाँ आपके अङ्गोंको मिलाये रखनेवाली मांसपेशियाँ हैं। हरिवंशके, भविष्य-पर्वके ३३से ४० अध्यायोंमें भी 'वराहचरित्र'का वर्णन है। उसके अनुसार सृष्टिके आरम्भमें जब समुद्रकी जलराशिमें सारी दिशाओंको आप्लावितकर अन्तरिक्षतक पहुँच गयी और उस जलके प्रपतनसे अनेक पर्वतोंकी उत्पत्तिद्वारा पृथ्वी अवरुद्ध तथा पीड़ित होकर पातालमें प्रविष्ट होने लगी तो उसकी प्रार्थनापर भगवान् विष्णुने वराहका रूप धारण किया, जो दस योजन विस्तृत और सौ योजन ऊँचा था—

जलक्रीडारुचिस्तस्माद् वाराहं रूपमस्मरत्।
…दशयोजनविस्तीर्णमुच्छ्रितं शतयोजनम्॥

(हरि० ३ । ३४ । २९-३०)

उस समय उनका तेज विद्युत्, अग्नि एवं सूर्यके तुल्य था। चारों वेद उनके पैर, यूप उनकी दाढ़, क्रतु दाँत, चिति (इष्टिकाओंका चयन) उनका मुख तथा कुश ही उनके रोएँ थे। 'उपाकर्म' उनका ओष्ठ-भूषण तथा 'प्रवर्ग्य' उनकी नासिका आभरण था। जलमें प्रविष्ट होकर पातालतक पहुँचकर उन्होंने पृथ्वीको अपनी दाढ़से ऊपर उठाया और पुनः उसे उसी जलके ऊपर लाकर नौकाके समान स्थित किया। फिर उसपर सुवर्ण-मय मेरुकी स्थापनाकर, सौमनस् आदि अनेक पर्वतोंका निर्माण कराया तथा उन्हें वृक्षों, ओषधि, लताओंसे सुशोभित कर अनेक पवित्र नद-नदियोंकी सृष्टि एवं जलाशयोंकी, यथा यज्ञों, विविध जन्तुओं एवं प्रजाका विस्तार किया। 'वायुपुराण' ९७। ६४ से ९९ तकके अध्यायोंमें भगवान् विष्णुके ७७ अवतारोंकी चर्चा है। इसमें 'वराह'नामके एक 'महादेवासुरसंग्राम'का भी उल्लेख है, जिसके अन्तर्गत १२ 'उपसंग्राम' हुए थे। तन्त्रग्रन्थोंमें वराहके लिये 'वार्त' तथा वराहीके लिये 'वार्ताली' शब्द भी आते हैं। यहाँ भी अध्याय ९७, श्लोक ७६में 'वार्त' नामक युद्धका भी उल्लेख है।

हिरण्याक्षो हतो द्वन्द्वे संग्रामेष्वपराजितः।
दंष्ट्रायां तु वराहेण समुद्राद्भूर्यदा कृता।
प्राह्लादिर्निर्जितो युद्धे इन्द्रेणामृतमन्थने।

(वायुपुराण, ९७। ७८-७९) आदिसे 'हिरण्यकशिपु'के युद्धका भी प्रायः एक साथ ही उल्लेख है। 'वायुपुराण'के ६ठे अध्यायमें तथा 'कालिकापुराण'में 'वराहावतार'की एक दूसरी कथा भी वर्णित है। तथापि वह श्लोक १से ३५ तक हरिवंश-कथाका ही संक्षिप्त रूप है और इसमें भी उनके 'यज्ञरूप'का ही विस्तृत वर्णन है।

---

* इन पारिभाषिक शब्दोंकी परिभाषा 'श्रौत-कोशों'में देखना चाहिये।

शास्त्रप्रतिपादित पुराण-माहात्म्य

(लेखक—ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

हमारे शास्त्रोंमें पुराणोंकी बड़ी महिमा है। उन्हें साक्षात् श्रीहरिका रूप बताया गया है। जिस प्रकार सम्पूर्ण जगत्‌को आलोकित करनेके लिये भगवान् सूर्यरूपमें प्रकट होकर हमारे बाहरी अन्धकारको नष्ट करते हैं, उसी प्रकार हमारे हृदयान्धकार—भीतरी अन्धकारको दूर करनेके लिये श्रीहरि ही पुराण-विग्रह धारण करते हैं।* जिस प्रकार त्रैवर्णिकोंके लिये वेदोंका स्वाध्याय नित्य करनेकी विधि है, उसी प्रकार पुराणोंका श्रवण भी सबको नित्य करना चाहिये—**'पुराणं शृणुयान्नित्यम्।'** पुराणोंमें अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—चारोंका बहुत ही सुन्दर निरूपण हुआ है और चारोंका एक-दूसरेके साथ क्या सम्बन्ध है—इसे भी भलीभाँति समझाया गया है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः॥
कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः॥

(१। २। ९-१०)

'धर्मका फल है—संसारके बन्धनोंसे मुक्ति, अथवा श्रीभगवान्‌की प्राप्ति। धर्मसे यदि किसीने कुछ सांसारिक सम्पत्ति उपार्जन कर ली तो इसमें उस धर्मकी कोई सफलता नहीं है। इसी प्रकार धनका एकमात्र फल है—धर्मका अनुष्ठान, वह न करके यदि किसीने धर्मसे कुछ भोगकी सामग्रियाँ एकत्र कर लीं तो यह कोई सच्चे लाभकी बात नहीं हुई। शास्त्रोंने कामको भी पुरुषार्थ माना है। पर उस पुरुषार्थका अर्थ इन्द्रियोंको तृप्त करना नहीं है। जितने सोने-खाने आदिसे हमारा जीवन-निर्वाह हो जाय, उतना आराम ही यहाँ 'काम' पुरुषार्थसे अभिप्रेत है। तथा जीवननिर्वाहका—जीवित रहनेका भी फल यह नहीं है कि अनेक प्रकारके कर्मोंके पचड़ेमें पड़कर इस लोक या परलोकका सांसारिक सुख प्राप्त किया जाय। उसका परम लाभ तो यह है कि वास्तविक तत्त्वको—भगवत्तत्व-को जाननेकी शुद्ध इच्छा हो।' वस्तुतः सारे साधनोंका फल है—भगवान्‌की प्रसन्नताको प्राप्त करना। और वह भगवत्प्रीति भी पुराणोंके श्रवणसे सहजमें ही प्राप्त की जा सकती है। 'पद्मपुराण'में कहा गया है—

तस्माद्यदि हरेः प्रीतेरुत्पादे धीयते मतिः।
श्रोतव्यमनिशं पुम्भिः पुराणं कृष्णरूपिणः॥

(पद्म० स्वर्ग० ६२। ६२)

'इसलिये यदि भगवान्‌को प्रसन्न करनेका मनमें संकल्प हो तो सभी मनुष्योंको निरन्तर श्रीकृष्णके अङ्गभूत पुराणोंका श्रवण करना चाहिये।' इसीलिये पुराणोंका हमारे यहाँ बहुत आदर है।

वेदोंकी भाँति पुराण भी हमारे यहाँ अनादि माने गये हैं और उनका रचयिता कोई नहीं है। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी भी उनका स्मरण ही करते हैं। इसी दृष्टिसे पद्मपुराणमें कहा गया है—**'पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।'** इनका विस्तार सौ करोड़ (एक अरब) श्लोकोंका माना गया है—**'शतकोटिप्रविस्तरम्।'** उसी प्रसङ्गमें यह भी कहा गया है कि समयके परिवर्तनसे जब मनुष्यकी आयु कम हो जाती है और इतने बड़े पुराणोंका श्रवण और पठन एक जीवनमें मनुष्योंके लिये असम्भव हो जाता है, तब उनका संक्षेप करनेके लिये स्वयं भगवान् प्रत्येक द्वापरयुगमें व्यासरूपमें अवतीर्ण होते हैं और

* यथा सूर्यवपुर्भूत्वा प्रकाशाय चरेद्धरिः। सर्वेषां जगतामेव हरिरालोकहेतवे॥
तथैवान्तःप्रकाशाय पुराणावयवो हरिः। विचरेदिह भूतेषु पुराणं पावनं परम्॥
(पद्म० स्वर्ग० ६२। ६०-६१)

उन्हें अठारह भागोंमें बाँटकर चार लाख श्लोकोंमें सीमित कर देते हैं। पुराणोंका यह संक्षिप्त संस्करण ही भूलोकमें प्रकाशित होता है। कहते हैं स्वर्गादि लोकोंमें आज भी एक अरब श्लोकोंका विस्तृत पुराण विद्यमान है।* इस प्रकार भगवान् वेदव्यास भी पुराणोंके रचयिता नहीं; अपितु वे उसके संक्षेपक अथवा संग्राहक ही सिद्ध होते हैं। इसीलिये पुराणोंको 'पञ्चम वेद' कहा गया है—

'इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्'

(छान्दोग्य उपनिषद् ७ । १ । २)

उपर्युक्त उपनिषद्वाक्यके अनुसार यद्यपि इतिहास-पुराण दोनोंको ही 'पञ्चम वेद'की गौरवपूर्ण उपाधि दी गयी है, फिर भी वाल्मीकीय रामायण और महाभारत जिनकी इतिहास संज्ञा है, क्रमशः महर्षि वाल्मीकि तथा वेदव्यासद्वारा प्रणीत होनेके कारण पुराणोंकी अपेक्षा अर्वाचीन ही हैं। इस प्रकार पुराणोंकी पुराणता सर्वापेक्षया प्राचीनता सुतरां सिद्ध हो जाती है। इसीलिये वेदोंके बाद पुराणोंका ही हमारे यहाँ सबसे अधिक सम्मान है। बल्कि कहीं-कहीं तो उन्हें वेदोंसे भी अधिक गौरव दिया गया है। पद्मपुराणमें लिखा है—

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
पुराणं च विजानाति यः स तस्माद्विचक्षणः॥

(सृष्टि० २ । ५०-५१)

'जो ब्राह्मण अङ्गों एवं उपनिषदोंसहित चारों वेदोंका ज्ञान रखता है, उससे भी बड़ा विद्वान् वह है, जो पुराणोंका विशेष ज्ञाता है।' यहाँ श्रद्धालुओंके मनमें स्वाभाविक ही यह शङ्का हो सकती है कि उपर्युक्त श्लोकोंमें वेदोंकी अपेक्षा भी पुराणोंके ज्ञानको श्रेष्ठ क्यों बतलाया है। इस शङ्काका दो प्रकारसे समाधान किया जा सकता है। पहली बात तो यह है कि उपर्युक्त श्लोकके **'विद्यात्'** और **'विजानाति'**—इन दो क्रिया-पदोंपर विचार करनेसे यह शङ्का निर्मूल हो जाती है। बात यह है कि ऊपरके वचनमें वेदोंके सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके विशिष्ट ज्ञानका वैशिष्ट्य बताया गया है, न कि वेदोंके सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके सामान्य ज्ञानका अथवा वेदोंके विशिष्ट ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके विशिष्ट ज्ञानका। पुराणोंमें जो कुछ है,—वह वेदोंका ही तो विस्तार—विशदीकरण है। ऐसी दशामें पुराणोंका विशिष्ट ज्ञान वेदोंका ही विशिष्ट ज्ञान है और वेदोंका विशिष्ट ज्ञान वेदोंके सामान्य ज्ञानसे ऊँचा होना ही चाहिये। दूसरी बात यह है कि जो बात वेदोंमें सूत्ररूपसे कही गयी है, वही पुराणोंमें विस्तारसे वर्णित है। उदाहरणके लिये परम तत्त्वके निर्गुण-निराकार रूपका तो वेदों (उपनिषदों) में विशद वर्णन मिलता है, परंतु सगुण-साकार तत्त्वका बहुत ही संक्षेपमें कहीं-कहीं वर्णन मिलता है। ऐसी दशामें जहाँ पुराणोंके विशिष्ट ज्ञाताको सगुण-निर्गुण दोनों तत्त्वोंका विशिष्ट ज्ञान होगा, वेदोंके सामान्य ज्ञाताको केवल निर्गुण-निराकारका ही सामान्य ज्ञान होगा। इस प्रकार उपर्युक्त श्लोकोंकी संगति भलीभाँति बैठ जाती है और पुराणोंकी जो महिमा शास्त्रोंमें वर्णित है, वह अच्छी तरह समझमें आ जाती है।

---

* कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य तदा विभुः। व्यासरूपस्तदा ब्रह्मा संग्रहार्थं युगे युगे॥
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे जगौ। तदाष्टादशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रकाशितम्॥
अद्यापि देवलोकेषु शतकोटिप्रविस्तरम्।

(पद्म० सृष्टि० १ । ५१-५३)

भारतीय संस्कृतिमें पुराणोंका महत्त्वपूर्ण स्थान

(लेखक—नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

वस्तुतः हमारा 'पुराण-साहित्य' बड़े महत्त्वका है। यह सम्भव है कि उसमें समय-समयपर यत्किंचित् परिवर्तन-परिवर्द्धन किया गया हो, परंतु मूलतः तो ये भी वेदोंकी भाँति भगवान्‌के निःश्वासरूप ही हैं। 'शतपथ'-ब्राह्मणमें आता है—

स यथार्द्रैधाग्नेरभ्याहितात्पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निःश्वसितानि।*

(शतपथ १४। २। ४। १०)

'गीले काठद्वारा उत्पन्न अग्निसे जिस प्रकार पृथक् धुआँ निकलता है, उसी प्रकार ये जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वाङ्गिरस (अथर्ववेद), इतिहास, पुराण, विद्याएँ, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, मन्त्रविवरण और अर्थवाद हैं—वे सब महान् परमात्माके ही निःश्वास हैं।' अर्थात् बिना ही प्रयत्नके परमात्मासे उत्पन्न हुए हैं—

'अप्रयत्नेनैव पुरुषनिःश्वासो भवत्येवम्'

(शांकरभाष्य)

वेदोंकी संहिताओं, ब्राह्मण-आरण्यक और उपनिषदोंमें भगवान् विष्णु, शिव आदिके मत्स्य, कूर्म, वराहादि विभिन्न अवतारोंके तथा पुराणवर्णित अनेकों कथाओंके प्रसङ्ग आये हैं।

'अथर्ववेद'में आया है—

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः॥

(११। ७। २४)

'यज्ञसे यजुर्वेदके साथ ऋक्, साम, छन्द और पुराण उत्पन्न हुए।'

छान्दोग्योपनिषद्‌में नारदजीने भी सनत्कुमारसे कहा है—

'स होवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्—(७। १। १-२)

'मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, चौथे अथर्ववेद और पाँचवें वेद इतिहास-पुराणको जानता हूँ।'

मनु महाराजने तो पुराणकी मङ्गलमयताको जानकर आज्ञा ही दी है—

स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि।
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणान्यखिलानि च॥

(३। २३२)

'श्राद्धादि पितृकार्योंमें वेद, धर्मशास्त्र, आख्यान, इतिहास, पुराण और उनके परिशिष्ट भाग सुनाने चाहिये।'

ब्रह्माण्डपुराणके प्रक्रियापादमें 'पुराण' शब्दकी निरुक्ति इस प्रकार की गयी है—

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
न चेत् पुराणं संविद्यात् नैव स स्याद्विचक्षणः॥
इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड २। ११। ५०, शिवपुराण, वायवीयसंहिता १। ४०, वायुपुराण १। २०१)

यस्मात् पुरा ह्यनक्तीदं पुराणं तेन तत्स्मृतम्।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

(वायुपुराण, अध्याय १। २०२)

'अङ्ग और उपनिषद्‌के सहित चारों वेदोंका अध्ययन करके भी यदि पुराणको नहीं जाना गया तो ब्राह्मण

* बृहदारण्यक-उपनिषद् २। ४। १०में भी यह ज्यों-का-त्यों है।

विचक्षण नहीं हो सकता, क्योंकि इतिहास-पुराणके द्वारा ही वेदकी पुष्टि करनी चाहिये । यही नहीं, पुराण-ज्ञानसे रहित अल्पज्ञसे वेद डरते रहते हैं, क्योंकि ऐसे व्यक्तिके द्वारा ही वेदका अपमान हुआ करता है। अत्यन्त प्राचीन तथा वेदको स्पष्ट करनेवाला होनेसे ही इसका नाम 'पुराण' हुआ है। पुराणकी इस व्युत्पत्तिको जो जानता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

पुराणोंकी अनादिता तथा प्राचीनताके विषयमें उन्हींमें एक यह मार्मिक वचन भी प्राप्त होता है, जो श्रद्धालुओंके लिये नितान्त हितकर है—

प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ॥

(वायुपुराण १ । ६०, ब्रह्माण्डपुराण, शिवपुराण,-वायवीयसंहिता १ । ३१-३२)

'ब्रह्माजीने शास्त्रोंमें सबसे पहले पुराणोंको ही 'सुप्त-प्रतिबुद्ध-न्याय'से स्मरण किया, बादमें उनके चारों मुँहसे चारों वेद प्रकट हुए ।'

इस प्रकार पुराणोंकी अनादिता, प्रामाणिकता तथा मङ्गलमयताका स्थल-स्थलपर उल्लेख है और वह सर्वथा सिद्ध एवं यथार्थ है। भगवान् व्यासदेवने इन प्राचीनतम पुराणोंका ही प्रकाश और प्रचार किया है। वस्तुतः पुराण अनादि और नित्य हैं। पुराणोंकी कथाओंमें कई असम्भव-सी दीखनेवाली तथा कई परस्परविरोधी-सी बातें और भगवान् तथा देवताओंके साक्षात् मिलने आदिके प्रसङ्गोंको देखकर स्वल्प श्रद्धा-वाले पुरुष उन्हें काल्पनिक मानने लगते हैं, परंतु यथार्थमें बात ऐसी नहीं है। इनमें कुछ एकपर यहाँ संक्षेपसे विचार किया जाता है।

(१) जबतक वायुयानका निर्माण नहीं हुआ था, तबतक पुराणेतिहासोंमें वर्णित विमानोंके वर्णनको बहुत-से लोग असम्भव मानते थे। पर अब जब हमारी आँखोंके सामने आकाशमें विमान उड़ रहे हैं, तब वैसी बात नहीं रही। मान लीजिये आजके ये रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन आदि यन्त्र नष्ट हो जायँ और कुछ शताब्दियोंके बाद ग्रन्थोंमें इनका वर्णन पढ़नेको मिले तो उस समयके लोग यही कहेंगे कि यह सारी कपोलकल्पना है। भला, हजारों कोसोंकी बात उसी क्षण वैसी-की-वैसी सुनायी देना, आवाजका पहचाना जाना और उसमें आकृति भी दीख जाना कैसे सम्भव है ? हमारे ब्रह्मास्त्र, आग्नेयास्त्र आदिको तथा व्यास-संजय-धृतराष्ट्रके संवादोंको भी पहले लोग असम्भव मानते थे, पर अब विद्युत् एवं परमाणुबमकी शक्ति देखकर वे ही इनपर विश्वास करने लगे हैं। पुराणवर्णित सभी असम्भव बातें ऐसी ही हैं, जो हमारे सामने न होनेके कारण असम्भव-सी दीखती हैं।

(२) परस्परविरोधी प्रसङ्ग कल्पभेदको लेकर हैं। पुराणोंके सृष्टितत्त्वको जाननेवाले लोग इस बातको सहज ही समझ सकते हैं।

(३) लोग देवताओंके मिलनेकी बातको भी अतिरञ्जित मानते हैं, पर यह भी असम्भव नहीं है। प्राचीन कालके उन भक्तिपूत योगी, तपस्वी, ऋषि-मुनियोंमें ऐसी महान् सात्त्विकी शक्ति थी कि उनमेंसे कई तो समस्त लोकोंमें निर्बाध यातायात करते थे और दिव्यलोक, देवलोक, असुरलोक और पितृ-लोककी व्यवस्था और घटनाओंको वहाँ जाकर प्रत्यक्ष देखते थे। वे देवताओंसे मिलते थे और अपने तपोमय प्रेमाकर्षणसे देवताओंको—यहाँतक कि भगवान्को भी अपने यहाँ बुलाकर प्रकट कर लेते थे। पुराणोंकी ऐसी बातें उन ऋषि-मुनियोंने स्वयं प्रत्यक्ष की थीं। अद्वैतवेदान्तके महान् आचार्य भगवान् शंकरने अपने प्रसिद्ध 'शारीरक'भाष्यमें लिखा है—

'इतिहासपुराणमपि व्याख्यातेन मार्गेण सम्भवन् मन्त्रार्थवादमूलत्वात् प्रभवति देवताविग्रहादि साधयितुम्। प्रत्यक्षादिमूलमपि सम्भवति। भवति ह्यस्माकमप्रत्यक्षमपि चिरंतनानां प्रत्यक्षम्। तथा च व्यासादयो देवादिभिः प्रत्यक्षं व्यवहरन्तीति स्मर्यते। यस्तु ब्रूयादिदानींतनानामिव पूर्वेषामपि नास्ति देवादिभिर्व्यवहर्तुं सामर्थ्यमिति, स जगद्वैचित्र्यं प्रतिषेधेत्। इदानीमिव च नान्यदापि सार्वभौमः क्षत्रियोऽस्तीति ब्रूयात्। ततश्च राजसूयादिचोदनोपरुन्ध्यात्। इदानीमिव च कालान्तरेऽप्यव्यवस्थितप्रायान् वर्णाश्रमधर्मान् प्रतिजानीत; ततश्च व्यवस्थाविधायि शास्त्रमनर्थकं स्यात्। तस्माद् धर्मोत्कर्षवशाच्चिरंतना देवादिभिः प्रत्यक्षं व्यवजह्रुरिति श्लिष्यते।' ······। (ब्रह्मसूत्र १। ३। ३३का शांकरभाष्य)

"इतिहास और पुराण भी मन्त्र-मूलक तथा अर्थवाद-मूलक होनेके कारण प्रमाण ही हैं, अतः उपर्युक्त रीतिसे वे देवता-विग्रह आदिके सिद्ध करनेमें समर्थ होते हैं। देवताओंका प्रत्यक्ष आदि भी सम्भव है। इस समय हमें जो प्रत्यक्ष नहीं होते, प्राचीन लोगोंको वे प्रत्यक्ष होते थे, जैसे व्यासादि मुनियोंके देवताओंके साथ प्रत्यक्ष व्यवहारकी बात स्मृतिमें मिलती है। आजकलकी ही भाँति प्राचीन पुरुष भी देवताओंके साथ प्रत्यक्ष व्यवहार करनेमें असमर्थ थे, यह कहनेवाला तो मानो जगत्की विचित्रताका ही प्रतिषेध करना चाहता है। वह तो यह भी कह सकता है कि—'आजकलके ही समान पूर्व समयमें भी सार्वभौम क्षत्रियोंकी सत्ता न थी' पर ऐसा कहनेपर तो फिर 'राजसूय' आदि विधिका भी बाध हो जायगा और ऐसा मानना पड़ेगा कि 'आजकलके समान ही पूर्व समयमें भी वर्णाश्रमधर्म अव्यवस्थित ही था।' तब तो इसकी व्यवस्था करनेवाले सारे शास्त्र ही व्यर्थ हो जायँगे। अतएव यह सिद्ध है कि धर्मके उत्कर्षके कारण प्राचीन लोग देवताओं आदिके साथ प्रत्यक्ष व्यवहार करते थे।"

इससे सिद्ध है कि पुराणवर्णित प्रसङ्ग काल्पनिक नहीं हैं, बल्कि वे सर्वथा सत्य ही हैं। यह बात अवश्य है कि हमारे ऋषिप्रणीत ग्रन्थोंमें ऐसे चमत्कारपूर्ण प्रसङ्ग हैं कि जिनके आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—तीनों ही अर्थ लिये जा सकते हैं। इसलिये जो लोग इनका आध्यात्मिक अर्थ करते हैं वे भी अपनी दृष्टिसे ठीक ही करते हैं। पुराणोंमें कहीं-कहीं ऐसी बातें भी हैं, जो घृणित मालूम देती हैं। इसका कारण यह है कि उनमें कुछ प्रसङ्ग तो ऐसे हैं, जिनमें किसी निगूढ़ तत्त्वका विवेचन करनेके लिये आलंकारिक भाषाका प्रयोग किया गया है। उन्हें समझनेके लिये भगवत्कृपा, सात्त्विकी श्रद्धा और गुरु-परम्परासे अध्ययनकी आवश्यकता है। कुछ ऐसी बातें हैं, जो सच्चा इतिहास हैं। बुरी बात होनेपर भी सत्यके प्रकाश करनेकी दृष्टिसे उन्हें ज्यों-का-त्यों लिख दिया गया है। इसका कारण यह है कि हमारे वे पुराणवक्ता ऋषि-मुनि आजकलके इतिहासलेखकोंकी भाँति राजनैतिक दलगत, देशगत और जातिगत आग्रहके मोहसे मिथ्याको सत्य बनाकर लिखना पाप समझते थे। वे सत्यवादी, सत्याग्रही और सत्यके प्रकाशक थे।

अब एक बात और है, जो बुद्धिवादी लोगोंकी दृष्टिमें प्रायः खटकती है—वह यह कि विभिन्न पुराणोंमें जहाँ जिस देवता, तीर्थ या व्रत आदिका महत्त्व बतलाया गया है, वहाँ उसीको सर्वोपरि माना है और अन्य सबके द्वारा उसकी स्तुति करायी गयी है। गहराईसे न देखनेपर यह बात अवश्य बेतुकी-सी प्रतीत होती है, परंतु इसका तात्पर्य यह है कि भगवान्का यह लीलाभिनय ऐसा आश्चर्यमय है कि इसमें एक ही परिपूर्ण भगवान् विभिन्न विचित्र लीला-व्यापारके लिये और विभिन्न रुचि, स्वभाव तथा अधिकारसम्पन्न साधकोंके कल्याणके लिये अनन्त विचित्र रूपोंमें नित्य प्रकट हैं। भगवान्के ये सभी रूप

नित्य, पूर्णतम और सच्चिदानन्दस्वरूप हैं । अपनी-अपनी रुचि और निष्ठाके अनुसार जो जिस रूप और नामको इष्ट बनाकर भजता है, वह उसी दिव्य नाम और रूपमें-से समस्त रूपमय एकमात्र भगवान्को प्राप्त कर लेता है। क्योंकि भगवान्के सभी रूप परिपूर्णतम हैं और उन समस्त रूपोंमें एक ही भगवान् लीला कर रहे हैं। व्रतोंके सम्बन्धमें भी यही बात है । अतएव श्रद्धा और निष्ठाकी दृष्टिसे साधकके कल्याणार्थ जहाँ जिसका वर्णन है, वहाँ उसको सर्वोपरि बताना युक्तियुक्त ही है और परिपूर्णतम भगवत्सत्ताकी दृष्टिसे तो सत्य है ही।

स्कन्द, वामन एवं वराहादि पुराणोंमें तीर्थ-व्रत-दानादिके विशेष उल्लेख हैं। इनमें तीर्थोंकी बात यह है कि भगवान्के विभिन्न नाम-रूपोंकी उपासना करनेवाले संतों, महात्माओं और समर्थ राजाओं तथा भक्तोंने अपनी कल्याण-मयी सत्साधनाके प्रतापसे विभिन्न रूपमय भगवान्को अपनी रुचिके अनुसार वराह, नृसिंह, राम, कृष्ण, शिव-शक्ति, सूर्यादिके रूपमें अपने ही साधन-स्थानमें प्राप्त कर लिया और वहीं उनकी प्रतिष्ठा की । इस प्रकार एक ही भगवान् अपनी पूर्णतम स्वरूप-शक्तिके साथ अनन्त स्थानोंमें, अनन्त नाम-रूपोंमें प्रतिष्ठित हुए । भगवान्के प्रतिष्ठास्थान ही तीर्थ हैं, जो श्रद्धा, निष्ठा और रुचिके अनुसार सेवन करनेवालेको यथायोग्य फल देते हैं । यही तीर्थोंका रहस्य है । इस दृष्टिसे प्रत्येक तीर्थको सर्वोपरि बतलाना सर्वथा उचित ही है । इसी प्रकार व्रतोंकी भी महिमा है । जयन्तियोंमें भगवान्की विशेष संनिधि प्राप्त होती है । देश-काल, पात्र एवं मन्त्रादि साधनाके योगसे भगवान्का शीघ्र साक्षात्कार होता है, जिससे प्राणी सर्वथा कृतार्थ हो जाता है, कहा भी गया है—

त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज
आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम् ।
यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥
(श्रीमद्भा० ३ । ९ । ११)

इस प्रकार पुराणोंकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, वह सब अल्प ही है ।

वेदोंमें भगवान् यज्ञ-वराह

(श्रीमद्रामानन्द-सम्प्रदायाचार्य, सारस्वत-सार्वभौम स्वामी श्रीभगवदाचार्यजी महाराज)

भारतीयोंका उद्घोष है कि वेद सर्वविद्याओंके स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं। उनमें सभी भावोंका समावेश है। उनसे सभी धर्म निकले—'वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ ।' उनमें भूत-भविष्यका भी निर्देश है। वेदोंमें 'वराह' शब्द तथा भगवान् वराहका चरित्र—ऋक् १ । ६१ । ७; ११४, ५, ८ । ७७ । १०, १० । २८, ४, ९९, ६, ९ । ९७ । ८, १० । ६७ । ७, १० । ९९ । ६, तैत्तिरीय सं० ६ । २ । ४, ३, ७ । १ । ५ । १,७ । १ । ५, आदिमें प्राप्त होता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १ । १ । १३, तैत्तिरीय आरण्यक १० । ३० । १ आदिमें वराहावतारका सुस्पष्ट उल्लेख है। मैत्रायणी सं० १ । ६ । ३ । ३, ९, ३, ४, ४, ६, काठक सं० ८, २, २५, २७, कौथुम० १ । ५२४, २ । ४६६, जैमिनी० १ । ५४, २ । ३५, शौनकसं० पैप्पलादसंहिता ३ । १५, २, १६ । १४ । २२में भगवान् वराहका उल्लेख है। नरसिंहपु० ३९, विष्णुपुराण १ । ४, भागवत १ । ३, २ । ७, ३ । १३, ५ । १६, ९ । ९७ । ७, महाभारत, मत्स्यपुराण ४७ । ४७, वायुपुराण १ । २३में यज्ञावतार भगवान् वराह-विष्णुका रमणीय चरित्र है। 'वराह' शब्दके यद्यपि 'साम-संस्कारादि' भाष्योंमें अन्य अर्थ भी किये गये हैं, पर वहाँ भगवान् यज्ञ-वराहकी भक्तिका अर्थ भी भली प्रकार संगत हुआ दिखाया गया है। उदाहरण-के लिये कौथुमसंहिताका १ । ५२४ तथा २ । ४६६ मन्त्र । यद्यपि ये दोनों मन्त्र पुनरुक्तमात्र हैं और 'ऋक्-साम' मन्त्र ही हैं। और ऋक् ९ । ९७ । ७में भी प्राप्त हैं, पर ये सभी 'वराह-विष्णु'की आराधनाके साधक हैं।

वराहपुराणके दो दिव्य श्लोक

(लेखक--श्रद्धेय श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीजी महाराज)

स्थिरे मनसि सुस्वस्थे शरीरे सति यो नरः ।
धातुसाम्ये स्थिते स्मर्ता विश्वरूपं च मां भजन् ॥
ततस्तं म्रियमाणं तु काष्ठपाषाणसंनिभम् ।
अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमां गतिम् ॥

(वराहपुराणका खिलांश)

भगवती वसुंधराके पूछनेपर भगवान् वराह कहते हैं—'जो मेरा भक्त स्वस्थावस्थामें निरन्तर मेरा स्मरण करता रहता है, उसे ही मरते समय जब चेतना नहीं रहती और वह सूखे काष्ठ-पाषाणकी भाँति पड़ा रहकर मेरा चिन्तन करनेमें असमर्थ हो जाता है तो मैं उसका स्मरण करता हूँ और उसे परमगति—मुक्तिकी ओर ले जाता हूँ ।'

हमारे शास्त्रोंका सिद्धान्त है—**'अन्ते या मतिः सा गतिः'** मरते समय जिस साधककी जैसी मति होती है, वैसी ही उसकी गति होती है । हमने सुना है—एक बड़े तपस्वी महात्मा थे । उनका प्राणान्त एक बेरके वृक्षके नीचे हुआ । उनके शिष्यको भान हुआ—गुरुजीकी सद्गति नहीं हुई । उसने लोगोंसे पूछा—'गुरुजीकी मृत्यु कहाँ हुई और वे अन्तमें क्या कह रहे थे ? क्या देख रहे थे ?' लोगोंने कहा—'बेरके वृक्षके नीचे वे एक बेरको देखते-देखते मरे ।' शिष्यने समझ लिया—गुरुजीकी अन्तिम मति पके बेरमें लग गयी थी । बेरको तोड़ा तो उसमें एक विशेष कीड़ा निकला । फिर उसने उनके कल्याणार्थ धर्म किये-कराये ।

मरते समय भगवत्स्मरणका बड़ा माहात्म्य बताया गया है । कहना चाहिये, जितना जप, तप, भजन किया जाता है, इसीलिये किया जाता है कि मरते समय हमें भगवत्स्मरण बना रहे । जैसे वर्षभर छात्र पाठ्यपुस्तकोंका तन्मयताके साथ इसीलिये अभ्यास करता है कि अन्तिम परीक्षाके समय प्रश्नपत्रोंको ठीक-ठीक लिख सकें । जीवनभर भजन-पूजन किया, मरते समय मन किसी अन्यमें अटक गया तो दूसरे जन्ममें वही होना पड़ेगा । जैसे राजर्षि भरत निरन्तर भगवद्-भजन-पूजनमें ही तल्लीन रहते थे, पर मरते समय उनका मन हिरनके बच्चेमें लग गया तो उन्हें दूसरे जन्ममें हिरन ही होना पड़ा; किंतु भजन व्यर्थ नहीं होता—**'नहि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति'**

(गीता ६ । ४०)

इस सिद्धान्तसे हिरन-योनिके पश्चात् ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण जडभरत होकर मुक्त हो गये । फिर भी अन्तमें भगवत्स्मृति न होनेसे उन्हें हिरन तो बनना ही पड़ा । इसीलिये एक भक्तने भगवान्से प्रार्थना करते हुए यह याचना की है—

कृष्ण त्वदीयपदपङ्कजपञ्जरान्ते
अद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः ।
प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते ॥

(प्रपन्नगीता ५३)

'हे कृष्ण ! आपके चरणरूप पिंजरामें मेरा मनरूप राजहंस इसी समय प्रविष्ट हो जाय; क्योंकि मरते समय सभी नाडियाँ वात, पित्त और कफ—त्रिदोषसे अवरुद्ध हो जाती हैं और पञ्चप्राण भी विकृत हो जाते हैं; वे अपने-अपने स्थानोंको छोड़ते हैं । श्वास लेनेमें भी बड़ा परिश्रम पड़ता है । कण्ठ घुर-घुर करने लगता है । धातुएँ और वाणी अवरुद्ध हो जाती हैं । मूर्छा आ जाती है, चेतना लुप्त हो जाती है । न तो वाणीसे आपके नामोंका उच्चारण कर सकते हैं, न मनसे आपके रूपका ही स्मरण कर सकते हैं । यदि अन्त समयमें आपका स्मरण न हुआ तो हमें पुनः चौरासीके चक्करमें घूमना पड़ेगा । मृत्युके समय आपका स्मरण आवश्यक है । मुनि

लोग कोटि-कोटि यत्न करते हैं; किंतु अन्त समयमें—मृत्युकालमें—रामनामका उच्चारण-स्मरण नहीं होता।' जब अन्त समयमें स्मरण न हुआ तो दुर्गति ही होगी। भागवतमें राजर्षि भरतकी तपस्याका कितना दिव्य वर्णन है फिर भी अन्त समयमें हरिका स्मरण न होकर उनका मन हिरनमें फँसा रहा और अन्तिम समयमें उसीके स्मरणसे वे हिरन हो गये।

अतः श्रीभगवान् पृथ्वीसे कहते हैं कि ऐसे भक्तका मरते समय तो मैं ही उसका स्मरण करता हूँ और उसे परमगतितक पहुँचा दूँगा। यही भगवान्की भक्त-वत्सलताकी पराकाष्ठा है।

एक दिन धर्मराज युधिष्ठिर हस्तिनापुरमें ही प्रातः भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनोंके लिये गये। उस समय भगवान् श्रीकृष्ण आसन लगाकर ध्यानमग्न थे। धर्मराज बहुत देरतक खड़े रहे। जब भगवान्का ध्यान भङ्ग हुआ तब उन्होंने उठकर धर्मराजका अभिनन्दन किया और पूछा—'आप कितनी देरसे आये हैं?'

धर्मराजने कहा—ये सब बातें तो पीछे होंगी, आप यह बताइये कि सबके ध्येय तो आप ही हैं। संसार आपका ही ध्यान करता है, आप किसका ध्यान कर रहे थे? आपके भी कोई स्मरणीय हैं क्या?

भगवान्ने कहा—'धर्मराज! मैं अपने असमर्थ-अशक्त भक्तोंको स्मरण करता हूँ। भीष्मपितामहके शरीरमें नखसे लेकर शिखातक वाण घुसे हुए हैं, वे पीड़ासे अत्यन्त व्यथित हैं। अतः इस समय मैं उनका ही स्मरण कर रहा हूँ।'

यह सुनकर धर्मराज भाइयोंसहित भीष्मपितामहके दर्शनार्थ गये। भगवान् भी गये और भगवान्ने उन्हें उपदेश करनेको कहा।

पितामहने कहा—भगवन्! मेरे सम्पूर्ण शरीरमें वाण बिंधे रहनेसे मैं चेतनाशून्य-सा हो रहा हूँ। उपदेश कैसे करूँ?

इसपर भगवान्ने अपना अमृतस्पर्शी कर उनके शरीरपर फिराकर उनकी समस्त पीड़ा हर ली और कहा—'अब उपदेश करो।'

इसपर पितामहने पूछा—'भगवन्! यह द्रविड-प्राणायाम क्यों कर रहे हो। पहले मेरी पीड़ा हरी, फिर मुझसे उपदेश करनेको कहते हो। आप स्वयं ही उपदेश क्यों नहीं करते?'

इसपर भगवान्ने कहा—"पितामह! मुझे अपनी कीर्तिसे अपने भक्तोंकी कीर्ति अत्यधिक प्रिय है। जब लोग कहेंगे—'भीष्मने यह बात ऐसे कही तो भीष्मकी प्रशंसा सुनकर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता होगी।"

भक्तवर जगन्नाथदासको संग्रहणी हो गयी थी। उसे सैकड़ों बार शौच होता। इन दिनों उनकी लँगोटी एक लड़का निरन्तर धोता रहा। इस प्रकार कुछ दिनोंतक वह उनकी सेवा करता रहा। जब उन्हें कुछ चेत हुआ तो उन्होंने पूछा—'वत्स! तुम कौन हो? तुम्हारा नाम क्या है?'

बालकने कहा—'तुम जिसका भजन करते हो, मैं वही हूँ। मेरा नाम 'जगन्नाथ' है।'

जगन्नाथदासजीने रोकर कहा—'भगवन्! इतना नीच काम करके आप मेरे ऊपर अपराध क्यों चढ़ा रहे हैं। आप सर्वसमर्थ हैं, क्या आप मेरी संग्रहणीको दूर नहीं कर सकते थे? आपने इतना नीच कार्य क्यों किया?'

इसपर भगवान्ने कहा—'प्रारब्धकर्मोंका तो भोगसे ही क्षय होता है। मुझे भक्तोंकी सेवा करनेमें अत्यधिक सुख होता है। मैं अपनी प्रसन्नताके लिये ही तुम्हारी सेवा कर रहा था।'

यही भगवान्की असीम कृपा और भक्तवत्सलता है। बराहपुराणके इन दो श्लोकोंमें भगवान्की

प्रणतक्लेश-नाशपनेकी पराकाष्ठा दिखायी है । ये दो श्लोक मुझे अत्यन्त प्रिय हैं । श्रीरामानुजसम्प्रदायमें तीन चरम मन्त्र माने गये हैं । आचार्यगण अपने शिष्योंको इन्हीं तीनों मन्त्रोंका उपदेश करते हैं । सर्वप्रथम मन्त्र तो वराहपुराणके ये ही दो श्लोक हैं, दूसरा श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणका **'सकृदेव प्रपन्नाय'** है और तीसरा मन्त्र भगवद्गीताका **'सर्वधर्मान् परित्यज्य'** है ।

'कल्याण'का यह वराहपुराणाङ्क अन्य अङ्कोंकी भाँति अङ्करत्नमालाका एक जाज्वल्यमान रत्न हो, पाठक इस सात्त्विक पुराणसम्बन्धी अङ्कसे लाभान्वित हों, यही मेरी प्रभुके पादपद्मोंमें पुनः-पुनः प्रार्थना है ।

छप्पय

बनिगे सूअर श्याम मेघ सम लंब तड़ंगे ।
घुर-घुर करि घुसे नीरमहँ नंग-धड़ंगे ॥
आयो भीषण दैत्य भिड़े मकु दाँत चलावें ।
गई सिटिल्ली भूलि बली लखि मुँह मटकावें ॥
पटक्यो फिरि सटक्यो तुरत, भटक्यो लटक्यो चोटतें ।
चट्ट पट्ट मार्यो असुर, धरनी देखें ओटतें ॥

('भागवतचरित'से)

आचार्य वेङ्कटाध्वरिकृत भगवान् वराहकी स्तुति

कमलायतनेत्राय कमलायतनोरसे। वराहवपुषे दैत्यवाराहवपुषे नमः ॥ १ ॥
वामांसभूषायितविश्वधात्री वामस्तनन्यस्तकरारविंदः ।
जिघ्रन् मुखेनापि कपोलमेनां जीवातुरस्माकगुरोः स जीयात् ॥ २ ॥
वेदिस्तनूराहवनीयमास्यं बर्हींषि लोमानि जुहू च नासा ।
शम्या च दंष्ट्राऽजनि यस्य यूपो वालो मखात्मा स पुनातु पोत्री ॥ ३ ॥
पापेन दैत्येन भवाम्बुराशौ निपातितं मां निरवग्रहोर्मौ ।
धूतारिरुद्धृत्य धरामिवोच्चैः कुर्यान्मुदं मे कुहनावराहः ॥ ४ ॥
वेशंतति व्रतजुषां हृदयं मुनीनां वेगापगाविहृतिकाननचङ्क्रमाणि ।
मुस्तागणंति किल यस्य सुरारिवर्गाः कोलः सकोपि कुशलं कुरुताद जस्रम् ॥ ५ ॥
कल्याणमङ्कुरति यस्य कटाक्षलेशाद्यस्य प्रिया वसुमती सवनं यदङ्गम् ।
अस्मद्गुरोः कुलधनं चरणौ यदीयौ भूयः शुभं दिशतु भूमिवराह एषः ॥ ६ ॥
कल्यंत संततघनाघननिर्विघातनिर्घातवातघननिष्ठुरतारधीरम् ।
मायाकिटेर्बधिरितद्रुहिणश्रवस्कं घोणापुटी घुरुघुरारसितं पुनातु ॥ ७ ॥
झडिति विलुठदूर्मीचाटवाचाटसिंधुस्फुटपटहहविद्रस्फोटदीप्तपोटमुद्यन् ।
खरखुरपुटघाताभूतखट्वारिवाटः कपटकिटिरघौघाटोपमुद्घाटयेन्नः ॥ ८ ॥

श्रीवेङ्कटाध्वरिकृतं वराहाष्टकं समाप्तम्

भगवान् यज्ञ-वराहकी पूजा एवं आराधन-विधि

वराहः कल्याणं वितरतु स वः कल्पविरमे
विनिर्धुन्वन्नौदन्वनमुदकमुर्वीमुदवहन् ।
खुराघातत्रुट्यत् कुलशिखरिकूटप्रविलुठञ्-
शिलाकोटिस्फोटस्फुटघटितमाङ्गल्यपटहः ॥*

वराहपुराण (अध्याय १२७-२८)के दीक्षासूत्रमें सात्त्विक 'गणान्तिका दीक्षा' की विधि निर्दिष्ट है, पर वहाँ भगवान् वराहकी सरल पूजाविधि एवं मन्त्रादि नहीं हैं। वैसे दीक्षा एवं मन्त्रपर **'अथातो दीक्षा कस्य'**से 'गोपथ-ब्राह्मण' आदि वैदिक ग्रन्थोंमें भी पर्याप्त सामग्री है, पर इन्हें यहाँ अन्य पुराणों एवं आगमोंके अनुसार यज्ञ वराहविष्णुकी आराधनाकी विधि देनेका प्रयत्न किया जा रहा है। पूजा-आराधनाके पूर्व दीक्षा आवश्यक है। धातुपाठमें 'दीक्ष्'-धातु बह्वर्थक है और १।६०१ पर पठित है। जैसे 'अव्' धातुके २१-२२ अर्थ हैं, वैसे ही इसके भी ५-६ अर्थ हैं। इस प्रकार भी यह आगमोंके विचारका प्रमापक है। उनके अनुसार 'दिव्य ज्ञान' दीक्षासे ही होता है—

दीयते दिव्यविज्ञानं क्षीयते पापसंचयः ।
अतो दीक्षेति सम्प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥

'महाकपिल-पाञ्चरात्र' तथा 'नारायणीय'में भी दीक्षा आवश्यक निर्दिष्ट है। केवल पुस्तकको देखकर मन्त्र जपना सर्वत्र हानिकारक बतलाया है—

पुस्तकाल्लिखितो मन्त्रो येन सुन्दरि जप्यते ।
न तस्य जायते सिद्धिर्हानिरेव पदे पदे ॥
(महाकपि० पाञ्च० कुला० १५ । २२)

फिर इसके 'वेध', 'शाम्भव', 'स्पर्श†,' दृष्टिजनित,' 'कला', 'निर्वाण', 'वर्ण', 'पूर्ण', 'शक्तिपात' आदि अनेक भेद उन आगमोंमें तथा 'वराहपुराण'में भी निर्दिष्ट हैं।

इनमें 'वेधदीक्षा'से तत्काल पाश-पाप-मुक्तिपूर्वक दिव्य भावकी प्राप्ति होती है और जीव साक्षात् शिवस्वरूप हो जाता है—

गुरूपदिष्टमार्गेण वेधं कुर्याद्विचक्षणः ।
पापमुक्तः क्षणाच्छिष्यश्छिन्नपाशस्तथा भवेत् ॥
बाह्यव्यापारनिर्मुक्तो भूमौ पतति तत्क्षणात् ।
संजातदिव्यभावोऽसौ सर्वं जानाति शाम्भवि !
वेधविद्धः शिवः साक्षान्न पुनर्जन्मतां व्रजेत् ॥'
(षडन्वयमहारत्न, कुलार्णव १४ । ६०—६३)

दीक्षाविधि सर्वत्र प्रायः 'वराहपुराणके' अ० १२७ के 'दीक्षासूत्र'के समान ही निर्दिष्ट है। पर मन्त्र-दीक्षामें राशिचक्र, 'अकथह', 'अकडम' आदि चक्रोंसे मेलापक भी आवश्यक है। पर यदि स्वप्नमें कोई दीक्षा देता है, तो उसमें किसी प्रकारके विचारकी आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार सिद्ध देवता या दत्तात्रेयादि महर्षियों-द्वारा ध्यान, समाधि या प्रत्यक्ष-प्राप्त दीक्षामें भी कोई विचार आवश्यक नहीं है—

'सिद्धसारस्वततन्त्र'के अनुसार तो 'वाराहमन्त्र'में भी ऋणि-धनी या अकडम, अकथह आदि शोधनकी आवश्यकता नहीं है— (शेष पृष्ठ ४४८ पर)‡

* (क) दीक्ष—'मौण्ड्येज्योपनयननियमव्रतादेशेषु' । मौण्ड्यं—वपनम्, इज्या—यजनम्, उपनयनम्—मौर्वीबन्धः, नियमः—संयमः, व्रतादेशः—संस्कारादेशकथनम्, (क्षीरतरङ्गिणी, भ्वादिगण ६०१) ।

(ख) Monier Williams के अनुसार 'ताण्ड्य—ब्राह्मण २ । ४ । १८ 'ऐतरेय ब्राह्मण' ४ । २५ महाभारत आदिमें राज्याभिषेक, सोमयाग, युद्ध, तत्परता आदि अर्थोंमें भी यह दीक्ष् धातु प्रयुक्त है—

(ग) 'धातुकाव्य'की 'पदचन्द्रिका' व्याख्याके अनुसार ये मुख्य 'व्रतादेश'के ही अनेक भेद माने हैं—'क्वचित् गुर्वादिनन्दे ते व्रतमस्त्विति शासनात् । आचार्यो दीक्षते वाग्मी यजमानस्तु माणवः ॥ तपसे च महानन्ये तत्र ह्यादेशना व्रतम् ।' (१ । ६०१की पदचन्द्रिका व्याख्या) ।

† 'स्पर्शदीक्षा'के उदाहरण महर्षि दत्तात्रेय हैं। इन्होंने अलर्क, यदु, प्रह्लादादिको स्पर्श-मात्रसे दिव्य भावतक पहुँचा दिया था।

‡ स्थानाभावके कारण वराहपुराण-सम्बन्धी बहुतसे महत्त्वपूर्ण लेख पृ० ३८८ के बाद दिये गये हैं, जो अत्यन्त उपादेय एवं ज्ञानवर्द्धक हैं।

श्री वराहावतार



भगवान् वराहद्वारा पृथ्वीका उद्धार

[पृष्ठ सं० ३३]

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

श्रीवराहमहापुराण

ॐ नमो भगवते महावराहाय

भगवान् वराहके प्रति पृथ्वीका प्रश्न और भगवान्के उदरमें विश्वब्रह्माण्डका दर्शनकर भयभीत हुई पृथ्वीद्वारा उनकी स्तुति

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥
नमस्तस्मै वराहाय लीलयोद्धरते महीम्।
खुरमध्यगतो यस्य मेरुः खणखणायते॥
दंष्ट्राग्रेणोद्धृता गौरुदधिपरिवृता पर्वतैर्निम्नगाभिः
साकं मृत्पिण्डवत्प्राग्बृहदुरुवपुषाऽनन्तरूपेण येन।
सोऽयं कंसासुरारिर्मुरनरकदशास्यान्तकृत्सर्वसंस्थः
कृष्णो विष्णुः सुरेशो नुदतु मम रिपूनादिदेवो वराहः॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् वराह, नररत्न नरऋषि, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उसके वक्ता भगवान् व्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तियोंका नाश करके अन्तःकरणपर विजय प्राप्त करानेवाले वराहपुराणका पाठ करना चाहिये।

जिनके लीलापूर्वक पृथ्वीका उद्धार करते समय उनके खुरोंमें फँसकर सुमेरु पर्वत खन-खन शब्द करता है, उन भगवान् वराहको नमस्कार है।

जिन अनन्तरूप भगवान् विष्णुने प्राचीन कालमें समुद्रोंसे घिरी, वन-पर्वत एवं नदियोंसहित पृथ्वीको अत्यन्त विशाल शरीरके द्वारा अपनी दाढ़के अग्रभागपर मिट्टीके (छोटे-से) ढेलेकी भाँति उठा लिया था, वे कंस, मुर, नरक तथा रावण आदि असुरोंका अन्त करनेवाले कृष्ण एवं विष्णुरूपसे सबमें व्याप्त देवदेवेश्वर आदिदेव भगवान् वराह मेरी सभी बाधाओं (काम, क्रोध, लोभ आदि आध्यात्मिक शत्रुओं)को नष्ट करें।

सूतजी कहते हैं—पूर्वकालमें जब सर्वव्यापी भगवान् नारायणने वराह-रूप धारण करके अपनी शक्तिद्वारा एकार्णवकी अनन्त जलराशिमें निमग्न पृथ्वीका उद्धार किया, उस समय पृथ्वीने उनसे पूछा।

पृथ्वीने कहा—प्रभो ! आप प्रत्येक कल्पमें सृष्टिके आदिकालमें इसी प्रकार मेरा उद्धार करते रहते हैं; परंतु केशव ! आपके स्वरूप एवं सृष्टिके प्रारम्भके विषयमें मैं आजतक न जान सकी। जब वेद लुप्त हो गये थे, उस समय आप मत्स्यरूप धारण कर समुद्रमें प्रविष्ट हो गये थे और वहाँसे वेदोंका उद्धार करके आपने ब्रह्माको दे दिया था। मधुसूदन ! इसके अतिरिक्त जब देवता और दानव एकत्र होकर समुद्रका मन्थन करने लगे, तब आपने कच्छपावतार ग्रहण करके मन्दराचल पर्वतको धारण किया था। भगवन् ! आप सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं। जब मैं जलमें डूब रही थी, तब आपने रसातलसे, जहाँ सब ओर जल-ही-जल था, अपनी एक दाढ़पर रखकर मेरा उद्धार किया है। इसके अतिरिक्त जब वरदानके प्रभावसे हिरण्यकशिपुको असीम अभिमान हो गया था और वह पृथ्वीपर भाँति-भाँतिके उपद्रव करने लगा था, उस समय वह आपके द्वारा ही मारा गया था। देवाधिदेव ! प्राचीन कालमें आपने ही जमदग्निनन्दन परशुरामके रूपमें अवतीर्ण होकर मुझे क्षत्रियरहित कर दिया था। भगवन् ! आपने क्षत्रियकुलमें दाशरथि श्रीरामके रूपमें अवतीर्ण होकर क्षत्रियोचित पराक्रमसे रावणको नष्ट कर दिया था

तथा वामनरूपसे आपने ही बलिको बाँधा था। प्रभो! मुझे जलसे ऊपर उठाकर आप सृष्टिकी रचना किस प्रकार करते हैं तथा इसका क्या कारण है? आपकी इन लीलाओंके रहस्यको मैं कुछ भी नहीं जानती।

विभो! मुझे एक बार जलके ऊपर स्थापित करनेके अनन्तर आप किस प्रकार सृष्टिके पालनकी व्यवस्था करते हैं? आपके निरन्तर सुलभ रहनेका कौन-सा उपाय है? सृष्टिका किस प्रकार आरम्भ और अवसान होता है? चारों युगोंकी गणनाका कौन-सा प्रकार है तथा युगोंका क्रम किस प्रकार चलता है? महेश्वर! उन युगोंमें किस युगकी प्रधानता है तथा किस युगमें आप कौन-सी लीला किया करते हैं? यज्ञमें सदा संलग्न रहनेवाले कितने राजा हो चुके हैं और उनमेंसे किन-किनको सिद्धि सुलभ हुई है? प्रभो! आप मुझपर प्रसन्न हों और ये सब विषय संक्षेपसे बतानेकी कृपा करें।

पृथ्वीके ऐसा कहनेपर शूकररूपधारी भगवान् आदि-वराह हँस पड़े। हँसते समय उनके उदरमें जगद्धात्री पृथ्वीको महर्षियोंसहित रुद्र, वसु, सिद्ध एवं देवताओंका समुदाय दीखने लगा। साथ ही उसने वहाँ अपने-अपने कर्तव्यपालनमें तत्पर सूर्य, चन्द्रमा, ग्रहों और सातों लोकोंको भी देखा। यह सब देखते ही भय एवं विस्मयसे पृथ्वीके सभी अङ्ग काँपने लगे। इस प्रकार पृथ्वीको भयभीत देखकर भगवान् वराहने अपना मुख बंद कर लिया। तब पृथ्वीने उनको चतुर्भुज रूप धारण कर महासागरमें शेषनागकी शय्यापर सोये देखा। उनकी नाभिसे कमल निकला हुआ था। फिर तो चार भुजाओंसे सुशोभित उन परमेश्वरको देखकर देवी पृथ्वीने हाथ जोड़ लिया और उनकी स्तुति करने लगी।

पृथ्वीने कहा—कमलनयन! आपके श्रीअङ्गोंमें पीताम्बर फहरा रहा है, आप स्मरण करते ही भक्तोंके पापोंका हरण करनेवाले हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है। देवताओंके द्वेषी दैत्योंका दलन करनेवाले आप परमात्माको नमस्कार है। जो शेषनागकी शय्यापर शयन करते हैं, जिनके वक्षःस्थलपर लक्ष्मी शोभा पाती है तथा भक्तोंको मुक्ति प्रदान करना ही जिनका स्वभाव है, ऐसे सम्पूर्ण देवताओंके ईश्वर आप प्रभुको बारम्बार नमस्कार है। प्रभो! आपके हाथमें खड्ग, चक्र और शार्ङ्ग धनुष शोभा पाते हैं, आपपर जन्म एवं मृत्युका प्रभाव नहीं पड़ता तथा आपके नाभिकमलपर ब्रह्माका प्राकट्य हुआ है, ऐसे आप प्रभुके लिये बारम्बार नमस्कार है। जिनके अधर और करकमल लाल विद्रुममणिके समान सुशोभित होते हैं, उन जगदीश्वरके लिये नमस्कार है। भगवन्! मैं निरुपाय नारी आपकी शरणमें आयी हूँ, मेरी रक्षा करनेकी कृपा करें। जनार्दन! सघन नील अञ्जनके समान श्यामल आपके इस वराहविग्रहको देखकर मैं भयभीत हो गयी हूँ। इसके अतिरिक्त चराचर सम्पूर्ण जगत्को आपके शरीरमें देखकर भी मैं पुनः भयको प्राप्त हो रही हूँ। नाथ! अब आप मुझपर दया कीजिये। महाप्रभो! मेरी रक्षा आपकी कृपापर निर्भर है।

भगवान् केशव मेरे पैरोंकी, नारायण मेरे कटिभागकी तथा माधव दोनों जङ्घाओंकी रक्षा करें। भगवान् गोविन्द गुह्याङ्गकी रक्षा करें। विष्णु मेरी नाभिकी तथा मधुसूदन उदरकी रक्षा करें। भगवान् वामन वक्षःस्थल एवं हृदयकी रक्षा करें। लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु मेरे कण्ठकी, हृषीकेश मुखकी, पद्मनाभ नेत्रोंकी तथा दामोदर मस्तककी रक्षा करें।

इस प्रकार भगवान् श्रीहरिके नामोंका अपने अङ्गोंमें न्यास करके पृथ्वीदेवी 'भगवन् विष्णो! आपको नमस्कार है' ऐसा कहकर मौन हो गयी।

विभिन्न सर्गोंका वर्णन तथा देवर्षि नारदको वेदमाता सावित्रीका अद्भुत कन्याके रूपमें दर्शन होनेसे आश्चर्यकी प्राप्ति

सूतजी कहते हैं—सभी जीवधारियोंके शरीरोंमें आत्मारूपसे स्थित भगवान् श्रीहरि पृथ्वीकी भक्तिसे परम संतुष्ट हो गये। उन्होंने वराह-रूप धारण करके पृथ्वीको अपनी योगमायाका दर्शन कराया और फिर उसी रूपमें स्थित रहकर बोले—'सुश्रोणि ! तुम्हारा प्रश्न यद्यपि बहुत कठिन है एवं यह पुरातन इतिहासका विषय है, तथापि मैं सभी शास्त्रोंसे सम्मत इस विषयका प्रतिपादन करता हूँ। पृथ्वीदेवि ! साधारणतः सभी पुराणोंमें यह प्रसङ्ग आया है।

भगवान् वराहने कहा—सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—जहाँ ये पाँच लक्षण विद्यमान हों, उसे पुराण समझना चाहिये। वरानने ! पुराणोंमें सर्ग अर्थात् सृष्टिका स्थान प्रथम है। अतः मैं पहले उसीका वर्णन करता हूँ। इसके आरम्भसे ही देवताओं और राजाओंके चरित्रका ज्ञान होता है। परमात्मा सनातन हैं। उनका कभी किसी कालमें नाश नहीं होता। वे परमात्मा सृष्टिकी इच्छासे चार भागोंमें विभक्त हुए, ऐसा वेदज्ञ पुरुष जानते हैं। सृष्टिके आदिकालमें सर्वप्रथम परमात्मासे अहंतत्त्व, फिर आकाश आदि पञ्च महाभूत उत्पन्न हुए। उसके पश्चात् महत्तत्त्व प्रकट हुआ और फिर अणुरूपा प्रकृति और इसके बाद समष्टि बुद्धिका प्रादुर्भाव हुआ। सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंसे युक्त होकर वह बुद्धि पृथक्-पृथक् तीन प्रकारके भेदोंमें विभक्त हो गयी। इस गुणत्रयमेंसे तमोगुणका संयोग प्राप्त करके महद्ब्रह्मका प्रादुर्भाव हुआ, इसको सभी तत्त्वज्ञ प्रधान अर्थात् प्रकृति कहते हैं। इस प्रकृतिसे भी क्षेत्रज्ञ अधिक महिमायुक्त है। उस परब्रह्मसे सत्त्वादि गुण, गुणोंसे आकाश आदि तन्मात्राएँ और फिर इन्द्रियों-का समुदाय बना। इस प्रकार जगत्की सृष्टि व्यवस्थित हुई। भद्रे ! पाँच महाभूतोंसे स्वयं मैंने स्थूल शरीरका निर्माण किया। देवि ! पहले केवल शून्य था। फिर उसमें शब्दकी उत्पत्ति हुई। शब्दसे आकाश हुआ। आकाशसे वायु, वायुसे तेज एवं तेजसे जलकी उत्पत्ति हुई। इसके बाद प्राणियोंको अपने ऊपर धारण करनेके लिये तुम्हारी—(पृथ्वीकी) रचना हुई।

पृथ्वी और जलका संयोग होनेपर बुद्बुदाकार कलल बना और वही अण्डेके आकारमें परिणत हो गया। उसके बढ़ जानेपर मेरा जलमय रूप दृष्टिगोचर हुआ। मेरे इस रूपको स्वयं मैंने ही बनाया था। इस प्रकार नार अर्थात् जलकी सृष्टि करके मैं उसीमें निवास करने लगा। इसीसे मेरा नाम 'नारायण' हुआ। वर्तमान कल्पके समान ही मैं प्रत्येक कल्पमें जलमें शयन करता हूँ और मेरे सोते समय सदैव मेरी नाभिसे इसी प्रकार कमल उत्पन्न होता है, जैसा कि आज तुम देख रही हो। देवि ! ऐसी स्थितिमें मेरे नाभिकमलपर चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुए। तब मैंने उनसे कहा—'महामते ! तुम प्रजाकी रचना करो।' ऐसा कहकर मैं अन्तर्धान हो गया और ब्रह्मा भी सृष्टिरचनाके चिन्तनमें लग गये। वसुन्धरे ! इस प्रकार चिन्तन करते हुए ब्रह्माको जब कोई मार्ग नहीं सूझ पड़ा, तो फिर उन अव्यक्तजन्माके मनमें क्रोध उत्पन्न हुआ। उनके इस क्रोधके परिणामस्वरूप एक बालकका प्रादुर्भाव हुआ। जब उस बालकने रोना प्रारम्भ किया, तब अव्यक्तरूप ब्रह्माने उसे रोनेसे मना किया। इसपर उस बालकने कहा—'मेरा नाम तो बता दीजिये।' तब ब्रह्माने रोनेके कारण उसका नाम 'रुद्र' रख दिया। शुभे ! उस बालकसे भी ब्रह्माने कहा—'लोकोंकी रचना करो।' परंतु इस कार्यमें

अपनेको असमर्थ जानकर उस बालकने जलमें निमग्न होकर तप करनेका निश्चय किया ।

उस रुद्र नामक बालकके तपस्याके लिये जलमें निमग्न हो जानेपर ब्रह्माने फिर दूसरे प्रजापतिको उत्पन्न किया । दाहिने अँगूठेसे उन्होंने प्रजापतिकी तथा बायें अँगूठेसे प्रजापतिके लिये पत्नीकी सृष्टि की । प्रजापतिने उस स्त्रीसे स्वायम्भुव मनुको उत्पन्न किया । इस प्रकार पूर्वकालमें ब्रह्माने स्वायम्भुव मनुके द्वारा प्रजाओंकी वृद्धि की ।

पृथ्वी बोली—देवेश्वर ! प्रथम सृष्टिका और विस्तारसे वर्णन करनेकी कृपा करें तथा नारायण ब्रह्मारूपसे कैसे विख्यात हुए ? मुझे यह सब भी बतलानेकी कृपा करें ।

वराह भगवान् कहते हैं—देवि पृथ्वि ! नारायणने ब्रह्मारूपसे जिस प्रकार प्रजाओंकी सृष्टि की, उसे मैं विस्तृत रूपसे कहता हूँ, सुनो । शुभे ! पिछले कल्पका अन्त हो जानेपर रात्रि व्याप्त हो गयी । भगवान् श्रीहरि उस समय सो गये । प्राणोंका नितान्त अभाव हो गया । फिर जगनेपर उनको यह जगत् शून्य दिखायी पड़ा । भगवान् नारायण दूसरोंके लिये अचिन्त्य हैं । वे पूर्वजोंके भी पूर्वज, ब्रह्मस्वरूप, अनादि और सबके स्रष्टा हैं । ब्रह्माका रूप धारण करनेवाले वे परम प्रभु जगत्की उत्पत्ति और प्रलयकर्ता हैं । उन नारायणके विषयमें यह श्लोक कहा जाता है—

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
अयनं तस्य ताः पूर्वं ततो नारायणः स्मृतः ॥

पुरुषोत्तम नरसे उत्पन्न होनेके कारण जलको 'नार' कहा जाता है, क्योंकि जल भी नार अर्थात् पुरुषोत्तम परमात्मासे उत्पन्न हुए हैं । सृष्टिके पूर्व वह नार ही भगवान् हरिका अयन—निवास रहा, अतएव उनकी नारायण संज्ञा हो गयी । फिर पूर्व-कल्पोंकी भाँति उन श्रीहरिके मनमें सृष्टिरचना-का संकल्प उदित हुआ । तब उनसे बुद्धिशून्य तमोमयी सृष्टि उत्पन्न हुई । पहले उन परमात्मासे तम, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्धतामिस्र—यह पाँच पर्वोंवाली अविद्या उत्पन्न हुई । उनके फिर चिन्तन करनेपर तमोगुणप्रधान चेतनारहित जड़ (वृक्ष, गुल्म, लता, तृण और पर्वत) रूप पाँच प्रकारकी सृष्टि उत्पन्न हुई । सृष्टि-रचनाके रहस्यको जाननेवाले विद्वान् इसे मुख्य सर्ग कहते हैं । फिर उन परम पुरुषके चिन्तन करनेपर दूसरी पहलेकी अपेक्षा उत्कृष्ट सृष्टि-रचनाका कार्य आरम्भ हो गया । यह सृष्टि वायुके समान वक्र गतिसे या तिरछी चलनेवाली हुई, जिसके फलस्वरूप इसका नाम तिर्यक्स्रोत पड़ गया । इस सर्गके प्राणियोंकी पशु आदिके नामसे प्रसिद्धि हुई । इस सर्गको भी अपनी सृष्टि-रचनाके प्रयोजनमें असमर्थ जानकर ब्रह्माद्वारा पुनः चिन्तन किये जानेपर एक और दूसरा सर्ग उत्पन्न हुआ । यह ऊर्ध्वस्रोत नामक तीसरा धर्मपरायण सात्त्विक सर्ग हुआ, जो देवताओंके रूपमें ऊर्ध्व स्वर्गादि लोकोंमें रहने लगा । ये सभी देवता ऊर्ध्वगामी एवं स्त्री-पुरुष-संयोगके फलस्वरूप गर्भसे उत्पन्न हुए थे । इस प्रकार इन मुख्य सृष्टियोंकी रचना कर लेनेपर भी जब ब्रह्माने पुनः विचार किया, तो उनको ये भी परम पुरुषार्थ (मोक्ष) के साधनमें असमर्थ दीखे । तब फिर उन्होंने सृष्टि-रचनाका चिन्तन करना प्रारम्भ किया और पृथ्वी आदि नीचेके लोकोंमें रहनेवाले अर्वाक्स्रोत सर्गकी रचना की । इस अर्वाक्स्रोतवाली सृष्टिमें उन्होंने जिनको बनाया, वे मनुष्य कहलाये और वे परम पुरुषार्थके साधनके योग्य थे । इनमें जो सत्त्वगुणविशिष्ट थे, वे प्रकाशयुक्त हुए । रज एवं तमोगुणकी जिनमें अधिकता थी, वे कर्मोंका बारंबार अनुष्ठान

करनेवाले एवं दुःखयुक्त हुए। सुभगे! इस प्रकार मैंने इन छः सर्गोंका तुमसे वर्णन किया। इनमें पहला महत्तत्त्वसम्बन्धी सर्ग, दूसरा तन्मात्राओंसे सम्बन्धित भूतसर्ग और तीसरा वैकारिक सर्ग है, जो इन्द्रियोंसे सम्बन्ध रखता है। इस प्रकार समष्टि बुद्धिके संयोगसे (प्रकृतिसे) उत्पन्न होनेके कारण यह प्राकृत सर्ग कहलाया। चौथा मुख्य सर्ग है। पर्वत-वृक्ष आदि स्थावर पदार्थ ही इस मुख्य सर्गके अन्तर्गत हैं। वक्र गतिवाले पशु-पक्षी तिर्यक्स्रोतमें उत्पन्न होनेसे तिर्यग्योनि या तैर्यक स्रोतके प्राणी कहे जाते हैं।

विधाताकी सभी सृष्टियोंमें उच्च स्थान रखनेवाली छठी सृष्टि देवताओंकी है। मानव उनकी सातवीं सृष्टिमें आता है। सत्त्वगुण और तमोगुणमिश्रित आठवाँ अनुग्रहसर्ग माना गया है; क्योंकि इसमें प्रजाओंपर अनुग्रह करनेके लिये ऋषियोंकी उत्पत्ति होती है। इनमें बादके पाँच वैकृत सर्ग और पहलेके तीन प्राकृत सर्गके नामसे जाने जाते हैं। नवाँ कौमार सर्ग प्राकृत-वैकृतमिश्रित है। प्रजापतिके ये नौ सर्ग कहे गये हैं। संसारकी सृष्टिमें मूल कारण ये ही हैं। इस प्रकार मैंने इन सर्गोंका वर्णन किया। अब तुम दूसरा कौन-सा प्रसङ्ग सुनना चाहती हो?

पृथ्वी बोली—भगवन्! अव्यक्तजन्मा ब्रह्माद्वारा रचित यह नवधा सृष्टि किस प्रकार विस्तारको प्राप्त हुई? अच्युत! आप मुझे यह बतानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह कहते हैं—सर्वप्रथम ब्रह्माद्वारा रुद्र आदि देवताओंकी सृष्टि हुई। इसके बाद सनकादि कुमारों तथा मरीचि-प्रभृति मुनियोंकी रचना हुई। मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, महान् तेजस्वी पुलस्त्य, प्रचेता, भृगु, नारद एवं महातपस्वी वसिष्ठ—ये दस ब्रह्माजीके मानस पुत्र हुए। उन परमेष्ठीने सनकादिको निवृत्तिसंज्ञक धर्ममें तथा नारदजीके अतिरिक्त मरीचि आदि सभी ऋषियोंको प्रवृत्तिसंज्ञक धर्ममें नियुक्त कर दिया। ये जो आदि प्रजापति हैं, इनका ब्रह्माके दाहिने अँगूठेसे प्राकट्य हुआ है (इसी कारण ये दक्ष कहलाते हैं) और इन्हींके वंशके अन्तर्गत यह सारा चराचर जगत् है। देवता, दानव, गन्धर्व, सरीसृप तथा पक्षिगण—ये सभी दक्षकी कन्याओंसे उत्पन्न हुए हैं। इन सबमें धर्मकी विशेषता थी।

ब्रह्माके जो रुद्र नामक पुत्र हैं, उनका प्रादुर्भाव क्रोधसे हुआ था। जिस समय ब्रह्माकी भौंहें रोषके कारण तन गयी थीं, तब उनके ललाटसे इनका प्रादुर्भाव हुआ। उस समय इनका शरीर अर्धनारीश्वरके रूपमें था। 'तुम स्वयं अपनेको अनेक भागोंमें बाँटो'—इनसे यों कहकर ब्रह्मा अन्तर्धान हो गये। यह आज्ञा पाकर उन महाभागने स्त्री और पुरुष—इन दो भागोंमें अपनेको विभाजित कर दिया। फिर अपने पुरुष-रूपको उन्होंने ग्यारह भागोंमें विभक्त किया। तभीसे ब्रह्मासे प्रकट होनेवाले इन ग्यारह रुद्रोंकी प्रसिद्धि हुई। अनघे! तुम्हारी जानकारीके लिये मैंने इस रुद्र-सृष्टिका वर्णन कर दिया।

अब मैं संक्षेपसे युगमाहात्म्यका वर्णन करता हूँ। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि—ये चार युग हैं। इन चारों युगोंमें परम पराक्रमी तथा प्रचुर दक्षिणा देनेवाले जो राजा हो चुके हैं एवं जिन देवताओं और दानवोंने ख्याति प्राप्त की है तथा जिन धर्म-कर्मोंका उन्होंने अनुष्ठान किया है; वह मुझसे सुनो। पूर्वकालकी बात है, प्रथम कल्पमें स्वायम्भुव मनु हुए। उनके दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके लोकोत्तर कर्म मनुष्योंके लिये असम्भव ही थे। धर्ममें श्रद्धा रखनेवाले वे महाभाग प्रियव्रत और उत्तानपाद नामसे विख्यात हुए। प्रियव्रतमें तपोबल था और वे महान् यज्ञशाली थे। उन्होंने पुष्कल (अधिक) दक्षिणावाले अनेक महायज्ञोंद्वारा भगवान् श्रीहरिका यजन

किया था। उन्होंने सातों द्वीपोंमें अपने भरत आदि पुत्रोंको अभिषिक्त कर दिया था और स्वयं वे महातपस्वी राजा वरदायिनी विशाला✻ नगरी—बदरिकाश्रममें जाकर तपस्या करने लगे थे। महाराज प्रियव्रत चक्रवर्ती नरेश थे। धर्मका अनुष्ठान उनका स्वाभाविक गुण था। अतएव उनके तपस्यामें लीन होनेपर उनसे मिलनेकी इच्छासे वहाँ स्वयं नारदजी पधारे। नारद मुनिका आगमन आकाश-मार्गसे हुआ था। उनका तेज सूर्यके समान छिटक रहा था। उन्हें देखकर महाराज प्रियव्रतको बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने आसन, पाद्य एवं नैवेद्यसे नारदजीका भलीभाँति सत्कार किया। तत्पश्चात् उन दोनोंमें परस्पर वार्ता प्रारम्भ हो गयी। अन्तमें वार्तालापकी समाप्तिके समय राजा प्रियव्रतने ब्रह्मवादी नारदजीसे पूछा।

राजा प्रियव्रत बोले—नारदजी! आप महान् पुरुष हैं। इस सत्ययुगमें आपने कोई अद्भुत घटना देखी या सुनी हो, तो उसे बतानेकी कृपा करें।

नारदजीने कहा—महाराज! अवश्य ही मैंने एक आश्चर्यजनक बात देखी है, वह सुनो। कल मैं श्वेतद्वीप गया था, मुझे वहाँपर एक सरोवर दिखलायी पड़ा। उस सरोवरमें बहुत-से कमल खिले हुए थे। उसके तटपर विशाल नेत्रोंवाली एक कन्या खड़ी थी। उस कन्याको देखकर मैं अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ गया। उसकी वाणी भी बड़ी मधुर थी। मैंने उससे पूछा—'भद्रे! तुम कौन हो, इस स्थानपर कैसे निवास करती हो और यहाँ तुम्हारा क्या काम है?' मेरे इस प्रकार पूछनेपर उस कुमारीने एकटक नेत्रोंसे मुझे देखा, पर न जाने क्या सोचकर वह चुप ही रही। उसके देखते ही मेरा सारा ज्ञान पता नहीं, कहाँ चला गया? राजन्! सम्पूर्ण वेद, समस्त शास्त्र, योगशास्त्र और वेदोंके शिक्षादि अङ्गोंकी मेरी सारी स्मृतियाँ उस किशोरीने मुझपर दृष्टिपात करके ही अपहृत कर लीं। तब मैं शोक और चिन्तासे ग्रस्त होकर महान् विस्मयमें पड़ गया। राजन्! ऐसी स्थितिमें मैंने उस कुमारीकी शरण ग्रहण की। इतनेमें ही मुझे उस कुमारीके शरीरमें एक दिव्य पुरुष दृष्टिगोचर हुआ। फिर उस पुरुषके भी हृदयमें दूसरे और उस दूसरे पुरुषके हृदयमें तीसरेका दर्शन हुआ, जिसके नेत्र लाल थे और वह बारह सूर्योंके समान तेजस्वी था। इस प्रकार उन तीनों पुरुषोंको मैंने वहाँ देखा, जो उस कन्याके शरीरमें स्थित थे। सुव्रत! फिर क्षणभरके बाद देखा, तो वहाँ केवल वह कन्या ही रह गयी थी एवं अन्य तीनों पुरुष अदृश्य हो गये थे। तत्पश्चात् मैंने उस दिव्य किशोरीसे पूछा—भद्रे! मेरा सम्पूर्ण वेदज्ञान कैसे नष्ट हो गया? इसका कारण बताओ।

कुमारी बोली—'मैं समस्त वेदोंकी माता हूँ। मेरा नाम सावित्री है। तुम मुझे नहीं जानते। इसीके फलस्वरूप मैंने तुमसे वेदोंको अपहृत कर लिया है। तपरूपी धनका संचय करनेवाले राजन्! उस कुमारीके इस प्रकार कहनेपर मैंने विस्मय-विमुग्ध होकर पूछा—'शोभने! ये पुरुष कौन थे, मुझे यह बतानेकी कृपा करो।'

कुमारी बोली—मेरे शरीरमें विराजमान इन पुरुषोंकी जो तुम्हें झाँकी मिली है, इनमेंसे जिसके सभी अङ्ग परम सुन्दर हैं, इसका नाम ऋग्वेद है। यह स्वयं भगवान् नारायणका स्वरूप है। यह अग्निमय है। इसके सस्वर पाठ करनेसे समस्त पाप तुरंत भस्म हो जाते हैं। इसके हृदयमें यह जो दूसरा पुरुष तुम्हें दृष्टिगोचर हुआ है, जिसकी उसीसे उत्पत्ति हुई है, वह यजुर्वेदके रूपमें

✻ महाभारत वनपर्व ९० । २४ । २५ तथा भागवत-माहात्म्यके अनुसार विशालापुरी बदरिकाश्रम ही है।

स्थित महाशक्तिशाली ब्रह्मा हैं। फिर उसके वक्षःस्थलमें भी प्रविष्ट, जो यह परम पवित्र और उज्ज्वल पुरुष दीख रहा है, इसका नाम सामवेद है। यह भगवान् शंकरका स्वरूप माना गया है। स्मरण करनेपर सूर्यके समान सम्पूर्ण पापोंको यह तत्काल नष्ट कर देता है। ब्रह्मन्! तुमको दृष्टिगोचर हुए ये दिव्य पुरुष तीनों वेद ही हैं। नारद! तुम ब्रह्मपुत्रोंके शिरोमणि और सर्वज्ञान-सम्पन्न हो! यह सारा प्रसङ्ग मैंने तुम्हें संक्षेपसे बता दिया। अब तुम पुनः सभी वेदों और शास्त्रोंको तथा अपनी सर्वज्ञताको पुनः प्राप्त करो। इस वेद-सरोवरमें तुम स्नान करो। इसमें स्नान करनेसे तुम्हें अपने पूर्वजन्मकी स्मृति हो जायगी।

राजन्! यह कहकर वह कन्या अन्तर्धान हो गयी। तब मैंने उस सरोवरमें स्नान किया और तदनन्तर आपसे मिलनेकी इच्छासे यहाँ चला आया।

(अध्याय २)

देवर्षि नारदद्वारा अपने पूर्वजन्मवर्णनके प्रसङ्गमें ब्रह्मपारस्तोत्रका कथन

प्रियव्रत बोले—भगवन्! आपके द्वारा पूर्व जन्मोंमें जो-जो कार्य सम्पन्न हुए हों, उन सबको मुझे बतानेकी कृपा करें, क्योंकि देवर्षे! उन्हें सुननेकी मुझे बड़ी उत्कण्ठा है।

नारदजीने कहा—राजेन्द्र! कुमारी सावित्रीकी बात सुनकर उस वेद-सरोवरमें मैंने ज्यों ही स्नान किया, उसी क्षण मुझे अपने हजारों जन्मोंकी बातें स्मरण हो आयीं। अब तुम मेरे पूर्वजन्मकी बात सुनो। अवन्ती नामकी एक पुरी है। मैं पूर्वजन्ममें उसमें निवास करनेवाला एक श्रेष्ठ ब्राह्मण था। उस जन्ममें मेरा नाम सारस्वत था और सभी वेद-वेदाङ्ग मुझे सम्यक् अभ्यस्त थे। राजन्! यह दूसरे सत्ययुगकी बात है। उस समय मेरे पास बहुत-से सेवक थे, धन-धान्यकी अटूट राशि थी, भगवान्ने उत्तम बुद्धि भी दी थी। एक बार मैं एकान्तमें बैठकर विचार करने लगा कि संसार द्वन्द्वस्वरूप है; इसमें सुख-दुःख, हानि-लाभ आदिका चक्र सदा चलता रहता है। मुझे ऐसे संसारसे क्या लेना-देना है? अतः मुझे अब अपनी सारी सांसारिक धन-सम्पदा पुत्रोंको सौंपकर तपस्या करनेके लिये तुरंत सरस्वती नदीके तटपर चल देना चाहिये। यह विचार करनेके पश्चात्, क्या यह तत्काल करना उचित होगा, इस जिज्ञासाको लेकर मैंने भगवान्से प्रार्थना की। फिर भगवान्के आज्ञानुसार मैंने श्राद्धद्वारा पितरोंको, यज्ञद्वारा देवताओंको तथा दानद्वारा अन्य लोगोंको भी संतुष्ट किया। राजन्! तत्पश्चात् सभी ओरसे निश्चिन्त होकर मैं सारस्वत नामक सरोवरपर, जो इस समय पुष्करतीर्थके नामसे विख्यात है, चला गया। वहाँ जाकर परम मङ्गलमय पुराणपुरुष भगवान् विष्णुके नारायणमन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) का जप एवं ब्रह्मपार नामक उत्तम स्तोत्रका पाठ करता हुआ मैं भक्ति-पूर्वक आराधना करने लगा। तब परम प्रसन्न होकर स्वयं भगवान् श्रीहरि मेरे सम्मुख प्रत्यक्ष रूपसे प्रकट हो गये।

प्रियव्रत बोले—महाभाग देवर्षे! ब्रह्मपारस्तोत्र कैसा है? इसे मैं सुनना चाहता हूँ। आप मुझपर सदा प्रसन्न रहते हैं, अतएव कृपापूर्वक मुझे इसका उपदेश करें।

नारदजीने कहा—जो परात्पर, अमृतस्वरूप, सनातन, अपार शक्तिशाली एवं जगत्के परम आश्रय हैं, उन पुराणपुरुष भगवान् महाविष्णुको मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ। जो पुरातन, अतुलनीय, श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ एवं प्रचण्ड तेजस्वी हैं, जो गहन-गम्भीर बुद्धि-विचार करनेवालोंमें प्रधान तथा जगत्के शासक हैं, उन

श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो परसे भी पर हैं, जिनसे परे दूसरा कोई है ही नहीं, जो दूसरोंको आश्रय देनेवाले एवं महान् पुरुष हैं, जिनका धाम विशुद्ध एवं विशाल है, ऐसे पुराणपुरुष भगवान् नारायणकी परम शुद्धभावसे मैं स्तुति करता हूँ। सृष्टिके पूर्व जब केवल शून्यमात्र था, उस समय पुरुषरूपसे जिन्होंने प्रकृतिकी रचना की, वे भक्तजनोंमें प्रसिद्ध, शुद्धस्वरूप पुराणपुरुष भगवान् नारायण मेरे लिये शरण हों। जो परात्पर, अपारस्वरूप, पुरातन, नीतिज्ञोंमें श्रेष्ठ, क्षमाशील, शान्तिके आगार तथा जगत्के शासक हैं, उन कल्याणस्वरूप भगवान् नारायणकी मैं सदा स्तुति करता हूँ। जिनके हजारों मस्तक हैं, असंख्य चरण और भुजाएँ हैं, चन्द्रमा और सूर्य जिनके नेत्र हैं, क्षीरसागरमें जो शयन करते हैं, उन अविनाशी सत्यस्वरूप परम प्रभु भगवान् नारायणकी मैं स्तुति करता हूँ। जो वेदत्रयीके अवलम्बन-द्वारा जाने जाते हैं, जो परब्रह्मरूप एक मूर्तिसे द्वादश आदित्यरूप बारह मूर्तियोंमें अभिव्यक्त होते हैं, जो ब्रह्मा, विष्णु और महेशरूप तीन परमोज्ज्वल मूर्तियोंमें स्थित हैं, जो अग्निरूपमें दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय—इन तीन भेदोंमें विभक्त होते हैं, जो स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण—इन तीन तत्त्वोंके अवलम्बनद्वारा लक्षित होते हैं, जो भूत, वर्तमान और भविष्यरूपसे त्रिकालात्मक हैं तथा सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्निरूप तीन नेत्रोंसे युक्त हैं, उन अप्रमेयस्वरूप भगवान् नारायणको मैं प्रणाम करता हूँ। जो अपने श्रीविग्रहको सत्ययुगमें शुक्ल, त्रेतामें रक्त, द्वापरमें पीतवर्णसे अनुरञ्जित और कलियुगमें कृष्णवर्णमें प्रकाशित करते हैं, उन पुराणपुरुष श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ। जिन्होंने अपने मुखसे ब्राह्मणोंका, भुजाओंसे क्षत्रियोंका, दोनों जङ्घाओंसे वैश्योंका एवं चरणोंके अग्रभागसे शूद्रोंका सृजन किया है, उन विश्वरूप पुराणपुरुष भगवान् नारायणको मैं प्रणाम करता हूँ। जो परेसे भी परे, सर्वशास्त्रपारंगत, अप्रमेय और योद्धाओंमें श्रेष्ठ हैं, साधुओंके परित्राणरूप कार्यके निमित्त जिन्होंने श्रीकृष्णअवतार धारण किया है तथा जिनके हाथ ढाल, तलवार, गदा और अमृतमय कमलसे सुशोभित हैं, उन अप्रमेयस्वरूप भगवान् नारायणको मैं प्रणाम करता हूँ।

राजन्! इस प्रकार स्तुति करनेपर देवाधिदेव भगवान् नारायण प्रसन्न होकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें मुझसे बोले—'वर माँगो।' तब मैंने उन प्रभुके शरीरमें लय होनेकी इच्छा व्यक्त की। मेरी बात सुनकर उन सनातन देवेश्वरने मुझसे कहा—'ब्रह्मन्! अभी तुम शरीर धारण करो, क्योंकि इसकी आवश्यकता है। तुमने अभी जो तपस्या प्रारम्भ करनेके पूर्व पितरोंको नार (जल) दान किया है, अतः अबसे तुम्हारा नाम नारद होगा।'*

ऐसा कहकर भगवान् नारायण तुरंत ही मेरी आँखोंसे ओझल हो गये। समय आनेपर मैंने वह शरीर छोड़ दिया। तपस्याके प्रभावसे मृत्युके पश्चात् मुझे ब्रह्मलोककी प्राप्ति हुई। राजन्! तदनन्तर ब्रह्माजीके प्रथम दिवसका आरम्भ होनेपर मेरी भी उनके दस मानस पुत्रोंमें उत्पत्ति हुई। सम्पूर्ण देवताओंकी भी सृष्टिका वह प्रथम दिन है—इसमें कोई संशय नहीं। इसी प्रकार भगवद्धर्मानुसार सारे जगत्की सृष्टि होती है।

राजन्! यह मेरे प्राकृत जन्मका प्रसङ्ग है, जिसके विषयमें तुमने प्रश्न किया था। राजेन्द्र! भगवान् नारायणका ध्यान करनेसे ही मुझे लोकगुरुका पद प्राप्त हुआ, अतएव तुम भी उन श्रीहरिके परायण हो जाओ। (अध्याय ३)

* नारं पानीयमित्युक्तं पितॄणां तद्ददौ भवान्। तदाप्रभृति ते नाम नारदेति भविष्यति॥ (अध्याय ३। २३)

महामुनि कपिल और जैगीषव्यद्वारा राजा अश्वशिराको भगवान् नारायणकी सर्वव्यापकताका प्रत्यक्ष दर्शन कराना

पृथ्वी बोली—भगवन् ! जो सनातन, देवाधिदेव, परमात्मा नारायण हैं, वे भगवान्‌के परिपूर्णतम स्वरूप हैं या नहीं ? आप इसे स्पष्ट बतानेकी कृपा करें ।

भगवान् वराह कहते हैं—समस्त प्राणियोंको आश्रय देनेवाली पृथ्वि ! मत्स्य, कच्छप, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि—ये दस उन्हीं सनातन परमात्माके स्वरूप कहे जाते हैं । शोभने ! उनके साक्षात् दर्शन पानेकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषोंके लिये ये सोपानरूप हैं । उनका जो परिपूर्णतम स्वरूप है, उसे देखनेमें तो देवता भी असमर्थ हैं । वे मेरे एवं पूर्वोक्त अन्य अवतारोंके रूपका दर्शन करके ही अपनी मनःकामना पूर्ण करते हैं । ब्रह्मा उन्हींकी रजोगुण और तमोगुण-मिश्रित मूर्ति हैं, उनके माध्यमसे ही श्रीहरि संसार-की सृष्टि एवं संचालन करते हैं । धरणि ! तुम उन्हीं भगवान् नारायणकी आदि मूर्ति हो, उनकी दूसरी मूर्ति जल और तीसरी मूर्ति तेज है । इसी प्रकार वायुको चौथी और आकाशको पाँचवीं मूर्ति कहते हैं । ये सभी उन्हीं परब्रह्म परमात्माकी मूर्तियाँ हैं । इनके अतिरिक्त क्षेत्रज्ञ, बुद्धि एवं अहंकार—ये उनकी तीन मूर्तियाँ और हैं । इस प्रकार उनकी आठ मूर्तियाँ हैं । देवि ! यह सारा जगत् भगवान् नारायणसे ओत-प्रोत है । मैंने तुम्हें ये सभी बातें बता दीं । अब तुम दूसरा कौन-सा प्रसङ्ग सुनना चाहती हो ?

पृथ्वी बोली—भगवन् ! नारदजीके द्वारा भगवान् श्रीहरिके परायण होनेके लिये कहनेपर राजा प्रियव्रत किस कार्यमें प्रवृत्त हुए ? मुझे यह बतानेकी कृपा करें ।

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि ! मुनिवर नारदकी विस्मयजनक बात सुनकर राजा प्रियव्रतको महान् आश्चर्य हुआ । उन्होंने अपने राज्यको सात भागोंमें बाँटकर पुत्रोंको सौंप दिया और स्वयं तपस्यामें संलग्न हो गये । परब्रह्म परमात्माके 'नारायण' नामका जप करते-करते उनकी मनोवृत्ति भगवान् नारायणमें स्थिर हो गयी; अतः उन्हें देहत्यागके पश्चात् भगवान्‌के परमधामकी प्राप्ति हुई । सुन्दरि ! अब ब्रह्माजीसे सम्बन्ध रखनेवाला एक दूसरा प्रसङ्ग है, उसे सुनो ।

प्राचीन कालमें अश्वशिरा नामके एक परम धार्मिक राजा थे । उन्होंने अश्वमेध यज्ञके द्वारा भगवान् नारायणका यजन किया था जिसमें उन्होंने बहुत बड़ी दक्षिणा बाँटी थी । यज्ञकी समाप्तिपर उन राजाने अवभृथ स्नान किया । इसके पश्चात् वे ब्राह्मणोंसे घिरे हुए बैठे थे, उसी समय भगवान् कपिलदेव वहाँ पधारे । उनके साथ योगिराज जैगीषव्य भी थे । अब महाराज अश्वशिरा बड़ी शीघ्रतासे उठे, अत्यन्त हर्षके साथ उनका सत्कार किया और तत्काल दोनों मुनियोंके विधिवत् स्वागतकी व्यवस्था की । जब दोनों मुनिश्रेष्ठ भलीभाँति पूजित होकर आसन-पर विराजमान हो गये, तब महापराक्रमी राजा अश्वशिराने उनकी ओर देखकर पूछा—'आप दोनों अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धिवाले और योगके आचार्य हैं । आपने कृपापूर्वक स्वयं अपनी इच्छासे यहाँ आकर मुझे दर्शन दिया है । आप मनुष्योंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणदेवता हैं । आप दोनों मेरे इस संशयका समाधान करें कि भगवान् नारायणकी आराधना मैं कैसे करूँ ?'

दोनों ऋषियोंने कहा—राजन् ! तुम नारायण किसे कहते हो ? महाराज ! हम दो नारायण तो तुम्हारे सामने प्रत्यक्षरूपसे उपस्थित हैं ।

राजा अश्वशिरा बोले—आप दोनों महानुभाव ब्राह्मण हैं, आपको सिद्धि सुलभ हो चुकी है। तपस्यासे आपके पाप भी नष्ट हो गये—यह मैं मानता हूँ, किंतु 'हम दोनों नारायण हैं,' ऐसा आपलोग कैसे कह रहे हैं ? भगवान् नारायण तो देवताओंके भी देवता हैं। शङ्ख, चक्र और गदासे उनकी भुजाएँ अलङ्कृत रहती हैं। वे पीताम्बर धारण करते हैं। गरुड़ उनका वाहन है। भला, संसारमें उनकी समानता कौन कर सकता है ?

(भगवान् वराह कहते हैं—) कपिल और जैगीषव्य—ये दोनों ऋषि कठोर व्रतका पालन करनेवाले थे। वे राजा अश्वशिराकी बात सुनकर हँस पड़े और बोले—'राजन् ! तुम विष्णुका दर्शन करो।' इस प्रकार कहकर कपिलजी उसी क्षण स्वयं विष्णु बन गये और जैगीषव्यने गरुड़का रूप धारण कर लिया। अब तो उस समय राजाओंके समूहमें हाहाकार मच गया। गरुड़वाहन सनातन भगवान् नारायणको देखकर महान् यशस्वी राजा अश्वशिरा हाथ जोड़कर कहने लगे—'विप्रवरो ! आप दोनों शान्त हों। भगवान् विष्णु ऐसे नहीं हैं। जिनकी नाभिसे उत्पन्न कमलपर प्रकट होकर ब्रह्मा अपने रूपसे विराजते हैं, वह रूप परमप्रभु भगवान् विष्णुका है।'

कपिल एवं जैगीषव्य—ये दोनों मुनियोंमें श्रेष्ठ थे। राजा अश्वशिराकी उक्त बात सुनकर उन्होंने योगमायाका विस्तार कर दिया। अब कपिलदेव पद्मनाभ विष्णुके तथा जैगीषव्य प्रजापति ब्रह्माके रूपमें परिणत हो गये। कमलके ऊपर ब्रह्माजी सुशोभित होने लगे और उनके श्रीविग्रहसे कालाग्निके तुल्य लाल नेत्रोंवाले परम तेजस्वी रुद्रका प्राकट्य हो गया। राजाने सोचा—'हो-न-हो यह इन योगीश्वरोंकी ही माया है; क्योंकि जगदीश्वर इस प्रकार सहज ही दृष्टिगोचर नहीं हो सकते, वे सर्वशक्तिसम्पन्न श्रीहरि तो सदा सर्वत्र विराजते हैं।

भूत-प्राणियोंको धारण करनेवाली पृथ्वि ! राजा अश्वशिरा अपनी सभामें इस प्रकार कह ही रहे थे कि उनकी बात समाप्त होते-न-होते खटमल, मच्छर, जूँ, भौंरे, पक्षी, सर्प, घोड़े, गाय, हाथी, बाघ, सिंह, शृगाल, हरिण एवं इनके अतिरिक्त और भी करोड़ों ग्राम्य एवं वन्य पशु राजभवनमें चारों ओर दिखायी पड़ने लगे। उस समय झुंड-के-झुंड प्राणियोंके समूहको देखकर राजाके आश्चर्यकी सीमा न रही। राजा अश्वशिरा यह विचार करने लगे कि अब मुझे क्या करना चाहिये। इतनेमें ही सारी बात उनकी समझमें आ गयी। अहो ! यह तो परम बुद्धिमान् कपिल और जैगीषव्य मुनिका ही माहात्म्य है। फिर तो राजा अश्वशिराने हाथ जोड़कर उन ऋषियोंसे भक्तिपूर्वक पूछा—'विप्रवरो ! यह क्या प्रपञ्च है ?'

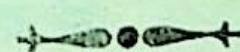
कपिल और जैगीषव्यने कहा—राजन् ! हम दोनोंसे तुम्हारा प्रश्न था कि भगवान् श्रीहरिकी आराधना एवं उनको प्राप्त करनेका क्या विधान है ? महाराज ! इसीलिये हम लोगोंने तुमको यह दृश्य दिखलाया है। राजन् ! सर्वज्ञ भगवान् श्रीहरिकी यह त्रिगुणात्मिका सृष्टि है, जो तुम्हें दृष्टिगोचर हुई है। भगवान् नारायण एक ही हैं। वे अपनी इच्छाके अनुसार अनेक रूप धारण करते रहते हैं। किसी कालमें जब वे अपनी अनन्त तेजोराशिको आत्मसात् करके सौम्यरूपमें सुशोभित होते हैं, तभी मनुष्योंको उनकी झाँकी प्राप्त होती है। अतएव उन नारायणकी अव्यक्त रूपमें आराधना सद्यः फलवती नहीं हो पाती*। वे जगत्प्रभु परमात्मा ही

* श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने भी कहा है—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् । अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ (१२ । ५)

उन सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्ममें आसक्त चित्तवाले पुरुषोंके साधनमें क्लेश विशेष है; क्योंकि देहाभिमानियोंके द्वारा अव्यक्तविषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त की जाती है।

सबके शरीरमें विराजमान हैं। भक्तिका उदय होनेपर अपने शरीरमें ही उन परमात्माका साक्षात्कार हो सकता है। वे परमात्मा किसी स्थानविशेषमें ही रहते हों, ऐसी बात नहीं है; वे तो सर्वव्यापक हैं। महाराज ! इसी निमित्त हम दोनोंके प्रभावसे तुम्हारे सामने यह दृश्य उपस्थित हुआ है। इसका प्रयोजन यह है कि भगवान्‌की सर्वव्यापकतापर तुम्हारी आस्था दृढ़ हो जाय। राजन् ! इसी प्रकार तुम्हारे इन मन्त्रियों एवं सेवकोंके—सभीके शरीरमें भगवान् श्रीहरि विराजमान हैं। राजन् ! हमने जो देवता एवं कीट-पशुओंके समूह तुमको अभी दिखलाये, वे सब-के-सब विष्णुके ही रूप हैं। केवल अपनी भावनाको दृढ़ करनेकी आवश्यकता है; क्योंकि भगवान् श्रीहरि तो सबमें व्याप्त हैं ही। उनके समान दूसरा कोई भी नहीं है, ऐसी भावनासे उन श्रीहरिकी सेवा करनी चाहिये। राजन् ! इस प्रकार मैंने सच्चे ज्ञानका तुम्हारे सामने वर्णन कर दिया। अब तुम अपनी परिपूर्ण भावनासे भगवान् नारायणका, जो सबके परम गुरु हैं, स्मरण करो। धूप-दीप आदि पूजाकी सामग्रियोंसे ब्राह्मणोंको तथा तर्पणद्वारा पितरोंको तृप्त करो। इस प्रकार ध्यानमें चित्तको समाहित करनेसे भगवान् नारायण शीघ्र ही सुलभ हो जाते हैं। (अध्याय ४)



रैभ्य मुनि और राजा वसुका देवगुरु बृहस्पतिसे संवाद तथा राजा अश्वशिराद्वारा यज्ञमूर्ति भगवान् नारायणका स्तवन एवं उनके श्रीविग्रहमें लीन होना

राजा अश्वशिरा बोले—'मुनिवरो ! मेरे मनमें एक संदेह है, उसे दूर करनेमें आप दोनों पूर्ण समर्थ हैं। उसके फलस्वरूप मुझे मुक्ति सुलभ हो सकती है।' उनके इस प्रकार कहनेपर योगीश्वर, परम धर्मात्मा कपिलमुनिने यज्ञ करनेवालोंमें श्रेष्ठ उस राजासे कहा।

कपिलजीने कहा—राजन् ! तुम परम धार्मिक हो। तुम्हारे मनमें क्या संदेह है ? बताओ, उसे सुनकर मैं दूर कर दूँगा।

राजा अश्वशिरा बोले—मुने ! मोक्ष पानेका अधिकारी कर्मशील पुरुष है या ज्ञानी ?—मेरे मनमें यह संदेह उत्पन्न हो गया है। यदि मुझपर आपकी दया हो तो इसे दूर करनेकी कृपा करें।

कपिलजीने कहा—महाराज ! प्राचीन कालकी बात है, यही प्रश्न ब्रह्माजीके पुत्र रैभ्य तथा राजा वसुने बृहस्पतिसे पूछा था। पूर्वकालमें चाक्षुष मन्वन्तरमें एक अत्यन्त प्रसिद्ध राजा थे, जिनका नाम था वसु। वे बड़े विद्वान् और विख्यात दानी थे। ब्रह्माजीके वंशमें उनका जन्म हुआ था। राजन् ! वे महाराज वसु ब्रह्माजीका दर्शन करनेके विचारसे ब्रह्मलोकको चल पड़े। मार्गमें ही चित्ररथ नामक विद्याधरसे उनकी भेंट हो गयी। राजाने प्रेमपूर्वक चित्ररथसे पूछा—'प्रभो ! ब्रह्माजीका दर्शन किस समय हो सकता है ?' चित्ररथने कहा—'ब्रह्माजीके भवनमें इस समय देवताओंकी सभा हो रही है।' ऐसा सुनकर वे नरेश ब्रह्मभवनके द्वारपर ठहर गये। इतनेमें महान् तपस्वी रैभ्य भी वहीं आ गये। उनको देखकर राजा वसुके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उनका रोम-रोम आनन्दसे खिल उठा। तदनन्तर रैभ्य मुनिकी पूजा करके राजाने उनसे पूछा—'मुने ! आप कहाँ चल पड़े ?'

रैभ्य मुनि बोले—'महाराज ! मैं देवगुरु बृहस्पतिके पाससे आ रहा हूँ। किसी कार्यके विषयमें पूछनेके लिये मैं उनके पास चला गया था।' रैभ्य मुनि इस प्रकार बोल ही रहे थे कि इतनेमें ब्रह्माजीकी वह

विशाल सभा विसर्जित हो गयी । सभी देवता अपने-अपने स्थानको चले गये । अतः अब बृहस्पतिजी भी वहीं आ गये । राजा वसुने उनका स्वागत-सत्कार किया । तत्पश्चात् तीनों ही एक साथ बृहस्पतिके भवनपर गये । राजेन्द्र ! वहाँ रैभ्य, बृहस्पति एवं राजा वसु—तीनों बैठ गये । सबके बैठ जानेपर देवताओंके गुरु बृहस्पतिने रैभ्य मुनिसे कहा—'महाभाग ! तुम्हें तो स्वयं वेद एवं वेदाङ्गोंका पूर्ण ज्ञान है । कहो, तुम्हारा मैं कौन-सा कार्य करूँ ?'

रैभ्य मुनि बोले—बृहस्पतिजी ! कर्मशील और ज्ञानसम्पन्न—इन दोनोंमें कौन मोक्ष पानेका अधिकारी है ? इस विषयमें मुझे संदेह उत्पन्न हो गया है । प्रभो ! आप इसका निराकरण करनेकी कृपा करें ।

बृहस्पतिजीने कहा—मुने ! पुरुष शुभ या अशुभ जो कुछ भी कर्म करे, वह सब-का-सब भगवान् नारायणको समर्पण कर देनेसे कर्मफलोंसे लिप्त नहीं हो सकता । द्विजवर ! इस विषयमें एक ब्राह्मण और व्याधका संवाद सुना जाता है । अत्रिके वंशमें उत्पन्न एक ब्राह्मण थे । उनकी वेदाभ्यासमें बड़ी रुचि थी । वे प्रातः, मध्याह्न तथा सायं—त्रिकाल स्नान करते हुए तपस्या करते थे । संयमन नामसे उनकी प्रसिद्धि थी । एक दिनकी बात है—वे ब्राह्मण धर्मारण्यक्षेत्रमें परम पुण्यमयी गङ्गानदीके तटपर स्नान करनेके उद्देश्यसे गये । वहाँ मुनिने निष्ठुरक नामके व्याधको देखकर उसे मना करते हुए कहा—'भद्र ! तुम निन्द्य कर्म मत करो ।' तब मुनिपर दृष्टि डालकर वह व्याध मुस्कुराते हुए बोला—'द्विजवर ! सभी जीवधारियोंमें आत्मारूपसे स्थित होकर स्वयं भगवान् ही इन जीवोंके वेशमें क्रीड़ा कर रहे हैं । जैसे माया जाननेवाला व्यक्ति मन्त्रोंका प्रयोग करके माया फैला देता है, ठीक वैसे ही यह प्रभुकी माया है, इसमें कोई संदेह नहीं करना चाहिये । विप्रवर ! मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंको चाहिये कि वे कभी भी अपने मनमें अहंभावको न टिकने दें । यह सारा संसार अपनी जीवनयात्राके प्रयत्नमें संलग्न रहता है । हाँ, इस कार्यके विषयमें 'अहम्' अर्थात् 'मैं कर्ता हूँ'—इस भावका होना उचित नहीं है । जब विप्रवर संयमनने निष्ठुरक व्याधकी बात सुनी तो वे अत्यन्त आश्चर्ययुक्त होकर उसके प्रति यह वचन बोले—'भद्र ! तुम ऐसी युक्तिसंगत बात कैसे कह रहे हो ?'

ब्राह्मणकी बात सुनकर धर्मके मर्मज्ञ उस व्याधने पुनः अपनी बात प्रारम्भ की । उसने सर्वप्रथम लोहेका एक जाल बनाया । उसे फैलाकर उसके नीचे सूखी लकड़ियाँ डाल दीं । तदनन्तर ब्राह्मणके हाथमें अग्नि देकर उसने कहा—'आर्य ! इस लकड़ीके ढेरमें आग लगा दीजिये ।'

तत्पश्चात् ब्राह्मणने मुखसे फूँककर अग्नि प्रज्वलित कर दी और शान्त होकर बैठ गये । जब आग धधकने लगी, तो वह लोहेका जाल भी गरम हो उठा । साथ ही उसमें जो गायकी आँखके समान छिद्र थे, उनमेंसे निकलती हुई ज्वाला इस प्रकार शोभा पाने लगी, मानो हंसके बच्चे श्रेणी-बद्ध होकर निकल रहे हों । उस जलती हुई अग्निसे हजारों ज्वालाएँ अलग-अलग फूट पड़ीं । आगके एक जगह रहनेपर भी उस लौहमय जालके छिद्रोंसे ऐसा दृश्य प्रतीत होने लगा । तब व्याधने उन ब्राह्मणसे कहा—'मुनिवर ! आप इनमेंसे कोई भी एक ज्वाला उठा लें, जिससे मैं शेष ज्वालाओंको बुझाकर शान्त कर दूँ ।'

इस प्रकार कहकर उस व्याधने जलती हुई आगपर जलसे भरा एक घड़ा तुरंत फेंका । फिर तो वह आग एकाएक शान्त हो गयी । सारा दृश्य पूर्ववत् हो गया । अब व्याधने तपस्वी संयमनसे कहा—'भगवन् ! आपने जो जलती आग ले रखी है, वह उसी अग्निपुञ्जसे प्राप्त हुई है । उसे मुझे दे दें, जिसके सहारे मैं अपनी जीवनयात्रा सम्पन्न कर सकूँ ।' व्याधके इस प्रकार कहनेपर जब ब्राह्मणने लोहेके [illegible] अग्नि

थी ही नहीं। वह तो पुञ्जीभूत अग्निके समाप्त होते ही शान्त हो गयी थी। तब कठोर व्रतका पालन करनेवाले संयमनकी आँखें मुँद गयीं और वे मौन होकर बैठ गये। ऐसी स्थितिमें व्याधने उनसे कहा—'विप्रवर ! अभी थोड़ी देर पहले आग धधक रही थी, ज्वालाओंका ओर-छोर नहीं था; किंतु मूलके शान्त होते ही सब-की-सब ज्वालाएँ शान्त हो गयीं। ठीक यही बात इस संसारकी भी है।

'परमात्मा ही प्रकृतिका संयोग प्राप्त करके समस्त भूत-प्राणियोंके आश्रयरूपमें विराजमान होते हैं। यह जगत् तो प्रकृतिमें विक्षोभ—विकार उत्पन्न होनेसे प्रादुर्भूत होता है, अतएव संसारकी यही स्थिति है।

'यदि जीवात्मा शरीर धारण करनेपर अपने स्वाभाविक धर्मका अनुष्ठान करता हुआ हृदयमें सदा परमात्मासे संयुक्त रहता है तो वह किसी प्रकारका कर्म करता हुआ भी विषादको प्राप्त नहीं होता।'

बृहस्पतिजीने कहा—राजेन्द्र ! निष्ठुरक व्याध और संयमन ब्राह्मणकी उपर्युक्त बातके समाप्त होते ही उस व्याधके ऊपर आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। साथ ही द्विजश्रेष्ठ संयमनने देखा कि कामचारी अनेक दिव्य विमान वहाँ पहुँच गये हैं। वे सभी विमान बड़े विशाल एवं भाँति-भाँतिके रत्नोंसे सुसज्जित थे, जो निष्ठुरकको लेने आये थे। तत्पश्चात् विप्रवर संयमनने उन सभी विमानोंमें निष्ठुरक व्याधको मनोऽनुकूल उत्तम रूप धारण करके बैठे हुए देखा। क्योंकि निष्ठुरक व्याध अद्वैत ब्रह्मका उपासक था, उसे योगकी सिद्धि सुलभ थी, अतएव उसने अपने अनेक शरीर बना लिये। यह दृश्य देखकर संयमनके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई और वे अपने स्थानको चले गये। अतः द्विजवर रैभ्य एवं राजा वसु ! अपने वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार कर्म करनेवाला कोई भी व्यक्ति निश्चय ही ज्ञान प्राप्त करके मुक्तिका अधिकारी हो सकता है।

राजन् ! यह प्रसङ्ग सुनकर रैभ्य और वसुके मनमें जो संदेह था, वह समाप्त हो गया। अतः वे दोनों बृहस्पतिजीके लोकसे अपने-अपने आश्रमोंको चले गये। अतएव राजेन्द्र ! तुम भी परमप्रभु भगवान् नारायणकी उपासना करते हुए अभेदबुद्धिसे उन परमप्रभु परमेश्वरकी अपने शरीरमें स्थितिका अनुभव करते रहो।

(भगवान् वराह कहते हैं—) पृथ्वि ! मुनिवर कपिलजीकी यह बात सुनकर राजा अश्वशिराने अपने यशस्वी ज्येष्ठ पुत्रको, जिसका नाम स्थूलशिरा था, बुलाया और उसे अपने राज्यपर अभिषिक्त कर वे स्वयं वनमें चले गये। नैमिषारण्य पहुँचकर, वहाँ यज्ञमूर्ति भगवान् नारायणका स्तवन करते हुए उन्होंने उनकी उपासना आरम्भ कर दी।

पृथ्वी बोली—परम शक्तिशाली प्रभो ! राजा अश्वशिराने यज्ञपुरुष भगवान् नारायणकी किस प्रकार स्तुति की और वह स्तोत्र कैसा है ? यह भी मुझे बतानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह कहते हैं—राजा अश्वशिराद्वारा यज्ञमूर्ति भगवान् नारायणकी स्तुति इस प्रकार हुई—

जो सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, इन्द्र, रुद्र तथा वायु आदि अनेक रूपोंमें विराजमान हैं, उन यज्ञमूर्ति भगवान् श्रीहरिको मेरा नमस्कार है। जिनके अत्यन्त भयंकर दाढ़ हैं, सूर्य एवं चन्द्रमा जिनके नेत्र हैं, संवत्सर और दोनों अयन जिनके उदर हैं, कुशसमूह ही जिनकी रोमावली है, उन प्रचण्ड शक्तिशाली यज्ञस्वरूप सनातन श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ।

स्वर्ग और पृथ्वीके बीचका सम्पूर्ण आकाश तथा सभी दिशाएँ जिनसे परिपूर्ण हैं, उन परम आराध्य,

सर्वशक्तिसम्पन्न एवं सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्तिके कारण सनातन श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ ।

जिनपर कभी देवताओं और दानवोंका प्रभुत्व स्थापित नहीं होता, जो प्रत्येक युगमें विजयी होनेके लिये प्रकट होते हैं, जिनका कभी जन्म नहीं होता, जो स्वयं जगत्‌की रचना करते हैं, उन यज्ञरूपधारी परम प्रभु भगवान् नारायणको मैं नित्य नमस्कार करता हूँ । जो महातेजस्वी श्रीहरि शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेके लिये महामायामय परम प्रकाशयुक्त जाज्वल्यमान सुदर्शनचक्र धारण करते हैं तथा शार्ङ्गधनुष एवं शङ्ख आदिसे जिनकी चारों भुजाएँ सुशोभित होती हैं, उन यज्ञरूपधारी भगवान् नारायणको मैं नित्य नमस्कार करता हूँ ।

जो कभी हजार सिरवाले, कभी महान् पर्वतके समान शरीर धारण करनेवाले तथा कभी त्रसरेणुके समान सूक्ष्म शरीरवाले बन जाते हैं, उन यज्ञपुरुष भगवान् नारायणको मैं सदा प्रणाम करता हूँ । जिनकी चार भुजाएँ हैं, जिनके द्वारा अखिल जगत्‌की सृष्टि हुई है, अर्जुनकी रक्षाके निमित्त जिन्होंने हाथमें रथका चक्र उठा लिया था तथा जो प्रलयके समय कालाग्निका रूप धारण कर लेते हैं, उन यज्ञस्वरूप भगवान् नारायणको मैं नित्य नमस्कार करता हूँ ।

संसारके जन्म-मरणरूप चक्रसे मुक्ति पानेके लिये जिन सर्वव्यापक पुराणपुरुष परमात्माकी मानव पूजा किया करते हैं तथा जिन अप्रमेय परम प्रभुका दर्शन योगियोंको केवल ध्यानद्वारा प्राप्त होता है, उन यज्ञमूर्ति भगवान् नारायणको मैं नित्य नमस्कार करता हूँ ।

भगवन् ! जिस समय मुझे अपने शरीरमें आपके वास्तविक स्वरूपकी झाँकी प्राप्त हुई, उसी क्षण मैंने मन-ही-मन अपनेको आपके अर्पण कर दिया । मेरी बुद्धिमें यह बात भलीभाँति प्रतीत होने लगी कि जगत्‌में आपके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं । तभीसे मेरी भावना परम पवित्र बन गयी है ।

इस प्रकार राजा अश्वशिरा यज्ञमूर्ति भगवान् नारायणकी स्तुति कर रहे थे । इतनेमें यज्ञवेदीसे निकलकर उनके सामने अग्निशिखाके तुल्य एक महान् तेज उपस्थित हो गया । अब इस शरीरका त्याग करनेकी इच्छासे राजा अश्वशिरा उसीमें समा गये और यज्ञपुरुष भगवान् नारायणके उस तेजोमय श्रीविग्रहमें लीन हो गये । (अध्याय ९)

पुण्डरीकाक्षपार-स्तोत्र, राजा वसुके जन्मान्तरका प्रसङ्ग तथा उनका भगवान् श्रीहरिमें लय होना

पृथ्वी बोली—भगवन् ! जब बृहस्पतिकी बात सुनकर राजा वसु और महाभाग रैभ्यका संदेह दूर हो गया, तब उन लोगोंने फिर कौन-सा कार्य किया ?

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि ! राजा वसुने अपने राज्यका पालन करते हुए पुष्कल दक्षिणावाले अनेक विशाल यज्ञोंद्वारा भगवान् श्रीहरिका यजन किया। उन्होंने देवदेवेश्वर भगवान् नारायणको यज्ञादि कर्मोंके अनुष्ठानद्वारा तथा सभी प्राणियोंमें अभेद-दर्शनकी साधना करके प्रसन्न कर लिया । इस प्रकार बहुत समय बीत जानेपर राजा वसुके मनमें राज्यका उपभोग करनेकी इच्छा निवृत्त हो गयी और उनके मनमें इस द्वन्द्वमय संसारसे मुक्त होनेकी कामना जाग उठी; अतः उन्होंने अपने सौ पुत्रोंमें सबसे बड़े राजकुमार विवस्वान्‌को राजसिंहासनपर अभिषिक्त कर दिया और स्वयं तपस्या करनेके विचारसे वनमें चले गये । वे सभी तीर्थोंमें श्रेष्ठ पुष्कर तीर्थमें जा पहुँचे, जहाँ भगवत्परायण पुरुषोंद्वारा पुण्डरीकाक्ष भगवान् केशवकी सदा उपासना होती रहती है । वहाँ जाकर काश्मीर-नरेश राजर्षि वसुने कठिन तपस्या-

द्वारा अपने शरीरको सुखाना प्रारम्भ कर दिया। उन परम बुद्धिमान् राजर्षिका मन शुद्धस्वरूप भगवान् नारायणकी आराधनाके लिये अत्यन्त उत्सुक था; अतः वे परम अनुरागपूर्वक 'पुण्डरीकाक्षपार' नामक स्तोत्रका जप करनेमें संलग्न हो गये। दीर्घकालतक उस स्तोत्रका जप करके महाराज वसु पुण्डरीकाक्ष भगवान् श्रीहरिमें विलीन हो गये।

पृथ्वीने पूछा—देव! इस 'पुण्डरीकाक्षपार'-स्तोत्रका स्वरूप क्या है? परमेश्वर! आप इसे मुझे बतानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि! (राजा वसुके द्वारा अनुष्ठित पुण्डरीकाक्षपार-स्तोत्र इस प्रकार है—) पुण्डरीकाक्ष! आपको नमस्कार है। मधुसूदन! आपको नमस्कार है। सर्वलोकमहेश्वर! आपको नमस्कार है। तीक्ष्ण सुदर्शनचक्र धारण करनेवाले श्रीहरिको मेरा बारंबार नमस्कार है। महाबाहो! आप विश्वरूप हैं, आप भक्तोंको वर देनेवाले और सर्वव्यापक हैं, आप असीम तेजोराशिके निधान हैं, विद्या और अविद्या-इन दोनोंमें आपकी ही सत्ता विलसित होती है, ऐसे आप कमलनयन भगवान् श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ। प्रभो! आप आदिदेव एवं देवताओंके भी देवता हैं। आप वेद-वेदाङ्गमें पारङ्गत, समस्त देवताओंमें सबसे गहन एवं गम्भीर हैं। कमलके समान नेत्रोंवाले आप श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ। भगवन्! आपके हजारों मस्तक हैं, हजारों नेत्र हैं और अनन्त भुजाएँ हैं। आप सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त करके स्थित हैं, ऐसे आप परम प्रभुकी मैं वन्दना करता हूँ। जो सबके आश्रय और एकमात्र शरण लेने योग्य हैं, जो व्यापक होनेसे विष्णु एवं सर्वत्र जयशील होनेसे जिष्णु कहे जाते हैं, नीले मेघके समान जिनकी कान्ति है, उन चक्रपाणि सनातन देवेश्वर श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो शुद्धस्वरूप, सर्वव्यापी, अविनाशी, आकाशके समान सूक्ष्म, सनातन तथा जन्म-मरणसे रहित हैं, उन सर्वगत श्रीहरिका मैं अभिवादन करता हूँ। अच्युत! आपके अतिरिक्त मुझे कोई भी वस्तु प्रतीत नहीं हो रही है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् मुझे आपका ही स्वरूप दिखलायी पड़ रहा है*।

(भगवान् वराह कहते हैं—) राजा वसु इस प्रकार स्तोत्रपाठ कर ही रहे थे कि एक नीलवर्ण पुरुष मूर्तिमान् होकर उनके शरीरके बाहर निकल आया, जो देखनेमें अत्यन्त प्रचण्ड एवं भयंकर प्रतीत होता था। उसके नेत्र लाल थे और वह ह्रस्वकाय पुरुष ऐसा प्रतीत होता था, मानो कोई जलता हुआ अंगार हो। वह दोनों हाथ जोड़कर बोला—'राजन्! मैं क्या करूँ?'

राजा वसु बोले—अरे! तुम कौन हो और तुम्हारा क्या काम है? तुम कहाँसे आये हो? व्याध! मुझे बताओ, मैं ये सब बातें जानना चाहता हूँ।

व्याधने कहा—राजन्! प्राचीनकालकी बात है; कलियुगके समय तुम दक्षिण दिशामें जनस्थान नामक प्रदेशके राजा थे। वीरवर! एक समय तुम वन्य पशुओंका शिकार करनेके लिये जंगलमें गये थे।

---

* नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते मधुसूदन। नमस्ते सर्वलोकेश नमस्ते तिग्मचक्रिणे॥
विश्वमूर्तिं महाबाहुं वरदं सर्वतेजसम्। नमामि पुण्डरीकाक्षं विद्याविद्यात्मकं विभुम्॥
आदिदेवं महादेवं वेदवेदाङ्गपारगम्। गम्भीरं सर्वदेवानां नमस्ये वारिजेक्षणम्॥
सहस्रशीर्षणं देवं सहस्राक्षं महाभुजम्। जगत्संव्याप्य तिष्ठन्तं नमस्ये परमेश्वरम्॥
शरण्यं शरणं देवं विष्णुं जिष्णुं सनातनम्। नीलमेघप्रतीकाशं नमस्ये चक्रपाणिनम्॥
शुद्धं सर्वगतं नित्यं व्योमरूपं सनातनम्। भावाभावविनिर्मुक्तं नमस्ये सर्वगं हरिम्॥
नान्यत् किंचित् प्रपश्यामि व्यतिरिक्तं त्वयाच्युत। त्वन्मयं च प्रपश्यामि सर्वमेतच्चराचरम्॥
(अ० ६। १०-१६)

उस समय तुम्हारे पास बहुत-से घोड़े थे। यद्यपि तुम्हारा उद्देश्य हिंस्र जन्तुओंका वध करनामात्र ही था, किंतु मृगका रूप धारण कर वनमें विचरण करनेवाले एक मुनि तुम्हारे न चाहते हुए भी बाणोंके शिकार होकर भूमिपर गिर पड़े और गिरते ही चल बसे। तुम्हारे मनमें यह सोचकर बड़ा हर्ष हुआ कि एक हरिण मारा गया। किंतु जब तुमने पास जाकर देखा तो मृगरूप धारण करनेवाले वे मृतक ब्राह्मण दिखलायी पड़े। यह घटना प्रस्रवण पर्वतपर घटित हुई थी। महाराज! उस समय ब्राह्मणको मृत देखकर तुम्हारी इन्द्रियाँ और मन सब-के-सब क्षुब्ध हो उठे। तुम वहाँसे घर लौट आये। तुमने यह घटना किसी औरको भी बतला दी। राजन्! कुछ समय बीत जानेपर सहसा एक रातको ब्रह्महत्याके भयसे तुम आतङ्कित हो उठे; अतः तुमने विचार किया कि इस ब्रह्महत्याकी शान्तिके लिये मैं कोई ऐसा प्रयत्न करूँ, जिसके परिणामस्वरूप इस पापसे मुक्त हो जाऊँ। महाराज! तदनन्तर समय आनेपर भगवान् नारायणका अनवरत चिन्तन करते हुए तुमने परम पवित्र द्वादशीपर्यन्त व्याप्त शुद्ध एकादशीका उपवासपूर्वक व्रत किया। फिर दूसरे दिन तुमने "भगवान् नारायण मुझपर प्रसन्न हों", इस संकल्पके साथ विधिपूर्वक गोदान किया। इसके बाद किसी दिन उदर-शूलकी असह्य पीड़ासे तुम्हारे प्राण पखेरू उड़ गये। किंतु द्वादशीव्रत-पुण्यके होते हुए भी तुमको मुक्ति प्राप्त न हो सकी। इसका कारण मैं बताता हूँ, सुनो। तुम्हारी सौभाग्यवती रानीका नाम नारायणी था। मृत्युके समय जब तुम्हारे प्राण कण्ठमें आ गये थे, उस समय तुम्हारे मुखसे उसके नामका उच्चारण हुआ, उसीसे तुम्हें उत्तम गतिकी प्राप्ति हुई और तुमको एक कल्पपर्यन्त विष्णुलोकमें निवास प्राप्त हुआ*। विष्णु-

*उक्त प्रकरणसे यह शङ्का होनी स्वाभाविक है कि क्या विष्णुलोकमें गमनके पश्चात् इस जन्म-मृत्युमय संसारमें लौटकर पुनः आना पड़ता है? क्योंकि भगवद्गीतामें स्वयं श्रीभगवान्ने—'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम' कहकर अपने परमधामको प्राप्त होनेपर जीवका इस संसारमें पुनरागमन न होनेकी घोषणा की है। इस विषयमें प्रमाणभूत ग्रन्थोंका आश्रय लेकर विचार करनेसे निम्नाङ्कित बातें प्रतीत होती हैं—

श्रीभगवान्के परम विशुद्ध वैकुण्ठधामके भी कई स्तर हैं। यद्यपि ये सभी स्तर प्राकृत-प्रपञ्चसे अतीत हैं, फिर भी प्रलयकालमें इसके बाह्य अंशका प्रलय होता है, जब कि आभ्यन्तर भाग उस समय अन्तर्हित हो जाता है। राजा वसुका कल्प-पर्यन्त विष्णुलोकमें निवास वैकुण्ठके किसी बाह्य स्तरपर कल्पान्तजीवी पुरुषोंका निवास होनेकी ओर संकेत करता है। श्रीमद्भागवतसे भी इसकी पुष्टि होती है—

किमन्यैः कालनिर्धूतैः कल्पान्ते वैष्णवादिभिः। (७। ३। ११)

इसी कल्पान्तपर्यन्त आयुवाले लोकके ऊपर ध्रुवकी स्थिति मानी गयी है। इसी ग्रन्थमें श्रीभगवान् नारायण ध्रुवको वर देते समय कहते हैं—

नान्यैरधिष्ठितं भद्र यद्भ्राजिष्णु ध्रुवक्षिति। यत्र ग्रहर्क्षताराणां ज्योतिषां चक्रमाहितम्॥
मेढ्यां गोचक्रवत्स्थास्नु परस्तात्कल्पवासिनाम्।
(४। ९। २०½)

भद्र! जिस तेजोमय अविनाशी लोकको आजतक किसीने प्राप्त नहीं किया, जिसके चारों ओर ग्रह, नक्षत्र और तारागण एवं ज्योतिश्चक्र उसी प्रकार चक्कर काटते रहते हैं, जिस प्रकार स्थिर मेढ़ीके चारों ओर दँवरीके बैल घूमते रहते हैं। अवान्तर कल्पपर्यन्त जीवन धारण करनेवालोंके लोकसे परे उसकी स्थिति है।

लोकमें गमन करनेके पूर्व मैं तुम्हारे शरीरमें स्थित था। अतः ये सब बातें मैं जानता हूँ। मैं उस समय एक भयंकर ब्रह्मराक्षसके रूपमें था और तुमको अपार कष्ट देना चाहता था। इतनेमें भगवान् विष्णुके पार्षद आ गये और उन्होंने मूसलोंसे मुझे मारा, जिससे मैं संक्षीण होकर तुम्हारे रोमकूपोंके मार्गसे निकलकर बाहर गिर पड़ा। महाभाग ! इसके पश्चात् ब्रह्माका एक अहोरात्र— कल्पकी अवधि समाप्त होनेपर महाप्रलय हो गया। तदनन्तर सृष्टिके आरम्भ होनेपर इस कल्पमें तुम काश्मीरके राजा सुमनाके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए हो। इस जन्ममें भी मैं तुम्हारे शरीरमें रोमकूपोंके मार्गसे पुनः प्रविष्ट हो गया। तुमने इस जन्ममें भी प्रभूत दक्षिणावाले अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान किया; किंतु ये सभी यज्ञजनित पुण्य मुझे तुम्हारे शरीरसे बाहर निकालनेमें असमर्थ रहे; क्योंकि इनमें भगवान् विष्णुके नामका उच्चारण नहीं हुआ था। अब जो तुमने इस पुण्डरीकाक्षपार-स्तोत्रका पाठरूप अनुष्ठान किया है, इसके प्रभावसे तुम्हारे शरीरसे मैं रोमकूपोंके मार्गसे बाहर आ गया हूँ। राजेन्द्र ! मैं वही ब्रह्मराक्षस अब व्याध बनकर पुनः प्रकट हुआ हूँ। पुण्डरीकाक्ष भगवान् नारायणके इस स्तोत्रके सुननेके प्रभावसे पहले जो मेरी पापमयी मूर्ति थी, वह अब समाप्त हो गयी। मैं उससे अब मुक्त हो गया। राजन् ! अब मेरी बुद्धिमें धर्मका उदय हो गया है।

यह प्रसङ्ग सुनकर महाराज वसुके मनमें आश्चर्यकी सीमा न रही। फिर तो बड़े आदरके साथ वे उस व्याधसे बात करने लगे।

राजा वसुने कहा—व्याध ! जैसे तुम्हारी कृपासे आज मुझे अपने पूर्वजन्मकी बात याद आ गयी, वैसे ही तुम भी मेरे प्रभावसे अब व्याध न कहलाकर धर्म-व्याधके नामसे प्रसिद्ध होओगे। जो पुरुष इस 'पुण्डरीकाक्षपार' नामक उत्तम स्तोत्रका श्रवण करेगा, उसे भी पुष्कर क्षेत्रमें विधिपूर्वक स्नान करनेका फल सुलभ होगा।

भगवान् वराह कहते हैं—जगद्धात्रि पृथ्वि ! राजा वसु धर्मव्याधसे इस प्रकार कहकर एक परम उत्तम विमानपर आरूढ़ हुए और भगवान् नारायणके लोकमें जाकर उनकी अनन्त तेजोराशिमें विलीन हो गये। (अध्याय ६)

इसी प्रकार सनकादि महर्षियोंके वैकुण्ठलोक-गमनके समय वैकुण्ठके छः स्तरोंको पार करके सप्तम स्तरपर उन्हें जय-विजय आदि भगवत्पार्षदोंके दर्शन होते हैं—

तस्मिन्नतीत्य मुनयः षडसज्जमानाः कक्षाः समानवयसावथ सप्तमायाम्।
देवावचक्षत गृहीतगदौ परार्ध्यकेयूरकुण्डलकिरीटविटङ्कवेषौ ॥

(श्रीमद्भा० ३। १५। २७)

भगवद्दर्शनकी लालसासे अन्य दर्शनीय सामग्रीकी उपेक्षा करते हुए वैकुण्ठधामकी छः ड्योढ़ियाँ पार कर जब वे सातवींपर पहुँचे तो वहाँ उन्हें हाथमें गदा लिये दो समान आयुवाले देवश्रेष्ठ दिखलायी दिये जो बाजूबंद, कुण्डल और किरीट आदि अनेकों अमूल्य आभूषणोंसे अलंकृत थे।

वैकुण्ठलोकके स्तरभेदके समान मुक्तिके भी स्तर-भेद हैं। मृत्युके साथ ही भगवान्के परमधाममें प्रवेश किया जाता है अथवा मृत्युके बाद कई स्तरोंमें होते हुए भी वहाँ पहुँचा जाता है। यह दूसरे प्रकारकी गति भी परमा गति ही है। कारण, इस स्तरसे अधोगति नहीं होती, क्रमशः ऊर्ध्वगति ही होती है और अन्तमें परमपदकी प्राप्ति हो जाती है। तथापि यह परमा गति होनेपर भी है अपेक्षाकृत निम्न अधिकारीके लिये ही।

राजा वसुको भी वासनाक्षय न होनेके कारण सद्योमुक्ति नहीं प्राप्त हुई। उनके द्वारा प्राण-त्यागके समय रानी नारायणीका नामोच्चारण होनेसे उसके फलस्वरूप उनको कल्पपर्यन्त विष्णुलोकमें वास प्राप्त होकर जन्मान्तरमें वासना एवं तज्जनित पापक्षयके द्वारा परम ज्योतिमें लीन होनेका वर्णन उनकी क्रममुक्ति प्राप्त होनेकी सूचना देता है।

रैभ्य-सनत्कुमार-संवाद, गयामें पिण्डदानकी महिमा एवं रैभ्य मुनिका ऊर्ध्वलोकमें गमन

पृथ्वीने पूछा—भगवन् ! मुनिवर रैभ्यने राजा वसुके सिद्धि प्राप्त होनेकी बातको सुनकर क्या किया ? इस विषयमें मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है। आप उसे शान्त करनेकी कृपा करें।

भगवान् वराहने कहा—पृथ्वि ! तपोधन रैभ्यमुनिने जब राजा वसुके सिद्धि प्राप्त होनेकी बात सुनी, तो वे पवित्र पितृतीर्थ गया जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने भक्तिपूर्वक पितरोंके लिये पिण्डदान किया। इस प्रकार पितरोंको तृप्त करके उन्होंने अत्यन्त कठिन तपस्या आरम्भ कर दी। परम मेधावी रैभ्यके इस प्रकार दुष्कर तपका आचरण करते समय एक महायोगी विमानपर आरूढ़ होकर उनके पास पधारे। उनका शरीर तेजसे देदीप्यमान था। उन महायोगीका वह परम उज्ज्वल विमान सूर्यके समान उद्भासित हो रहा था। त्रसरेणुके समान सूक्ष्म उस विमानपर विराजमान वह तेजोमय पुरुष भी आकारमें परमाणुके तुल्य प्रतीत होता था।

उस तेजोमय पुरुषने कहा—'सुव्रत ! तुम किस प्रयोजनसे इतनी कठिन तपस्या कर रहे हो ?' इतना कहकर वह दिव्य पुरुष बढ़ने लगा और उसने अपने शरीरसे पृथ्वी एवं आकाशके मध्यभागको व्याप्त कर लिया। सूर्यके समान देदीप्यमान उसके विमानने भी सम्पूर्ण भूगोल और खगोलको एवं साथ-ही-साथ विष्णुलोकको भी व्याप्त कर लिया। तब रैभ्यने अत्यन्त आश्चर्ययुक्त होकर उस योगीसे पूछा—'योगीश्वर ! आप कौन हैं ? मुझे बतानेकी कृपा करें।'

उस तेजोमय पुरुषने कहा—रैभ्य ! मैं ब्रह्माजीका मानस पुत्र सनत्कुमार हूँ। रुद्र मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं। मेरा जनलोकमें निवास है। तपोधन ! तुम्हारे पास प्रेमके वशीभूत होकर मैं आया हूँ। वत्स ! तुमने ब्रह्माजीकी सृष्टिका विस्तार किया है। तुम धन्य हो !

मुनिवर रैभ्यने पूछा—योगिराज ! आपको मेरा नमस्कार है। यह सारा विश्व आपका ही रूप है। आप प्रसन्न हों और मुझपर दया करें। योगीश्वर ! कहिये, मैं आपके लिये क्या करूँ ? अभी आपने मुझे जो धन्य कहा है, इसका क्या रहस्य है ?

सनत्कुमारजीने कहा—रैभ्य ! तुमने गयातीर्थमें जाकर वेदमन्त्रोंका उच्चारण करते हुए विधिपूर्वक पिण्डदानके द्वारा पितरोंको तृप्त किया है, श्राद्धकर्मके अङ्गभूत व्रत, जप एवं हवनकी भी विधि तुम्हारे द्वारा सम्पन्न हुई है। अतएव तुम ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ तथा धन्यवादके पात्र हो। इस विषयमें एक आख्यान है, वह मुझसे सुनो। विशाल नामसे विख्यात एक राजा हो चुके हैं। उनके नगरका नाम भी विशाल ही था। वे राजा निःसंतान थे, इससे शत्रुओंको पराजित करनेवाले उन परम धैर्यशाली राजा विशालके मनमें पुत्रप्राप्तिकी इच्छा हुई। अतः उन्होंने श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको बुलाकर उनसे पुत्र-प्राप्तिका उपाय पूछा। उन उदारचेता ब्राह्मणोंने कहा—'राजन् ! तुम पुत्र-प्राप्तिके निमित्त गयामें जाकर पुष्कल अन्नदान करके पितरोंको तृप्त करो। ऐसा करनेसे तुम्हें अवश्य ही पुत्र प्राप्त होगा। वह महान् दानी एवं सम्पूर्ण भूमण्डलपर शासन करनेवाला होगा।'

ब्राह्मणोंके ऐसा कहनेपर विशाल-नरेशके अङ्ग-प्रत्यङ्ग हर्षसे खिल उठे। तदनन्तर सूर्य जब मघा नक्षत्रपर आये, उस समय प्रयत्नपूर्वक गयातीर्थमें जाकर उन नरेशने विधि-विधानके साथ भक्तिपूर्वक पितरोंके लिये पिण्डदान किया। सहसा उन्होंने आकाशमें श्वेत, पीत एवं कृष्ण वर्णके तीन श्रेष्ठ पुरुषोंको देखा। उनको देखकर राजाने पूछा—'आपलोग कौन हैं ?'

श्वेत पुरुषने कहा—राजन् ! मैं तुम्हारा पिता सित हूँ। मेरा नाम तो सित है ही, मेरे शरीरका वर्ण भी सित (श्वेत) है, साथ ही मेरे कर्म भी सित (उज्ज्वल) हैं। (मेरे साथ) ये जो लाल रंगके पुरुष दिखायी देते हैं, मेरे पिता हैं। इन्होंने बड़े निष्ठुर कर्म किये हैं। ये ब्रह्महत्यारे और पापाचारी रहे हैं और इनके बाद ये जो तीसरे सज्जन हैं, ये तुम्हारे प्रपितामह हैं। इनका नाम अधीश्वर है। ये कर्म और वर्णसे भी कृष्ण हैं। इन्होंने पूर्वजन्ममें अनेक वयोवृद्ध ऋषियोंका वध किया है। ये दोनों पिता और पुत्र अवीचि नामक नरकमें पड़े हुए हैं; अतः ये मेरे पिता और ये दूसरे इनके पिता जो दीर्घकालतक काले मुखसे युक्त हो नरकमें रहे हैं और मैं, जिसने अपने शुद्ध कर्मके प्रभावसे इन्द्रका परम दुर्लभ सिंहासन प्राप्त किया था—तुझ मन्त्रज्ञ पुत्रके द्वारा गयामें पिण्डदान करनेसे—तीनों ही बलात् मुक्त हो गये। शत्रुदमन ! पिण्डदानके समय 'मैं अपने पिता, पितामह और प्रपितामहको तृप्त करनेके लिये यह जल देता हूँ'—ऐसा कहकर जो तुमने जल दिया है, उसीके प्रभावसे हमलोग यहाँ एक साथ एकत्र होकर तुम्हारे समक्ष वार्तालाप कर सके हैं। अब मैं इस गया-तीर्थके प्रभावसे पितृ-लोकमें जा रहा हूँ। इस तीर्थमें पिण्डदान करनेके माहात्म्यसे ही ये तुम्हारे पितामह और प्रपितामह, जो पापी होनेके कारण दुर्गतिको प्राप्त हो चुके थे एवं जिनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग विकृत हो चुके थे, वे भी अब उत्तम लोकोंको प्राप्त हो रहे हैं। यह इस गयातीर्थका ही प्रताप है कि यहाँ पिण्डदान करनेके प्रभावसे पुत्र अपने ब्रह्मघाती पिताका भी पुनः उद्धार कर सकता है। वत्स ! इसी कारण मैं इन दोनों—तुम्हारे पितामह और प्रपितामहको लेकर तुम्हें देखनेके लिये आ गया हूँ।

(सनत्कुमारजी कहते हैं--) महाभाग रैभ्य ! यही कारण है कि मैंने तुमको धन्य कहा है। गयातीर्थमें एक बार जाना और पिण्डदान करना ही दुर्लभ है। फिर तुम तो प्रतिदिन यहाँ इस उत्तम कार्यका सम्पादन करते हो। मुनिवर ! तुमने गदाधररूपमें विराजमान साक्षात् भगवान् नारायणका दर्शन कर लिया है। तुम्हारे इस पुण्यके विषयमें और अधिक क्या कहा जाय ? द्विजवर ! इस गयाक्षेत्रमें भगवान् गदाधर सदा साक्षात् विराजते हैं। इसी कारण सम्पूर्ण तीर्थोंमें यह विशेष प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ है।

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि ! ऐसा कहकर महायोगी सनत्कुमारजी वहीं अन्तर्धान हो गये। तब मुनिवर रैभ्यने भगवान् गदाधरकी स्तुति प्रारम्भ कर दी।

विप्रवर रैभ्य बोले—देवता जिनका स्तवन करते रहते हैं, जो क्षमाके धाम हैं, जो क्षुधाग्रस्त आर्तजनोंके दुःखोंको दूर करनेवाले हैं, जो विशाल नामक दैत्यकी सेनाओंका मर्दन करनेवाले हैं तथा जो स्मरण करनेसे समस्त अशुभोंका विनाश कर देते हैं, उन मङ्गलमय भगवान् गदाधरको मैं प्रणाम करता हूँ। जो पूर्वजोंके भी पूर्वज, पुराण पुरुष, स्वर्गलोकमें पूजित एवं मनुष्योंके एकमात्र परम आश्रय हैं, जिन्होंने वामन अवतार ग्रहण करके दैत्यराज बलिके चंगुलसे पृथ्वीका उद्धार किया है, उन महाबलशाली शुद्धस्वरूप भगवान् गदाधरको मैं एकान्तमें नमस्कार करता हूँ। जो परम शुद्ध स्वभाववाले एवं अनन्त वैभव-सम्पन्न हैं, लक्ष्मीने जिनका स्वयं वरण किया है, जो अत्यन्त निर्मल एवं विशिष्ट विचारशील हैं तथा पवित्र अन्तः-करणवाले भूपाल जिनका स्तवन करते हैं, ऐसे भगवान् गदाधरको जो प्रणाम करता है, वह जगत्‌में सुखसे रहनेका अधिकारी होता है। देवता और दानव जिनके चरणकमलोंकी अर्चना करते हैं, जो हार, केयूर, बाजूबंद एवं किरीट धारण किये हुए हैं तथा

समुद्रमें शयन करते हैं, उन चक्रधारी भगवान् गदाधरकी जो वन्दना करता है, वही जगत्में सुखपूर्वक रहनेका अधिकारी है। जो भगवान् अच्युत सत्ययुगमें श्वेत, त्रेतामें अरुण, द्वापरमें पीत-वर्णसे अनुरञ्जित श्याम तथा कलियुगमें भौंरेके समान कृष्णवर्णयुक्त विग्रह धारण करते हैं, उन भगवान् गदाधरको जो प्रणाम करता है, वह जगत्में सुखपूर्वक निवास करता है। जिनसे सृष्टिके बीजरूप चतुर्मुख ब्रह्माका प्राकट्य हुआ है तथा जो नारायण विष्णुरूप धारण करके जगत्का पालन और रुद्ररूपसे संहार करते हैं एवं इस प्रकार जो ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश—इन तीन मूर्तियोंमें विलसित होते हैं, उन भगवान् गदाधरकी जय हो। सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंका संयोग ही विश्वकी सृष्टिमें कारण बतलाया जाता है; किंतु इस प्रकार जो एक होकर भी इन तीन गुणोंके रूपमें अभिव्यक्त होते हैं, वे भगवान् गदाधर धर्म एवं मोक्षकी कामनासे अधीर हुए मुझको धैर्य प्रदान करनेकी कृपा करें। जिस दयामय प्रभुने दुःखरूपी जल-जन्तुओं एवं मृत्युरूप ग्राहके भयंकर आक्रमणोंसे संसार-सागरमें थपेड़े खाकर डूबते हुए मुझ दीन-हीन प्राणीका विशाल जलपोत बनकर उद्धार कर दिया, उन भगवान् गदाधरको मैं प्रणाम करता हूँ। जो स्वयं महाकाशमें घटाकाशकी व्याप्तिकी भाँति अपने द्वारा अपनेमें ही तीन मूर्तियोंमें अभिव्यक्त होते है तथा अपनी मायाशक्तिका आश्रय लेकर इस ब्रह्माण्डकी सृष्टि करते हैं एवं उसीमें कमलासन ब्रह्माके रूपमें प्रकटित होकर तेजस् आदि तत्त्वोंका प्रादुर्भाव करते हैं, उन जगदाधार भगवान् गदाधरको मैं प्रणाम करता हूँ। जो मत्स्य-कच्छप आदि अवतार ग्रहण करके देवताओंकी रक्षा करते हैं, जिनकी जगत्में 'वृषाकपि' के नामसे प्रसिद्धि है, वे यज्ञवराहरूपी भगवान् गदाधर मुझे सद्गति प्रदान करें।*

* गदाधरं विबुधजनैरभिष्टुतं धृतक्षमं क्षुधितजनार्तिनाशनम्।
शिवं विशालासुरसैन्यमर्दनं नमाम्यहं हृतसकलाशुभं स्मृतौ॥
पुराणपूर्वं पुरुषं पुरुष्टुतं पुरातनं विमलमलं नृणां गतिम्।
त्रिविक्रमं हृतधरणिं बलोर्जितं गदाधरं रहसि नमामि केशवम्॥
विशुद्धभावं विभवैरुपावृतं श्रिया वृतं विगतमलं विचक्षणम्।
क्षितीश्वरैरपगतकिल्बिषैः स्तुतं गदाधरं प्रणमति यः सुखं वसेत्॥
सुरासुरैरर्चितपादपङ्कजं केयूरहाराङ्गदमौलिधारिणम्।
अब्धौ शयानं च रथाङ्गपाणिनं गदाधरं प्रणमति यः सुखं वसेत्॥
सितं कृते त्रेतयुगेऽरुणं विभुं तथा तृतीये नीलसुवर्णमच्युतम्।
कलौ युगेऽलिप्रतिमं महेश्वरं गदाधरं प्रणमति यः सुखं वसेत्॥
बीजोद्भवो यः सृजते चतुर्मुखं तथैव नारायणरूपतो जगत्।
प्रपालयेद् रुद्रवपुस्तथान्तकृद्गदाधरो जयतु षडर्द्धमूर्तिमान्॥
सत्त्वं रजश्चैव तमो गुणास्त्रयस्त्वेतेषु विश्वस्य समुद्भवः किल।
स चैक एव त्रिविधो गदाधरो दधातु धैर्यं मम धर्ममोक्षयोः॥
संसारतोयार्णवदुःखतन्तुभिर्वियोगनक्रक्रमणैः सुभीषणैः।
मज्जन्तमुच्चैः सुतरां महाप्लवो गदाधरो मामुदधौ तु योऽतरत्॥
स्वयं त्रिमूर्तिः स्वमिवात्मनात्मनि स्वशक्तितश्चाण्डमिदं ससर्ज ह।
तस्मिञ्जलोत्थासनमाप तैजसं ससर्ज यस्तं प्रणतोऽस्मि भूधरम्॥
मत्स्यादिनामानि जगत्सु चाश्नुते सुरादिसंरक्षणतो वृषाकपिः।
मखस्वरूपेण स संततो विभुर्गदाधरो मे विदधातु सद्गतिम्॥ (अध्याय ७। ३१—४०)

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि ! मुनिवर रैभ्य महान् बुद्धिमान् थे। जब उन्होंने इस प्रकार भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी स्तुति की तो भगवान् गदाधर सहसा उनके सामने प्रकट हो गये। उनका श्रीविग्रह पीताम्बरसे शोभायमान था। वे गरुडपर स्थित थे तथा उनकी भुजाएँ शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्मसे अलंकृत थीं। वे भगवान् पुरुषोत्तम आकाशमें ही स्थित रहकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें बोले—'द्विजवर रैभ्य ! तुम्हारी भक्ति, स्तुति एवं तीर्थ-स्नानसे मैं संतुष्ट हो गया हूँ। अब तुम्हारी जो अभिलाषा हो, वह मुझसे कहो।'

रैभ्यने कहा—देवेश्वर ! अब मुझे उस लोकमें निवास प्रदान कीजिये, जहाँ सनक-सनन्दन आदि मुनिजन रहते हैं। भगवन् ! आपकी कृपासे मैं उसी लोकमें जाना चाहता हूँ।

श्रीभगवान् बोले—'विप्रश्रेष्ठ ! बहुत ठीक, ऐसा ही होगा।' ऐसा कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। फिर तो प्रभुके कृपाप्रसादसे उसी क्षण रैभ्यको दिव्य ज्ञान प्राप्त हो गया और वे परम सिद्ध सनकादि महर्षि जहाँ निवास करते हैं, उस लोकको चले गये।

भगवान् श्रीहरिका यह गदाधर-स्तोत्र रैभ्य मुनिके मुखसे उच्चरित हुआ है। जो मनुष्य गयातीर्थमें जाकर इसका पाठ करेगा, उसे पिण्डदानसे बढ़कर फलकी प्राप्ति होगी। (अध्याय ७)

भगवान्का मत्स्यावतार तथा उनकी देवताओंद्वारा स्तुति

पृथ्वीने पूछा—प्रभो ! सत्ययुगके आरम्भमें विश्वात्मा भगवान् नारायणने कौन-सी लीला की ? वह सब मैं भलीभाँति सुनना चाहती हूँ।

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि ! सृष्टिके पूर्व-कालमें एकमात्र नारायण ही थे। उनके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं था। एकाकी होनेसे उनका रमण—आनन्द-विलास नहीं हो रहा था। वे प्रभु समस्त कर्मोंके सम्पादन-में स्वतन्त्र हैं। जब उनको दूसरेकी इच्छा हुई, तो उनसे अभावसंज्ञक ज्ञानमय संकल्पकी उत्पत्ति हुई। क्षणभरमें ही उनका वह सृष्टिरचनाका संकल्प सूर्यके समान उद्भासित हो उठा। उसके फिर दो भाग हुए, जिनमें पहली ब्रह्मवादियोंद्वारा चिन्तनीय ब्रह्मविद्या थी, जो उमा नामसे प्रसिद्ध हुई। ये ही मनुष्योंमें सदा श्रद्धाके रूपमें निवास करती हैं। दूसरी ॐकारद्वारा वाच्य एकाक्षरी विद्या प्रकटित हुई। तदनन्तर उसीने इस भूलोककी रचना की। भूलोककी रचना करनेके पश्चात् उसने भुवर्लोक एवं स्वर्लोकका निर्माण किया। तत्पश्चात् क्रमशः महर्लोक तथा जनलोककी सृष्टि करके वह प्रणवात्मिका विद्या अपने द्वारा रचित इस सृष्टिमें अन्तर्हित हो गयी और धागेमें पिरोये हुए मणियोंके समान वह सबमें ओतप्रोत हो गयी। इस प्रकार प्रणवसे जगत्की रचना तो हो गयी, किंतु यह नितान्त शून्य ही रहा। भगवान्की यह जो शिवमूर्ति है, वे स्वयं श्रीहरि ही हैं। इन लोकोंको शून्य देखकर उन परम प्रभुने एक परमोत्तम श्रीविग्रहमें अभिव्यक्त होनेकी इच्छा की और अपने मनोधाममें क्षोभ उत्पन्न करके अपने अभिलषित आकारमें अभिव्यक्त हो गये। इस प्रकार ब्रह्माण्डका आकार व्यक्त हुआ। फिर वह ब्रह्माण्ड दो भागोंमें विभक्त हुआ; इसमें जो नीचेका भाग था, वह भूलोक बना, ऊपरका खण्ड भुवर्लोक हुआ, जो मध्यवर्ती लोकोंके अन्तरालमें सूर्यके समान प्रकाशमान हो गया। पूर्वकल्पके समान महा-सिन्धुमें कमलकोशका उसी भाँति प्रादुर्भाव हो गया और देवाधिदेव नारायणने प्रजापति ब्रह्माके रूपमें प्रकटित होकर अकारसे लेकर हकारपर्यन्त समस्त स्वर एवं व्यञ्जन वर्णोंकी सृष्टि कर दी।

इस प्रकार अमूर्त सृष्टिकी रचना हो जानेपर श्रीभगवान्‌ने चारों वेदोंका गान प्रारम्भ किया। इस प्रकार लोकोंकी सृष्टि करनेके पश्चात् अपरिमेय शक्तिशाली प्रभुके मनमें जगत्‌के धारण-पोषणकी चिन्ता हुई और चिन्तन करते ही उनके नेत्रोंसे महान् तेज निकला। उनके दक्षिण नेत्रसे निकला हुआ तेज अग्निके समान उष्ण और वाम नेत्रसे प्रादुर्भूत तेज हिमके समान शीतल था। भगवान् श्रीहरिने उनको सूर्य और चन्द्रमाके रूपमें प्रतिष्ठित कर दिया। फिर उन विराट् पुरुषसे जगत्‌का प्राणरूप वायु प्रकट हुआ। ये ही वायुदेवता आज भी हम सबके हृदयमें प्राणरूपसे व्याप्त हैं। तत्पश्चात् उसी वायुसे अग्निका प्रादुर्भाव हुआ। अग्निसे जलतत्त्व उत्पन्न हुआ। जो वह अग्नितत्त्व उत्पन्न हुआ, वही परब्रह्म परमात्माका तेज है और वही मूर्त सृष्टिका परम कारण बना। विराट् पुरुषने इसी तेजसम्पन्न अपनी भुजाओंसे क्षत्रिय जातिकी, जाँघोंसे वैश्य जातिकी और पैरोंसे शूद्रजातिकी रचना की। फिर उन परमेश्वरने यक्षों और राक्षसोंका सृजन किया। तदनन्तर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र प्रभृति मानवोंसे भूर्लोकको तथा आकाशमें विचरण करनेवाले प्राणियोंसे भुवर्लोकको भर दिया। अपने पुण्योंके फलस्वरूप स्वर्गका अर्जन करनेवाले भूत-प्राणियोंसे स्वर्लोकको एवं सनकादि ऋषि-मुनियोंसे महर्लोकको परिपूरित कर दिया।

विराट् परमात्माकी हिरण्यगर्भके रूपमें उपासना करनेवालोंसे उन्होंने जनलोकको भर दिया और तपोनिष्ठ देवताओंसे तपोलोकको पूर्ण कर दिया। सत्यलोकको उन देवताओंसे परिपूर्ण किया, जो मरणधर्मा नहीं थे।

इस प्रकार भूतभावन भगवान् श्रीहरिने सृष्टिकी रचना सम्पन्न कर दी। परमेश्वरके संकल्पसे इस जगत्‌की रचना होनेके कारण ही सृष्टिको कल्प कहा जाता है। फिर भगवान् नारायण रात्रिकल्पके आनेपर निद्रामग्न हो गये। उनके सो जानेपर ये तीनों लोक भी प्रलयको प्राप्त हो गये। जब रात्रि समाप्त हो गयी, तब कमलनयन भगवान् श्रीहरि जाग उठे और उन्होंने पुनः चारों वेदों तथा उनकी स्वरूपभूता मातृकाओंका चिन्तन किया, किंतु योगनिद्राजनित अज्ञानसे मोहित हुए देवदेवेश्वर श्रीहरिको लोकमर्यादाओंको स्थिर करनेके लिये वेद उपलब्ध नहीं हुए। उन्होंने देखा—उनके ही आत्मस्वरूप जलमें वेद डूबे हुए हैं। अब उन्हें वेदोंके उद्धारकी चिन्ता हुई; अतएव तत्काल मत्स्यके रूपमें अवतरित होकर सागरकी विशाल जलराशिको क्षुब्ध करते हुए उसमें प्रविष्ट हो गये।

मत्स्यमूर्ति श्रीहरि महासिन्धुके अगाध जलसमूहमें प्रवेश करते ही महान् पर्वताकार रूपमें प्रकाशित हो उठे। इस प्रकार उन देवश्रेष्ठके मत्स्यावतार ग्रहण करनेपर देवता उत्तम स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करने लगे—'मत्स्यरूप धारण करनेवाले भगवान् नारायण! वेदोंके अतिरिक्त अन्य शास्त्रोंके पारगामी पुरुषोंके लिये भी आप अगम्य हैं, यह सारा विश्व आपका ही अङ्ग है। आप अत्यन्त मधुर स्वरमें वेदोंका गान करते हैं, विद्या और अविद्या दोनों आपके रूप हैं, आपको हमारा बारंबार नमस्कार है। आपके अनेक रूप हैं, चन्द्र और सूर्य आपके सुन्दर नेत्र हैं। प्रलयकालीन समुद्र जब सम्पूर्ण विश्वको आप्लावित कर लेता है, उस समय भी आप स्थित रहते हैं। विष्णो! आपको प्रणाम है। हमलोग आपकी शरणमें आये हैं, आप इस मत्स्य-शरीरका त्याग कर हमारी रक्षा करनेकी कृपा करें। अनन्त रूप धारण करनेवाले प्रभो! सारा संसार आपसे ही व्याप्त है। आपके अतिरिक्त इस जगत्‌में कुछ है ही नहीं और न इस जगत्‌के अतिरिक्त आप अव्यक्तमूर्तिकी कोई दूसरी मूर्ति ही है। इसीलिये हमलोग आपकी शरणमें आये हैं। पुण्डरीकाक्ष! यह आकाश आप पुराणपुरुषका आत्मा है, चन्द्रमा आपके मन और अग्नि मुख हैं। देवाधिदेव

शम्भो! यह सारा जगत् आपसे ही प्रकाशित है। यद्यपि हमलोग आपकी भक्तिसे रहित हैं, तो भी आप हमें क्षमा करनेकी कृपा करें। देवेश्वर! आप सम्पूर्ण जगत्के आश्रय हैं, आप सनातन पुरुषके मधुरभाषी सुन्दर स्वरयुक्त दिव्य रूपसे इस पर्वताकार विग्रहका कोई मेल ही नहीं है। अच्युत! आपके सूर्यसे भी अधिक तीव्रतेजसे हमलोग संतप्त हो रहे हैं, अतएव आप अपने इस रूपका संवरण कर लीजिये। भगवन्! हमलोग आपकी शरणमें आये हैं; क्योंकि आपको इस रूपसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त करते देखकर हमारा मन भयभीत हो उठा है। आज आपको पूर्व रूपमें न पाकर आपसे हीन हुए हमलोगोंको ऐसा प्रतीत हो रहा है, जैसे हमारे शरीरोंमें आत्मा ही न रह गया हो।' देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर मत्स्यरूपी भगवान् नारायणने जलमें निमग्न हुए उपनिषदों और शास्त्रोंसहित वेदोंका उद्धार कर दिया। इसके पश्चात् उन्होंने अपने नारायण रूपमें स्थित होकर देवताओंको सान्त्वना प्रदान की। भगवान् नारायण जबतक सगुण-साकार रूपमें स्थित रहते हैं, तभीतक इस संसारकी सत्ता रहती है। उनके अपने निर्गुण-निराकार रूपमें स्थित हो जानेपर संसारका प्रलय हो जाता है और उनमें इच्छारूप विक्रिया उत्पन्न होनेपर जगत्की सृष्टि पुनः प्रारम्भ हो जाती है। (अध्याय ९)

राजा दुर्जयके चरित्र-वर्णनके प्रसङ्गमें मुनिवर गौरमुखके आश्रमकी शोभाका वर्णन

सत्ययुगकी बात है। सुप्रतीक नामसे प्रसिद्ध एक महान् पराक्रमी राजा थे। उनकी दो रानियाँ थीं। वे दोनों परम मनोरम रानियाँ किसी बातमें एक दूसरीसे कम न थीं। उनमें एकका नाम विद्युत्प्रभा और दूसरीका कान्तिमती था। दो रानियोंके होते हुए भी उन शक्तिशाली नरेशको किसी संतानकी प्राप्ति न हुई। तब राजा सुप्रतीक पर्वतोंमें श्रेष्ठ चित्रकूट पर्वतपर गये। वहाँ जाकर उन्होंने सर्वथा निष्पाप अत्रिनन्दन दुर्वासाकी विधिपूर्वक आराधना की। वर-प्राप्तिकी इच्छा रखनेवाले राजा सुप्रतीकके बहुत समय-तक यत्नपूर्वक सेवा करनेपर वे ऋषि प्रसन्न हो गये। राजाको वर देनेके लिये उद्यत होकर वे मुनिवर कुछ कह ही रहे थे, तबतक ऐरावत हाथीपर चढ़े हुए देवराज इन्द्र वहाँ पहुँच गये। वे चारों ओर देवसेनासे घिरे हुए थे। वे वहाँ आकर चुपचाप खड़े हो गये। महर्षि दुर्वासा देवराज इन्द्रके प्रति स्नेह रखते थे; किंतु इन्द्रको अपने प्रति प्रीतिका प्रदर्शन न करते देखकर वे क्रुद्ध हो उठे और उन अत्रिनन्दनने देवराज इन्द्रको अत्यन्त कठोर शाप दे दिया—'अरे मूर्ख देवराज! तुमने मेरा जो अपमान किया है, इसके फलस्वरूप तुम्हें अपने राज्यसे च्युत हो दूसरे लोकमें जाकर निवास करना होगा।' देवेन्द्रसे इस प्रकार कहकर उन क्रुद्ध मुनिने राजा सुप्रतीकसे कहा—'राजन्! तुम्हें एक अत्यन्त बलवान् पुत्र प्राप्त होगा। वह इन्द्रके समान रूपवान्, श्रीसम्पन्न, महाप्रतापी, विद्याके प्रभाव और तत्त्वको भलीभाँति जाननेवाला होगा। उसके कर्म क्रूर होंगे। वह सदैव शस्त्रोंसे सन्नद्ध रहेगा और वह परम शक्तिशाली बालक राजा दुर्जयके नामसे प्रसिद्ध होगा।'

इस प्रकार वर देकर मुनिवर दुर्वासा अन्यत्र चले गये। राजा सुप्रतीक भी अपने राज्यको वापस लौट आये। धर्मज्ञ राजाने अपनी रानी विद्युत्प्रभाके उदरमें गर्भाधान किया। रानीके समय आनेपर प्रसव हुआ। उस महाबली पुत्रकी दुर्जय नामसे प्रसिद्धि हुई। उसके जन्मके अवसरपर दुर्वासा मुनि पधारे और उन्होंने स्वयं उस बालकके जातकर्म आदि संस्कार किये। साथ ही उन महर्षिने अपने तपोबलसे उस बालकके स्वभावको

भी सौम्य बना दिया तथा उसको वेदशास्त्रोंका पारगामी विद्वान्, धर्मात्मा एवं परमपवित्र बना दिया ।

राजा सुप्रतीककी जो दूसरी सौभाग्यवती पत्नी थी, जिसका नाम कान्तिमती था, उसके भी सुद्युम्न नामक एक पुत्र हुआ । वह भी वेद और वेदाङ्गका पूर्ण विद्वान् हुआ । भामिनि ! महाराज सुप्रतीककी राजधानी वाराणसीमें थी । एक बार उनका पुत्र दुर्जय पासमें बैठा हुआ था । उस समय उसे परम योग्य देखकर तथा अपनी वृद्धावस्थापर दृष्टिपात करके राजा उसे ही राज्य सौंप देनेका विचार करने लगे । फिर भलीभाँति विचार करके उन धर्मात्मा नरेशने अपना राज्य राजकुमार दुर्जयको सौंप दिया और वे स्वयं चित्रकूट नामक पर्वतपर चले गये ।

इधर राजा दुर्जय भी राज्यके प्रबन्धमें लग गया । यद्यपि उसका राज्य विशाल था; फिर भी वह हाथी, घोड़े एवं रथ आदिसे युक्त चतुरङ्गिणी सेना सजाकर राज्य बढ़ानेकी चिन्तामें पड़ गया । राजा दुर्जय परम मेधावी था । उसने सम्यक् प्रकारसे विचार करके हाथी, घोड़े एवं रथपर बैठकर युद्ध करनेवाले वीरों तथा पैदल सैनिकोंसे अपनी सेना तैयार की और सिद्ध पुरुषों एवं महात्माजनोंद्वारा सेवित उत्तर दिशाके लिये प्रस्थान कर दिया । राजा दुर्जयने क्रमशः इसी प्रकार सम्पूर्ण भारतपर विजय प्राप्त करके किम्पुरुष नामक वर्षको भी जीत लिया । तदनन्तर उसने परवर्ती हरिवर्षमें भी अपनी विजय-पताका फहरा दी । फिर रम्यक, रोमावृत, कुरु, भद्राश्व और इलावृत नामसे प्रसिद्ध वर्षोंपर भी उसका शासन स्थापित हो गया । यह सारा स्थान सुमेरु पर्वतका मध्यवर्ती भाग है ।

इस प्रकार जब राजा दुर्जयने सम्पूर्ण जम्बूद्वीपपर अपना अधिकार जमा लिया, तब वह देवताओंके सहित इन्द्रको भी जीतनेके लिये आगे बढ़ा । सुमेरुपर्वतपर जाकर उसने वहाँ अनेक देवता, गन्धर्व, दानव, गुह्यक, किंनर और दैत्योंको भी परास्त किया । तब-तक ब्रह्मपुत्र नारदजीने दुर्जयकी विजयके विषयमें देवराज इन्द्रको सूचना दे दी । देवराज उसी क्षण लोकपालोंको साथ लेकर उसका वध करनेके लिये चल पड़े । किंतु जल्दी ही राजा दुर्जयके शस्त्रोंके सामने उन्होंने घुटने टेक दिये । तदनन्तर देवराज इन्द्र सुमेरु पर्वतको छोड़कर मर्त्यलोकमें आ बसे और पूर्वदिशामें वे लोकपालोंके साथ रहने लगे । राजा दुर्जयके चरित्रका विस्तारपूर्वक वर्णन आगे किया जायगा ।

जब देवताओंने अपनी हार मान ली तो राजा दुर्जय वापस लौटा और लौटते समय गन्धमादन पर्वतकी तलहटीमें उसने अपनी सेनाओंकी छावनी डाली । जब उसने छावनीकी सारी व्यवस्था कर ली, तब उसके पास दो तपस्वी आ पहुँचे । आते ही उन तपस्वियोंने दुर्जयसे कहा—'राजन् ! तुमने सम्पूर्ण लोकपालोंका अधिकार छीन लिया है । अब उनके बिना लोकयात्रा चलनी सम्भव नहीं दीखती है, अतएव तुम ऐसी व्यवस्था करो, जिससे इस संसारको उत्तम सुखकी प्राप्ति हो ।'

इस प्रकार तपस्वियोंके कहनेपर धर्मज्ञ राजा दुर्जयने उनसे कहा—'आप दोनों कौन हैं ?' उन शत्रुदमन तपस्वियोंने कहा—'हम दोनों असुर हैं । हमारे नाम विद्युत और सुविद्युत हैं । महाराज दुर्जय ! हम चाहते हैं कि अब तुम्हारे द्वारा सत्पुरुषोंके समाजमें सुसंस्कृत धर्म बना रहे; अतएव तुम हम दोनों-को लोकपालोंके स्थानपर नियुक्त कर दो । हम उनके सभी कार्य सम्पादन कर सकते हैं ।' उनके ऐसा कहनेपर राजा दुर्जयने स्वर्गमें लोकपालोंके स्थानपर विद्युत और सुविद्युतकी तुरंत नियुक्ति कर दी । वे दोनों तपस्वी वहाँसे तत्काल अन्तर्धान हो गये ।

एक बार राजा दुर्जय मन्दराचल पर्वतपर गया। वहाँ उसने कुबेरके अत्यन्त मनोरम वनको देखा। वह वन इतना सुन्दर था, मानो दूसरा नन्दनवन ही हो। राजा दुर्जय प्रसन्नतापूर्वक उस रमणीय विपिनमें घूमने लगा। इतनेमें एक चम्पकवृक्षके नीचे उसे दो सुन्दरी कन्याएँ दीख पड़ीं। देखनेमें उनका रूप अत्यन्त सुन्दर एवं अद्भुत था। उन कन्याओंको देखकर राजा दुर्जयका मन बड़े आश्चर्यमें पड़ गया। वह सोचने लगा—'ये सुन्दर नेत्रोंवाली कन्याएँ कौन हैं ?' यों विचार करते हुए राजा दुर्जयको एक क्षण भी नहीं बीता होगा कि उसने देखा कि उस वनमें दो तपस्वी भी विराजमान हैं। उन्हें देखकर दुर्जयके मनमें अपार हर्ष उमड़ आया। उसने तुरंत हाथीसे उतरकर उन तपस्वियोंको प्रणाम किया। तपस्वियोंने राजा दुर्जयको बैठनेके लिये कुशाओंद्वारा निर्मित एक सुन्दर आसन दिया। राजा दुर्जय उसपर बैठ गया। उसके बैठ जानेपर तपस्वियोंने उससे पूछा—'तुम कौन हो, तुम्हारा कहाँसे आगमन हुआ है, किसके पुत्र हो और यहाँ किस लिये आये हो ?' इसपर राजा दुर्जयने हँसकर उन तपस्वियोंको अपना परिचय देते हुए कहा—'महानुभावो ! सुप्रतीक नामसे प्रसिद्ध एक राजा हैं। मैं उनका पुत्र दुर्जय हूँ और भूमण्डलके सभी राजाओंको जीतनेकी इच्छासे यहाँ आया हुआ हूँ। कभी-कभी आप कृपा कर मुझे स्मरण अवश्य करें। तपोधनो ! आप दोनों कौन हैं ? मुझपर कृपा कर यह बतला दें।'

दोनों तपस्वी बोले—"राजन् ! हमलोग हेतृ और प्रहेतृ नामके स्वायम्भुव मनुके पुत्र हैं। हम देवताओंको जीतकर सर्वथा नष्ट कर देनेके विचारसे सुमेरु पर्वतपर गये थे। उस समय हमारे पास बड़ी विशाल सेना थी, जिसमें हाथी, घोड़े एवं रथ भरे हुए थे। देवता भी सैकड़ों एवं हजारोंकी संख्यामें थे। उनके पास महान् सेना भी थी; किंतु असुरोंके प्रहारसे उनके सभी सैनिक अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठे। यह स्थिति देखकर देवता—क्षीरसागरमें, जहाँ भगवान् श्रीहरि शयन करते हैं—पहुँचे और उनकी शरणमें गये। वहाँ देवगण भगवान्‌को प्रणाम कर अपनी आप-बीती बातें यों सुनाने लगे—'भगवन् ! आप हम सभी देवताओंके स्वामी हैं। पराक्रमी असुरोंने हमारी सारी सेनाको परास्त कर दिया है। भयके कारण हमारे नेत्र कातर हो रहे हैं। अतः आप हमारी रक्षा करनेकी कृपा करें। केशव ! पहले भी आपने देवासुर संग्राममें क्रूरकर्मा कालनेमि एवं सहस्रभुजसे हमारी रक्षा की है। देवेश्वर ! इस समय भी हमारे सामने वैसी ही परिस्थिति आ गयी है। हेतृ और प्रहेतृ नामके दो दानव देवताओंके लिये कण्टक बने हुए हैं। इनके सैनिकों तथा शस्त्रास्त्रोंकी संख्या असीम है। देवेश्वर ! आपका सम्पूर्ण जगत्पर शासन है, अतः उन दोनों असुरोंको मारकर हम सभीकी रक्षा करनेकी कृपा करें।'

"इस प्रकार जब देवताओंने भगवान् नारायणसे प्रार्थना की, तब वे जगत्प्रभु श्रीहरि बोले—'उन असुरोंका संहार करनेके लिये मैं अवश्य आऊँगा।' भगवान् विष्णुके यह कहनेपर देवता मन-ही-मन भगवान् जनार्दनका स्मरण करते हुए सुमेरु पर्वतपर गये। वहाँ उनके चिन्तन करते ही सुदर्शनचक्र एवं गदा धारण किये हुए भगवान् नारायण हमलोगोंकी सेनाका भेदन करते हुए उसमें प्रविष्ट हो गये। उन सर्वलोकेश्वरने अपने योगैश्वर्यका आश्रय लेकर उसी क्षण अपने एकसे—दस, सौ, फिर हजार, लाख तथा करोड़ों रूप बना लिये। उन देवेश्वरके

आते ही सेनामें जो भी महान् पराक्रमी वीर हमारे बलके सहारे लड़ रहे थे, वे अचेत होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। राजन्! अधिक क्या, उसी समय उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। इस प्रकार विश्वरूप धारण करनेवाले भगवान् नारायणने अपनी योगमायासे हमारी सम्पूर्ण चतुरङ्गिणी सेनाका—जो हाथी, घोड़े, रथ एवं पैदल वीरों एवं ध्वजाओंसे भरी हुई थी, संहार कर डाला। बस, केवल हम दो दानवोंको बचे देखकर वे सुदर्शन-चक्रधारी श्रीहरि अन्तर्धान हो गये। शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले भगवान् श्रीहरिका ऐसा अद्भुत कर्म देखकर हम दोनोंने भी उन प्रभुकी आराधना करनेके लिये उनकी शरण ग्रहण कर ली। राजन्! राजा सुप्रतीक हमारे मित्र थे और तुम उनके पुत्र हो। ये दोनों कन्याएँ हमारी पुत्री हैं। मुझ हेतृकी कन्याका नाम सुकेशी और इस प्रहेतृकी कन्याका नाम मिश्रकेशी है। इन्हें तुम अपनी अर्द्धाङ्गिनीके रूपमें स्वीकार करो।''

हेतृके इस प्रकार कहनेपर राजा दुर्जयने उन दोनों मङ्गलमयी कन्याओंके साथ विधिपूर्वक विवाह कर लिया। सहसा ऐसी दिव्य कन्याओंको प्राप्तकर दुर्जयके हर्षकी सीमा न रही। वह सैनिकोंके साथ अपनी राजधानीमें लौट आया। बहुत समयके बाद राजा दुर्जयके दो पुत्र हुए। सुकेशीसे जो बालक उत्पन्न हुआ, उसका नाम प्रभव पड़ा और मिश्रकेशीके पुत्रका नाम सुदर्शन रखा गया। राजा दुर्जय महान् वैभवशाली तो था ही, उसे परमश्रेष्ठ दो पुत्रोंकी प्राप्ति भी हो गयी। कुछ समयके पश्चात् वह राजा शिकार खेलनेके लिये जंगलमें गया। वहाँ जाकर उसने भयंकर जंगली जानवरोंको पकड़कर बाँधना शुरू कर दिया। इस प्रकार वनमें विचरण करते हुए राजा दुर्जयको जंगलमें कुटी बनाकर रहनेवाले एक पुण्यात्मा मुनि दिखायी पड़े। वे महाभाग मुनि तपस्या कर रहे थे। उनका नाम गौरमुख था। वे ऋषियोंके परिवारोंकी रक्षा तथा पापियोंके उद्धार-कार्यमें लगे रहते थे। उनके आश्रममें विशिष्ट गुणोंसे युक्त एक पवित्र सरोवर था। वहाँ एक ऐसा उत्तम वृक्ष भी था, जिसकी सुगन्धसे सारे वनका वायुमण्डल सुगन्धित हो उठता था। वे मुनि अपने आश्रममें स्थित होकर ऐसे जान पड़ते थे, मानो कोई मेघ उत्तम विमानपर आरूढ़ होकर आकाशसे पृथ्वी-पर उतर आया हो। मुनिवर गौरमुखके देदीप्यमान मुखसे छिटकता हुआ प्रकाश आकाशको जगमगा देता था। वे पवित्र वस्त्रोंसे सुशोभित थे। उनके शिष्योंकी मण्डली उच्चस्वरसे सामवेदका गान कर रही थी। उनके आश्रममें मुनि-कन्याएँ तथा मुनिपत्नियाँ भी अत्यन्त सात्त्विक वेष धारण किये हुए थीं। सुन्दर पुष्पोंसे लदे हुए अगणित वृक्ष उस आश्रमकी शोभा बढ़ा रहे थे। इस प्रकार उस आश्रममें मुनिवर गौरमुखकी यज्ञशाला अद्भुत शोभाको प्राप्त हो रही थी। (अध्याय १०)

राजा दुर्जयका चरित्र तथा नैमिषारण्यकी प्रसिद्धिका प्रसङ्ग

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि! उस समय मुनिवर गौरमुखके परम उत्तम आश्रमको देखकर राजा दुर्जयने सोचा—'इस परम मनोहर आश्रममें चलूँ और इसमें रहनेवाले अनुपम ऋषियोंके दर्शन करूँ।' यह विचार करके राजा दुर्जय आश्रमके भीतर चले गये। मुनिवर गौरमुख धर्मके साक्षात् स्वरूप थे। आश्रममें राजा दुर्जयके आनेपर मुनिका हृदय आनन्दसे भर उठा। उन्होंने राजाका भलीभाँति सम्मान किया। स्वागत-सत्कारके पश्चात् परस्पर कुछ वार्तालाप प्रारम्भ हुआ। मुनिवरने कहा—'महाराज!

में यथाशक्ति अनुयायियोंसहित आपको भोजन-पान कराऊँगा । आप हाथी, घोड़े आदि वाहनोंको मुक्त कर दें और यहाँ पधारें ।'

ऐसा कहकर मुनिवर गौरमुख मौन हो गये । मुनिके प्रति श्रद्धा होनेसे राजा दुर्जयके मनमें भी आतिथ्य स्वीकार करनेकी बात जँच गयी । अतः अनुचरोंके साथ वे वहीं रह गये । उनके पास पाँच अक्षौहिणी सेना थी । राजा दुर्जय सोचने लगे—'ये तपस्वी ऋषि मुझे यहाँ क्या भोजन देंगे ?' इधर राजाको भोजनके लिये निमन्त्रित करनेके पश्चात् विप्रवर गौरमुख भी बड़ी चिन्तामें पड़ गये । वे सोचने लगे—'मैं अब राजाको क्या खिलाऊँ ?' महर्षि गौरमुख निरन्तर भगवद्भावमें तल्लीन रहते थे । अतएव उनके मनमें चिन्ता उत्पन्न होनेपर उन्हें देवेश्वर जगत्प्रभु भगवान् नारायणकी याद आयी । मन-ही-मन उन्होंने भगवान् नारायणका स्मरण किया और गङ्गाके तटपर जाकर उन जगदीश्वर प्रभुकी स्तुति करने लगे ।

पृथ्वीने पूछा—भगवन् ! विप्रवर गौरमुखने भगवान् विष्णुकी किस प्रकार स्तुति की, इसको सुननेके लिये मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है ।

भगवान् वराह बोले—पृथ्वि ! गौरमुखने भगवान्‌की इस प्रकार प्रार्थना की—जो पीताम्बर धारण करते हैं, आदिरूप हैं तथा जलके रूपमें जो अभिव्यक्त होते हैं, उन सनातन भगवान् विष्णुको मेरा बारंबार नमस्कार है । जो घट-घट-वासी हैं, जलमें शयन करते हैं, पृथ्वी, तेज, वायु एवं आकाश आदि महाभूत जिनके स्वरूप हैं, उन भगवान् नारायणको मेरा बारंबार नमस्कार है । भगवन् ! आप सम्पूर्ण प्राणियोंके आराध्य और सबके हृदयमें स्थित हैं, अन्तर्यामी परमात्माके रूपमें विराजमान हैं । आप ही ॐकार तथा वषट्कार हैं । प्रभो ! आपकी सत्ता सर्वत्र विद्यमान है । आप समस्त देवताओंके आदिकारण हैं पर आपका आदि कोई नहीं है । भगवन् ! भूः, भुवः, स्वर्, जन, मह, तप और सत्य—ये सभी लोक आपमें स्थित हैं । अतः चराचर जगत् आपमें ही आश्रय पाता है । आपसे ही सम्पूर्ण प्राणि-समुदाय, चारों वेदों तथा सभी शास्त्रोंकी उत्पत्ति हुई है । यज्ञ भी आपमें ही प्रतिष्ठित हैं । जनार्दन ! पेड़-पौधे, वनौषधियाँ, पशु-पक्षी और सर्प—इन सबकी उत्पत्ति आपसे ही हुई है । देवेश्वर ! यह दुर्जय नामका राजा मेरे यहाँ अतिथिरूपसे प्राप्त हुआ है । मैं इसका आतिथ्य-सत्कार करना चाहता हूँ । भगवन् ! आप देवताओंके भी आराध्य और जगत्‌के स्वामी हैं, मैं नितान्त निर्धन हूँ । फिर भी आपसे मेरी भक्ति और विनयपूर्ण प्रार्थना है कि आप मेरे यहाँ अन्न आदि भोज्य पदार्थोंका संचय कर दें । मैं अपने हाथसे जिस-जिस वस्तुका स्पर्श करूँ और आँखसे जिस-जिस पदार्थको देख लूँ, वह चाहे काठ अथवा तृण ही क्यों न हो, वह तत्काल चार प्रकारके सुपक्व अन्नके रूपमें परिणत हो जाय । परमेश्वर ! आपको मेरा नमस्कार है । भगवन् ! इसके अतिरिक्त यदि मैं किसी दूसरे पदार्थका भी मनमें चिन्तन करूँ तो वह सब-का-सब मेरे लिये सद्यः प्रस्तुत हो जाय ।*

* नमोऽस्तु विष्णवे नित्यं नमस्ते पीतवाससे । नमस्ते चाद्यरूपाय नमस्ते जलरूपिणे ॥
नमस्ते सर्वसंस्थाय नमस्ते जलशायिने । नमस्ते क्षितिरूपाय नमस्ते तैजसात्मने ॥
नमस्ते वायुरूपाय नमस्ते व्योमरूपिणे । त्वं देवः सर्वभूतानां प्रभुस्त्वमसि हृच्छयः ॥
त्वमोंकारो वषट्कारः सर्वत्रैव च संस्थितः । त्वमादिः सर्वदेवानां तव चादिर्न विद्यते ॥
त्वं भूस्त्वं च भुवः स्वस्त्वं जनस्त्वं च महः स्मृतः । त्वं तपस्त्वं च सत्यं च त्वयि देव चराचरम् ॥
त्वत्तो भूतमिदं सर्वं विश्वं त्वत्तो ऋगादयः । त्वत्तः शास्त्राणि जातानि त्वत्तो यज्ञाः प्रतिष्ठिताः ॥

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि ! इस प्रकार जब मुनिवर गौरमुखने जगत्प्रभु भगवान् श्रीहरिकी स्तुति की तो वे अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उन महाभाग केशवने अपना श्रेष्ठरूप गौरमुखको प्रत्यक्ष दिखलाया और कहा—'विप्रवर ! जो चाहो, वर माँग लो ।' यह सुनकर मुनिने ज्यों ही अपने नेत्र खोले, त्यों ही उनको भगवान् श्रीहरिके परम आश्चर्यमय रूपका दर्शन हुआ । उन्होंने देखा भगवान् जनार्दन अपने हाथोंमें गदा और शङ्ख लिये हुए हैं और उनका श्रीविग्रह पीताम्बरसे सुशोभित है। वे गरुडपर बैठे हुए हैं और तेजस्वी तो इतने हैं कि बारह सूर्योंका प्रकाश भी उनके सामने कुछ भी नहीं है। अधिक क्या, यदि आकाशमें एक हजार सूर्य एक साथ उदित हो जायँ तो कदाचित् उनका वह प्रकाश उन विश्वरूप परमात्माके प्रकाशके सदृश हो जाय ! अनेक रूपोंमें विभक्त सम्पूर्ण जगत् उन श्रीहरिके श्रीविग्रहमें एकाकार रूपमें स्थित था । देवि ! भगवान् श्रीहरिके ऐसे अद्भुत रूपको देखते ही मुनिवर गौरमुखके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे । मुनिने उनको सिर झुकाकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहने लगे—'भगवन् ! अब मुझे आपसे किसी प्रकारके वरकी इच्छा शेष नहीं रह गयी है । मैं केवल यही चाहता हूँ कि इस समय राजा दुर्जयको जिस-किसी भी भाँति मेरे आश्रमपर अपने सैनिकों एवं वाहनोंके साथ भोजन प्राप्त हो जाय । कल तो वह अपने घर चला ही जायगा ।'

इस प्रकार मुनिवर गौरमुखके प्रार्थना करनेपर देवेश्वर श्रीहरि द्रवित हो गये और चिन्तन करने-मात्रसे सिद्धि-प्रदान करनेवाला एक महान् कान्तिमान् 'चिन्तामणि'रत्न उन्हें देकर वे अन्तर्धान हो गये । इधर गौरमुख भी अपने अनेक ऋषि-महर्षियोंसे सेवित पवित्र आश्रममें पधारे । वहाँ पहुँचकर मुनिने उस 'चिन्तामणि'के सम्मुख विशाल प्रासाद एवं हिमालयके शिखर तथा महान् मेघके समान ऊँचे एवं चन्द्र-किरणोंके सदृश चमकसे युक्त सैकड़ों तलोंके महलका चिन्तन किया । फिर तो एककी कौन कहे, हजारों एवं करोड़ोंकी संख्यामें वैसे विशाल भवन तैयार हो गये । कारण, गौरमुखको भगवान् श्रीहरिसे वर मिल चुका था । महलोंके आस-पास चहारदीवारियाँ बन गयीं । उनके बगलमें सटे ही उपवन उन महलोंकी शोभा बढ़ाने लगे । उन उद्यानोंमें कोकिलों तथा अनेक प्रकारके पक्षी भी आ बसे । चम्पा, अशोक, जायफल और नागकेसर आदि अनेक प्रकारके बहुत-से वृक्ष उन उद्यानोंमें सब ओर दृष्टिगत होने लगे । हाथियोंके लिये हथिसार तथा घोड़ोंके लिये घुड़सारका निर्माण हो गया । इन सबका संचय हो जानेपर गौरमुखने सब प्रकारके भोज्य पदार्थोंका चिन्तन किया । फिर उस मणिने भक्ष्य, भोज्य, लेह्य एवं चोष्य प्रभृति अनेक प्रकारके अन्न तथा परोसनेके लिये बहुत-से स्वर्ण-पात्र भी प्रस्तुत कर दिये । ऐसी सूचना मुनिवर गौरमुखको मिल गयी । तब उन्होंने परम तेजस्वी राजा दुर्जयसे कहा—'महाराज ! अब आप अपने सैनिकोंके साथ महलोंमें पधारें ।' मुनिकी आज्ञा पाकर राजा दुर्जयने उस परम विशाल गृहमें प्रवेश किया, जो

त्वत्तो वृक्षा वीरुधश्च त्वत्तः सर्वा वनौषधिः । पशवः पक्षिणः सर्पास्त्वत्त एव जनार्दन ॥
ममापि देवदेवेश राजा दुर्जयसंज्ञितः । आगतोऽभ्यागतस्तस्य चातिथ्यं कर्तुमुत्सहे ॥
तस्य मे निर्धनस्याद्य देवदेव जगत्पते । भक्तिनम्रस्य देवेश कुरुष्वान्नादिसंचयम् ॥
यं यं स्पृशामि हस्तेन यं च पश्यामि चक्षुषा । काष्ठं वा तृणकन्दं वा तत्तदन्नं चतुर्विधम् ॥
तथा त्वन्यतमं वापि यद्ध्यातं मनसा मया । तत्सर्वं सिद्ध्यतां मह्यं नमस्ते परमेश्वर ॥
(वराहपु० ११ । ११—२१)

पर्वतके समान ऊँचा जान पड़ता था। राजाके भीतर चले जानेपर अन्य सेवकगण भी यथाशीघ्र अपने-अपने गृहोंमें प्रविष्ट हो गये।

तदनन्तर जब सब-के-सब महलमें चले गये, तब फिर मुनिवर गौरमुखने उस दिव्य चिन्तामणिको हाथमें लेकर राजा दुर्जयसे कहा—'राजन्! यदि अब आप स्नान-भोजन करना चाहते हों तो मैं दास-दासियोंको आपकी सेवामें भेज दूँ।' इस प्रकार कहकर द्विजवर गौरमुखने राजाके देखते-देखते ही भगवान् विष्णुसे प्राप्त 'चिन्तामणि'को एकान्त स्थानमें स्थापित किया। शुद्ध एवं प्रभापूर्ण उस चिन्तामणिके वहाँ रखते-न-रखते हजारों दिव्य रूपवाली स्त्रियाँ प्रकट हो गयीं। उन स्त्रियोंके सभी अङ्ग बड़े सुन्दर, सुकुमार तथा अनुलेपनोंसे अलङ्कृत थे। उनके कपोल, केश और आँखें बड़ी सुन्दर थीं। वे सोनेके पात्रोंको लेकर चल पड़ीं। इसी प्रकार कार्य करनेमें कुशल अनेकों पुरुष भी एक साथ ही राजा दुर्जयकी सेवाके लिये अग्रसर हुए। अब तुरही आदि अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे। जिस समय राजा दुर्जय स्नान करने लगे तो कुछ स्त्रियाँ इन्द्रके स्नानकाल समान ही उनके सामने भी नाचने और गाने लगीं। इस प्रकार दिव्य उपचारोंके साथ महाभाग दुर्जयका स्नानकार्य सम्पन्न हुआ।

अब राजा दुर्जय बड़े आश्चर्यमें पड़ गया। वह सोचने लगा—'अहो! यह मुनिकी तपस्याका प्रभाव है अथवा इस चिन्तामणिका?' फिर उसने स्नान किया, उत्तम वस्त्र पहने और भाँति-भाँतिके अन्नोंसे बने भोजनको ग्रहण किया। उस समय मुनिवर गौरमुखने जिस प्रकार राजा दुर्जयकी सेवा एवं सत्कार किया, वैसे ही वे राजाके सेवकोंकी सेवामें भी संलग्न रहे। राजा अपने सेवकों, सैनिकों और वाहनोंके साथ भोजनपर बैठा ही था कि इतनेमें भगवान् भास्कर अस्ताचलको पधारे। आकाश लाल हो गया। अब शरद् ऋतुके स्वच्छ चन्द्रमासे मण्डित रात्रि आयी। ऐसा जान पड़ता था, मानो सभी श्रेष्ठ गुणोंसे सम्पन्न रोहिणीनाथ उस रात्रिसे अनुराग कर रहे हों। उनके साथ ही हरित किरणोंसे युक्त शुक्र और बृहस्पति भी उदित हो गये। पर चन्द्रमाके साथ उनकी शोभा अधिक नहीं हो रही थी। क्योंकि प्राणियोंकी ऐसी धारणा है कि दूसरेके पक्षमें गया हुआ कोई भी व्यक्ति अपने भिन्न स्वभावके कारण शोभा नहीं पाता। चन्द्रमाकी चमकती हुई किरणें सबको प्रसन्न करनेमें पूर्ण समर्थ हैं; किंतु उनसे भी सभी प्रेम नहीं करते।

अबतक उन नरेशके सभी सेवक एवं वे स्वयं भी भोजन-वस्त्र और आभूषणोंसे सत्कृत हो चुके थे। अब उनके सोनेके लिये बहुत-से रत्नजटित पलंग भी भिन्न-भिन्न कक्षोंमें उपस्थित हो गये। उनपर सुन्दर गद्दे और चादरें भी बिछी थीं। अपने हाव-भावसे प्रसन्न करनेवाली मनोहारिणी दिव्य स्त्रियाँ भी वहाँ सपर्याके लिये तत्पर थीं। राजा दुर्जय उस महलमें गया। साथ ही अपने भृत्योंको भी जानेकी आज्ञा दी। जब सभी महलोंमें चले गये, तब वह प्रतापी राजा भी स्त्रियोंसे घिरा सुख-पूर्वक शयन करनेवाले इन्द्रकी तरह सो गया।

इस प्रकार महात्मा गौरमुखके स्वागत-सत्कारसे प्रभावित, परम प्रसन्न राजा तथा उनके सभी सेवक सो गये। रात बीत जानेपर राजा दुर्जयने जगकर जब नेत्र खोले तो वे सुन्दर स्त्रियाँ, सभी बहुमूल्य महल तथा उत्तम-उत्तम पलंग सब-के-सब लुप्त हो गये थे। यह स्थिति देखकर दुर्जयको बड़ा आश्चर्य हुआ। मनमें चिन्ताके बादल उमड़ आये और दुःखकी लहरें उठने लगीं। यह मणि कैसे प्राप्त हो,

इस प्रकारकी चिन्ताकी लहरियाँ उसके मनमें बार-बार उठने लगीं। अन्तमें उसने निश्चय किया कि इस गौरमुख ब्राह्मणकी यह मणि मैं हठपूर्वक छीन लूँ। फिर वहाँसे चलनेके लिये सबको आज्ञा दे दी। जब मुनिके आश्रमसे निकलकर वह थोड़ी दूर गया और उसके वाहन तथा सैनिक सभी बाहर चले आये, तब दुर्जयने विरोचन नामके अपने मन्त्रीको मुनिके पास भेजकर कहलवाया कि गौरमुखके पास जो मणि है, उसे वे मुझे दे दें। मन्त्रीने मुनिसे कहा—'रत्नोंके रखनेका उचित पात्र राजा ही होता है, इसलिये यह मणि आप राजा दुर्जयको दे दें।' मन्त्रीके ऐसा कहनेपर गौरमुखने क्रोधमें आकर उससे कहा—'मन्त्री! तुम उस दुराचारी राजा दुर्जयसे स्वयं मेरी बात कह दो। साथ ही मेरा यह भी संदेश कहना—'अरे दुष्ट! तू अभी यहाँसे भाग जा, क्योंकि यह स्थान दुर्जय-जैसे दुष्टोंके रहने योग्य नहीं है।'

इस प्रकार द्विजवर गौरमुखके कहनेपर दुर्जयका मन्त्री विरोचन, जो दूतका काम कर रहा था, राजाके पास गया और ब्राह्मणकी कही हुई सारी बातें उसे अक्षरशः सुना दीं। गौरमुखके वचन सुनते ही दुर्जयकी क्रोधाग्नि भभक उठी। उसने उसी क्षण नील नामक मन्त्रीसे कहा—'तुम अभी जाओ और चाहे जैसे भी हो उस ब्राह्मणसे मणि छीनकर शीघ्र यहाँ आ जाओ।'

इसपर नील बहुत-से सैनिकोंको साथ लेकर गौरमुखके आश्रमकी ओर चल पड़ा। फिर वह रथसे नीचे उतरकर जमीनपर आया। तदनन्तर अग्निशालामें पहुँचकर उसने मणिको रखे हुए देखा। परम दारुण क्रूर बुद्धि नीलके पृथ्वीपर उतरते ही उस मणिसे भी अस्त्र-शस्त्र लिये हुए अपरिमित शक्तिशाली असंख्य शूर-वीर निकल पड़े, जो रथ, ध्वजा और घोड़ोंसे सुसज्जित थे तथा ढाल, तलवार, धनुष और तरकस लिये हुए थे।

(भगवान् वराह कहते हैं—) परम भाग्यवती पृथ्वि! उनमें पंद्रह तो प्रमुख वीर सेनापति थे, जिनके नाम इस प्रकार हैं—सुप्रभ, दीप्ततेजा, सुरश्मि, शुभदर्शन, सुकान्ति, सुन्दर, सुन्द, प्रद्युम्न, सुमन, शुभ, सुशील, सुखद, शम्भु, सुदान्त और सोम। इन वीर पुरुषोंने विरोचनको बहुत-सी सेनाके साथ डटा देखा। तब ये सभी शूर-वीर अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर बड़ी सावधानीसे युद्ध करने लगे। उनके धनुष सुवर्णके समान देदीप्यमान थे। उनके पङ्खधारी बाण शुद्ध सोनेसे बने हुए थे। अब वे परम प्रसिद्ध तथा अत्यन्त भयंकर तलवारों एवं त्रिशूलोंसे प्रहार करने लगे। उस युद्धमें विरोचनके रथ, हाथी, घोड़े और पैदल लड़नेवाले सैनिकोंके आगे मणिसे प्रकट हुए वीरोंके रथ, हाथी, घोड़े एवं पदाति सैनिक डट गये और उनमें भयंकर द्वन्द्वयुद्ध छिड़ गया। छल-बल आदि अनेक प्रकारके युद्धोंके बावजूद विरोचनके सैनिक भयसे कम्पित हो उठे और वे भाग चले। घोर रक्तप्रवाहसे मार्ग बड़े भयंकर हो गये। दुर्जयके मन्त्री विरोचनकी तो जीवनलीला ही समाप्त हो गयी। उसके बहुत-से अनुयायी भी सैनिकोंसहित यमराजके लोकको प्रस्थान कर गये।

मन्त्री विरोचनके मर जानेपर अब स्वयं राजा दुर्जय चतुरङ्गिणी सेना लेकर युद्धक्षेत्रमें आया और मणिसे प्रकट हुए शूर-वीरोंके साथ उसका युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस युद्धमें राजा दुर्जयकी सैन्यशक्तिका भयंकर विनाश हुआ। इधर हेति और प्रहेतिको जब खबर मिली कि मेरा जामाता दुर्जय संग्राममें लड़ रहा है तो वे दोनों असुर भी एक विशाल सेनाके साथ वहाँ आ गये। उस युद्धभूमिमें जो पंद्रह प्रमुख मायावी दैत्य आये थे, उनके नाम सुनो—प्रघस, विघस, संघ, अशनि-प्रभ, विद्युत्प्रभ, सुघोष, भयंकर उन्मत्ताक्ष, अग्निदत्त, अग्नितेज, बाहु, शक्र, प्रतर्दन, विरोध, भीमकर्मा और

विप्रचित्ति। इनके पास भी उत्तम अस्त्र-शस्त्रोंका संग्रह था। प्रत्येक वीरके साथ एक-एक अक्षौहिणी सेना थी। ये सभी दुष्ट दुर्जयकी ओरसे युद्धभूमिमें डटकर मणिसे प्रकट हुए वीरोंके साथ लड़नेके लिये उद्यत हो गये। सुप्रभने तीन बाणोंसे विघसको बींध डाला और सुरश्मिने दस बाणोंसे प्रघसको। उस मोर्चेपर सुदर्शनके पाँच बाणोंसे अशनिप्रभके अङ्ग छिद गये। इसी प्रकार सुकान्तिने विद्युत्प्रभको तथा सुन्दरने सुघोषको धराशायी कर डाला। सुन्दने अपने शीघ्रगामी पाँच बाणोंसे उन्मत्ताक्षपर प्रहार किया। साथ ही चमचमाते हुए बाणोंसे शत्रुके धनुषके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। इस प्रकार सुमनका अग्निदत्तसे, सुवेदका अग्नितेजसे, सुनलका बाहु एवं शक्रसे तथा सुवेदका प्रतर्दनसे युद्ध छिड़ गया।

यों अपने अस्त्र-शस्त्रोंकी कुशलता दिखाते हुए सैनिक आपसमें युद्ध करने लगे पर अन्तमें मणिसे प्रकट हुए योद्धाओंके हाथ सभी दैत्य मार डाले गये। अब मुनिवर गौरमुख भी हाथमें कुशा आदि लिये वनसे आश्रममें पहुँचे। दुर्जय अब भी बहुत-से सैनिकोंके साथ खड़ा था। यह देखकर गौरमुख आश्रमके दरवाजेपर रुक गये और मन-ही-मन विचार करने लगे—'अहो, इस मणिके कारण ही यह सब कुछ हुआ और हो रहा है। अरे! यह भयंकर संग्राम इस मणिके लिये ही आरम्भ हुआ है।'

इस प्रकार सोचते-सोचते मुनिवर गौरमुखने देवाधिदेव भगवान् श्रीहरिका स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही पीताम्बर धारण किये हुए भगवान् नारायण गरुडपर विराजमान हो मुनिके सामने प्रकट हो गये और बोले—'कहो! मैं तुम्हारे लिये क्या करूँ?' तब मुनिवर गौरमुखने हाथ जोड़कर पुरुषोत्तम भगवान् श्रीहरिसे कहा—'प्रभो! आप इस पापी दुर्जयको इसकी सेनाके सहित मार डालें।' मुनिके ऐसा कहते ही अग्निके समान प्रज्वलित भगवान्‌के सुदर्शनचक्रने सेना-सहित दुर्जयको भस्म कर डाला। यह सब कार्य एक निमेषके भीतर—पलक मारते सम्पन्न हो गया। फिर भगवान्‌ने गौरमुखसे कहा—'मुने! इस वनमें दानवोंका परिवार एक निमेषमें ही नष्ट हो गया है। अतः इस स्थानकी 'नैमिषारण्य-क्षेत्रके' नामसे प्रसिद्धि होगी। इस तीर्थमें ब्राह्मणोंका समुचित निवास होगा। इस वनके भीतर मैं यज्ञपुरुषके रूपमें निवास करूँगा। ये पंद्रह दिव्य पुरुष, जो मणिसे प्रकट हुए हैं, सत्ययुगमें याज्य नामसे विख्यात राजा होंगे।'

इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीहरि अन्तर्धान हो गये और मुनिवर गौरमुख भी अपने आश्रममें आनन्द-पूर्वक निवास करने लगे।

(अध्याय ११)

राजा सुप्रतीककृत भगवान्‌की स्तुति तथा श्रीविग्रहमें लीन होना

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि! जब राजा सुप्रतीकने इतने बली पुरुषोंके चक्रकी आगमें भस्म होनेकी बात सुनी तो उनके सर्वाङ्गमें चिन्ता व्याप्त हो गयी और वे सोचमें पड़ गये। फिर सहसा उनके अन्तःकरणमें आध्यात्मिक ज्ञानका उदय हो गया। उन्होंने सोचा—'चित्रकूट पर्वतपर भगवान् विष्णु, जो राघवेन्द्र 'श्रीराम'नामसे कहे जाते हैं, अत्यन्त विख्यात हैं। अब मैं वहीं चलूँ और भगवान्‌के नामोंका उच्चारण करते हुए उनकी स्तुति करूँ।' मनमें ऐसा निश्चय कर राजा सुप्रतीक परम पवित्र चित्रकूट पर्वतपर पहुँचे और भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति करने लग गये।

राजा सुप्रतीक बोले—जो राम नरनाथ, अच्युत, कवि, पुराण, देवताओंके शत्रु असुरोंका नाश करनेवाले,

प्रभव, महेश्वर, प्रपन्नार्तिहर एवं श्रीधर नामसे सुप्रसिद्ध हैं, उन मङ्गलमय भगवान् श्रीहरिको मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ। प्रभो! पृथ्वीमें (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—इन) पाँच प्रकारसे, जलमें (शब्द, स्पर्श, रूप, रस—इन) चार प्रकारसे, अग्निमें (शब्द, स्पर्श और रूप—इन) तीन प्रकारसे, वायुमें (शब्द एवं स्पर्श—इन) दो प्रकारसे तथा आकाशमें केवल शब्दरूपसे विराजनेवाले परम पुरुष एकमात्र आप ही हैं। सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि तथा यह सारा संसार आपका ही रूप है—आपसे ही यह विश्व प्रकट होता तथा आपमें ही लीन हो जाता है—ऐसा शास्त्रोंका कथन है। आपका आश्रय पाकर विश्व आनन्दका अनुभव करता है। इसीलिये तो समस्त संसारमें आपकी 'राम'नामसे प्रतिष्ठा हो रही है। भगवन्! यह संसार-समुद्र भयंकर दुःखरूपी तरङ्गोंसे व्याप्त है। इस भयंकर समुद्रमें इन्द्रियाँ ही घड़ियाल और नाक आदि क्रूर जलजन्तु हैं। पर जिस मनुष्यने आपके नामस्मरणरूपी नौकाका आश्रय ले लिया है, वह इसमें नहीं डूबता। अतएव संतलोग तपोवनमें आपके राम-नामका स्मरण करते हैं। प्रभो! वेदोंके नष्ट होनेपर आपने मत्स्यावतार धारण किया। विभो! प्रलयके अवसरपर आप अत्यन्त प्रचण्ड अग्निका रूप धारण कर लेते हैं, जिससे सारी दिशाएँ भस्ममय रूपसे रञ्जित हो जाती हैं। माधव! समुद्र-मन्थनके समय युग-युगमें आप ही स्वयं कच्छपके रूपसे पधारे थे। भगवन्! आप जनार्दन नामसे विख्यात हैं। जब आपकी तुलना करनेवाला दूसरा कोई कहीं भी नहीं मिला तो आपसे अधिककी बात ही क्या है। महात्मन्! आपसे यह सम्पूर्ण संसार, वेद एवं समस्त दिशाएँ ओत-प्रोत हैं। आप आदिपुरुष एवं परमधाम हैं। फिर आपके अतिरिक्त मैं दूसरे किसकी शरणमें जाऊँ। सर्वप्रथम केवल आप ही विराजमान थे। इसके बाद महत्तत्त्व, अहंतत्त्वमय जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन-बुद्धि एवं सभी गुण—इनका भी क्रमशः आविर्भाव हुआ। आपसे ही इन सबकी उत्पत्ति हुई है। मेरी समझसे आप सनातन पुरुष हैं। यह अखिल विश्व आपसे भलीभाँति विरचित एवं विस्तृत है। सम्पूर्ण संसारपर शासन करनेवाले प्रभो! विश्व आपकी मूर्ति है। आप हजार भुजाओंसे शोभा पाते हैं। ऐसे देवताओंके भी आराध्य आप प्रभुकी जय हो। परम उदार भगवन्! आपके 'राम'रूपको मेरा नमस्कार है।

राजा सुप्रतीकके स्तुति करनेपर प्रभु प्रसन्न हो गये। भगवान्‌ने अपने स्वरूपका इस प्रकार उन्हें दर्शन कराया और कहा—'सुप्रतीक! वर माँगो।' श्रीहरिकी अमृतमयी वाणी सुनकर एक बार राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर उन देवाधिदेव प्रभुको प्रणाम कर वे बोले—'भगवन्! आपका जो यह सर्वोत्तम विग्रह है, इसमें मुझे स्थान मिल जाय—आप मुझे यह वर देनेकी कृपा करें।' इस प्रकारकी बातें समाप्त होते ही महाराज सुप्रतीककी चित्तवृत्ति भगवान् गदाधरकी दिव्यमूर्तिमें लग गयी। ध्यानस्थ होकर वे भगवान्‌के नामोंका उच्चारण करने लगे। फिर उसी क्षण अपने अनेक उत्तम कर्मोंके प्रभावसे वे पाञ्चभौतिक शरीर छोड़कर श्रीहरिके विग्रहमें लीन हो गये।

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि! तुम्हारे सामने मैंने इस समय जिसे प्रस्तुत किया है, वह यह वराहपुराण बहुत प्राचीन है। पूर्व सत्ययुगमें मैंने ब्रह्माजीको इसका उपदेश किया था। यह उसीका एक अंश है। कोई हजारों मुखोंसे भी इसे कहना चाहे तो नहीं कह सकता। कल्याणि! प्रसङ्ग छिड़ जानेपर पूर्णरूपसे जो कुछ स्मरणमें आ गया है, वही प्राचीन चरित्र तुम्हें सुनाया है। कुछ लोग इसकी समुद्रके बूँदोंसे उपमा देते हैं, पर यह ठीक नहीं है। स्वयम्भू ब्रह्माजी,

सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र भगवान् नारायण तथा मैं—सभी समस्त चरित्रका वर्णन करनेमें असमर्थ हैं। अतः उन परम प्रभु परमात्माके आदिस्वरूपका तुम्हें सदा स्मरण करना चाहिये। समुद्रके रेतोंकी तथा पृथ्वीके रजःकणोंकी तो गणना हो सकती है; किंतु परब्रह्म परमात्माकी कितनी लीलाएँ हैं—इसकी संख्या असम्भव है। शुचिस्मिते! तुम्हें मैंने जो प्रसङ्ग सुनाया है, यह उन भगवान् नारायणके केवल एक अंशसे सम्बन्ध रखता है। यह लीला सत्ययुगमें हुई थी। अब तुम दूसरा कौन प्रसङ्ग सुनना चाहती हो, यह बतलाओ।

(अध्याय १२)

पितरोंका परिचय, श्राद्धके समयका निरूपण तथा पितृगीत

पृथ्वीने पूछा—प्रभो! मुनिवर गौरमुखने भगवान् श्रीहरिके अद्भुत कर्मको देखकर फिर क्या किया?

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि! भगवान् श्रीहरिने निमेषमात्रमें ही वह सब अद्भुत कर्म कर दिखाया था। उसे देखकर मुनिश्रेष्ठ गौरमुखने भी नैमिषारण्यक्षेत्रमें जाकर जगदीश्वर श्रीहरिकी आराधना आरम्भ कर दी। उस क्षेत्रमें प्रभास नामसे प्रसिद्ध एक तीर्थ है। वह परम दुर्लभ तीर्थ चन्द्रमासे सम्बन्धित है। तीर्थके विशेषज्ञोंका कथन है कि वहाँके स्वामी भगवान् श्रीहरि दैत्योंका संहार करनेवाले 'दैत्यसूदन' नामसे सदा विराजते हैं। मुनिकी चित्तवृत्ति उन प्रभुकी आराधनामें स्थिर हो गयी। अभी वे उन भगवान् नारायणकी उपासना कर ही रहे थे—इतनेमें परम योगी मार्कण्डेयजी वहाँ आ गये। उन्हें अतिथिके रूपमें प्राप्तकर गौरमुखने दूरसे ही बड़े हर्षके साथ भक्तिपूर्वक उनकी पाद्य एवं अर्घ्य आदिसे पूजा आरम्भ कर दी। उन प्रतापी मुनिको कुशके आसनपर विराजित कर गौरमुखने सविनय पूछा—'महाव्रती मुनिश्रेष्ठ! मुझे पितरों एवं श्राद्धतत्त्वका उपदेश करें' गौरमुखके यों पूछनेपर महान् तपस्वी द्विजवर मार्कण्डेयजी बड़े मीठे स्वरमें उनसे कहने लगे।

मार्कण्डेयजी बोले—मुने! भगवान् नारायण समस्त देवताओंके आदि प्रवर्तक एवं गुरु हैं। उन्हींसे ब्रह्मा प्रकट हुए हैं और उन ब्रह्माजीने फिर सात मुनियोंकी सृष्टि की है। मुनियोंकी रचना करके ब्रह्माजीने उनसे कहा—'तुम मेरी उपासना करो।' सुनते हैं, उन लोगोंने स्वयं अपनी ही पूजा कर ली। अपने पुत्रोंद्वारा इस प्रकार कर्म-विकृति देखकर ब्रह्माजीने उन्हें शाप दे दिया—'तुमलोगोंने (ज्ञानाभिमानसे) मेरी जगह अपनी पूजा कर विपरीत आचरण किया है। अतः तुम्हारा ज्ञान नष्ट हो जायगा।'

इस प्रकार शाप-ग्रस्त हो जानेपर उन सभी ब्रह्मपुत्रोंने अपने वंशके प्रवर्तक पुत्रोंको उत्पन्न किया और फिर स्वयं स्वर्गलोक चले गये। उन ब्रह्मवादी मुनियोंके परलोकवासी होनेपर उनके पुत्रोंने विधिपूर्वक श्राद्ध करके उन्हें तृप्त किया। उन पितरोंकी 'वैमानिक' संज्ञा है। वे सभी ब्रह्माजीके मनसे प्रकट हुए हैं। पुत्र मन्त्रका उच्चारण करके पिण्डदान करता है—यह देखते हुए वे वहाँ निवास करते हैं।

गौरमुखने पूछा—ब्रह्मन्! जितने पितर हैं और उनके श्राद्धका जो समय है, वह मैं जानना चाहता हूँ तथा उस लोकमें रहनेवाले पितरोंके गण कितने हैं, यह सब भी मुझे बतानेकी कृपा करें।

मार्कण्डेयजी कहने लगे—द्विजवर! देवताओंके लिये सोम-रसकी वृद्धि करनेवाले कुछ स्वर्गनिवासी पितर मरीचि आदि नामोंसे विख्यात हैं। उन श्रेष्ठ पितरोंमें चारको मूर्त (मूर्तिमान्) और तीनको अमूर्त (बिना मूर्तिके) कहा गया है। इस प्रकार उनकी संख्या सात

है। उनके रहनेवाले लोकको तथा उनके स्वभावको बताता हूँ, सुनो। सन्तानक नामक लोकोंमें 'भास्वर' नामक पितृगण निवास करते हैं, जो देवताओंके उपास्य हैं ये सभी ब्रह्मवादी हैं। ब्रह्मलोकसे अलग होकर ये नित्यलोकोंमें निवास करते हैं। सौ युग व्यतीत हो जानेपर इनका पुनः प्रादुर्भाव होता है। उस समय अपनी पूर्वस्थितिका स्मरण होनेपर सर्वोत्तम योगका चिन्तन करके परम पवित्र योग-सम्बन्धी अनिवृत्ति-लक्षण मोक्षको वे प्राप्त कर लेंगे। ये सभी पितर श्राद्धमें योगियोंके योगद्वारा तृप्त किये जानेपर योगी पुरुषोंके हृदयोंमें पुनः योगकी वृद्धि करते हैं। क्योंकि भगवद्भक्तके भक्तियोगसे इन्हें बड़ा संतोष होता है। अतएव योगिवर! भगवान्को अपना सर्वस्व अर्पण करनेवाले योगी पुरुषको श्राद्धकी वस्तुएँ देनी चाहिये।

सोम-रस पीनेवाले सोमप पितरोंका यह प्रधान प्रथम सर्ग है। ये पितर उत्तम वर्णवाले ब्राह्मण हैं। इन सबका एक-एक शरीर है। ये स्वर्गलोकमें रहते हैं। भूलोकके निवासी इनकी पूजा करते हैं। कल्प-पर्यन्तजीवी मरीचि आदि पितर ब्रह्माजीके पुत्र हैं। वे अपने परिवारोंके साथ मरुतोंकी उपासना करते हैं—मरुद्गण उनके उपास्य हैं। सनक आदि तपस्वी 'वैराज' नामक पितृगण उन मरुद्गणोंके भी पूज्य हैं। वैराजसंज्ञक पितरोंके गणकी संख्या सात कही जाती है। यह पितरोंकी संतानका परिचय हुआ।

भिन्न-भिन्न वर्णवाले सभी लोग उन पितरोंकी पूजा कर सकते हैं—यह नियम है। ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य—इन तीनों वर्णोंसे अनुमति पाकर द्विजेतर भी उक्त सभी पितरोंकी पूजा कर सकता है। उसके पितर इन पितृगणोंसे भिन्न हैं। ब्रह्मन्! पितरोंमें भी मुक्त और चेतनक—दो प्रकारके पितर नहीं देखे जाते हैं। विशिष्ट शास्त्रोंको देखने, पुराणोंका अवलोकन करने तथा ऋषियोंके बनाये हुए शास्त्रोंका अध्ययन करनेसे अपने पूज्य पितरोंका परिचय प्राप्त कर लेना चाहिये।

सृष्टि रचनेके समय ही फिर ब्रह्माजीको स्मृति प्राप्त हुई। तब उन्हें पूर्व पुत्रोंका स्मरण हुआ। वे पुत्र तो ज्ञानके प्रभावसे परम पदको प्राप्त हो गये हैं—यह बात उन्हें विदित हो गयी। वसु आदिके कश्यप आदि, ब्राह्मणादि वर्णोंके वसु आदि और गन्धर्व-प्रभृति पितर हैं—यह बात साधारणरूपसे समझ लेनी चाहिये। इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं है। मुनिवर! यह पितरोंकी सृष्टिका प्रसङ्ग है। प्रकरणवश तुम्हारे सामने इसका वर्णन कर दिया। वैसे यदि करोड़ वर्षोंतक इसे कहा जाय, तो भी इसके विस्तृत प्रसङ्गका अन्त नहीं दीखता।

द्विजवर! अब मैं श्राद्धके लिये उचित कालका विवेचन करता हूँ, सुनो। श्राद्धकर्ता जिस समय श्राद्धयोग्य पदार्थ या किसी विशिष्ट ब्राह्मणको घरमें आया जाने अथवा उत्तरायण या दक्षिणायनका आरम्भ, व्यतीपात योग हो, उस समय काम्य श्राद्धका अनुष्ठान करे। विषुव योगमें*, सूर्य और चन्द्रमाके ग्रहणके समय, सूर्यके राश्यन्तर-प्रवेशमें, नक्षत्र अथवा ग्रहोंद्वारा पीड़ित होनेपर, बुरे स्वप्न दीखने तथा घरमें नवीन अन्न आनेपर काम्य-श्राद्ध करना चाहिये। जो अमावास्या अनुराधा, विशाखा एवं स्वाती नक्षत्रसे युक्त हो, उसमें श्राद्ध करनेसे पितृगण आठ वर्षोंतक तृप्त रहते हैं। इसी प्रकार जो अमावास्या पुष्य, पुनर्वसु या आर्द्रा नक्षत्रसे युक्त हो, उसमें पूजित होनेसे पितृगण बारह वर्षोंतक तृप्त रहते हैं। जो पुरुष देवताओं एवं पितृगणको तृप्त करना चाहते हैं, उनके लिये धनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपद अथवा शतभिषासे युक्त अमावास्या अत्यन्त दुर्लभ है। ब्राह्मणश्रेष्ठ! जब अमावास्या इन उपर्युक्त नौ नक्षत्रोंसे युक्त होती है, उस समय किया हुआ श्राद्ध पितृगणको अक्षय तृप्तिकारक होता है। वैशाखमासके शुक्र पक्षकी तृतीया,

* वर्षके जिस अहोरात्रमें सूर्यके विषुवरेखापर चले जानेपर दिन-रातका मान बराबर हो जाता है, उस समय विषुव योगकी प्राप्ति या संक्रान्ति होती है।

कार्तिकके शुक्ल पक्षकी नवमी, भाद्रपदके कृष्ण पक्षकी त्रयोदशी, माघमासकी अमावास्या, चन्द्रमा अथवा सूर्यके ग्रहणके समय तथा चारों अष्टकाओंमें* अथवा उत्तरायण या दक्षिणायनके आरम्भके समय जो मनुष्य एकाग्रचित्तसे पितरोंको तिलमिश्रित जल भी दान कर देता है, वह मानो सहस्र वर्षोंके लिये श्राद्ध कर देता है। यह परम रहस्य स्वयं पितृगणोंका बतलाया हुआ है। कदाचित् माघकी अमावास्याका यदि शतभिषा नक्षत्रसे योग हो जाय तो पितृगणकी तृप्तिके लिये यह परम उत्कृष्ट काल होता है। द्विजवर ! अल्प पुण्यवान् पुरुषोंको ऐसा समय नहीं मिलता और यदि उस दिन धनिष्ठा नक्षत्रका योग हो जाय तो उस समय अपने कुलमें उत्पन्न पुरुषद्वारा दिये हुए अन्न एवं जलसे पितृगण दस हजार वर्षके लिये तृप्त हो जाते हैं तथा यदि माघी अमावास्याके साथ पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रका योग हो और उस अवसरपर पितरोंके लिये श्राद्ध किया जाय तो इस कर्मसे पितृगण अत्यन्त तृप्त होकर पूरे युगतक सुखपूर्वक शयन करते हैं। गङ्गा, शतद्रु, विपाशा, सरस्वती और नैमिषारण्यमें स्थित गोमती नदीमें स्नानकर पितरोंका आदरपूर्वक तर्पण करनेसे मनुष्य अपने समस्त पापोंको नष्ट कर देता है। पितृगण सर्वदा यह गान करते हैं कि वर्षाकालमें (भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशीके) मघा-नक्षत्रमें तृप्त होकर फिर माघकी अमावास्याको अपने पुत्र-पौत्रादिद्वारा दी गयी पुण्यतीर्थोंकी जलाञ्जलिसे हम कब तृप्त होंगे। विशुद्ध चित्त, शुद्ध धन, प्रशस्त काल, उपर्युक्त विधि, योग्य पात्र और परम भक्ति—ये सब मनुष्यको मनोवाञ्छित फल प्रदान करते हैं।

पितृगीत

विप्रवर ! इस प्रसङ्गमें पितरोंद्वारा गाये हुए कुछ श्लोकोंका श्रवण करो। उन्हें सुनकर तुमको आदरपूर्वक वैसा ही आचरण करना चाहिये। पितृगण कहते हैं—

कुलमें क्या कोई ऐसा बुद्धिमान् धन्य मनुष्य जन्म लेगा जो वित्तलोलुपताको छोड़कर हमारे निमित्त पिण्ड-दान करेगा। सम्पत्ति होनेपर जो हमारे उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको रत्न, वस्त्र, यान एवं सम्पूर्ण भोग-सामग्रियोंका दान करेगा अथवा केवल अन्न-वस्त्रमात्र वैभव होनेपर श्राद्धकालमें भक्तिविनम्र चित्तसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भोजन ही करायेगा या अन्न देनेमें भी असमर्थ होनेपर ब्राह्मणश्रेष्ठोंको वन्य फल-मूल, जंगली शाक और थोड़ी-सी दक्षिणा ही देगा, यदि इसमें भी असमर्थ रहा तो किसी भी द्विजश्रेष्ठको प्रणाम करके एक मुट्ठी काला तिल ही देगा अथवा हमारे उद्देश्यसे पृथ्वीपर भक्ति एवं नम्रतापूर्वक सात-आठ तिलोंसे युक्त जलाञ्जलि ही देगा, यदि इसका भी अभाव होगा तो कहीं-न-कहींसे एक दिनका चारा लाकर प्रीति और श्रद्धापूर्वक हमारे उद्देश्यसे गौको खिलायेगा तथा इन सभी वस्तुओंका अभाव होनेपर वनमें जाकर अपने कक्षमूल (बगल) को दिखाता हुआ सूर्य आदि दिक्पालोंसे उच्चस्वरसे यह कहेगा—

न मेऽस्ति वित्तं न धनं न चान्य-
च्छ्राद्धस्य योग्यं स्वपितॄन्नतोऽस्मि।
तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ
भुजौ ततौ वर्त्मनि मारुतस्य॥
(१३। ५८)

'मेरे पास श्राद्धकर्मके योग्य न धन-सम्पत्ति है और न कोई अन्य सामग्री, अतः मैं अपने पितरोंको प्रणाम करता हूँ। वे मेरी भक्तिसे ही तृप्ति-लाभ करें। मैंने अपनी दोनों बाँहें आकाशमें उठा रखी हैं।'

द्विजोत्तम ! धनके होने अथवा न होनेकी अवस्थामें पितरोंने इस प्रकारकी विधियाँ बतलायी हैं। जो पुरुष इसके अनुसार आचरण करता है, उसके द्वारा श्राद्ध समुचितरूपसे ही सम्पन्न माना जाता है।

(अध्याय १३)

* प्रत्येक मासकी सप्तमी, अष्टमी एवं नवमी तिथियोंके समूहकी तथा पौष-माघ एवं फाल्गुनके कृष्ण पक्षकी अष्टमी तिथियोंकी 'अष्टका' संज्ञा है।

श्राद्ध-कल्प

मार्कण्डेयजी कहते हैं—विप्रवर ! प्राचीन समयमें यह प्रसङ्ग ब्रह्माजीके पुत्र सनन्दनने, जो सनकजीके छोटे भाई एवं परम बुद्धिमान् हैं, मुझसे कहा था। अब ब्रह्माजीद्वारा बतलायी वह बात सुनो। त्रिणाचिकेत[1], त्रिमधु[2], त्रिसुपर्ण[3], छहों वेदाङ्गोंके जाननेवाले, यज्ञानुष्ठानमें तत्पर, भानजे, दौहित्र, श्वशुर, जामाता, मामा, तपस्वी ब्राह्मण, पञ्चाग्नि तपनेवाले, शिष्य, सम्बन्धी तथा अपने माता एवं पिताके प्रेमी—इन ब्राह्मणोंको श्राद्धकर्ममें नियुक्त करना चाहिये। मित्रघाती, स्वभावसे ही विकृत नखवाला, काले दाँतवाला, कन्यागामी, आग लगानेवाला, सोमरस बेचनेवाला, जनसमाजमें निन्दित, चोर, चुगलखोर, ग्रामपुरोहित, वेतन लेकर पढ़ने तथा पढ़ानेवाला, पुनर्विवाहिता स्त्रीका पति, माता-पिताका परित्याग करनेवाला, हीन वर्णकी संतानका पालन-पोषण करनेवाला, शूद्रा स्त्रीका पति तथा मन्दिरमें पूजा करके जीविका चलानेवाला—ऐसे ब्राह्मण श्राद्धके अवसरपर निमन्त्रण देने योग्य नहीं हैं।

ब्राह्मणको निमन्त्रित करनेकी विधि

विचारशील पुरुषको चाहिये कि एक दिन पूर्व ही संयमी श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको निमन्त्रण दे दे। पर श्राद्धके दिन कोई अनिमन्त्रित तपस्वी ब्राह्मण घरपर पधारें तो उन्हें भी भोजन कराना चाहिये। श्राद्धकर्ता घरपर आये हुए ब्राह्मणोंका चरण धोये, फिर अपना हाथ धोकर उन्हें आचमन कराये। तत्पश्चात् उन्हें आसनोंपर बैठाये एवं भोजन कराये।

ब्राह्मणोंकी संख्या आदि

पितरोंके निमित्त अयुग्म अर्थात् एक, तीन इत्यादि तथा देवताओंके निमित्त युग्म अर्थात् दो, चार—इस क्रमसे ब्राह्मण-भोजनकी व्यवस्था करे। अथवा देवताओं एवं पितरों—दोनोंके निमित्त एक-एक ब्राह्मणको भोजन करानेका भी विधान है। नानाका श्राद्ध वैश्वदेवके साथ होना चाहिये। पितृपक्ष और मातामहपक्ष—दोनोंके लिये एक ही वैश्वदेव-श्राद्ध करे। देवताओंके निमित्त ब्राह्मणोंको पूर्वमुख बैठाकर भोजन कराना चाहिये तथा पितृपक्ष एवं मातामहपक्षके ब्राह्मणोंको उत्तरमुख बिठाकर भोजन कराये। द्विजवर ! कुछ आचार्य कहते हैं, पितृपक्ष और मातामह—इन दोनोंके श्राद्ध अलग-अलग होने चाहिये। अन्य कुछ महर्षियोंका कथन है—दोनोंका श्राद्ध एक साथ एक ही पाकमें होना समुचित है।

श्राद्धका प्रकार

बुद्धिमान् पुरुष श्राद्धमें आसनके लिये सर्वप्रथम कुशा दे। फिर देवताओंका आवाहन करे। तदनन्तर अर्घ्य आदिसे विधिपूर्वक उनकी पूजा करे। ब्राह्मणोंकी आज्ञासे जल एवं यवसे देवताओंको अर्घ्य देना चाहिये। फिर श्राद्धविधिको जाननेवाला श्राद्धकर्त्ता विधिपूर्वक उत्तम चन्दन, धूप और दीप उन विश्वेदेव आदि देवताओंको अर्पण करे। पितरोंके निमित्त इन सभी उपचारोंका अपसव्य[4]-भावसे निवेदन करे। फिर ब्राह्मणकी अनुमतिसे दो भाग किये हुए कुश पितरोंके लिये दे। विवेकी पुरुषको चाहिये, मन्त्रका उच्चारण करके पितरोंका आवाहन करे। अपसव्य होकर तिल और जलसे अर्घ्य देना उचित है।

---

१. द्वितीय कठके अन्तर्गत 'अयं वाव यः पवते' इत्यादि तीन अनुवाकोंको पढ़नेवाला या उसका अनुष्ठान करनेवाला।

२. 'मधुवाताः' इत्यादि ऋचाका अध्ययन और मधु-व्रतका आचरण करनेवाला।

३. 'ब्रह्म मेतु माम्' इत्यादि तीन अनुवाकोंका अध्ययन और तत्सम्बन्धी व्रत करनेवाला।

४. यज्ञोपवीतको दायें कंधेपर रखना।

श्राद्ध करते समय अतिथिके आ जानेपर कर्तव्यका विधान

मार्कण्डेयजी कहते हैं—द्विजवर ! श्राद्ध करते समय यदि कोई भोजन करनेकी इच्छासे भूखा पथिक अतिथि-रूपमें आ जाय तो ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर उसे भी यथेच्छ भोजन कराना चाहिये । अनेक अज्ञातस्वरूप योगिगण मनुष्योंका उपकार करनेके लिये नाना रूप धारणकर इस धराधामपर विचरण करते रहते हैं । इसलिये विज्ञ पुरुष श्राद्धके समय आये हुए अतिथिका सत्कार अवश्य करे । विप्रवर ! यदि उस समय वह अतिथि सम्मानित नहीं हुआ तो श्राद्ध करनेसे प्राप्त होनेवाले फलको नष्ट कर देता है ।

श्राद्धके समय हवन करनेकी विधि

(मार्कण्डेयजी कहते हैं)—पुरुषप्रवर ! श्राद्धके अवसरपर ब्राह्मणको भोजन करानेके पहले उनसे आज्ञा पाकर शाक और लवणहीन अन्नसे अग्निमें तीन बार हवन करना चाहिये । उनमें **'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा'** इस मन्त्रसे पहली आहुति, **'सोमाय पितृमते स्वाहा'**—इससे दूसरी एवं **'वैवस्वताय स्वाहा'** कहकर तीसरी आहुति देनेका समुचित विधान है । तत्पश्चात् हवन करनेसे बचे हुए अन्नको थोड़ा-थोड़ा सभी ब्राह्मणोंके पात्रोंमें दे ।

श्राद्धमें भोजन करानेका नियम

भोजनके लिये उपस्थित अन्न अत्यन्त मधुर, भोजन-कर्ताकी इच्छाके अनुसार तथा अच्छी प्रकार सिद्ध किया हुआ हो । पात्रोंमें भोजन रखकर श्राद्धकर्ता अत्यन्त सुन्दर एवं मधुर वचन कहे—'महानुभावो ! अब आप लोग अपनी इच्छाके अनुसार भोजन करें ।' ब्राह्मणोंको भी तद्गतचित्त और मौन होकर प्रसन्नमुखसे सुखपूर्वक भोजन करना चाहिये । यजमानको क्रोध तथा उतावले-पनको छोड़कर भक्तिपूर्वक भोजन परोसते रहना चाहिये ।

अभिश्रवण (वैदिक श्राद्धमन्त्रका पाठ)

श्राद्धमें ब्राह्मणोंके भोजन करते समय रक्षोघ्न मन्त्र*का पाठ करके भूमिपर तिल बिखेर दे तथा अपने पितृरूपमें उन द्विजश्रेष्ठोंका ही चिन्तन करे । साथ ही यह भी भावना करे—'इन ब्राह्मणोंके शरीरोंमें स्थित मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह आदि आज भोजन-से तृप्त हो जायँ ।' भूमिपर पिण्ड देते समय प्रार्थना करे—'मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह इस पिण्डदानसे तृप्ति-लाभ करें । होमद्वारा सबल होकर मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह आज तृप्ति-लाभ करें ।' सबके बाद फिर प्रार्थना करनी चाहिये—'मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह—ये महानुभाव मैंने भक्तिपूर्वक उनके लिये जो कुछ किया या कहा है—उससे तृप्त होनेकी कृपा करें । मातामह, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामह और विश्वेदेव तृप्त हो जायँ एवं समस्त राक्षसगण नष्ट हों । यहाँ सम्पूर्ण हव्य-कव्यके भोक्ता यज्ञेश्वर भगवान् श्रीहरि विराजमान हैं । अतः उनकी संनिधिके कारण समस्त राक्षस और असुरगण यहाँसे तुरंत भाग जायँ ।'

अन्न आदिके विकरणका नियम

जब निमन्त्रित ब्राह्मण भोजनसे तृप्त हो जायँ, तो भूमिपर थोड़ा-सा अन्न डाल देना चाहिये । आचमनके लिये उन्हें एक-एक बार शुद्ध जल देना आवश्यक है । तदनन्तर भलीभाँति तृप्त हुए ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर भूमिपर सभी उपस्थित अन्नोंसे पिण्डदान करनेका विधान है ।

पिण्डदानका नियम

श्राद्धकालमें भलीभाँति सावधान होकर तिलके साथ उन्हें पिण्ड अर्पण करे । पितृतीर्थसे तिलयुक्त जलाञ्जलि दे तथा मातामह आदिके लिये भी पितृतीर्थसे ही पिण्ड-दान करना चाहिये । फिर ब्राह्मणोंके उच्छिष्टके निकट

* रक्षोघ्न-मन्त्र—

यज्ञेश्वरो यज्ञसमस्तनेता भोक्ताऽव्ययात्मा हरिरीश्वरोऽत्र ।
तत्संनिधानादपयान्तु सद्यो रक्षांस्यशेषाण्यसुराश्च सर्वे ॥ (वराहपुराण १४ । ३२)

ही दक्षिण दिशामें अग्रभाग करके बिछाये हुए कुशाओं-पर पहले अपने पिताके लिये पुष्प और धूप आदिसे पूजित पिण्ड दान करे। फिर पितामह और प्रपितामहके लिये एक-एक पिण्ड अर्पण करना चाहिये। तदनन्तर **'लेपभागभुजस्तृप्यन्ताम्'**—ऐसा उच्चारण करते हुए लेपभोजी (पिण्डसे बचे अन्न पानेवाले) पितरोंके निमित्त कुशाके मूलसे अपने हाथमें लगे अन्नको गिरावे। विवेकी पुरुषको चाहिये कि इसी प्रकार गन्ध और मालादियुक्त पिण्डोंसे मातामह आदिका पूजन करके फिर द्विजश्रेष्ठोंको आचमन करावे। द्विजवर ! पितरोंका चिन्तन करते हुए भक्तिके साथ पहले पिता प्रभृतिको पिण्ड देना आवश्यक है। फिर स्वस्ति-वाचन करनेवाले ब्राह्मणोंको अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणा देनेके पश्चात् विश्वेदेवके निमित्त प्रार्थनाके मन्त्रोंका पाठ होना चाहिये। जो विश्वेदेव यहाँ पधारे हैं, वे प्रसन्न हो जायँ—यों श्राद्धकर्ता प्रार्थना करे। वहाँ उपस्थित ब्राह्मण उसका अनुमोदन कर दें। फिर आशीर्वादके लिये प्रार्थना करना समुचित है। महामते ! पहले पितृपक्षके ब्राह्मणोंका विसर्जन करे। तत्पश्चात् देवपक्षके ब्राह्मण विदा किये जायँ। विश्वेदेवगणके सहित मातामह आदिमें भी ब्राह्मण-भोजन, दान और विसर्जन आदिकी यही विधि बतलायी गयी है। पितृ और मातामह—दोनों ही पक्षोंके श्राद्धोंमें पाद-शौच आदि सभी कर्म पहले देवपक्षके ब्राह्मणोंका करे। परंतु विदा पहले पितृपक्षीय अथवा मातृपक्षीय ब्राह्मणोंको ही करें। मातामह आदि तीन पितरोंके श्राद्धमें ज्ञानी ब्राह्मण प्रथम स्थान पानेका अधिकारी है। ब्राह्मणोंको प्रीतिवचन और सम्मानपूर्वक विदा करे। उनके जानेके समय द्वारतक पीछे-पीछे जाय। जब वे आज्ञा दें, तब लौट आवे।

श्राद्धके अन्तमें बलिवैश्वदेवका विधान

श्राद्ध करनेके पश्चात् वैश्वदेव नामक नित्यक्रिया करनी चाहिये। इस प्रकार सबका सत्कार करके अपने घरके बड़े लोगों तथा बन्धु-बान्धवों एवं सेवकोंसहित स्वयं भोजन करना चाहिये। विवेकी पुरुषका कर्तव्य है कि इसी प्रकार पिता, पितामह, प्रपितामह तथा मातामह, प्रमातामह एवं वृद्धप्रमातामहका श्राद्ध सम्पन्न करे। श्राद्धद्वारा अत्यन्त तृप्त होकर ये पितर सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण कर देते हैं। काला तिल, कुतप मुहूर्त* और दौहित्र—ये तीन श्राद्धमें परम पवित्र माने जाते हैं। चाँदीका दान तथा उसका दर्शन भी श्रेष्ठ है। श्राद्ध-कर्ताके लिये क्रोध करना, उतावलापना तथा उस दिन कहीं जाना मना है। ये तीनों बातें श्राद्धमें भोजन करनेवालेके लिये भी वर्ज्य हैं। द्विजवर ! विधिपूर्वक श्राद्ध करनेवाले पुरुषोंसे विश्वेदेवगण, पितृगण, मातामह एवं कुटुम्बीजन सभी संतुष्ट रहते हैं। द्विजवर ! पितृ-गणोंका आधार चन्द्रमा है और चन्द्रमाका आधार योग है। अतः श्राद्धमें योगिजनको नियुक्त करना अति उत्तम है। विप्रवर ! श्राद्धभोजी एक सहस्र ब्राह्मणोंके सम्मुख यदि एक भी योगी उपस्थित हो जाय तो वह यजमानके सहित उन सबका उद्धार कर देता है। सामान्यरूपसे सभी पुराणोंमें इस पितृक्रियाका वर्णन किया गया है। इस क्रमसे कर्मकाण्ड होना चाहिये।

यह जानकर भी मनुष्य संसारके बन्धनसे छूट जाता है। गौरमुख ! श्रेष्ठ व्रतवाले बहुत-से ऋषि श्राद्धका आश्रय लेकर मुक्त हो चुके हैं। अतएव तुम भी इसके अनुष्ठानमें यथाशीघ्र तत्पर हो जाओ।

द्विजवर ! तुमने भक्तिपूर्वक इस प्रसङ्गको पूछा है, अतः तुम्हारे सामने मैं इसका वर्णन कर चुका। जो पितृयज्ञ करके भगवान् श्रीहरिका ध्यान करता है, उससे बढ़कर कोई कार्य नहीं है और उस यज्ञसे बढ़कर दूसरा कोई पितृतन्त्र भी नहीं है—इसमें कोई संदेह नहीं।

(अध्याय १४)

* दिनके ८वें मुहूर्तको 'कुतप' कहते हैं, यह प्रायः साढ़े बारह बजेके आसपास आता है।

गौरमुखके द्वारा दस अवतारोंका स्तवन तथा उनका ब्रह्ममें लीन होना

पृथ्वीने पूछा—भगवन् ! मुनिवर गौरमुखने मार्कण्डेयजीके मुखसे श्राद्धसम्बन्धी ऐसी विधि सुनकर फिर क्या किया ?

भगवान् वराह बोले—वसुंधरे ! मार्कण्डेयजीकी बुद्धि अपरिमित थी। उनके द्वारा इस प्रकार पितृकल्प सुनते ही मुनिवरकी कृपासे गौरमुखको सौ जन्मोंकी बातें याद आ गयीं।

पृथ्वीने पूछा—भगवन् ! गौरमुख पूर्वजन्ममें कौन थे, उनका क्या नाम था, बातें याद आनेकी शक्ति उनमें कैसे आयी और उन महाभागने उन्हें जानकर फिर क्या किया ?

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! ये गौरमुख पूर्वके एक दूसरे कल्पमें स्वयं भृगु मुनि थे। श्रीब्रह्माजीने अपने पुत्रोंको जो यह शाप दिया था कि पुत्रोंद्वारा ही उपदेश प्राप्त करके तुमलोग सद्गति प्राप्त करोगे। इसीलिये श्रीमार्कण्डेयजीने भी इन्हें ज्ञान प्रदान किया। मुनिवर मार्कण्डेयजी भी उन्हींके वंशमें उत्पन्न हुए थे। श्रेष्ठ अङ्गोंसे शोभा पानेवाली पृथ्वी ! इस प्रकार उपदिष्ट होनेपर उन्हें सम्पूर्ण जन्मोंकी बातें याद हो आयीं। फिर पूर्वजन्मकी बातको स्मरण करके उन्होंने जो कुछ किया है, वह संक्षेपमें कहता हूँ, सुनो। उस समय गौरमुख पूर्व-कथनानुसार पितरोंके लिये बारह वर्षोंतक श्राद्ध करते रहे। तत्पश्चात् श्रीहरिकी आराधनाके लिये वे उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे। तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध जो प्रभासतीर्थ है, वहीं जाकर गौरमुखने दैत्य-दलन परमप्रभुकी स्तुति आरम्भ कर दी।

दशावतारस्तोत्र

गौरमुख बोले—जो शत्रुओंका दर्प दूर करनेवाले, ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, सूर्य, चन्द्रमा, अश्विनीकुमाररूपमें प्रतिष्ठित, युगमें स्थित, परमपुराण, आदिपुरुष, सदा विराजमान तथा देवाधिदेव भगवान् नारायण नामसे विख्यात हैं, उन मङ्गलमय श्रीहरिकी अब मैं स्तुति करता हूँ। प्राचीन समयमें जब वेद नष्ट हो चुके थे, उस अवसरपर इस विशाल वसुंधराका भरण-पोषण करनेवाले जिन आदिपुरुषने पर्वतके समान विशाल मत्स्यका शरीर धारण किया था तथा जिनके पुच्छके अग्रभागसे चमचमाती हुई तेज-छटा विकीर्ण हो रही थी, उन शत्रुसूदन भगवान् श्रीहरिकी मैं स्तुति करता हूँ। समुद्र-मन्थनके निमित्त सबका हित करनेके विचारसे कच्छपका रूप धारणकर जिन्होंने महान् पर्वत मन्दराचलको आश्रय दिया था, वे दैत्योंके संहार करनेवाले पुराण-पुरुष देवेश्वर भगवान् श्रीहरि मेरी सभी प्रकार रक्षा करें। जिन महापुरुषने महावराहका रूप धारणकर रसातलमें प्रवेश किया और वहाँसे पृथ्वीको ले आये तथा देवताओं एवं सिद्धोंने जिनकी 'यज्ञपुरुष' संज्ञा दी है, वे असुरसंहर्ता, सनातन श्रीहरि मेरी रक्षा करें। जो प्रत्येक युगमें भयंकर नृसिंहरूपसे विराजते हैं, जिनका मुख अत्यन्त भयावह है, कान्ति सुवर्णके समान है तथा जिनका दैत्योंका दलन करना स्वाभाविक गुण है, वे योगिराज जगत्के परम आश्रय भगवान् श्रीहरि हमारी रक्षा करें। जिनका कोई माप नहीं है, फिर भी बलिका यज्ञ नष्ट करनेके लिये जिन योगात्माने योगके बलसे दण्ड और मृगचर्मसे सुशोभित वामन-रूपसे बढ़ते हुए त्रिलोकीतक नाप ली, वे परम प्रभु हमारी रक्षा करें। जिन्होंने परमपराक्रमी परशुरामजीका रूप धारण करके इक्कीस बार सम्पूर्ण भूमण्डलपर विजय प्राप्त की और उसे कश्यपजीको सौंप दिया तथा जो सज्जनोंके रक्षक एवं असुरोंके संहारक हैं, वे हिरण्यगर्भ भगवान् श्रीहरि हमारी रक्षा

करें। हिरण्यगर्भ जिनकी संज्ञा है, सर्वसाधारण-जन जिन्हें देख नहीं सकता तथा जो राम आदि रूपोंसे चार प्रकारके शरीर धारण कर चुके हैं एवं अनेक प्रकारके रूपोंसे राक्षसोंका विनाश करते हैं, वे आदि-पुरुष भगवान् श्रीहरि हमारी रक्षा करें। चाणूर और कंस नामधारी दानव दर्पसे भर गये थे। उनके भयसे देवताओंके हृदयमें आतङ्क छा गया था। अतः उन्हें निर्भय करनेके लिये जो प्रत्येक युग एवं कल्पमें वसुदेवके पुत्र श्रीकृष्णरूपसे विराजते हैं, वे प्रभु हमारी रक्षा करें। जो सनातन, ब्रह्ममय एवं महान् पुरुष होकर भी वर्णकी व्यवस्था करनेके लिये प्रत्येक युगमें कल्किके नामसे विख्यात हैं, देवता, सिद्ध और दैत्योंकी आँखें जिनके रूपको देख नहीं सकतीं एवं जो विज्ञान-मार्गका त्याग करके यम-नियम आदिके प्रवर्तक बुद्धरूपसे सुपूजित होते हैं और मत्स्य आदि अनेक रूपोंमें विचरते हैं, वे भगवान् श्रीहरि हमारी रक्षा करें। भगवन्! आप पुरुषोत्तम हैं तथा समस्त कारणोंके भी कारण हैं। आपको मेरा अनेकशः प्रणाम है। प्रभो! अब आप मुझे मुक्ति-पद प्रदान करनेकी कृपा कीजिये।*

इस प्रकार महर्षि गौरमुखके द्वारा भक्तिभावसे संस्तुत एवं नमस्कृत होते-होते चक्र एवं गदाधारी श्रीहरि स्वयं उनके सामने प्रत्यक्षरूपसे प्रकट हो गये। उस समय गौरमुखने देखा कि प्रभुके विग्रहसे दिव्य विज्ञान भी प्रकट हो रहा है। उसे पाकर मुनिकी अन्तरात्मा पूर्ण शान्त हो गयी। गौरमुखके शरीरसे विज्ञानात्मा निकली और श्रीहरिको पाकर उनके मुक्ति-संज्ञक सनातन श्रीविग्रहमें सदाके लिये शान्त हो गयी।

(अध्याय १५)

महातपाका उपाख्यान

पृथ्वीने पूछा—भगवन्! मणिसे जो प्रधान पुरुष निकले थे तथा जिन्हें भगवान् श्रीहरिने वर दिया था—'तुम सभी त्रेतायुगमें राजा बनोगे', उनकी उत्पत्ति कैसे हुई? उनके नाम क्या हुए तथा उन्होंने कौन-कौनसे काम किये? आप मुझे यह प्रसङ्ग बतानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह कहते हैं—प्राणियोंको प्रश्रय देने-

* स्तोष्ये महेन्द्रं रिपुदर्पहं शिवं नारायणं ब्रह्मविदां वरिष्ठम्। आदित्यचन्द्राश्वियुगस्थमाद्यं पुरातनं दैत्यहरं सदा हरिम्॥
चकार मात्स्यं वपुरात्मनो यः पुरातनं वेदविनाशकाले। महामहीभृद्वपुरग्रपुच्छच्छटाहवार्च्चिः सुरशत्रुहाद्यः॥
तथाब्धिमन्थानकृते गिरीन्द्रं दधार यः कौर्मवपुः पुराणम्। हितेच्छयाप्तः पुरुषः पुराणः प्रपातु मां दैत्यहरः सुरेशः॥
महावराहः सततं पृथिव्यास्तलात्तलं प्राविशद् यो महात्मा। यज्ञाङ्गसंज्ञः सुरसिद्धसङ्घैः स पातु मां दैत्यहरः पुराणः॥
नृसिंहरूपी च बभूव योऽसौ युगे युगे योगिवरोऽथ भीमः। करालवक्त्रः कनकाग्रवर्चा वराशयोऽस्मानसुरान्तकोऽव्यात्॥
बलेर्मखध्वंसकृदप्रमेयो योगात्मको योगवपुःस्वरूपः। स दण्डकाष्ठाजिनलक्षणः क्षितिं योऽसौ महान् कान्तवान् नः पुनातु॥
त्रिःसप्तकृत्वो जगतीं जिगाय कृत्वा ददौ कश्यपाय प्रचण्डः। स जामदग्न्योऽभिजनस्य गोप्ता हिरण्यगर्भोऽसुरहा प्रपातु॥
चतुष्प्रकारं च वपुर्य आद्यं हैरण्यगर्भप्रतिमानलक्ष्यम्। रामादिरूपैर्बहुरूपभेदं चकार सोऽस्मानसुरान्तकोऽव्यात्॥
चाणूरकंसासुरदर्पभीतैर्भीतामराणामभयाय वेदः। युगे युगे वासुदेवो बभूव कल्पे भवत्यद्भुतरूपकारी॥
युगे युगे कल्किनाम्ना महात्मा वर्णस्थितिं कर्तुमनेकरूपः। सनातनो ब्रह्ममयः पुरातनो गूढाशयोऽस्मानसुरान्तकोऽव्यात्॥
न यस्य रूपं सुरसिद्धदैत्याः पश्यन्ति विज्ञानगतिं विहाय। अतो यमेनापि समर्चयन्ति मत्स्यादिरूपाणि चराणि सोऽव्यात्॥
नमो नमस्ते पुरुषोत्तमाय पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते। नमो नमः कारणकारणाय नयस्व मां मुक्तिपदं नमस्ते॥

(वराहपुराण १५। ९-२०)

वाली पृथ्वी देवि! मणिसे प्रकट जो सुप्रभ नामका प्रधान पुरुष था, वह त्रेतायुगमें एक महान् उदार राजा हुआ। उसके प्रादुर्भावका प्रसङ्ग सुनो। प्रथम सत्ययुगमें महाबाहु नामसे एक प्रसिद्ध राजा हो चुके हैं। वे ही पुनः त्रेतायुगमें राजा श्रुतकीर्ति हुए। उस समय त्रिलोकीमें महान् पराक्रमियोंमें उनकी गणना थी। मणिसे उत्पन्न हुआ सुप्रभ उन्हींके घर पुत्ररूपसे उत्पन्न हुआ। उस समय प्रजापाल नामसे जगत्‌में उसकी ख्याति हुई। एक दिनकी बात है—राजा प्रजापाल शिकारके लिये किसी ऐसे सघन वनमें गया, जहाँ बहुत-से हिंस्र जन्तु निवास करते थे। वहाँ उसे एक सुन्दर आश्रम दिखायी पड़ा, जहाँ परमधार्मिक महातपा ऋषि निवास करते थे। वे निराहार रहकर सदा परब्रह्म परमात्माका ध्यान करते थे। तप करना ही उनका मुख्य काम था। वहाँ जाकर राजाको आश्रममें प्रवेश करनेकी इच्छा हुई, अतः वह आश्रमके भीतर गया। जंगली वृक्षोंसे उस आश्रमके प्रवेश-मार्गकी बड़ी आकर्षक शोभा हो रही थी। सघन लताएँ गृहके रूपमें परिणत होकर ऐसी चमक रही थीं, मानो चन्द्रमा चाँदनी बिखेरता हो। वहाँ भ्रमरोंको बिना प्रयास ही परितृप्ति प्राप्त होती थी। लाल कमलकी पंखुड़ियोंके समान कोमल नखवाली वराङ्गनाएँ वहाँ यत्र-तत्र सुन्दर राग आलाप रही थीं, मानो इन्द्रकी अप्सराएँ स्वर्गलोक छोड़कर पृथ्वीपर आ गयी हों। वहीं पासमें ही अनेक प्रकारके मत्त पक्षी आनन्दमें भरकर चीं-चीं-चूँ-चूँ शब्द कर रहे थे तथा भौंरे भी गूँज रहे थे। भाँति-भाँतिके प्रामाणिक (आकार-प्रकारवाले) कदम्ब, नीप, अर्जुन और साखू नामके वृक्ष शाखाओं तथा सामयिक सुन्दर फूलोंसे सम्पन्न होकर उस आश्रमकी शोभा बढ़ाते थे। आश्रमके ऊपर बैठे हुए पक्षियोंकी मधुर ध्वनिसे उसकी शोभा अनुपम हो रही थी। वहाँ रहकर सुचारु रूपसे काम करनेवाले सज्जन पुरुष धैर्यपूर्वक अपने कार्यमें तत्पर थे। प्रायः सर्वत्र यज्ञकुण्डोंसे यज्ञके धुएँ उठ रहे थे। हवन करनेसे आगकी प्रचण्ड लपटें निकल रही थीं तथा गृहस्थ ब्राह्मणोंद्वारा यज्ञ आरम्भ था। अतः ऐसा जान पड़ता था, मानो पाप-रूपी हाथीको शान्त करनेके विचारसे अत्यन्त तीखे दाँतवाले मतवाले सिंह ही यहाँ आ गये हों।

इस प्रकार सर्वत्र दृष्टि डालते हुए राजा प्रजापालने अनेक उपायोंका आश्रय लेकर उस उत्तम आश्रमके भीतर प्रवेश किया। वहाँ चले जानेपर सामने अत्यन्त तेजस्वी मुनिवर महातपा दिखायी पड़े। उस समय पुण्यात्माओं एवं ब्रह्मवेत्ताओंमें शिरोमणि वे ऋषि कुशाके आसनपर बैठे थे। उनका तेज ऐसा था, मानो अनन्त सूर्योंने एक रूप धारण कर लिया हो। महातपाका दर्शन पाकर प्रजापालको मृगकी बात ही भूल गयी। ऋषिके सत्सङ्गसे उसके विचार शुद्ध हो गये थे। धर्मके प्रति उसकी दृढ़ एवं अद्भुत आस्था हो गयी। ऐसे पवित्र अन्तःकरणवाले राजा प्रजापालको देखकर महातपामुनिने उसका आसन एवं पाद्य आदिसे आतिथ्य-सत्कार किया और उस नरेशने भी मुनिको प्रणाम किया। वसुधे! साथ ही मुनिसे उसने यह पवित्र प्रश्न किया—'भगवन्! दुःखरूपी संसार-सागरमें डूबते हुए मनुष्योंके मनमें यदि दुस्तर संसारके तरने (विजय पाने)की इच्छा हो तो उन्हें जो कार्य करना उचित हो, वह आप मुझ शरणागतको बतानेकी कृपा करें।'

महातपाजी बोले—राजन्! संसाररूपी समुद्रमें डूबनेवाले मनुष्योंके लिये कर्तव्य यह है कि वे पूजा, होम, दान, ध्यान एवं अनेक यज्ञ आदि उपकरणरूपी दृढ़ नौकाका आश्रय लें। नाव बनानेमें कीलोंकी आवश्यकता होती है। ये उपर्युक्त पूजा आदि, जिनसे मोक्ष मिलना

निर्विवाद है, कीलोंका काम देती हैं। देवसमाजसे बड़ी रस्सियोंकी आवश्यकता पूरी हो जाती है। अतः अब तुम प्राण आदिके सहयोगसे त्रिलोकेश्वररूपी नौका तैयार कर लो। भगवान् नारायण ही त्रिलोकेश्वर हैं। उनकी कृपासे नरकमें नहीं जाना पड़ता। राजन्! जो बड़भागीजन उन देवेश्वरको भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं, उनकी चिन्ताएँ शान्त हो जाती हैं और वे उनके उस परम पदको पा लेते हैं, जो कभी नष्ट नहीं होता।

राजा प्रजापालने पूछा—भगवन्! आप सम्पूर्ण धर्मोंको भलीभाँति जानते हैं। मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुषको सनातन श्रीहरिकी विभूतियोंका किस प्रकार चिन्तन करना चाहिये? इसे बतानेकी कृपा करें।

मुनिवर महातपाने कहा—राजन्! तुम बड़े विज्ञ पुरुष हो। सम्पूर्ण योगियोंके स्वामी श्रीविष्णु जिन रूपोंमें अभिव्यक्त होते हैं, उस विभूतिका वर्णन सुनो। पितरोंके सहित सभी देवता तथा ब्राह्मणके भीतर विचरनेवाले ब्रह्मा प्रभृति—ये सब-के-सब श्रीविष्णुसे ही उत्पन्न हुए हैं—ऐसी वेदकी श्रुति प्रसिद्ध है। अग्नि, अश्विनीकुमार, गौरी, गजानन, शेषनाग, कार्तिकेय, आदित्यगण, दुर्गासहित चौंसठ मातृकाएँ, दस दिशाएँ, कुबेर, वायु, यम, रुद्र, चन्द्रमा और पितृगण—इन सबकी उत्पत्तिमें जगत्प्रभु श्रीहरिकी ही प्रधानता है। हिरण्यगर्भ श्रीहरिके श्रीविग्रहमें इनका स्थान बना रहता है और वहाँसे निकलकर ये चारों ओर पृथक्-पृथक् परिलक्षित होते हैं, पर अहंता (मैं हूँ)का अभिमान उनका साथ नहीं छोड़ता। (अध्याय १७-१८)

प्रतिपदा तिथि एवं अग्निकी महिमाका वर्णन

महातपा बोले—राजन्! प्रसङ्गवश भगवान् विष्णुकी विभूतिका वर्णन कर दिया। अब तिथियोंका माहात्म्य कहता हूँ, सुनो। जब ब्रह्माके क्रोधसे अग्निका प्राकट्य हुआ तो उन्होंने ब्रह्माजीसे कहा—'विभो! मेरे लिये तिथि निश्चय करनेकी कृपा कीजिये, जिसमें पूजित होकर सम्पूर्ण जगत्के समक्ष मैं प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकूँ।'

ब्रह्माजी बोले—परमश्रेष्ठ अग्निदेव! देवताओं, यक्षों और गन्धर्वोंके भी पूर्व तुम सर्वप्रथम प्रतिपदाको उत्पन्न हुए हो और तुम्हारे पश्चात् इन सबका यहाँ प्राकट्य हुआ है। अतः प्रतिपद् नामकी यह तिथि तुम्हारे लिये विहित होगी। उस तिथिमें प्रजापतिके मूर्तिभूत हविष्यसे जो तुममें हवन करेंगे, उन्हें सम्पूर्ण देवताओं और पितरोंकी प्रसन्नता प्राप्त होगी। चार प्रकारके प्राणी—अण्डज, पिण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज तथा देवता, दानव, मानव, पशु एवं गन्धर्व-ये सभी तुममें हवन करनेपर तृप्त हो सकते हैं। तुम्हारे प्रति श्रद्धा रखनेवाला जो पुरुष प्रतिपदा तिथिके दिन उपवास करेगा अथवा केवल दूधके आहारपर ही रहेगा, उसके महान् फलका वर्णन सुनो—'छब्बीस चतुर्युगीतक वह स्वर्गलोकमें सम्मानपूर्वक पूजित होगा। इस जन्ममें वह पुरुष प्रतापी, धनवान् एवं सुन्दर रूपवाला राजा होता है और मरनेपर स्वर्गमें उसे परम प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।'

इस प्रकार ब्रह्माजीके बतानेपर अग्निदेव मौन हो गये और उनकी आज्ञाके अनुसार दिये हुए लोक (अग्निलोक) को पधारे। जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर अग्निके जन्मसे सम्बन्धित इस प्रसङ्गको सुनेगा, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट जायगा—इसमें कोई संशय नहीं। (अध्याय १९)

अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग और उनके द्वारा भगवत्स्तुति

राजा प्रजापालने पूछा—ब्रह्मन्! इस प्रकार महात्मा अग्निदेवका जन्म तो हो गया; किंतु विराट् पुरुषके प्राण-अपानरूप अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्ति कैसे हुई?

मुनिवर महातपाने कहा—राजन्! मरीचि मुनि ब्रह्माजीके पुत्र हैं। स्वयं ब्रह्माजीने ही (अपने पुत्रोंके रूपमें) चौदह स्वरूप धारण किये थे। उनमें मरीचि सबसे बड़े थे। उन मरीचिके पुत्र महान् तेजस्वी कश्यप मुनि हुए। ये प्रजापतियोंमें सबसे अधिक श्रीसम्पन्न थे; क्योंकि ये देवताओंके पिता थे। राजन्! बारहों आदित्य उन्हींके पुत्र हैं। ये बारह आदित्य भगवान् नारायणके ही तेजोरूप हैं—ऐसा कहा गया है। इस प्रकार ये बारह आदित्य बारह मासके प्रतीक हैं और संवत्सर भगवान् श्रीहरिका रूप है। द्वादश आदित्योंमें मार्तण्ड महान् प्रतापशाली हैं। देवशिल्पी विश्वकर्माने अपनी परम तेजोमयी कन्या संज्ञाका विवाह मार्तण्डसे कर दिया। उससे इनकी दो संतानें उत्पन्न हुईं, जिनमें पुत्रका नाम यम और कन्याका नाम यमुना हुआ। संज्ञासे सूर्यका तेज सहा नहीं जा रहा था, अतः उसने मनके समान गतिवाली वडवा (घोड़ी) का रूप धारण किया और अपनी छायाको सूर्यके घरमें स्थापितकर उत्तर-कुरुमें चली गयी। अब उसकी प्रतिच्छाया वहाँ रहने लगी और सूर्यदेवको उससे भी दो संतानें हुईं, जिनमें पुत्र शनि नामसे विख्यात हुआ और कन्या तपती नामसे प्रसिद्ध हुई। जब छाया संतानोंके प्रति विषमताका व्यवहार करने लगी तो सूर्यदेवकी आँखें क्रोधसे लाल हो उठीं। उन्होंने छायासे कहा—'भामिनि! तुम्हारा अपनी इन संतानोंके प्रति विषमताका व्यवहार करना उचित नहीं है।' सूर्यके ऐसा कहनेपर भी जब छायाके विचारमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ तो एक दिन अत्यन्त दुःखित होकर यमराजने अपने पितासे कहा—'तात! यह हमलोगोंकी माता नहीं है; क्योंकि अपनी दोनों संतानों—शनि और तपतीसे तो यह प्यार करती है और हमलोगोंके प्रति शत्रुता रखती है। यह विमाताके समान हमलोगोंसे विषमतापूर्ण व्यवहार करती है।'

उस समय यमकी ऐसी बात सुनकर छाया क्रोधसे भर उठी और उसने यमको शाप दे दिया—'तुम शीघ्र ही प्रेतोंके राजा होओगे।' जब छायाके ऐसे कटु वचन सूर्यने सुने तो पुत्रके कल्याणकी कामनासे वे बोल उठे—'बेटा! चिन्ताकी कोई बात नहीं—तुम वहाँ मनुष्योंके धर्म और पापका निर्णय करोगे और लोकपालके रूपसे स्वर्गमें भी तुम्हारी प्रतिष्ठा होगी।' उस अवसरपर छायाके प्रति क्रोध हो जानेके कारण सूर्यका चित्त चञ्चल हो उठा था। अतः उन्होंने बदलेमें शनिको शाप दे डाला—'पुत्र! माताके दोषसे तुम्हारी दृष्टिमें भी क्रूरता भरी रहेगी।'

ऐसा कहकर भगवान् सूर्य उठे और संज्ञाको ढूँढ़नेके लिये चल पड़े। उन्होंने देखा, उत्तर कुरुदेशमें संज्ञा घोड़ीका वेष बनाकर विचर रही है। तत्पश्चात् वे भी अश्वका रूप धारण करके वहाँ पहुँच गये। वहाँ जाकर उन्होंने अपनी आत्मरूपा संज्ञासे सृष्टिरचनाके उद्देश्यसे समागम किया। जब प्रचण्ड तेजसे उद्दीप्त सूर्यने वडवारूपिणी संज्ञामें गर्भाधान किया तो उनका तेज अत्यन्त प्रज्वलित हो दो भागोंमें विभक्त होकर गिर पड़ा। आत्मविजयी प्राण और अपान पहलेसे ही संज्ञाकी योनिमें अव्यक्तरूपसे स्थित थे। सूर्यदेवके तेजके सम्बन्धसे वे दोनों मूर्तिमान् हो गये। इस प्रकार घोड़ीका रूप धारण करनेवाली विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञासे इन दोनों पुरुषरत्नोंका जन्म हुआ। इसी कारण ये दोनों देवता सूर्यपुत्र अश्विनीकुमारोंके नामसे प्रसिद्ध हुए। सूर्य स्वयं प्रजापति कश्यपके पुत्र हैं और

विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञा उनकी पराशक्ति है। संज्ञाके शरीरमें ये दोनों पहले अमूर्त थे। अब सूर्यका अंश मिल जानेसे मूर्तिमान् हो गये। उत्पन्न होनेके बाद वे दोनों अश्विनीकुमार सूर्यके निकट गये और उन्होंने अपने मनकी अभिलाषा व्यक्त की—'भगवन्! हम दोनोंके लिये आपकी क्या आज्ञा है?'

सूर्यने कहा—पुत्रो! तुम दोनों देवश्रेष्ठ प्रजापति भगवान् नारायणकी भक्तिपूर्वक आराधना करो। वे देवाधिदेव तुम्हें अवश्य वर प्रदान करेंगे।

इस प्रकार भगवान् सूर्यके कहनेपर अश्विनीकुमार अत्यन्त कठिन तप करनेमें तत्पर हो गये। वे चित्तको समाहितकर 'ब्रह्मपार' नामक स्तोत्रका निरन्तर जप करने लगे। बहुत समयतक तपस्या करनेपर नारायण-स्वरूप ब्रह्मा उनसे संतुष्ट हो गये और बड़े प्रेमसे उन्हें वर दे दिया।

राजा प्रजापालने कहा—ब्रह्मन्! अश्विनीकुमारोंने अव्यक्तजन्मा भगवान् श्रीहरिकी जिस स्तोत्रद्वारा आराधना की थी, उसे मैं सुनना चाहता हूँ। आप उसे बतानेकी कृपा करें।

मुनिवर महातपा कहते हैं—राजन्! अश्विनी-कुमारोंने जिस प्रकार अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीकी स्तुति की और जिस स्तोत्रके परिणामस्वरूप उन्हें ऐसा फल प्राप्त हुआ, वह मुझसे सुनो। वह स्तुति इस प्रकार है—'भगवन्! आप निष्क्रिय, निष्प्रपञ्च और निराश्रय हैं। आपको किसीकी अपेक्षा एवं अवलम्ब नहीं है। आप गुणातीत, स्वप्रकाश, सर्वाधार, ममताशून्य और किसी दूसरे आलम्बकी अपेक्षासे रहित हैं। ऐसे ॐकारस्वरूप आप प्रभुको मेरा नमस्कार है। भगवन्! आप ब्रह्मा, महाब्रह्मा, ब्राह्मणोंके प्रेमी तथा पुरुष, महापुरुष एवं पुरुषोत्तम हैं। महादेव! देवोत्तम, स्थाणु—ये आपकी संज्ञाएँ हैं। सबका पालन करना आपका स्वभाव है। भूत, महाभूत, भूताधिपति; यज्ञ, महायज्ञ, यज्ञाधिपति; गुह्य, महागुह्य, गुह्याधिपति तथा सौम्य, महासौम्य और सौम्याधिपति—ये सभी शब्द आपमें ही सार्थक होते हैं। पक्षी, महापक्षी और पक्षिपति; दैत्य, महादैत्य एवं दैत्यपति तथा विष्णु, महाविष्णु और विष्णुपति—ये सभी आपके नाम हैं। आप प्रजाओंके एकमात्र अधिपति हैं। ऐसे परमेश्वर भगवान् नारायणको हमारा नमस्कार है।'

इस प्रकार अश्विनीकुमारोंके स्तुति करनेपर प्रजापति ब्रह्मा संतुष्ट हो गये। उन्होंने अत्यन्त प्रेमके साथ कहा—'वर माँगो। तुम लोगोंको मैं अभी वह वर देता हूँ, जो देवताओंके लिये भी परम दुर्लभ है तथा जिसके प्रभावसे तीनों लोकोंमें सुखपूर्वक विचरण कर सकोगे।'

अश्विनीकुमार बोले—भगवन्! हमें यज्ञोंमें देव-भाग देनेकी कृपा करें। प्रजापते! हम चाहते हैं कि देवताओंके समान सदा सोमपान करनेका अधिकार मुझे प्राप्त हो। इसके अतिरिक्त देवताओंके रूपमें हम-लोगोंकी शाश्वत प्रतिष्ठा हो।

ब्रह्माजीने कहा—रूप, कान्ति, अनुपम आयुर्वेद-शास्त्रका ज्ञान तथा सोम-रस पीनेका अधिकार—ये सब तुम्हें सभी लोकोंमें सुलभ होंगे।

मुनिवर महातपा कहते हैं—राजन्! ब्रह्माजीने अश्विनीकुमारोंको ये सब वरदान द्वितीया तिथिको दिये थे, इसलिये यह परम श्रेष्ठ तिथि उनकी मानी गयी है। सुन्दर रूपकी अभिलाषा रखनेवाले मनुष्यको इस तिथिमें व्रत करना चाहिये। यह व्रत एक वर्षमें पूरा होता है। इसमें सदा पवित्र रहकर पुष्पोंका आहार करनेकी विधि है। इससे व्रतीको सुन्दरता प्राप्त होती है। साथ ही अश्विनी-कुमारोंके जो गुण कहे गये हैं, वे भी उसे सुलभ हो जाते हैं। अश्विनीकुमारोंके जन्मके इस उत्तम प्रसङ्गको सदा श्रवण करनेवाला मनुष्य पुत्रवान् होता है तथा वह सभी पापोंसे मुक्त भी हो जाता है। (अध्याय २०)

गौरीकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग, द्वितीया तिथि एवं रुद्रद्वारा जलमें तपस्या, दक्षके यज्ञमें रुद्र और विष्णुका संघर्ष

राजा प्रजापालने पूछा—महाप्राज्ञ ! परम पुरुष परमात्माकी शक्तिरूपा गौरीने, जिनका सभी देव-दानव स्तवन करते रहते हैं, किस वरदानके प्रभावसे सगुण विग्रह धारण किया ?

मुनिवर महातपाने कहा—जब अनेक रूपोंवाले रुद्रकी उत्पत्ति हो गयी तो उनके पिता प्रजापति ब्रह्माने स्वयं भगवान् नारायणके श्रीविग्रहसे प्रकटित हुई परममङ्गलमयी गौरीको भार्यारूपमें वरण करनेके लिये दे दिया। इन गौरीदेवीको 'भारती' भी कहा जाता है। परम सुन्दरी गौरीको पाकर रुद्रकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। तदनन्तर ब्रह्माजीने कहा—'रुद्र ! तुम तपके प्रभावसे प्रजाओंकी सृष्टि करो।' इसपर रुद्र मौन हो गये। फिर ब्रह्माने जब बार-बार प्रेरणा की तो रुद्रने उत्तर दिया—'इस कार्यमें मैं असमर्थ हूँ।' इसपर ब्रह्माजीने कहा—'तब तुम तपरूपी धनका संचय करो। क्योंकि कोई भी तपोहीन पुरुष प्रजाओंकी सृष्टि नहीं कर सकता।' यह सुनकर परमशक्तिशाली रुद्र जलमें निमग्न हो गये।

जब देवाधिदेव रुद्र जलमें प्रविष्ट हो गये तो ब्रह्माजीने उस परमसुन्दरी कन्या गौरीको पुनः अपने शरीरके भीतर अन्तर्हित कर लिया। तत्पश्चात् उनके मनमें पुनः सृष्टिका संकल्प होनेपर सात मानस पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। प्रजापति दक्ष भी उनके साथ प्रकट हुए। इसके बाद प्रजाओंकी सृष्टि सम्यक् प्रकारसे बढ़ने लगी। इन्द्रसहित समस्त देवता, आठ वसु, रुद्र, आदित्य और मरुद्गण—ये सभी प्रजापति दक्षकी कन्याओंके वंशज विख्यात हुए। इन गौरीके विषयमें पहले भी कहा जा चुका है। कालान्तरमें ब्रह्माजीने उन्हें दक्षप्रजापतिको पुत्रीके रूपमें प्रदान किया। ब्रह्माजीने पूर्व कालमें इन्हीं गौरीका विवाह महात्मा रुद्रके साथ किया था। नृपवर ! भगवान् श्रीहरिके विग्रहसे प्रकट हुई वही गौरी दक्षकी पुत्री होकर 'दाक्षायणी' कहलायीं। दक्षप्रजापतिने जब अपनी कन्याओंसे उत्पन्न हुए दौहित्रों—देवताओंके समाजको देखा तो उनका अन्तःकरण प्रसन्नतासे भर उठा। साथ ही अपने कुलकी समृद्धि-कामनासे प्रजापति ब्रह्माको प्रसन्न करनेके लिये उन्होंने यज्ञ आरम्भ कर दिया।

उस यज्ञमें मरीचि आदि सभी ब्रह्माके पुत्र अपने-अपने विभागमें व्यवस्थित होकर ऋत्विजोंका कार्य करने लगे। स्वयं मुनिवर मरीचि ब्रह्मा बने। दूसरे ब्रह्मपुत्र अन्य-अन्य स्थानोंपर नियुक्त हुए। अत्रि ऋषिको यज्ञमें अन्य स्थान प्राप्त हुआ। अङ्गिरा मुनि इस यज्ञमें आग्नीध्र बने, पुलस्त्य होता हुए और पुलह उद्गाता। उस यज्ञमें महान् तपस्वी क्रतु प्रस्तोता बने। प्रचेतामुनि प्रतिहर्ताका स्थान सुशोभित कर रहे थे। महर्षि वसिष्ठ उस यज्ञमें सुब्रह्मण्य-पदपर अधिष्ठित थे। चारों सनत्कुमार यज्ञके सभासद थे।

इस प्रकार ब्रह्माजीसे सभी लोकोंकी सृष्टि हुई है। अतएव वे सभीके द्वारा यजन करने योग्य हैं। इसी कारण यज्ञके आराध्य ब्रह्माजी स्वयं उस यज्ञमें उपस्थित थे। पितृगण भी प्रत्यक्ष रूप धारण करके वहाँ पधारे थे। इन लोगोंकी प्रसन्नतासे जगत्में प्रसन्नता छा जाती है। वहाँ अपना भाग चाहनेवाले सभी देवता, आदित्य, वसुगण, विश्वेदेव, पितर, गन्धर्व और मरुद्गण—सबको निर्दिष्ट यथोचित भाग प्राप्त हो गये। ठीक उसी समय वे रुद्र, जो बहुत पहले ब्रह्माजीके कोपसे प्रकट हुए थे और जिन्होंने अगाध जलमें मग्न होकर तप आरम्भ कर दिया था—पुनः जलसे बाहर निकल पड़े। उस समय उनका श्रीविग्रह ऐसा उद्दीप्त हो रहा था,

मानो हजारों सूर्य प्रकाशित हो उठे हों। वे भगवान् रुद्र सम्पूर्ण ज्ञानके निधान हैं। समस्त देवता उनके अङ्ग-भूत हैं। वे परम विशुद्ध प्रभु तपोबलके प्रभावसे सारे सृष्टि-प्रपञ्चको प्रत्यक्ष देखनेकी सामर्थ्यसे युक्त थे।

नरश्रेष्ठ! तत्काल ही उनसे पाँच दिव्य सर्ग उत्पन्न हुए। इसके अतिरिक्त चार भौम सर्गोंकी भी उनसे उत्पत्ति हुई, जिनमें मरणधर्मा जीव भी थे। राजन्! अब तुम इस रुद्र-सृष्टिका प्रसङ्ग सुनो। जब एकादश रुद्रोंके अधिपति भगवान् महारुद्र दस हजार वर्षोंतक तप करके उस अगाध जलके ऊपर आये तो उन्होंने देखा—वन-उपवनोंसे युक्त सस्यश्यामला पृथ्वी परम रमणीय प्रतीत हो रही है। उसपर मनुष्यों और पशुओंकी भरमार हो रही है। उन्हें दक्षप्रजापतिके भवनमें गूँजते हुए ऋत्विजोंके शब्द भी सुनायी पड़े। साथ ही यज्ञशालामें याज्ञिक पुरुषोंके द्वारा उच्चस्वरसे किया जाता हुआ वेदगान भी सुनायी पड़ा। तत्पश्चात् उन महान् तेजस्वी एवं सर्वज्ञ परम प्रभु रुद्रके मनमें अपार क्रोध उमड़ पड़ा। वे कहने लगे—'अरे! ब्रह्माजीने सर्वप्रथम अपनी सम्पूर्ण अन्तःशक्तिका प्रयोग करके मेरी सृष्टि की और मुझसे कहा कि तुम प्रजाओंकी सृष्टि करो। फिर यह सृष्टि-कार्य दूसरे किस व्यक्तिने सम्पन्न कर दिया।' ऐसा कहकर परम प्रभु भगवान् रुद्र क्रोधित होकर बड़े जोरसे गरज उठे। उस समय उनके कानोंसे तीव्र ज्वालाएँ निकल पड़ीं। उन ज्वालाओंसे भूत, वेताल, अग्निमय प्रेत एवं पूतनाएँ करोड़ोंकी संख्यामें प्रकट हो गयीं। वे सभी अपने-अपने हाथोंमें अनेक प्रकारके आयुध लिये हुए थे। जब उन भूतगणोंने भगवान् रुद्रकी ओर दृष्टि डाली तो स्वयं उन परमेश्वरने एक अत्यन्त सुन्दर रथकी भी रचना कर ली। उस रथमें दो सुन्दर मृग अश्वोंके स्थानपर कल्पित हुए थे। तीनों तत्त्व ही तीन रथके दण्डोंका काम कर रहे थे। धर्मराज उस रथके अक्षदण्ड बने तथा पवन उसकी घरघराहट थे। दिन-रात—ये दो उस रथकी पताकाएँ थीं। धर्म और अधर्म उसके ध्वजदण्ड थे। उस वेद-विद्यामय रथपर सारथिका कार्य स्वयं ब्रह्माजी कर रहे थे। गायत्री ही धनुष हुई और प्रणवने धनुषकी डोरीका स्थान ग्रहण किया। राजन्! उन देवेश्वरके लिये सातों स्वर सात बाण बन गये थे। इस प्रकार युद्ध-सामग्री एकत्रित करके परम प्रतापी रुद्र क्रोधयुक्त हो दक्षका यज्ञ विध्वंस करनेके लिये चल पड़े। जब भगवान् शंकर वहाँ पहुँचे तो ऋत्विजोंके मन्त्र विस्मृत हो गये। यज्ञके विपरीत इस अशुभ लक्षणको देखकर उन सभी ऋत्विजोंने कहा—'देवतागण! आपलोग शीघ्र सावधान हो जायँ। आप सभीके सामने कोई महान् भय उपस्थित होनेवाला है। सम्भवतः ब्रह्माद्वारा निर्मित कोई बलवान् असुर यहाँ आ रहा है। मालूम होता है कि इस परम दुर्लभ यज्ञमें भाग पानेके लिये उसके मनमें विशेष इच्छा जाग्रत् हो गयी है।' इसपर देवतागण अपने मातामह दक्षप्रजापतिसे बोले—'तात! इस अवसरपर हम लोगोंको क्या करना चाहिये? आप जो उचित हो, वह बतानेकी कृपा करें।'

दक्षप्रजापतिने कहा—आप सभी लोग तुरंत शस्त्र उठा लें और युद्ध प्रारम्भ कर दें।

उनके ऐसा कहते ही अनेक प्रकारके आयुध धारण करनेवाले देवताओं एवं रुद्रके अनुचरोंमें घोर संग्राम छिड़ गया। इस युद्धमें वेताल, भूत, कूष्माण्ड, पूतनाएँ और अनेक ग्रह आयुध हाथमें लेकर लोकपालोंके साथ भिड़ गये। रुद्रके अनुचर भूतगण आकाशमें जाकर भयंकर बाण, तलवार और फरसे चलाने लगे। उस समरभूमिमें उन भयंकर भूतोंके पास उल्काएँ, अस्थिसमूह तथा बाण प्रचुर-मात्रामें थे। युद्धभूमिमें रुद्रदेवके देखते-देखते वे क्रोध-पूर्वक देवताओंपर प्रचण्ड प्रहार करने लगे। तदनन्तर

संग्रामका रूप अत्यन्त भयावह हो गया। रुद्रने भगदेवताके दोनों नेत्र एक ही बाणसे छेद दिये। उनके बाणोंसे भग नेत्रहीन हो गये। यह देखकर तेजस्वी पूषाको क्रोध आ गया और वे रुद्रसे जा भिड़े। उस महान् युद्धमें पूषाने बाणोंका जाल-सा बिछा दिया। यह देखकर शत्रुहन्ता रुद्रने पूषाके सभी दाँत तोड़ डाले। रुद्रद्वारा पूषाका दन्तभङ्ग देखकर देवसेनामें सब ओर भगदड़ मच गयी। फिर तो ग्यारहों रुद्र वहाँ आ गये। तदनन्तर आदित्योंमें सबसे कनिष्ठ परम प्रतापी भगवान् विष्णु सहसा वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने देवसेनाको इस प्रकार हतोत्साह हो दिशा-विदिशाओंमें भागते देखकर कहा—'वीरो! पुरुषार्थका परित्याग करके तुमलोग कहाँ भागे जा रहे हो? तुम वीरोचित दर्प, महिमा, दृढ़निश्चय, कुलमर्यादा और ऐश्वर्यभाव—इतनी जल्दी कैसे भुला बैठे? तुम्हारे भीतर ब्रह्माके सभी गुण विराजमान हैं। तुम्हें दीर्घायु भी प्राप्त हो चुकी है। अतएव भूमिपर गिरकर उन पद्मयोनि प्रजापतिको साष्टाङ्ग प्रणाम करो। यह प्रयास कभी व्यर्थ नहीं जायगा और युद्धके लिये सन्नद्ध हो जाओ।'

उस समय भगवान् जनार्दनके श्रीअङ्गोंमें पीताम्बर सुशोभित हो रहा था। उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र एवं गदा विद्यमान थे। देवताओंसे ऐसा कहकर भगवान् श्रीहरि गरुड़पर आरूढ़ हो गये। फिर तो भगवान् रुद्रसे उनका रोमाञ्चकारी युद्ध छिड़ गया। रुद्रने पाशुपतास्त्रसे विष्णुको और विष्णुने कुपित होकर रुद्रपर नारायणास्त्रका प्रयोग किया। उनके द्वारा प्रयुक्त नारायणास्त्र और पाशुपतास्त्र—दोनों आकाशमें परस्पर टकराने लगे। एक हजार दिव्य वर्षोंतक उनका यह भीषण युद्ध चलता रहा। उस संग्राममें एकके मस्तकपर मुकुट सुशोभित हो रहा था तो दूसरेका सिर जटाजालसे भूषित था। एक शङ्ख बजा रहे थे तो दूसरेके हाथमें मङ्गलमय डमरूका वादन हो रहा था। एक तलवार लिये हुए थे तो दूसरे दण्ड। एकका सर्वाङ्ग कण्ठहारमें संलग्न कौस्तुभमणिसे उद्भासित हो रहा था तो दूसरेके श्रीअङ्ग भस्मद्वारा भूषित हो रहे थे। एक पीताम्बर धारण किये हुए थे, तो दूसरे सर्पकी मेखला। ऐसे ही उनके रौद्रास्त्र और नारायणास्त्रमें भी परस्पर होड़ मची हुई थी। उन हरि और हर—दोनोंमें बलकी एक-से-एक अधिकता प्रतीत होती थी। यह देखकर पितामह ब्रह्माजीने उनसे अनुरोध किया—'आप दोनों उत्तम व्रतोंके पालन करनेवाले हैं; अतएव अपने-अपने स्वभावके अनुसार अस्त्रोंको शान्त कर दें।'

ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर विष्णु और शिव—दोनों शान्त हो गये। तत्पश्चात् ब्रह्माजीने उन दोनोंसे कहा—'आप दोनों महानुभाव हरि और हरके नामसे जगत्में प्रतिष्ठा प्राप्त करेंगे। यद्यपि दक्षका यह यज्ञ विध्वंस हो चुका है। फिर भी यह सम्पूर्णताको प्राप्त होगा। दक्षकी इन देव-संतानोंसे संसार भी यशस्वी होगा।'

लोकपितामह ब्रह्माजी विष्णु और रुद्रसे कहकर वहाँ उपस्थित देवमण्डलीसे इस प्रकार बोले—'देवताओ! आपलोग इस यज्ञमें भगवान् रुद्रको भाग अवश्य दें; क्योंकि वेदकी ऐसी आज्ञा है कि यज्ञमें रुद्रका भाग परम प्रशस्त है। इन रुद्रदेवका तुम सभी स्तवन करो। जिनके प्रहारसे भग देवताके नेत्र नष्ट हुए हैं तथा जिन्होंने पूषाके दाँत तोड़ डाले हैं, उन भगवान् रुद्रकी इस लीलासे सम्बद्ध नामोंसे स्तुति करनी चाहिये। इसमें विलम्ब करना ठीक नहीं है। इसके फलस्वरूप ये प्रसन्न होकर तुमलोगोंके लिये वरदाता हो जायँगे।'

जब ब्रह्माजीने देवताओंसे इस प्रकार कहा तो वे आत्मयोनि ब्रह्माजीको प्रणाम करके परम अनुरागपूर्वक परमात्मा भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे।

देवगण बोले—'भगवन्! आप विषम नेत्रोंवाले त्र्यम्बकको मेरा निरन्तर नमस्कार है। आपके सहस्र (अनन्त) नेत्र हैं तथा आप हाथमें त्रिशूल धारण करते हैं। आपको बार-बार नमस्कार है। खट्वाङ्ग और दण्ड धारण करनेवाले आप प्रभुको मेरा बारंबार नमस्कार है। भगवन्! आपका रूप अग्निकी प्रचण्ड ज्वालाओं एवं करोड़ों सूर्योंके समान कान्तिमान् है। प्रभो! आपका दर्शन प्राप्त न होनेसे हमलोग जड़ विज्ञानका आश्रय लेकर पशुत्वको प्राप्त हो गये थे। त्रिशूलपाणे! तीन नेत्र आपकी शोभा बढ़ाते हैं। आर्तजनोंका दुःख दूर करना आपका स्वभाव है। आप विकृत मुख एवं आकृति बनाये रहते हैं। सम्पूर्ण देवता आपके शासनवर्ती हैं। आप परम शुद्धस्वरूप, सबके स्रष्टा तथा रुद्र एवं अच्युत नामसे प्रसिद्ध हैं। आप हमपर प्रसन्न हों। इन पूषाके दाँत आपके हाथोंसे भग्न हुए हैं। आपका रूप भयावह है। बृहत्काय वासुकिनागको धारण करनेसे आपका कण्ठदेश अत्यन्त मनोरम प्रतीत हो रहा है। अच्युत! आप विशाल शरीरवाले हैं। हम देवताओंपर अनुग्रह करनेके लिये आपने जो कालकूट विषका पान किया था, उसीसे आपका कण्ठ-भाग नील वर्णका हो गया है। सर्वलोकमहेश्वर! विश्वमूर्ते! आप हमपर प्रसन्न होनेकी कृपा करें। भगके नेत्रको नष्ट करनेमें पटु देवेश्वर! आप इस यज्ञका प्रधान भाग स्वीकार करनेकी कृपा कीजिये। नीलकण्ठ! आप सभी गुणोंसे सम्पन्न हैं। प्रभो! आप प्रसन्न हों और हमारी रक्षा करें। भगवन्! आपका स्वतःसिद्ध स्वरूप गौरवर्णसे शोभा पाता है। कपाली, त्रिपुरारि और उमापति—ये आपके ही नाम हैं। पद्मयोनि ब्रह्मासे प्रकट होनेवाले भगवन्! आप सभी भयोंसे हमारी रक्षा करें। देवेश्वर! आपके श्रीविग्रहके अन्तर्गत हम अनेक सर्ग एवं अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेद, विद्याओं, उपनिषदों तथा सभी अग्नियोंको भी देख रहे हैं। परम प्रभो! भव, शर्व, महादेव, पिनाकी, हर और रुद्र—ये सभी आपके ही नाम हैं। विश्वेश्वर! हम आपको प्रणाम करते हैं। आप हम सबकी रक्षा कीजिये।*

इस प्रकार देवताओंके स्तुति करनेपर देवाधिदेव भगवान् रुद्र प्रसन्न होकर उनके प्रति बोले—

भगवान् रुद्रने कहा—देवताओ! भगको नेत्र तथा पूषाको दाँत पुनः प्राप्त हो जायँ। दक्षका यज्ञ पूर्ण हो जाय। देवताओ! तुमलोगोंमें पशुत्व आ

---

* नमो विषमनेत्राय नमस्ते त्र्यम्बकाय च ॥
नमः सहस्रनेत्राय नमस्ते शूलपाणये। नमः खट्वाङ्गहस्ताय नमस्ते दण्डधारिणे ॥
त्वं देव हुतभुग्ज्वालाकोटिभानुसमप्रभः। अदर्शने वयं देव मूढविज्ञानतोऽधुना ॥
नमस्त्रिनेत्रार्तिहराय शम्भो त्रिशूलपाणे विकृतास्यरूप। समस्तदेवेश्वर शुद्धभाव प्रसीद रुद्राच्युत सर्वभाव ॥
पूष्णोऽस्य दन्तान्तक भीमरूप प्रलम्बभोगीन्द्र मनोज्ञकण्ठ। विशालदेहाच्युत नीलकण्ठ प्रसीद विश्वेश्वर विश्वमूर्ते ॥
भगाक्षिसंस्फोटनदक्षकर्मन् गृहाण भागं मखतः प्रधानम्। प्रसीद देवेश्वर नीलकण्ठ प्रपाहि नः सर्वगुणोपपन्न ॥
सिताङ्गरागाप्रतिपन्नमूर्ते कपालधारिंस्त्रिपुरघ्न देव। प्रसीद नः सर्वभयेषु चैवमुमापते पुष्करनालजन्म ॥
पश्यामि ते देहगतान् सुरेश सर्गाद्यनेकान् वेदवराननन्त। साङ्गान् सविद्यान् सपदक्रमांश्च सर्वानलांश्च त्वयि देवदेव ॥
भव शर्व महादेव पिनाकिन् रुद्र ते हर। नताः स्म सर्वे विश्वेश त्राहि नः परमेश्वर ॥
(वराहपु० २१। ६९-७७)

गया था, उसे भी मैं दूर कर दूँगा। मेरे दर्शनके प्रभावसे देवता उस पशुत्वसे मुक्त होकर शीघ्र ही पशुपतित्वको प्राप्त होंगे। मैं आदि सनातनकालसे सम्पूर्ण विद्याओंका अधीश्वर हूँ, पशुओं (बद्धजीवों)में मैं उनके अधीश्वररूपमें था, अतः लोकमें मेरा नाम पशुपति होगा। जो मेरी उपासना करेंगे, वे पाशुपत-दीक्षासे युक्त होंगे।

भगवान् रुद्रके ऐसा कहनेपर लोकपितामह ब्रह्माजी अत्यन्त स्नेहपूर्वक हँसते हुए उनसे बोले—'रुद्रदेव! आप निश्चय ही जगत्‌में पशुपति नामसे प्रसिद्ध होंगे। साथ ही यह दक्ष भी आपके सम्बन्धसे शुद्ध होकर संसारमें ख्याति प्राप्त करेगा। सम्पूर्ण संसारद्वारा इसका सम्मान होगा।

परम मेधावी ब्रह्माजी रुद्रसे ऐसा कहकर दक्षसे बोले—'वत्स! मैंने गौरीको तुम्हें पहलेसे सौंप रक्खा है। उसे तुम इन रुद्रको दे दो।' परमसुन्दरी गौरीने दक्षके घरमें कन्यारूपसे जन्म ग्रहण किया था। ब्रह्माजीके कहनेपर उन्होंने महाभाग रुद्रके साथ उनका विवाह कर दिया। दक्षकन्या गौरीका रुद्रके पाणिग्रहण कर लेनेपर दक्षका सम्मान उत्तरोत्तर बढ़ता गया। जब ब्रह्माजीने रुद्रको निवासके लिये कैलासपर्वत प्रदान किया, तब रुद्र अपने गणोंके साथ कैलासपर्वतपर चले गये। ब्रह्माजी भी दक्षप्रजापतिको साथ लेकर अपनी पुरीमें पधारे।

(अध्याय २१)

तृतीया तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें हिमालयकी पुत्रीरूपमें गौरीकी उत्पत्तिका वर्णन और भगवान् शंकरके साथ उनके विवाहकी कथा

मुनिवर महातपा कहते हैं—राजन्! जब भगवान् रुद्र कैलासपर निवास करने लगे तो कुछ समय बाद अपने पिता दक्षसे प्राणपति महादेवके साथ वैरका प्रसङ्ग गौरीको स्मरण हो आया। अब सहसा उनके मनमें रोषका भाव उत्पन्न हो गया। वे सोचने लगीं—'मेरे पिता दक्षने इन देवाधिदेवको यज्ञमें भाग न देकर कितना बड़ा अपराध किया था, जिसके फलस्वरूप मेरे पिताका यज्ञके निमित्त बनाया हुआ नगर तथा उनके यज्ञका भी विध्वंस करना पड़ा। अतएव शिवके अपराधी पितासे उत्पन्न शरीरका मुझे त्याग कर देना चाहिये और तपस्याद्वारा इन महेश्वरकी आराधना कर दूसरा जन्म ग्रहण कर इनकी अर्धाङ्गिनी बनकर मुझे इन्हें प्राप्त करना चाहिये। पिता दक्षमें तो बान्धवोचित प्रेमका लेश भी नहीं रह गया है। अतएव अब उनके घर मेरा जाना भी नहीं हो सकता।'

इस प्रकार भलीभाँति विचार करके परमसुन्दरी गौरी तप करनेके उद्देश्यसे गिरिराज हिमालयपर चली गयीं। दीर्घकालतक तपस्या करके उन्होंने अपने शरीरको सुखा डाला। फिर योगाग्निके द्वारा अपने शरीरको दग्ध कर वे पर्वतराज हिमालयकी पुत्रीके रूपमें प्रकट हुईं और उमा तथा महाकाली आदि उनके नाम हुए। हिमवान्‌के घरमें परम सुन्दर रूपसे सुशोभित होकर वे अवतीर्ण हुईं कि फिर 'भगवान् रुद्र ही मुझे पतिरूपसे प्राप्त हों'। इस संकल्पसे त्रिलोचन भगवान् शंकरका स्मरण करते हुए उन्होंने पुनः कठोर तपस्या आरम्भ कर दी। इस प्रकार जब गिरिराज हिमालयपर दीर्घकालतक तपद्वारा आराधना की तब ब्राह्मणका वेष धारण करके भगवान् शिव वहाँ पधारे। उस समय उनका वृद्ध शरीर था और सभी अङ्ग शिथिल हो रहे थे। साथ ही वे पग-पगपर गिरते-पड़ते चल रहे थे। बड़ी कठिनाईसे वे पार्वतीके पास पहुँचकर

बोले—'भद्रे ! मैं अत्यन्त भूखा ब्राह्मण हूँ, मुझे कुछ खाने योग्य पदार्थ दो ।'

उनके इस प्रकार कहनेपर परम कल्याणमयी शैलेन्द्रनन्दिनी उमाने उन ब्राह्मणसे कहा—'विप्रवर ! मैं आपको भोजनार्थ फल आदि पदार्थ दे रही हूँ । आप यथाशीघ्र स्नानकर इच्छानुसार उन्हें ग्रहण करें ।' उनके यों कहनेपर वे ब्राह्मणदेवता पासमें ही बहती हुई गङ्गाके जलमें स्नान करनेके लिये उतरे । उन ब्राह्मण-वेषधारी शिवने स्नान करते समय ही स्वयं मायास्वरूप एक भयंकर मकरका रूप धारण कर उन ब्राह्मणका (अपना) पैर पकड़ लिया । फिर पार्वतीको यह सब लीला दिखाते हुए कहने लगे—'दौड़ो-दौड़ो, मैं भारी विपत्तिमें पड़ गया हूँ । इस मकरसे तुम मेरे प्राणोंकी रक्षा करो और जबतक इसके द्वारा मैं नष्ट-भ्रष्ट नहीं कर दिया जाता, तभीतक तुम मुझे बचा लो।'

ब्राह्मणके ऐसा कहनेपर पार्वतीने सोचा—'गिरिराज हिमालय तो मेरे पिता हैं । उनका मैं पितृभावसे स्पर्श करती हूँ और भगवान् शंकरका पति-भावसे ! पर मैं तपस्विनी कैसे इन ब्राह्मणदेवताको स्पर्श करूँ ? परंतु इस समय जलमें ग्राहद्वारा पकड़े जानेपर भी यदि मैं इन्हें बाहर नहीं खींचती तो निःसंदेह मुझे ब्रह्महत्याका दोष लगेगा । दूसरी बात यह है कि अन्य धर्मजनित त्रुटियों या प्रत्यवायोंका प्रायश्चित्तद्वारा शोधन भी सम्भव है; किंतु इस ब्रह्महत्या-दोषका तो शोधक कोई प्रायश्चित्त भी नहीं दीखता ।' इस प्रकार मन-ही-मन कह वे तुरंत दौड़कर वहाँ पहुँच गयीं और हाथसे पकड़कर ब्राह्मणको जलसे बाहर खींचने लगीं । इतनेमें वे देखती क्या हैं कि जिन भूतभावन शंकरकी आराधनाके लिये वे तपस्या कर रही थीं, स्वयं वे शंकर ही उनके हाथमें आ गये हैं । इस प्रकार उन्हें देखकर वे लज्जित हो गयीं और पूर्व-समयका त्याग उन्हें स्मरण हो आया । अत्यन्त लज्जाके कारण उन परमसुन्दरी उमाके मुखसे भगवान् शंकरके प्रति कोई वचन नहीं निकल रहा था । वे बिल्कुल मौन हो गयीं। इसपर भगवान् रुद्र मुसकराते हुए कहने लगे—'भद्रे ! तुम मेरा हाथ पकड़ चुकी हो, फिर मेरा त्याग करना तुम्हारे लिये उपयुक्त नहीं है । कल्याणि ! तुम यदि मेरा पाणिग्रहण निष्फल कर दोगी तो मुझे अब अपने भोजनके लिये ब्रह्मपुत्री सरस्वतीसे कहना पड़ेगा ।'

'यह उपहासकी परम्परा आगे न बढ़े'—ऐसा सोचकर कुछ लज्जित-सी हुई पार्वती कहने लगीं—'देवाधिदेव ! महेश्वर ! आप तीनों लोकोंके स्वामी हैं । आपको पानेके लिये मेरा यह प्रयत्न है । पूर्वजन्ममें भी आप ही मेरे पतिदेव थे । इस जन्ममें भी आप ही मेरे पति होंगे, कोई दूसरा नहीं । किंतु अभी मेरे संरक्षक पिता पर्वतराज हिमालय हैं, अब मैं उनके पास जाती हूँ । उन्हें जताकर आप विधिपूर्वक मेरा पाणिग्रहण करें ।'

इस प्रकार कहकर परमसुन्दरी भगवती उमा अपने पिता हिमालयके पास गयीं और हाथ जोड़कर उनसे कहा—'पिताजी ! मुझे अनेक लक्षणोंसे प्रतीत होता है कि पूर्वजन्ममें भगवान् रुद्र ही मेरे पति रहे हैं । उन्होंने ही दक्षके यज्ञका विध्वंस किया था । वे ही संसारके संरक्षक रुद्र, ब्राह्मणका वेष धारण कर तपोवनमें मेरे पास आये और मुझसे भोजनकी याचना की । 'आप स्नान कर आइये'—मेरी इस प्रेरणापर वे वृद्ध ब्राह्मणका वेष बनाये हुए गङ्गामें गये । फिर वहाँ मकरद्वारा ग्रस्त हो जानेपर उन्होंने मुझे सहायताके लिये पुकारा । परंतु पिताजी ! मुझे ब्रह्महत्या न लग जाय, इस भयसे मैंने अपने हाथसे उन्हें पकड़ लिया । मेरे पकड़ते ही वे अपने वास्तविक रूपमें प्रकट हो गये और कहने लगे—'देवि ! यह तो पाणिग्रहण है । तपोवने

इसमें तुम्हें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये।' उनके ऐसा कहनेपर उनसे स्वीकृति लेकर मैं आपसे पूछने आयी हूँ। अतः इस अवसरपर मेरा जो कर्तव्य हो, उसे आप शीघ्र बतानेकी कृपा कीजिये।

पार्वतीकी ऐसी बात सुनकर हिमालय बड़े प्रसन्न हुए और अपनी पुत्रीसे कहने लगे—'सुमुखि! मैं आज संसारमें अत्यन्त धन्य हूँ, जो स्वयं भगवान् शंकर मेरे जामाता होनेवाले हैं। तुम्हारे द्वारा मैं सचमुच संततिवान् बन गया। पुत्रि! तुमने मुझको देवताओंका सिरमौर बना दिया है; पर क्षणभर रुकना। मेरे आनेतक थोड़ी प्रतीक्षा करना।'

इस प्रकार कहकर पर्वतराज हिमालय सम्पूर्ण देवताओंके पितामह ब्रह्माजीके पास गये। वहाँ उनका दर्शन कर गिरिराजने नम्रतापूर्वक कहा—'भगवन्! उमा मेरी पुत्री है। आज मैं उसे भगवान् रुद्रको देना चाहता हूँ।' इसपर श्रीब्रह्माजीने भी उन्हें 'दे दो' कहकर अनुमति दे दी।

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर पर्वतराज हिमालय अपने घरपर गये और तुरंत ही तुम्बुरु, नारद, हाहा और हूहूको बुलाया। फिर किंनरों, असुरों और राक्षसोंको भी सूचना दी। अनेक पर्वत, नदियाँ, वृक्ष, ओषधिवर्ग तथा छोटे-बड़े अन्य पाषाण भी मूर्ति धारणकर भगवान् शंकरके साथ होनेवाले पार्वतीके विवाहको देखनेके लिये वहाँ आये। उस विवाहमें पृथ्वी ही वेदी बनी और सातों समुद्र ही कलश। सूर्य एवं चन्द्रमा उस शुभ अवसरपर दीपकका कार्य कर रहे थे तथा नदियाँ जल ढोने-परसनेका काम कर रही थीं। जब इस प्रकार सारी व्यवस्था हो गयी, तब गिरिराज हिमालयने मन्दराचलको भगवान् शंकरके पास भेजा। भगवान् शंकरकी स्वीकृतिसे मन्दराचल तत्काल वापस आ गये। फिर तो भगवान् शंकरने विधिपूर्वक उमाका पाणिग्रहण किया। उस विवाहके उत्सवपर पर्वत और नारद—ये दोनों गान कर रहे थे। सिद्धोंने नाचनेका काम पूरा किया था। वनस्पतियाँ अनेक प्रकारके पुष्पोंकी वर्षा कर रही थीं तथा सुन्दर रूपवती अप्सराएँ उच्चस्वरसे गा-गाकर नृत्य करनेमें संलग्न थीं। उस विवाह-महोत्सवमें लोकपितामह चतुर्मुख ब्रह्माजी स्वयं ब्रह्माके स्थानपर विराजमान थे। उन्होंने प्रसन्न होकर उमासे कहा—पुत्रि! संसारमें तुम-जैसी पत्नी और शंकर-सरीखे पति सबको सुलभ हों।' भगवान् शंकर और भगवती उमा—दोनों एक साथ बैठे थे। उनसे इस प्रकार कहकर ब्रह्माजी अपने धामको लौट आये।

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि! रुद्रका प्राकट्य, गौरीका जन्म तथा विवाह—यह सारा प्रसङ्ग राजा प्रजापालके पूछनेपर परम तपस्वी महातपा ऋषिने उन्हें जैसे सुनाया था, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मैंने तुम्हें बता दिया। देवी गौरीके जन्म, विवाहादि—सभी कार्य तृतीया तिथिको ही सम्पन्न हुए थे, अतएव तृतीया उनकी तिथि मानी जाती है। उस तिथिको नमक खाना सर्वथा निषिद्ध है। जो स्त्री उस दिन उपवास करती है, उसे अचल सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। दुर्भाग्यग्रस्त स्त्री या पुरुष तृतीया तिथिको लवणके परित्यागपूर्वक इस प्रसङ्गका श्रवण करे तो उसको सौभाग्य, धन-सम्पत्ति और मनोवाञ्छित पदार्थोंकी प्राप्ति होती है, उसे जगत्‌में उत्तम स्वास्थ्य, कान्ति और पुष्टिका भी लाभ होता है।

(अध्याय २२)

गणेशजीकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग और चतुर्थी तिथिका माहात्म्य

राजा प्रजापालने पूछा—महामुने ! गणपतिका जन्म कैसे हुआ, उन्होंने सगुणरूप कैसे धारण किया ? यह संशय मेरे हृदयके लिये कष्टप्रद बन गया है । अतः आप इसे दूर करनेकी कृपा कीजिये ।

महातपा बोले—राजन् ! पूर्व समयकी बात है—सम्पूर्ण देवता और तपको ही धन माननेवाले ऋषिगण कार्य आरम्भ करते थे और उसमें उन्हें निश्चय ही सिद्धि प्राप्त हो जाती थी । फिर ऐसी स्थिति आ गयी कि अच्छे मार्गपर चलनेवाले लोग विघ्नका सामना करते हुए किसी प्रकार कार्यमें सफलता पाने लगे, पर निकृष्ट कार्यशील व्यक्तिकी कार्य-सिद्धिमें कोई विघ्न नहीं आता । तब पितरोंसहित सम्पूर्ण देवताओंके मनमें यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि विघ्न तो असत् कार्योंमें होना चाहिये । अतः इस विषयपर वे परस्पर विचार करने लगे । इस प्रकार मन्त्रणा करते-करते उन देवताओंके मनमें भगवान् शंकरके पास चलकर इस गुत्थीको सुलझानेकी इच्छा हुई । अतएव कैलास पहुँचकर उन्होंने परम गुरु शंकरको प्रणामकर विनयपूर्वक इस प्रकार प्रार्थना की ।

देवता बोले—देवाधिदेव ! महादेव ! शूलपाणि ! त्रिलोचन ! भगवन् ! हम देवताओंसे भिन्न असुरोंके कार्यमें ही विघ्न उपस्थित करना आपके लिये उचित है, हमारे कार्योंमें नहीं । देवताओंके इस प्रकार कहनेपर भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और वे निर्निमेष दृष्टिसे भगवती उमाको देखने लगे । देवता भी वहीं थे । पार्वतीकी ओर देखते हुए वे मन-ही-मन सोचने लगे—'अरे, इस आकाशका कोई स्वरूप क्यों नहीं दीखता ? पृथ्वी, जल, तेज और वायुकी मूर्ति तो चक्षुगोचर होती है; किंतु आकाशकी मूर्ति क्यों नहीं दीखती ।' ऐसा सोचकर ज्ञानशक्तिके भण्डार परमपुरुष भगवान् रुद्र हँस पड़े । आकाशकी मूर्ति न देखकर शम्भुने जो हँस दिया, इसका अभिप्राय था—'बहुत पहले ब्रह्माजीके मुखसे वे सुन चुके थे कि शरीरधारी व्यक्तियोंकी ही मूर्ति होती है । आकाशके शरीरधारी न होनेके कारण इसकी मूर्ति असम्भव है । फिर तो उन परब्रह्म रुद्रके द्वारा पृथ्वी, जल, तेज और वायु—इन चारोंके सहयोगसे यह एक अद्भुत कार्य सम्भव हो गया । अभी हँसी बंद भी नहीं हुई थी, इतनेमें एक परम तेजस्वी कुमार प्रकट हो गया । उसका मुख तेजसे चमक रहा था । उस तेजसे दिशाएँ चमकने लगीं । भगवान् शिवके सभी गुण उसमें संनिहित थे । ऐसा जान पड़ता था, मानो साक्षात् दूसरे रुद्र ही हों । वह कुमार एक महान् आत्मा था । वह प्रकट होकर अपनी सस्मित दृष्टि, अद्भुत कान्ति, दीप्त मूर्ति तथा रूपके कारण देवताओंके मनको मोहित कर रहा था । उसका रूप बड़ा ही आकर्षक था । भगवती उमा उसे निर्निमेष दृष्टिसे देखने लगीं । यह अद्भुत कार्य देखकर तथा 'स्त्रीका स्वभाव चञ्चल होता है, सम्भवतः उमाकी आँखें भी इस अनुपम सुन्दर बालकपर मुग्ध हो गयी हैं'—यह मानकर भगवान् रुद्रके मनमें क्रोधका आविर्भाव हो गया । अतः उन परम प्रभुने गणेशजीको शाप दे दिया—'कुमार ! तुम्हारा मुख हाथीके मुख-जैसा और पेट लम्बा होगा । सर्प ही तुम्हारे यज्ञोपवीतका काम देंगे—यह नितान्त सत्य है ।'

इस प्रकार गणेशजीको शाप देनेपर भी भगवान् शंकरका रोष शान्त नहीं हुआ । उनका शरीर क्रोधसे काँप रहा था । वे उठकर खड़े हो गये । त्रिशूलधारी रुद्रका शरीर जैसे-जैसे हिलता, वैसे-वैसे उनके श्रीविग्रहके रोमकूपोंसे तेजोमय जल निकलकर बाहर गिरने लगा । उससे दूसरे अनेक विनायक उत्पन्न हो गये । उन सभीके मुख हाथीके मुख-जैसे थे तथा उनके शरीरकी आभा काले खैर-वृक्ष या अञ्जनके

समान थीं। वे हाथोंमें अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये हुए थे। अब देवता व्यग्र-मनसे सोचने लगे—'अरे, यह क्या हो गया! एक ही बालक ऐसा अतुलित महान् कार्य कर रहा है। हम देवताओंकी अभिलाषा अनायास ही पूरी हो गयी। पर इसके चारों ओर ये वैसे ही गण कहाँसे आ पहुँचे!'

उस समय उन विनायकोंके कारण देवताओंकी चिन्ता अत्यधिक बढ़ गयी। पृथ्वीमें क्षोभ उत्पन्न हो गया। तब चार मुखोंसे शोभा पानेवाले ब्रह्माजी अनुपम विमानपर विराजमान होकर आकाशमें आये और यों कहा—'देवताओ! तुम लोग धन्य हो। यों तुम सभी तीन नेत्रवाले अद्भुत रूपधारी भगवान् रुद्रके कृपापात्र हो। साथ ही तुमने असुरोंके कार्यमें विघ्न उत्पन्न करनेवाले गणेशजीको प्रणाम करनेका सौभाग्य प्राप्त किया है।' उनसे इस प्रकार कहनेके पश्चात् ब्रह्माजीने भगवान् रुद्रसे कहा—'विभो! आपके मुखसे प्रकट हुआ जो यह बालक है, इसे ही आप इन विनायकोंका स्वामी बना दें। ये शेष दूसरे विनायक इनके अनुगामी—अनुचर बनकर रहें। प्रभो! साथ ही मेरी प्रार्थना है कि आपके वर-प्रभावसे आकाशको भी शरीरधारी बनकर पृथ्वी आदि चारों महाभूतोंमें रहनेका सुअवसर मिल जाय। इससे एक ही आकाश अनेक प्रकारसे व्यवस्थित हो सकता है।'

इस प्रकार भगवान् रुद्र और ब्रह्माजी बातें कर ही रहे थे कि विनायक वहाँसे चले गये। फिर पितामह-ने शम्भुसे कहा—'देव! आपके हाथमें अनेक समुचित अस्त्र हैं। आप ये अस्त्र तथा वर अब इस बालकको प्रदान करें, यह मेरी प्रार्थना है।' ऐसा कहकर ब्रह्माजी वहाँसे चले गये। तब भगवान् शंकरने अपने सुपुत्र गणेशजीसे कहा—'पुत्र! विनायक, विघ्नहर, गजास्य और भवपुत्र—इन नामोंसे तुम प्रसिद्ध होगे। क्रूर-दृष्टिवाले ये विनायक बड़े उग्र स्वभावके हैं। पर ये सब तुम्हारी सेवा करेंगे। प्रकृष्ट यज्ञ, दान आदि शुभ कर्मके प्रभावसे शक्तिशाली बनकर ये कार्योंमें सिद्धि प्रदान करेंगे। देवताओं, यज्ञों तथा अन्य कार्योंमें भी सबसे श्रेष्ठ स्थान तुम्हें प्राप्त होगा। सर्वप्रथम पूजा पानेका अधिकार तुम्हारा है। यदि ऐसा न हुआ तो तुम्हारे द्वारा उस कार्यकी सफलता बाधित होगी।'

महाराज! जब ये बातें समाप्त हो गयीं तो भगवान् शंकरने देवताओंके साथ जलपूर्ण सुवर्ण कलशोंके विभिन्न तीर्थोंके जलसे उन गणेशजीका अभिषेक किया। राजन्! इस प्रकार जलसे अभिषिक्त होकर विनायकोंके स्वामी भगवान् गणेशकी अद्भुत शोभा होने लगी। उन्हें अभिषिक्त देखकर सभी देवता भगवान् शंकरके सामने ही उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे।

देवता बोले—गजानन! आप गणोंके स्वामी हैं। आपका एक नाम विनायक है। आप प्रचण्ड पराक्रमी हैं। आपको हमारा निरन्तर नमस्कार है। भगवन्! विघ्न दूर करना आपका स्वभाव है। आप सर्पकी मेखला पहनते हैं। भगवान् शंकरके मुखसे आपका प्रादुर्भाव हुआ है। लम्बे पेटसे आपकी आकृति उद्भासित होती है। हम सम्पूर्ण देवता आपको प्रणाम करते हैं। आप हमारे सभी विघ्न सदाके लिये शान्त कर दें।*

* नमस्ते गजवक्त्राय नमस्ते गणनायक। विनायक नमस्तेऽस्तु नमस्ते चण्डविक्रम॥
नमोऽस्तु ते विघ्नहर्त्रे नमस्ते सर्पमेखल। नमस्ते रुद्रवक्त्रोत्थ प्रलम्बजठराश्रित॥
सर्वदेवनमस्काराद्विघ्नं कुरु सर्वदा। (वराहपु० २३। ३३-३४)

राजन् ! जब इस प्रकार भगवान् रुद्रने महान् पुरुष श्रीगणेशजीका अभिषेक कर दिया और देवताओंद्वारा उनकी स्तुति सम्पन्न हो गयी, तब वे भगवती पार्वतीके पुत्रके रूपमें शोभा पाने लगे । गणाध्यक्ष गणेशजीकी (जन्म एवं अभिषेक आदि) सारी क्रियाएँ चतुर्थी तिथिके दिन ही सम्पन्न हुई थीं । अतएव तभीसे यह तिथि समस्त तिथियोंमें परम श्रेष्ठ स्थानको प्राप्त हुई । राजन् ! जो भाग्यशाली मानव इस तिथिको तिलोंका आहार कर भक्तिपूर्वक गणपतिकी आराधना करता है, उसपर वे अत्यन्त शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं—इसमें कोई संशय नहीं है । महाराज ! जो व्यक्ति इस स्तोत्रका पठन अथवा श्रवण करता है, उसके पास विघ्न कभी नहीं फटकते और न उसके पास लेशमात्र पाप ही शेष रह जाता है ।

(अध्याय २३)

सर्पोंकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग और पञ्चमी तिथिकी महिमा

पृथ्वीने पूछा—मेरा उद्धार करनेवाले भगवन् ! आपके श्रीविग्रहका स्पर्श पाकर महान् विक्रमशाली सर्प कैसे मूर्तिमान् बन गये तथा उन्हें आपने क्यों बनाया ?

भगवान् वराह बोले—वसुंधरे ! गणपतिके जन्मका वृत्तान्त सुननेके पश्चात् राजा प्रजापालने यही प्रसङ्ग बड़ी मीठी वाणीमें उत्तमव्रती महातपासे पूछा था ।

राजा प्रजापालने पूछा—भगवन् ! कश्यपजीके वंशसे सम्बन्धित नाग तो बड़े ही दुष्ट प्रकृतिके थे । फिर उन्हें विशाल शरीर धारण करनेका अवसर कैसे मिल गया ? यह प्रसङ्ग आप मुझे बतानेकी कृपा कीजिये ।

मुनिवर महातपाजी कहते हैं—राजन् ! मरीचि ब्रह्माजीके प्रथम मानस पुत्र थे । उनके पुत्र कश्यपजी हुए । मन्द मुसकानवाली दक्षकी पुत्री कद्रू उनकी भार्या हुई । उससे कश्यपजीके अनन्त, वासुकि, महाबली कम्बल, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शङ्ख, कुलिक और पापराजिल आदि नामोंसे विख्यात अनेक पुत्र हुए । राजेन्द्र ! ये प्रधान सर्प कश्यपजीके पुत्र हैं । बादमें इन सर्पोंकी संतानोंसे यह सारा संसार ही भर गया । वे बड़े कुटिल और नीच कर्ममें रत थे । उनके मुँहमें अत्यन्त तीखा विष भरा था । वे मनुष्योंको अपनी दृष्टिमात्रसे या काटकर भी भस्म कर सकते थे । राजन् ! उनका दंश शब्दकी ही तरह तीव्र गामी था । उससे भी मनुष्योंकी मृत्यु हो जाती । इस प्रकार प्रजाका प्रतिदिन दारुण संहार होने लगा । यों अपना भीषण संहार देखकर प्रजावर्ग एकत्र होकर सबको शरण देनेमें समर्थ परमप्रभु भगवान् ब्रह्माजीकी शरणमें गये । राजन् ! इसी उद्देश्यको सामने रखकर प्रजाओंने कमल-पर प्रकट होनेवाले ब्रह्माजीसे कहा—'भगवन् ! आपमें असीम शक्ति है । इन तीखे दाँतोंवाले सर्पोंसे आप हमारी रक्षा करें । इनकी दृष्टि पड़ते ही मनुष्य तथा पशुसमूह भस्म हो जाते हैं—यह प्रतिदिनकी बात हो गयी है । भगवन् ! इन सर्पोंद्वारा आपकी सृष्टिका संहार हो रहा है । महामते ! आप इसकी जानकारी प्राप्तकर ऐसा प्रयत्न करें कि यह दुःखद परिस्थिति शीघ्र दूर हो जाय ।'

ब्रह्माजी बोले—प्रजापालो ! तुम भयसे घबड़ा गये हो । मैं तुम्हारी रक्षा अवश्य करूँगा । पर अब तुम सभी अपने-अपने स्थानपर चलो ।

अव्यक्तमूर्ति ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर वे प्रजाएँ वापस आ गयीं । उस समय ब्रह्माजीके मनमें

असीम क्रोध उत्पन्न हो गया। उन्होंने वासुकि प्रभृति प्रमुख सर्पोंको बुलाया और उन्हें शाप दे दिया।

ब्रह्माजीने कहा—नागो! तुम मेरेद्वारा उत्पन्न किये हुए मनुष्योंकी मृत्युके कारण बन गये हो। अतः आगे स्वायम्भुव मन्वन्तरमें तुम्हारा अपनी ही माताके शापद्वारा घोर संहार होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है।

जब ब्रह्माजीने इस प्रकार उन श्रेष्ठ सर्पोंसे कहा तब सर्पोंके शरीरमें भयसे कँपकँपी मच गयी। वे उन प्रभुके पैरोंपर गिर पड़े और ये वचन कहे।

नाग बोले—भगवन्! आपने ही तो कुटिल जातिमें हमारा जन्म दिया है। विष उगलना, दुष्टता करना, किसी वस्तुको देखकर उसे नष्ट कर देना—यह हमारा अमिट स्वभाव आपके द्वारा ही निर्मित है। अब आप ही उसे शान्त करनेकी कृपा करें।

ब्रह्माजीने कहा—मैं मानता हूँ, तुम्हें मैंने उत्पन्न किया है और तुममें कुटिलता भी भर दी है, पर इसका अभिप्राय यह नहीं है कि तुम निर्दय होकर नित्य मनुष्योंको खाया करो।

सर्पोंने कहा—भगवन्! आप हमें अलग-अलग रहनेके लिये कोई सुनिश्चित स्थानकी व्यवस्था कर दीजिये और हमारे द्वारा डँसे जानेकी स्थिति एवं नियम भी बता दें।

राजन्! नागोंकी यह बात सुनकर ब्रह्माजीने कहा—'सर्पो! तुमलोग मनुष्योंके साथ भी रह सको—इसके लिये मैं स्थानका निर्णय कर देता हूँ। तुम सबलोग मनको एकाग्र कर मेरी आज्ञा सुनो—'सुतल, वितल और पाताल—ये तीन लोक कहे गये हैं। तुम्हें रहनेकी इच्छा हो तो वहीं निवास करो। वहाँ मेरी आज्ञा तथा व्यवस्थासे अनेक प्रकारके भोग तुम्हें भोगनेके लिये प्राप्त होंगे। रातके सातवें पहरतक तुम्हें वहाँ रहना है। फिर वैवस्वत मन्वन्तरके आरम्भमें कश्यपजीके यहाँ तुम्हारा जन्म होगा। देवतालोग तुम्हारे बन्धु-बान्धव होंगे। बुद्धिमान् गरुड़से तुम्हारा भाईपनेका सम्बन्ध होगा। उस समय कारणवश तुम्हारी सारी संतान (जनमेजयके यज्ञमें) अग्निके द्वारा जलकर स्वाहा हो जायगी। इसमें निश्चय ही तुम्हारा कोई दोष न होगा। जो सर्प अत्यन्त दुष्ट और उच्छृङ्खल होंगे, उन्हींकी उस शापसे जीवनलीला समाप्त होगी। जो ऐसे न होंगे, वे जीवित रहेंगे। हाँ, अपकार करनेपर या जिनका काल ही आ गया हो, उन मनुष्योंको समयानुसार निगलने या काटनेके लिये तुम स्वतन्त्र हो। गरुडसम्बन्धी मन्त्र, औषध और बद्ध गारुड़मण्डलद्वारा दाँत कुण्ठित करनेकी कलाएँ जिन्हें ज्ञात होंगी, उनसे निश्चय ही तुम्हें डरकर रहना चाहिये, अन्यथा तुम लोगोंका विनाश निश्चित है।'

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर वे सम्पूर्ण सर्प पृथ्वीके नीचे पाताललोकमें चले गये। इस प्रकार ब्रह्माजीसे शाप एवं वरदान पाकर वे पातालमें आनन्दपूर्वक निवास करने लगे। ये सारी बातें उन नाग महानुभावोंके साथ पञ्चमी तिथिके दिन ही घटित हुई थीं। अतः यह तिथि धन्य, प्रिय, पवित्र और सम्पूर्ण पापोंका संहारक सिद्ध हो गयी। इस तिथिमें जो खट्टे पदार्थके भोजनका परित्याग करेगा और दूधसे नागोंको स्नान करायेगा, सर्प उसके मित्र बन जायँगे।

(अध्याय २४)

षष्ठी तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें स्वामी कार्तिकेयके जन्मकी कथा

राजा प्रजापालने कहा—द्विजवर! मेरा एक प्रश्न यह भी है कि अहंकारसे कार्तिकेयकी उत्पत्ति कैसे हुई? महामते! आप मेरे संदेहको दूर करनेकी कृपा कीजिये।

मुनिवर महातपा बोले—राजन्! सम्पूर्ण तत्त्वोंमें जिन्हें प्रधान स्थान प्राप्त है, उन्हें परम पुरुष परमात्मा कहा जाता है। सबके आरम्भमें उन्हींसे अव्यक्त-तत्त्वकी उत्पत्ति हुई। ये तत्त्व तीन प्रकारके हैं। परम पुरुष और अव्यक्तके योगसे महत्तत्त्वका प्रादुर्भाव हुआ। इसी महत्तत्त्वको अहंकार भी कहते हैं। इनमें जो पुंस्तत्त्व है, वह भगवान् विष्णु अथवा शिव नामसे प्रसिद्ध है। अव्यक्तप्रकृति भगवती उमादेवी या कमल-नयना लक्ष्मी हैं। उन्हीं भगवान् शंकर और उमाके संयोगसे अहंकारकी उत्पत्ति हुई। वे ही सेनापति कार्तिकेय हैं। महामते राजन्! मैं अब उन कार्तिकेयकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग कहता हूँ, तुम उसे सुनो।

सर्वप्रथम एकमात्र भगवान् नारायण ही विराजमान थे, फिर उनसे ब्रह्माजीकी उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् स्वायम्भुव मनु तथा मरीचि और सूर्य आदि प्रकट हुए। फिर इन देवताओं, दानवों, गन्धर्वों, मनुष्यों, पशुओं और पक्षियोंकी सृष्टि हुई। यही सम्पूर्ण प्राणियोंकी सृष्टि कही गयी है। सृष्टिका विस्तार हो जानेपर देवताओं और दानवोंमें एक दूसरेको परास्त करनेकी इच्छासे सदा युद्ध होने लगा; क्योंकि उन दोनों दलोंमें अपार बल था और उनमें सदा वैरकी भावना बनी रहती थी। दैत्योंके सेनाध्यक्ष बड़े बलवान् थे, जिन्हें युद्धमें कोई हरा नहीं सकता था। उनके नाम इस प्रकार हैं—हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, महासुर विप्रचित्ति, विचित्र, भीमाक्ष और क्रौञ्च। इन सभी वीरोंके बलकी सीमा न थी। उस घोर संग्रामके अवसरपर देवसेनामें उपस्थित देवता दानवोंके तीक्ष्ण बाणोंसे प्रतिदिन हार रहे थे। उनकी पराजय देखकर बृहस्पतिजीने कहा—'देवताओ! तुम्हारी सेनामें कोई सेनाध्यक्ष नहीं है। केवल एक इन्द्रसे इस सेनाकी रक्षा हो सके—यह नितान्त असम्भव है। अतः तुमलोग अपने लिये किसी सेनाध्यक्षका अन्वेषण करो। अब इसमें देर करना ठीक नहीं है।'

बृहस्पतिजीके ऐसा कहनेपर देवता ब्रह्माजीके पास गये। उन्होंने व्याकुल होकर उनसे कहा—'भगवन्! हमें आप कोई सेनाध्यक्ष देनेकी कृपा करें।' इसपर ब्रह्माजीने ध्यान लगाकर देखा—'इन देवताओंके लिये मुझे क्या करना चाहिये।' इतनेमें उनका ध्यान भगवान् शंकरकी ओर गया और फिर सभी देवता, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध एवं चारण ब्रह्माजीको आगे करके कैलास पर्वतको चले। वहाँ पशुपति भगवान् शंकरका दर्शनकर अनेक प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा सभीने उनकी स्तुति आरम्भ कर दी।

देवता बोले—महेश्वर! हम समस्त देवता आपकी शरणमें आये हैं। भूतभावन! आप त्रिनेत्र, भगवान् शंकर, उमापति, विश्वपति, मरुत्पति और जगत्पति नामसे विख्यात हैं! आपको हमारा प्रणाम है। प्रभो! आप हमारी रक्षा करें। भगवन्! आपके जटापुञ्जके अग्रभागपर बैठे हुए चन्द्रमाकी किरणोंके प्रकाशसे तीनों जगत् स्वच्छ हो रहे हैं! आप ही अच्युत, त्रिशूलपाणि और पुरुषोत्तम कहलाते हैं। दैत्योंद्वारा उत्पन्न भय हमारे ऊपर आ गया है। आप उससे हमारी रक्षा करनेकी कृपा कीजिये। श्रेष्ठ देवताओंमें भी परमश्रेष्ठ प्रभो! आदिदेव, पुरुषोत्तम, हर, भव, महेश, त्रिपुरान्तक, विभु, भगदेवताके नेत्र हरनेवाले, दैत्यरिपु, पुरातन और वृषभध्वज—इस प्रकार आपके अनन्त नाम हैं। भगवन्! हमारी रक्षामें आप ही सक्षम हैं। गिरिजापति प्रभो! पर्वतपत्नी मैनाके आप वात्सल्य

भाजन हैं ! देवेश्वर ! अच्युत गणेश, भूतेश, शिव, अक्षय, अयन और दैत्यवरान्तक आपकी संज्ञाएँ हैं। भगवन् ! आप हमारी रक्षा करें। पृथ्वी आदि पाँच तत्त्वोंमें आप प्रतिष्ठित हैं। आपके प्रधान गुण भी पाँच हैं। विशेषता यह है कि आप आकाशमें तो केवल ध्वनिरूपसे लीन रहते हैं, अग्निमें शब्द एवं रूप—इन दो गुणोंसे, वायुमें तीन रूपोंसे, जलमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस—इन चार रूपोंसे और पृथ्वीमें गन्धसहित पाँच रूपोंसे विराजते हैं। भगवन् ! अग्नि आपका स्वरूप है। वृक्ष, पत्थर और तिल आदिमें आप साररूपसे स्थित हैं। भगवन् ! आप महान् शक्तिशाली पुरुष हैं। इस समय दैत्योंद्वारा हमें अत्यन्त दुःख भोगना पड़ रहा है। अतः आप हमारी रक्षा करें। त्रिलोचन ! जिस समय यह सारा विश्व सृष्टिशून्य था तथा ये सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र आदि भी नहीं थे, उस समय त्रिनेत्र ! सभी प्रमाणोंसे परे, समस्त बाधाओंसे वर्जित केवल आपकी ही सत्ता विराजित थी। भगवन् ! आप कपालकी माला पहनते हैं। द्वितीयाके चन्द्रमा आपके मस्तककी शोभा बढ़ाते हैं। श्मशान-भूमिमें आप निवास करते हैं। भस्मसे आपकी अनुपम शोभा होती है। आप शेषनागका यज्ञो-पवीत पहनते हैं। देवेश्वर ! मृत्युंजय ! आप अपनी तीव्र बुद्धिके सहारे हमारी रक्षा करें। भगवन् ! आप पुरुष हैं और ये श्रीगिरिजा अर्द्ध देहरूपमें आपकी शक्ति हैं। आपमें ही यह जगत् स्थित है। आहवनीय आदि अग्नियोंने आपके तीनों नेत्रोंमें स्थान पाया है। समस्त सागर तथा पर्वतोंसे निकलकर समुद्रतक जानेवाली नदियाँ आपकी जटाएँ हैं। आप विशुद्ध ज्ञानघन हैं। जिनकी दृष्टि दूषित है, वे ही उसे भौतिकरूपमें देखते हैं। जगत्के उत्पत्तिकर्ता भगवान् नारायण तथा चार मुखोंसे शोभा पानेवाले ब्रह्मा भी आप ही हैं। सत्त्व आदि तीनों गुणों, आहवनीय, आवसथ्य आदि तीनों अग्नियों तथा कृत-त्रेता आदि युगोंके भेदसे आप त्रिमूर्ति बन जाते हैं। प्रभो ! ये प्रधान देवता आपकी सहायता चाहते हैं। ये आपको अपना तोषक एवं रक्षक कहते हैं। क्योंकि रुद्र ! विश्वका भरण-पोषण करना आपका स्वभाव है। अतः भस्मको भूषणरूपमें धारण करनेवाले प्रभो ! आप हमारी रक्षा करें।

मुनिवर महातपा कहते हैं—राजन् ! देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर पशुपति भगवान् शंकर स्थिर होकर बोले—'देवताओ ! आपका क्या कार्य है ? शीघ्र बतलाएँ।'

देवगण बोले—देवेश ! दानवोंके वधके लिये आप हमें एक सेनापति प्रदान करनेकी कृपा कीजिये। ब्रह्माजीकी अध्यक्षतामें रहनेवाले हम सभी देवताओंका इस समय इसीमें कल्याण है।

भगवान् रुद्रने कहा—'देवगण ! आप लोग स्वस्थ एवं निश्चिन्त हो जायँ। अभी थोड़ी देरमें मैं आपलोगोंको सेनापति देता हूँ।'

राजन् ! यों कहकर भगवान् रुद्रने देवताओंको जानेकी आज्ञा दे दी और पुत्रोत्पत्तिके निमित्त अपने विग्रहमें रहनेवाली शक्तिको प्रेरित किया। उनके द्वारा शक्तिके क्षुब्ध होते ही एक कुमार प्रकट हो गया। उसकी प्रभा ऐसी थी, मानो तपता हुआ सूर्य ही हो। वह अपनी जन्मजात शक्तिको इस प्रकार प्रकाशित कर रहा था, मानो वह शक्ति ज्ञानमय

बनकर एकमात्र उसीके पास पुञ्जीभूत हो गयी है। राजेन्द्र ! उस कुमारकी उत्पत्तिसे सम्बन्धित अनेक प्रकारकी कथाएँ हैं। बहुत-से मन्वन्तरों तथा कल्पोंमें देवताओंके सेनापति होनेके विविध प्रसङ्ग हैं। भगवान् शंकरके शरीरमें अहंकाररूपसे जिन देवताओंकी प्रसिद्धि थी, वे सभी देवता प्रयोजनवश देवसेनापति बनकर शोभा पाने लगे। उस कुमारके उत्पन्न हो जानेपर स्वयं ब्रह्माजो देवताओंके साथ आये और उन देवाधिदेव भगवान् शंकरकी पूजा की। समस्त देवताओं, ऋषियों, सिद्धों और भगवान् शंकरने उस सेनापति होनेवाले बालकको पाल-पोसकर बड़ा किया। तब उस बालकने देवताओंसे कहा—'आप-लोग मुझे दो सहायक तथा कुछ खिलौने दें।' उस समय भगवान् रुद्रने उस बालककी बात सुनकर यह वचन कहा—'पुत्र ! तुम्हें खेलनेके लिये कुक्कुट तथा सेवा-सहयोगके लिये शाख एवं विशाख नामवाले दो अनुचर देता हूँ। कुमार ! तुम भूत, ग्रह एवं विनायकोंके नेता बनो और देवताओंकी सेनाके सेनापति हो जाओ।' राजन् ! भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर सभी देवगण प्रसन्न हो अभिलषित वाक्योंका उच्चारण करके सेनाध्यक्ष भगवान् स्कन्दकी स्तुति करने लगे।

देवगण बोले—प्रभो ! आप भगवान् शंकरके सुपुत्र हैं। आप हमारी सेनाकी अध्यक्षता स्वीकार करनेकी कृपा करें। आप षण्मुख, स्कन्द, विश्वेश, कुक्कुटध्वज, पावकि, शत्रुओंको कम्पित करनेवाले, कुमारेश, बाल-ग्रहानुग, शत्रुओंको परास्त करनेवाले, क्रौञ्चविध्वंसक (क्रौञ्चनामक पर्वतको, जो आसाममें स्थित है, विदीर्ण-करनेवाले), कृत्तिकानन्दन, शिवकुमार, भूतों तथा ग्रहोंके स्वामी, अग्निनन्दन तथा भूतभावन भगवान् शंकरकी संतान हैं। त्रिलोचन ! आपको हमारा नमस्कार है।

राजन् ! देवताओंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर रुद्रकुमार भगवान् स्कन्दकी आकृति तेजीसे बढ़ने लगी। फिर तो वे बारह आदित्योंके समान तेजस्वी एवं पराक्रमी हो गये और उनके तेजसे तीनों लोकोंमें ताप छा गया।

राजा प्रजापालने पूछा—गुरो ! आपने स्कन्दको कृत्तिका-पुत्र कैसे कहा है ? अथवा वे कुमार, पावकि और षण्मातृनन्दन क्यों कहे जाते हैं ? इसका कारण मुझे बतानेकी कृपा करें।

मुनिवर महातपा कहते हैं—राजन् ! मन्वन्तरके प्रारम्भमें कार्तिकेयकी जिस प्रकार उत्पत्ति हुई थी, वह प्रसङ्ग मैंने बताया है। देवतालोग तो भूत और भविष्यकी बातें भी जानते हैं। अतएव उनके द्वारा इन गुणद्योतक नामोंका उच्चारण हुआ है। अग्निके पुत्र होनेसे इनका नाम 'पावकि' हुआ है। यद्यपि इनकी माता गौरा हैं, किंतु जन्ममें कृत्तिकादि छः माताओंने इन्हें दुग्ध-पान कराकर पाला था, अतः वे 'कार्तिकेय' कहलाये। महाराज ! तुम्हारे प्रश्नका इस प्रकार समाधान हो गया। आत्मविद्यारूपी अमृतका यह विषय अत्यन्त गुह्य है। भगवान् शंकरके अहंकारका यह मूर्तरूप है। सम्पूर्ण पापोंके प्रशमन करनेवाले स्वयं भगवान् शंकर ही स्कन्दरूपमें प्रकट हुए थे।

पितामह ब्रह्माजीने इनके अभिषेकके समय इन्हें षष्ठी तिथि प्रदान की थी। अतः जो व्यक्ति इस तिथिमें संयमपूर्वक केवल फलके आहारपर रहकर इनकी पूजा करता है, उसे यदि पुत्र न हो तो पुत्रकी प्राप्ति अथवा निर्धन हो तो धनकी प्राप्ति हो जाती है। इतना ही नहीं, मनुष्य मनसे भी जिन-जिन वस्तुओंकी इच्छा करेगा, वह उसे सुलभ हो जायगी। जो पुरुष स्वामी कार्तिकेयके उपर्युक्त गुणनामपूर्ण स्तोत्रका पाठ करता है, उसके घरमें बच्चोंका सदा कल्याण होता है और वे नीरोग रहते हैं। (अध्याय २५)

सप्तमी तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें आदित्योंकी उत्पत्तिकी कथा

राजा प्रजापालने पूछा—ब्राह्मणश्रेष्ठ ! दिव्य ज्योतिः-पुञ्जका शरीर-धारण बड़े आश्चर्यकी बात है । कृपया मुझ शरणागतकी इस शङ्काका आप निराकरण करें ।

मुनिवर महातपाजी कहने लगे—राजन् ! विज्ञानात्मा, सनातन ज्ञानशक्तिको जब किसी दूसरी शक्तिकी अपेक्षा हुई तो उसके शरीरसे एक प्रकाशमान तेज निकल पड़ा, जो सूर्य कहलाया । यह उन महान् पुरुषका ही एक दूसरा रूप है । फिर उस मूर्तिमें सम्पूर्ण तेज स्थान पा गये । तब उससे तीनों लोकोंमें प्रकाश फैल गया । उस तेजमें अखिल महर्षियोंसहित सम्पूर्ण देवता और सिद्ध अधिष्ठित हैं । इसीलिये उन प्रभुको स्वयम्भू कहा जाता है । उन्हींसे सूर्यका प्राकट्य हुआ । वे ही स्वयं सूर्य-रूपसे लक्षित हैं । उस विग्रहमें तुरंत तेजोंका समावेश हो गया । अतः वे परम तेजस्वी शरीरवाले बन गये । वेदवादी मुनिगण इसी तेजको सूर्य आदि नामोंसे व्यवहृत करते हैं । जब वे आकाशमें ऊपर उठकर सभी लोकोंको प्रकाशित करने लगे, तब उनका अनुगुण नाम 'भास्कर' पड़ गया । इसी प्रकार चारों ओर प्रकाश फैलानेके कारण इनकी 'प्रभाकर' नामसे भी प्रसिद्धि हुई । दिवा और दिवस—ये दोनों शब्द एक ही अर्थके बोधक हैं । इनके द्वारा दिवसका निर्माण हुआ, अतः ये दिवाकर कहलाये । सम्पूर्ण संसारके आदिमें ये विराजते थे, अतः इन्हें आदित्य कहते हैं । फिर इन्हीं भगवान् सूर्यके तेजसे भिन्न-भिन्न बारह आदित्य उत्पन्न हुए । वैसे प्रधानतया एक ही रूपमें ये जगत्में घूमते रहते हैं । जब इनके शरीरमें स्थान पाये हुए देवताओंने देखा कि ये ही परब्रह्म परमेश्वर जगत्में व्याप्त होकर तेज फैला रहे हैं, तब वे श्रीविग्रहसे बाहर निकल आये और भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति करने लगे ।

देवता बोले—भगवन् ! आपसे जगत्‌की सृष्टि होती है । आपके द्वारा ही इस विश्वका पालन और संहार होता है । आप आकाशमें ऊँचे जाकर निरन्तर विश्वमें चक्कर लगाते हैं । ऐसे प्रभुकी हम सदा उपासना करते हैं । जगत्‌की रचना हो जानेपर प्रतापी सूर्यका रूप धारणकर आप सर्वत्र तेज भर देते हैं । जिसे सात घोड़े खींचते हैं, जिसकी कालरूपी धुरी है और जो बड़े वेगसे चलता है, ऐसा रथ आपकी सवारी है । प्रभो ! आप प्रभाकर और रवि कहलाते हैं । चर और अचर—सम्पूर्ण संसारकी आत्मा आप ही हैं । सिद्ध पुरुष कहते हैं कि ब्रह्मा, वरुण, यम, भूत और भविष्य—सब कुछ आप ही हैं । भगवन् ! वेद आपकी मूर्ति हैं । अन्धकार दूर करना आपका स्वभाव है । आप वेदान्त आदि शास्त्रोंकी सहायतासे ही जाने जाते हैं । यज्ञोंमें विष्णुके रूपसे आपके ही निमित्त हवन होता है । हम सभी देवता आपकी शरणमें आये हैं । आप प्रसन्न होकर सदा हमारी रक्षा करें । देवेश्वर ! अब हमलोगोंके द्वारा भक्तिपूर्वक की हुई आपकी स्तुति सम्पन्न हो गयी । प्रभो ! विशेष आग्रह है कि आप हमारी रक्षाका प्रबन्ध करें ।

इस प्रकार देवताओंके स्तुति करनेपर भगवान् सूर्यने तेजोमयी मूर्तिको सौम्य बना लिया और उनके सामने शीघ्र ही साधारण प्रकाश फैलाने लगे । (उस अवसरपर देवताओंने कहा—) 'भगवन् ! इस सम्पूर्ण देवगणमें बेचैनी उत्पन्न हो गयी थी । अब आपकी कृपासे सभी शान्तिका अनुभव कर

रहे हैं'। (महातपा मुनि कहते हैं—'राजन् !) सप्तमी तिथिके दिन भगवान् सूर्यका प्राकट्य हुआ था, अतः इस तिथिको उपवास करके जो पुरुष भक्तिपूर्वक सूर्यकी पूजा करता है, भास्कररूपधारी प्रभु उसकी इच्छाके अनुसार फल प्रदान कर देते हैं। राजन् ! सूर्यसे सम्बन्धित यह कथा बहुत पुरानी है, जिसे तुम सुन चुके। अब आदि मन्वन्तरमें हुई (मातृकाओंकी उत्पत्तिसम्बन्धी) एक अन्य आख्यान कहता हूँ, उसे सुनो।'

(अध्याय २६)

अष्टमी तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें मातृकाओंकी उत्पत्तिकी कथा

मुनिवर महातपा कहते हैं—राजन् ! पूर्व समयकी बात है, भूमण्डलपर एक महान् पराक्रमी राक्षस था, जिसकी अन्धक नामसे ख्याति थी। ब्रह्माजीके द्वारा वर प्राप्तकर उसका अहंकार चरम सीमापर पहुँच गया था। सभी देवता उसके अधीन हो गये थे। उसकी सेवा असह्य होनेके कारण देवताओंने सुमेरु पर्वत छोड़ दिया और उस दानवके भयसे दुःखी होकर वे ब्रह्माजीकी शरणमें गये। उस समय वहाँ आये हुए प्रधान देवताओंसे पितामहने कहा—'सुरगणो ! कहो, तुम्हारे आनेका क्या प्रयोजन है ? तुम क्या चाहते हो ?

देवताओंने कहा—जगत्पते ! आप चतुर्मुख एवं जगत्-पितामह हैं। भगवन् ! आपको हमारा नमस्कार है। अन्धकासुरके द्वारा हम सभी देवता महान् दुःखी हैं। आप हम सबकी रक्षा करें।

ब्रह्माजी बोले—श्रेष्ठ देवताओ ! अन्धकासुरसे रक्षा करना मेरे वशकी बात नहीं है। हाँ, महाभाग शंकरजी अवश्य सर्वसमर्थ हैं। हम सभी उनकी ही शरणमें चलें; क्योंकि मैंने ही उसे वर दिया था कि तुम्हें कोई भी मार न सकेगा और तुम्हारा शरीर भी पृथ्वीका स्पर्श नहीं करेगा। फिर भी उस परम पराक्रमी असुरको शत्रुओंके संहार करनेवाले भगवान् शंकर मार सकते हैं; अतः हम सबलोग उन्हीं कैलासवासी प्रभुके पास चलें।

राजन् ! इस प्रकार कहकर ब्रह्माजी सभी देवताओंके साथ भगवान् शंकरके पास गये। उन्हें देखकर भगवान् शंकरने प्रत्युत्थानादिद्वारा स्वागत कर उनसे कहा—'आप सभी देवता किस कारणसे यहाँ पधारे हैं। आप शीघ्र आज्ञा दें, जिससे मैं आपलोगोंका कार्य तुरंत सम्पन्न कर दूँ।'

इसपर देवताओंने कहा—'भगवन् ! दुष्टचित्त, महाबली अन्धकासुरसे आप हमारी रक्षा करें' अभी वे ऐसा कह ही रहे थे कि विशाल सेना लिये अन्धकासुर वहीं आ धमका। उस समय वह दानव पूरे साधनोंके साथ आया था। उसकी इच्छा थी कि वह युद्धमें चतुरङ्गिणी सेनाके सहारे शंकरजीको मारकर उनकी पत्नी पार्वतीका अपहरण कर ले। उसे सहसा इस प्रकार प्रहारके लिये उद्यत देखकर रुद्र भी युद्धके लिये उद्यत हो गये। सभी देवता भी उनका साथ देनेको तैयार हुए। फिर उन प्रभुने वासुकि, तक्षक और धनंजयको स्मरण किया और उन्हें क्रमसे अपना कङ्कण और करधनी बनाया। इतनेमें नील नामसे प्रसिद्ध एक प्रधान दैत्य हाथीका रूप धारणकर भगवान् शंकरके पास आया। नन्दी उसकी माया जान गये और वीरभद्रको बतलाया। बस ! क्या था, वीरभद्रने भी सिंहका रूप धारणकर उसे तत्काल मार डाला। उस हाथीका चर्म अञ्जनके समान काला था। वीरभद्रने उसकी चमड़ी उधेड़कर उसे भगवान् शंकरको समर्पित कर

दिया । तब रुद्रने उसे वस्त्रके स्थानपर पहन लिया । तभीसे वे गजाजिनधारी हुए । इस प्रकार गजचर्म पहनकर उन्होंने श्वेत सर्पका भूषण भी धारण कर लिया । फिर हाथमें त्रिशूल लेकर अपने गणोंके साथ उन्होंने अन्धकासुरपर धावा बोल दिया । अब देवता एवं दानवोंमें भीषण संग्राम प्रारम्भ हो गया । उस अवसरपर इन्द्र आदि सभी लोकपाल, सेनापति स्कन्द एवं अन्य सभी देवता भी समराङ्गणमें उतर आये । यह स्थिति देखकर नारदजी तुरंत भगवान् नारायणके पास गये और बोले—'भगवन् ! कैलासपर देवताओंका दानवोंके साथ घोर युद्ध हो रहा है ।'

यह सुनना था कि भगवान् जनार्दन भी हाथमें चक्र लेकर गरुड़पर बैठे और युद्ध-स्थलमें पहुँचकर दानवोंके साथ युद्ध करने लगे । उनके वहाँ आ जानेपर देवताओंका उत्साह कुछ बढ़ा अवश्य, किंतु उस समरमें उनका मन एक प्रकारसे म्लान हो चुका था, अतः वे सभी भाग चले । जब देवताओंकी शक्ति समाप्त हो गयी तो स्वयं भगवान् रुद्र अन्धकासुरके सामने गये । उसके साथ उनका रोमाञ्चकारी युद्ध आरम्भ हो गया । उस समय उन प्रभुने उस दानवपर त्रिशूलसे भीषण प्रहार किया । फिर तो घायल हो जानेपर अन्धकासुरके शरीरसे जो रक्त जमीनपर गिरा, उससे उसी क्षण दूसरे असंख्य अन्धकासुर उत्पन्न हो गये । युद्धभूमिमें ऐसा अत्यन्त आश्चर्यपूर्ण दृश्य देखकर परम प्रभु भगवान् रुद्रने प्रधान अन्धकासुरको त्रिशूलके अग्रभागसे बींध दिया और उसे लिये हुए नाचने लगे । शेष मायामय अन्धकासुरोंको भगवान् विष्णुने अपने चक्रसे काट डाला । शूल-प्रोत प्रधान अन्धकासुरके शरीरसे रक्तकी धाराएँ अब भी निरन्तर प्रवाहित हो रहीं थीं; अतः रुद्रके मनमें भीषण क्रोधाग्नि भड़क उठी, जिससे उनके मुखसे अग्निकी ज्वाला बाहर निकलने लगी । उस ज्वालाने एक देवीका रूप धारण कर लिया, जिसे लोग योगेश्वरी कहने लगे ।

इसी प्रकार भगवान् विष्णुने भी अपने रूपके सदृश (ज्वालाद्वारा) अन्य शक्तिका निर्माण किया । ऐसे ही ब्रह्मा, कार्तिकेय, इन्द्र, यम, वराह, महादेव, विष्णु और नारायण—इनके प्रभावसे आठ मातृकाएँ प्रकट हो गयीं । जब श्रीहरिने पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये वराहका रूप धारण किया था, उस समय जिन्हें अपनाया वे वाराही हैं । इस प्रकार ब्राह्मी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, यमी, योगेश्वरी, माहेश्वरी और माहेन्द्री—ये आठ मातृकाएँ हैं । क्षेत्रज्ञ श्रीहरिने, जिनका जिस-कारणसे निर्माण हुआ था, उसपर विचार करके उनका वही नाम रख दिया । ऐसे ही काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मात्सर्य, पैशुन्य और असूया—इनकी आठ शक्तियाँ मातृका नामसे प्रसिद्ध हुईं । काम 'योगेश्वरी', क्रोध 'माहेश्वरी', लोभ 'वैष्णवी', मद 'ब्रह्माणी', मोह 'कौमारी', मात्सर्य 'इन्द्राणी', पैशून्य 'यमदण्डधरा' और असूया 'वाराही' नामसे कही गयी हैं—ऐसा जानना चाहिये । ये कामादिगण भी भगवान् नारायणके शरीर कहे जाते हैं । उन प्रभुने जैसी मूर्ति धारण की, उनका वैसा नाम तुम्हें बता दिया ।

तदनन्तर इन मातृ-देवियोंके प्रयाससे अन्धकासुरकी रक्तधाराका प्रवाह सूख गया । उसकी आसुरी माया समाप्त हो गयी । फिर अन्धकासुर भी सिद्ध हो गया । राजन् ! मैंने तुमसे यह आत्मविद्यामृत-तत्त्वका वर्णन किया है । मातृकाओंकी उत्पत्तिका यह कल्याणकारी प्रसङ्ग जो सदा सुनता है, ये माताएँ उसकी प्रतिदिन सभी प्रकार रक्षा करती हैं । राजेन्द्र ! जो मुखसे इन मातृकाओंके जन्मचरित्रका पाठ करता है, वह इस लोकमें सर्वथा धन्यवादका पात्र माना जाता

है । अन्तमें उसको भगवान् शिवके लोककी प्राप्ति सुलभ हो जाती है । महाभाग ब्रह्माने उन मातृकाओंके लिये उत्तम अष्टमी तिथि प्रदान की है । मनुष्यको चाहिये कि इस तिथिमें बिल्वके आहारपर रहकर भक्ति-पूर्वक सदा इनकी पूजा करे । इससे परम संतुष्ट होकर ये मातृकाएँ उसको कल्याण एवं आरोग्य प्रदान करती हैं ।

(अध्याय २७)



नवमी तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें दुर्गादेवीकी उत्पत्ति-कथा

राजा प्रजापालने पूछा—मुने ! सृष्टिके आदिमें सूक्ष्म रूपमें स्थित निर्गुणा एवं अव्यक्त-ब्रह्मस्वरूपा कल्याणी भगवती महामाया, दुर्गा भगवती सगुण स्वरूप धारणकर पृथक् रूपमें कैसे प्रकट हुई ?

महातपाजी कहते हैं—राजन् ! प्राचीन समयकी बात है । वरुणके अंशसे उत्पन्न सिन्धुद्वीप नामका एक प्रबल प्रतापी नरेश था । वह इन्द्रको मारनेवाले पुत्रकी कामनासे जंगलमें जाकर तप करने लगा । सुव्रत ! इस प्रकार एक ही आसनसे भीषण तप करते हुए उसने अपने शरीरको सुखा दिया ।

राजा प्रजापालने पूछा—द्विजवर ! उसका इन्द्रने कौन-सा अपकार किया था, जिससे वह उनके मारने-वाले पुत्रकी इच्छासे तपमें लग गया ?

महातपाजी बोले—राजन् ! सिन्धुद्वीप पिछले जन्ममें विश्वकर्माका पुत्र नमुचि नामक दैत्य था, जो वीरोंमें प्रधान था । वह सम्पूर्ण शस्त्रोंद्वारा अवध्य था । अतः इन्द्रद्वारा जलके फेनसे उसकी मृत्यु हुई थी । (युद्धके अन्तमें इन्द्रने उसे जलके फेनसे मारा था) । वही पुनः ब्रह्माजीके वंशमें सिन्धुद्वीपके नामसे उत्पन्न हुआ । इन्द्रके उसी वैरको स्मरणकर वह अत्यन्त कठिन तपस्या करनेके लिये बैठ गया था ।

इस प्रकार बहुत समय बीत जानेपर पवित्र नदी वेत्रवती- (मध्यप्रदेशकी बेतवा नदी) ने अत्यन्त सुन्दर मानुषी स्त्रीका रूप धारणकर एवं अनेक अलंकारोंसे सज-धजकर सिंधुद्वीप जहाँ बैठकर महान् तप कर रहा था, वहाँ पहुँची । उस सुन्दरी स्त्रीको देखकर राजाका मन क्षुब्ध हो उठा, अतः उसने पूछा—'सुन्दर कटिभागवाली भामिनि ! तुम कौन हो ? सब सच्ची बात बतानेकी कृपा करो ।

नदीने उत्तर दिया—मेरा नाम वेत्रवती है । मेरे मनमें आपको प्राप्त करनेकी इच्छा हो गयी है । अतः मैं यहाँ आ गयी हूँ । महाराज ! इस बातपर तथा मेरे भावोंको विचारकर आप मुझ दासीको स्वीकार करनेकी कृपा करें ।

राजन् ! वेत्रवतीके इस प्रकार कहनेपर राजा सिन्धुद्वीपने भी उसे स्वीकार कर लिया । समय पाकर शीघ्र ही उससे पुत्रकी उत्पत्ति हुई । उस बालकमें बारह सूर्यों-जैसा तेज था । वेत्रवतीके उदरसे जन्म होनेके कारण वह वेत्रासुरके नामसे प्रसिद्ध हुआ । उसमें पर्याप्त बल था । उसके तेजकी सीमा न थी । धीरे-धीरे वह प्राग्ज्योतिषपुर (कामरूप-आसाम)का नरेश बन गया और युवा होनेपर तो उसके बल-विक्रम बहुत बढ़ गये । उसने अब महायोगशक्तिद्वारा सात द्वीपोंवाली इस सम्पूर्ण पृथ्वीको जीत लिया । बादमें कालकेयोंको जीतनेके लिये उसने मेरु-पर्वतपर चढ़ाई की । जब वह असुर इन्द्रके पास गया तो वे भयसे वहाँसे भाग चले । अग्निने तो उसे देखते ही अपना स्थान छोड़ दिया ।

ऐसे ही यम, निर्ऋति और वरुण—ये सब-के-सब उसके आनेपर अपने स्थानसे हटते गये। अन्तमें इन्द्रप्रभृतिको साथ लेकर वरुण देवता वायुदेवताके संनिकट गये। फिर पवनदेव भी इन्द्र आदि समस्त देवताओंके सहित धनाध्यक्ष कुबेरके पास पहुँचे। शंकरजी कुबेरके मित्र हैं; अतः धनाध्यक्ष कुबेर देवताओंको साथ लेकर शंकरजीके पास पधारे। राजन्! इतनेमें बलाभिमानी वेत्रासुर भी गदा लिये हुए कैलासपर जा पहुँचा। इधर भगवान् शिव उसे अवध्य समझकर देवताओंके साथ ब्रह्मलोक पहुँचे थे। वहाँ पुण्यकर्म करनेवाले बहुत-से देवता और सिद्धोंका समाज उनकी स्तुति कर रहा था। उस समय जगत्‌की रचना करनेमें कुशल ब्रह्माजी भगवान् विष्णुके चरणसे प्रकट हुई गङ्गाके पावन जलमें प्रविष्ट होकर क्षेत्रज्ञ परमात्माकी माया गायत्रीका नियमपूर्वक जप कर रहे थे। अब देवता बड़े जोरसे चिल्लाकर कहने लगे—'प्रजाओंकी रक्षा करनेवाले भगवन्! हमें बचाइये। वेत्रासुरसे हम समस्त देवता और ऋषि अत्यन्त भयभीत हो गये हैं। आप हमारी रक्षा करें! रक्षा करें!'

देवताओंके इस प्रकार पुकार मचानेपर ब्रह्माजीकी दृष्टि वहाँ आये हुए उन देवताओंकी ओर गयी। वे सोचने लगे—'अहो! भगवान् नारायणकी माया बड़ी विचित्र है। इस विश्वका कोई भी स्थान उससे रिक्त नहीं है। असुरों और राक्षसोंसे भला मेरा क्या सम्बन्ध?' वे इस प्रकार अभी चिन्तन कर ही रहे थे कि तबतक वहाँ एक अयोनिजा कन्या प्रकट हो गयी। उसका शरीर श्वेतवस्त्रोंसे सुशोभित हो रहा था। उसके गलेमें माला तथा मस्तकपर किरीट उद्भासित हो रहा था। उसकी कान्ति अत्यन्त उज्ज्वल थी तथा उसकी आठ भुजाएँ थीं, जिनमें क्रमसे शङ्ख, चक्र, गदा, पाश (शक्ति) तलवार, घण्टा और धनुष—ये दिव्य आयुध सुशोभित हो रहे थे। वह देवी तूणीर आदि अन्य सभी युद्धोपकरणोंसे भी सुसज्जित होकर जलसे बाहर निकल पड़ी। वह महायोगेश्वरी परब्रह्म परमात्माकी शक्ति सिंहपर समासीन थी। अब सहसा वह अनेक रूप धारणकर सभी असुरोंके साथ युद्ध करने लगी। उस देवीमें अपार शक्ति थी। उसके पास बहुत-से दिव्य अस्त्र थे। इस प्रकार देवताओंके वर्षसे यह युद्ध एक हजार वर्षोंतक चलता रहा और अन्तमें इस संग्राममें देवीद्वारा भयंकर वेत्रासुर मार डाला गया। अब देवताओंकी सेनामें बड़े जोरसे आनन्दकी ध्वनि होने लगी। उस दैत्यकी मृत्यु हो जानेपर सभी देवता युद्धभूमिमें ही—'भगवती! आपकी जय हो! जय हो!' कहकर स्तुति-प्रणाम करने लगे। साथ ही भगवान् शंकरने उनकी इस प्रकार स्तुति की—

भगवान् शंकर बोले—महामाये! महाप्रभे! गायत्रि देवि! आपकी जय हो! महाभागे! आपके सौभाग्य, बल, आनन्द—सभी असीम हैं। दिव्य गन्ध एवं अनुलेपन आपके श्रीअङ्गोंकी शोभा बढ़ाते हैं। परमानन्दमयी देवि! दिव्य मालाएँ एवं गन्ध आपके श्रीविग्रहकी छवि बढ़ाती हैं। महेश्वरि! आप वेदोंकी माता हैं। आप ही वर्णोंकी मातृका हैं। आप तीनों लोकमें व्याप्त हैं। तीनों अग्नियोंमें जो शक्ति है, वह आपका ही तेज है। त्रिशूल धारण करनेवाली देवि! आपको मेरा नमस्कार है। देवि! आप त्रिनेत्रा, भीमवक्त्रा और भयानका आदि अर्थानुरूप नामोंसे व्यवहृत होती हैं। आप ही गायत्री और सरस्वती हैं। आपके लिये हमारा नमस्कार है। अम्बिके! आपकी आँखें कमलके समान हैं। आप महामाया हैं। आपसे अमृतकी वृष्टि होती रहती है। सर्वगे! आप सम्पूर्ण प्राणियोंकी अधिष्ठात्री हैं। स्वाहा और स्वधा आपकी ही प्रतिकृतियाँ हैं; अतः आपको मेरा नमस्कार है। महान् दैत्योंका दलन करनेवाली देवि! आप सभी प्रकारसे परिपूर्ण हैं। आपके मुखकी आभा पूर्ण चन्द्रके समान है। आपके शरीरसे महान् तेज

छिटक रहा है। आपसे ही यह सारा विश्व प्रकट होता है। आप महाविद्या और महावेद्या हैं। आनन्दमयी देवि! विशिष्ट बुद्धिका आपसे ही उदय होता है। आप समयानुसार लघु एवं बृहत् शरीर भी धारण कर लेती हैं। महामाये! आप नीति, सरस्वती, पृथ्वी एवं अक्षरस्वरूपा हैं। देवि! आप श्री, धी तथा ॐकार-स्वरूपा हैं। परमेश्वरि! तत्त्वमें विराजमान होकर आप अखिल प्राणियोंका हित करती हैं। आपको मेरा बार-बार नमस्कार है।

राजन्! इस प्रकार परम शक्तिशाली भगवान् शंकरने उन देवीकी स्तुति की और देवतालोग भी बड़े उच्च-स्वरसे उन परमेश्वरीकी जयध्वनि करने लगे। अबतक ब्रह्माजी जलमें जप ही कर रहे थे। अब जब (जयध्वनि उन्हें श्रवणगोचर हुई तो) वे जलसे बाहर निकले और देखा, परम कुशल देवी सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न करके सामने विराजमान हैं। अब उन्होंने यह तो भलीभाँति जान लिया कि देवताओंका कार्य सिद्ध हो गया, परंतु भविष्यके कार्यको परिलक्ष्यकर उन्होंने ये वचन कहे—

ब्रह्माजी बोले—देवताओ! अनुपम अङ्गोंसे शोभा पानेवाली ये देवी अब हिमालय पर्वतपर पधारें और आपलोग भी अब तुरंत वहाँ चलकर आनन्दसे रहें। नवमी तिथिके दिन इन देवीकी सदा स्थिरचित्त एवं ध्यान-समाधिद्वारा आराधना करनी चाहिये। ऐसा करनेसे ये सम्पूर्ण प्राणियोंको वर देंगी, इसमें लेशमात्र संदेह नहीं। इस (नवमी) तिथिको जो पुरुष अथवा स्त्री पक्वान्न प्रसादरूपसे भोजन करेंगे, उनके सभी मनोरथ सिद्ध हो जायँगे।

राजन्! फिर ब्रह्माने भगवान् शंकरसे कहा—'देव! स्वयं आपद्वारा कहे गये इस स्तोत्रका जो पुरुष प्रातः-काल नित्य पाठ करेगा, उसे आप भी इस देवीके समान ही वर प्रदान करें और सम्पूर्ण संकटोंसे उसका उद्धार कर दें—यह प्रार्थना है।'

इस प्रकार भगवान् शंकरसे कहकर उन्होंने पुनः देवीसे कहा—'देवि! आपके द्वारा यहाँ कार्य सम्पन्न हुआ। किंतु अभी हमारा एक दूसरा बहुत बड़ा कार्य शेष है। वह यह कि आगे महिषासुर नामका एक राक्षस उत्पन्न होगा, जिसका विनाश भी आपके ही द्वारा सम्भव है।'

राजन्! इस प्रकार कहकर ब्रह्माजी तथा सम्पूर्ण देवता देवीको हिमालय पर्वतपर प्रतिष्ठितकर यथास्थान प्रस्थित हो गये। हिमवान् पर्वतपर आनन्दसे विराजनेके कारण उनका नाम 'नन्दादेवी' हुआ। जो व्यक्ति भगवतीके इस प्रकट होनेकी कथाको स्वयं पढ़ेगा अथवा सुनेगा, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर कैवल्य-मोक्षका अधिकारी होगा।

(अध्याय २८)

दशमी तिथिके माहात्म्यके प्रसङ्गमें दिशाओंकी उत्पत्तिकी कथा

मुनिवर महातपा कहते हैं—राजन्! अब जिस प्रकार भगवान् श्रीहरिके कानोंसे दिशाएँ उत्पन्न हुईं, वह कथा मैं कहता हूँ, तुम उसे ध्यानपूर्वक सुनो। आदि-सर्गके आरम्भमें ब्रह्माजीको सृष्टि करते हुए यह चिन्ता हुई कि 'मेरी उत्पन्न प्रजाका आधार क्या होगा? अतः उन्होंने संकल्प किया कि अब आभ्यन्तर-स्थान उत्पन्न हों।' उनके इस प्रकार विचार करते ही उन परम प्रभुके कानोंसे दस तेजस्वी कन्याओंका प्रादुर्भाव हुआ। राजन्! उनमें वे पूर्वा, दक्षिणा, पश्चिमा, उत्तरा, ऊर्ध्वा और अधरा—ये छः कन्याएँ तो मुख्य मानी गयीं। साथ ही उन कन्याओंके मध्यमें और चार कन्याएँ, जो परम सुन्दर रूपवाली गम्भीर भावोंवाली तथा महाभाग्यशालिनी थीं, उत्पन्न हुईं। उस समय उन सभी कन्याओंने बड़ी नम्रताके साथ

शुद्धस्वरूप ब्रह्माजीसे प्रार्थना की—'देवेश्वर ! आप प्रजाके पालक हैं । हमें स्थान देनेकी कृपा कीजिये । स्थान ऐसा चाहिये, जहाँ हम सभी अपने पतियोंके साथ सुखपूर्वक निवास कर सकें । अव्यक्तजन्मा प्रभो ! हमें आप महान् भाग्यशाली पति प्रदान करनेकी कृपा करें ।'

ब्रह्माजी बोले—कमनीय कटिभागसे शोभा पानेवाली दिशाओ ! यह ब्रह्माण्ड सौ करोड़का विस्तारवाला है । इसके अन्तर्गत तुम संतुष्ट होकर यथेष्ट स्थानोंपर निवास करो । मैं शीघ्र ही तुम्हारे अनुरूप सुन्दर एवं नवयुवक पतियोंका भी निर्माण करके देता हूँ । तदनन्तर इच्छानुसार तुम सभी अपने-अपने स्थानपर चली जाओ ।

राजन् ! जब ब्रह्माजीने इस प्रकार कहा तो वे सभी कन्याएँ इच्छित स्थानोंको चल पड़ीं । फिर उन प्रभुने उसी क्षण महान् पराक्रमी लोकपालोंकी रचना कर एक बार उन कन्याओंको पुनः अपने पास वापस बुलाया । उनके आ जानेपर लोकपितामह ब्रह्माजीने उन कन्याओंका उन लोकपालोंके साथ विवाह कर दिया । उत्तम व्रतका पालन करनेवाले राजन् ! उस अवसरपर उन परम प्रभुने पूर्वा नामवाली कन्याका विवाह इन्द्रके साथ, आग्नेयीदिक्-का अग्निदेवके साथ, दक्षिणाका यमके साथ, नैर्ऋत्रीका निर्ऋतिके साथ, पश्चिमाका वरुणके साथ, वायव्यीदिक्का वायुके साथ, उत्तराका कुबेरके साथ तथा ईशानीदिक्का भगवान् शंकरके साथ विवाहका प्रबन्ध कर दिया । ऊर्ध्व दिशाके अधिष्ठाता वे स्वयं बने और अधोलोककी अध्यक्षता उन्होंने शेषनागको दी । इस प्रकार उन दिशाओंको पति प्रदान करनेके बाद ब्रह्माजीने उनके लिये दशमी तिथि निर्धारित कर दी । वही तिथि उन्हें अत्यन्त प्रिय बन गयी । राजन् ! जो उत्तम व्रतका पालक पुरुष दशमीतिथिके दिन केवल दही खाकर व्रत करता है, उसके पापका नाश करनेके लिये वे देवियाँ सदा तत्पर रहती हैं । जो मनुष्य मनको वशमें करके दिशाओंके जन्मादिसे सम्बन्ध रखनेवाले इस प्रसङ्गको सुनता है, वह इस लोकमें प्रतिष्ठा पाता और अन्तमें ब्रह्माजीका लोक प्राप्त करता है, इसमें कोई संशय नहीं ।

(अध्याय २९)

एकादशी तिथिके माहात्म्यके प्रसङ्गमें कुबेरकी उत्पत्ति-कथा

मुनिवर महातपा कहते हैं—राजन् ! अब एक दूसरी कथा कहता हूँ । इसमें धनके स्वामी कुबेरकी उत्पत्तिका वर्णन है । यह प्रसङ्ग पापका नाश करनेवाला है । पहले कुबेरजी वायुके रूपमें अमूर्त ही थे । पश्चात् वे मूर्तिमान् बनकर उपस्थित हुए । परब्रह्म परमात्माका जो शरीर है, उसीके अन्तर्गत वह वायु विराजता था । आवश्यकताके अनुसार वह क्षेत्रदेवता बनकर बाहर निकला । उसकी उत्पत्तिकी कथा मैं तुम्हें संक्षेपमें बता चुका हूँ । महाभाग ! तुम बड़े पवित्रात्मा पुरुष हो, अतः वही प्रसङ्ग पुनः कुछ विस्तारसे कहता हूँ, सुनो ।

एक समयकी बात है—ब्रह्माजीके मनमें सृष्टि रचनेकी इच्छा हुई । तब उनके मुखसे वायु निकला । वह बड़े वेगसे स्थूल बनकर वह चला और उससे धूलकी प्रचण्ड वर्षा होने लगी । फिर ब्रह्माजीने उसे रोका और साथ ही कहा—'वायो ! तुम शरीर धारण करो और शान्त हो जाओ ।' उनके ऐसा कहनेपर वायु मूर्तिमान् बनकर कुबेरके रूपमें उनके सामने उपस्थित हुए । तब ब्रह्माजीने कहा—'सम्पूर्ण देवताओंके पास जो धन है, वह केवल फलमात्र है । उन सबकी रक्षाका भार तुम्हारे ऊपर है । इस रक्षा-कार्यके कारण जगत्में 'धनपति'

नामसे तुम्हारी प्रसिद्धि होगी।' फिर अत्यन्त संतुष्ट होकर ब्रह्माजीने उन्हें एकादशीका अधिष्ठाता बना दिया। राजन्! उस तिथिके अवसरपर जो व्यक्ति बिना अग्निमें पकाये स्वयं पके हुए फल आदिके आहारपर रहकर नियमके साथ व्रत रहता है, उसपर कुबेर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और वे उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण कर देते हैं।

धनाध्यक्ष कुबेरके मूर्तिमान् बननेकी यह कथा सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली है। जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक इसका श्रवण अथवा पठन करता है, उसके सारे मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। अन्तमें वह स्वर्गलोकको प्राप्त करता है।

(अध्याय ३०)

द्वादशी तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें उसके अधिष्ठाता श्रीभगवान् विष्णुकी उत्पत्ति-कथा

मुनिवर महातपा कहते हैं—राजन्! यह जो मनुका नाम और मनुत्व (मन्त्र) पढ़ा जाता है तथा उसमें जो मन्त्र-शक्ति है (वह चाहे वैदिक या तान्त्रिक कुछ भी हो) प्रयोजनवश स्वरूपतः मूर्तिमान् विष्णु ही है। राजन्! भगवान् नारायण सर्वश्रेष्ठ परम पुरुष हैं। उन परम प्रभुके मनमें सृष्टि-विषयक संकल्प उत्पन्न हुआ। उन्होंने सोचा—'मैंने जगत्‌की रचना तो कर दी, फिर पालन भी तो मुझे ही करना है। यह सारा कर्म-प्रपञ्च है। सम्यक् रूपसे स्वरूप धारण किये बिना यह कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता है। अतः एक ऐसी सगुण मूर्तिका निर्माण करूँ, जिससे इस जगत्‌की रक्षा हो सके।'

राजन्! परब्रह्म परमात्माका संकल्प सत्य होकर रहता है। वे प्रभु इस प्रकार विचार कर ही रहे थे, इतनेमें एक प्राक्तनी विशिष्ट स्वरूपधारिणी सृष्टि उनके सामने प्रकट हो गयी। इसमें स्वयं पुराणपुरुष भगवान् नारायण ही प्रकट हो गये और उन्होंने लोकत्रयको अपने वैष्णव शरीरमें प्रविष्ट होते देखा। फिर वह प्रभुके शरीरसे बाहर आया। उस अवसरपर उन्हें अपने प्राचीन वरदानकी बात याद आयी, जो भगवान्‌ने संतुष्ट होकर वाणी आदिको दिया था। यह बहुत पुराना प्रसङ्ग है। भगवान् नारायणने वर देते हुए कहा था—'तुम्हें सभी वस्तुएँ विदित होंगी। तुम सबके कर्ता होओगे। सम्पूर्ण प्राणिवर्ग तुम्हें नमस्कार करेगा। तुम्हारे द्वारा तीनों लोकोंकी रक्षा होगी। अतः तुम 'विष्णु' नाम धारण करो। तुम सनातन पुरुष हो। देवताओं और ब्राह्मणोंकी सम्यक् प्रकारसे सदा रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य है। देव! तुम्हें सर्वज्ञता प्राप्त हो जाय—इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं है।'

इस प्रकार वर देकर भगवान् नारायण अपने प्राकृत रूपमें स्थित हो गये। फिर अब विष्णुको भी पहलेकी बात ध्यानमें आ गयी। सोचा—'अरे! मैं तो वही शक्तिसम्पन्न पुरुष हूँ।' तब उन महान् तपस्वी प्रभुने ऐश्वर्यके प्रभावसे योगनिद्राका स्मरण किया। वे देवी आ गयीं। स्त्री-पुरुषके संयोगसे उत्पन्न होनेवाली प्रजाओंका भार उनपर सौंप दिया। 'मैं उन परम प्रभु भगवान् नारायणका ही तो रूप हूँ'—ऐसा विचारकर वे फिर सो गये। सो जानेपर उनकी नाभिसे एक बड़ा-सा कमल निकला। सात द्वीपोंवाली पृथ्वी, समुद्र और वन—ये सब-के-सब उस कमलपर विराजमान थे। उस कमलके रूपका विस्तार आकाशसे पातालतक फैला था। उसकी कर्णिकापर सुमेरु पर्वत सुशोभित हो रहा था। सबके बीचमें ब्रह्माजी थे। अपने ऐसे वैराज रूपको प्रत्यक्ष देखकर परम पुरुष

परमात्माको बड़ा हर्ष हुआ। फिर उनके भीतर जो पवनदेव थे, उन्होंने व्यवहारके लिये वायुका सृजन किया। साथ ही कहा—'तुम अज्ञानपर विजय करनेवाले ज्ञानस्वरूप इस शङ्खका रूप धारण करो।' फिर श्रीहरिसे कहा—'अज्ञानका नाश करनेके लिये तुम्हारे हाथमें यह तलवार सदा शोभा पाती रहे। अच्युत! भयंकर काल-चक्रको काटनेके लिये यह चक्र धारण कर लो। केशव! पापराशि नष्ट हो जाय, एतदर्थ यह गदा धारण करना आवश्यक है। समस्त भूतोंको उत्पन्न करनेवाली यह वैजयन्ती माला तुम्हारे कण्ठमें सदा सुशोभित होती रहे। चन्द्रमा और सूर्य—ये दोनों श्रीवत्स और कौस्तुभके स्थानपर शोभा पायें। पवन चलनेमें सबसे पराक्रमी कहा गया है। वह तुम्हारे लिये गरुड बन जाय। तीनों लोकोंमें विचरनेवाली देवी लक्ष्मी सदा आपकी आश्रिता रहें। आपकी तिथि द्वादशी हो और आप अपने अभीष्टरूपसे विराजें। इस द्वादशी तिथिके दिन स्त्री अथवा पुरुष—जो कोई भी आपके प्रति श्रद्धा रखते हुए घृतके आहारपर रहे, वह स्वर्गमें स्थान पानेका अधिकारी हो जाय।'

(**मुनिवर महातपा कहते हैं—राजन्**)! वही परम पुरुष भगवान् नारायण 'विष्णु' इस नामसे विख्यात हुए। देवता और दानव—ये सब उन्हींकी मूर्तियाँ हैं। स्वयं वे ही अपने आप विभिन्न रूप धारण करते हैं। उनके द्वारा किसीका संहार होता है तो किसीकी रक्षा होती है। उन्हें 'वेदान्तपुरुष' कहा जाता है। वे ही प्रभु प्रत्येक युगमें सब जगह विचरते हैं। जो उन्हें मनुष्य मानता है, उसे बुद्धिहीन समझना चाहिये। पापोंका नाश करनेवाला यह प्रसङ्ग वैष्णव-सर्ग कहलाता है। जो इसका पठन करता है, वह स्वर्गलोकमें जाकर परम पूज्य बन जाता है।

(अध्याय ३१)

त्रयोदशी तिथि एवं धर्मकी उत्पत्तिका वर्णन

महातपाजी कहते हैं—राजन्! धर्म बड़े आदरके पात्र हैं। नरेन्द्र! उनकी उत्पत्ति, महिमा और तिथिका प्रसङ्ग कहता हूँ, सुनो। जिन्हें परब्रह्म परमात्मा कहते हैं तथा जिन शुद्धस्वरूप प्रभुकी सत्ता सदा बनी रहती है, पहले केवल वे ही थे। उनके मनमें प्रजाओंकी रचना करनेका विचार उत्पन्न हुआ। फिर उन प्रजाओंकी रक्षाका उपाय सोचने लगे। वे इस चिन्तामें लगे ही थे कि इतनेमें उनके दक्षिण अङ्गसे एक पुरुष प्रकट हो गया। उसके कानोंमें श्वेत कुण्डल, गलेमें श्वेत माला थी और वह सफेद रङ्गका अनुलेपन लगाये हुए था। उसके चार पैर थे तथा उसकी आकृति बैलकी थी। फिर उस पुरुषको देखकर परम प्रभुने कहा—'साधो! तुम इन प्रजाओंकी रक्षा करो। मेरे द्वारा तुम जगत्‌में प्रधान बना दिये जाते हो।'

भगवान् नारायणकी आज्ञासे वह पुरुष वैसा ही हो गया। सत्ययुगमें उसके सत्य, शौच, तप और दान—ये चार पैर थे, त्रेतामें तीन तथा द्वापरमें दो। कलियुगमें वह दानरूपी एक पैरसे ही प्रजाओंका पालन करने लगा। ब्राह्मणोंके लिये उसने अध्ययन-अध्यापन एवं यजन-याजनादि छः रूप बनाये। क्षत्रियोंके लिये दान, यजन एवं अध्ययन—इन तीन रूपोंसे, वैश्योंके लिये दो रूपोंसे तथा शूद्रोंके लिये केवल एक सेवारूपसे ही सम्पन्न होकर वह सर्वत्र विराजने लगा। यह शक्तिशाली पुरुष सम्पूर्ण द्वीपों और तलातलोंमें व्याप्त हो गया। प्रकारान्तरसे द्रव्य, गुण, क्रिया और जाति—ये चार इसके पैर कहे गये हैं। वेदमें कहा गया है—संहिता, पद और क्रम—ये तीन उसके सींग हैं। आदि और अन्तमें स्थान पाये हुए दो सिरोंसे वह

शोभा पाता है। उसके सात हाथ हैं। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित—इन तीन स्वरोंसे वह सदा बद्ध रहता है। इस प्रकारसे वह धर्म व्यवस्थित हुआ।

राजन्! कुछ समयके बाद उस धर्मको विचित्र कर्म करनेवाले चन्द्रमाके कारण महान् दुःख हुआ। बृहस्पति चन्द्रमाके भाई हैं। चन्द्रमाके मनमें बृहस्पतिकी स्त्री ताराको ग्रहण करनेकी इच्छा जग उठी। इस निन्दित कर्मसे धर्मका मन उद्विग्न हो गया। अतः वह वहाँसे चला और एक गहन वनमें पहुँचकर वहीं रहने लगा। धर्मके वनमें चले जानेपर सम्पूर्ण देवता तथा दानवोंके सैनिक धर्महीन हो गये। फिर देवता दानवोंको मारनेके लिये घूमने लगे तथा वैसे ही दानवोंका भी देवताओंके घरपर चक्कर लगाना आरम्भ हो गया। राजन्! उस समय धर्मके न रहनेसे सभी मर्यादाएँ छिन्न-भिन्न हो गयीं। महाभाग! चन्द्रमाके दोषसे देवता और दानव—सभी परस्पर द्वेषके भाजन बन गये। उन्होंने अनेक प्रकारके आयुधोंको हाथमें ले लिया और वे परस्पर युद्ध करने लगे। उस संग्रामका कारण केवल स्त्री थी। नारदजी बड़े विनोदी हैं। दानवोंके साथ लड़ते हुए क्रोधी देवताओंको देखकर वे तुरंत अपने पिता ब्रह्माजीके पास गये और इसकी सूचना दी। ब्रह्माजी सम्पूर्ण प्राणियोंके पितामह हैं। अतः हंसपर आरूढ़ हो युद्धस्थलमें जाकर उन्होंने सबको मना किया। फिर उन्होंने उनसे पूछा—'इस समय तुमलोगोंका यह युद्ध किस लिये हो रहा है?' तब उन सबने उत्तर दिया—'भगवन्! यह चन्द्रमा ही सभी अनर्थोंका कारण है। यह अपनी बुद्धिसे इस लड़केको अपना बताता है। इस दूषित कर्मसे दुःखी होनेके कारण धर्म गहन वनमें जाकर निवास कर रहे हैं।' तब ब्रह्माजीने उसी क्षण देवताओं और दानवोंको साथ लिया तथा वनकी ओर चल पड़े। वहाँ जाकर देखा कि धर्म वृषभका वेष बनाकर चार पैरोंसे विराजमान हैं। चन्द्रमाके समान सफेद उनके सींग हैं और वे इधर-उधर विचर रहे हैं। फिर ब्रह्माजीने उपस्थित देवताओंसे कहा—

ब्रह्माजी बोले—'देवताओ! यह मेरा प्रथम पुत्र है। इस महामुनिको लोग धर्म कहते हैं। भाईकी भार्यासे अवैध राग करनेवाले चन्द्रमाके व्यवहारसे इसे अत्यन्त व्यथा हो रही है। अतः तुम सभी देवता और दानव अब इसे संतुष्ट करनेका प्रयत्न करो, जिसके फलस्वरूप पुनः सम्पूर्ण सुरों एवं असुरोंकी सम स्थिति हो जाय।' राजन्! उस समय ब्रह्माजीके वचनसे देवताओं और दानवोंको धर्मकी बातें विदित हो गयीं। उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। अतएव सबलोग चन्द्रमाके समान स्वच्छ वर्णवाले धर्मकी स्तुति करनेमें तत्पर हो गये।

देवताओंने कहा—जगत्‌की रक्षा करनेवाले महाभाग! तुम्हारा वर्ण चन्द्रमाके समान उज्ज्वल है। तुम्हें बार-बार नमस्कार है। देवरूप धारण करनेवाले प्रभो! तुम्हारी कृपासे स्वर्गका मार्ग दीख जाता है। तुम कर्ममार्गके स्वरूप हो तथा सब जगह विराजते हो। तुम्हें बार-बार नमस्कार है। पृथ्वीके पालक तथा तीनों लोकोंके रक्षक एकमात्र तुम्हीं हो। जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक सभी तुमसे सुरक्षित रहते हैं। स्थावर एवं जङ्गम—कोई भी प्राणी ऐसा नहीं है, जो तुम्हारे बिना स्थित रह सके। तुम्हारे अभावमें तो यह जगत् तुरंत ही नष्ट हो सकता है। तुम सम्पूर्ण प्राणियोंकी आत्मा हो। सज्जन पुरुषोंके हृदयमें सत्त्वस्वरूप धारण कर तुम शोभा पाते हो। राजस पुरुषोंमें राजस और तामस पुरुषोंमें तामसरूप तुम्हारा ही है। तुम्हारे चार चरण हैं। चारों वेद तुम्हारे सींग हैं। तीन नेत्र तुम्हारी शोभा बढ़ाते हैं। हाथोंकी संख्या सात है। तुम तीन बन्धवाले हो। ऐसे

वृषभरूपी प्रभो ! तुम्हें नमस्कार है ।* देव ! तुम्हारी अनुपस्थितिमें हम विपथगामी एवं मूर्ख बन गये हैं । तुम हमारे परम आश्रय हो । अतः हमें सन्मार्ग बतानेकी कृपा करो ।

जब इस प्रकार देवताओंने स्तुति की तो प्रजापालक धर्म, जो वृषभके रूपसे पधारे थे, संतुष्ट हो गये । उनका मन प्रसन्न हो गया । फिर तो उनके शान्तस्वरूप नेत्रने ही उन्हें सन्मार्ग बता दिया । उनकी केवल दृष्टि पड़नेसे ही वे देवता धार्मिक नेत्रसे देखने लगे । एक क्षणमें ही उनका अज्ञान नष्ट हो गया । वे सम्यक् प्रकारसे सद्धर्म-सम्पन्न हो गये । असुरोंकी स्थिति भी वैसी ही हो गयी । तब ब्रह्माजीने धर्मसे कहा—'धर्म ! आजसे तुम्हारे लिये त्रयोदशी तिथि निश्चित कर देता हूँ । जो पुरुष इस तिथिके दिन उपवास करके तुम्हारी पूजा करेगा, वह पापी होनेपर भी पापमुक्त हो जायगा । धर्म ! तुममें प्रभूत सामर्थ्य है । तुम इस अरण्यमें बहुत समयतक निवास कर चुके हो, इसलिये यह वन 'धर्मारण्य'-नामसे विख्यात होगा । प्रभो ! चार, तीन, दो और एक चरणसे युक्त होकर तुम कृत, त्रेता आदि युगमें जिस प्रकार लक्षित होते हो, उसी प्रकार पृथ्वी और आकाशमें रहकर विश्वको अपना घर मानते हुए उसकी रक्षा करो ।'

राजन् ! इतनी बातें कहकर लोकपितामह ब्रह्माजी देवताओं और दानवोंके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये । देवताओंका शोक दूर हो गया । वे वृषभका वेष धारण करनेवाले धर्मके साथ अपने लोकको चले गये । जो पुरुष त्रयोदशीके दिन श्राद्ध करते समय धर्मकी उत्पत्तिका यह प्रसङ्ग पितरोंको सुनायेगा एवं भक्तिके साथ दूधसे तर्पण करेगा, वह स्वर्गमें जाकर देवताओंके साथ सुखपूर्वक निवास करनेका अधिकारी होगा ।

(अध्याय ३२)

चतुर्दशी तिथिके माहात्म्यके प्रसङ्गमें रुद्रकी उत्पत्तिका वर्णन

महातपा मुनि कहते हैं—राजन् ! इसके अतिरिक्त सृष्टिके आरम्भमें रुद्रके उत्पन्न होनेकी एक कथा और है । अब वह प्रसङ्ग कहता हूँ, यत्नपूर्वक सुनो—

जब तपोरूप धर्ममय वृक्ष नष्टप्राय हो गया था, उस समय प्रचण्ड तेजस्वी ब्रह्माजी क्षमारूपी अक्ष धारण किये प्रकट हुए । उन परम प्रतापी प्रभुके आनेका प्रयोजन था परम ज्ञान और तत्त्वको जानकर प्रजाओंकी रक्षा करना । सृष्टि करनेकी इच्छावाले उन महाप्रभुने चाहा—'प्रजाएँ उत्पन्न हों और इच्छानुसार जगत्‌की वृद्धि हो ।' किंतु इसमें प्रतिबन्ध पड़ गया । अतः क्रोधसे उनका मन क्षुब्ध हो उठा । फिर वे समाधिस्थ हो गये । अब उनके सामने एक ऐसा श्रेष्ठ पुरुष प्रकट हुआ, जिसका अन्तःकरण अत्यन्त पवित्र था । उसके रजोगुण और तमोगुण सर्वथा नष्ट हो चुके थे । उसकी कीर्ति अचल थी । उस पुरुषमें वर देनेकी पूर्ण शक्ति थी एवं अपार बल था । उसके शरीरकी कान्ति काले और लाल-रंगसे सम्पन्न थी तथा नेत्र पीले रंगके थे । वह उत्पन्न होते ही रोने लगा । तब ब्रह्माजीने कहा—'त्वं मा रुद,—तुम रोओ मत ।' इस कारण उस पुराण पुरुषका नाम रुद्र हो गया । पुनः ब्रह्माजी बोले—'तुम एक महान् पुरुष हो ! तुममें सब कुछ करनेकी शक्ति है । तुम मेरी ऐसी सृष्टिका विस्तार करो, जिसका रूप तुम्हारे ही अनुरूप हो ।'

* 'चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य । त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यान् आ विवेश ।' (ऋग्वेद ४ । ५८ । ३) इस वेदमन्त्रमें भी यही भाव व्यक्त हुआ है ।

ब्रह्माजीके इतना कहते ही वे तप करनेके विचारसे जलके भीतर चले गये । फिर उन देवेश्वर रुद्रके जलमें चले जानेपर ब्रह्माजीने दक्षप्रजापतिकी सृष्टि की। ब्रह्माजीके अन्य मानस पुत्रोंने भी प्रजाओंका सृजन किया। सृष्टि पर्याप्त रूपसे फैल गयी। फिर देवेश्वरकी अध्यक्षतामें दक्षप्रजापतिका ब्रह्मयज्ञ आरम्भ हो गया।

राजन् ! इतनेमें रुद्रदेव, जो तप करनेके लिये जलके भीतर गये थे, संसार और सुरगणकी सृष्टि करनेके विचारसे जलसे बाहर निकले। उन्होंने सुना—'यज्ञ हो रहा है और उसमें देवता, सिद्ध एवं यक्ष आये हुए हैं।' फिर तो उन्हें क्रोध हो आया। अतः सोचा और कहा—'अरे, तेजस्विनी अपनी कन्या तथा मेरा तिरस्कार करके मूर्खतावश इसने किस प्रकार जगत्की सृष्टि कर ली। हा, हा,—इसे ऐसा नहीं करना चाहिये' यों कहते-कहते रोषसे उनका शरीर चतुर्दिक् उद्दीप्त हो उठा। साथ ही उनके मुँहसे ज्वालाएँ निकलने लगीं। वे ही अनेक भूत, पिशाच, वेताल एवं योगियोंके झुंड बनकर विचरने लगीं। जब समस्त आकाश, पृथ्वी, सारी दिशाएँ तथा लोक आदि उन भूतोंसे भर गये तो उन रुद्रने सर्वज्ञताके प्रभावसे चौबीस हाथका लम्बा एक धनुष बनाया। तेहरी बटी रस्सीसे उसकी प्रत्यञ्चा बनायी और क्रोधके कारण दो दिव्य तरकस तथा बाणोंको ले लिया और उससे उन्होंने पूषाके दाँत तोड़ डाले, भग नामक मुनिकी आँखें निकाल लीं और क्रतु देवताके अण्डकोष काटकर गिरा दिये। बाणविद्ध होकर क्रतु देवता यज्ञवाटसे (यज्ञशालासे) भाग चले। वायुने उनका मार्ग रोक दिया। यज्ञ नष्ट-भ्रष्ट हो गया। देवता यज्ञके पशु-से बन गये। तब सबने भगवान् रुद्रकी शरण ली। ब्रह्माजीने वहाँ पहुँचकर रुद्रको गलेसे लगाया। वहाँ वे देवता भी उन्हें दिखायी पड़े, जिनका रुद्रने अपकार किया था और जो भक्तिके साथ उनकी शरणमें पहुँचे थे। बातें विदित हो जानेपर देवाधिदेव ब्रह्माजी रुद्रकी ओर देखते हुए बोले—'तात! अब क्रोध करना ठीक नहीं है; क्योंकि क्रतु—यज्ञदेवता तो यहाँसे भाग गये हैं।' ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर रुद्र क्रोधसे भर गये और कहने लगे—'देवेश्वर ! आपने सर्वप्रथम मुझे बनाया है; किंतु ये लोग इस यज्ञमें मुझे भाग नहीं दे रहे हैं; इसीलिये मैंने इन्हें विकृत कर दिया तथा इनका ज्ञान हर लिया है।'

ब्रह्माजीने कहा—'देवताओ ! तुमलोग तथा समस्त असुर ज्ञान प्राप्त करनेके लिये उच्चस्वरसे स्तोत्रोंको पढ़कर इन महाभाग शम्भुकी ऐसी आराधना करो, जिसके फलस्वरूप भगवान् रुद्र प्रसन्न हो जायँ। इनकी प्रसन्नतामात्रसे सर्वज्ञता सुलभ हो जाती है।' ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर वे देवता भगवान् रुद्रकी स्तुति करने लगे।

देवगण बोले—महात्मन्! आप देवताओंके अधिष्ठाता, तीन नेत्रवाले, जटा-मुकुटसे सुशोभित तथा महान् सर्पका यज्ञोपवीत पहनते हैं। आपके नेत्रोंका रंग कुछ पीला और लाल है। भूत और वैताल सदा आपकी सेवामें संलग्न रहते हैं। ऐसे आप प्रभुको हमारा नमस्कार है। भगके नेत्रको बींधनेवाले भगवन् ! आपके मुखसे भयंकर अट्टहास होता है। कपर्दी और स्थाणु आपके नाम हैं। पूषाके दाँत तोड़नेवाले भगवन्! आपको हमारा नमस्कार है। महाभूतोंके संरक्षक प्रभो ! आपको हम नमस्कार करते हैं। प्रभो! भविष्यमें वृषभ या धर्म आपकी ध्वजाका चिह्न होगा और त्रिपुरका आप विनाश करेंगे। साथ ही आप अन्धकासुरका भी हनन करेंगे। भगवन् ! आपका कैलासपर सुन्दर निवास-स्थान है। आप हाथीका चर्म वस्त्ररूपसे धारण करते हैं। आपके सिरका ऊपर उठा हुआ केश सबको भयभीत कर देता है अतः आपका 'भैरव'

नाम है । प्रभो ! आपको हमारा बारंबार नमस्कार है । देवेश्वर ! आपके तीसरे नेत्रसे आगकी भयंकर ज्वाला निकलती रहती है । आपने चन्द्रमाको मुकुट बना रखा है । आगे आप कपाल धारण करनेका नियम पालन करेंगे । ऐसे आप सर्वसमर्थ प्रभुको हमारा नमस्कार है । प्रभो ! आपके द्वारा 'दारुवन'का विध्वंस होगा । नीले कण्ठ एवं तीखे त्रिशूलसे शोभा पानेवाले भगवन् ! आपने महान् सर्पको कङ्कण बना रखा है, ऐसे तिग्म त्रिशूली (तेज त्रिशूलवाले) आप देवेश्वरको नमस्कार है । यज्ञमूर्ते ! आप हाथमें प्रचण्ड दण्ड धारण करते हैं । आपके मुखमें बडवानलका निवास है । वेदान्तके द्वारा आपका रहस्य जाना जा सकता है । ऐसे आप प्रभुको बारंबार नमस्कार है । शम्भो ! आपने दक्षके यज्ञका विध्वंस किया है । शिव ! जगत् आपसे भय मानता है । भगवन् ! आप विश्वके शासक हैं । विश्वके उत्पादक तथा कपर्दी नामके जटा-जूटको धारण करनेवाले महादेव ! आपको नमस्कार है ।

इस प्रकार देवताओंद्वारा स्तुति किये जानेपर प्रचण्ड धनुषधारी सनातन शम्भु बोले—'सुरगणो ! मैं देवताओंका अधिष्ठाता हूँ । मेरे लिये जो भी काम हो, वह बताओ ।'

देवताओंने कहा—प्रभो ! आप यदि प्रसन्न हैं तो हमें वेदों एवं शास्त्रोंका सम्यक् प्रकारसे ज्ञान यथाशीघ्र प्रदान करनेकी कृपा करें । साथ ही रहस्य-सहित यज्ञोंकी विधि भी हमें ज्ञात हो जाय ।

महादेवजी बोले—देवताओ ! आप सब-के-सब एक ही साथ पशुका रूप धारण कर लें और मैं सबका स्वामी बन जाता हूँ, तब आप सभी अज्ञानसे मुक्ति पा जायँगे । फिर देवताओंने भगवान् शम्भुसे कहा—'बहुत ठीक, ऐसा ही होगा । अब आप सर्वथा पशुपति हो गये ।' उस समय ब्रह्माजीका अन्तःकरण प्रसन्नतासे भर गया । अतः उन्होंने उन पशुपतिसे कहा—'देवेश ! आपके लिये चतुर्दशी तिथि निश्चित है—इसमें कोई संशय नहीं । जो द्विज उस चतुर्दशी तिथिके दिन श्रद्धापूर्वक आपकी उपासना करें, गेहूँसे तैयार किये पक्वान्नद्वारा अन्य ब्राह्मणोंको भोजन करायें, उनपर आप परम संतुष्ट हों और उन्हें उत्तम स्थानका अधिकारी बना दें ।'

इस प्रकार अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीके कहनेपर भगवान् रुद्रने पूषाके दाँत तथा भगके नेत्र पूर्ववत् कर दिये । फिर सभीको यज्ञकी समाप्तिका फल भी प्रदान किया तथा देवताओंके अन्तःकरणमें परम विशुद्ध सम्पूर्ण ज्ञान भर दिया । इस प्रकार परब्रह्म परमात्माने पूर्वकालमें रुद्रको प्रकट किया था । इसी कार्यका सम्पादन करनेसे वे देवताओंके अधिष्ठाता कहलाते हैं ।

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर प्रतिदिन इस कथाका श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर भगवान् रुद्रके लोकको प्राप्त करता है ।

(अध्याय ३३)

अमावास्या तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें पितरोंकी उत्पत्तिका कथन

महातपाजी कहते हैं—राजन् ! अब मैं पितरोंकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग कहता हूँ, तुम उसे सुनो । पूर्व समयकी बात है—प्रजापति ब्रह्माजी अनेक प्रकारकी प्रजाओंका सृजन करनेके विचारसे मनको एकाग्र करके बैठ गये । फिर उनके मनसे तन्मात्राएँ* बाहर निकलीं । उन्होंने उन सबको प्रधानता दी और 'इनको किन रूपोंसे सुशोभित करें'—यों विचारने लगे । कारण, वे सभी ब्रह्माजीके शरीरमें पहलेसे ही थीं और वहींसे पुनः ये धूम्रवर्णवाली तन्मात्राएँ प्रकट हुई थीं । फिर वे चमक-कर देवताओंसे कहने लगीं—'हम सोमरस पीना

* पञ्चज्ञानेन्द्रियोंके विषय शब्द-स्पर्शादि ही तन्मात्राएँ हैं । (इनका प्रयोग संस्कृतमें क्लीब एवं पुंलिङ्गमें दृष्ट है ।)

चाहती हैं ।' साथ ही उनके मनमें ऊपरके लोकमें जानेकी इच्छा हुई। उन सबोंने सोचा—हम 'आकाशमें आसन जमाकर वहीं तपस्या करें ।' ऊपर जानेके लिये वे मुख उठाकर तिरछे मार्गका अवलम्बन करना ही चाहती थीं, इतनेमें उन्हें देखकर ब्रह्माजीने कहा—'समस्त गृहाश्रमियोंका कल्याण करनेके लिये आप लोग पितर होकर रहें ।' ये जो ऊपर मुख करके जाना चाहते हैं, इनका नाम 'नान्दीमुख' होगा । इस प्रकार कहकर ब्रह्माजीने उनके मार्गका भी निरूपण कर दिया । राजन् ! उस समय ब्रह्माजीने उन पितरोंके लिये मार्ग सूर्यका दक्षिणायनकाल बता दिया। इस प्रकार प्रजाकी सृष्टि कर वे जब मौन हो गये, तब पितरोंने उनसे कहा—'भगवन् ! हमें जीविका देनेकी कृपा कीजिये, जिससे सुख प्राप्त कर सकें ।'

ब्रह्माजी बोले—तुम्हारे लिये अमावास्याकी तिथि ही दिन हो । उस तिथिमें मनुष्य जल, तिल और कुशसे तुम्हारा तर्पण करेंगे । इससे तुम परम तृप्त हो जाओगे । इसमें कुछ भी संदेह नहीं है । उस अमावास्या तिथिमें तिल देनेका विधान है । पितरोंके प्रति श्रद्धा रखनेवाला जो पुरुष तुम्हारी उपासना करेगा, उसपर अत्यन्त संतुष्ट होकर यथाशीघ्र वर देना तुम्हारा परम कर्तव्य है ।

(अध्याय ३४)

पूर्णिमा तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें उसके स्वामी चन्द्रमाकी उत्पत्तिका वर्णन

महातपाजी कहते हैं—राजन् ! यशस्वी अत्रि मुनि ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं । उन्हींके यहाँ पुत्ररूपसे चन्द्रमाका प्राकट्य हुआ था । दक्षप्रजापतिने उन्हें अपना जामाता बना लिया । दक्षकी जो सत्ताईस दाक्षायणी कन्याएँ कही गयी हैं, वे सभी परम माननीया कन्याएँ चन्द्रमाकी पत्नी हुईं । उन कन्याओंमें रोहिणी सबसे श्रेष्ठ थीं । सुनते हैं, चन्द्रमा अकेली उस रोहिणीसे ही अधिक प्रेम करते थे, दूसरी अन्य कन्याओंसे नहीं । तब अन्य सभी कन्याएँ पिता दक्षके पास आयीं और उन्होंने चन्द्रमाके विषम व्यवहारका वृत्तान्त सुनाया। दक्ष भी चन्द्रमाके समीप आये और ऐसा न करनेके लिये बार-बार समझाया; किंतु चन्द्रमाने उनकी समतावाली बातपर विशेष ध्यान नहीं दिया । तब दक्षने चन्द्रमाको शाप दे दिया—'तुम (धीरे-धीरे क्षीण होकर) अस्त हो जाओ ।'

इस प्रकार दक्षके कहनेपर उनके शापसे चन्द्रमाको क्षय (रोग) हो गया और अन्तमें वे अमावास्याको सर्वथा अस्त हो गये । उनके अभावमें देवता, मनुष्य, पशु, वृक्ष और विशेषतः ओषधियाँ—प्रायः सब-के-सब नष्ट-से हो गये । जब ओषधियोंका अत्यन्त अभाव हो गया, तो मुख्य देवताओंकी आतुरता बढ़ गयी । वे कहने लगे—'चन्द्रमा वृक्षोंकी जड़में स्थित हो गया ।'* अब वे चिन्तातुर देवता भगवान् विष्णुकी शरण गये । श्रीहरिने उनसे पूछा—'आप बतलायँ, एतदर्थ मैं क्या करूँ ?' तब देवताओंने उनसे कहा—'भगवन् ! दक्षने चन्द्रमाको शाप दे दिया है, जिससे वे तिरोहित हो गये हैं ।'

उस समय उन प्रभुने देवताओंसे कहा—'सुरगणो ! तुमलोग गर्जनेवाले समुद्रमें चारों ओर ओषधियाँ डाल दो और बड़ी सावधानीसे उसका मन्थन आरम्भ

* यह वैदिक मान्यता है, चन्द्रमा अमावास्याको ओषधि, तृण एवं वीरुधोंमें वास करता है ।

कर दो।' देवताओंसे ऐसा कहकर स्वयं भगवान् श्रीहरिने फिर महाभाग शंकर एवं ब्रह्माजीको स्मरण किया, साथ ही रस्सीकी जगह प्रयुक्त होनेके लिये वासुकिनाग-को आज्ञा दी। फिर तो वे सभी एकत्र होकर समुद्रका मन्थन करने लगे। राजन्! जब समुद्र भलीभाँति मथा गया तो चन्द्रमा पुनः प्रकट हो गये। जिन परमपुरुष परमात्माका क्षेत्रज्ञ नाम है, उन्हें ही प्राणियोंका जीवात्मा चन्द्रमा समझना चाहिये। अब परोक्ष मूर्तिके अतिरिक्त वे सुन्दर सोमका स्वरूप धारण करके पृथक् रूपसे भी प्रकाशित होने लगे। सभी देवता, मानव, वृक्ष और ओषधियाँ इन्हीं सोलह कलावाले परम प्रभुका आश्रय पाकर जीवन धारण करनेमें समर्थ हैं। उस समय सोमको उन्हीं प्रभुका स्वरूप समझकर रुद्रने उनकी द्वितीया तिथिकी (अमृता) कलाको अपने मस्तकपर धारण कर लिया। जल उन्हीं (शिव—परमात्मा) का स्वरूप है। इसीसे उन्हें विश्वमूर्ति कहा गया है। चन्द्रमापर प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने इन्हें पूर्णमासी तिथि प्रदान की। राजन्! इस तिथिमें उपवास रहकर चन्द्रमाकी उपासना एवं ध्यान करना चाहिये। व्रतीको अन्नका आहार करना चाहिये। इस व्रतके फलस्वरूप चन्द्रमा उसे ज्ञान, कान्ति, पुष्टि, धन, धान्य और मोक्ष सुलभ कर देते हैं। [विशेष द्रष्टव्य—अग्नि-नारदादि पुराणों, 'नारदसंहिता,' 'रत्नमाला' एवं मुहूर्तचिन्तामणि आदि ज्योतिषग्रन्थोंमें—

तिथीशा वह्निकौ गौरी गणेशोऽहिर्गुहो रविः।
शिवो दुर्गान्तको विश्वे हरिः कामः शिवः शशी॥

(मुहू० चि० १। ३) आदिसे क्रमशः कहीं अग्नि, ब्रह्मा, पार्वती, गणेश, नाग, गुह, सूर्य, शिव, दुर्गा, यम, विश्वदेवता, विष्णु, काम, शिव और चन्द्रमाको प्रतिपदादि तिथियोंका स्वामी बतलाया गया है और कहीं ठीक यह वराहपुराणवाला ही क्रम है। पर इसमें सुन्दर कथाओं-द्वारा ज्योतिषके रहस्यको स्पष्टकर विशेष सिद्धि-प्राप्तिके सरल साधन निर्दिष्ट हुए हैं। इससे पाठक-पाठिकाओंको अवश्य लाभ उठाना चाहिये।]

(अध्याय ३५)

प्राचीन इतिहासका वर्णन

महातपा कहते हैं—राजन्! त्रेतायुगके आदिमें जो वीर मणिसे उत्पन्न हुए थे तथा जिनमें-से एक तुम भी हो, अब उनका वृत्तान्त बताता हूँ, सुनो। नरेन्द्र! सत्ययुगमें जिसका नाम सुप्रभ था, वह तुम ही हो। यहाँ 'प्रजापाल'के नामसे भी तुम्हारी प्रसिद्धि हुई है। राजन्! शेष महाबली नरेश त्रेतायुगमें होंगे। जो दीप्ततेजा था, उसका नाम शान्त कहा गया है। सुरश्मि महाबली राजा शशकर्णके नामसे ख्याति प्राप्त करेगा। शुभदर्शन ही पाञ्चाल राजा होगा—इसमें संदेह नहीं है। सुशान्ति अङ्गवंशमें जन्म लेकर सुन्दर नामसे विख्यात होगा। सुन्द ही (सत्ययुगके अन्तमें) मुचुकुन्द हुआ। इसी प्रकार सुद्युम्न तुरु नामसे, सुमना सोमदत्त नामसे तथा शुभ संवरण नामसे विख्यात हुए। सुशील वसुदान हुआ और सुखद असुपति नामक राजा हुआ। शम्भु सेनापतिके नामसे प्रसिद्ध हुआ। कान्त दशरथके नामसे विख्यात राजा हुए और सोमकी राजा जनक नामसे प्रसिद्धि हुई। राजन्! ये सभी नरेश त्रेतायुगमें हुए थे। वे इस भूमण्डलके राज्य-सुखको भोगकर अनेक प्रकारके यज्ञोंद्वारा भगवान्‌की आराधना करके निःसंदेह स्वर्गको प्राप्त करेंगे।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! यह उत्तम 'ब्रह्मविद्यामृत' नामक आख्यान है। इसे सुनकर राजर्षि प्रजापालको अत्यन्त आनन्द हुआ और वे अन्तमें तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये। इस प्रकार तप

एवं ब्रह्मका चिन्तन करते हुए उन्होंने पाञ्चभौतिक शरीरका परित्याग कर दिया और अन्तमें ब्रह्ममें ही लीन हो गये। राजा प्रजापालने यह तपस्या वृन्दावनमें की थी। वहाँ तपस्या करते हुए उन्होंने भगवान् गोविन्दकी इस प्रकार स्तुति की थी।

राजा प्रजापालने कहा—जो सम्पूर्ण जगत्‌के रूपमें विराजमान हैं, गोपेन्द्र एवं उपेन्द्र—जिनके नाम हैं, जिनकी किसीसे तुलना नहीं की जा सकती, जो एकमात्र संसार-चक्रको चलानेमें कुशल हैं तथा पृथ्वी जिनके आश्रयपर टिकी है, उन देवेश्वर भगवान् गोविन्दको मैं नमस्कार करता हूँ। श्रीकृष्ण! आप गौओंके रक्षक हैं। जो दुःखरूपी सैकड़ों लहरोंके उठनेसे भयंकर बन गया है तथा जिसमें वृद्धावस्था-रूपी जलकी भँवरियाँ उठ रही हैं एवं जो पातालतक गहरा है, ऐसे संसार-समुद्रमें मैं गोते खाता हूँ। ऐसी स्थितिमें मुझे सुख देनेमें समर्थ एकमात्र आप अप्रमेयस्वरूप प्रभु ही हैं। विभो! आपको मेरा नमस्कार है। भगवन्! आधि-व्याधियों तथा ग्रहोंके द्वारा मैं बार-बार इधर-उधर घसीटा जा रहा हूँ। उपेन्द्र! आप सम्पूर्ण प्राणियोंके बन्धु हैं। जनार्दन! दुःखी एवं व्याकुल व्यक्तिपर कृपा करना आपका स्वाभाविक गुण है। अतः महाभाग! आपको मेरा नमस्कार है। सुरेश! सर्वज्ञोंमें आपका सबसे श्रेष्ठ स्थान है। यह अखिल विश्व आपके प्रयत्नसे ही विस्तृत है। प्रभो! आपकी छत्र-छायामें गोप आनन्द करते हैं। चक्रधर प्रभो! मैं संसारसे भयभीत हो गया हूँ। अतः मेरी रक्षा करनेकी कृपा कीजिये। अच्युत! आप परम देवता हैं। सुर-समाजमें आपकी प्रधानता है। आप पुराण-पुरुष हैं। चन्द्रमामें प्रकाश आपका ही तेज है। अग्नि आपका मुख है। गोपेन्द्र! मैं संसारमें भटक रहा हूँ। मेरी रक्षा आप करें। सुरेश! भला इस सुख-दुःख आदि द्वन्द्वमय संसारमें रहनेवाला कौन ऐसा प्राणी है, जो आपकी मायाको पार कर सके। गोपेन्द्र! आप अगोत्र, अस्पर्श, अरूप, अगन्ध, अनिर्देश्य और अज हैं। जो विद्वान् व्यक्ति ऐसे आप पूजनीय पुरुषकी उपासना करते हैं, उन्हें मुक्तिका पात्र माना जाता है। आपकी न कोई मूर्ति है और न कोई कर्म। आप परम कल्याणमय हैं। आप शङ्ख, चक्र एवं कमल धारण करते हैं—यह पुराणोंका कथन या सारी स्तुति औपचारिकमात्र है। मैं आपको निरन्तर नमस्कार करता हूँ। आप वामनका अवतार धारण करके तीनों लोकोंपर विजय पा चुके हैं। आप कृष्णादि चतुर्व्यूहसे शोभा पाते हैं। शम्भु, विभु, भूतपति और सुरेश—ये सब आपके ही नाम हैं। ऐसे अनन्त एवं विष्णुनामधारी आप प्रभुको मैं प्रणाम करता हूँ। भगवन्! आप स्थावर-जङ्गम अखिल जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। प्रभो! मैं मुक्ति चाहता हूँ। अतः आप अभी मुझे उस स्थानपर ले चलें, जहाँ गये हुए योगी पुरुष पुनः वापस नहीं आते। विश्वमूर्ते! गोविन्द! आपकी जय हो! सर्वज्ञ, अप्रमेय एवं विश्वेश्वर! आपकी जय हो, जय हो!

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! उस समय राजा प्रजापालने इस प्रकार भगवान् गोविन्दकी स्तुति की और अपने शरीरको उनमें लीन कर दिया और वे शाश्वत धामको पधार गये।

(अध्याय ३६)

आरुणि और व्याधका प्रसङ्ग, नारायण-मन्त्र-श्रवणसे बाघका शापसे उद्धार

पृथ्वीने पूछा—भगवन्! आप सम्पूर्ण प्राणियोंका सृजन करते हैं। प्रभो! मैं आपकी उपासनाकी विधि जानना चाहती हूँ—अर्थात् श्रद्धालु स्त्रियाँ अथवा पुरुष आपकी उपासना किस प्रकार करते हैं? विभो! आप मुझे यह सब बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! मैं भावसे ही वशीभूत होता हूँ। मैं न तो प्रचुर धनोंसे सुलभ हूँ और न जपादि अन्य उपासनासे ही। साथ ही भक्त लोग मुझे तपद्वारा भी प्राप्त करते हैं—एतदर्थ मैं तुमसे कुछ साधनोंका निर्देश करता हूँ। जो मनुष्य मन, वाणी और कर्मसे मुझमें अपना चित्त लगाये रहता है, उसके लिये अनेक प्रकारके (तपोरूप) व्रत हैं। उन्हें मैं बताता हूँ, सुनो। अहिंसा, सत्यभाषण, चोरी न करना और ब्रह्मचर्यका पालन करना—ये मानसिक व्रत कहे जाते हैं*। दिनमें एक समय भोजन करना अथवा केवल एक बार रातमें भोजन करना पुरुषोंके लिये शारीरक व्रत (या तप) हैं। इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। वेद पढ़ना, भगवान् विष्णुके नाम-यशका कीर्तन करना, सत्य बोलना, किसीकी चुगली न करना, हितकारी मधुर बात कहना, सबका हित सोचना, धर्मपर आस्था रखना और धर्मयुक्त बातें बोलना—ये वाणीके उत्तम व्रत हैं।

वसुंधरे! इस विषयमें एक प्रसङ्ग सुना जाता है—पूर्वकल्पमें आरुणि नामसे विख्यात एक महान् तपस्वी ब्राह्मण-पुत्र थे। वे ब्राह्मणश्रेष्ठ किसी उद्देश्यसे तप करनेके लिये वनमें गये और वहाँ वे उपवासपूर्वक तपस्या करने लगे। उन ब्राह्मणने देविका नदी†के सुन्दर तटपर अपने रहनेका आश्रम बनाया था। एक बार किसी दिन वे ब्राह्मण देवता स्नान-पूजा करनेके विचारसे उस नदीके तटपर गये। स्नान करके वे जब जप कर रहे थे तो उन्होंने सामनेसे आते हुए एक भयंकर व्याधको देखा, जो हाथमें बड़ा-सा धनुष लिये हुए था। उसकी आँखें बड़ी क्रूर थीं। वह उन ब्राह्मणके वल्कल वस्त्र छीनने और उन्हें मारनेके विचारसे आया था। उस ब्रह्मघातीको देखकर आरुणिके मनमें घबड़ाहट उत्पन्न हो गयी और वे भयसे थरथर काँपने लगे। किंतु ब्राह्मणके अन्तःशरीरमें भगवान् नारायणको देखकर वह व्याध डर-सा गया। उसने उसी क्षण धनुष और बाण हाथसे गिरा दिये और कहा।

व्याधने कहा—ब्रह्मन्! मैं आपको मारनेके विचारसे ही यहाँ आया था; किंतु आपको देखते ही पता नहीं मेरी वह क्रूर-बुद्धि अब कहाँ चली गयी। विप्रवर! मेरा जीवन सदा पाप करनेमें ही बीता है। अबतक मेरे द्वारा हजारों ब्राह्मण मृत्युके मुखमें प्रविष्ट हो गये। प्रायः दस हजार साध्वी स्त्रियोंका भी मैंने अन्त कर डाला है। अहो, ब्राह्मणकी हत्या करनेवाला मैं पापी पता नहीं, किस गतिको प्राप्त करूँगा? महाभाग! अब आपके पास रहकर मैं भी तप करना चाहता हूँ। आप कृपया उपदेश देकर मेरा उद्धार करें।

व्याधके इस प्रकार कहनेपर उसे ब्रह्मघाती एवं महान् पापी समझकर द्विजश्रेष्ठ आरुणिने उसे कोई उत्तर नहीं दिया; परंतु हृदयमें धर्मकी अभिलाषा जग जानेके कारण ब्राह्मणके कुछ न कहनेपर भी वह व्याध वहीं ठहर गया। ब्राह्मण भी नदीमें स्नानकर वृक्षके नीचे

* तुलनीय गीता १७। १४

† इस नामकी कई नदियाँ हैं, पर यहाँ यह पंजाबकी देग नदी है; 'महाभारत' तथा 'स्कन्दपुराण'में इसका बहुधा उल्लेख है।

बैठे हुए तप करते रहे। इस प्रकार अब उन दोनोंका नियमित धार्मिक कार्यक्रम चलने लगा। इसी प्रकार कुछ दिन बीत गये। एक दिनकी बात है—आरुणि स्नान करने नदीके जलमें भीतर गये थे। इधर कोई भूखसे व्याकुल बाघ तबतक उन शान्तस्वरूप मुनिको मारनेके लिये आ पहुँचा। पर इसी बीच व्याधने बाघको मार डाला। मरनेपर उस बाघके शरीरसे एक पुरुष निकला। बात ऐसी थी—जिस समय आरुणि जलमें थे और बाघ उनपर झपटा, उस समय घबड़ाहटके कारण मुनिके मुँहसे सहसा **'ॐ नमो नारायणाय'** यह मन्त्र निकल गया। बाघके प्राण तबतक उसके कण्ठमें ही थे और उसने यह मन्त्र सुन लिया। प्राण निकलते समय केवल इस मन्त्रको सुनलेनेसे वह एक दिव्य पुरुषके रूपमें परिणत हो गया। तब उसने कहा—'द्विजवर! जहाँ भगवान् विष्णु विराजमान हैं, मैं वहीं जा रहा हूँ। आपकी कृपासे मेरे सारे पाप धुल गये। अब मैं शुद्ध एवं कृतार्थ हो गया।'

इस प्रकार उस पुरुषके कहनेपर विप्रवर आरुणिने उससे पूछा—'नरश्रेष्ठ! तुम कौन हो?' राजेन्द्र! तब पूर्वजन्ममें जो बात बीती थी, उसे बतलाते हुए वह कहने लगा—'इसके पहले जन्ममें मैं 'दीर्घबाहु' नामसे प्रसिद्ध एक राजा था। समस्त वेद, सम्पूर्ण धर्मशास्त्र मुझे सम्यक् प्रकारसे अभ्यस्त थे। अन्य शास्त्र भी मुझसे अपरिचित नहीं थे। पर अन्य ब्राह्मणोंसे मेरा कोई प्रयोजन न था। मैं प्रायः ब्राह्मणोंका अपमान भी कर देता था। मेरे इस व्यवहारसे सभी ब्राह्मण क्रुद्ध हो गये और उन्होंने मुझे भीषण शाप दे दिया—'तू अत्यन्त निर्दयी बाघ होगा; क्योंकि तेरे द्वारा ब्राह्मणोंका भीषण अनादर हो रहा है। तुझे किसी बातका स्मरण भी न रहेगा। अरे प्रचण्ड मूर्ख! मृत्युके समय भगवान् नारायणका नाम तेरे कानोंमें पड़ेगा।'

विप्रवर! वे सभी ब्राह्मण वेदके पारगामी विद्वान् थे। उनका भीषण शाप मुझे लग गया। मुने! जब ब्राह्मणोंने शाप दिया तो मैं उनके पैरोंपर गिर पड़ा तथा उनसे कृपापूर्वक क्षमाकी भीख माँगी। मुझपर उनकी कृपादृष्टि हो गयी। अतएव उन्होंने मेरे उद्धारकी भी बात बता दी और कहा—'राजन्! प्रत्येक छठे दिन मध्याह्नकालमें तुझे जो कोई मिले, उसे तू खा जाना—वह तेरा आहार होगा। जब तुझे बाण लगेगा और उसके आघातसे तेरे प्राण कण्ठमें आ जायँ, उस समय किसी ब्राह्मणके मुखसे जब **'ॐ नमो नारायणाय'** यह मन्त्र तेरे कानोंमें पड़ेगा, तब तुझे स्वर्गकी प्राप्ति हो जायगी—इसमें कोई संशय नहीं।' मुने! मैंने दूसरेके मुखसे भगवान् विष्णुका यह नाम सुना है। परिणामस्वरूप मुझ ब्रह्मद्वेषीको भी भगवान् नारायणका दर्शन सुलभ हो गया। फिर जो ब्राह्मणोंका सम्मानपूर्वक अपने मुँहसे **'ॐ हरये नमः'** इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए प्राणोंका त्याग करता है तो वह परमपवित्र पुरुष जीतेजी ही मुक्त है। मैं भुजा उठाकर बार-बार कहता हूँ—यह सत्य है, सत्य है और निश्चय ही सत्य है। ब्राह्मण चलते-फिरते देवता हैं। भगवान् पुरुषोत्तम कूटस्थ पुरुष हैं।'

ऐसा कहकर शुद्ध अन्तःकरणवाला वह बाघ (दिव्य पुरुष) स्वर्ग चला गया और ब्राह्मण आरुणि भी बाघके पंजेसे छूटकर व्याधसे कहने लगे—आज बाघ मुझे खानेके लिये उद्यत हो गया था। ऐसे अवसरपर तुमने मेरी रक्षा की है। अतएव उत्तम व्रतका पालन करनेवाले वत्स! मैं तुमपर संतुष्ट हूँ, तुम वर माँगो।

व्याधने कहा—ब्राह्मणदेवता! मेरे लिये यही वर पर्याप्त है, जो आप प्रेमपूर्वक मुझसे बातें कर रहे हैं। भला, आप ही बताइये—इससे अधिक वरसे मुझे करना ही क्या है?

आरुणिने कहा—व्याध ! तुम्हारी तपस्या करनेकी इच्छा थी, अतएव तुमने मुझसे प्रार्थना की थी । किंतु अनघ ! उस समय तुममें अनेक प्रकारके पाप थे । तुम्हारा रूप बड़ा भयंकर था । परंतु अब तुम्हारा अन्तःकरण परम पवित्र हो गया है; क्योंकि देविका नदीमें स्नान करने, मेरे दर्शन करने तथा चिरकालतक भगवान् विष्णुके नाम सुननेसे तुम्हारे पाप नष्ट हो गये हैं,—इसमें कोई संशय नहीं । साधो ! अब मेरा एक वर स्वीकार कर लो, वह यह कि तुम अब यहीं रहकर तपस्या करो। तुम इसके लिये बहुत पहलेसे इच्छुक भी थे ।

व्याध बोला—ऋषे ! आपने जिन परम प्रभु भगवान् नारायण और विष्णुकी चर्चा की है, उन्हें मानव कैसे प्राप्त कर सकते हैं ? यह बतानेकी कृपा करें—यही मेरा अभीष्ट वर है ।

ऋषिने कहा—व्याध ! कोई भी पुरुष सनातन श्रीहरिके उद्देश्यसे जिस किसी व्रतको भक्तिपूर्वक करनेमें संलग्न हो जाय तो वह उन्हें प्राप्त कर लेता है । पुत्र ! तुम ऐसा जानकर भगवान् नारायणका यह व्रत करो । (व्रतका रूप यह है—) कभी भी गणान्न—ब्राह्मणसंघके लिये निर्मित* अन्न नहीं खाना चाहिये और झूठ भी नहीं बोलना चाहिये । व्याध ! मैंने तुमसे जो इस उत्तम व्रतकी बात बतायी है, यह बिल्कुल सत्य है । अब तुम तपस्वी बनकर जबतक इच्छा हो, यहाँ रहो ।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! आरुणिको यह निश्चय हो गया कि यह व्याध मोक्ष पानेके लिये अत्यन्त चिन्तित है । अतः उन वरदाता ब्राह्मणने उसे इच्छित वर दे दिया । फिर एक दिन वे वहाँसे उठकर सहसा कहीं चले गये ।

(अध्याय ३७)

सत्यतपाका प्राचीन प्रसङ्ग

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि ! अब वह व्याध साधुओंके मार्गका अवलम्बनकर मन-ही-मन गुरुका ध्यान करते हुए निराहार रहकर तपस्या करने लगा । भिक्षा लेनेका समय आनेपर वह वृक्षसे गिरे सूखे पत्ते खा लिया करता था । एक दिनकी बात है, उसे भूख लगी तो किसी वृक्षके नीचे गया । भूखके कारण पेड़के पाससे उसे सूखे पत्ते उठाकर खानेकी इच्छा हुई । पर वैसा करते ही आकाशवाणी हुई—'अरे, ये शाखोटके निकृष्ट पत्ते हैं, इन्हें मत खाओ ।' यह शब्द पर्याप्त उच्चस्वरसे हुआ था । अतः वह व्याध उसे छोड़कर हट गया । अब वह किसी दूसरे वृक्षका पत्ता उठाकर लेने लगा । अब पुनः वहाँ भी वैसी ही ध्वनि हुई । इस प्रकारकी आपत्ति मानकर व्याधने उस दिन कुछ भी न खाया और निराहार रहकर बड़ी सावधानीके साथ गुरुदेव आरुणिको स्मरण करते हुए वह तप करनेमें तत्पर रहा ।

इस प्रकार वह तप कर ही रहा था कि इतनेमें महर्षि दुर्वासा उस व्याधके पास पधारे । उन ऋषिने देखा—व्याधके प्राणमात्र शरीरमें हैं, पर तपस्याके तेजसे यह ऐसा चमक रहा है, मानो घी डालनेसे अग्नि प्रदीप्त हो रही हो । उस व्याधने उन मुनिवर दुर्वासाजी-को शिर झुकाकर प्रणाम किया और बोला—'भगवन् !

* यहाँ मूलमें—'गणान्न' शब्द है । मनु ४ । १०९तथा ११९में भी यह शब्द आया है । वहाँ सभी व्याख्याता इसका प्रायः 'शतब्राह्मणसंघान्नम्'—यही अर्थ करते हैं । मोनियर विलियमके संस्कृत-अंग्रेजी-कोशमें यही भाव और अधिक स्पष्ट है ।

आपके दर्शनसे मैं कृतार्थ हो गया । आज श्राद्धका दिन है । आप अतिथि देवता मेरे पास पधारे हैं । सूखे पत्ते आदिसे श्राद्ध करके आप द्विजवरको मैं तृप्त करना चाहता हूँ ।' इधर इसमें कितनी पवित्र भावनाएँ हैं, इन्द्रियाँ कितनी वशमें हो गयी हैं तथा इसने तपसे कितना बल प्राप्त कर लिया है—यह जाननेके लिये वे मुनि भी उद्यत थे ही । अतः उन्होंने उच्चस्वरमें व्याधसे कहा—'ठीक है, तुम अपने पास आये मुझ अतिथिको यव, गेहूँ एवं धान्यसे भलीभाँति सिद्ध किया हुआ अन्न दो । मैं भूखसे अत्यन्त पीडित हो रहा हूँ ।' दुर्वासाजीके ऐसा कहनेपर व्याध बड़ी चिन्तामें पड़ गया । वह सोचने लगा—'यह सब सामग्री कहाँसे मिलेगी ।' वह इस प्रकार सोच ही रहा था इतनेमें एक सोनेका पवित्र पात्र आकाशसे गिरा । वह पात्र सिद्ध अन्नोंसे पूर्ण था । व्याधने उसे हाथमें उठा लिया और उसे लेकर वह डरता हुआ दुर्वासा मुनिसे कहने लगा—'ब्रह्मन् ! आप परम ब्रह्मज्ञ पुरुष हैं । जबतक मैं भिक्षा लाने जाता हूँ, तबतक आप यहीं रहनेकी कृपा करें । मुझपर किसी प्रकार आपकी इतनी कृपा अवश्य होनी चाहिये ।'

इस प्रकार कहकर वह साधु व्याध भिक्षा माँगनेके लिये जैसे ही आगे बढ़ा—इतनेमें उसे बहुत-से उपवन एवं अहीरकी बस्तियोंसे युक्त एक नगर दिखायी पड़ा । वहाँ पहुँचनेपर वृक्षोंमेंसे दूसरे अनेक पुरुष सुवर्णपात्र लिये निकल पड़े और विविध दिव्यान्नोंसे उसकी थालीको भर दिया । व्याध उसे लेकर अपनेको कृतार्थ-सा मानता हुआ अपने स्थानपर लौट आया । वहाँ आकर उसने जापकोंमें श्रेष्ठ महर्षि दुर्वासाको बैठे देखा । मुनिको देखकर उसने प्रसन्नतापूर्वक भिक्षाको एक पवित्र स्थानपर रख दिया और उन्हें प्रणाम कर कहा—'ब्रह्मन् ! यदि आपकी मुझपर दया है तो कृपा करें, यह आसन लें और पैर धोकर पवित्र आसनपर बैठ जायँ ।' व्याधके ऐसा कहनेपर उसके पवित्र तपोबलकी परीक्षा करनेके विचारसे महर्षिने कहा—'व्याध ! मैं नदी जानेमें असमर्थ हूँ । मेरे पास जलपात्र भी नहीं है; फिर मेरा पैर कैसे धुल सकता है ?' मुनिके ऐसा कहनेपर व्याध सोचने लगा—'क्या अब करूँ ? मुनिजीका मेरे यहाँ भोजन कैसे हो सकेगा ?' फिर उस चतुर व्याधने मन-ही-मन अपने गुरु आरुणिको स्मरण किया । साथ ही उस सुन्दर बुद्धिवाले व्याधने उस देविका नदीकी भी स्तुतिपूर्वक शरण ली ।

व्याध बोला— नदियोंमें श्रेष्ठ देविके ! मैं व्याध हूँ । मैंने सदा पाप-ही-पाप किये हैं । ब्राह्मण-हत्या-जैसा महापाप भी कर चुका हूँ । देवि ! फिर भी मैं आपको स्मरण कर आपकी शरण आया हूँ । आप मेरी रक्षा करें । देवता, मन्त्र और पूजनका विधान—यह सब मैं कुछ भी नहीं जानता । देवि ! आप नदियोंमें प्रधान हैं । केवल गुरुके उत्तम चरणोंका ध्यान करनेसे मेरा सदा कल्याण होता आया है । अब आप मुझ पापीपर कृपा करें । आपगे ! दुर्वासा ऋषि अपना पैर धो सकें, इस निमित्तसे आप उनके संनिकट पधारनेकी कृपा कीजिये ।

इस प्रकार व्याधके प्रार्थना करनेपर पापनाशिनी देविका नदी वहीं पहुँच गयीं, जहाँ उत्तम व्रतका पालन करनेवाले दुर्वासा मुनि विराजमान थे । यह देखकर मुनिको बड़ा आश्चर्य हुआ । वे विस्मयविमुग्ध रह गये । साथ ही उन विद्वान् मुनिवर दुर्वासाके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने हाथ-पैर धोकर उसके श्रद्धापूर्वक दिये हुए अन्नको खाया तथा आचमन किया । उस समय व्याधके शरीरमें केवल हड्डी ही शेष रह गयी थी । भूखके कारण वह अत्यन्त दुर्बल हो गया था ।

दुर्वासा ऋषिने उससे कहा—'अङ्गोंसहित वेद तथा रहस्यके साथ पद एवं क्रम, ब्रह्म-विद्या और पुराण—सभी तुम्हें प्रत्यक्ष हो जायँ।' इस प्रकारका वर देकर दुर्वासाजीने उसका नवीन नामकरण किया। उन्होंने कहा—'तुम अब ऋषियोंमें अग्रगण्य सत्यतपा नामक ऋषि होओगे*।'

मुनिवर दुर्वासाने जब इस प्रकार व्याधको वर दिया तो उसने मुनिसे कहा—'ब्रह्मन्! मैं व्याध होकर वेदोंका अध्ययन कैसे कर सकूँगा।'

ऋषि बोले—साधु व्याध! निराहार रहकर तपस्या करनेसे अब तुम्हारे पहलेके शरीरके संस्कार समाप्त हो गये हैं। तुम्हारा यह तपोमय शरीर उससे सर्वथा भिन्न है—इसमें कोई संशय नहीं। पूर्वकालीन अज्ञान भी शेष नहीं रह गया है। इस समय तुम्हारे अन्तःकरणमें शुद्धरूप अविनाशी परमात्मा निवास कर रहे हैं। अतः तुम परम पवित्र शरीरवाले बन गये हो—यह मैं तुमसे बिल्कुल सच्ची बात बता रहा हूँ। मुने! इस कारण तुम्हें वेद और शास्त्र भलीभाँति प्रतिभासित—ज्ञात होंगे। (अध्याय ३८)

मत्स्यद्वादशीव्रतका विधान तथा फल-कथन

सत्यतपाने कहा—भगवन्! आप ब्रह्मज्ञानियोंके शिरोमणि हैं। आपने जो दो शरीरोंकी बात कही है, यह शरीरभेद कैसे है? आप यह मुझे बतलानेकी कृपा कीजिये।

दुर्वासाजी बोले—दो ही नहीं, किंतु शरीरके तीन भेद हैं—ऐसा कहना चाहिये। प्राणियोंको ये शरीर इसलिये मिलते हैं कि उनको पाकर वह पूर्वकृत भोग भोगे। तुम्हारी पूर्वकी अवस्था भले ही पापपूर्ण थी, क्योंकि उस समय तुममें ज्ञानका नितान्त अभाव था। पर वही तुम अब उत्तम व्रतका पालन करनेके कारण दूसरी अवस्थामें आ गये हो—ऐसा समझना चाहिये। ब्रह्मवेत्ता 'विद्वानोंने बताया है कि एक तीसरा भी शरीर है, जिसे इन्द्रियाँ अपना विषय नहीं बना सकतीं तथा जो धर्म और अधर्मको भोगनेके लिये मिलता है। इस प्रकार इसके तीन भेद हैं। धर्म एवं अधर्मके भोग तथा सांसारिक पदार्थोंके भोगका साधन होनेसे भी शरीरके तीन भेद सिद्ध होते हैं। पूर्व समयमें तुम्हारे द्वारा जो प्राणियोंका बध हुआ करता था, उससे वैसे तुम्हारे संस्कार भी बन गये थे। इसीलिये तुम्हें पापमय शरीरवाला कहा जाता था। लोग तुमको पापी कहते थे। किंतु अब निरन्तर तप और दया करनेके कारण तुम्हारी प्रवृत्ति परम पवित्र बन गयी है। इस समय तुम्हें यह धर्ममय दूसरा शरीर सुलभ हो गया है। इस शरीरसे वेदों और पुराणोंकी जानकारी प्राप्त करनेके तुम पूर्ण अधिकारी हो—इसमें कोई संशय नहीं। जैसे जबतक बालककी अवस्था आठ वर्षतककी रहती है, तबतक उसकी मानसिक वृत्तिमें कुछ और ही भाव

* इसी पुराणमें आगे चलकर ९८वें अध्यायमें भगवान्‌ने बतलाया है कि वस्तुतः ये सत्यतपा इस जन्ममें भी वाल्मीकिके समान ब्राह्मण ही थे। केवल व्याधोंके संसर्गमें रहकर वे व्याध-से बन गये थे। फिर ऋषियोंके सत्सङ्गसे विशेषकर दुर्वासाके उपदेशसे वे ब्राह्मण हो गये—

स हि सत्यतपाः पूर्वं भृगुवंशोद्भवो द्विजः। दस्युसंसर्गसम्भूतो दस्युवत् समजायत॥
ततः कालेन महता ऋषिसङ्गात्पुनर्द्विजः। बभौ दुर्वाससा सम्यग्बोधितश्च विशेषतः॥

भरे रहते हैं। वही जब आठ वर्षकी सीमा पार कर जाता है, तो उसकी चेष्टा दूसरी ही बन जाती है। अतः ब्रह्मका विवेचन करनेवाले महापुरुषोंने बताया है कि इसी प्रकार एक ही शरीर अवस्थाओंके भेदसे तीन भेदवाला कहा गया है। भेद केवल नाममें है—जैसे मिट्टी और घड़ा। इन वर्णोंके क्रमसे कर्मकाण्डके भी चार भेद बतलाये गये हैं।

सत्यतपाने कहा—मुनिवरजी! आपने जिन परब्रह्म परमात्माकी बात कही है, उनके रूपको तो महात्मा एवं योगी पुरुष भी जाननेमें असमर्थ हैं। क्योंकि उन प्रभुमें नाम, गोत्र और आकारका अभाव है। जब उन परब्रह्म परमात्माकी कोई संज्ञा ही नहीं है तो वे जाने भी कैसे जा सकते हैं। गुरो! आप उनकी कोई ऐसी संज्ञा बतानेकी कृपा कीजिये, जिससे मैं उन्हें जान सकूँ। जिनका नाम वेदों एवं शास्त्रोंमें पढ़ा जाता है, क्या वे ही तो ये परब्रह्म परमात्मा नहीं हैं। उन्हें तो वेदोंमें पुरुष, पुण्डरीकाक्ष तथा स्वयं भगवान् नारायण एवं श्रीहरि कहा गया है। मुनिवर! उन्हें पानेके साधन अनेक प्रकारके यज्ञ तथा उचित प्रचुर दान हैं। वे भगवान् इन उपर्युक्त साधनों तथा श्रद्धा, भक्ति एवं तप द्वारा प्राप्त होते हैं। अथवा भगवन्! प्रचुर सम्पत्तिसे तथा बहुत-से अन्य श्रेष्ठ सत्कर्मोंके प्रभावसे वेदके पारगामी विद्वान् तथा पुण्यात्मा पुरुष उन्हें पा सकते हैं। पर मैं एक निर्धन व्यक्ति उन्हें पा सकूँ—आप वैसा उपाय मुझे बतानेकी कृपा कीजिये। विप्रवर! धनके अभावमें दान देना सम्भव नहीं है। धन रहते हुए भी यदि परिवारमें अधिक आसक्ति है, तो उसके मनमें दान करनेकी रुचि नहीं होती। मेरा अनुमान है कि उससे तो भगवान् नारायण सर्वथा दूर ही रहते हैं। क्योंकि वे सनातन श्रीहरि अत्यन्त प्रयासद्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं। इसलिये दयापूर्वक आप मुझे कोई ऐसा सुगम साधन बतानेकी कृपा कीजिये, जिससे सर्वसाधारण व्यक्ति भी उन्हें सुगमतासे प्राप्त कर सके।

दुर्वासाजी बोले—साधो! मैं तुम्हें एक अत्यन्त गोपनीय व्रत बताता हूँ। भगवान् नारायण ही इसके प्रवर्तक हैं। पूर्व समयमें जब पृथ्वी पातालमें डूबी या धँसी जा रही थी तो उसने इस व्रतको किया था। उस समय जलके बहुत बढ़ जानेसे पृथ्वीका पार्थिव अंश प्रायः जलद्वारा नष्ट कर दिया गया था। इस प्रकार जब सर्वत्र जल-ही-जल रह गया तो पृथ्वी रसातलमें चली गयी। वहाँ जाकर प्राणीवर्गको धारण करनेवाली पृथ्वी देवीने, जो सर्वव्यापी परम प्रभु भगवान् नारायण हैं, उनकी व्रत एवं उपवासद्वारा आराधना की थी। उसने अनेक प्रकारके नियमोंका पालन करते हुए यह व्रत किया था। बहुत समयतक व्रत करनेपर जिनकी ध्वजापर गरुड़का चित्र अङ्कित है, वे भगवान् श्रीहरि उसपर प्रसन्न हो गये। तब उन सनातन प्रभुकी कृपाके फलस्वरूप यह पृथ्वी पातालसे ऊपर लायी गयी और समतलरूपमें सुशोभित हुई।

सत्यतपाने पूछा—मुनिवर! पृथ्वीने जो व्रत-उपवास किये थे, वे कौन-से व्रत तथा कितने नियम थे? यह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

दुर्वासाजी कहते हैं—जब मार्गशीर्ष मासकी दशमी तिथि आ जाय, तब बुद्धिमान् पुरुष नियमपूर्वक रहकर भगवान् श्रीहरिकी पूजा करे। उस समय विधिपूर्वक हवनका कार्य भी सम्पन्न करना चाहिये तथा पवित्र वस्त्र धारण करना चाहिये। प्रसन्न मनसे रहकर व्रती पुरुष भलीभाँति सिद्ध किया हुआ यव आदि हविष्यान्न भोजन करे। फिर कम-से-कम पाँच पग दूर जाकर अपने पैर धोये। पुनः प्रातःकाल उठकर शौचके बाद आठ अंगुलकी लम्बी दतुअनसे मुखको शुद्ध करना चाहिये। दन्त-

धावनका काष्ठ किसी दूधवाले वृक्षका होना आवश्यक है। इसके बाद विधिपूर्वक आचमन करना चाहिये। शरीरके नौ द्वार हैं, उन सभी द्वारोंको स्पर्श कर फिर भगवान् जनार्दनका ध्यान करे। ध्यानका प्रकार यह है—'भगवान् श्रीहरि सर्वत्र विराजमान हैं। उनकी भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म सुशोभित हो रहे हैं। वे पीताम्बर धारण किये हैं तथा उनके मुँहपर मंद मुसकान विराजित है। वे सभी शुभ लक्षणोंसे सुशोभित हैं।' इस प्रकार उनका ध्यान कर पुनः भगवान् जनार्दनको स्मरण करते हुए हाथमें जल ले और उन प्रभुके लिये एक अञ्जलि अर्घ्य दे। महामुने! अर्घ्य देते समय निम्नलिखित मन्त्र पढ़ना चाहिये*—'कमलके समान नेत्रसे शोभा पानेवाले भगवान् अच्युत! आज एकादशी तिथि है। अतः मैं निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूँगा। आप ही मेरे शरण हैं।'

इस प्रकार कहकर दिनमें नियमपूर्वक उपवास करे। रात्रिके समय देवाधिदेव भगवान् नारायणके समीप बैठकर '**ॐ नमो नारायणाय**' इस मन्त्रका जप करे। प्रायः एक सहस्र जप कर व्रतीको सो जाना चाहिये। फिर प्रातःकाल होनेपर व्रती पुरुष समुद्रतक जानेवाली नदी अथवा दूसरी भी किसी नदी या तालाबपर जाकर अथवा घरपर संयमपूर्वक रहकर हाथमें पवित्र मिट्टी लेकर यह मन्त्र पढ़े—'देवि! समस्त प्राणियोंका धारण और पोषण सदा तुमपर ही अवलम्बित है। सुव्रते! यदि यह सत्य है तो इसके फलस्वरूप मेरे सम्पूर्ण पापोंको तुम दूर करनेकी कृपा करो। कश्यपतनये! पूरे ब्रह्माण्डके भीतर रहनेवाले जितने तीर्थ हैं, वे सभी तुमसे स्पृष्ट हैं। उन सबको तुमने ही अपनी पीठपर स्थान दिया है। भगवती पृथ्वि! इसी भावसे भरकर मैं तुमसे यह मृत्तिका ले आज अपने ऊपर धारण करता हूँ।'†

फिर जलके देवता वरुणसे प्रार्थना करे—'महाभाग वरुण! आपमें सभी रस सदा स्थान पाये हुए हैं। उनसे इस मृत्तिकाको गीला करके मुझे यथाशीघ्र पवित्र करनेकी कृपा करें।'‡ बुद्धिमान् पुरुष इस प्रकारका विधान सम्पन्न कर मिट्टी और जल हाथमें ले अपने सिरपर आलेपन करे। साथ ही शेष बची हुई मृत्तिकाको तीन बार समस्त अङ्गोंमें लगाये। फिर उपर्युक्त वारुणमन्त्र पढ़कर विधिपूर्वक स्नान करे। स्नान करनेके पश्चात् संध्या-तर्पण आदि नित्य-नियम सम्पन्नकर देवालयमें जाय। वहाँ लक्ष्मीसहित भगवान् नारायणकी षोडशोपचारकी विधिसे सर्वाङ्ग-पूजा करे।

पूजाका प्रकार यह है—'भगवान् केशवको नमस्कार' ऐसा कहकर भगवान्के दोनों चरणोंकी पूजा करे और 'दामोदरको नमस्कार' यह कहकर उनके कटिभागकी पूजा करे। 'भगवान् नृसिंहको नमस्कार' ऐसा कहकर उनके दोनों ऊरुओंकी तथा 'श्रीवत्सका चिह्न धारण करनेवाले प्रभुको नमस्कार' कहकर उनके वक्षःस्थलकी पूजा करनी चाहिये। 'कौस्तुभमणिधारी भगवान्को नमस्कार' कहकर उनके कमरकी पूजा करे तथा 'लक्ष्मीपतिको नमस्कार' कहकर उनके हृदय-देशकी पूजा करे। 'तीनों लोकोंपर विजय पानेवाले प्रभुको नमस्कार' कहकर उनकी दोनों भुजाओंका

* एकादश्यां निराहारः स्थित्वा चैवापरेऽहनि। भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत॥ (३९।३२)

† धारणं पोषणं त्वत्तो भूतानां देवि सर्वदा। तेन सत्येन मे पापं यावन्मोचय सुव्रते॥
ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि त्वया स्पृष्टानि काश्यपि। तेनेमां मृत्तिकां त्वत्तो गृह्य स्नास्येऽद्य मेदिनि॥ (३९।३५, ३७)

‡ त्वयि सर्वे रसा नित्याः स्थिता वरुण सर्वदा। तैरियं मृत्तिका प्लाव्य पूतां कुरु च मां चिरम्॥ (३९।३५, ३८)

तथा 'सर्वात्मा श्रीहरिको नमस्कार' कहकर उनके सिरका पूजन करे । 'रथका चक्र धारण करनेवाले भगवान्‌को नमस्कार' कहकर चक्रकी पूजा करे तथा 'कल्याणकारी प्रभुको प्रणाम' कहकर शङ्खकी पूजा करे। 'गम्भीरस्वरूप श्रीहरिको नमस्कार' कहकर उनकी गदा-का तथा 'शान्तिस्वरूप भगवान्‌को प्रणाम है'—यह कहकर पद्मकी पूजा करनी चाहिये ।

भगवान् नारायण सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी हैं । उक्त प्रकारसे उनकी अर्चना करनेके उपरान्त ज्ञानी पुरुष फिर उनके सामने जलपूर्ण चार कलश स्थापित करे । उन कलशोंको मालाओंसे अलंकृतकर उनपर तिलसे भरे पात्र रखे । इन चार कलशोंको चार समुद्र मानकर उनके मध्यभागमें एक मङ्गलमय पीठ या चौकी स्थापित करनी चाहिये, जिसके मध्यमें वस्त्र बिछा हो। फिर एक सोने, चाँदी, ताँबा अथवा लकड़ीके पात्रमें या कुछ न मिल सके तो पलाशके पत्तेमें ही जल रखकर उसपर सभी अवयवोंसे अङ्कित तथा आभूषणोंसे अलंकृत भगवान् जनार्दनकी मत्स्याकार सुवर्ण-प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये । फिर उस भगवत्प्रतिमाकी अनेक प्रकारके गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र एवं नैवेद्य आदिके द्वारा विधिपूर्वक षोडशोपचारसे पूजा करनी चाहिये । पूजाके उपरान्त यों प्रार्थना करनी चाहिये—'भगवन् ! जिस प्रकार पातालमें प्रविष्ट हुए वेदोंका आपने उद्धार किया था, केशव ! आप वैसे ही मेरा भी उद्धार करनेकी कृपा कीजिये ।'

इस प्रकार पूजा सम्पन्न हो जानेके पश्चात् प्रार्थना करके रातमें भगवत्प्रतिमाके सामने जागरण करना चाहिये । पुनः प्रातःकाल होनेपर उपर्युक्त स्थापित किये हुए चारों कलशोंको चार ब्राह्मणोंको अर्पण कर दे । पूर्वका कलश ऋग्वेदके ज्ञाता ब्राह्मणको दे । दक्षिणका कलश सामवेदी ब्राह्मणको देना चाहिये । यजुर्वेदके ज्ञाता ब्राह्मणको पश्चिमका कलश देना चाहिये । उत्तरका कलश अपनी इच्छाके अनुसार जिस किसी ब्राह्मणको दे सकते हैं, ऐसी विधि है । कलश वितरण करनेके पश्चात् इस प्रकार प्रार्थना करे—'पूर्वकी ओरसे मेरी ऋग्वेद, दक्षिणकी ओरसे सामवेद, पश्चिमकी ओरसे यजुर्वेद तथा उत्तरकी ओरसे अथर्ववेद रक्षा करें । व्रतके अन्तमें भगवान् मत्स्यकी सुवर्णनिर्मित प्रतिमा आचार्यको समर्पण करनेकी विधि है । जो पुरुष इस विधिके अनुसार वस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप आदि उपचारोंसे भगवान्‌की भलीभाँति पूजा करता है, जिसके मुखसे भगवन्नामरूपी मन्त्र उच्चरित होते रहते हैं, जिसे उन मन्त्रोंका गुणानुपूर्वी अभिप्राय भी अवगत होता रहता है तथा जिसने दानका विधान भी सम्पन्न कर दिया है, उसे करोड़गुना अधिक फल मिलता है । साथ ही जिसने गुरुको अर्पण तो कर दिया, परंतु आसक्ति एवं मोहके वश हो जानेसे उसके मनमें अश्रद्धा उत्पन्न हो गयी तो ऐसे व्रती पुरुषके फलमें न्यूनता भी आती है । विद्वान् लोग कहते हैं कि विधिका प्रकार बतानेवाला आप्तपुरुष ही गुरुके पदका अधिकारी है ।

इस प्रकार द्वादशीके दिन विधिसहित दान करके पुनः भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये । अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन कराये और उन्हें उत्तम दक्षिणा दे । भोज्य पदार्थ उत्तम अन्नसे निर्मित होना चाहिये । इसके बाद मनुष्य स्वयं भोजन करे—ऐसा विधान है । फिर संयतेन्द्रिय एवं मौन हो बच्चोंको साथ लेकर भोजन करे । इस व्रतको सर्वप्रथम पृथ्वीने किया था । जो मनुष्य उक्त विधानसे

यह व्रत करता है, परम बुद्धिमान् सत्यतपा ! उसका पवित्र फल बताता हूँ, सुनो। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महाभाग ! यदि मुझे अनेक हजार मुख मिल जायँ तथा ब्रह्माकी आयु-जैसी लंबी आयु सुलभ हो जाय तो सम्भव है कि इस धर्मका फल किसी प्रकार बतला सकूँ। ब्रह्मन् ! फिर भी कुछ परिचय प्राप्त हो जाय—इस उद्देश्यसे कहता हूँ, सुनो—मुने ! तैंतालीस लाख, बीस हजार वर्षोंकी एक चतुर्युगी होती है। ऐसे एकहत्तर युगोंका एक मन्वन्तर होता है। चौदह मन्वन्तरोंका ब्रह्माका एक दिन और इतनी ही संख्याकी रात होती है। इस प्रकार तीस दिनोंका एक मास और बारह महीनोंका उनका एक वर्ष कहा गया है। ऐसे सौ वर्षोंकी ब्रह्माकी आयु मानी गयी है—इसमें कोई संशयकी बात नहीं। जो पुरुष उक्त विधानके अनुसार इस द्वादशी-व्रतको करता है, वह ब्रह्माजीके लोकमें पहुँच जाता है और वह वहाँ तबतक रहता है, जबतक ब्रह्माकी आयु समाप्त नहीं हो जाती। जब ब्रह्मा अपने शरीरका संवरण करने लगते हैं तो उसी क्षण उनके विग्रहमें वह भी समा जाता है। पुनः ब्राह्मी-सृष्टि आरम्भ होनेपर वह एक महान् दिव्य पुरुष होता है। तपस्वी अथवा राजाका पद उसे प्राप्त होता है। सकाम अथवा निष्काम किसी भी भावसे जो इस व्रतका अनुष्ठान करता है, उसके इस लोकमें किये गये कठिन-से-कठिन जितने पाप हैं, वे सभी उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं। इस लोकमें जो दरिद्र है अथवा अपने राज्यसे च्युत हो गया है, वह विधानके साथ इस व्रतके करनेसे अवश्य ही राजा बन सकता है। यदि कोई सौभाग्यवती स्त्री है और उसे संतान नहीं होती हो तो वह इस कथित विधानसे यह व्रत करे। फलस्वरूप वह स्त्री परम धार्मिक पुत्र प्राप्त कर सकती है। यदि दूसरेका सम्मान करनेवाले किसी व्यक्तिका अगम्या स्त्रीके साथ सम्बन्ध हो गया हो तो वह उक्त विधिके अनुसार प्रायश्चित्त-रूपमें यह व्रत करे तो वह भी उस पापसे मुक्त हो सकता है। जिसने बहुत वर्षोंसे ब्रह्म-सम्बन्धी क्रियाका त्याग कर दिया है, वह यदि एक बार भी भक्तिपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान करे तो वह वैदिकसंस्कारसे सम्पन्न हो सकता है। महामुने ! इसके विषयमें अब अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन ! इसकी तुलना करनेवाला अन्य कोई भी व्रत नहीं है। ब्रह्मन् ! अप्राप्य वस्तुको प्राप्य बनानेकी जिसमें सामर्थ्य है, वैसी इस मत्स्य-द्वादशी-व्रतको निरन्तर करे। जिस समय पृथ्वी पातालमें जलमग्न थी, उस समय उक्त विधानके अनुसार स्वयं उसने इस व्रतका अनुष्ठान किया था। तात ! इस विषयमें और कुछ विचार करना अनावश्यक है। जिसने दीक्षा नहीं ली है और जो नास्तिक है, उसे यह विधान बताना अवाञ्छनीय है। जो देवता अथवा ब्राह्मणसे द्वेष करता है, उसको इसे कभी नहीं सुनाना चाहिये। पापोंको तुरंत प्रशमन करनेवाला यह व्रत गुरुमें श्रद्धा रखनेवाले व्यक्तिको बताना चाहिये। जो मनुष्य यह व्रत करता है, वह इस जन्ममें धन, धान्य और सौभाग्य प्राप्त करता है। उसे अनेक प्रकारकी श्रेष्ठ स्त्रियाँ प्राप्त होती हैं। यह उत्तम प्रसङ्ग द्वादशीकल्प कहलाता है। जो इसे भक्तिपूर्वक सुनाता है अथवा स्वयं पढ़ता-सुनता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है।

(अध्याय ३९)

कूर्म-द्वादशीव्रत

दुर्वासाजी कहते हैं— मुने ! [जिस प्रकार मार्गशीर्षका यह मत्स्य-द्वादशीव्रत है,] प्रायः ऐसा ही पौषमासका कूर्म-द्वादशीव्रत है । इसी मासमें देवताओंने समुद्रका मन्थनकर अमृत प्राप्त किया था । उस समय भक्तोंको अभिलषित पदार्थ देनेमें कुशल स्वयं भगवान् नारायण कच्छप-रूपसे अवतरित हुए थे । उस दिन यही महान् पवित्र तिथि थी । अतः पौष मासके शुक्लपक्षकी यह दशमी— इन कूर्मरूप धारण करनेवाले परम प्रभु परमात्माकी तिथि है । व्रतीको चाहिये कि पूर्वकथनानुसार दशमी तिथिके दिन स्नान आदि सम्पूर्ण क्रियाएँ सम्पन्न कर एकादशी तिथिमें भक्तिके साथ भगवान् श्रीजनार्दनकी आराधना करे । मुनिवर ! पूजाके मन्त्र अलग-अलग हैं । उन मन्त्रोंसे भगवान् श्रीहरिका पूजन होना आवश्यक है । **'ॐ कूर्माय नमः', 'ॐ नारायणाय नमः', 'ॐ सङ्कर्षणाय नमः', 'ॐ विशोकाय नमः', 'ॐ भवाय नमः', 'ॐ सुबाहवे नमः',** तथा **'ॐ विशालाय नमः।'** इन वाक्योंको उच्चारण कर क्रमशः भगवान् श्रीहरिके चरण, कटिभाग, उदर, वक्षःस्थल, कण्ठ, भुजाएँ एवं शिरकी भलीभाँति (पूर्वोक्त प्रकारसे भी) पूजा करनी चाहिये । फिर 'भगवन् ! आपके लिये नमस्कार है'—ऐसा कहना चाहिये । पुनः नाम-मन्त्रका उच्चारण कर सुन्दर चन्दन, पुष्प, धूप, फल और नैवेद्य आदि अद्भुत उपचारोंसे परम प्रभु भगवान् श्रीहरिकी पूजा करे । फिर सामने एक कलश रखकर उसपर अपनी शक्तिके अनुसार भगवान् कूर्मकी सुवर्णमयी प्रतिमा स्थापित करे । साथमें मन्दराचलकी भी प्रतिमा रखे । कलश माला और स्वच्छ वस्त्रसे सुसज्जित एवं अलंकृत हो । कलशके भीतर रत्न डाले तथा ऊपर घृतसे भरा हुआ ताँबेका एक पात्र रखकर उसीमें प्रतिमाका अभिधारण करे । फिर ब्राह्मणकी पूजाकर उसे दान कर दे । उस समय मनमें संकल्प करे—'मैं कल अपनी शक्तिके अनुरूप दक्षिणा आदिसे ब्राह्मणोंकी पूजा करूँगा । इससे कूर्म-रूपमें प्रकट होनेवाले देवाधिदेव भगवान् नारायणको मैं प्रसन्न करना चाहता हूँ ।' इसके पश्चात् अपने सेवकवर्गके साथ बैठकर भोजन करे ।

विप्र ! इस प्रकार कार्यसम्पन्न करनेपर व्रतकर्ताके पाप नष्ट हो जाते हैं । इसमें कुछ अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये । वह पुरुष संसार-चक्रका त्यागकर भगवान् श्रीहरिके सनातन-लोकको चला जाता है । उसके पाप तत्काल विलीन हो जाते हैं और वह शोभा तथा लक्ष्मीसम्पन्न होकर सत्यधर्मका भाजन बन जाता है । भक्तिके साथ व्रत करनेवाले उस पुरुषके अनेक जन्मोंसे—सञ्चित पाप दूर भाग जाते हैं । पहले जो मत्स्य-द्वादशीका फल बताया गया है, इसके उपासकको भी वही फल प्राप्त होता है तथा भगवान् श्रीनारायण उसपर शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं । (अध्याय ४०)

वराह-द्वादशीव्रत

दुर्वासाजी कहते हैं—व्याध ! तुम एक महान् भक्तशील धार्मिक पुरुष हो ! जिस प्रकार मार्गशीर्षमें भगवान् नारायणने मत्स्यका रूप तथा पौषमासमें कच्छपका रूप धारण किया था, वैसे ही माघ मासके शुक्लपक्षमें द्वादशीके दिन पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये वे प्रभु वराहके रूपसे प्रकट हुए हैं । अतः इस तिथिके अवसरपर भी पहले कही हुई विधिके अनुसार संकल्प एवं स्थापन आदि करके विद्वान् पुरुष उनकी पूजा करें । उन अविनाशी प्रभुकी चन्दन, धूप एवं नैवेद्य आदिसे अर्चना होनी चाहिये । पूजनके

उपरान्त उनके सामने जलसे भरा एक कलश रखे। फिर '**ॐ वराहाय नमः**'से दोनों पैरोंकी, '**ॐ माधवाय नमः**'से कटिकी, '**ॐ क्षेत्रज्ञाय नमः**'से उदरकी, '**ॐ विश्वरूपाय नमः**'से हृदयकी, '**ॐ सर्वज्ञाय नमः**'से कण्ठकी, '**ॐ प्रजानां पतये नमः**'से सिरकी, '**ॐ प्रद्युम्नाय नमः**'से दोनों भुजाओंकी, '**ॐ दिव्यास्त्राय नमः**'से चक्रकी तथा '**ॐ अमृतोद्भवाय नमः**'से शङ्खकी अर्चना करनी चाहिये। इस प्रकार पूजाकर विवेकी पुरुष वराह भगवान्‌की प्रतिमाको कलशपर स्थापित करे। अपने वैभवके अनुसार सोने, चाँदी अथवा ताँबेका पात्र निर्माण कराकर उसपर प्रतिमा स्थापित करे। यदि शक्ति हो तो चतुर पुरुष भगवान् वराहकी स्वर्णमयी ऐसी प्रतिमा बनवाये, जिसमें उन प्रभुके दाढ़पर पर्वत, वन और वृक्षोंके सहित पृथ्वी विराज रही हो। फिर इस प्रकार भावना करनी चाहिये—'जो भगवती लक्ष्मीके प्राणपति हैं, जिन्होंने मधुनामक दैत्यको मारा है, अखिल बीज जिनमें सुरक्षित रहते हैं तथा जो रत्नोंके भाजन हैं, वे ही परम प्रभु साकार होनेके विचारसे वराहरूप धारणकर यहाँ स्थित हैं।' फिर उन्हें कलशपर विराजमान कर दे।

मुने! वह कलश दो सफेद वस्त्रोंसे आच्छादित होना चाहिये। उसपर ताँबेका एक पात्र रहना आवश्यक है। मूर्ति स्थापित कर चन्दन, फूल और नैवेद्य प्रभृति अनेक पवित्र उपचारोंसे अर्चना करे और फूलोंके द्वारा मण्डल बना ले। रातमें स्वयं जगे और दूसरोंको जगनेकी प्रेरणा करे। पण्डित पुरुषका कर्तव्य है—'इस शुभ समयमें भगवान् श्रीहरि वराहरूपसे अवतरित हुए हैं'—इस विचारसे दूसरेके द्वारा भी पूजा एवं पद्य-गान कराये। इस प्रकार पूजा समाप्त-कर प्रातःकाल सूर्यके उदय हो जानेपर शौचादिसे निवृत्त हो स्नान करे। तत्पश्चात् भगवान्‌की पुनः पूजा करके वह प्रतिमा ब्राह्मणको अर्पण कर दे। ग्रहीता ब्राह्मण वेद एवं वेदाङ्गका विद्वान्, साधु-स्वभाववाला, बुद्धिमान्, भगवान् विष्णुका भक्त, शान्त चित्तवाला, श्रोत्रिय तथा परिवारवाला होना चाहिये।

इस प्रकार वराहरूपी भगवान्‌की प्रतिमा कलशके सहित दान करनेका जो फल प्राप्त होता है, वह तुम्हें बताता हूँ, सुनो—इस जन्ममें तो उसे सुन्दर भाग्य, लक्ष्मी, कान्ति और सन्तोषकी प्राप्ति होती है और यदि दरिद्र हो तो वह शीघ्र ही धनवान् हो जाता है। सन्तानहीनको पुत्रकी प्राप्ति हो जाती है। दरिद्रता तुरंत भाग जाती है। बिना बुलाये स्वयं लक्ष्मी घरमें आ जाती हैं। वह पुरुष इस लोकमें सौभाग्यसम्पन्न तो रहता ही है, अब उसके परलोककी बात भी कहता हूँ, सुनो। इस सम्बन्धमें यहाँ एक पुरानी ऐतिहासिक घटनाका उल्लेख मिलता है।

पहले प्रतिष्ठानपुर(पैठण)में वीरधन्वा नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो चुके हैं। एक समयकी बात है—शत्रुओंको तपानेवाला, वह राजा शिकार खेलनेके अभिप्रायसे वनमें गया। उसी वनमें संवर्त ऋषिका भी आश्रम था। राजाने मृगोंको मारनेके साथ ही अनजाने मृगका रूप बनाये हुए पचास ब्राह्मणपुत्रोंका भी वध कर दिया। वे सभी परस्पर-भाई थे तथा वेदके अध्ययनमें उन ब्राह्मणोंकी बड़ी तत्परता थी। किंतु उस समय वे मृगका स्वाँग बनाये हुए थे।

सत्यतपाने पूछा—ब्रह्मन्! वे ब्राह्मण मृगका रूप धारण करके वनमें क्यों रहते थे? इस विषयमें मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। मैं आपके शरणागत हूँ। मुझपर प्रसन्न होकर इसका कारण बतानेकी कृपा करें।

दुर्वासाजी कहते हैं—महाराज! किसी समयकी बात है—वे सभी ब्राह्मण वनमें गये। वहाँ उन्होंने

हिरनके पाँच बच्चोंको देखा। वे बच्चे अभी-अभी पैदा हुए थे। उन बच्चोंकी माता वहाँ नहीं थी। उन ब्राह्मणोंने एक-एक बच्चेको हाथोंमें ले लिये और गुफामें चले गये। वहीं उन बच्चोंकी चेतना समाप्त हो गयी। तब उन सभी ब्राह्मणोंके मनमें महान् दुःख हुआ। अतः वे अपने पिता संवर्तके पास चले गये। वहाँ जाकर उन लोगोंने मृगहिंसा-सम्बन्धी यह सच्ची घटना कहना आरम्भ कर दी।

ऋषिकुमार बोले—मुने! तुरंत उत्पन्न हुए पाँच मृग हमारे द्वारा मर गये हैं। हमलोग यह काण्ड नहीं चाहते थे। फिर भी घटना घट गयी, अतः हमें प्रायश्चित्त बतानेकी कृपा कीजिये।

संवर्त ऋषिने कहा—प्रिय पुत्रो! मेरे पितामें हिंसाकी वृत्ति थी और उनसे बढ़कर मैं हिंसासे प्रेम रखता था। फिर तुम लोग मेरे पुत्र होकर पाप कर्मसे अछूते रह जाओ—यह असम्भव है। किंतु इससे छूटनेका उपाय यह है कि अब तुम लोग संयमशील बनकर मृगोंका चर्म अपने ऊपर डाल लो और पाँच वर्षोंतक वनमें विचरो। ऐसा करनेसे तुम्हारी शुद्धि हो जायगी।

इस प्रकार संवर्त मुनिके कहनेपर उनके पुत्रोंने अपने पूरे शरीरपर मृगचर्म डाल लिया और शान्त-भावसे वनमें जाकर परब्रह्म परमात्माके नामका जप करने लगे। उन्हें ऐसा करते हुए पाँच वर्ष व्यतीत हो गये। उसी समय राजा वीरधन्वा वहाँ आया, जहाँ मृगचर्म लपेटे हुए वे ब्राह्मण वृक्षके नीचे सावधानीके साथ बैठे थे। जपमें उनकी वृत्ति एकाग्र थी। उन्हें देखकर राजा वीरधन्वाने समझा कि ये मृग हैं। अतः उन सभी ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंपर बाण चला दिया और वे सब-के-सब एक साथ ही प्राणोंसे हाथ धो बैठे। जब उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले उन मृत ब्राह्मणोंपर राजा वीरधन्वाकी दृष्टि पड़ी, तो वे भयसे काँप उठे। अब वे देवरातनामक मुनिके आश्रममें गये और उनसे पूछा—'मुनिवरजी! मुझे ब्रह्महत्या लग गयी है, इसके निवारणार्थ मुझे क्या करना चाहिये?' उस समय वीरधन्वाने आदिसे अन्ततककी सभी बातें मुनिसे बता दीं और वे फिर अत्यन्त शोकसे व्याकुल होकर जोर-जोरसे रोने लगे। यों उन्हें रोते देखकर ऋषिने कहा—'राजन्! डरो मत, मैं तुम्हारा पाप दूर कर दूँगा। जिस समय पृथ्वी सुतलनामक पातालमें डूब रही थी, तो देवाधिदेव भगवान् विष्णुने स्वयं वराहका रूप धारणकर उसका उद्धार किया था। राजेन्द्र! वैसे ही ब्रह्महत्याके पापमें डूबते हुए तुम्हारा भी वे प्रभु उद्धार कर दें।' इस प्रकार देवरात ऋषिके कहनेपर राजा वीरधन्वा शान्त एवं प्रसन्न हो गये और उन्होंने मुनिसे पूछा—'महानुभाव! किस प्रकार भगवान् श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हो सकते हैं, जिससे मेरे सब पातक नष्ट होंगे?'

दुर्वासाजी बोले—मुनिवर! जब इस प्रकार वीर-धन्वाने देवरात ऋषिसे पूछा तो उन्होंने उस राजाको यह व्रत बतला दिया और नरेशने इस व्रतका अनुष्ठान किया। इसके प्रभावसे राजा वीरधन्वा ब्रह्म-हत्याके पापसे मुक्त होकर अपार भोगोंको भोगनेके पश्चात् सुवर्णके सुन्दर विमानपर चढ़कर स्वर्ग चला गया। वहाँ इन्द्र उठकर उसके स्वागतके लिये अर्घ्य लिये हुए आगे बढ़े। इन्द्रको आते देखकर भगवान् श्रीहरिके पार्षदोंने उनसे कहा—'देवराज! आप इधर न देखें। कारण, आपकी तपस्या इनसे न्यून है। इसी प्रकार एक-एक-करके सभी लोकपाल आये और तपहीन होनेके कारण भगवान् विष्णुके सेवकोंने उनमेंसे किसीको भी स्वागतका अवसर नहीं दिया; क्योंकि राजा वीरधन्वाके तेज-प्रतापके सामने वे फीके पड़ रहे थे। महामुने! इस प्रकार वह राजा सत्यलोकतक पहुँच गया। वहाँ पहुँचने-पर जन्म-मरणकी श्रृङ्खला समाप्त हो जाती है। वह सत्य-

लोक न तो अग्निसे भस्म होता है और न जलमें लीन ही होता है। आज भी महाराज वीरधन्वा देवताओंद्वारा प्रशंसित होते हुए वहीं विराजमान हैं। यज्ञस्वरूप धारण करनेवाले भगवान् श्रीहरिके प्रसन्न हो जानेपर कौन-सा ऐसा आश्चर्यकारी कर्म है, जो सम्पन्न न हो सके। उनके प्रसन्न होनेपर इस जन्ममें भी आयु, आरोग्य और सौभाग्य सुलभ हो सकते हैं। इस एक-एक द्वादशीव्रतमें ऐसी शक्ति है कि विधिके साथ उनका आचरण करनेसे मानव उत्तम सौभाग्य पानेका अधिकारी हो जाता है। फिर जो सभी व्रतोंको सम्पन्न करे, उसके लिये तो कहना ही क्या है। उसे तो भगवान् नारायण स्वयं अपना स्थान देनेको तत्पर हो जाते हैं। भगवान् नारायणकी एक-से-एक श्रेष्ठ चार मूर्तियाँ हैं, इसमें कोई संशयकी बात नहीं है। जैसे उनका जलशायी नारायणरूप है, वैसे ही उन प्रभुने मत्स्यका रूप धारण कर वेदोंका उद्धार किया। फिर उसी प्रकार कूर्मरूपसे क्षीरसागरको मन्दराचलके सहारे मथनेकी योजना बनायी। मन्दराचलको पीठपर धारण किया था। यह उनकी दूसरी मूर्ति है। पुनः पृथ्वी रसातलमें चली गयी थी। वैसे ही उसे ऊपर लानेके लिये उन परम प्रभुने वराहका रूप धारण किया था। यह उन भगवान् नारायणकी तीसरी मूर्ति है। (चौथी सम्मूर्ति भगवान् नृसिंहकी है, जो आगे कही जायगी)।

(अध्याय ४१)

नृसिंह-द्वादशीव्रत

दुर्वासाजी कहते हैं—मुनिवर! पहले कहे हुए व्रतकी भाँति फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षमें नृसिंह-द्वादशी व्रत होता है। विद्वान् पुरुष उस दिन उपवास करके विधिके साथ भगवान् श्रीहरिकी आराधना करे। '**ॐ नरसिंहाय नमः**' कहकर भगवान् नृसिंहके चरणोंकी, '**ॐ गोविन्दाय नमः**'से ऊरुओंकी, '**ॐ विश्वभुजे नमः**'से कटिप्रदेशकी, '**ॐ अनिरुद्धाय नमः**'से वक्षःस्थलकी, '**ॐ शितिकण्ठाय नमः**'से कण्ठकी, '**ॐ पिङ्गकेशाय नमः**' कहकर शिरोदेशकी, '**ॐ असुरध्वंसनाय नमः**'से चक्रकी तथा '**ॐ तोयात्मने नमः**' कहकर शङ्खकी चन्दन, फूल एवं फल आदिके द्वारा सम्यक् प्रकारसे पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् भगवान्के सामने दो सफेद वस्त्रोंसे सम्पन्न एक कलश रखनेका विधान है। उस कलशपर एक ताँबेका पात्र अथवा अपने वित्तके अनुसार काष्ठ या बाँसका पात्र रखकर उसके ऊपर भगवान् नृसिंहकी स्वर्णमयी मूर्ति पधरानी चाहिये। घड़ेमें रत्न डालकर द्वादशीके दिन पूजा करनेके उपरान्त भगवान्की वह प्रतिमा वेदके विशेषज्ञ ब्राह्मणको अर्पण कर दे।

महामुने! इस प्रकारका व्रत करनेपर एक राजाको जो फल मिला था, उसे मैं कहता हूँ, सुनो—किम्पुरुष वर्षमें भारत नामसे विख्यात एक धार्मिक राजा रहते थे। उन्हें एक पुत्र हुआ, जिसका नाम वत्स था। किसी युद्धमें शत्रुओंसे हारकर वह केवल अपनी स्त्रीके साथ पैदल ही वसिष्ठजीके आश्रमपर गया और वहीं रहने लगा। इस प्रकार वहाँ उनके आश्रमपर रहते कुछ दिन बीत गये। एक दिन मुनिने उससे पूछा—'राजन्! तुम किस प्रयोजनसे इस महान् आश्रममें निवास कर रहे हो?'

राजा वत्सने कहा—भगवन्! शत्रुओंने मुझे परास्त कर मेरा राज्य तथा खजाना छीन लिया है। अतः असहाय होकर मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप अपने उपदेश-प्रदानद्वारा मेरे चित्तको शान्त करनेकी कृपा कीजिये।

दुर्वासाजी कहते हैं—मुने ! राजा वत्सके इस प्रकार कहनेपर वसिष्ठजीने उसे विधिपूर्वक इस द्वादशीको ही करनेका उपदेश दिया तथा उस राजाने भी सब कुछ वैसा ही किया । व्रत पूर्ण होनेपर भगवान् नृसिंह उस राजापर प्रसन्न हुए और उन परम प्रभुने उस राजाको एक ऐसा चक्र दिया, जो समराङ्गणमें शत्रुओंका संहार कर सके । उस अस्त्रके प्रभावसे महाराज वत्सने शत्रुओंको परास्त कर अपना राज्य फिर जीत लिया । राज्यपर आसीन होकर उस नरेशने एक हजार अश्वमेध यज्ञ किये और अन्तमें वह धर्मात्मा राजा भगवान् विष्णुके परम धामको प्राप्त हुआ । मुने ! पापोंका नाश करनेवाली यह नृसिंह-द्वादशी धन्य है । तुम्हारे पूछनेपर मैंने इसका वर्णन कर दिया । अब तुम इसे सुनकर अपनी इच्छाके अनुसार जैसा चाहे करो । (अध्याय ४१-४२)

वामन-द्वादशीव्रत

दुर्वासाजी कहते हैं—मुने ! इसी प्रकार चैत्र मासके शुक्लपक्षमें वामन-द्वादशीव्रत होता है । इसमें भी संकल्पकर रातमें उपवास करके भक्तिके साथ देवाधिदेव भगवान् श्रीहरिकी पूजा करनी चाहिये । पूजाकी विधि यह है कि **'ॐ वामनाय नमः'** इस मन्त्रसे भगवान्के दोनों चरणोंकी, **'ॐ विष्णवे नमः'** कहकर उनके कटिभागकी, **'ॐ वासुदेवाय नमः'**से उदरकी, **'ॐ संकर्षणाय नमः'** कहकर हृदयकी, **'ॐ विश्वभृते नमः'**से कण्ठकी, **'ॐ व्योमरूपिणे नमः'**से शिरोदेशकी, **'ॐ विश्वजिते नमः'** तथा **'ॐवामनाय नमः'** कहकर दोनों भुजाओंकी और **'पाञ्चजन्याय नमः'** कहकर शङ्खकी एवं **'सुदर्शनाय नमः'** कहकर चक्रकी पूजा करनी चाहिये । फिर पूर्वोक्त नरसिंह-व्रतके विधानके अनुसार अर्चना कर उन सनातन वामन भगवान्की प्रतिमाको रत्नगर्भित कलशपर स्थापित करे । चतुर साधक पहले बताये हुए पात्रपर भगवान् वामनकी शक्तिके अनुसार सुवर्णमयी मूर्ति स्थापित करे और सब कृत्य करे, भगवान्को यज्ञोपवीत पहनाये । उन भगवान् वामनके पास कमण्डलु, छाता, खड़ाऊँ, कमलकी माला तथा आसन या चटाई भी रखनी चाहिये । द्वादशीके दिन प्रातःकाल इन उपकरणोंके साथ वह प्रतिमा ब्राह्मणको दान कर दे । उस समय भगवान् वामनकी इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—'लघुरूप धारण करनेवाले भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों ।' फिर यों कहे—'भगवन् ! आप चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीके दिन प्रकट हुए हैं । मैं आपकी प्रसन्नता चाहता हूँ ।' सब अन्य व्रतोंकी तरह इसकी भी विधि है ।

सुनते हैं पहले हर्यश्व नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे, जिन्हें कोई पुत्र न था, अतः वे संतान-प्राप्तिके लिये यज्ञ एवं तपस्या कर रहे थे, इसी बीच भगवान् श्रीहरि ब्राह्मणका वेष धारणकर वहाँ आये और बोले—'राजन् ! आपका यह सब उपक्रम किस लक्ष्यको लेकर है ?' राजा बोले—'मैं यह सब पुत्र-प्राप्तिके लिये ही कर रहा हूँ ।' तब ब्राह्मणने राजासे कहा—'राजन् ! तुम वामन-द्वादशीव्रतका अनुष्ठान करो ।' फिर वे अन्तर्धान हो गये । राजाने यथाशीघ्र व्रतका अनुष्ठान किया और तेजस्वी, बुद्धिमान् एवं ब्राह्मणको रत्नगर्भित प्रतिमा दान कर दी । और भगवान् वामनसे प्रार्थना की—'भगवन् ! 'अपुत्रा अदितिकी प्रार्थनापर आप स्वयं पुत्ररूपसे उनके यहाँ प्रकट हुए थे' यदि यह बात सत्य है तो मुझे भी संतान प्राप्त हो ।

मुने ! इस विधानसे व्रत एवं प्रार्थना करनेपर उस राजाको उग्राश्व नामक पुत्रकी प्राप्ति हुई थी, जो आगे चलकर महाबली चक्रवर्ती सम्राट् हुआ। इस व्रतमें ऐसी शक्ति है कि जिसे पुत्र न हो, वह पुत्रवान् तथा निर्धन व्यक्ति धनवान् बन जाता है। जिसका राज्य छिन गया हो, वह पुनः अपना राज्य वापस पा जाता है। व्रत करनेवाला मनुष्य मरनेपर भगवान् विष्णुके लोकको प्राप्त होता है। फिर स्वर्गमें बहुत समय प्रमोद कर वह मर्त्यलोकमें बुद्धिमान् नहुषकुमार ययातिके समान चक्रवर्ती राजा होता है। (अध्याय ४३)

जामदग्न्य-द्वादशीव्रत

दुर्वासाजी कहते हैं—इसी प्रकार मनुष्य (परशुराम-द्वादशीका व्रती साधक) वैशाख मासके शुक्ल पक्षमें पूर्वोक्तनियमानुसार संकल्प कर विधिके साथ मृत्तिका लगाकर स्नान करे और फिर देवालयमें जाय। व्रती पुरुषको भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीहरिके अवतार परशुरामकी—'ॐ जामदग्न्याय नमः'से चरण, 'ॐ सर्वधारिणे नमः,से उदर, 'ॐ मधुसूदनाय नमः'से कटिप्रदेश, 'ॐ श्रीवत्सधारिणे नमः'से जङ्घा 'ॐ क्षत्रान्तकाय नमः'से भुजाओं, 'ॐ शितिकण्ठाय नमः'से केहुनी, 'ॐ पाञ्चजन्याय नमः'से शङ्ख, 'ॐ सुदर्शनाय नमः'से चक्र, तथा 'ॐ ब्रह्माण्डधारिणे नमः'से शिरोदेशकी पूजा करे। इसके बाद पहलेकी ही तरह सामने एक कलश स्थापित करे। उसके ऊपर भगवान् परशुरामकी मूर्ति स्थापित कर पूर्वोक्त नियमानुसार दो वस्त्रोंसे उसे आच्छादित करे। कलशपर बाँसके बने पात्रमें परशुरामजीकी आकृतिवाली सुवर्णकी प्रतिमा स्थापित करे। प्रतिमाके दाहिने हाथमें फरशा धारण कराये, फिर उसकी पुष्प, चन्दन एवं अर्घ्य आदि उपचारोंसे पूजा करे। भगवान्के सामने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूरी रात जागरण करे। प्रातःकाल सूर्योदय होनेपर स्वच्छ वेलामें वह प्रतिमा ब्राह्मणको दे दे। इस प्रकार नियमपूर्वक व्रत करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसे सुनो।

प्राचीन समयकी बात है—वीरसेन नामके एक पराक्रमी तथा भाग्यशाली राजा थे, जो पुत्र-प्राप्तिके लिये तीव्र तपस्या कर रहे थे। महर्षि याज्ञवल्क्यका आश्रम वहाँसे निकट ही था, अतः एक दिन वे उन्हें देखने आये। उन तेजस्वी ऋषिको पास आते देखकर राजा वीरसेन हाथ जोड़कर खड़े हो गये और उनका विधिवत् स्वागत किया। तत्पश्चात् याज्ञवल्क्यमुनिने पूछा—'धर्मज्ञ राजन्! तुम्हारे तप करनेका क्या प्रयोजन है ? तुम कौन-सा कार्य करना चाहते हो ?

राजा वीरसेनने कहा—महर्षे! मैं पुत्रहीन हूँ। मुझे कोई संतान नहीं है। द्विजवर! इस कारण तपस्या-द्वारा अपने शरीरको मैं सुखाना चाहता हूँ।

याज्ञवल्क्यजी बोले—राजन्! तपस्यामें बड़ा क्लेश उठाना पड़ता है, अतः तुम यह विचार छोड़ दो। मैं तुम्हें अत्यन्त सरल उपाय बताता हूँ। उसे करनेसे तुम्हें अवश्य पुत्र प्राप्त हो जायगा।

फिर उन्होंने उस यशस्वी राजाको इस वैशाख मासके शुक्ल पक्षमें होनेवाला यही परशुराम-द्वादशीव्रत बतलाया। पुत्रकी अभिलाषा रखनेवाले राजा वीरसेनने भी पूर्ण विधिके साथ यह व्रत सम्पन्न किया। फलस्वरूप उन्हें राजा नल-जैसा परम धार्मिक पुत्र प्राप्त हुआ, जिन 'पुण्य-श्लोक' राजाकी कीर्ति अबतक संसारमें गायी जाती है। यह तो इस व्रतके फलका प्रासङ्गिक उल्लेखमात्र हुआ, वस्तुतः जो यह व्रत करता है, उसे सुपुत्र तथा

जीवनभर विद्या, श्री और कान्ति सब सुलभ हो जाती हैं और परलोकमें उसे जो सुख होता है, वह कहता हूँ, सुनो । इस व्रतको करनेवाले व्यक्ति एक कल्पतक अप्सराओंके साथ आनन्द करते हुए ब्रह्माजीके लोकमें रहते हैं । फिर जब पुनः सृष्टि आरम्भ होती है तब वे चक्रवर्ती राजा होते हैं और तीस हजार वर्षोंकी उन्हें लम्बी आयु प्राप्त होती है । (अध्याय ४४)

श्रीराम एवं श्रीकृष्ण-द्वादशीव्रत

दुर्वासाजी कहते हैं—इसी प्रकार ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षमें श्रीराम-द्वादशी व्रत होता है । मनुष्यको चाहिये कि वह संकल्प करके विधिके साथ विविध प्रकारके पवित्र पुष्पोंसे परम प्रभु परमात्माकी पूजा करे । **'ॐ रामाभिरामाय नमः'** कहकर श्रीभगवान्‌के दोनों चरणोंकी, **'ॐ त्रिविक्रमाय नमः'** कहकर कटि देशकी, **'ॐ धृतविश्वाय नमः'** कहकर उनके उदरकी, **'ॐ संवत्सराय नमः'**से हृदयकी, **'ॐ संवर्तकाय नमः'** से कण्ठकी, **'ॐ सर्वास्त्रधारिणे नमः'**से भुजाओंकी, **'ॐ पाञ्चजन्याय नमः'** से शङ्खकी तथा **'ॐ सुदर्शनचक्राय नमः'**से चक्रकी एवं **'ॐ सहस्रशिरसे नमः'**से भगवान्‌के शिरःप्रदेशकी पूजा करे। इस प्रकार विधिवत् पूजाकर पूर्वोक्त विधिद्वारा एक कलश स्थापित कर उसे वस्त्रसे आच्छादित करे। फिर उस कलशपर भगवान् राम एवं लक्ष्मणकी सुवर्णमयी प्रतिमा रखकर विधिपूर्वक पूजन करे और पुत्रकी इच्छावाला व्रती प्रातःकाल उन प्रतिमाओंको ब्राह्मणोंको दे दे ।

पहले पुत्र न होनेपर महाराज दशरथने भी पुत्रकी कामनासे वसिष्ठजीकी बड़ी आराधना कर जब पुत्रोत्पत्तिका उपाय पूछा तो मुनिने उन्हें यही विधान बतलाया था । इस व्रतके रहस्यको जानकर राजा दशरथने इसका अनुष्ठान किया, जिसके फलस्वरूप स्वयं भगवान् श्रीहरि महान् शक्तिशाली राम-रूपमें उनके पुत्र हुए । महामुने ! उस समय सनातन श्रीहरिने अपनेको (राम, लक्ष्मणादि) चार रूपोंमें विभक्त कर लिया था । यह तो यहाँकी बात हुई, अब परलोककी बात सुनो । जबतक इन्द्र और सम्पूर्ण देवता स्वर्गमें रहते हैं, तबतक इस व्रतका करनेवाला पुरुष स्वर्गमें विविध भोगोंको भोगता है । वहाँकी अवधि समाप्त हो जानेपर वह पुनः मर्त्यलोकमें आता है । यहाँ आनेपर वह सौ यज्ञ करनेवाला राजा होता है । जो इस व्रतको निष्कामभावसे करता है, उस पुरुषके समस्त पाप समाप्त हो जाते हैं । साथ ही उसे भगवान् श्रीहरिका कैवल्य-पद भी प्राप्त हो जाता है, जो स्वच्छ एवं सनातन है ।

दुर्वासाजी कहते हैं—इसी प्रकार आषाढ़ मासके शुक्ल पक्षमें श्रीकृष्ण-द्वादशीव्रत होता है । व्रतीको चाहिये कि संकल्प करके विधिके साथ **'ॐ चक्रपाणये नमः'**, **'ॐ भूपतये नमः'**, **'ॐ पाञ्चजन्याय नमः'**, **'ॐ सुदर्शनाय नमः'**, **'ॐ पुरुषाय नमः'** कहकर श्रीकृष्ण-रूपधारी भगवान् श्रीहरिकी क्रमशः भुजा, कण्ठ, शङ्ख, चक्र एवं सिरका पूजन करे । पूजा करनेके बाद इसी प्रकार अग्रभागमें वह पूर्ववत् कलश स्थापित-कर उसे वस्त्रसे आच्छादित कर दे । फिर उसके ऊपर सनातन श्रीहरिके चतुर्व्यूह-रूपमें अवतरित स्वर्णनिर्मित श्रीकृष्णकी प्रतिमा स्थापित करे । फिर चन्दन एवं पुष्प आदिसे उसकी विधिवत् पूजा करे। तदनन्तर पूर्वकी भाँति वह प्रतिमा वेद-पाठी ब्राह्मणको दान कर दे । इस प्रकार नियमके साथ व्रत करनेवालेको जो पुण्य प्राप्त होता है, उसे सुनो—

यदुवंशमें वसुदेव नामक एक श्रेष्ठ कुशल पुरुष हुए हैं। उनकी पत्नीका नाम देवकी था। देवकी पतिके साथ-ही-साथ सभी व्रतोंका अनुष्ठान करती थीं। साथ ही वे पातिव्रत-धर्मका भी पूर्णरूपसे पालन करती थीं। परंतु उन साध्वीको कोई पुत्र न था। बहुत समय व्यतीत हो जानेपर एक बार श्रीनारदजी वसुदेवजीके घर आये। उन्होंने भक्तिपूर्वक मुनिकी पूजा की। फिर नारदजीने कहा—"वसुदेव ! मैं यह देवताओंसे सम्बन्धित एक कार्य बताता हूँ, उसे सुनो। अनघ ! मैंने स्वयं देखा है, देवताओंकी सभामें जाकर पृथ्वीने कहा है—'देवताओ ! अब मैं भार ढोनेमें असमर्थ हो गयी हूँ। दुर्जन दल बाँधकर मुझे दुःख दे रहे हैं। अतः आपलोग उनका संहार करें।'

"इस प्रकार पृथ्वीके कहनेपर उन देवताओंने भगवान् नारायणका ध्यान किया। ध्यान करते ही भगवान् श्रीहरिने उनके सामने प्रकट हो कर कहा—'देवताओ ! यह कार्य मैं स्वयं करनेके लिये उद्यत हूँ, इसमें कोई संशय नहीं। मैं मनुष्यके रूपमें मर्त्यलोकमें जाऊँगा, किंतु जो स्त्री अपने पतिके साथ आषाढ़ मासके शुक्ल पक्षमें द्वादशीव्रतका अनुष्ठान करेगी, मैं उसीके गर्भमें निवास करूँगा।' भगवान् श्रीहरिके ऐसा कहनेपर देवता तो अपने स्थानपर चले गये, पर मैं (नारदजी) यहाँ आ गया हूँ। मेरे आनेका विशेष कारण यह है कि आपकी कोई संतान (जीवित) नहीं है। अतः आपको यह बतला दूँ।" इसी द्वादशीव्रतके करनेसे वसुदेवजीको श्रीकृष्ण-जैसे पुत्रकी प्राप्ति हुई। साथ ही उन यदुश्रेष्ठको विशाल वैभव भी प्राप्त हो गया। जीवनमें सुख भोगकर अन्तमें वे भगवान् श्रीहरिके परम धामको गये। मुने ! आषाढ़ मासमें होनेवाली द्वादशीव्रतकी यह विधि मैंने तुम्हें बतला दी।

(अध्याय ४५-४६)

बुद्ध-द्वादशीव्रत

दुर्वासाजी कहते हैं—मुने ! श्रावण मासके शुक्ल पक्षमें एकादशीके दिन बुद्धव्रत करनेका विधान है। पूर्वकथित विधिके अनुसार चन्दन एवं फूल आदिसे भगवान् श्रीहरिकी पूजा करनी चाहिये। **'ॐ दामोदराय नमः', 'ॐ हृषीकेशाय नमः', 'ॐ सनातनाय नमः,' 'ॐ श्रीवत्सधारिणे नमः', 'ॐ चक्रपाणये नमः', 'ॐ हरये नमः', 'ॐ मञ्जुकेशाय नमः'**, तथा **'ॐ भद्राय नमः'**—इन मन्त्रोंके द्वारा क्रमशः भगवान् बुद्धरूपी श्रीहरिके चरण, कटिभाग, उदर, छाती, भुजाएँ, कण्ठ, शिर एवं शिखाकी क्रमशः अर्चना करनी चाहिये।

इस प्रकार सम्यक् रीतिसे पूजाकर पहलेके ही समान कलश स्थापित करे और दो वस्त्रोंसे उसे आच्छादितकर उसके ऊपर सम्पूर्ण संसारको अपने उदरमें धारण करनेकी शक्तिवाले देवेश्वर भगवान् श्रीहरिकी सुवर्णमयी प्रतिमा स्थापित करे। फिर विधानके अनुसार गन्ध, पुष्प आदिसे क्रमशः पूजन करे। तत्पश्चात् पहले-जैसे-ही वेद और वेदाङ्गके पारगामी ब्राह्मणको वह प्रतिमा दे दे। मुने ! यह विधि श्रावण मासकी एकादशीव्रतकी कही गयी है। इस प्रकार नियमके साथ यदि व्रत किया जाय तो उसका जो प्रभाव होता है, वह कहता हूँ, सुनो।

प्राचीन समयकी बात है—सत्ययुगमें नृग नामसे प्रसिद्ध एक प्रतापी नरेश थे। जिन्हें

आखेटका (शिकार) बड़ा शौक था। अतः प्रायः वे गहन वनोंमें घूमते रहते थे। एक समयकी बात है, वे घोड़ेपर चढ़कर किसी वनमें बहुत दूर चले गये, जहाँ सिंह, बाघ, हाथी, सर्प और डाकुओंका निवास था। राजा नृगके पास इस समय अन्य कोई सहायक भी न था। वे घोड़ेको खोलकर एक वृक्षके नीचे श्रमसे थककर सो गये। इतनेमें ही रात हो गयी और चौदह हजार व्याधोंका एक दल मृगोंको मारनेके विचारसे वहाँ आ गया। व्याधोंने देखा राजा सोये हैं। उनका शरीर सोने और रत्नोंसे सुशोभित है। लक्ष्मी उनके अङ्ग-अङ्गकी शोभा बढ़ा रही हैं। अतः वे सभी वधिक तुरंत अपने सरदारके पास गये और उसे इसकी सूचना दी। सुवर्ण और रत्नके लोभमें पड़कर वह सरदार भी राजा नृगको मारनेके लिये उद्यत हो गया और वे व्याध हाथमें तलवार लेकर उन सोये हुए राजाके पास पहुँच गये। वे उन्हें पकड़ना ही चाहते थे कि राजाके शरीरसे सहसा चन्दन-माल्यादिसे विभूषित एक स्त्री प्रकट हो गयी। उसने चक्र उठाकर सभी व्याधों तथा म्लेच्छोंको मार डाला। उनका वधकर वह देवी उसी क्षण पुनः राजा नृगके शरीरमें समा गयी। इतनेमें राजा भी जग गये और देखा कि म्लेच्छ नष्ट हो गये हैं और देवी शरीरमें प्रविष्ट हो रही है। अब राजा घोड़ेपर सवार होकर वामदेवजीके आश्रमपर गये और उन्होंने भक्तिपूर्वक उनसे पूछा—'भगवन् वह स्त्री कौन थी तथा वे मरे हुए व्याध कौन थे ? आप मुझपर प्रसन्न होकर इस आश्चर्यजनक घटनाका रहस्य बतानेकी कृपा कीजिये।'

वामदेवजी बोले—राजन्! इसके पूर्वजन्ममें शूद्र-जातिमें तुम्हारा जन्म हुआ था। उस समय ब्राह्मणोंके मुखसे तुमने श्रावण मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीव्रतके अनुष्ठानकी बात सुनी। और राजन्! बड़ी श्रद्धाके साथ विधिपूर्वक तुमने उस दिन उपवास भी किया। अनघ! उसीका परिणाम है कि इस समय तुम्हें राज्य उपलब्ध हुआ है। वही द्वादशीदेवी सम्पूर्ण आपत्तियोंमें साकार होकर तुम्हारी रक्षा करती हैं। उसीके प्रयाससे ये घोर पापी एवं निर्दयी म्लेच्छ जीवनसे हाथ धो बैठे हैं। राजन्! श्रावण मासकी यह द्वादशी ही तुम्हारी रक्षिका है। इसमें इतनी अपार शक्ति है कि सहसा प्राप्त विपत्ति-कालमें भी तुम्हारी रक्षा हो जाती है और इसकी कृपासे तुम्हें राज्य भी सुलभ हो गया है। अब जो बारह मासोंकी द्वादशी करते हैं, उनके पुण्यका तो कहना ही क्या है। उनके प्रभावसे तो मानव इन्द्रलोकतक पहुँच जाता है।

(अध्याय ४७)

कल्कि-द्वादशीव्रत

दुर्वासाजी कहते हैं—मुने! पूर्वकथित व्रतोंकी भाँति ही भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षमें जो एकादशी होती है, उस तिथिमें कल्कि-व्रत करना चाहिये। इसमें विधिपूर्वक संकल्प कर देवाधिदेव भगवान् श्रीहरिकी इस प्रकार अर्चना करनी चाहिये। '**ॐ कल्कये नमः**', '**ॐ हृषीकेशाय नमः**', '**ॐ म्लेच्छविध्वंसनाय नमः**', '**ॐ शितिकण्ठाय नमः**', '**ॐ खड्गपाणये नमः**' '**ॐ, चतुर्भुजाय नमः**' तथा '**ॐ विश्वमूर्तये नमः**' कहकर क्रमशः भगवान् कल्किके चरण, कमर, उदर, कण्ठ, भुजा, हाथ एवं सिरकी पूजा करनी चाहिये। इसके बाद बुद्धिमान् पुरुष पहलेके समान ही सामने कलश स्थापित कर उसपर भगवान् कल्किकी सुवर्णनिर्मित प्रतिमा स्थापित कर उसके ऊपर एक स्वच्छ वस्त्र लपेटकर चन्दन और पुष्पसे उस प्रतिमाको अलङ्कृत करे। पुनः प्रातःकाल उसे किसी शास्त्रके ज्ञाता ब्राह्मणको दान कर दे।

मुनिवर ! इस प्रकार यह व्रत करनेपर जो फल प्राप्त होता है, उसे सुनो—बहुत पहले काशीपुरीमें विशाल नामक एक पराक्रमी राजा थे । बादमें उनके गोत्रके व्यक्तियोंने ही उनके राज्यको छीन लिया । अब वे गन्धमादन पर्वतके पवित्र बदरीवनके क्षेत्रमें चले गये और तप करने लगे । इसी समय किसी दिन श्रीनर-नारायणनामक पुराण एवं परम प्रसिद्ध ऋषि वहाँ पधारे । उन दोनों देवताओंने, जिन्हें सम्पूर्ण देवगण नमस्कार करते हैं और जिनके आगे किसीकी शक्ति काम नहीं देती, उस समय राजा विशालको देखा और मनमें विचार किया कि यह राजा बहुत पहलेसे यहाँ आया है और परब्रह्म परमात्मा विष्णुका निरन्तर ध्यान कर रहा है । अतः नर-नारायणने प्रसन्न होकर उन निष्पाप नरेशसे कहा—'राजेन्द्र ! हम लोग तुम्हारी कल्याणकामनासे वर देने आये हैं । तुम हमसे कोई वर माँग लो ।'

राजा विशालने कहा—आप दोनों कौन हैं, यह मैं नहीं जानता । फिर किसके सामने वर पानेकी प्रार्थना करूँ । मैं जिनकी आराधना करता हूँ, मेरी उन्हींसे वर-प्राप्तिकी हार्दिक इच्छा है ।

राजाके इस प्रकार कहनेपर नर-नारायणने उनसे पूछा—'राजन् ! तुम किसकी आराधना करते हो ? अथवा कौन-सा वर पानेकी तुम्हें इच्छा है ? हम लोग जानना चाहते हैं, तुम इसे बताओ ।' ऐसा पूछनेपर राजा विशाल बोले—'मैं भगवान् विष्णुकी आराधना करता हूँ', और फिर वे चुपचाप बैठ गये । तब नर-नारायणने पुनः उनसे कहा—'राजन् ! उन्हीं देवेश्वरकी कृपासे हम तुम्हें वर देनेके लिये आये हैं । तुम वर माँगो—तुम्हारे मनमें क्या अभिलाषा है ?'

राजा विशालने कहा—अनेक प्रकारकी दक्षिणासे सम्पन्न होनेवाले यज्ञ करके मैं भगवान् यज्ञेश्वरकी उपासना करना चाहता हूँ । आप वर देकर इसी मनोरथको पूर्ण करें ।

उस समय राजाके पास नर और नारायण—दोनों महाभाग विराजमान थे । उनमेंसे नरने कहा—ये भगवान् नारायण हैं । अखिल जगत्को मार्ग दिखाना इनका प्रधान काम है । संसारकी सृष्टि करनेमें निपुण ये प्रभु मेरे साथ तपस्या करनेके विचारसे इस बदरीवनमें आ गये हैं । मत्स्य, कच्छप, वराह, नरसिंह, वामन और परशुराम—इन सब रूपोंसे पूर्व-समयमें इनका अवतार हो चुका है । इनकी शक्ति अपरिमेय है । फिर ये ही महाराज दशरथजीके घर राजा राम हुए । उस समय इनका रूप महान् आकर्षक था । उस समय म्लेच्छ राक्षसोंको मार पृथ्वीका भार दूर कर सुखी किया था । कभी पापियोंसे भयभीत होकर नरसमुदायने इनकी स्तुति की थी । उस अवसरपर इन्होंने नरसिंहरूपसे अवतार लिया था । बलिको मोहनेके निमित्त वामन तथा क्षत्रियोंके हाथसे राज्य वापस करनेके लिये परशुराम ये बन चुके हैं । दुष्ट शत्रुओंको दमन करनेके लिये इन्होंने कृष्णका अवतार धारण किया है । अतः पण्डितजन इनकी उपासना करते हैं । यदि पुत्र-प्राप्तिकी कामना हो तो बुद्धिमान् पुरुष इनके बालकृष्ण-रूपकी उपासना करे । रूपकी इच्छा करनेवाला इनके बुद्धावतारकी तथा शत्रुका संहार चाहनेवाला कल्कि-अवतारकी उपासना करे—यह संशय-शून्य सिद्धान्त है ।

इस प्रकारकी बातें स्पष्ट करके मुनिवर नरने राजा विशालको भगवान् हरिकी यह द्वादशी बतला दी । वे राजा इस व्रतको सम्पन्न करनेमें संलग्न भी हो गये । फलस्वरूप वे चक्रवर्ती राजा हुए । मुने ! उन्हीं राजा विशालसे सम्बन्ध रखनेके कारण यह बदरीवन 'विशाल' नामसे प्रसिद्ध हुआ । वे नरेश इस जन्ममें सुखपूर्वक राज्यकर अन्तमें बदरीवनमें गये, जहाँ अनेक प्रकारके यज्ञ करके भगवान् नारायणके परम पदको प्राप्त किया ।

(अध्याय ४८)

पद्मनाभ-द्वादशीव्रत

दुर्वासाजी कहते हैं—मुने ! पूर्वकथित द्वादशी-व्रतकी भाँति आश्विन मासके शुक्लपक्षमें यह व्रत भी है । उस तिथिमें पद्मनाभ भगवान्‌की अर्चना करनेकी विधि है । **'ॐ पद्मनाभाय नमः', 'ॐ पद्मयोनये नमः', 'ॐ सर्वदेवाय नमः', 'ॐ पुष्कराक्षाय नमः', 'ॐ अव्ययाय नमः', 'ॐ प्रभवाय नमः'**—इन मन्त्रोंको पढ़कर क्रमशः भगवान् पद्मनाभके दोनों चरणों, कटिभाग, उदर, हृदय, हाथ एवं शिरकी पूजा करनी चाहिये। फिर **'सुदर्शनाय नमः'** एवं **'कौमोदक्यै नमः'** आदि कहकर भगवान्‌के आयुधोंकी पूजा करनी चाहिये। इसमें भी पूर्ववत् सामने कलश रखना चाहिये, उसपर भगवान् पद्मनाभकी सुवर्णमयी प्रतिमा स्थापित करे, चन्दन-पुष्प आदिसे उसके अङ्गोंकी पूजा करनी चाहिये । रात बीत जानेपर प्रातःकाल फिर वह प्रतिमा ब्राह्मणको दे दे । महामते ! इस प्रकार व्रत करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह बताता हूँ, सुनो ।

सत्ययुगकी बात है—भद्राश्व नामसे विख्यात एक शक्तिशाली राजा थे, जिनके नामपर 'भद्राश्ववर्ष' प्रसिद्ध हुआ है । एक बार कभी अगस्त्य मुनि उनके घर आये और कहने लगे—'राजन् ! मैं सात रातोंतक तुम्हारे घरपर निवास करना चाहता हूँ ।' राजा भद्राश्वने सिर झुकाकर मुनिको प्रणाम किया और कहा—'मुनिवर ! आप अवश्य निवास करें।' राजा भद्राश्वकी सुन्दरी रानीका नाम कान्तिमती था । उसका तेज ऐसा था, मानो बारहों सूर्य एक साथ प्रकाश फैला रहे हों । इसी प्रकार राजाकी पाँच सौ सुन्दरियाँ भी थीं; जिनका व्रत संयमित था । सुन्दर स्वभाववाली वे सौतें दासीकी भाँति प्रतिदिन कार्यमें संलग्न रहती थीं । कान्तिमतीको ही राजाकी पटरानी होनेका सौभाग्य प्राप्त था । एक बार उस (रूप और तेजसे सम्पन्न कल्याणी कान्तिमती) पर अगस्त्य मुनिकी दृष्टि पड़ी । साथ ही उसके भयसे कार्यमें तत्पर रहनेवाली उन सुन्दरी सौतोंको भी उन्होंने देखा । राजा भद्राश्व तो रानी कान्तिमतीके प्रसन्न मुखको प्रतिक्षण देखता ही रहता था । ऐसी परम सुन्दरी रानीको देखनेके कुछ समय बाद अगस्त्यजी आनन्दमें विह्वल होकर बोले—'राजन् ! आप धन्य हैं, धन्य हैं ।' इसी प्रकार दूसरे दिन रानीको देखकर अगस्त्य मुनिने कहा—'अरे ! यह तो सारा विश्व वञ्चित रह गया ।' फिर तीसरे दिन उस रानीको देखकर यों कहने लगे—'अहो ! ये मूर्ख गोविन्द भगवान्‌को भी नहीं जानते, जिन्होंने केवल एक दिनकी प्रसन्नतासे इस राजाको सब कुछ प्रदान किया था ।' चौथे दिन अगस्त्य मुनिने अपने दोनों हाथोंको ऊपर उठाकर फिर कहा—'जगत्प्रभो ! आपको साधु-वाद—धन्यवाद है, स्त्रियाँ धन्य हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ! तुम्हें पुनः-पुनः धन्यवाद है । भद्राश्व ! तुम्हें धन्यवाद है । ऐ अगस्त्य ! तुम भी धन्य हो । प्रह्लाद एवं महाव्रती ध्रुव ! तुम सभी धन्य हो ।'

इस प्रकार उच्च स्वरसे कहकर अगस्त्य मुनि राजा भद्राश्वके सामने नाचने लगे । फिर तो ऐसे कार्यमें संलग्न अगस्त्य मुनिको देखकर रानीसहित उस नरेशने मुनिसे पूछा—'ब्रह्मन् ! आपके इस हर्षका क्या कारण है ? आप क्यों इस प्रकार नृत्य कर रहे हैं ?'

मुनिवर अगस्त्यने कहा—राजन् ! बड़े आश्चर्यकी बात है । तुम कितने अज्ञानी हो; साथ ही तुम्हारा अनुगमन करनेवाले ये मन्त्री, पुरोहित और अन्य अनुजीवी भी मूर्ख ही हैं, जो मेरी बात समझ नहीं पाते ।

इस प्रकार अगस्त्य मुनिके कहनेपर राजा भद्राश्वने हाथ जोड़कर कहा—'ब्रह्मन् ! आपके मुखसे उच्चरित

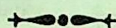
पहेलीको हम नहीं समझ पा रहे हैं। अतः महाभाग! यदि आप अनुग्रह करना चाहते हों तो मुझे बतानेकी कृपा करें।'

अगस्त्यजी बोले—राजन्! पूर्वजन्ममें यह रानी किसी नगरमें हरिदत्त नामक एक वैश्यके घरमें दासीका काम करती थी। उस समय भी तुम्हीं इसके पति थे। हरिदत्तके ही यहाँ तुम भी सेवावृत्तिसे एक कर्मचारीका काम करते थे। एक समयकी बात है, आश्विन मासके शुक्लपक्षकी द्वादशीका व्रत नियमपूर्वक करनेके लिये वह वैश्य तत्पर हुआ। स्वयं भगवान् विष्णुके मन्दिरमें जाकर पुष्प एवं धूप आदिसे उन प्रभुकी पूजा की। तुम दोनों—स्त्री एवं पुरुष उस वैश्यकी सुरक्षाके लिये साथ थे। पूजनोपरान्त वह वैश्य तो अपने घर लौट आया। महामते! दीपक बुझ न जायँ, इस-लिये तुम दोनोंको वहीं रहनेकी आज्ञा दे दी। उस वैश्यके चले जानेपर तुमलोग दीपकोंको भलीभाँति जलाकर वहीं बैठे रहे। राजन्! तुमलोग पूरी एक रात—जबतक सवेरा न हुआ, तबतक वहाँसे नहीं हटे। कुछ दिनोंके बाद आयु समाप्त हो जानेके कारण तुम दोनों स्त्री-पुरुषोंकी मृत्यु हो गयी। उस पुण्यके प्रभावसे राजा प्रियव्रतके घर तुम्हारा जन्म हुआ और तुम्हारी यह पत्नी, जो उस जन्ममें वैश्यके यहाँ दासीका काम करती थी, अब रानी हुई है। वह दीपक दूसरेका था। भगवान् विष्णुके मन्दिरमें केवल उसे प्रज्वलित रखनेका काम तुम्हारा था। यह उसीका ऐसा फल है। फिर जो अपने द्रव्यसे श्रीहरिके सामने दीपक प्रज्वलित करे, उसका जो पुण्य है, उसकी संख्या तो की ही नहीं जा सकती। इसीसे मैंने कहा—'राजन्! आप धन्य हैं! आप धन्य हैं!' सत्ययुगमें पूरे वर्षतक, त्रेतायुगमें आधे वर्ष-तक तथा द्वापरयुगमें तीन महीनोंतक भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी पूजा करनेसे विद्वान् पुरुष जो फल प्राप्त करते हैं, कलियुगमें उतना फल केवल **'नमो नारायणाय'** कहकर प्राप्त किया जा सकता है। इसमें कोई संशय नहीं। इसीलिये मेरे मुखसे निकल गया, 'यह सारा जगत् वञ्चित हो गया है।' मैंने केवल भक्तिकी बात कही है। भगवान् विष्णुके सम्मुख दूसरेके जलाये दीपकको प्रज्वलित कर देनेमात्रसे ऐसा फल प्राप्त हुआ है। अब जो मैंने मूर्ख होनेकी बात कही, इसका अभिप्राय इतना ही है कि भगवान्के मन्दिरमें दीप-दान करनेके महत्त्वको ये लोग नहीं जानते। मैंने ब्राह्मणों और राजाओंको धन्यवाद इसलिये दिया है कि जो अनेक प्रकारके यज्ञोंद्वारा भक्तिके साथ उक्त विधिसे श्रीहरिकी उपासना करते हैं, वे धन्यवादके पात्र होते हैं। मुझे उन प्रभुके अतिरिक्त इस जगत्में अन्य कुछ भी नहीं दीखता, अतः मैंने अपनेको भी धन्य कहा। इस स्त्रीको तथा तुम्हें धन्य बतानेका कारण यह है कि यह एक वैश्यके घर सेविका थी और तुम भी सेवाका ही कार्य करते थे। स्वामीके चले जानेपर तुम लोगोंने भगवान्के मन्दिरमें दीपकको प्रज्वलित रखा। अतः यह स्त्री और इससे बढ़कर तुम धन्यवादके पात्र हो। प्रह्लादके शरीरमें आसुर भावनाके बीज थे, फिर भी परमपुरुष परमात्माको छोड़कर उनकी दृष्टिमें अन्य कोई सत्ता न थी, अतः मैंने उन्हें धन्य कहा है। ध्रुवका जन्म राजाके घरमें हुआ था। बचपनमें ही वे वनमें चले गये और वहाँ भगवान् विष्णुकी आराधना कर सर्वोत्कृष्ट सुन्दर स्थान प्राप्त किया। महाराज! इसलिये मैंने ध्रुवको भी साधु कहा है।

अगस्त्यजीसे राजा भद्राश्वने संक्षेपरूपसे उपदेश देनेकी प्रार्थना की थी; अतः मुनिने कहा—'राजन् अब कार्तिककी पूर्णिमाका पर्व आ गया है। मैं पुष्कर-क्षेत्र जा रहा हूँ'—यों कहकर वे चल पड़े। पुष्कर जाते

समय ही वे राजा भद्राश्वके महलपर रुके थे और उन मुनिवरने राजाको वहीं द्वादशीव्रत करनेका उपदेश दिया था। चलते समय मुनि राजाको पुत्र-प्राप्तिका आशीर्वाद दे गये।

राजा भद्राश्वने भी भगवान् पद्मनाभकी द्वादशीका व्रत किया। फलतः वे पुत्र-पौत्र और उत्तम-से-उत्तम भोगोंसे सम्पन्न होकर अन्तमें भगवान् पद्मनाभके धामको प्राप्त हुए। (अध्याय ४९)



धरणीव्रत

दुर्वासाजी कहते हैं—अगस्त्यजी पुष्कर तीर्थमें जाकर पुनः राजा भद्राश्वके भवनपर ही वापस आ गये। मुनिको अपने यहाँ आये देखकर उन राजाके मनमें महान् हर्ष हुआ। उन धार्मिक नरेशने उन्हें आसनपर बैठाया और पाद्य एवं अर्घ्य आदिसे पूजा कर कहने लगे—'भगवन्! आपके आदेशानुसार आश्विन मासकी द्वादशीकी व्रतविधिका मैंने अनुष्ठान किया। अब कार्तिक मासमें यह व्रत करनेसे जो पुण्य होता है, वह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

अगस्त्यजी बोले—राजन्! कार्तिक मासकी विधिपूर्वक द्वादशी-व्रतके और फलकी बात मैं तुमसे कहता हूँ, तुम उसे सावधान होकर सुनो। व्रतीको मेरे द्वारा पहले बताये विधानके अनुसार संकल्प करके स्नान करना चाहिये। फिर भगवान् नारायणकी '**ॐ सहस्रशिरसे नमः**,' '**ॐ पुरुषाय नमः**,' '**ॐ विश्वरूपिणे नमः**,' '**ॐ ज्ञानास्त्राय नमः**,' '**ॐ श्रीवत्साय नमः**,' '**ॐ जगद्ग्रसिष्णवे नमः**,' '**ॐ दिव्य-मूर्तये नमः**' तथा '**ॐ सहस्रपादाय नमः**,'—इन मन्त्रोंद्वारा क्रमशः शिर, भुजा, कण्ठ, अस्त्रों, हृदयदेश, उदर, कटिभाग तथा चरणदेशकी पूजा करनी चाहिये। विद्वान् पुरुष अनुलोम-क्रमसे भी पूजन करें। फिर '**ॐ दामोदराय नमः**' कहकर सभी अङ्गोंकी एक साथ पूजा करनी चाहिये।

इस प्रकार पूजाकर प्रतिमाके सामने चार कलश रखकर उनमें रत्न डालकर उन्हें उजले चन्दनसे लेप कर पुष्पमालासे अलङ्कृत तथा श्वेत वस्त्रसे आवेष्टित कर और उनपर तिलपूर्ण ताँबेका पात्र रखे। महाराज! फिर उनमें चारों समुद्रकी कल्पना करे। फिर उनके मध्यभागमें भगवान् श्रीहरिकी प्रतिमा स्थापित कर विधिवत् पूजा करनी चाहिये। उस दिन रातमें जागरण कर भगवान्की मानसिक पूजा कर वैष्णव-यज्ञका अनुष्ठान करे। बहुत-से योगी पुरुष सोलह दलवाले चक्रमें योगीश्वर प्रभुकी अर्चना करते हैं। इस प्रकार पूजनका कार्य समाप्त हो जानेपर प्रातः चार समुद्रोंकी भावनासे कलशोंको चार ब्राह्मणोंको दान कर दे। प्रतिमा पाँचवें वेदज्ञ ब्राह्मणको देनी चाहिये। दो अथवा चार प्रतिमाएँ भी देनेकी विधि है। यदि दान ग्रहण करनेवाले ब्राह्मण पञ्चरात्र-आगमके आचार्य हों तो सर्वोत्तम है; उन्हें देनेपर हजार व्रतोंका फल प्राप्त होता है। जो इस व्रतके रहस्यको स्पष्ट बतानेमें कुशल हैं तथा मन्त्रोच्चारणपूर्वक विधि सम्पन्न कराते हैं, ऐसे व्यक्तिको दान करनेसे वह करोड़ गुणा फल देता है। अपने गुरुके रहते दूसरेका आश्रय लेनेवाले और उसकी पूजा करनेवालेकी दुर्गति होती है। उसके किये हुए किसी दानका कोई फल नहीं, अतः प्रयत्न करके सर्वप्रथम गुरुका सम्मान करना चाहिये। इसके बाद दूसरेको दे। गुरु पढ़ा-लिखा हो अथवा कुछ भी न जानता हो, फिर भी उसे भगवान् श्रीहरिका स्वरूप जानना चाहिये। गुरु चाहे उत्तम मार्गका अनुसरण करता है अथवा अधम

मार्गका; किंतु शिष्यके लिये एकमात्र वही गति है। जो व्यक्ति पहले गुरुका सम्मान कर फिर मूर्खताके कारण पीछे उसके प्रतिकूल व्यवहार करता है, वह पतित होता है और करोड़ युगोंतक उसे नरककी यातना भोगनी पड़ती है।

इस प्रकार दानकर द्वादशीके दिन भगवान् विष्णु-की पुनः विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। फिर ब्राह्मणों-को भोजन कराये और उन्हें अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणा दे। इसका नाम 'धरणीव्रत' है। पूर्वकालमें दक्षप्रजापतिने इस व्रतका आचरण किया था। फलस्वरूप वे प्रजापतिके पदपर प्रतिष्ठित हुए और अन्तमें मुक्त होकर सनातन श्रीहरिमें लीन हो गये। हैहयवंशी कृतवीर्य नामक नरेशने भी यह व्रत किया था, जिसके प्रभावसे उसे कार्तवीर्य नामक पुत्र प्राप्त हुआ। अन्तमें वह भी सनातन श्रीहरिके लोकमें चला गया। शकुन्तलाने भी इसी प्रकार यह व्रत किया था, जिससे वह चक्रवर्ती राजा भरतकी माता बनी। यों ही प्राचीन समयमें अनेक चक्रवर्ती राजाओंने उक्त विधिसे यह व्रत किया है और इसके प्रतापसे वे प्रमुख चक्रवर्ती हो गये हैं—यह बात वेदोंमें बतायी गयी है। प्राचीन समयमें पातालमें डूबकर कालक्षेप करती हुई पृथ्वीने भी इस उत्तम व्रतको किया था। तभीसे यह व्रत धरणीव्रतके नामसे प्रसिद्ध हुआ। पृथ्वीद्वारा यह व्रत सम्पन्न होते ही भगवान् श्रीहरिने परम संतुष्ट होकर उसी समय वराहका रूप धारण किया और इस प्रकार उसे ऊपर उठा लाये, जैसे नौका जलमें डूबते हुए प्राणीको बचा लेती है। मुने! इस धरणीव्रतका स्वरूप मैंने तुम्हें बता दिया। जो श्रेष्ठ पुरुष इस प्रसङ्गको सुनेगा अथवा भक्तिके साथ इस व्रतको करेगा, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो अन्तमें भगवान् विष्णुके परम धामको ही प्राप्त होगा।

(अध्याय ५०)

अगस्त्य-गीता

[नासदीय सूक्त—व्याख्या]

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! दुर्वासा मुनि-के कहे हुए इस उत्तम धरणीव्रतको सुनकर सत्यतपा उसी क्षण हिमालयके संनिकट एक ऐसे पवित्र स्थानपर चले गये, जहाँ पुष्पभद्रा नामकी नदी, चित्रशिला नामक प्रसिद्ध पहाड़ तथा भद्रवटसंज्ञक वटका वृक्ष था। उन मुनिने वहीं अपना सुन्दर आश्रम बना लिया। भविष्यमें सत्यतपाके द्वारा वहाँ एक बहुत बड़ी विचित्र लीला सम्पन्न होगी।

भगवती पृथ्वीने कहा—प्रभो! आप सनातन पुरुष हैं। तपोमय! इस व्रतको मैंने कई हजार कल्प पहले किया था। मैं तो इसे सर्वथा भूल ही गयी थी। परंतु आज आपकी कृपासे वह पुरानी बात मुझे याद आ गयी। परम प्रभो! जातिस्मरता प्राप्त होने—पूर्वजन्मोंकी बात स्मरण आ जानेके कारण मेरे मनको बड़ी शान्ति मिल रही है। भगवन्! मैं जानना चाहती हूँ कि अगस्त्य मुनि राजा भद्राश्वके भवनपर पुनः कब आये और उनकी आज्ञासे राजाने फिर क्या किया? वह सब आप मुझे बतानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह बोले—राजा भद्राश्व सदा श्वेत अश्व (उजले घोड़े) पर ही चढ़ते थे। जब अगस्त्य ऋषि दूसरी बार उनके यहाँ आये तो उन्होंने उन्हें उत्तम आसनपर बैठाया और पहलेसे भी बढ़कर उनकी पूजा की

और पूछा—'भगवन् ! वह कौन-सा ऐसा कर्म है, जिसे करनेसे संसारसे मुक्ति मिल सकती है । अथवा देहधारी एवं बिना देहवाले—सभी प्राणियोंके लिये कौन-सा कर्म वैध है, जिसका सम्पादन कर लेनेपर उनके सामने शोक नहीं आ सकता ।

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! सावधानीसे सुनो । यह कथा दृष्ट एवं अदृष्ट—दोनों लोकोंसे सम्बद्ध है । यह बात उस समयकी है, जब कि दिन, रात, नक्षत्र, दिशाएँ, आकाश, देवता एवं सूर्य—इन सबका नितान्त अभाव था । उस क्षण पशुपाल नामक एक पुरुष शासन कर रहे थे । एक समयकी बात है—पशुओंकी रक्षा करते समय उनके मनमें पूर्वी समुद्र देखनेकी उत्कण्ठा जगी और वे तुरंत चल पड़े । उस महासागरके तटपर एक वन था और वहाँ बहुत-से सर्प निवास करते थे । वहाँ आठ वृक्ष थे और एक स्वच्छन्दगामिनी नदी थी । तिरछे एवं ऊपरकी ओर गमन करनेवाले अन्य प्रधान पाँच पुरुष भी थे । एक विशिष्ट पुरुष था, जिसके प्रसादसे तेजके कारण चमकनेवाली एक स्त्री शोभा पा रही थी । उस समय हजार सूर्यों-जैसी आकृतिवाले उस महान् पुरुषको उस स्त्रीने अपने वक्षःस्थलपर स्थान दे रखा था । उस पुरुषके अधरपर तीन रंगवाले तीन विकार विराजमान थे । वही पुरुष उसका संचालक था । उसकी गति कहीं रुकती न थी । उसे देखकर वह स्त्री मौन हो गयी । तब वह प्रबन्धक पुरुष भी उस वनमें चला गया । उसके वनमें प्रविष्ट होते ही क्रूर स्वभाववाले आठ सर्प राजाके पास पहुँचे और उन प्रभुके चारों ओर लिपट गये । सर्पोंके आक्रमणसे राजा चिन्तित होकर सोचने लगे कि इनका संहार कैसे हो ?

इतनेमें ही उनके सामने तीन वर्णवाला एक दूसरा पुरुष प्रकट हो गया । उसने श्वेत, रक्त एवं पीत—इन तीन रूपोंको धारण कर रखा था । उसने अपना नाम जानना चाहा और कहा—'मेरे लिये दूसरा स्थान चाहिये ।' तब प्रधान पुरुषने पूछा—'कहाँ जानेका विचार करते हो ?' साथ ही उस पुरुषका नाम 'महत्' रख दिया । अब उस पुरुषने उन जगन्नियन्ता प्रभुके साथ रहनेकी स्वीकृति भी प्राप्त कर ली । तब राजाने कहा—'तुम्हें जगत्‌की जानकारी रखना आवश्यक है ।' इसपर उस स्त्रीने कहा—'इस जगत्‌में तो मैं ओतप्रोत हूँ ।' तब जो दूसरा पुरुष प्रकट हुआ था, उसने कहा—'तुम डरो मत ।' इसके बाद वह वीर पुरुष राजाके पास जाकर स्वयं स्थित हो गया ।

तदनन्तर दूसरे पाँच पुरुष आये और प्रधान राजाके चारों ओर खड़े हो गये । राजन् ! उन डाकुओंने शस्त्र उठाकर प्रधान राजाको मारनेकी तैयारी कर ली । फिर डर जानेके कारण एक दूसरेमें वे लीन हो गये । उनके लीन होनेपर भी राजाका भवन विशेषरूपसे सुशोभित होने लगा । राजन् ! फिर पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पाँच महाभूतोंने अपना एक समूह बनाया । उस समय वायुका रूप शीतल एवं सुखदायी था । अन्य भी चारों उत्तम गुण एवं प्रकाशसे संपन्न थे । ये भी राजभवनमें आये । तब उन प्रधान पुरुष पशुपालके सूक्ष्म रूपको देखकर तीन वर्णवाले पुरुषने उनसे कहा—'महाराज ! मेरे कोई पुत्र नहीं है ।' उस समय पशुपालने पूछा—'बतलाइये आपके लिये मैं क्या करूँ ?' फिर तीन वर्णवाले पुरुषने उत्तर दिया—'हम लोग आपको बन्धनमें डालना चाहते थे । यद्यपि हमने प्रयत्न भी किया, किंतु अफल रहे । राजन् ! ऐसी स्थितिमें अब हम आपके शरीरमें आश्रय पाना चाहते हैं । मुझपर आपकी पुत्र-भावना होनी चाहिये ।'

राजन् ! इस प्रकार तीन वर्णवाले पुरुषके कहनेपर राजा पशुपालने उससे फिर कहा—'मैं पुत्र ऐसा चाहता हूँ, जो दूसरोंका भी प्रबन्धक हो ।' और उस तीन वर्णवाले पुरुषको अपना पुत्र मान लिया । पर उसमें उनकी आसक्ति न हुई । (अध्याय ५१)

अगस्त्य-गीतामें पशुपालका चरित्र

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार पशुपालसंज्ञक परम प्रभुने एक पुरुषका सृजन किया और उसे शासनकी आज्ञा दे दी। स्वतन्त्र होनेके कारण वह पुरुष राजा बन गया। उस पुत्रमें तीन रंग थे। उसने अहंकार नामक पुत्र उत्पन्न किया। उस पुत्रसे अवबोधस्वरूपिणी एक कन्या उत्पन्न हुई। उस कन्याने ज्ञान प्रदान करनेकी योग्यतावाले एक सुन्दर पुत्रको जन्म दिया। उस पुत्रके पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सभी रूपोंका समावेश था और वे विषयोंको भोगनेकी रुचि रखते थे, जो इन्द्रिय कहलाये। अब सबने रहनेका एक सुन्दर भवन बना लिया। उनका वह मन्दिर ऐसा था, जिसमें नौ दरवाजे हुए और चारों ओर जानेवाला एक स्तम्भ हुआ। जलसे सम्पन्न हजारों नदियाँ उसे सुशोभित कर रही थीं। राजा पशुपाल साकार रूप धारणकर अब पुरुषके रूपमें विराजने लगे। वेद और छन्द उन्हें स्मरण हो आये। फिर उन वेदोंमें प्रतिपादित नियम एवं यज्ञ—इन सबकी उन्होंने व्यवस्था की।

राजन् ! किसी समयकी बात है—राजा पशुपालके मनमें आनन्दके अभावका अनुभव हुआ। अब उन्होंने संसारकी सृष्टि करनेकी इच्छा की और योगमायाका आश्रय लेकर एक ऐसा पुत्र प्रकट किया, जिसके चार मुख, चार भुजाएँ, चार वेद और चार पथ हुए। महामते ! समुद्र, वन और तृणसे लेकर हाथीप्रभृति पशुतकमें उनका प्रवेश है।

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! प्रस्तुत कथा प्रायः मेरे, तुम्हारे तथा अखिल जन्तुओंके शरीरमें समान रूपसे चरितार्थ होती है। पशुपालसे[1] जिसकी उत्पत्ति हुई, उसके चार चरण और चार मुख थे। उन्हींको इस कथाका उपदेष्टा एवं प्रवर्तक कहा गया है। सत्यस्वरूप स्वर ही उसका पुत्र है। उसने जो कुछ कहा है, वह धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इन चारोंका साधन है। पुरुषोंका इन चारोंसे सम्बन्ध है। भक्तिपूर्वक उपासना करनेवालेको ये सुलभ हो जाते हैं। इनमें जो प्रथम धर्म है, उसका दूसरा रूप वृषभका है। उसके चार सींग हैं। उसीका अर्थ और काम भी अनुसरण करते हैं। चौथी मुक्ति है। जो भक्तिके साथ उसका आदर करता है, उसे वह परब्रह्म परमात्मा सुलभ हो जाता है। इस ब्रह्मका ही सनातन अंश मनुष्योंमें व्यक्त रूपसे विराजमान है। अतः मनुष्य प्रथम अवस्थामें ब्रह्मचारीके रूपमें रहे। दूसरी अवस्थामें धर्मका आश्रय लेकर सेवक-वर्गका भरण-पोषण करना चाहिये। तीसरी अवस्था वानप्रस्थ बतायी गयी है। इस अवस्थामें भी उसका अन्तःकरण धर्मयुक्त होना आवश्यक है।

इसके पश्चात् उस परब्रह्मने—'अहमस्मि' केवल मैं ही हूँ—यों कहा। फिर वह एक दूसरे ही चार, एक एवं दो प्रकारके रूपसे विराजने लगा। भिन्न प्रकारके उत्पन्न होनेके कारण उसकी भुजाएँ भी उसीका अनुसरण करने लगीं। सर्वप्रथम चार मुखवाले ब्रह्माने देखा कि कुछ प्रजाएँ नित्य और कुछ अनित्य हैं। राजन् ! तब ब्रह्माके मनमें विचार उठा कि मैं कैसे पिताजीसे मिलूँ। क्योंकि मेरे पिताजी एक महान् पुरुष हैं। उनमें जो गुण हैं, वे उनकी इन संतानोंमें किसीमें भी दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। स्वरकी दृष्टिके प्रकरणमें एक ऐसी श्रुति है कि जो पिताके पुत्रका पुत्र है, उसे अपने पितामहके नामका संरक्षक होना चाहिये। इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं है। कहीं भी ऐसा अवसर मिलना आवश्यक है, जहाँ पिताका भाव दीख पड़े।

---

१. यहाँ पशुपाल परब्रह्म परमात्मा तथा चार मुखवाले ब्रह्मा हैं।

अब मुझे क्या करना चाहिये—ब्रह्माजी यह सोच ही रहे थे कि परमपिता परमात्माके मनमें रोष आ गया। अब ब्रह्माने स्वर मथना आरम्भ किया, जिससे स्वरका सिर प्रकट हो गया। उसकी आकृति नारियलके फलके समान थी। ब्रह्माजीके प्रयाससे वह स्वर फिर विभक्त हो गया। अब वे प्राण, अपान, उदान, समान एवं व्यान रूपसे सामने आ गये। अब ब्रह्माने उन्हें ठहरनेका स्थान बता दिया।

इस प्रकार अथक परिश्रम करनेके पश्चात् जब समर्थ ब्रह्माने पुनः प्राणि-शरीरपर दृष्टि डाली तो उन्हें शरीरके भीतर अपने पिता परब्रह्म परमात्माकी झाँकी दृष्टिगोचर हुई। सम्पूर्ण प्राणियोंमें त्रसरेणुके समान सूक्ष्म रूप धारण कर वे सर्वत्र विराजमान थे। वे ही सर्वोपरि विराजमान एवं सर्वव्यापक हैं। सम्पूर्ण जगत्की सृष्टिसे सम्बन्ध रखनेवाला यह इतिहास अपना प्रथम स्थान रखता है। जो इसे तत्त्वसे जानता है, उसे उत्तम कर्म करनेकी योग्यता प्राप्त हो जाती है।

(अध्याय ५२-५३)

उत्तम पति प्राप्त करनेका साधनस्वरूप व्रत

राजा भद्राश्वने पूछा—विप्रवर ! विशुद्ध ज्ञानकी प्राप्तिके लिये पुरुषको किस देवताकी आराधना करनी चाहिये और उनके आराधनकी कौन-सी विधि है ? मुझे यह बतानेकी कृपा कीजिये।

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! भगवान् विष्णु ही सदा सभीके द्वारा—किमधिकं देवताओंद्वारा भी आराध्य हैं। अब इनके पूजनका प्रकार बताता हूँ, जिससे वर-प्राप्ति हो सकती है। देवताओं, मुनियों एवं मानवों—प्रायः सभीके लिये यह रहस्यकी बात है—भगवान् नारायण ही सर्वोपरि देवता हैं। उन्हें प्रणाम करनेपर प्राणी क्लेश नहीं पाता। राजन् ! सुना जाता है—महात्मा नारदजीने पूर्वकालमें भगवान् विष्णुके इस व्रतको अप्सराओंको बतलाया था।

अप्सराओंने पूछा—नारदजी ! आप ब्रह्माजीके पुत्र हैं। हमें उत्तम पति पानेकी अभिलाषा है। भगवान् नारायण हमारे प्राणपति हो सकें, इसके लिये आप हमलोगोंको कोई व्रत बतानेकी कृपा करें।

नारदजी कहते हैं—प्रायः सबके लिये कल्याण-दायक नियम यह है कि वन्दन करनेके पहले विनय-पूर्वक प्रणाम करे। पर तुम लोगोंने इस नियमका पालन नहीं किया; क्योंकि तुम्हें युवावस्थाका गर्व है। फिर भी तुम लोग देवाधिदेव भगवान् विष्णुके नामका कीर्तन करो। उनसे वर माँगो—'प्रभो ! आप हमारे स्वामी होनेकी कृपा करें।' इससे तुम्हारा सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होगा—इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये। एक व्रत भी बताता हूँ, जिसे करनेसे भगवान् श्रीहरि स्वयं वर देनेके लिये उद्यत हो जाते हैं। चैत्र और वैशाख मासके शुक्लपक्षमें जो द्वादशी तिथि है, उस दिन यह व्रत करना चाहिये। रातमें विधिवत् भगवान् श्रीहरिकी पूजा करें। बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि भगवान्की प्रतिमाके ऊपर लाल फूलोंसे एक मण्डल बनवाये। नृत्य, गीत एवं वाद्यके साथ रातमें जागरण करे।

'ॐ भवाय नमः', 'ॐ अनङ्गाय नमः', 'ॐ कामाय नमः', 'ॐ सुशास्त्राय नमः', 'ॐ मन्मथाय नमः' तथा **'ॐ हरये नमः'** कहकर क्रमशः भगवान्के सिर, कटि, भुजा, उदर एवं चरण आदिकी पूजा करे। फिर भगवान्को प्रणामकर रात्रि-जागरणकी विधि सम्पन्न करके प्रातःकाल

भगवान्‌की वह प्रतिमा वेद-वेदाङ्गके जानकार ब्राह्मणको दान कर दे ।

अप्सराओ ! इस प्रकार व्रत करनेपर इच्छानुकूल भगवान् विष्णु अवश्य पतिरूपमें तुम्हें प्राप्त होंगे । इसके पश्चात् ईखके पवित्र रस तथा मल्लिका आदिके फूलोंसे उन देवेश्वरका पूजा करना । सुन्दरियो ! तुमने मुझे प्रणाम किये बिना जो प्रश्न किया है, उससे अष्टावक्रद्वारा तुम्हारे उपहास-पर शाप भी मिलेगा । फलस्वरूप गोपलोग तुम्हें हर लेंगे ।

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार कहकर देवर्षि नारदजी उसी क्षण वहाँसे चले गये । उन अप्सराओंने व्रतकी विधि सम्पन्न की । फलस्वरूप स्वयं भगवान् श्रीहरि उनपर संतुष्ट होकर उनके पति हुए ।

(अध्याय ५४)

शुभ-व्रत

[कुब्जाम्रेश्वर-हृषीकेश-माहात्म्य]

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! अब मैं व्रतोंमें उत्तम शुभसंज्ञक व्रतका वर्णन करता हूँ, तुम उसे सुनो । महाभाग ! इसके प्रभावसे भगवान् विष्णुका दर्शन सुलभ हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं । मार्गशीर्ष मासके प्रथम दिन इस व्रतको आरम्भ करना चाहिये । इसमें दशमीको एक समय भोजन करनेका नियम है । उस दिन स्नान करके दोपहरमें भगवान् विष्णुकी पूजा करे । एकादशीके दिन उपवासकर ब्राह्मणोंको विधिके साथ यव देना चाहिये । उस समय दान, होम एवं अर्चन—इन सभी क्रियाओंमें सदा भगवान् श्रीहरिके नामोंका कीर्तन करना चाहिये । राजेन्द्र ! अगहन, पूस, माघ एवं फाल्गुन—इन चार महीनोंमें ऐसे ही नियमोंका पालन करना समुचित है । उपवास करके पूजा सम्पन्न करे । फिर विद्वान् पुरुष चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ एवं आषाढ़—इन चार महीनोंमें उसी तरह संयमपूर्वक व्रत करे । इस चौमासेमें ब्राह्मणोंके लिये प्रीतिपूर्वक पात्रसहित सत्तू दान करना चाहिये । श्रावण, भाद्रपद और आश्विन—इन तीन महीनोंमें अगहन मासमें तैयार होनेवाले धानको बाँटनेका विधान है । इन तीन मासोंकी अवधि कार्तिक आरम्भ होनेके पूर्वतक मानी जाती है । इन महीनोंमें भी पूर्व-जैसे ही उपवास करके पूजा करनेका नियम है । दशमीके दिन संयमशील एवं पवित्र रहे । एकादशीके दिन बुद्धिमान् व्यक्ति मासके नामका उच्चारण करके भक्तिके साथ भगवान् श्रीहरिकी पूजा करे । द्वादशीके दिन व्रतको समाप्त करे ।

राजन् ! एकादशीके दिन पर्वत एवं पातालके रूपसे अङ्कित पृथ्वीकी सुवर्णमयी प्रतिमाके पूजन एवं दानका विशेष महत्त्व है । भगवान् श्रीहरिके सामने उस प्रतिमाको स्थापितकर उसे दो सफेद वस्त्रोंसे ढक दे, पासमें बीज बिखेर दे और रातमें जागरण करे । फिर प्रातःकाल चौबीस ब्राह्मणोंको आमन्त्रित कर प्रत्येक ब्राह्मणको गाय, दो वस्त्र, सुवर्णमयी अँगूठी तथा कुण्डल आदि आभूषण दे । राजन् ! यदि व्रती पुरुष राजा है तो वह प्रत्येक ब्राह्मणको अपनी शक्तिके अनुसार भरण-पोषणकी व्यवस्था कर दे और दक्षिणामें सुवर्णसे बनी हुई पृथ्वीकी प्रतिमा, दो गौ और दो वस्त्र दे । अथवा अपनी सम्पत्तिके अनुसार चाँदीकी पृथ्वी बनवाये और भगवान् श्रीहरिको स्मरण करते हुए उसे ब्राह्मणोंको अर्पण कर दे । निमन्त्रित ब्राह्मणोंको भोजन,

छाता और खड़ाऊँ भी दे। तत्पश्चात् प्रार्थना करे— 'भगवान् कृष्ण, दामोदर, श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हो जायँ।' राजन्! इस व्रतके अनुष्ठानसे जो फल मिलता है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। फिर भी एक प्रसङ्ग सुनाता हूँ।

सत्ययुगमें एक ब्रह्मवादी राजा थे। उन्होंने ब्रह्माजीसे पुत्र-प्राप्तिका उपाय पूछा। तब ब्रह्माजीने उन्हें यह व्रत बता दिया और राजा इस व्रतको करनेमें संलग्न हो गये। राजन्! व्रत समाप्त हो जानेपर विश्वात्मा श्रीहरि राजाके सामने पधारे और कहा— 'राजन्! तुम मुझसे वर माँगो।'

राजाने कहा—'देवेश! मुझे ऐसा पुत्र देनेकी कृपा कीजिये, जो वैदिक मन्त्रोंका पूर्ण जानकार, दूसरोंका यज्ञ करानेवाला, स्वयं यज्ञ करनेमें तत्पर, कीर्तिसम्पन्न, दीर्घायु, असंख्य सद्गुणोंसे युक्त, ब्राह्मणोंमें निष्ठा रखनेवाला तथा शुद्ध अन्तःकरण-सम्पन्न हो तथा जहाँ पहुँच जानेपर फिर सोच करनेका अवसर सामने नहीं आता, वह मोक्ष प्रदान कर दे।' इसपर श्रीहरि 'एवमस्तु'—कहकर अन्तर्धान हो गये। अब राजाके घर समयानुसार पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम 'वत्सश्री' रखा गया। वह वेद-वेदाङ्गका पूर्ण जानकार था। भगवान् विष्णुके प्रसादस्वरूप उस प्रतापी पुत्रको पाकर राजा तपस्या करनेके विचारसे निकल पड़े। वे हिमालय पर्वतपर इन्द्रियोंको वशमें करके तथा निराहार रहकर भगवान् विष्णुकी आराधना करते हुए इस प्रकार स्तुति करने लगे।

राजाने कहा—क्षर एवं अक्षर—अखिल जगत् जिनका रूप है, जो क्षीरसागरमें शयन करते हैं, देहधारियोंके लिये परम पद, इन्द्रियोंके अविषय, विश्वकी रक्षा करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ तथा जलमय आकृति बनाये हुए हैं, उन भक्तोंकी याचना पूर्ण करनेवाले प्रभुकी मैं स्तुति करता हूँ। देवताओं एवं दानवोंके निरन्तर प्रार्थना करनेपर सृष्टि करनेके विचारसे आपने इस जगत्की रचना की है। भगवन्! आप सदा एक कूटस्थ रूपसे आसीन रहकर इच्छामात्रसे संसारकी सृष्टि करते हैं। प्रभो! आप कच्छप एवं नृसिंह आदि अनेक अवतार धारण कर चुके हैं। पर आपके अवतार लेनेकी यह बात भी मायिक ही है, तथ्य नहीं।* नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि, वरेश, शम्भु एवं विबुधारिनाशन आदि नामोंसे सम्बोधित होनेवाले भगवन्! आपको मेरा निरन्तर प्रणाम है। विष्णो! आप स्वयं आदि यज्ञपुरुष हैं। यज्ञकी सामग्री हवि आदि आपका ही रूप है। पशु, ऋत्विक् और घृत—ये सब आप ही हैं। कमलनेत्र! मैं आपकी शरणमें आया हूँ, इस संसारसागरसे मेरा उद्धार कीजिये।

स्तुतिके अन्तमें परम प्रभु प्रसन्न हुए। वे एक कुबड़े ब्राह्मणका वेष धारणकर वहाँ आये। उनके वहाँ पधारते ही आमका वृक्ष भी वैसा ही कुबड़ा बन गया। उन राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ कि ऐसे विशाल वृक्षका यह छोटा रूप कैसे हो गया—फिर सोचा कि परम प्रभुकी संनिधिका यह परिणाम है। फिर उन्होंने ब्राह्मण-वेषधारी प्रभुको प्रणाम किया। साथ ही कहा—'भगवन्! आप परम पुरुष परमात्मा हैं। अवश्य ही मुझपर कृपा करनेके लिये आपका यहाँ पधारना हुआ है। हरे! अब आप अपने वास्तविक स्वरूपका दर्शन करानेकी कृपा कीजिये।'

जब राजाने इस प्रकार भगवान् श्रीहरिसे प्रार्थना की, तो वे शङ्ख, चक्र एवं गदा हाथमें लिये हुए

* द्रष्टव्य—'अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्। प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥' (गीता ४।६)

सौम्य रूप धारण कर उनके सामने विराजमान हो गये और यह वचन कहा—'राजेन्द्र ! तुम्हारे मनमें जो भी इच्छा हो, वह मुझसे माँग लो ।' भगवान् श्रीहरिके यों कहनेपर राजाकी आँखें प्रसन्नतासे खिल उठीं । साथ ही कहा—'देवेश ! आप मुझे मोक्ष देनेकी कृपा करें ।' राजाकी ऐसी बात सुनकर पुनः श्रीभगवान् बोले—'राजन् ! मेरे यहाँ आनेपर इस विशाल आम्रके वृक्षमें जो कुब्जत्व आ गया है, इसके परिणामस्वरूप यह स्थान कुब्जाम्रक (ऋषिकेशका नामान्तर) तीर्थके नामसे प्रसिद्ध होगा । इस उत्तम तीर्थमें ब्राह्मण अथवा पशु-पक्षी आदि योनिवाले भी यदि अपने शरीरका त्याग करेंगे तो उनको ले जानेके लिये पाँच सौ दिव्य विमान उपस्थित होंगे और वहाँके उन योगियोंकी मुक्ति हो जायगी ।'

महाराज ! इस प्रकार कहकर भगवान् जनार्दनने शङ्खके अग्रभागसे राजाका स्पर्श किया । केवल स्पर्श होते ही उन नरेशको परम निर्वाण-पद प्राप्त हो गया । अतएव तुम भी उन परम प्रभुकी शरण ग्रहण करो, जिससे शोक करनेके योग्य पद तुम्हें पुनः प्राप्त न हो सके । जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर यह चरित्र पढ़ेगा, उसे भगवान् श्रीहरि धर्म एवं मोक्ष प्रदान करेंगे । राजन् ! जो इस परम पवित्र शुभव्रतको करेगा, उसे इस संसारमें सम्पूर्ण सुख-सम्पत्ति और भोग सुलभ होंगे एवं आयु समाप्त होनेपर वह भगवान्में लीन हो जायगा ।

(अध्याय ५५)



धन्यव्रत

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! इसके बाद अब उत्तम धन्यव्रत बताता हूँ, जिसके प्रभावसे निर्धन व्यक्ति भी यथाशीघ्र धन्यवादका पात्र हो सकता है । यह नक्तव्रत* है । अगहन मासके शुक्लपक्षकी प्रतिपदा तिथिको यह व्रत करना चाहिये । इस व्रतमें अग्नि-स्वरूप भगवान् विष्णुकी पूजाका विधान है । **ॐ वैश्वानराय नमः, ॐ अग्नये नमः, ॐ हविर्भुजाय नमः, ॐ द्रविणोदाय नमः, ॐ संवर्ताय नमः** तथा—**ॐ ज्वलनाय नमः**— इन मन्त्र-वाक्योंका उच्चारण करके अग्निमय भगवान् श्रीहरिके चरण, उदर, वक्षःस्थल, भुजाएँ, सिर तथा सर्वाङ्गकी क्रमशः पूजा करनी चाहिये । इस विधानसे देवाधिदेव भगवान् जनार्दनकी अर्चना करनेके पश्चात् उनके सामने एक हवनकुण्ड बनवानेकी विधि है । विद्वान् पुरुष इन्हीं उक्त मन्त्रोंद्वारा उस कुण्डमें हवन करे । इस व्रतमें यवान्न और घृतसे युक्त भोजन करनेकी बात कही गयी है । यह व्रत ऐसा ही कृष्णपक्षमें भी होता है । चार महीनेतक इसे करना चाहिये । चैत्रसे आषाढ़तक चार महीनोंमें घृतयुक्त खीर तथा श्रावणसे कार्तिकतक सत्तूका भोजन करनेका नियम है । इस प्रकार एक वर्षमें यह व्रत समाप्त होता है । व्रत पूरा हो जानेपर विद्वान् पुरुष अग्निदेवकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनवाये और दो लाल वस्त्रोंसे उसे आच्छादित कर लाल फूलसे पूजा करे और लाल चन्दन एवं कुङ्कुमका अनुलेपन करे । फिर ब्राह्मणकी पूजा करे । उसे दो वस्त्र अर्पण करे और वह प्रतिमा उस ब्राह्मणको दे दे । तदनन्तर यह मन्त्र पढ़कर प्रार्थना करे—'भगवन् ! इस 'धन्य' नामक व्रतको सम्पन्न करनेसे मैं धन्य हो गया, मेरा कर्म धन्य हो गया तथा मेरी चेष्टा धन्य हो गयी । अब मुझे सदा सुख-शान्ति सुलभ

* जिस व्रतमें दिनभर व्रत करके रातमें चार घड़ीके बाद भोजन किया जाता है, उसे 'नक्तव्रत' कहते हैं ।

हो जाय ।' इस प्रकार कहकर वह श्रेष्ठ प्रतिमा एवं शक्तिके अनुसार धनराशि देनेका विधान है। जिसके पास भोग्य वस्तुका अत्यन्त अभाव है, वह पुरुष भी यदि इस धन्यव्रतको करता है, तो वह तुरंत धन्य होनेका अधिकारी हो जाता है। केवल इस व्रतके करनेसे ही व्यक्ति इस जन्ममें सौभाग्य एवं प्रचुर धन-धान्यसे सम्पन्न हो जीवन्मुक्त हो जाता है। जो भी व्यक्ति इस प्रसङ्गको सुनेगा अथवा भक्तिके साथ पढ़ेगा, वे दोनों इस लोकमें उसी क्षण धन्य हो जायँगे। ऐसा सुना जाता है कि पूर्व कल्पमें महात्मा कुबेरका जन्म शूद्रयोनिमें हुआ था। उस समय उन्होंने इस व्रतको किया था और इसीके फलस्वरूप वे धनके स्वामी बन गये।

(अध्याय ५६)

कान्तिव्रत

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन्! अब कान्ति नामक व्रतको बताता हूँ। पहले चन्द्रमाने यह व्रत किया था, जिसके फलस्वरूप उन्हें पुनः कान्ति सुलभ हो गयी। प्राचीन कालकी बात है। दक्ष प्रजापतिके शापसे चन्द्रमाको राजयक्ष्मा नामक रोग हो गया। तब उन्होंने यह व्रत किया और वे फिर तत्क्षण कान्तिमान् बन गये। राजेन्द्र! यह नक्तव्रत है। इसे कार्तिक मासके शुक्लपक्षकी द्वितीया तिथिके दिन करना चाहिये। इसमें बलराम और श्रीकृष्णकी पूजा होती है। इस तिथिमें ये दोनों देवता दो कलावाले चन्द्रमामें विराजते हैं। अतः चन्द्रमाको विष्णुका उत्तम रूप माना जाता है। बुद्धिमान् पुरुष **'ॐ बलदेवाय नमः'** कहकर उनके चरणोंकी तथा **'ॐ केशवाय नमः'**से शिरकी अर्चना करे। सुव्रत! फिर आगे कहे जानेवाले मन्त्रको पढ़कर उन्हें अर्घ्य देना चाहिये। भगवन्! आप अमृतस्वरूप हैं, ब्रह्माने आपका सम्मान किया है, यज्ञलोकके आप अध्यक्ष हैं। परमात्मन्! इस समय आप चन्द्रमाके रूपमें पधारे हैं। अतः आपको नमस्कार है[1]। व्रती ब्राह्मण रातमें घृतसे युक्त यवान्न भोजन करे। (यह भी चौमासेका व्रत है) फाल्गुनसे लेकर चार महीनेतक इस व्रतको करनेवाला पुरुष पवित्रतापूर्वक रहकर खीर भोजन करे। कार्तिक मासमें यवान्नके आहारपर रहे और अगहनी चावलसे बने हुए हव्यद्वारा हवन करे। आषाढ़ आदि चार महीनोंमें तिलका हवन करना चाहिये। इसी प्रकार तिलका भोजन भी करना चाहिये। फिर वर्ष पूरा हो जानेपर चन्द्रमाकी एक सोनेकी प्रतिमा बनवाकर उसे दो सफेद वस्त्रोंसे आच्छादित करे। उसपर उजले फूल चढ़ाकर श्वेत चन्दनसे अनुलेपनकर तथा भलीभाँतिसे पूजा करके ब्राह्मणको दे दे, अथवा वर्षभर व्रत कर चन्द्रमाकी चाँदीकी ही मूर्ति बनवाये और दो श्वेत वस्त्रोंसे आच्छादित कर उसकी श्वेत पुष्पों एवं श्वेत चन्दनसे पूजा करे। ऐसे ही ब्राह्मणकी भी पूजाकर उसे वह प्रतिमा दान कर दे। ब्राह्मणको प्रतिमा अर्पण करते समय व्रती मन-ही-मन मन्त्र पढ़े—'नारायण! आप चन्द्रमाके रूपमें पधारे हैं। आपको मेरा नमस्कार। भगवन्! आपकी कृपासे मैं भी इस लोकमें कान्तिमान्, सर्वज्ञ एवं प्रियदर्शन बन जाऊँ[2]। राजन्! उक्त प्रतिमाको दानकर मनुष्य तत्क्षण कान्ति प्राप्त कर लेता है। बहुत पहले स्वयं चन्द्रमाने यह व्रत किया था। व्रत

१. नमोऽस्त्वमृतरूपाय स वै विधिवराय च। यज्ञलोकाधिपतये सोमाय परमात्मने ॥ (५७ । ६)

२. कान्तिमानपि लोकेऽस्मिन् सर्वज्ञः प्रियदर्शनः। त्वत्प्रसादात्... ॥ (५७ । १२)

पूर्ण हो जानेपर स्वयं भगवान् श्रीहरि उनपर संतुष्ट हो गये और उनका यक्ष्मा रोग दूरकर उन्हें अमृता[1] नामकी कला प्रदान की । महाभाग चन्द्रमाने उस कलाको द्वितीयाके बाद सदा अपनेमें स्थान दिया । उन्हें यह कला तपके प्रभावसे ही उपलब्ध हुई है । इतना ही नहीं, वे सोम और द्विजराज भी कहलाने लगे । शुक्लपक्षकी द्वितीया तिथिके दिन सोमरस पीनेवाले दोनों अश्विनीकुमारोंका कीर्तन करना चाहिये । ये दोनों शुक्लपक्षकी द्वितीयाके चन्द्रमामें शेष और विष्णु नामसे विख्यात होकर सुशोभित होते हैं—इसमें कोई संशय नहीं । राजेन्द्र ! भगवान् विष्णु परम पुरुष परमात्मा हैं । उनसे रिक्त कोई देवता नहीं है । वे ही अनेक नाम धारण कर सर्वत्र (सभी देवताओंके रूपमें) विराजित हैं । (अध्याय ५७)



सौभाग्य-व्रत

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! अब उस सौभाग्य-व्रतको सुनो, जिसके आचरणसे स्त्री एवं पुरुषोंको शीघ्र सौभाग्यकी प्राप्ति होती है—भाग्यका उदय हो जाता है । फाल्गुन मासके शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिको नक्तव्रतके रूपमें कर्ताको पवित्र एवं सत्यवादी होकर उपवास करना चाहिये । इस व्रतमें लक्ष्मीसहित भगवान् श्रीहरिकी अथवा उमासहित महाभाग शंकरकी पूजाका विधान है । जो लक्ष्मी हैं, वही गिरिजा हैं और जो श्रीहरि हैं, वे ही तीन नेत्रवाले हर भी हैं—सम्पूर्ण वेदशास्त्रों एवं पुराणोंमें यही बात सुस्पष्ट निर्दिष्ट है । किंतु जो शास्त्र इसके विपरीत यह कहता है कि 'विष्णुसे रुद्र भिन्न हैं, वह किसी अच्छे कविकी रचना है, पर उसे शास्त्र कदापि नहीं कहा जा सकता । अतः विष्णु रुद्रके ही स्वरूप हैं और लक्ष्मी गौरीकी ही अन्यतम प्रतिकृति हैं—यही कहना समुचित है । जो इन दोनोंमें भेद बतलाता है, वह निकृष्ट है ।

राजेन्द्र ! फिर व्रती पुरुष यत्नपूर्वक लक्ष्मीसहित श्रीहरिकी भलीभाँति पूजा करे । उन परम प्रभुके पूजनके मन्त्र यों हैं—**ॐ गम्भीराय नमः, ॐ सुभगाय नमः, ॐ देवदेवाय नमः, ॐ त्रिनेत्राय नमः, ॐ वाचस्पतये नमः, ॐ रुद्राय नमः**—इन मन्त्रोंके द्वारा क्रमशः उनके दोनों चरण, कटिभाग, उदर, मुख, सिर एवं सभी अङ्गोंकी पूजा करनी चाहिये । इस विधिके अनुसार पूजा कर मेधावी मनुष्य लक्ष्मीसहित विष्णुकी और गौरीसहित शंकरकी पुष्प-चन्दन आदि उपचारोंद्वारा पूजा करे । तदनन्तर मूर्तिके सामने मधु एवं घृतसे हवन करना चाहिये । महाराज ! यदि सर्वोत्तम सौभाग्य पानेकी कामना हो तो तिल और घृतसे हवन कराये । इस दिन बिना नमक तथा घृतके शुद्ध गेहूँसे तैयार किया हुआ भोजन पृथ्वीपर ही बैठकर करना चाहिये । कृष्ण-पक्षके लिये भी यही विधि बतायी जाती है । आषाढ़से लेकर आश्विनतकके चार महीनोंमें यह व्रत प्रतिपदा तिथिके दिन होता है और द्वितीयाको

१. अमृता मानदा पूषा तुष्टिः पुष्टीरतिर्धृतिः । शशिनी चन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्स्ना श्रीः प्रीतिरङ्गदा ॥
पूर्णा पूर्णामृता कामदायिन्यः शशिनः कलाः ॥ (शारदातिलक २ । १२-१३)
इस तन्त्रवचनानुसार 'अमृता,' शुक्लपक्षकी द्वितीयाकी चन्द्रकला है ।

पारण करनेकी विधि है। इन महीनोंमें यह व्रत यात्नसे करना चाहिये। राजन्! इसके पश्चात् कार्तिकसे पूसतक—तीन मासोंमें व्रती पुरुष पवित्रता-पूर्वक संयमसे रहकर श्यामाक (साँवा)का भोजनमें उपयोग करे। नरेश! फिर माघ मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिके दिन बुद्धिमान् पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार पार्वती-शंकर तथा लक्ष्मी-नारायणकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनवाकर किसी सत्पात्र एवं विद्वान् ब्राह्मणको अर्पण कर दे। जिसके पास अन्नका अभाव हो, वेदका जो पारगामी विद्वान् हो, जो सदा दूसरोंका उपकार करता हो, जिसके आचरण पवित्र हों तथा विशेष रूपसे विष्णुमें भक्ति रखता हो, ऐसे ब्राह्मणको वह प्रतिमा देनी चाहिये। साथ ही दानमें छः पात्र भी देनेकी विधि है। एकसे लेकर छः तक वे पात्र क्रमशः मधु, घृत, तिलका तैल, गुड़, लवण एवं गायके दूधसे पूर्ण हों। इन पात्रोंके दान करनेके प्रभावसे व्रत करनेवाला व्यक्ति स्त्री अथवा पुरुष—कोई भी हो, वह अन्य सात जन्मोंमें सुन्दर सद्भाग्यशाली और परम दर्शनीय हो जाता है। (अध्याय ५८)

अविघ्नव्रत

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन्! सुनो। अब मैं 'विघ्नहर'-नामक व्रतको बतलाता हूँ। इसके विधि-पूर्वक आचरण करनेसे पुरुष विघ्नोंद्वारा पराभूत—बाधित या तिरस्कृत नहीं होता। इसके प्रारम्भिक ग्रहणकी विधि इस प्रकार है। फाल्गुन मासकी चतुर्थीको दिनमें उपवास रहकर चार घड़ी रात बीतनेपर भोजन करे। प्रातःपारणामें तिल लेने चाहिये। उस दिन तिलसे ही हवन करे तथा तिल ही ब्राह्मणको दान भी दे। इसी प्रकार चार मासतक इसका अनुष्ठान कर पाँचवें महीनेमें (आषाढ़की) चतुर्थीको सुवर्णमयी गणेशकी प्रतिमाकी भलीभाँति पूजा कर खीर एवं तिलसे भरे हुए पाँच पात्रोंके साथ उसे ब्राह्मणको दे देनी चाहिये। इस प्रकार इस व्रतका अनुष्ठान कर मनुष्य सम्पूर्ण विघ्नोंसे छुटकारा पा जाता है। अपने अश्वमेध यज्ञमें विघ्न पड़नेपर राजा सगरने इसी व्रतका अनुष्ठान कर, अश्वको प्राप्तकर यज्ञ सम्पन्न किया था। त्रिपुरासुरसे युद्धके समय भगवान् रुद्रने भी इसी व्रतके प्रभावसे त्रिपुरासुरका वध किया था। मैंने भी समुद्रपानके समय यही व्रत किया था। परंतप! पूर्वसमयमें तप एवं ज्ञानकी इच्छावाले अन्य अनेक राजाओंने विघ्न दूर करनेके लिये इस व्रतका आचरण किया था। इस व्रतके दिन पुण्यात्मा पुरुष विघ्न समाप्त होनेके निमित्त **ॐ शूराय नमः, ॐ धीराय नमः, ॐ गजाननाय नमः, ॐ लम्बोदराय नमः, ॐ एकदंष्ट्राय नमः**—इन मन्त्रोंका उच्चारण कर गणेशजीकी सम्यक् प्रकारसे पूजा करे और इन्हीं मन्त्रोंद्वारा हवन भी करे। केवल इसी व्रतके करनेसे मानव सभी विघ्नोंसे मुक्त हो जाता है। गणेशजीकी प्रतिमा दान करनेसे तो उसके जीवनकी सारी अभिलाषाएँ ही पूरी हो जाती हैं। (अध्याय ५९)

शान्ति-व्रत

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! अब तुम्हें 'शान्ति-व्रत'का उपदेश करता हूँ । इसके आचरणसे गृहस्थोंके घरमें सदा शान्ति-सन्मति बनी रहती है । सुव्रत ! कार्तिक मासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथिके दिनसे आरम्भ कर एक वर्षपर्यन्त व्रतीको अत्यन्त उष्ण भोजनका त्याग करना चाहिये तथा प्रदोष-कालमें शेषशायी श्रीहरिकी सम्यक् प्रकारसे पूजा करनी चाहिये । **'ॐ अनन्ताय नमः', 'ॐ वासुकये नमः', 'ॐ तक्षकाय नमः', 'ॐ कर्कोटकाय नमः', 'ॐ पद्माय नमः', 'ॐ महापद्माय नमः', 'ॐ शङ्खपालाय नमः', 'ॐ कुटिलाय नमः'**—इन मन्त्रोंके द्वारा भगवान् विष्णुके शय्यास्वरूप शेषनागके क्रमशः दोनों चरण, कटिभाग, उदर, छाती, कण्ठ, दोनों भुजाएँ, मुख एवं सिरकी विधिपूर्वक पृथक्-पृथक् पूजा करनी चाहिये । फिर भगवान् विष्णुको लक्ष्यकर सभी अङ्गोंको दूधसे भी स्नान कराये । तत्पश्चात् श्रद्धालु साधकको भगवान्के सामने तिलमिश्रित दूधसे हवन करना चाहिये ।

इस प्रकार एक वर्ष पूराकर ब्राह्मणोंको भोजन कराये और सुवर्णमयी शेषनागकी प्रतिमा बनाकर ब्राह्मणको दान दे । राजन् ! जो पुरुष इस प्रकार यह व्रत भक्तिपूर्वक करता है, उसे निश्चय ही शान्ति सुलभ हो जाती है, साथ ही उसे सर्पोंसे भी भय नहीं होता ।

(अध्याय ६०)

काम-व्रत

अगस्त्यजी कहते हैं—राजेन्द्र ! अब मैं काम-व्रत कहता हूँ, सुनो । इस व्रतके प्रभावसे मनमें उठी कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं । यह व्रत पौष मासके शुक्लपक्षमें होता है तथा यह व्रत एक वर्षपर्यन्त चलता है । इसमें पञ्चमी तिथिके दिन भोजन कर षष्ठीके दिन फलाहारपर रह जाय । अथवा यह भी नियम है कि बुद्धिमान् पुरुष षष्ठीके दिन दोपहरमें फलाहार करे और रातमें मौन होकर ब्राह्मणोंके साथ शुद्ध भात खाय, या केवल फलाहारपर ही व्रत करे । षष्ठीको पूरा दिनभर उपवास रहकर सप्तमी तिथिमें पारणा करनी चाहिये । इसमें भगवान् कार्तिकेयकी पूजा-कर हवन करना चाहिये । इस प्रकार एक वर्षपर्यन्त व्रत करे । षडानन, कार्तिकेय, सेनानी, कृत्तिकासुत, कुमार और स्कन्द—इन नामोंसे विष्णु ही प्रतिष्ठित हैं । अतः उनके इन नामोंसे ही उनकी पूजा करनी चाहिये । व्रत समाप्त होनेपर ब्राह्मणको भोजन कराये और षण्मुखकी सुवर्णमयी प्रतिमा ब्राह्मणको दे । वस्त्रसहित प्रतिमा ब्राह्मणको देते समय व्रती इस प्रकार प्रार्थना करे—'भगवान् कार्तिकेय ! आपकी कृपासे मेरी सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो जायँ ।' फिर ब्राह्मणको लक्ष्य कर कहे—'ब्राह्मण देवता ! मैं भक्तिपूर्वक यह प्रतिमा देता हूँ, आप कृपापूर्वक इसे स्वीकार करें ।' इस प्रकारके दानमात्रसे व्रतीके इस जन्मकी समस्त कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं । संतानहीनको पुत्र, धनकी इच्छावालेको धन तथा राज्य छिन जानेवालेको राज्य सुलभ हो सकता है—इसमें कुछ भी अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये । महाराज ! इस व्रतका पूर्व समयमें ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए राजा नलने अनुष्ठान किया था । उस समय वे ऋतुपर्णके राज्यमें निवास करते थे । नृपवर ! प्राचीन कालके बहुतसे अन्य प्रधान नरेशोंने भी हाथसे राज्य निकल जानेपर कामनासिद्धिके लिये इस व्रतका आचरण किया था ।

(अध्याय ६१)

आरोग्य-व्रत

अगस्त्यजी कहते हैं—महाराज ! अब आरोग्य-नामक एक दूसरा परमपवित्र व्रत बताता हूँ, जिसके प्रभावसे सम्पूर्ण पाप भस्म हो जाते हैं। इस व्रतमें आदित्य, भास्कर, रवि, भानु, सूर्य, दिवाकर एवं प्रभाकर—इन सात नामोंसे भगवान् सूर्यकी विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। इस व्रतमें षष्ठी तिथिके दिन भोजन कर सप्तमीको प्रातःकाल भगवान् भास्करकी पूजा करते हुए उपवास करना चाहिये। फिर अष्टमी तिथिको भोजन करे, यही इस व्रतकी विधि है। इस प्रकार पूरे एक वर्षतक जो भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, उसे इस जन्ममें आरोग्य, धन तथा धान्य सुलभ हो जाते हैं और पर-लोकमें वह उस पवित्र स्थानपर पहुँचता है, जहाँ जाकर पुनः संसारमें जन्म नहीं लेना पड़ता।

प्राचीन समयकी बात है, अनरण्य नामके महान् प्रतापी राजा थे, जिनके वशमें सम्पूर्ण पृथ्वी थी। राजन् ! उन महाभाग नरेशने यह व्रत किया तथा उस दिन भगवान् भास्करकी पूजा भी की, जिसके फलस्वरूप भगवान् सूर्य उनपर प्रसन्न हो गये और राजा अनरण्यको उन्होंने उत्तम आरोग्य प्रदान कर दिया।

राजा भद्राश्वने पूछा—राजन् ! आपने राजाके आरोग्य होनेकी बात कही तो क्या इसके पूर्व वे रोगी थे ? भला, वे सार्वभौम राजा रोगग्रस्त कैसे हो गये ?

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! राजा अनरण्य चक्रवर्ती सम्राट् थे; साथ ही वे अत्यन्त रूपवान् एवं यशस्वी भी थे। एक समयकी बात है—वे परम पराक्रमी राजा दिव्य मानसरोवरपर गये, जहाँ देवताओं-का निवास है। वहाँ उन्हें सरोवरके बीचमें एक बड़ा-सा श्वेत कमल दीखा। उस कमलपर अँगूठेकी आकृतिके बराबर एक दिव्य पुरुष बैठे थे, जिनका शरीर बड़ा तेजःपूर्ण था। उनकी दो भुजाएँ थीं और वे लाल वस्त्रोंसे आच्छादित थे। उस कमलको देखकर राजा अनरण्यने अपने सारथिसे कहा—'तुम किसी प्रकार इस कमलको ले आनेका प्रयत्न करो। कारण, जब मैं इसे अपने शिरपर धारण करूँगा, तब संसारमें मेरी बड़ी प्रतिष्ठा होगी, अतः देर मत करो।

राजन् ! अनरण्यके ऐसा कहनेपर सारथि उस सरोवरमें घुसा। फिर उस कमलको लेनेके लिये आगे बढ़ा और उसे स्पर्श करना चाहा, इतनेमें वहाँ बड़े उच्च स्वरसे हुंकारकी ध्वनि हुई। उस शब्दके प्रभावसे सारथिके हृदयमें आतङ्क छा गया। वह जमीनपर गिरा और उसके प्राण निकल गये तथा राजा भी कुष्ठग्रस्त, बलहीन एवं विवर्ण हो गये। अपनी ऐसी स्थिति देखकर राजा—'यह क्या हुआ ?' इस चिन्तामें पड़ गये और वहीं रुके रहे। इतनेमें ही महान् तपस्वी ब्रह्मपुत्र बुद्धिमान् वसिष्ठजी वहाँ आ गये और उन्होंने राजा अनरण्यसे पूछा—'राजन् ! तुम यहाँ कैसे पहुँचे तथा तुम्हारे शरीरकी ऐसी स्थिति कैसे हुई ? अब मैं तुम्हारे लिये क्या करूँ ? यह बताओ।'

राजन् ! वसिष्ठजीके इस प्रकार पूछनेपर अनरण्यने उनसे कमलसम्बन्धी सम्पूर्ण वृत्तान्तका वर्णन किया। राजाकी बात सुनकर मुनिने कहा—'राजन् ! तुम साधु थे, पर तुम्हारे मनमें असाधुता आ गयी। इसीलिये तुमपर कुष्ठरोगका आक्रमण हो गया है।' मुनिके ऐसा कहनेपर राजाने हाथ जोड़कर काँपते हुए पूछा—'विप्रवर ! मैं साधु या असाधु कैसे हूँ और मेरे शरीरमें यह कोढ़ कैसे हो गया ? यह सब आप बतानेकी कृपा करें।'



भगवान् मत्स्य

वसिष्ठजी बोले—राजन् ! इस 'ब्रह्मोद्भव' कमलकी तीनों लोकोंमें प्रसिद्धि है । इसके दर्शनकी बड़ी भारी महिमा है । इससे सम्पूर्ण देवता प्रसन्न हो सकते हैं । राजन् ! छः महीनेके भीतर कभी भी जनता इस सरोवरमें यह कमल देख लिया करती है । जो मनुष्य केवल इसका दर्शन करके जलमें पैर रख देता है, उसके सम्पूर्ण पाप भाग जाते हैं तथा वह पुरुष निर्वाण-पदका अधिकारी हो जाता है; क्योंकि जलमें दीखनेवाली यह ब्रह्माजीकी प्रारम्भिक मूर्ति है । इस मूर्तिका दर्शन कर जो जलमें प्रवेश करता है, उसकी संसारसे मुक्ति हो जाती है । राजन् ! तुम्हारा सारथि इस विग्रहको देखकर जलमें चला गया और जानेपर उसने इसे लेनेकी भी चेष्टा की । नरेश ! इसका कारण यह था कि तुम्हारे मनमें लोभ उत्पन्न हो गया था एवं तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो चुकी थी । इसीका परिणाम है कि तुम कोढ़ी बन गये हो । तुमने इनका दर्शन कर लिया है, जिसके कारण साधुकी श्रेणीमें आ गये । नरेश ! साथ ही इस कमलको पानेके लिये तुम्हारे मनमें जो मोह उत्पन्न हो गया, इस कारण मैंने तुम्हें असाधु कहा ।

देवताओंका भी कथन है कि 'मानसरोवरमें ब्रह्मपद्म नामक कमलपर (ब्रह्मरूपमें) भगवान् श्रीहरि आकर विराजते हैं । उनका दर्शनकर हम उस ब्रह्मपदको पा जायँगे, जहाँसे पुनः संसारमें आना नहीं पड़ता है । राजन् ! यही कारण है कि तुम्हारे अङ्गमें कुष्ठ हो गया । इस कमलपर स्वयं भगवान् श्रीहरि सूर्यका रूप धारण करके विराजते हैं । वस्तुतः विचार किया जाय तो यह सनातन परब्रह्म परमात्माका ही रूप है । 'मैं इसको अपने सिरपर धारण करूँ, जिससे मेरी प्रसिद्धि हो जाय' तुमने ऐसी भावना लेकर इसे प्राप्त करनेके लिये सारथिको भेजा । यह बेचारा सारथि तो उसी क्षण अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठा और तुम्हारी देह कुष्ठरोगसे व्याप्त हो गयी । अतएव महाराज ! तुम भी यह आरोग्य नामक व्रत करो । इस व्रतके करनेसे तुम कुष्ठरोगसे छुटकारा पा जाओगे ।

ऐसा कहकर वसिष्ठजी राजाके पाससे चले गये । राजाने भी उनकी बात सुनकर प्रतिदिन उस सरोवरपर जाने और वहाँ ब्रह्माजीके दर्शन करनेका नियम बना लिया और फिर वे शीघ्र ही कुष्ठमुक्त होकर स्वस्थ एवं कृतार्थ हो गये । (अध्याय ६२)

पुत्रप्राप्ति-व्रत

अगस्त्यजी कहते हैं—महाराज ! अब संक्षेपमें एक कल्याणप्रद व्रत बताता हूँ, उसे सुनो ! इसका नाम पुत्रप्राप्ति-व्रत है । राजन् ! भाद्रपद मासके कृष्णपक्षकी जो अष्टमी तिथि होती है, उस दिन उपवासपूर्वक यह व्रत करना चाहिये । सप्तमी तिथिके दिन संकल्प करके अष्टमी तिथिमें भगवान् श्रीहरिकी पूजाका विधान है । मनमें ऐसी भावना करे कि भगवान् नारायण कृष्णरूप धारण करके माताकी गोदमें बैठे हैं । माताओंका समुदाय उनकी सब ओर शोभा दे रहा है । अष्टमीकी प्रातःकालीन स्वच्छ बेलामें पहले कहे हुए विधानके अनुसार बड़े यत्नसे भगवान्का अर्चन करना चाहिये । इस विधिके साथ भगवान् गोविन्दका पूजन करनेके पश्चात् यव, तिल एवं घृतमिश्रित हव्य पदार्थसे हवन करना चाहिये । फिर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको दही भोजन कराये और अपनी शक्तिके अनुसार उन्हें दक्षिणा दे । तदनन्तर स्वयं भोजन करे । पहला ग्रास उत्तम तिलका होना चाहिये । फिर अपनी इच्छाके अनुसार दूसरा अन्न खाया जा सकता है । भोज्य-पदार्थ स्निग्ध

एवं सरस वस्तुओंसे युक्त हो। साधक प्रतिमास इसी विधिके अनुसार व्रत करे। इसे कृष्णाष्टमीव्रत भी कहते हैं। इसके प्रभावसे जिसे पुत्र न हो, वह पुत्रवान् बन जाता है।

सुना जाता है—प्राचीन समयमें शूरसेन नामके एक प्रतापी राजा थे। उनके कोई पुत्र नहीं था। अतः उन्होंने हिमालय पर्वतपर जाकर तपस्या आरम्भ कर दी। परिणामस्वरूप उनके घर एक पुत्रकी उत्पत्ति हुई जिसका नाम वसुदेव हुआ। महाभाग वसुदेवने अनेक व्रत और यज्ञ किये। ऐसे पुत्रके प्राप्त हो जानेसे राजर्षि शूरसेनको उत्तम निर्वाणपद सुलभ हो गया।

राजन्! इस प्रकार मैंने तुम्हारे सामने कृष्णाष्टमी-व्रतका संक्षिप्त वर्णन किया। यह व्रत एक वर्षतक करना चाहिये। वर्ष पूरा हो जानेपर ब्राह्मणको दे वस्त्र देनेका विधान है। राजन्! इसका ना पुत्रव्रत है। इसे कर लेनेपर मनुष्य सम्पूर्ण पापों निश्चय ही छूट जाता है। (अध्याय ६३

शौर्य एवं सार्वभौम-व्रत

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन्! अब मैं एक दूसरे शौर्यव्रतका वर्णन करता हूँ; जिसे करनेसे अत्यन्त भीरु व्यक्तिमें भी तत्क्षण महान् शौर्यका प्राकट्य होता है। इस व्रतको आश्विन मासके शुक्लपक्षमें नवमी तिथिके दिन करना चाहिये। सप्तमी तिथिके दिन संकल्प करके अष्टमी तिथिके दिन भातका परित्याग करना चाहिये और नवमी तिथिके दिन पक्वान्न खानेका विधान है। राजन्! सर्वप्रथम भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। इस व्रतमें महातेजस्वी, महाभागा, भगवती महामाया दुर्गाकी भक्तिके साथ आराधना करनी चाहिये। इस प्रकार जबतक एक वर्ष पूरा न हो जाय, तबतक विधिपूर्वक यह व्रत करना उचित है। व्रत समाप्त हो जानेपर बुद्धिमान् पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार कुमारी कन्याओंको भोजन कराये। यदि अपने पास शक्ति हो तो सुवर्ण और वस्त्र आदिसे उन कन्याओंको अलंकृत कर भोजन कराना चाहिये। इसके पश्चात् उन भगवती दुर्गासे क्षमा माँगे और प्रार्थना करे—'देवि! आप मुझपर प्रसन्न हो जायँ।'

इस प्रकार व्रत करनेपर राजा, जिसका राज्य हाथसे निकल गया है, अपना राज्य पुनः प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार मूर्खको विद्या और भीरु व्यक्तिको शौर्यकी प्राप्ति होती है।

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन्! अब मैं सं सार्वभौम नामक व्रत बतलाता हूँ, जिसका सम्यक् प्र आचरण करनेसे व्यक्ति सार्वभौम राजा हो है। इसके लिये कार्तिक मासके शुक्लपक्षकी दश तिथिको उपवास रहकर रातमें भोजन करना चाहिये। तदनन्तर दसों दिशाओंमें शुद्ध बलि दे, फिर चित्र-विचित्र फूलोंद्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी भक्तिके साथ पूजा कर दिशाओंकी ओर लक्ष्य करते हुए इस उत्तम व्रतका आचरण करनेवाला पुरुष इस प्रकार प्रार्थना करे, 'देवियो! आप मेरे जन्म-जन्ममें सर्वार्थ सिद्धि प्रदान करें।' ऐसा कहकर शुद्ध चित्तसे उन देवियोंके लिये बलि दे।

तदनन्तर रातमें पहले भलीभाँति सिद्ध किया हुआ दधिमिश्रित अन्न भोजन करे। फिर बादमें इच्छानुसार गेहूँ या चावलसे बना हुआ भोजन करना चाहिये। राजन्! इस प्रकार जो पुरुष प्रतिवर्ष व्रत करता है, वह दिग्विजयी होता है। फिर जो मनुष्य मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षमें एकादशी तिथिके दिन निराहार रहकर विधिके अनुसार व्रत करता है, उसे वह धन प्राप्त होता है, जिसके लिये कुबेर भी लालायित रहते हैं।

एकादशी तिथिके दिन निराहार रहकर द्वादशी तिथिके दिन भोजन करना—यह महान् वैष्णव-व्रत है। चाहे शुक्लपक्ष हो या कृष्णपक्ष—दोनोंका फल बराबर है। राजन्! इस प्रकार किया हुआ व्रत कठिन-से-कठिन पापोंको भी नष्ट कर देता है। त्रयोदशी तिथिको व्रत रहकर रातमें चार घड़ीके बाद भोजन करनेसे 'धर्मव्रत' होता है। चतुर पुरुषको फाल्गुन शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिसे प्रारम्भ कर चैत्र कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथितक रौद्रव्रत करना चाहिये। राजन्! माघ माससे आरम्भ कर वर्ष समाप्त होनेतक जो नक्त-व्रत किया जाता है, उसका नाम पितृव्रत है। इस व्रतमें शुद्ध पञ्चमी तिथिके दिन तथा अमावास्याको रात्रिमें भोजन करनेका विधान है। नरेन्द्र! इस तिथि-व्रतको जो पुरुष पंद्रह वर्षोंतक करता है, उसका फल उस फलका बराबरी कर सकता है, जो एक हजार अश्वमेध-यज्ञ और सौ राजसूय-यज्ञ करनेसे मिलता है। राजेन्द्र! मानो उस पुरुषने एक कल्पमें बताये हुए सभी व्रतोंको कर लिया। इनमेंसे एक-एक व्रतमें वह शक्ति है कि व्रतीके पापोंको सदा नष्ट करता रहता है। फिर यदि कोई श्रेष्ठ पुरुष इन सभी व्रतोंका आचरण कर सके तो राजन्! वह पवित्रात्मा पुरुष सम्पूर्ण शुद्ध लोकोंको प्राप्त कर ले, इसमें क्या आश्चर्य है?

(अध्याय ६४-६५)



राजा भद्राश्वका प्रश्न और नारदजीके द्वारा विष्णुके आश्चर्यमय स्वरूपका वर्णन

राजा भद्राश्वने कहा—मुने! यदि आपको भी कोई विशेष आश्चर्यजनक बात दीखी या विदित हुई हो तो वह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये। इसके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्सुकता है।

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन्! भगवान् जनार्दन ही आश्चर्यरूप (समस्त आश्चर्योंके भण्डार या मूर्तिमान्) हैं। मैंने इनके अनेक आश्चर्योंको देखा है। राजन्! पूर्व समयकी बात है। एक बार नारदजी श्वेतद्वीपमें गये। वहाँ उन्हें ऐसे परम तेजस्वी पुरुषोंके दर्शन हुए, जिनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और कमल शोभा पा रहे थे। तो नारदजीके मुँहसे सहसा 'यही सनातन विष्णु हैं, यही विष्णु हैं, ये विष्णु हैं' ये शब्द निकले। फिर नारदजीके मनमें यह विचार आया कि मैं प्रभुकी आराधना किस प्रकार करूँ? ऐसा विचार कर नारदजीने परम प्रभु भगवान् श्रीहरिका ध्यान किया। सहस्र दिव्य वर्षोंसे भी अधिक समयतक उनके ध्यान करनेपर भगवान् प्रसन्न होकर प्रकट हुए और बोले—'महामुने! तुम वर माँगो; कहो, तुम्हें मैं क्या दूँ?'

नारदजी बोले—जगत्प्रभो! मैंने एक हजार दिव्य वर्षोंतक आपका ध्यान किया है। अच्युत! इतनेपर यदि आप मुझपर प्रसन्न हो गये हों तो मुझे कृपया अपनी प्राप्तिका उपाय बतलाइये।

देवाधिदेव विष्णुने कहा—द्विजवर! जो मनुष्य 'पुरुषसूक्त' तथा वैदिक संहिताका पाठ करते हुए मेरी उपासना करते हैं, वे मुझे शीघ्र ही प्राप्त करते हैं। पञ्चरात्र-

द्वारा निर्दिष्ट मार्गसे जो मानव मेरा यजन करते हैं, उन्हें भी मैं प्राप्त हो जाता हूँ। द्विजके लिये तो पञ्चरात्रका नियम बताया गया है, दूसरोंको मेरे नाम-लीला, धाम, क्षेत्र, तीर्थ, मन्दिरोंकी यात्रा एवं दर्शन करना चाहिये।

नारद ! सत्त्वगुणवाले पुरुष मुझे पानेके अधिकारी हैं। कलियुगमें रजोगुण-तमोगुणकी ही विशेषता रहेगी। नारद ! यह दुर्लभ पञ्चरात्र-शास्त्रका मेरी कृपासे ही ज्ञान होगा। द्विजवर! वेदका अध्ययन, पञ्चरात्र-पाठ तथा यज्ञ एवं भक्ति—ये मुझे प्राप्त करानेके साधन हैं। मैं इनके द्वारा सुलभ होता हूँ, अन्यथा करोड़ वर्षोंतक यत्न करनेपर भी मनुष्य मुझे नहीं प्राप्त कर सकता।

इस प्रकार परम प्रभु भगवान् नारायणने नारदजीसे कहा और वे उसी क्षण अन्तर्धान हो गये।

राजा भद्राश्वने पूछा—भगवन्! पहले जिन गौरी एवं काली स्त्रियोंकी बात आयी है, वे कौन थीं? उनका सीता और कृष्णा कैसे नाम पड़ गया? ब्रह्मन्! सात प्रकारके पवित्र पुरुष कौन हुए? उस पुरुषने अपना बारह प्रकारका रूप कैसे बना लिया? दो देह और छः सिरका क्या तात्पर्य है?

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन्! जो गौरी और काली—ये दो देवियाँ थीं, इनका परस्पर बहनका नाता है। दोनोंके दो वर्ण हैं—एकका शुक्ल और दूसरीका कृष्ण। कृष्णाको रात्रिदेवी कहा जाता है। राजन्! पुरुष एक होते हुए भी सात प्रकारके रूपोंसे सुशोभित हैं। जो बारह प्रकारके दो शरीर तथा छः सिरकी बात कही गयी है उनका तात्पर्य संवत्सरसे जानना चाहिये। उत्तरायण और दक्षिणायन—ये दो गतियाँ उनके शरीर तथा वसन्त आदि छः ऋतुएँ मुँह हैं। सूर्य दिनके और चन्द्रमा रात्रिके अधिष्ठाता हैं। राजन्! इन्हीं विष्णुसे इस जगत्की उत्पत्ति हुई है। अतएव उन भगवान् विष्णुको ही परमदेवता जानना चाहिये। वैदिक क्रियासे हीन व्यक्ति उन परम प्रभु परमात्माको देखनेमें सर्वथा असमर्थ है।

राजा भद्राश्वने पूछा—मुने! परमात्माका चारों युगोंमें कैसा स्वरूप जानना चाहिये? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र—इन चारों वर्णोंका प्रत्येक युगमें कैसा आचार होता है?

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन्! सत्ययुगमें वैदिक कर्म करके यज्ञोंद्वारा देवताओंकी पूजा करनेवाले दिव्य पुरुषोंसे पृथ्वी सुशोभित रहेगी। ऐसा ही समय त्रेतायुगमें भी रहेगा। महाराज! द्वापरयुगमें सत्त्वगुण और रजोगुणकी बहुलता होगी। फिर महाराज युधिष्ठिर राजा होंगे। इसके पश्चात् कलिस्वरूप तमोगुणका विस्तार होगा। राजन्! कलियुगके आ जानेपर ब्राह्मण अपने मार्गसे च्युत हो जायँगे। राजेन्द्र! क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन सबकी जाति प्रायः नष्ट-सी हो जायगी। इनमें सत्य और शौचका नितान्त अभाव हो जायगा। फिर तो संसार नष्टप्राय हो जायगा। वर्ण एवं धर्म सर्वदाके लिये दूर चले जायँगे।

नरेन्द्र! बहुत समयसे चिरकालार्जित पाप तथा वर्णसंकर जातिके पुरुषके साथ रहनेसे ब्राह्मणद्वारा जो पाप बनता है, इससे दस बार प्रणवसहित गायत्रीके जप करने तथा तीन सौ बार प्राणायाम करनेसे वह उस पापसे छुटकारा पा जाता है। प्रायश्चित्तोंसे ब्रह्महत्या-जैसे पाप भी छूट जाते हैं, शेष पापोंसे छूटनेकी तो बात ही क्या है? अथवा जो श्रेष्ठ ब्राह्मण सर्वोत्तम रूपधारी भगवान् श्रीहरिको जानकर ध्यान आदिसे उनकी पूजा करता है, वह उन पापोंसे लिप्त नहीं हो सकता। वेदका अध्ययन करनेवाला ब्राह्मण सौ बार किये हुए पापोंसे भी लिप्त नहीं होता। जिसके द्वारा भगवान् विष्णुका स्मरण, वेदका अध्ययन, द्रव्यका दानरूपमें वितरण तथा

भगवान् श्रीहरिका यजन होता रहता है, वह ब्राह्मण तो सदा शुद्ध ही है। वह तो विरुद्ध धर्मवालेका भी उद्धार कर सकता है। राजन्! तुमने जो पूछा था, वह सब मैंने बतला दिया। महाराज! मनु आदि महानुभावोंने जिसे बड़े विस्तारसे कहा है, उसीका मैंने यहाँ संक्षेप रूपसे वर्णन किया है। (अध्याय ६६-६८)

भगवान् नारायणसम्बन्धी आश्चर्यका वर्णन

राजा भद्राश्वने कहा—भगवन्! आप सभी ब्राह्मणोंमें प्रधान एवं दीर्घजीवी हैं। मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपके शरीरकी यह विशेषता क्यों और कैसी है? महानुभाव! आप मुझे यह बतलानेकी कृपा करें।

अगस्त्यजी बोले—राजन्! मेरा यह शरीर अनेक अद्भुत कुतूहलोंका भण्डार है। बहुत कल्प बीत चुके, किंतु अभी यह यों ही पड़ा है। वेद और विद्यासे इसका भलीभाँति संस्कार हुआ है। राजन्! एक समयकी बात है—मैं सम्पूर्ण भूमण्डलपर घूम रहा था। घूमते-घूमते मैं उस महान् 'इलावृत्त'नामक वर्षमें पहुँचा, जो सुमेरु-पर्वतके पार्श्वभागमें है। वहाँ मुझे एक सुन्दर सरोवर दिखायी दिया। उसके तटपर एक विशाल आश्रम था। उस आश्रममें मुझे एक तपस्वी दीख पड़े, जिनका शरीर उपवासके कारण शिथिल पड़ गया था तथा शरीरमें केवल हड्डियाँ ही शेष रह गयी थीं। वे वृक्षकी छाल लपेटे हुए थे। महाराज! उन तपस्वीको देखकर मैं सोचने लगा—ये कौन हैं? फिर मैंने उनसे कहा—'ब्रह्मन्! मैं आपके पास आया हूँ। मुझे कुछ देनेकी कृपा करें।' तब उन मुनिने मुझसे कहा—'द्विजवर! आपका स्वागत है। ब्रह्मन्! आप यहाँ ठहरिये, मैं आपका आतिथ्य करनेके लिये उद्यत हूँ।'

राजन्! उन तपस्वीकी यह बात सुनकर मैं आश्रममें चला गया। इतनेमें देखता हूँ कि वे ब्राह्मण-देवता तेजसे मानो संदीप्त हो रहे हैं। मैं भूमिपर बैठ गया, अब उनके मुखसे हुंकारकी ध्वनि निकली, जिससे पातालका भेदन कर पाँच कन्याएँ निकल आयीं। उनमेंसे एकके हाथमें सुवर्णका पृष्ठासन (पीढ़ा) था। उसने बैठनेके लिये वह आसन मुझे दे दिया। दूसरेके हाथमें जल था। वह उससे मेरे दोनों पैरोंको धोने लगी। अन्य दो कन्याएँ हाथमें पंखे लेकर मेरी दोनों ओर खड़ी होकर हवा करने लगीं। इसके पश्चात् उन महान् तपस्वीने फिर हुंकार किया। इस शब्दके होते ही तुरंत एक नौका सामने आ गयी, जिसका विस्तार एक योजन था। राजन्! सरोवरमें उस नावको एक कन्या चला रही थी। वह उसे लेकर आ गयी। उस नावमें सैकड़ों सुन्दरी कन्याएँ थीं। सबके हाथमें सोनेके कलश थे। राजन्! वे कन्याएँ आ गयीं—यह देखकर उन तपस्वीने मुझसे कहा—'ब्रह्मन्! यह सारी व्यवस्था आपके स्नानके लिये की गयी है। महाशय! आप इस नावपर विराजकर स्नान करें।'

नरेन्द्र! फिर उन तपस्वीके कथनानुसार ज्यों ही मैंने नावमें प्रवेश किया कि इतनेमें ही वह नौका सरोवरमें डूब गयी। उस नावके साथ मैं भी जलमें डूब गया। तबतक सुमेरुगिरिके शिखरपर वे तपस्वी और उनका दिव्य पुर मुझे अपने-आप दिखायी पड़े। सात समुद्र, पर्वत-समूह तथा सात द्वीपोंसे युक्त यह पृथ्वी भी वहाँ दृष्टिगोचर हुई। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले राजन्! आज भी जब मैं यहाँ बैठा हूँ तो

वह उत्तम लोक मुझे स्मरण हो रहा है। मेरे मनमें इस प्रकारकी चिन्ता हो रही है कि कब मैं उस उत्तम लोकमें पहुँचूँगा। राजन्! ऐसा परब्रह्म परमात्माका कौतुक है, जो मैंने तुम्हें सुना दिया। यही मेरे शरीरकी घटना है। अब तुम दूसरा क्या सुनना चाहते हो! (अध्याय ६९)

सत्ययुग, त्रेता और द्वापर आदिके गुणधर्म

राजा भद्राश्वने पूछा—मुने! उस दिव्य लोकको देख लेनेके बाद पुनः उसे पानेके लिये आपने कौन-सा व्रत, तप अथवा धर्म किया?

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन्! विवेकी पुरुषको चाहिये कि वह भगवान् श्रीहरिकी भक्तिपूर्वक आराधना छोड़कर अन्य किन्हीं लोकोंकी कामना न करे; क्योंकि परम प्रभुकी आराधनासे सभी लोक अपने आप ही सुलभ हो जाते हैं। ऐसा सोचकर मैंने उन सनातन श्रीहरिकी आराधना आरम्भ कर दी और प्रचुर दक्षिणा देकर अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान करता हुआ सौ वर्षोंतक मैं उनकी आराधनामें संलग्न रहा। नृपनन्दन! एक समयकी बात है—देवाधिदेव यज्ञमूर्ति भगवान् जनार्दनकी इस प्रकार उपासना करते हुए बहुत दिन बीत चुके थे, तब मैंने एक यज्ञमें सभी देवताओंकी आराधना की और इन्द्रसहित सभी देवता एक साथ ही उस यज्ञमें पधारे तथा उन्होंने अपना-अपना स्थान ग्रहण कर लिया। भगवान् शंकर भी पधारे और अपने निश्चित स्थानपर विराजमान हो गये। सम्पूर्ण देवता, ऋषि तथा नागगण भी आ गये। उन्हें आते देखकर सूर्यके समान तेजस्वी विमानपर चढ़कर भगवान् सनत्कुमार भी वहाँ पधारे और सिर झुकाकर भगवान् रुद्रको प्रणाम किया। राजेन्द्र! उस समय समस्त देवता, ऋषि, नारद, सनत्कुमार एवं भगवान् रुद्र जब अपने-अपने स्थानपर स्थित होकर बैठ गये, तब उनकी ओर दृष्टि डालकर मैंने यह बात पूछी—'आप सभी महानुभावोंमें कौन श्रेष्ठ हैं तथा किनकी (अग्र) पूजा होनी चाहिये?' मेरे यह पूछनेपर देवसमुदायके सामने ही भगवान् रुद्र मुझसे कहने लगे।

भगवान् रुद्र बोले—समस्त देवताओ, परम पवित्र देवर्षियो, प्रसिद्ध ब्रह्मर्षियो तथा महान् मेधावी अगस्त्यजी! आप सभी लोग मेरी बात सुन लें—'जिनकी यज्ञोंद्वारा पूजा होती है, देवतासहित सम्पूर्ण संसार जिनसे उत्पन्न हुआ है तथा जिनमें लीन भी हो जाता है, वे भगवान् जनार्दन ही सर्वश्रेष्ठ हैं और सभी यज्ञोंद्वारा वे ही आराधित होते हैं। उन परम प्रभुमें सभी ऐश्वर्य विद्यमान हैं। उन्होंने ही अपने तीन प्रकारके रूप धारण कर लिये हैं। जब उनमें सर्वाधिक रजोगुण तथा स्वल्प सत्त्वगुण एवं तमोगुणका समावेश हुआ, तब वे ब्रह्मा नामसे प्रसिद्ध हुए। भगवान् नारायणने अपने नाभिकमलसे इन ब्रह्माकी सृष्टि की है। मुझे भी बनानेवाले वे परम प्रभु नारायण ही हैं। अतः भगवान् श्रीहरि ही सर्व-प्रधान हैं।

जिनमें सत्त्वगुण और रजोगुणका आधिक्य हुआ और जिन्हें कमलका आसन मिल गया, वे ब्रह्मा कहलाये। जो ब्रह्मा एवं चतुर्मुख कहलाते हैं, वे भी भगवान् नारायण ही हैं। जो स्वल्प सत्त्व एवं रजोगुण और किंचित् अधिक तमोगुणसे युक्त हैं, वह मैं रुद्र हूँ—इसमें कोई संदेहकी बात नहीं है। सत्त्व, रज और तम—ये तीन प्रकारके गुण कहे जाते हैं। सत्त्वगुणके प्रभावसे प्राणीको मुक्ति सुलभ हो जाती है; क्योंकि सत्त्वगुण भगवान् नारायणका स्वरूप है। जब रज और सत्त्वका

सम्मिश्रण होता है और रजोगुणकी कुछ अधिकता होती है, तब सृष्टिका कार्य आरम्भ होता है। यह ब्रह्माजीका स्वाभाविक गुण है। यह बात सम्पूर्ण शास्त्रोंमें पढ़ी जाती है। जिसका वेदोंमें उल्लेख नहीं है, वह रौद्रकर्म मनुष्योंके लिये कदापि हितकर नहीं है। उससे लोक तथा परलोकमें भी मनुष्योंकी दुर्गति ही होती है।

सत्त्वका पालन करनेसे प्राणी जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। कारण, सत्त्व भगवान् नारायणका स्वरूप है। वे ही प्रभु यज्ञका स्वरूप धारण कर लेते हैं। सत्ययुगमें भगवान् नारायण शुद्ध (ध्यानादिद्वारा) सूक्ष्मरूपसे सुपूजित होते हैं। त्रेतायुगमें वे यज्ञरूपसे तथा द्वापरयुगमें 'पञ्चरात्र'विधिसे की गयी पूजा स्वीकार करते हैं और कलियुगमें तमोगुणी मानव मेरे बनाये हुए अनेक रूपवाले मार्गोंसे मनमें ईर्ष्यासहित उन परमात्मा श्रीहरिकी उपासना करते हैं।

मुनिवर! उन भगवान् नारायणसे बढ़कर अन्य कोई देवता इस समय न है, न अन्य किसी कालमें होगा। जो विष्णु हैं, वही स्वयं ब्रह्मा हैं और जो ब्रह्मा हैं, वही मैं महेश्वर हूँ। तीनों वेदों, यज्ञों और पण्डितसमाजमें यही बात निर्णीत है। द्विजवर! हम तीनोंमें जो भेदकी कल्पना करता है, वह पापी एवं दुरात्मा है; उसकी दुर्गति होती है। अगस्त्य! इस विषयमें एक प्राचीन वृत्तान्त कहता हूँ, तुम उसे सुनो। कल्पके आरम्भमें लोग भगवान् श्रीहरिकी भक्तिसे विमुख रहे। फिर उन सबका भूलोकमें वास हुआ। वहाँ उन्होंने भगवान् विष्णुकी आराधना की। फलस्वरूप उन्हें भुवर्लोकका वास सुलभ हो गया। फिर उस लोकमें रहकर वे भगवान् केशवकी उपासनामें तत्पर हो गये। इससे उन्हें स्वर्गमें स्थान मिल गया। यों क्रमशः संसारसे मुक्त होकर वे परमधाममें पहुँच गये।

द्विजवर! इस प्रकार जब सभी विरक्त एवं मुक्त होने लगे तो देवताओंने भगवान्‌का ध्यान किया। सर्वव्यापी होनेके कारण वे प्रभु वहाँ तुरंत ही प्रकट हो गये और बोले—'देवताओ! आप सभी श्रेष्ठ योगी हैं। कहें, मेरे योग्य आपलोगोंका कौन-सा कार्य सामने आ गया?' तब उन देवताओंने परम प्रभु देवेश्वर श्रीहरिको प्रणाम किया और कहा—'भगवन्! आप हमलोगोंके आराध्यदेव हैं। इस समय सभी मानव मुक्तिपदपर आरूढ़ हो गये हैं। अतः अब सृष्टिका क्रम सुचारुरूपसे कैसे चलेगा? नरकोंमें किसका वास हो?'

देवताओंके ऐसा पूछनेपर भगवान्‌ने उनसे कहा—'देवताओ! सत्ययुग, त्रेता और द्वापर—इन तीन युगोंमें तो बहुत मनुष्य मुझे प्राप्त कर लेंगे। पर कलियुगमें विरले लोग ही मुझे प्राप्त कर सकेंगे; कारण, वेदोंको छोड़कर या वेदविरोधी अन्य शास्त्रोंद्वारा मेरा ज्ञान सम्भव नहीं। मैं वेदोंसे विशेषकर—ब्राह्मणसमुदायद्वारा ही ज्ञेय हूँ। विप्र! मैं, ब्रह्मा और विष्णु—ये तीन प्रधान देवता ही तीनों युग हैं। हम तीनों ही सत्त्व आदि तीनों गुण, तीनों वेद, तीनों अग्नियाँ, तीनों लोक, तीनों सन्ध्याएँ, तीनों वर्ण और तीनों सवन (स्नान) हैं। इस प्रकार तीन प्रकारके बन्धनसे यह जगत् बँधा है। द्विजवर! जो मुझे दूसरा नारायण या दूसरा ब्रह्म जानता है, और ब्रह्माको अपर रुद्र मानता है, उसकी समझ ठीक है, क्योंकि गुण एवं बलसे हम तीनों एक हैं। हममें भेद-बुद्धि ही मोह है। (अध्याय ७०)

कलियुगका वर्णन

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन्! भगवान् रुद्रके ऐसा कहनेपर मैं, सभी देवता लोग तथा ऋषिगण उन प्रभुके चरणोंपर गिर पड़े। राजन्! फिर इतनेमें ही देखता क्या हूँ कि उनके श्रीविग्रहमें मैं, भगवान् नारायण और कमलासन ब्रह्मा भी स्थित हैं। ये सभी (त्रसरेणुके) समान सूक्ष्मरूपसे रुद्रके शरीरमें विराजमान थे। उनके शरीरकी दीप्ति प्रज्वलित भास्करके समान थी। ऐसी स्थितिमें उन भगवान् रुद्रको देखकर यज्ञके सदस्य एवं ऋषिगण—सभी महान् आश्चर्यमें पड़ गये। सबके मुखसे जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी। वे लोग ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदका उच्चारण करने लगे। तब उन सभीने परस्पर कहा—'क्या ये रुद्र स्वयं परब्रह्म भगवान् नारायण हैं; क्योंकि एक ही मूर्तिमें ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र—ये तीनों महापुरुष मूर्तिमान् बनकर दर्शन दे रहे हैं।'

भगवान् रुद्रने कहा—क्रान्तदर्शी ऋषियो! इस यज्ञमें तुम्हारे द्वारा मेरे उद्देश्यसे जिस हव्य पदार्थका हवन हुआ है, उस भागको हम तीनों व्यक्तियोंने ग्रहण किया है। मुनिवरो! हम तीनोंमें अनेक प्रकारके भाव नहीं हैं। समीचीन दृष्टिवाले हमें एक ही देखते हैं। विपरीत बुद्धिवाले अनेक समझते हैं।

राजन्! इस प्रकार रुद्रके कहनेपर वे सभी मुनि मोहशास्त्रकी व्यवस्था करनेवाले उन महाभाग (रुद्र-)से पूछनेके लिये उद्यत हो गये।

ऋषियोंने पूछा—भगवन्! प्राणियोंको मोहमें डालनेके लिये आपके द्वारा जो भिन्न-भिन्न मोहकारक शास्त्र रचे गये हैं—इनका प्रयोजन ही क्या है? आपने इन्हें बनाया ही क्यों?—यह हमें बतानेकी कृपा करें।

भगवान् रुद्र कहते हैं—ऋषियो! भारतवर्षमें 'दण्डकारण्य' नामका एक वन है। वहाँ गौतम नामक ब्राह्मण महान् कठिन तपस्या कर रहे थे। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माजी उनके पास पधारे और उनसे कहा—'तपोधन! वर माँगो'। जब संसारके सृजन करनेवाले ब्रह्माने ऐसा कहा, तब मुनिने प्रार्थना की—'भगवन्! मुझे धान्योंकी ऐसी पङ्क्ति चाहिये, जो सदा फूल एवं फलोंसे सम्पन्न हो।'

इस प्रकार मुनिवर गौतमके माँगनेपर पितामह ब्रह्माने उन्हें इच्छित वर दे दिया। वर पाकर महर्षिने शतशृङ्ग पर्वतपर एक श्रेष्ठ आश्रम बनाया। वहाँ उन्होंने महान् श्रम किया, खेती तैयार हो गयी। क्यारियाँ ऐसी बनी थीं कि प्रतिदिन प्रातःकाल नयी-नयी शालियाँ तैयार होतीं। ब्राह्मणवर्ग धान्य लाता। गौतमजी उसीसे मध्याह्नके समय भोजन सिद्ध कर लेते और उससे अतिथिसत्कार एवं ब्राह्मणोंको भोजन कराते थे। एक समयकी बात है—पूरे देशमें घोर अकाल पड़ गया। द्विजवर! बारह वर्षोंतक वर्षा नहीं हुई, जिसके स्मरणमात्रसे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। ऐसी अनावृष्टि देखकर वनमें निवास करनेवाले सभी मुनि भूखसे पीड़ित हो गौतमजीके पास गये। उस समय अपने यहाँ आये हुए उन मुनियोंको देखकर ऋषिने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और कहा—'महानुभावो! आपलोग सुप्रसिद्ध मुनियोंके पुत्र हैं। आप सभी मेरे स्थानपर पधारिये और आज्ञा दीजिये, मैं क्या सेवा करूँ।' इस प्रकार गौतमजीके कहनेपर उन मुनियोंने वहाँ अपना स्थान ग्रहण किया। जबतक वर्षा नहीं हुई, तबतक अनेक प्रकारका भोजन करते हुए ठहरे रहे। कुछ समयके बाद अनावृष्टि समाप्त हो गयी। इस प्रकार अवर्षण समाप्त

हो जानेपर उन ब्राह्मणोंने तीर्थयात्राके निमित्त जानेका विचार किया । उनके समाजमें शाण्डिल्य नामके एक तपस्वी मुनि थे ।

मारीचने पूछा—शाण्डिल्य ! मैं तुमसे बहुत अच्छी बात कहता हूँ । देखो, गौतम मुनि तुम सभीके लिये पिताके स्थानपर हैं । उनसे आज्ञा लिये बिना तपस्या करनेके लिये हमलोगोंका तपोवनमें चलना उचित नहीं है ।

मारीच मुनिके इस प्रकार कहनेपर वे सभी हँस पड़े । फिर वे कहने लगे, 'क्या गौतम मुनिका अन्न खाकर हमलोगोंने अपने शरीरको बेच दिया है ।' ऐसी बात कहकर उन लोगोंने जानेके लिये फिर छल करनेको बात सोच ली । उन लोगोंने मायाके द्वारा एक गाय तैयार की । उसको उन्होंने गौतमजी-की यज्ञ-शालामें छोड़ दिया और वह गाय वहाँ चरने लगी । उसपर गौतम मुनिकी दृष्टि पड़ी । उन्होंने हाथमें जल ले लिया और कहा—'आप भगवान् रुद्रको प्राणोंके समान प्यारी हैं ।' गौतम मुनिके मुँहसे यह बात निकलते तथा पानीके बूँदके टपकते ही वह गाय पृथ्वीपर गिरी और मर गयी । उधर मुनि लोग जानेके लिये तैयार हो गये । यह देखकर बुद्धिमान् गौतमजीने नम्रतापूर्वक खड़े होकर उन मुनियोंसे कहा —'विप्रो ! आप यथाशीघ्र जानेका ठीक-ठीक कारण बतानेकी कृपा करें । मैं तो विशेषरूपसे आपमें सदा श्रद्धा रखता हूँ । ऐसे मुझ विनीत व्यक्तिको छोड़कर जानेका क्या कारण है ?'

ऋषियोंने कहा—'ब्रह्मन् ! इस समय आपके शरीरमें यह गोहत्या निवास कर रही है । मुनिवर ! जबतक यह रहेगी, तबतक हमलोग आपका अन्न नहीं खा सकते ।' उनके ऐसा कहनेपर धर्मज्ञ गौतमजीने उन मुनियोंसे कहा—'तपोधनो ! आपलोग मुझे गो-वधका प्रायश्चित्त बतानेकी कृपा करें ।'

ऋषिगण बोले—'ब्रह्मन् ! यह गौ अभी मरी नहीं, बेहोश है । यदि इसपर गङ्गा-जल डाल दिया जाय तो अवश्य उठ जायगी । इसके लिये कर्तव्य है कि आप व्रत करें अथवा क्रोधका त्याग करें ।' ऐसा कहकर वे ऋषिलोग वहाँसे चलने लगे । उनके ऐसा कहनेसे बुद्धिमान् गौतमजी आराधना करनेके विचारसे महान् पर्वत हिमालयपर चले गये । उन महान् तपस्वीने तुरंत ही तप आरम्भ कर दिया और सौ वर्षोंतक वे मेरी आराधना करते रहे । तब प्रसन्न होकर मैंने गौतमसे कहा—'सुव्रत ! वर माँगो ।' अतः उन्होंने मुझसे कहा—'आपकी जटामें तपस्विनी गङ्गा निवास करती हैं । उन्हें देनेकी कृपा कीजिये । इन पुण्यमयी नदीका नाम गोदावरी है । मेरे साथ चलनेकी ये कृपा करें ।'

(अब मुनिवर अगस्त्यजी राजा भद्राश्वसे कहते हैं—राजन् !) इस प्रकार गौतम मुनिके प्रार्थना करनेपर भगवान् शंकरने अपनी जटाका एक भाग उन्हें दे दिया । उसे लेकर मुनि भी उस स्थानके लिये प्रस्थित हो गये, जहाँ वह मृत गाय पड़ी थी । (उसके ऊपर गौतम मुनिने शंकरके दिये हुए जटा-जाह्नवीके जलके छींटे दिये । फिर क्या था—) उस जलसे भींग जानेपर वह सुन्दरी गौ उठकर चली गयी । साथ ही वहाँ उस गङ्गाजलके प्रभावसे पवित्र जलवाली एक विशाल नदीका प्रादुर्भाव हो गया । कुछ लोग उसे पुनीत तालाब कहने लगे । इस महान् आश्चर्यको देखकर परम पवित्र सप्तर्षि वहाँ आ गये । वे सभी विमानपर बैठे थे और उनके मुखसे 'साधु-साधु' की ध्वनि निकल रही थी । साथ ही वे कहने लगे—'गौतम ! तुम धन्य हो । अथवा धन्यवादके पात्रोंमें भी तुम्हारे समान अन्य कौन है, जिसके प्रयाससे भगवती गङ्गा इस दण्डकारण्यमें आ सकी हैं ।'

(भगवान् रुद्र ऋषियोंसे कहते हैं—) इस प्रकार जब सप्तर्षियोंने कहा, तब गौतमजी बोल पड़े—'अरे, यह क्या ? अकारण मुझपर गोवधका कलङ्क कहाँसे आ गया था ?' फिर ध्यानपूर्वक देखनेसे उन्हें ज्ञात हो गया कि मेरे यहाँ ठहरे हुए उन ऋषियोंकी मायाका ही यह प्रभाव था, जिससे ऐसा दृश्य उपस्थित हो गया था। अब वे भलीभाँति विचार करके उन्हें शाप देनेको उद्यत हो गये। मिथ्या व्रतका स्वाँग बनाये हुए वे ऋषिलोग ऐसे थे कि सिरपर जटा थी और ललाटपर भस्म ! मुनिने उन्हें यों शाप दिया—'तुम लोग तीनों वेदोंसे बहिष्कृत हो जाओगे। तुम्हें वेद-विहित कर्म करनेका अधिकार न होगा।' मुनिवर गौतमजीके कठोर शापको सुनकर सप्तर्षियोंने कहा—'द्विजवर ! ऐसा शाप उचित नहीं। वैसे तो आपकी बात व्यर्थ नहीं हो सकती, यह बिल्कुल निश्चय है। किंतु इसमें थोड़ा सुधार कर दीजिये। उपकारके बदले अपकार करनेके दोषसे दूषित होनेपर भी आपकी ऐसी कृपा हो कि ये श्रद्धाके पात्र बन सकें। आपके मुँहकी वाणीरूपी अग्निसे दग्ध हुए ये ब्राह्मण कलियुगमें प्रायः क्रिया-हीन एवं वैदिक कर्मसे बहिष्कृत होंगे। यह जो गङ्गा यहाँ आयी हैं, इनका गौण नाम गोदावरी नदी होगा। ब्रह्मन् ! जो मनुष्य कलियुगमें इस गोदावरीपर आकर गोदान करेंगे तथा अपनी शक्तिके अनुसार दान देंगे, उन्हें देवताओंके साथ स्वर्गमें आनन्द मिलेगा। जिस समय सिंहराशिपर बृहस्पति जायँगे, उस अवसरपर जो समाहितचित्त होकर गोदावरीमें पहुँचेगा और वहाँ स्नान करके विधिपूर्वक पितरोंका तर्पण करेगा, उसके पितर यदि नरक भोगते होंगे, तब भी स्वर्ग सिधार जायँगे। यदि पहलेसे ही वे पितर स्वर्गमें पहुँचे होंगे तो उनकी मुक्ति हो जायगी, यह बिल्कुल निश्चित है। साथ ही गौतमजी ! संसारमें आपकी बड़ी ख्याति होगी और अन्तमें आपको सनातन मुक्ति सुलभ हो जायगी।'

इस प्रकार गौतमजीसे कहकर सप्तर्षिगण उस कैलासपर्वतपर चले गये, जहाँ उमाके साथ सदा मैं रहता हूँ। उसी समय उन श्रेष्ठ मुनियोंने कलियुगमें होनेवाले ब्राह्मणोंका वृत्तान्त मुझे बताया। उन्होंने मुझसे यह भी कहा कि 'प्रभो ! वे सभी ब्राह्मण कलियुगमें आपके रूपका अनुकरण करेंगे। उनका सिर जटामय मुकुटसे सम्पन्न होगा। वे अपनी इच्छासे प्रेतका वेष बना लेंगे। मिथ्या चिह्न धारण कर लेना उनका स्वभाव होगा। आपसे मेरी प्रार्थना है, उनपर अनुग्रह कर उन्हें कोई शास्त्र देनेकी कृपा करें। कलिके व्यवहारसे इन्हें पीड़ा होगी, उस समय भी इनका निर्वाह करना आवश्यक है।'

द्विजवर अगस्त्यजी ! यह बहुत पहलेकी बात है—सप्तर्षियोंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर वैदिक क्रियासे मिलती-जुलती संहिता मैंने बना दी। मेरे श्वाससे निकलनेके कारण वह शिवसंहिताके नामसे विख्यात होगी। मेरे और शाण्डिल्यशास्त्रके अनुयायी उसमें अवगाहन करेंगे। बहुत थोड़े अपराधसे ही वे दाम्भिक स्थितिमें पहुँच गये हैं, मैं भविष्यकी बात जानता हूँ। अतएव मेरे ही प्रयाससे मोहित होकर वे ब्राह्मण महान् लालची हो जायँगे। कलिमें उन मनुष्योंके द्वारा अनेक नये शास्त्रोंकी रचना होगी। प्रमाणसे तो वे हमारी संहिताकी अपेक्षा भी अधिक बढ़ जायँगे। वह 'पाशुपत'दीक्षा कई प्रकारकी होगी। क्योंकि मैं पशुपति कहलाता हूँ और मुझसे उसका सम्बन्ध है। इस समय प्रचलित जो वेदका मार्ग है, इससे उसका सिद्धान्त अलग है। पवित्रतासे रहित उस रौद्र कर्मको क्षुद्र कर्म जानना चाहिये। जो मनुष्य रुद्रका आश्रय लेकर कलिमें अपनी जीविका चलायेंगे

और वेदान्तके सिद्धान्तका मिथ्या प्रचार करेंगे, उनके रग-रगमें स्वार्थ भरा रहेगा। वे मन:कल्पित शास्त्रोंके सम्पादक होंगे। उनके उपास्य रुद्र बड़े ही उग्ररूपधारी हैं—ऐसा जानना चाहिये। मैं उन रुद्रोंमें नहीं हूँ। प्राचीन समयमें जब देवताओंके लिये कार्य उपस्थित हुआ था, तो भैरवका रूप धारण करके ऐसा नाच करनेमें मेरी तत्परता हुई थी। उन क्रूर कर्म करनेवाले रुद्रोंसे मेरा यही सम्बन्ध है। दैत्योंका विनाश करनेकी इच्छासे मेरे द्वारा यह हँसने योग्य घटना घट गयी। उस समय आँखोंसे जो बिन्दुएँ पृथ्वीपर पड़ीं, वे भविष्यकालके लिये असंख्य रुद्रके चिह्न (लिङ्ग) बन गयीं। उग्ररूपी रुद्रके उपासकोंमें रुद्रका स्वाभाविक गुण आ जानेसे मांस और मदिरापर उनकी सदा रुचि होगी। वे स्त्रियोंमें आसक्त होंगे, सदा पापकर्मोंमें उनकी प्रवृत्ति होगी। भूतलपर ऐसे ब्राह्मणोंके होनेका कारण एकमात्र उनपर गौतममुनिका शाप ही है। उनमें भी जो मेरी आज्ञाका अनुसरण तथा सदाचारका पालन करेंगे, वे स्वर्गके अधिकारी होंगे। साथ ही यह भी कहा गया है कि जो संशयवश मुझसे विमुख हो वेदान्तका समर्थक बनेंगे, वे मेरे वंशज दोषके भागी होंगे। उन्हें नीचेके लोक अथवा नरकमें जाना होगा। पहले गौतमजीके वचनरूपी आगसे वे दग्ध तो हुए ही हैं, फिर मेरी आज्ञाका भी उन्होंने अनादर किया है, अत: उन ब्राह्मणोंको नरकमें जाना होगा, इसमें कुछ संदेह नहीं है।

भगवान् रुद्र कहते हैं—इस प्रकार मेरे कहनेपर वे ब्राह्मणकुमार जैसे आये थे, वैसे ही चले गये। परम तपस्वी गौतमने भी अपने आश्रमका मार्ग पकड़ा। विप्रो! मैंने यह कलि-धर्मका लक्षण तुम्हें बता दिया। जो इससे विपरीत मार्गका अनुसरण करता है, उसे पाखण्डी समझना चाहिये। (अध्याय ७१)

प्रकृति और पुरुषका निर्णय

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! महाभाग रुद्र सर्वज्ञानी, सबकी सृष्टिके प्रवर्तक, परम प्रभु एवं सनातन पुरुष हैं। उन्हें प्रणाम करके प्रयत्नशील हो अगस्त्यजीने उनसे यह प्रश्न किया।

अगस्त्यजीने पूछा—महाभाग रुद्र! ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन तीन देवताओंके समुदायको सम्पूर्ण शास्त्रोंमें त्रयी कहा गया है। आप सभी महानुभाव सर्वव्यापी हैं। आपका तो ऐसा सम्बन्ध है, जैसे दीपक, अग्नि और दीपकको प्रज्वलित करनेवाला व्यक्ति। तीन नेत्रोंसे शोभा पानेवाले भगवन्! मेरी यह जिज्ञासा है कि किस समय आपकी प्रधानता रहती है? कब विष्णु प्रधान माने जाते हैं? अथवा किस समय ब्रह्माकी प्रधानता होती है? आप यह बात मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् रुद्रने कहा—द्विजवर! वैदिक सिद्धान्तके अनुसार परब्रह्म परमात्मा विष्णु ही ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव—इन तीन भेदोंसे पठित एवं निर्दिष्ट हैं; पर माया-मोहित बुद्धिवाले इसे समझ नहीं पाते हैं। 'विश प्रवेशने' यह धातु है। इसमें 'स्नु' प्रत्यय लगा देनेसे 'विष्णु' शब्द निष्पन्न हो जाता है। इन विष्णुको ही सम्पूर्ण देवसमाजमें सनातन परमात्मा कहते हैं। महाभाग! जो ये विष्णु हैं, वे ही आदित्य हैं। सत्ययुगसे सम्बन्धित श्वेतद्वीपमें उन दोनों महानुभावोंकी मैं निरन्तर स्तुति करता हूँ। सृष्टिके समय मेरे द्वारा ब्रह्माजीका स्तवन होता है

और मैं कालरूपसे सुशोभित होता हूँ । ब्रह्मासहित सभी देवता और दानव सदा सत्ययुगमें मेरे स्तवनके लिये प्रयत्नशील रहते हैं । भोगकी इच्छा करनेवाला देवसमुदाय मेरी लिङ्गमूर्तिका यजन करता है । मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले मानव सहस्र मस्तकवाले जिन प्रभुका मनसे यजन करते हैं, वे ही विश्वके आत्मा स्वयं भगवान् नारायण हैं । द्विजवर ! जो पुरुष ब्रह्मयज्ञके द्वारा निरन्तर यजन करते हैं, उनका प्रयास ब्रह्मको प्रसन्न करनेके लिये होता है । वेदको भी 'ब्रह्म' कहा जाता है । नारायण, शिव, विष्णु, शंकर और पुरुषोत्तम—इनमें केवल नामोंका ही भेद है । वस्तुतः इन सबको सनातन परब्रह्म परमात्मा कहते हैं । विप्र ! वैदिक कर्मसे सम्बन्ध रखनेवाले पुरुषोंके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर—इन नामोंका पृथक्-पृथक् उच्चारण होता है । हम तीनों मन्त्रके आदि देवता हैं, इसमें कुछ विचारनेकी आवश्यकता नहीं है । वैदिक कर्मके अवसरपर ही मेरा, विष्णुका तथा वेदोंका पार्थक्य है । वस्तुतः हम तीनों एक ही हैं । विद्वान् पुरुषको चाहिये कि इसमें भेद-भावकी कल्पना न करे । उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले द्विजवर ! जो पक्षपातके कारण इसके विपरीत कल्पना करता है, वह पापी नरकमें जाता है । उसकी समझमें मैं रुद्र, ब्रह्मा और विष्णु तथा ऋग्, यजुः और साम—इनमें ऐसी भेद-भावना होती है । (अध्याय ७२)



वैराज-वृत्तान्त

भगवान् रुद्र कहते हैं—द्विजवर ! अब एक दूसरा प्रसङ्ग कहता हूँ, सुनो । मुनिश्रेष्ठ ! इसमें बड़े कौतूहलकी बात है । जिस समय मैं जलमें था, तब यह घटना घटी थी । विप्रवर ! सर्वप्रथम ब्रह्माजीने मेरी सृष्टि करके कहा—'तुम प्रजाओंकी रचना करो', किंतु इस कार्यकी जानकारी मुझे प्राप्त न थी । अतः मैं जलमें (तपस्या करनेके लिये) चला गया । जलमें गये अभी एक क्षण ही हुआ था—ज्यों ही मैं पैठता हूँ, त्यों ही परम प्रभु परमात्माकी मुझे झाँकी मिली । उन पुरुषकी आकृति केवल अँगूठेके बराबर थी । मैं मनको सावधान करके उनका ध्यान करने लगा । इतनेमें ही जलसे ग्यारह पुरुष निकल आये । उनकी ऐसी प्रतिभा थी, मानो प्रलयकालकी अग्नि हो । वे अपनी किरणोंसे जलको संतप्त कर रहे थे । मैंने उनसे पूछा—'आप लोग कौन हैं, जो जलसे निकलकर अपने तेजसे इस पानीको अत्यन्त तप्त कर रहे हैं ! साथ ही यह भी बतायें कि आप कहाँ जायँगे !'

इस प्रकार मेरे पूछनेपर उन आदरणीय पुरुषोंने कुछ भी न कहा । वे सभी परम प्रशंसनीय ब्राह्मण थे । बिना कुछ कहे ही वे चल पड़े । तदनन्तर उनके जानेके कुछ ही क्षण बाद एक अत्यन्त महान् पुरुष आये, जिनकी आकृति बहुत सुन्दर थी । उनके शरीरका वर्ण मेघके समान श्यामल था और आँखें कमलके तुल्य थीं । मैंने उनसे पूछा—'पुरुषप्रवर ! आप कौन हैं तथा जो अभी गये हैं, वे पुरुष कौन हैं ? आपके यहाँ आनेका क्या प्रयोजन है ? बतानेकी कृपा करें ।'

पुरुषने कहा—ये पुरुष, जो पहले आकर चले गये हैं, इनका नाम आदित्य है । ये बड़े तेजस्वी हैं । ब्रह्माजीने इनका ध्यान किया है, अतः ये यहाँसे चले गये । कारण, इस समय ब्रह्माजी संसारकी रचना कर रहे हैं । इस अवसरपर उन्हें इनकी आवश्यकता है । देव ! ब्रह्माके सृजन किये हुए जगत्की रक्षाका भार इनपर अवलम्बित होगा—इसमें कोई संशय नहीं है ।

श्रीरुद्र बोले—भगवन् ! आप महान् पुरुषोंके भी सिरमौर हैं । मैं आपको कैसे जानूँ ! आप अपने

नाम तथा स्वरूपका परिचय बताते हुए सभी प्रसङ्ग बतानेकी कृपा कीजिये; क्योंकि मुझे आपके सम्बन्धमें अभी कोई ज्ञान नहीं है ।

इस प्रकार भगवान् रुद्रके पूछनेपर उस पुरुषने उत्तर दिया—'मैं भगवान् नारायण हूँ । मेरी सत्ता सदा सर्वत्र रहती है । मैं जलमें शयन करता हूँ । मैं आपको दिव्य आँखें दे रहा हूँ, आप मुझे अब देख सकते हैं । जब उन्होंने मुझसे ऐसी बात कही तब मैंने उनपर पुनः दृष्टि डाली । इतनेमें जिनकी आकृति केवल अँगूठेके बराबर थी, वे अब विराट्‌रूपमें दीखने लगे । उनका वह तेजस्वी विग्रह प्रदीप्त था । उनकी नाभिमें मैंने कमलका दर्शन किया । सूर्यके समान वहीं ब्रह्माजी भी दिखायी पड़े तथा उनके समीप ही मैंने स्वयं अपनेको भी देखा । उन परमात्माको देखकर मेरा मन आनन्दसे भर गया । विप्रवर ! तब मेरे मनमें ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई कि इनकी स्तुति करूँ । सुव्रत ! फिर तो निश्चित विचार हो जानेपर मैं इस स्तोत्रसे उन विश्वात्मा परम प्रभुकी आराधना करने लगा—मुझमें तपस्याका बल था, इसीसे इस शुभ कर्मकी ओर मेरी बुद्धि प्रवृत्त हुई ।

मैं (रुद्र) ने कहा—जिनका अन्त नहीं है,जो विशुद्ध चित्तवाले, सुन्दर रूपधारी, सहस्र भुजाओंसे सुशोभित एवं अनन्त किरणोंके आकर हैं तथा जिनका कर्म महान् शुद्ध और देह परम विशाल है, उन परब्रह्म परमात्माके लिये मेरा नमस्कार है । अखिल विश्वका दुःख दूर करना जिसका सहजस्वभाव है, जो सहस्र सूर्य एवं अग्निके समान तेजस्वी हैं, सम्पूर्ण विद्याएँ जिनमें आश्रय पाती हैं तथा समस्त देवता जिन्हें निरन्तर नमस्कार करते हैं, उन चक्र धारण करनेवाले कल्याणके स्रोत प्रभुके लिये मेरा नमस्कार है । प्रभो ! अनादिदेव, अच्युत, शेषशायी, विभु, भूतपति, महेश्वर, मरुत्पति, सर्वपति, जगत्पति, भुवःपति और भुवनपति आदि नामोंसे भक्तजन आपको सम्बोधित करते हैं । ऐसे आप भगवान्‌के लिये मेरा नमस्कार है । नारायण ! आप जलके स्वामी, विश्वके लिये कल्याणदाता, पृथ्वीके स्वामी, संसारके संचालक जगत्‌के लोचनस्वरूप, चन्द्रमा एवं सूर्यका रूप धारण करनेवाले, विश्वमें व्याप्त, अच्युत एवं परम पराक्रमी पुरुष हैं । आपकी मूर्ति तर्कका विषय नहीं है और आप अमृत-स्वरूप तथा अविनाशी हैं । नारायण ! प्रचण्ड अग्निकी लपटें आपके श्रीविग्रहकी समता करनेमें असफल हैं । आपके मुख चारों ओर हैं । आपकी कृपासे देवताओंका महान् दुःख दूर हुआ है । सनातन प्रभो ! आपके लिये नमस्कार है, मैं आपकी शरण हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिये । विभो ! आपके अनेक स्वरूपोंका मुझे दर्शन हो रहा है । आपके भीतर जगत्‌का निर्माण करनेवाले सनातन ब्रह्मा तथा ईश दिखायी पड़ रहे हैं, उन आप परम पितामहके लिये मेरा नमस्कार है । संसाररूपी चक्रमें भटकनेवाले परम पवित्र अनेक साधक उत्तम मार्गपर चलते हुए भी आपकी आराधनामें जब कथंचित् (किसी प्रकार) सफल होते हैं; तब आदिदेव ! ऐसे आप प्रभुकी आराधना करनेकी मुझमें शक्ति ही कहाँ है, अतः देवेश्वर ! मैं आपको केवल प्रणाम करता हूँ । आदिदेव ! आप प्रकृतिसे परे एकमात्र पुरुष हैं । जो सौभाग्यशाली पुरुष आपके इस रूपको जानता है, उसे सब कुछ जाननेकी क्षमता प्राप्त हो जाती है । आपकी मूर्ति बड़ी-से-बड़ी और छोटी-से-छोटी है । आपके स्वरूपोंमें जो गुण हैं, वे हठपूर्वक विभाजित नहीं किये जा सकते । भगवन् ! आप वागिन्द्रियके मूलकारण, अखिल कर्मसे परे और विश्वात्मा हैं । आपका यह श्रेष्ठ शरीर विशुद्ध भावोंसे ओत-

प्रोत है । आपकी उपासनामें संसारके बन्धन काटनेकी शक्ति है । उसीके द्वारा आपका सम्यक् ज्ञान सम्भव है । साधारण पुरुषकी बात तो दूर देवता भी आपको जान नहीं पाते । फिर भी तपस्याद्वारा अन्तःकरण शुद्ध हो जानेसे मैं आपको कवि, पुराण एवं आदिपुरुषके रूपमें जाननेमें सक्षम हुआ हूँ । मेरे पिता ब्रह्माजीने सृष्टिके अवसरपर बारंवार वेदोंकी सहायता ली है । अतएव उनका भी चित्त परम शुद्ध हो गया है । प्रभो ! मुझ-जैसा व्यक्ति तो आपको पुकारनेमें भी असमर्थ है; क्योंकि आप ब्रह्माप्रभृति प्रधान देवताओंसे भी अगम्य कहे जाते हैं । अतएव वे देवताका रूप धारण करके आपको अनेकों बार प्रणाम करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप तपोरहित होनेपर भी उन्हें आपकी जानकारी प्राप्त हो जाती है । देवताओंमें भी बहुत-से उदार कीर्तिवाले हैं । किंतु भक्तिका अभाव होनेसे आपको जाननेकी उनके मनमें इच्छा ही नहीं होती है । प्रभो! अभक्त वेदवादियोंको भी कई जन्मतक विवेक नहीं होता । आपकी कृपासे उन्हें ऐसी बुद्धि उत्पन्न हो जाय—इसके लिये मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ । जिसे आप प्राप्त हो जाते हैं, उसे किसी वस्तुकी अपेक्षा क्या है । यही नहीं, उसे देवता और गन्धर्वकी भी शरण नहीं लेनी पड़ती, वह स्वयं कल्याणस्वरूप हो जाता है । यह सारा संसार आपका ही रूप है । आप महान्, सूक्ष्म तथा स्थूलस्वरूप हैं । आदिप्रभो ! यह जगत् आपका ही बनाया हुआ है ।

भगवन् ! आप कभी महान् रूप तथा कभी स्थूलरूप धारण कर लेते हैं और कभी आपका रूप अत्यन्त सूक्ष्म हो जाता है । आपके विषयमें भिन्न विचार होनेसे मानव मोह-क्लेशमें पड़ता है । अब जब आप स्वयं प्रत्यक्ष पधारे हैं तब अधिक कहना ही क्या है ? वसु, सूर्य, पवन एवं पृथ्वी सब आपमें ही स्थित हैं । आपका सदा समान रूप रहता है, आत्मारूपसे आप सर्वत्र विराजते हैं, व्यापकता आपका स्वभाव है । सत्त्वगुण आपकी शोभा बढ़ाते हैं, आप अनन्त एवं सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न हैं । आप मुझपर प्रसन्न होनेकी कृपा कीजिये ।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! अमित तेजस्वी महाभाग रुद्रने जब भगवान् श्रीहरिकी इस प्रकार स्तुति की तब वे संतुष्ट हो गये । फिर तो मेघके समान गम्भीर वाणीमें उन्होंने ये वचन कहे ।

भगवान् विष्णु बोले—देवेश्वर ! तुम्हारा कल्याण हो, उमापते ! तुम वर माँगो । भगवन् ! हममें भेद तो औपचारिकमात्र है । तत्त्वतः हम दोनों एक हैं ।

रुद्रने कहा—प्रभो ! पितामह ब्रह्माने सृष्टि करनेके लिये मेरी नियुक्ति की थी । मुझसे कहा था—'तुम प्रजाओंकी रचना करो ।' प्राणियोंकी उत्पत्ति करनेवाले प्रभो ! इस विषयमें आपसे तीन प्रकारका ज्ञान प्राप्त करना मेरे लिये परम आवश्यक है ।

भगवान् विष्णुने कहा—रुद्र ! तुम सनातन एवं सर्वज्ञ हो—इसमें कोई संदेह नहीं । तुम्हारे भीतर ज्ञानकी प्रभूत राशि है । तुम देवताओंके लिये सम्यक् प्रकारसे परम पूज्य बनोगे ।

इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीहरिने स्वयं अपना रूप मेघका बना लिया । वे जलसे बाहर निकले और महाभाग रुद्रसे उन्होंने ये वचन कहे—'शम्भो ! वे जो ग्यारह प्राकृत पुरुष थे, उनका नाम वैराज है । उन्हींको आदित्य कहते हैं । वे इस समय पृथ्वीपर गये हैं । उन्हें मेरा अंश जानना चाहिये । धरातलपर विष्णु-नामसे मैं ही बारह रूपोंमें अवतीर्ण होऊँगा । शंकरजी! इस प्रकार

अवतार ग्रहण कर वे सभी आपकी आराधना करेंगे।' ऐसा कहकर वे भगवान् नारायण स्वयं अपने ही अंशसे एक दिव्य बादलकी रचना कर आकाशसे अद्भुत शब्दकी तरह पता नहीं, कहाँ अन्तर्धान हो गये।

भगवान् रुद्र कहते हैं—ऐसी शक्तिसे सम्पन्न, सर्वत्र विचरनेवाले तथा सम्पूर्ण प्राणियोंकी सृष्टि करनेमें परम कुशल श्रीहरिने उस समय मुझे इस प्रकारका वर दिया था। अतएव मैं देवताओंसे श्रेष्ठ हुआ। वस्तुतः भगवान् नारायणसे श्रेष्ठ कोई देवता न हुआ है और न होगा। सज्जनश्रेष्ठ! पुराणों और वेदोंका यही रहस्य है। मैंने आपलोगोंके सामने यह सब प्रसङ्ग बता दिया, जिससे सुस्पष्ट हो जाता है कि इस जगत्में एकमात्र भगवान् श्रीहरिकी ही उपासना की जानी चाहिये।

(अध्याय ७३)

भुवन-कोशका वर्णन

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! भगवान् रुद्र पुराणपुरुष, शाश्वत देवता, यज्ञस्वरूप, अविनाशी, विश्वमय, अज, शम्भु, त्रिनेत्र एवं शूलपाणि हैं। उन सनातन प्रभुसे सम्पूर्ण ऋषियोंने पुनः प्रश्न किया।

ऋषिगण बोले—देवेश्वर! आप हम सम्पूर्ण देवताओंमें श्रेष्ठ हैं। अतः हम आपसे एक प्रश्न पूछ रहे हैं, इसे आप बतानेकी कृपा करें। उमापते! पृथ्वीका प्रमाण, पर्वतोंकी स्थिति और उनका विस्तार क्या है। देवेश्वर! कृपया इसका वर्णन करें।

भगवान् रुद्र कहते हैं—धर्मका पूर्ण ज्ञान रखनेवाले महाभाग ऋषियो! समस्त पुराणोंमें भूलोककी ही चर्चा की जाती है। यह लोक पृथ्वीतलपर है। मैं तुम्हारे सामने संक्षेपसे इसका वर्णन करता हूँ, इस प्रसङ्गको सुनो।

जिन परब्रह्म परमेश्वरका प्रसङ्ग चला है, उनका ज्ञान सम्पूर्ण विद्याओंकी जानकारीसे ही सम्भव है। उन्हींका नाम परमात्मा है। उनमें पापका लेशमात्र भी नहीं है। वे परमाणु-जैसा सूक्ष्म तथा अचिन्त्यरूप भी धारण कर लेते हैं। उन्हीं सम्पूर्ण लोकोंमें व्याप्त रहनेवाले पीताम्बरधारीका नाम नारायण है। पृथ्वी उन्हींके वक्षःस्थलपर टिकी है। वे दीर्घ, ह्रस्व, कृश, लोहित आदि गुणोंसे रहित तथा समस्त प्रपञ्चसे परे हैं। बहुत पहलेसे ही उनका यह रूप है। उनका स्वरूप केवल ज्ञानका विषय है। सृष्टिके आदिमें उन प्रभुमें सत्त्व, रज और तमके निर्माण करनेकी इच्छा हुई, अतः उन्होंने जलकी सृष्टि करके योगनिद्राको सहायतासे उसमें शयन किया। फिर उनकी नाभिपर एक कमल उग आया। तब उस कमलपर जो सम्पूर्ण वेदों एवं ज्ञानके भंडार, अचिन्त्य स्वरूप, अत्यन्त शक्तिशाली तथा प्रजाओंके रक्षक कहे जाते हैं, वे ब्रह्मा प्रकट हुए। उन्होंने सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार-प्रभृति धर्मज्ञानी पुत्रोंको सर्वप्रथम उत्पन्न किया और फिर स्वायम्भुव मनु, मरीचि आदि मुनियों तथा दक्ष आदि प्रजापतियोंकी सृष्टि की। भगवन्! दक्षद्वारा सृष्ट स्वायम्भुव मनुसे इस भूमण्डलका विशेष विस्तार हुआ। उन महाभाग मनुमहाराजके भी दो पुत्र हुए, जिनके नाम क्रमशः प्रियव्रत और उत्तानपाद थे। प्रियव्रतसे दस पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। वे थे—आग्नीध्र, अग्निबाहु, मेध, मेधातिथि, ध्रुव, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, वपुष्मान् और

सवन। उन प्रियव्रतने अपने सात पुत्रोंके लिये पृथ्वीके सात द्वीपोंके सात भाग बनाकर उनके रहनेकी व्यवस्था कर दी। उस समय महाभाग प्रियव्रतकी आज्ञासे आग्नीध्र जम्बूद्वीपके, मेधातिथि शाकद्वीपके, ज्योतिष्मान् क्रौञ्चद्वीपके, द्युतिमान् शाल्मलिद्वीपके, हव्य गोमेदद्वीपके, वपुष्मान् प्लक्षद्वीपके तथा सवन पुष्करद्वीपके शासक हुए। पुष्करद्वीपके शासक सवनसे दो पुत्रोंका जन्म हुआ। वे पुत्र महावीति (कुमुद) और धातक नामसे प्रसिद्ध रहे हैं। उनके लिये सवनने उन्हींके नामसे पुकारे जानेवाले दो देशोंका निर्माण किया। धातकका राज्यखण्ड 'धातकीखण्ड'के नामसे तथा कुमुदका राज्यखण्ड 'कौमुदखण्ड'के नामसे प्रसिद्ध हुआ। शाल्मलिद्वीपके स्वामी द्युतिमान्‌के तीन पुत्र हुए। उनके नाम कुश, वैद्युत और जीमूतवाहन थे। शाल्मलिद्वीपके देश भी उन्हींके नामोंसे विख्यात हुए। ज्योतिष्मान्‌के सात पुत्र हुए। उनके नाम कुशल, मनुगव्य, पीवर, अन्ध्र, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि थे। उनके नामपर क्रौञ्चद्वीपमें सात महादेश हुए। कुशद्वीपके स्वामी कुश बड़े प्रतापी थे। उनके सात पुत्र हुए। वे उद्भिद्, वेणुमान्, रथपाल, मनु, धृति, प्रभाकर और कपिल नामसे प्रसिद्ध हुए। उस द्वीपमें उनके नामपर भी सात वर्ष (देश) हैं। शाकद्वीपके स्वामी मेधातिथिके सात पुत्र हुए। उनके नाम इस प्रकार हैं—नाभि, शान्तभय, शिशिर, मुखोदम, नन्दशिव, क्षेमक और ध्रुव।

इस द्वीपमें उन्हींके नामसे प्रसिद्ध उनके ये वर्ष भी हैं—हेमवान्, हेमकूट, किम्पुरुष, नैषध, हरिवर्ष, मेरुमध्य, इलावृत, नील, रम्यक्, श्वेत, हिरण्मय और शृङ्गवान्। पर्वतके उत्तरी भागमें उत्तरकुरु, माल्यवान् हैं। भद्राश्व और गन्धमादनपर महाराज नाभिका शासन आरम्भ हुआ। केतुमालवर्षपर भी उन्हींका शासन हुआ। इसी प्रकार स्वायम्भुव मन्वन्तरमें भूमण्डलकी व्यवस्था हुई है। प्रत्येक कल्पके आरम्भमें प्रधान मनुओंद्वारा भूमण्डलके विभाजन एवं पालनका ऐसा ही प्रबन्ध होता आया है। कल्पकी यह स्वाभाविक व्यवस्था है और भविष्यमें भी सदा ऐसा ही होगा।

अब महाभाग! मैं नाभिकी संतानका वर्णन करता हूँ—नाभिकी धर्मपत्नीका नाम मेरुदेवी था। उन्होंने ऋषभ नामक पुत्रको जन्म दिया। ऋषभसे भरत नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। भरत सबसे बड़े पुत्र हुए। अतएव उनके पिता ऋषभने हिमाद्रि पर्वतके दक्षिण भागमें भारत नामके इस महान् वर्षका उन्हें शासक बना दिया। भरतसे सुमतिका जन्म हुआ। सुमतिको अपना राज्य देकर भरत जंगलमें चले गये। सुमतिके तेज, तेजके सत्सुत, सत्सुतके इन्द्रद्युम्न, इन्द्रद्युम्नके परमेष्ठी, परमेष्ठीके प्रतिहर्ता, प्रतिहर्ताके निखात, निखातके उन्नेता, उन्नेताके अभाव, अभावके उद्गाता, उद्गाताके प्रस्तोता, प्रस्तोताके विभु, विभुके पृथु, पृथुके अनन्त, अनन्तके गय, गयके नय, नयके विराट्, विराट्के महावीर्य और महावीर्यके सुधीमान् पुत्र हुए। सुधीमान्‌से सौ पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। इस प्रकार इन प्रजाओंकी निरन्तर वृद्धि होती गयी। उनसे सात द्वीपोंवाली यह पृथ्वी तथा भारतवर्ष सर्वथा व्याप्त हो गया। उनके वंशमें उत्पन्न हुए राजाओंसे यह भूमण्डल पालित होता आया है। सत्ययुग, त्रेता आदि युगों एवं महायुगोंसे परिपूर्ण एकहत्तर चतुर्युगका एक मन्वन्तर कहा जाता है। भुवनके प्रसङ्गमें मैंने यह स्वायम्भुवमन्वन्तरकी बात कही।

(अध्याय ७४)

जम्बूद्वीपसे सम्बन्धित सुमेरुपर्वतका वर्णन

भगवान् रुद्र कहते हैं—विप्रवर ! अब मैं जम्बूद्वीपका यथार्थ वर्णन करूँगा । साथ ही समुद्रों और द्वीपोंकी संख्या एवं विस्तारका भी वर्णन करूँगा । उन सब द्वीपोंमें जितने वर्ष और नदियाँ हैं, उनका तथा पृथ्वी आदिके विस्तारका प्रमाण, सूर्य एवं चन्द्रमाकी पृथक् गतियाँ, सातों द्वीपोंके भीतर वर्तमान हजारों छोटे द्वीपोंके नाम-रूपका वर्णन, जिनसे यह जगत् व्याप्त है, उनकी पूरी संख्या बतानेके लिये तो कोई भी समर्थ नहीं है । फिर भी मैं सूर्य और चन्द्रमा आदि ग्रहोंके साथ उन सात द्वीपोंका वर्णन करूँगा, जिनके प्रमाणोंको मनुष्य तर्कद्वारा प्रतिपादन करते हैं । वस्तुतः जो भाव सर्वथा अचिन्त्य हैं, उनको तर्कसे सिद्ध करनेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये । जो वस्तु प्रकृतिसे परे है, वही अचिन्त्यका लक्षण है—उसे अचिन्त्य-स्वरूप समझना चाहिये । अब मैं जम्बूद्वीपके नौ वर्षोंका तथा अनेक योजनोंमें फैले हुए उसके मण्डलोंका यथार्थ वर्णन करता हूँ, तुम उसे सुनो । चारों तरफ फैला हुआ यह जम्बूद्वीप लाख योजनोंका है । अनेक योजनवाले पवित्र बहुत-से जनपद इसकी शोभा बढ़ाते हैं । यह सिद्ध और चारणोंसे व्याप्त है तथा पर्वतोंसे इसकी शोभा अत्यन्त मनोहर जान पड़ती है । अनेक प्रकारकी सुन्दर धातुएँ इसका गौरव बढ़ा रही हैं । शिलाजित आदिके उत्पन्न होनेसे इसकी महिमा चरम सीमापर पहुँच गयी है । पर्वतीय नदियोंसे चारों तरफ यह चमचमा रहा है । ऐसे विस्तृत एवं श्रीसम्पन्न भूमण्डलवाले जम्बूद्वीपमें नौ वर्ष चारों ओर व्याप्त हैं । यह ऐसा सुन्दर द्वीप है, जहाँ सम्पूर्ण प्राणियोंको प्रकट करनेवाले भगवान् श्रीनारायण विराजते हैं । इसके विस्तारके अनुसार चारों ओर समुद्र हैं तथा पूर्वमें उतने ही लम्बे चौड़े ये छः वर्षपर्वत हैं । इसके पूर्व और पश्चिम—दो तरफ लवणसमुद्र हैं । वहाँ वर्फसे व्याप्त हुआ हिमालय, सुवर्णसे भरा हेमकूट तथा अत्यन्त सुख देनेवाला महान् निषध नामक पर्वत है । चार वर्णवाले सुवर्णयुक्त सुमेरुपर्वतका वर्णन तो मैं पहले ही कर चुका हूँ, जो कमलके समान वर्तुलाकार है । उसके चारों भाग बराबर हैं और वह बहुत ऊँचा है । उसके पार्श्व भागोंमें परमब्रह्म परमात्माकी नाभिसे प्रकट हुए तथा प्रजापति नामसे प्रसिद्ध एवं गुणवान् ब्रह्माजी विराजते हैं । इस जम्बूद्वीपके पूर्व भागमें श्वेतवर्णवाले प्राणी हैं, जो ब्राह्मण हैं । जो दक्षिणकी ओर पीतवर्ण हैं, उन्हें वैश्य माना जाता है । जो पश्चिमकी ओर भृङ्गराजके पत्रकी आभावाले हैं, उनको शूद्र कहा गया है । इस सुमेरुपर्वतके उत्तर भागमें संचय करनेके इच्छुक जो प्राणी हैं तथा जिनका वर्ण लाल है, उन्हें क्षत्रियकी संज्ञा प्राप्त हुई है । इस प्रकार वर्णोंकी बात कही जाती है । स्वभाव, वर्ण और परिमाणसे इसकी गोलाईका वर्णन हुआ है । इसका शिखर नीलम एवं वैदूर्य मणिके समान है । वह कहीं श्वेत, कहीं शुक्र और कहीं पीले रंगका है । कहीं वह धतूरेके रंगके समान हरा है और कहीं मोरके पंखकी भाँति चितकबरा । इन सभी पर्वतोंपर सिद्ध और चारणगण निवास करते हैं । इन पर्वतोंके बीचमें नौ हजार लम्बा-चौड़ा 'विष्कम्भ' नामका पर्वत कहा जाता है । इस महान् सुमेरुपर्वतके मध्य भागमें इलावृत वर्ष है । इसीसे उसका विस्तार चारों ओर फैला हुआ हजार योजन माना जाता है । उसके मध्यमें धूम्ररहित आगकी भाँति प्रकाशमान महामेरु है । सुमेरुकी वेदीके दक्षिणका आधा भाग और उत्तरका आधा भाग उसका (महामेरुका) स्थान माना जाता है । वहाँ जो ये छः वर्ष हैं, उनकी वर्ष-पर्वतकी संज्ञा हैं । इन सभी वर्षोंके आगे एक योजनका अवकाश है । वर्षोंकी लम्बाई-चौड़ाई—दो-दो हजार योजनकी है । उन्हींके परिमाणसे जम्बूद्वीपका विस्तार कहा जाता है । एक-एक लाख

योजन विस्तारवाले नील और निषध नामके दो पर्वत हैं। उनके अतिरिक्त श्वेत, हेमकूट, हिमवान् और शृङ्गवान् नामक पर्वत हैं। जम्बूद्वीपके प्रमाणसे निषधपर्वतका वर्णन किया गया है। हेमकूट निषधसे हीन है, वह उसके बारहवें भागके ही तुल्य है। वह हिमवान् पर्वत पूर्वसे पश्चिमतक फैला हुआ है। द्वीपके मण्डलाकार होनेसे कहीं कम और कहीं अधिक हो जानेकी बात कही जाती है। वर्षों और पर्वतोंके प्रमाण जैसे दक्षिणके कहे जाते हैं, वैसे ही उत्तरमें भी हैं। उनके मध्यमें जो मनुष्योंकी बस्तियाँ हैं, उनके नाम अनुवर्ष हैं। वे वर्ष विषम स्थानवाले पर्वतोंसे घिरे हुए हैं। उन अगम्य वर्षोंको अनेक प्रकारकी नदियोंने घेर रखा है। उन वर्षोंमें विभिन्न जातिवाले प्राणी निवास करते हैं। ये हिमालयसम्बन्धी वर्ष हैं, जहाँ भरतकी संतान सुशोभित होती है।

हेमकूटपर जो उत्तम वर्ष है, उसे किम्पुरुष कहते हैं। हेमकूटसे आगेके वर्षका नाम निषध और हरिवर्ष है। हरिवर्षसे आगे और हेमकूटके पासके भू-भागको इलावृत्तवर्ष कहा जाता है। इलावृत्तके आगेके वर्षोंका नाम नील और रम्यक सुना गया है। रम्यकसे आगे श्वेत वर्ष और हिरण्मय वर्षोंकी प्रतिष्ठा है। हिरण्मय वर्षसे आगे शृङ्गवन्त और कुरुवर्षोंका अवस्थान है। ये दोनों वर्ष धनुषाकार दक्षिण और उत्तरतक झुके हैं—ऐसा जानना चाहिये। इलावृत्तके चारों कोने बराबर हैं। यह प्रायः द्वीपके चतुर्थांश भागमें है। निषधकी वेदीके आधे भागको उत्तर कहा गया है। इनके दक्षिण और उत्तर दिशाओंमें तीन-तीन वर्ष हैं। उन दोनों भागोंके मध्यमें मेरुपर्वत है। उसीको इलावृतवर्ष जानना चाहिये। प्रमाणमें वह चौंतीस हजार योजन बताया गया है। उसके पश्चिम गन्धमादन नामका प्रसिद्ध पर्वत है। ऊँचाई और लम्बाई-चौड़ाईमें प्रायः माल्यवान् पर्वतसे उसकी तुलना होती है। उक्त निषध और गन्धमादन—इन दोनों पर्वतोंके मध्यभागमें सुवर्णमय मेरुपर्वत है। सुमेरुके चारों भागोंमें समुद्रकी खानें हैं। इसके चारों कोण समान स्थितिमें हैं। वहाँ सभी धातुओंकी मेद एवं हड्डियाँ उनके अवतार लेनेमें सहयोगी नहीं हैं। छः प्रकारके योगैश्वर्योंके कारण वे विभु कहलाते हैं। सनातन कमलकी उत्पत्तिका निमित्तकारण वे ही हैं। उस कमलपर स्थित चतुर्मुख ब्रह्मा भी उन परब्रह्म परमात्माके ही रूप हैं, कोई अन्य शक्ति नहीं। कमलकी आकृति धारण करनेवाली तथा वनों एवं ह्रदोंसे सम्पन्न पृथ्वी इन्हीं परब्रह्म परमात्मासे उत्पन्न हुई है।

जिसपर संसार स्थान पाता है, उस कमलके विस्तारका स्पष्ट रूपसे मैंने वर्णन किया। द्विजवरो! अब क्रमशः विभाग करके उनके विशेष गुणोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। सुमेरुपर्वतके पार्श्वभागोंमें पूर्वमें श्वेतपर्वत, दक्षिणमें पीत, पश्चिममें कृष्णवर्ण और उत्तरमें रक्तवर्णका पर्वत है। पर्वतोंका राजा मेरुपर्वत शुक्लवर्ण वाला है, उसकी कान्ति प्रचण्ड सूर्यके समान है तथा वह धूमरहित अग्निकी भाँति प्रदीप्त होता रहता है एवं चौरासी हजार योजन ऊँचा है। वह सोलह हजार योजनतक नीचे गया है और सोलह हजार योजन ही उसका पृथ्वीपर विस्तार है। उसकी आकृति शराव (उभरे हुए ढकने) की भाँति गोल है। इसके शिखरका ऊपरी भाग बत्तीस योजनके विस्तारमें है और छानबे योजनकी दूरीमें चारों तरफ यह फैला है। यह उसके मण्डलका प्रमाण है। वह पर्वत महान् दिव्य ओषधियोंसे सम्पन्न तथा प्रशस्त रूपवाले सम्पूर्ण शोभनीय भवनोंसे आवृत है। इसपर सम्पूर्ण देवता, गन्धर्वों, नागों, राक्षसों तथा अप्सराओंका समुदाय आनन्दका अनुभव करता है। प्राणियोंके सृजन करनेवाले ब्रह्माजीका भव्य भवन

भी इसीपर शोभा पाता है। इसके पश्चिममें भद्राश्व, भारत और केतुमाल हैं। उत्तरमें पुण्यवान् कुरुओंसे सुशोभित कुरुवर्ष है। पद्मरूप उस मेरुपर्वतकी कर्णिकाएँ चारों ओर मण्डलाकार फैली हैं। योजनोंके प्रमाणसे मैं उसके दैर्घ्यका विस्तार बताता हूँ, उसके मण्डलकी लम्बाई-चौड़ाई हजारों योजनकी है। कमलकी आकृतिवाले उस मेरुपर्वतके केशरजालोंकी संख्याएँ उनहत्तर कही गयी हैं। वह चौरासी हजार योजन ऊँचा है। वह लम्बाईमें एक लाख योजन और चौड़ाईमें अस्सी हजार योजन है। वहाँ चौदह योजनके विस्तारमें चार पर्वत हैं। कमल-पुष्पकी आकृतिवाले उस मेरुपर्वतके भी नीचे चार पंखुड़ियाँ हैं। उनका प्रमाण चौदह हजार योजन है। उस कमलकी सुप्रसिद्ध कर्णिकाओंका तुम्हारे सामने जो मैंने परिचय दिया है, अब संक्षेपसे मैं उसका वर्णन करता हूँ। तुम चित्तको एकाग्र करके सुनो।

द्विजवरो! कमलकी आकृतिवाले उस मेरुपर्वतकी कर्णिकाएँ सैकड़ों मणिमय पत्रोंसे विचित्र रूपसे सुशोभित हो रही हैं। उनकी संख्या एक हजार है। मेरुगिरिमें एक हजार कन्दराएँ हैं। इस पर्वतराजमें वृत्ताकार एवं कमलकर्णिकाओंकी तरह विस्तृत एक लाख पत्ते हैं। उसपर मनोवती नामकी श्रीब्रह्माजीकी रमणीय सभा है और अनेक ब्रह्मर्षि उसके सदस्य हैं। महात्मा, ब्रह्मचारी, विनयी, सुन्दर व्रतोंके पालक, सदाचारी, अतिथिसेवी गृहस्थ, विरक्त और पुण्यवान् योगीपुरुष उस सभाके सभासद हैं। इसमें ही मेरा निवास है। इस सभा-मण्डलका परिमाण चौदह हजार योजन है। वह रत्न और धातुओंसे सम्पन्न होनेके कारण बड़ा सुन्दर और अद्भुत प्रतीत होता है। उसपर अनगिनत रत्न-मणिमय तोरणयुक्त मन्दिर हैं। ऐसे दिव्य मन्दिरोंसे वह पर्वत चारों तरफसे घिरा है। वहाँ तीस हजार योजन विस्तृत चक्रपाद नामसे विख्यात एक श्रेष्ठ पर्वत है। उस चक्र-पाद नामक पर्वतसे दस योजन विस्तारवाली एक नदी, जिसे ऊर्ध्ववाहिनी कहते हैं, अमरावतीपुरीसे आकर उसकी उपत्यकाओंमें प्रवाहित होती है। विप्रवरो! उस नदीकी प्रतिमाके सामने सूर्य एवं चन्द्रमाके ज्योतिपुञ्ज भी फीके पड़ जाते हैं। सायं और प्रातःकालकी संध्याके समय जो उसका सेवन करते हैं, उन्हें ब्रह्माजीकी प्रसन्नता प्राप्त होती है।

(अध्याय ७५)

आठ दिक्पालोंकी पुरियोंका वर्णन

भगवान् रुद्र कहते हैं—द्विजवरो! उस मेरुपर्वतका पूर्वी देश परम प्रकाशमय है। उसमें चक्रपाद नामका एक पर्वत है जिसकी अनेक धातुओंसे विद्योतित होनेसे अद्भुत शोभा होती है। इस परम रमणीय चक्रपाद पर्वतको सम्पूर्ण देवताओंकी पुरी कहते हैं। वहाँ किसीसे पराजित न होनेवाले बलाभिमानी देवताओं, दानवों और राक्षसोंका निवास है। उस पुरीमें सोनेकी बनी हुई चहारदीवारियाँ तथा मनोहर तोरण शोभा बढ़ाते रहते हैं। उस पुरीके ईशानकोणमें एक तेजःपूर्ण स्थानपर इन्द्रकी अमरावतीपुरी है। उस परम रमणीय पुरीमें सभी दिव्य पुरुष निवास करते हैं। सैकड़ों विमानोंकी वहाँ पङ्क्तियाँ लगी रहती हैं। बहुत-सी वापियाँ उसकी शोभा बढ़ाती हैं। वहाँ हर्षका कभी भी ह्रास नहीं होता। बहुत-से रंग-बिरंगे फूल उसकी मनोहरता बढ़ाते रहते हैं। पताकाएँ एवं ध्वजाएँ माला-सी बनकर उसे अत्यन्त

मनोमोहक बनाती हैं। ऋद्धि-सिद्धियोंसे परिपूर्ण उस पुरीमें देवता, यक्षगण, अप्सराएँ और ऋषिसमुदाय निवास करते हैं। उस पुरीके मध्य भागमें हीरे एवं वैदूर्यमणिकी वेदीसे मण्डित 'सुधर्मा' नामकी सभा है, जो अपने गुणोंके कारण तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। वहाँ समस्त सुरगण एवं सिद्ध-समुदायोंसे घिरे शचीपति सहस्राक्ष इन्द्र विराजते हैं।

इस अमरावतीपुरीसे कुछ दूर दक्षिणमें महाभाग अग्निदेवकी पुरी है, जो 'तेजोवती' नामसे प्रसिद्ध है। तथा जिसमें अग्निके समान गुण पाये जाते हैं। उसके दक्षिणमें यमराजकी 'संयमनीपुरी' है। अमरावतीके नैर्ऋत्य-कोणमें विरूपाक्षकी 'कृष्णवतीपुरी' है। उसके पीछे पश्चिम दिशामें जलके स्वामी महात्मा वरुणकी 'शुद्धवतीपुरी' है। इसी प्रकार उसके वायव्य कोणमें वायु देवताकी 'गन्धवतीपुरी' है। इस 'गन्धवती'के पीछे अर्थात् उत्तर दिशामें गुह्यकोंके स्वामी कुबेरकी मनोहर 'महोदया-पुरी' है। इस पुरीमें वैदूर्यमणिसे बनी हुई वेदियाँ हैं। इसी प्रकार ब्रह्मलोककी आठवीं कर्णिका या अन्तर्पटपर ईशानकोणमें महान् पुरुष भगवान् रुद्रकी पुरी शोभा पाती है, जो 'मनोहरा' नामसे प्रसिद्ध है। इसमें अनेक प्रकारके भूतसमुदाय, विविध भाँतिके पुष्प, ऊँचे भवन, वन और आश्रम हैं, जिनसे उसकी अद्भुत शोभा होती है। भगवान् रुद्रका यह लोक सबके लिये प्रार्थनाका विषय—अभिलषणीय वस्तु है। (अध्याय ७६)



मेरुपर्वतका वर्णन

भगवान् रुद्र कहते हैं—द्विजवरो ! मेरुपर्वतके मध्यभागमें कर्णिकाका मूल है। उसका परिमाण एक सहस्र योजन है। अड़तालीस हजार योजनकी गोलाईसे शोभा पानेवाले पर्वतराज मेरुका यह मूल भाग है। उसकी मर्यादाके व्यवस्थापक आठों दिशाओंमें आठ सुन्दर पर्वत हैं। जठर और देवकूट नामसे प्रसिद्ध पूर्व दिशामें सीमा निश्चित करनेवाले भी दो पर्वत हैं। मेरुके अग्रभागमें मर्यादाकी रक्षा करनेवाले चार पर्वतोंके आगे चौदह दूसरे पर्वत हैं जो सात द्वीपवाली पृथ्वीको अचल रखनेमें सहायक हैं। अनुमानतः उन पर्वतोंकी तिरछी होती हुई ऊपरतककी चौड़ाई दस हजार योजन होगी। इसपर जगह-जगह हरिताल, मैनशिला आदि धातुएँ तथा सुवर्ण एवं मणिमण्डित गुफाएँ हैं; जो इसकी शोभा बढ़ाती हैं। सिद्धोंके अनेक भवन तथा क्रीडास्थानसे सम्पन्न होनेके कारण इसकी प्रभा सदा दीप्त होती रहती है।

मेरुगिरिके पूर्व भागमें मन्दराचल, दक्षिणमें गन्धमादन, पश्चिममें विपुल और पार्श्वभागमें सुपार्श्वपर्वत हैं। उन पर्वतोंके शिखरोंपर चार महान् वृक्ष हैं। अत्यन्त समृद्धिशाली देवता, दैत्य और अप्सराएँ उनकी सुरक्षामें संनद्ध रहते हैं। मन्दर-गिरिके शिखरपर कदम्ब नामसे प्रसिद्ध एक वृक्ष है। उस कदम्बकी शाखाएँ शिखर-जैसी ऊँची हैं और उसके फूल घड़े-जैसे विशाल हैं, जिनकी गन्ध बड़ी ही हृदयहारी है। वह कदम्ब सभी कालमें विराजमान रहकर शोभा पाता है। यह वृक्ष अपनी गन्धसे दिशाओंको सदा सुगन्धित करता रहता है। इसका नाम 'भद्राश्व' है। वर्षोंकी गणनामें केतुमालवर्षमें इसका प्रादुर्भाव हुआ था। यह विशाल वृक्ष कीर्ति, रूप और शोभासे सम्पन्न है। यहाँ साक्षात् भगवान् नारायण भी सिद्धों एवं देवताओंसे सेवित होकर विराजते हैं। पहले भगवान् श्रीहरिने इस लोकके विषयमें पूछा था और देवताओंने उसके शिखरकी बार-बार

प्रशंसा की। इससे सम्पूर्ण मनुष्योंके स्वामी भगवान्‌ने उस वर्षका अवलोकन किया।

इस मेरुपर्वतके दक्षिण ओर दो बड़े शिखर और हैं। वहाँ फलों, फूलों और महान् शाखाओंसे सुशोभित जम्बू-वृक्षोंका एक वन है। उस वृक्षसमूहसे पुराण-प्रसिद्ध, स्वादिष्ठ, गन्धयुक्त एवं अमृतकी तुलना करनेवाले बहुत-से फल उस पर्वतकी चोटीपर प्रायः गिरते रहते हैं। इन फलोंके रससे उत्पन्न उस महान् श्रेष्ठ पर्वतसे एक विस्तृत नदी बहती है, जिससे अग्निके समान चमकीला जाम्बूनद नामक सुवर्ण बन जाता है। वह अत्यन्त सुन्दर सुवर्ण देवताओंके अनुपम आभूषणोंका काम करता है। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष-राक्षस और गुह्यकगण अमृतकी तुलना करनेवाले इन जम्बू-फलोंसे निकले हुए आसवको प्रसन्नतापूर्वक पीते हैं। इसीलिये दक्षिणके वर्षोंमें उस वर्षकी 'जम्बूलोक' संज्ञासे प्रसिद्धि है। मानव-समाज इसे ही जम्बूद्वीप भी कहता है।

इस मेरुपर्वतके दक्षिणमें बहुत दूरतक फैला हुआ एक विशाल पीपलका वृक्ष है। उस वृक्षकी ऊँचाई अत्यन्त ऊपरतक फैली हुई है तथा उसकी बड़ी-बड़ी शाखाएँ हैं। वह अनेक प्राणियों तथा श्रेष्ठ गुणोंका आश्रय है, जिसका नाम 'केतुमाल' है। अब इस वृक्षकी विशेषताका वर्णन करता हूँ, सुनो। क्षीरसमुद्रके मन्थनके समय इन्द्रने इस वृक्षको चैत्य मानकर इसकी शाखाको मालाके रूपमें अपने गलेमें धारण कर लिया, तभीसे यह वृक्ष 'केतुमाल' नामसे विख्यात हो गया और इस वर्षकी भी 'केतुमाल' नामसे प्रसिद्धि हुई।

सुपार्श्वनामक पर्वतके उत्तरशृङ्गपर एक महान् वट-वृक्ष है। इस वृक्षकी शाखाएँ बड़ी विशाल हैं, जिनका विस्तार तीन योजनतक है। यह वृक्ष केतुमाल और इलावृत वर्षोंकी सीमापर है। इसके चारों ओर भाँति-भाँतिकी लम्बी शाखाएँ अलंकारके रूपमें विराजमान हैं तथा वह सिद्धगणोंसे सदा सुसेवित रहता है। ब्रह्माजीके मानस-पुत्र वहाँ प्रायः आते तथा उसकी प्रशंसा करते हैं। वहाँ सात कुरुमहात्मा निवास करते हैं, जिनके नामसे यह 'कुरुवर्ष' प्रसिद्ध है। कुरुवर्षके स्वामी वे सातों महात्मा पुरुष भी स्वर्ग एवं वरुणादि देवलोकोंमें प्रसिद्ध हैं। (अध्याय ७७)

मन्दर आदि पर्वतोंका वर्णन

भगवान् रुद्र कहते हैं—द्विजवरो! अब उन पर्वतोंके पृष्ठभागमें स्थित अत्यन्त रम्य चार पर्वतोंका वर्णन करता हूँ। पक्षी अपने कलरवसे उनके शृङ्गोंकी शोभा बढ़ाते रहते हैं। ये पर्वत देवताओं एवं देवाङ्गनाओंके साथ-साथ विहार करनेके लिये मानो क्रीडास्थल हैं। शीतल तथा मन्दगतिसे प्रवाहित तथा सुगन्धपूर्ण पवनसे युक्त उन शिखरोंकी किंनरगण सदा सेवा करते हैं, इससे उनकी रमणीयता और बढ़ जाती है। इन चारों पर्वतोंके पूर्वमें चैत्ररथ वन और दक्षिणमें गन्धमादन पर्वत स्थित है। उन पर्वतोंपर स्वादिष्ठ जलसे परिपूर्ण कई सरोवर भी हैं, जिनका पर्वतके सभी भागोंसे सम्बन्ध है। यह वह रमणीय स्थान है, जहाँ देवसमुदाय अपनी रमणियोंके सहित अनेक दुर्गम वन-प्रान्तोंको लाँघकर आता और बड़े हर्षका अनुभव करता है। परम पवित्र जल तथा रत्नोंसे पूर्ण बहुत-से सरोवर, झील एवं जलाशय वहाँकी शोभा बढ़ाते हैं। खिले हुए नील, स्वच्छ एवं लाल कमलोंसे उन जलाशयोंकी सुन्दरता सीमा पार कर जाती है। ये सभी पर्वत विविध प्रकारके दिव्य गुणोंसे सम्पन्न हैं।

इनके पूर्वमें अरुणोद, दक्षिणमें मानसोद, पश्चिममें असितोद और उत्तरमें महाभद्र नामक सरोवर हैं। श्वेत, कृष्ण एवं पीले रंगके कमलोंसे इन सरोवरोंकी अनुपम शोभा होती है। अरुणोद-सरोवरके पूर्वी भागमें जो पर्वत प्रसिद्ध हैं, उनके नाम बतलाता हूँ, सुनो। वे हैं—विकङ्क, मणिशृङ्ग, सुपात्र, महोपल, महानील, कुम्भ, सुबिन्दु, मदन, वेणुनद्ध, सुमेदा, निषध और देवपर्वत। वे सभी पर्वत अपने समुदायमें सर्वोत्कृष्ट एवं पवित्र भी हैं।

अब मानससरोवरके दक्षिण भागमें जो महान् पर्वत बताये गये हैं, उनके नाम बतलाता हूँ, सुनो —तीन चोटियोंवाला त्रिशिखर, गिरिश्रेष्ठ शिशिर, कपि, शताक्ष, तुरग, सानुमान्, ताम्राह, विष, श्वेतोदन, समूल, सरल, रत्नकेतु, एकमूल, महाशृङ्ग, गजमूल, शावक, पञ्चशैल और कैलास—ये प्रधान और रमणीय पर्वत मानससरोवरके पश्चिमी भागमें हैं। विप्रो! महाभद्र-सरोवरके उत्तरमें जो पर्वत विद्यमान हैं, अब उनके नाम कहता हूँ, सुनो। हंसकूट, महान् पर्वत वृषहंस, कपिञ्जल, गिरिराज इन्द्रशैल, सानुमान्, नील, कनकशृङ्ग, शतशृङ्ग, पुष्कर, महान् एवं सर्वोत्कृष्ट विराज तथा पर्वतराज भारुचि। वे सभी पर्वत उत्तर-गिरि कहे गये हैं। उनके उत्तरीय भागमें कुछ ग्राम, नगर तथा जलाशय हैं।

(अध्याय ७८)

मेरुपर्वतके जलाशय

भगवान् रुद्र कहते हैं—द्विजवरो! सीमान्त और कुमुदपर्वतोंके बीचकी अधित्यकामें अनेक पक्षी निवास करते हैं तथा वह विविध भाँतिके प्राणियोंद्वारा सेवित है। उसकी लम्बाई तीन सौ योजन और चौड़ाई सौ योजन है। उसमें एक स्वादिष्ठ तथा स्वच्छ जलवाला श्रेष्ठ जलाशय है, जिसकी विशाल सुगन्धित कमल-पुष्प निरन्तर शोभा बढ़ाते रहते हैं। इन विशाल आकृतिवाले कमलोंमें एक-एक लाख पत्ते हैं। वह जलाशय देवताओं, दानवों, गन्धर्वों और महान् सर्पोंसे कभी रिक्त नहीं रहता। उस दिव्य एवं पवित्र जलाशयका नाम 'श्रीसरोवर' है। सम्पूर्ण प्राणियोंको शरण देनेमें कुशल उस सरोवरमें सदा स्वच्छ जल भरा रहता है। उसके अन्तर्गत कमलवनके बीच एक बहुत बड़ा कमल है, जिसमें एक करोड़ पत्ते हैं। वह कमल मध्याह्न-कालीन सूर्यकी भाँति सदा प्रफुल्लित एवं प्रकाशमान रहता है। उसके सदा खिले रहनेसे मण्डलकी मनोहरता और अधिक बढ़ जाती है। सुन्दर केसरके खजानेकी तुलना करनेवाले उस कमलपर मतवाले भ्रमर निरन्तर गूँजते रहते हैं। इस कमलके मध्यभागमें साक्षात् भगवती लक्ष्मीका निवास है। इन देवीने अपने आवासके लिये ही उस कमलको अपना मन्दिर बना रखा है। इस सरोवरके तटपर सिद्धपुरुषोंके भी आश्रम हैं।

विप्रवरो! उसके पावन तटपर एक बहुत बड़ा मनोहर बिल्वका भी वृक्ष है। उसपर फूल और फल सदा लदे रहते हैं। वह सौ योजन चौड़ा और दो सौ योजन लम्बा है। उसके चारों ओर अन्य अनेक वृक्ष भी हैं, जिनकी ऊँचाई आधा कोस है। हजार शाखाओं और स्कन्धोंसे युक्त वह वृक्ष फलोंसे सदा परिपूर्ण रहता है। वे फल चमकीले, हरे और पीले रंगके हैं और उनका स्वाद अमृतके समान है। उनसे उत्कट गन्ध निकलती रहती है। वे विशाल आकारके फल जब पककर गिरते हैं तो जमीनपर तितर-बितर हो जाते हैं। उस वनका नाम 'श्री'वन या'लक्ष्मी'वन है, जो सभी

लोकोंमें विख्यात है। उसके आठों दिशाओंमें देवता निवास करते हैं। ऐसे उस कल्याण-प्रद बिल्व-वृक्षके* पास उसके फलोंको खानेवाले पुण्यकर्मा मुनि सुरक्षा करनेमें सदा उद्यत रहते हैं। उसके नीचे लक्ष्मीजी सदा विराजती हैं और सिद्ध-समुदाय उसकी सेवामें सदा संलग्न रहता है।

विप्रवरो! वहाँ मणिशैल नामका एक महान् पर्वत है। उसके भीतर भी एक स्वच्छ कमलका वन है। उस वनकी लम्बाई दो सौ योजन और चौड़ाई सौ योजनकी है। सिद्ध और चारण वहाँ रहकर उसकी सेवा करते हैं। इन फूलोंको भगवती लक्ष्मी धारण करती हैं, अतः ये सदा प्रफुल्लित एवं प्रकाशमान प्रतीत होते हैं। उसके चारों ओर आधे कोसतक अनेक पर्वत-शिखर फैले हुए हैं। वह कमलका वन फूले हुए पुष्पोंसे सम्पन्न होनेके कारण जान पड़ता है, मानो पक्षियोंके रहनेका पिंजरा हो। उस वनमें बहुत-से कमल खिले हुए हैं। उन फूलोंका परिमाण दो हाथ चौड़ा और तीन हाथ लम्बा है। कुछ खिले हुए पुष्प मैनशिलाकी भाँति लाल और बहुत-से केसरके रंगके पीले हैं। वे तीव्र सुगन्धोंद्वारा देवताओंके मनको मुग्ध कर देते हैं। मतवाले भौरोंकी गुनगुनाहटसे सम्पूर्ण वनकी शोभा विचित्र होती है। देवताओं, दानवों, गन्धर्वों, यक्षों, राक्षसों, किंनरों, अप्सराओं और महोरगोंसे सेवित उस वनमें प्रजापति भगवान् कश्यपजीका एक अत्यन्त दिव्य आश्रम है।

द्विजवरो! महानील और ककुभ नामक पर्वतके मध्यभागमें भी एक बहुत बड़ा वन है। उसमें सिद्धों और साधुओंका समुदाय सदा निवास करता है। अनेक सिद्धोंके आश्रम वहाँ सुशोभित हैं। महानील और ककुभ नामक पर्वतोंके मध्यमें 'सुखा' नामकी एक नदी है और उसीके तटपर यह महान् वन है, जो पचास योजन लम्बा तथा तीस योजन चौड़ा है। इस वनका नाम 'ताल-वन' है। वनकी छवि बढ़ानेवाले वृक्ष दृढ़, बड़े-बड़े फलोंसे युक्त तथा मीठी गन्धोंसे व्याप्त हैं, जिनसे वह पर्वत परिपूर्ण है। सिद्धलोग उसकी सेवा करते हैं। वहीं ऐरावत हाथीकी आकृतिवाली एक पर्वतीय भूमि है, जो ईरावान, रुद्रपर्वत एवं देवशील पर्वतोंके मध्य-भागमें स्थित है, हजार योजन लम्बी और सौ योजन चौड़ी है। यहाँ बस केवल एक ही विशाल शिला है, जिसपर एक भी वृक्ष अथवा लता नहीं है। विप्रवरो! इस शिलाका चतुर्थांश भाग जलमें डूबा रहता है। इस प्रकार उपत्यकाओं तथा पर्वतोंका वर्णन किया गया है, जो मेरुपर्वतके आस-पासमें यथास्थान शोभा पाते हैं। (अध्याय ७९)

मेरुपर्वतकी नदियाँ

भगवान् रुद्र कहते हैं—मेरुपर्वतकी दक्षिण दिशा-में बहुत-से पहाड़ एवं नदियाँ हैं। यह सिद्धोंकी आवासभूमि है। शिशिर और पतङ्ग नामक पर्वतके मध्य-भागमें एक स्वच्छ भूमि है। वहाँ दिव्य एवं मुक्त स्त्रियाँ रहती हैं और वहाँके वृक्ष भी गलित पत्र हो गये हैं। वहीं इक्षुक्षेप नामक शिखर है, जिसकी वृक्ष शोभा बढ़ाते हैं। उस शिखरपर बहुत सुन्दर गूलरके वृक्षोंका एक वन है, जिसकी पक्षी समुदाय सदा सेवा करता है। उस वनके वृक्षपर जब फल लगते हैं तो वे ऐसे सुशोभित होते हैं, मानो महान् कछुवे हों। सिद्धादि आठ प्रकारकी देवयोनियाँ उस वनमें सदा निवास करती और उस वनकी रक्षा करती हैं। उस स्थानपर स्वच्छ

* बिल्व एवं कमल—ये दोनों ही भगवती लक्ष्मीके आवास हैं।

एवं स्वादिष्ट जलवाली अनेक नदियाँ प्रवाहित होती हैं, जहाँ कर्दम-प्रजापतिका आश्रम है। वह सौ योजन परिणाम-के एक वृत्ताकार वनसे घिरा है। वहीं ताम्राभ और पतङ्ग-पर्वतके मध्यभागमें एक महान् सरोवर है, जो दो सौ योजन लम्बा और सौ योजन चौड़ा है। उसके चारों ओर प्रातःकालीन सूर्यके तुल्य हजारों पत्तोंसे परिपूर्ण कमल उस सरोवरकी शोभा बढ़ाते हैं। वहाँ अनेक सिद्ध और गन्धर्वोंका निवास है। उसके बीचमें एक महान् शिखर है, जिसकी लम्बाई तीन-सौ योजन और चौड़ाई सौ योजन है। अनेक धातु और रत्न उसको सुशोभित करते रहते हैं। उसके ऊपर एक बहुत लम्बी-चौड़ी सड़क है, जिसके अगल-बगलमें रत्नोंसे बनी हुई चहारदीवारियाँ हैं। उस सड़कके पास ही पुलोम विद्याधरका पुर है, जिसके परिवारके व्यक्तियोंकी संख्या एक लाख है। इसी प्रकार विशाख और श्वेतनामक पर्वतोंके मध्यभागमें भी एक नदी है, जिसके पूर्वातटपर एक बड़ा विशाल आम्रका वृक्ष है। उस वृक्षको सोनेके समान चमकनेवाले, उत्तम गन्धोंसे युक्त तथा महान् घड़ेकी आकृतिवाले असंख्य फल सब ओरसे मनोहर बना रहे हैं। वहाँ देवताओं और गन्धर्वोंका निवास है।

वहाँ सुमूल और वसुधार—ये दो प्रसिद्ध पर्वत हैं। इनके बीचमें तीन सौ योजन चौड़ी और पाँच सौ योजन लम्बी रिक्त भूमि है, जहाँ एक बिल्वका वृक्ष है। इससे भी बड़े घड़ेकी आकृतिवाले असंख्य फल गिरते रहते हैं। उन फलोंके रससे उस भूमिकी मिट्टी गीली हो जाती है और बिल्वफल खानेवाले गुह्यक लोग उस स्थलकी रक्षा करते हैं।

इसी प्रकार वसुधार और रत्नधार पर्वतोंके मध्यभागमें एक किंशुक अर्थात् पलाशका दिव्य वन है। वह वन सौ योजन चौड़ा और तीन सौ योजन लम्बा है। जब वह गन्धयुक्त वन फूलता है तब उसके पुष्पोंकी सुगन्धसे सौ योजनकी भूमि सुवासित हो जाती है। वहाँ जलकी कभी कमी नहीं होती और सिद्ध लोग वहाँ सदा निवास करते हैं। वहाँ भगवान् सूर्यका एक विशाल मन्दिर है। प्रजाओंकी रक्षा करनेवाले तथा जगत्के जनक भगवान् सूर्य वहाँ प्रतिमास अवतरित होते हैं, अतः देवतालोग वहाँ पहुँचकर उनकी स्तुति-नमस्कार आदिद्वारा आराधना करते हैं।

इसी प्रकार पञ्चकूट और कैलासपर्वतोंके बीचमें 'हंसपाण्डुर' नामसे प्रसिद्ध एक भूमिखण्ड है, जिसकी लम्बाई हजार योजन और चौड़ाई सौ योजन है। क्षुद्र प्राणी उसे लाँघनेमें असमर्थ हैं। वह भूभाग मानो स्वर्गकी सीढ़ी है। अब हम मेरुकी पश्चिम दिशाके पर्वतों एवं नदियोंका वर्णन करते हैं। सुपार्श्व और शिखिशैल-संज्ञक पर्वतोंके मध्यमें 'भौमशिलातल' नामक एक मण्डल है। वह चारों तरफ सौ योजनतक फैला है। वहाँकी भूमि सदा तपती रहती है, जिससे कोई इसे छू नहीं सकता। उसके बीचमें तीस योजनतक फैला हुआ अग्निदेवका स्थान है। वहाँ भगवान् नारायण लोकका संहार करनेके विचारसे 'संवर्त्तक' नामक अग्निका रूप धारण कर बिना लकड़ीके ही सर्वदा प्रज्वलित रहते हैं। यहीं कुमुद और अञ्जन—ये दोनों श्रेष्ठ शैल हैं। उनके बीचमें 'मातुलुङ्गस्थली' सुशोभित होती है। इसका विस्तार सौ योजन है। वहाँ जानेमें सभी प्राणी असमर्थ हैं। पीले रंगवाले फलोंसे उसकी बड़ी शोभा होती है। वहाँ सिद्ध पुरुषोंसे सम्पन्न एक पवित्र तालाब है। यहीं बृहस्पतिका भी एक वन है। ऐसे ही पिंजर और गौर नामवाले दो पर्वतोंके बीचमें छोटी-छोटी अनेक नदियाँ हैं। भँवरोंसे व्याप्त बड़े-बड़े कमल उन द्रोणियोंकी शोभा बढ़ाते हैं। वहाँ भगवान् नारायणका देवमन्दिर है। इसी प्रकार शुक्ल तथा पाण्डुर नामसे

विख्यात महान् पर्वतोंके बीचमें तीस योजन चौड़ा तथा नब्बे योजन लम्बा एक पर्वतीय भाग है, जिसमें एक ही शिला है और वृक्ष एक भी नहीं है। वहाँ एक ऐसी बावली है, जिसका जल कभी तनिक भी नहीं हिलता। उसमें एक वृक्ष तथा एक 'स्थलपद्मिनी' है, जो अनेक प्रकारके कमलोंसे आवृत है। वह वृक्ष उस वापीके मध्य भागमें है और वहीं पाँच योजन प्रमाणवाला एक बरगदका भी वृक्ष है। वहाँ भगवान् शंकर नीले वस्त्र धारण करके पार्वतीके साथ निवास करते हैं, जिनकी यक्ष, भूत आदि सदा आराधना करते हैं। 'सहस्रशिखर' और 'कुमुद'—इन दोनों पर्वतोंके बीचमें 'इक्षुक्षेप' नामक शिखर है, जो वह बीस योजन चौड़ा और पचास योजन लम्बा है। उस ऊँचे शिखरपर बहुत-से पक्षी निवास करते हैं। अनेक वृक्षोंके मधुर रसवाले फलोंसे उसकी विचित्र शोभा होती है। वहाँ चन्द्रमाका महान् आश्रम है, जिसका निर्माण दिव्य वस्तुओंसे हुआ है। ऐसे ही शङ्कुकूट और ऋषभके मध्य भागमें 'पुरुषस्थली' है। इसी प्रकार कपिञ्जल और नागशैल नामसे प्रसिद्ध पर्वतोंके मध्य भागमें सौ योजन चौड़ी और दो सौ योजन लम्बी एक अधित्यका है, जहाँ बहुत-से यक्ष निवास करते हैं। वह स्थली दाख और खजूरके वृक्षोंसे व्याप्त है। इसी प्रकार पुष्कर और महादेव-संज्ञक पर्वतोंके बीचमें साठ योजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा एक बड़ा उपवन है, जिसका नाम 'पाणितल' है। वृक्षों और लताओंका यहाँ एक प्रकार सर्वथा अभाव-सा है। (अध्याय ८०)

देव-पर्वतोंपरके देव-स्थानोंका परिचय

भगवान् रुद्र कहते हैं—अब पर्वतोंके अन्तर्वर्ती देवस्थलोंका वर्णन करता हूँ। जिस सीतानामक पर्वतका वर्णन पहले आया है, उसके ऊपर राज इन्द्रकी क्रीडा-स्थली है। वहाँ उनका पारिजात नामके वृक्षोंका वन है। उसके पास ही पूर्व दिशामें 'कुञ्जर' नामक प्रसिद्ध पर्वत है, जिसके ऊपर दानवोंके आठ नगर हैं। इसी प्रकार 'वज्रपर्वत'पर राक्षसोंकी पुरियाँ हैं। उनके निवासी असुर 'नालका' नामसे प्रसिद्ध हैं और वे सभी कामरूपी भी हैं। 'महानील'पर्वतपर पंद्रह सहस्र किंनरोंके नगर हैं। वहाँ देवदत्त, चन्द्रदत्त आदि पंद्रह गर्वपूर्ण राजा शासन करते हैं। ये पुरियाँ सुवर्णमयी हैं। 'चन्द्रोदय'पर्वतपर बहुत-सी बिलें और नगर हैं और वहाँ सर्पोंका निवास है। गरुड़के राज्यशासनसे वे सर्प बिलोंमें छिपे रहते हैं। 'अनुराग'नामक पर्वतपर दानवेन्द्रोंके रहनेकी व्यवस्था है। 'वेणुमान्'पर्वतपर विद्याधरोंके तीन नगर हैं। उनमें प्रत्येक नगरकी लम्बाई तीन सौ योजन और चौड़ाई सौ योजनकी है। उनमें विद्याधरोंके शासक उलूक, गरुड़, रोमश और महानेत्र नियुक्त हैं। कुञ्जर तथा वसुधारपर्वतोंपर भगवान् पशुपतिका निवास है। करोड़ों भूतगण यहाँ शंकरकी सेवा करते हैं।

वसुधार और रत्नधार—इन दोनों पर्वतोंके ऊपर वसुओं एवं सप्तर्षियोंकी पुरियाँ हैं, जिनकी संख्या पंद्रह है। पर्वतोत्तम एकशृङ्ग पर्वतपर प्रजाओंकी रक्षा करनेवाले चतुर्मुख ब्रह्माजीका निवासस्थान है। 'गज'नामक पर्वतपर महान् भूत-समुदायसे घिरी स्वयं भगवती पार्वती विराजती हैं। पर्वतप्रवर वसुधारपर चौरासी योजनके विस्तारसे मुनियों, सिद्धों और विद्याधरोंका एक श्रेष्ठ नगर है। उसके चारों ओर चहारदीवारी तथा बीचमें तोरण है। युद्ध करनेमें निपुण, पर्वतनामवाले अनेक गन्धर्व वहाँ निवास करते हैं। उनके राजाका नाम पिंगल है। वे

राजाओंके भी राजा हैं। देवता और राक्षस पञ्चकूटपर तथा दानव 'शतशृङ्ग'पर्वतपर रहते हैं। दानवों और यक्षोंकी पुरियाँ सौकी संख्यामें हैं। 'प्रभेदक'पर्वतके पश्चिम भागमें देवताओं, दानवों और सिद्धोंकी पुरियाँ हैं। उस प्रभेदक गिरिके शिखरपर एक बहुत बड़ी शिला है। वहाँ प्रत्येक पर्वतपर चन्द्रमा स्वयं ही आते हैं। उसके पास ही उत्तर दिशामें 'त्रिकूट' नामका एक पर्वत है। कभी-कभी ब्रह्माजीका वहाँ निवास होता है। ऐसे ही अग्निदेवका भी वहाँ निवास-स्थान है। वहाँ अग्निदेवता मूर्तिमान् होकर रहते हैं और अन्य देवता उनकी उपासना करते हैं। उसके उत्तर 'शृङ्ग'-पर्वतपर देवताओंके भवन हैं। इसके पूर्वमें भगवान् नारायणका, बीचमें ब्रह्माका तथा पश्चिममें भगवान् शंकरका निवास-स्थान है। वहीं यक्ष आदिकोंके बहुत-से नगर हैं। वहीं तीस योजन विस्तारवाली एक नदी है, जिसका नाम 'नन्दजल' है। उसके उत्तर तटपर 'जातुच्छ' नामक एक ऊँचा पर्वत है। वहाँ सर्पोंका राजा, जो नन्द नामसे प्रसिद्ध है, निवास करता है। उसके सौ भयंकर फन हैं। इस प्रकार इन आठ दिव्य पर्वतोंको जानना चाहिये। सोना-चाँदी, रत्न, वैदूर्य और मैनशिल आदि रंगसे क्रमशः वे पर्वत वर्ण धारण करते हैं। यह पृथ्वी लाख कोटि अर्थात् अगणित पर्वतोंसे पूर्ण है। उनपर सिद्ध और विद्याधरोंके अनेक आलय हैं। इसी प्रकार मेरु पर्वतके पार्श्वभागमें केसर, वलय, आलवाल और सिद्धलोक आदि हैं। यह पृथ्वी कमलकी आकृतिमें सुव्यवस्थित हुई है। सामान्यरूपसे सभी पुराणोंमें इसी क्रमका प्रतिपादन होता है।

(अध्याय ८१)



नदियोंका अवतरण

भगवान् रुद्र कहते हैं—अब आपलोग नदियोंका अवतरण सुनें— जिसे आकाश-समुद्र कहते हैं, उसीसे आकाशगङ्गाका प्रादुर्भाव हुआ है। यह आकाशसमुद्र प्रायः निरन्तर इन्द्रके ऐरावत हाथीद्वारा (स्नानादि करनेसे) क्षुभित एवं बाधित होता रहता है। फिर वह आकाशगङ्गा चौरासी हजार योजन ऊपरसे मेरुपर्वतपर गिरती है। वहाँसे मेरुकूटकी उपत्यकाओंसे नीचे बहती हुई वह चार भागोंमें विभक्त हो जाती है। आश्रयहीन होनेके कारण चौंसठ हजार योजन दूरसे गिरती हुई वह नीचे उतरती है। यही नदी भूभागपर पहुँचकर सीता, अलकनन्दा, चक्षु एवं भद्रा आदि नामोंसे विख्यात होती है। इन नदियोंके बीचमें इक्यासी हजार पर्वतोंको लाँघती हुई 'गो' अर्थात् पृथ्वीपर गमन करनेके कारण इसे ही जनता 'गां गता'—'गङ्गा' कहती है।

अब 'गन्धमादन'के पार्श्वभागमें स्थित अमरगण्डिकाका वर्णन करता हूँ। वह चार सौ योजन चौड़ी और तीस योजन लम्बी है। उसके तटपर केतुमाल नामसे प्रसिद्ध अनेक जनपद हैं। वहाँके निवासी पुरुष काले वर्णवाले एवं अत्यन्त पराक्रमी हैं। यहाँकी स्त्रियाँ कमलके समान नेत्रोंवाली परम सुन्दर होती हैं। वहाँ कटहलके वृक्ष विशेषतया बड़े-बड़े होते हैं। ब्रह्माजीके पुत्र ईशान—शिव ही वहाँके शासक हैं। उसका जल पीनेसे प्राणियों-के पास बुढ़ापा और रोग नहीं आ सकते तथा वे मनुष्य हजार वर्षकी आयुसे सम्पन्न और हृष्ट-पुष्ट रहते हैं। माल्यवान्पर्वतके पूर्वी शिखरसे 'पूर्वगण्डिका'का प्रादुर्भाव हुआ है। इसकी लम्बाई-चौड़ाई हजार योजन है। वहाँपर भद्राश्व नामसे प्रसिद्ध अनेक जनपद हैं। वहीं भद्रसाल नामका एक वन है। कालाम्र नामक वृक्षोंकी संख्या तो अनगिनत है। वहाँके पुरुष श्वेतवर्णके और स्त्रियाँ कमल अथवा कुन्द-वर्णकी होती हैं। उन सबकी आयु दस हजार वर्षकी है। वहाँ पाँच 'कुल'-पर्वत हैं। वे पर्वत शैल वर्ण, मालाख्य, 'कोरजस्क' त्रिपर्ण और नील नामसे विख्यात हैं। वहाँसे झील-झरनों एवं सरोवरोंके तटवर्ती जन-

पदोंके नाम भी प्रायः वैसे ही हैं । वहाँके देशवासी उन्हीं नदियोंके जल पीते हैं । उन नदियोंके नाम इस प्रकार हैं—सीता, सुवाहिनी, हंसवती, कासा, महावक्रा, चन्द्रवती, कावेरी, सुरसा, आख्यावती, इन्द्रवती, अङ्गारवाहिनी, हरित्तोया, सोमावर्ता, शतह्रदा, वनमाला, वसुमती, हंसा, सुपर्णा, पञ्चगङ्गा, धनुष्मती, मणिवप्रा, सुब्रह्मभोगा, विलासिनी, कृष्णतोया, पुण्योदा, नागवती, शिवा, शैवालिनी, मणितटा, क्षीरोदा, वरुणताली और विष्णुपदी । जो इन पुण्यमयी नदियोंका जल पीते हैं, उनकी आयु दस हजार वर्षकी हो जाती है । यहाँके निवासी सभी स्त्री-पुरुष भगवान् रुद्र और उमाके भक्त हैं । (अध्याय ८२)

नैषध एवं रम्यकवर्षोंके कुलपर्वत, जनपद और नदियाँ

भगवान् रुद्र कहते हैं—मैंने आपलोगोंसे भद्राश्ववर्षका संक्षेपमें और केतुमालवर्षका कुछ विस्तारपूर्वक वर्णन किया । अब (निषधवर्षके) पर्वतराज नैषधके पश्चिममें रहनेवाले कुलपर्वतों, जनपदों और नदियोंके वर्णन करता हूँ । विशाख, कम्बल, जयन्त, कृष्ण, हरित अशोक और वर्धमान ये तो वहाँके सात कुल-पर्वत हैं । इन पर्वतोंके बीच छोटे-छोटे पर्वतों एवं शिखरोंकी संख्या अनन्त है । वहाँके नगर-जनपद आदि भी इन पर्वतोंके नामोंसे ही प्रसिद्ध हैं । ये पर्वत हैं—सौर, ग्रामान्तसातप, कृतखुराश्रवण, कम्बल, माहेय, कूटवास, मूलतप, क्रौञ्च, कृष्णाङ्ग, मणिपङ्कज, चूडमल, सोमीय, समुद्रान्तक, कुरकुञ्ज, सुवर्णतट, कुह, श्वेताङ्ग, कृष्णपाद, विद, कपिल, कर्णिक, महिष, कुब्ज, करनाट, महोत्कट, शुकनाक, सगज, भूम, ककुरञ्जन, महानाह, किकिसपर्ण, भौमक, चोरक, धूमजन्मा, अङ्गारज, जीवलौकित, वाचांसहांग, मधुरेय, शुकेय, चकेय, श्रवण, मत्तकाशिक, गोदावाय, कुलपंजाव, वर्जह और मोदशालक । इन पर्वतीय जनपदोंमें निवास करनेवाली प्रजा जिन पर्वतीय नदियोंका ही जल पीती है, वे नदियाँ हैं—रत्नाक्षा, महाकदम्बा, मानसी, श्यामा, सुमेधा, बहुला, विवर्णा, पुङ्खा, माला, दर्भवती, भद्रनदी, शुकनदी, पल्लवा, भीमा, प्रभञ्जना, काम्बा, कुशावती, दक्षा, काशवती, तुङ्गा, पुण्योदा, चन्द्रावती, सुमूलावती, ककुपद्मिनी, विशाला, करंटका, पीवरी, महामाया, महिषी, मानषी, और चण्डा । ये तो प्रधान नदियाँ हैं, छोटी-छोटी दूसरी नदियाँ भी हजारोंकी संख्यामें हैं ।

भगवान् रुद्र कहते हैं—विप्रो ! अब उत्तर और दक्षिणके वर्षोंमें जो-जो पर्वतवासी कहे जाते हैं, उनका मैं क्रमसे वर्णन करता हूँ, आपलोग सावधान होकर सुनें । मेरुके दक्षिण और श्वेतगिरिसे उत्तर सोमरसकी लताओंसे परिपूर्ण 'रम्यकवर्ष' है । (इस सोमके प्रभावसे) वहाँके उत्पन्न हुए मनुष्य प्रधान बुद्धिवाले, निर्मल और बुढ़ापा एवं दुर्गतिके वशीभूत नहीं होते । वहाँ एक बहुत बड़ा वटका भी वृक्ष है, जिसका रंग प्रायः लाल कहा गया है । इसके फलका रस पीनेवाले मनुष्योंकी आयु प्रायः दस हजार वर्षोंकी होती है और वे देवताओंके समान सुन्दर होते हैं । श्वेतगिरिके उत्तर और त्रिशृङ्गपर्वतके दक्षिणमें हिरण्मयनामक वर्ष है । वहाँ एक नदी है, जिसे हैरण्यवती कहते हैं। वहाँ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले कामरूपी पराक्रमी यक्षोंका निवास है । वहाँके लोगोंकी आयु प्रायः ग्यारह हजार वर्षोंकी होती है, पर कुछ लोग पन्द्रह सौ वर्षोंतक ही जीवित रहते हैं । उस देशमें बड़हर और कटहलके वृक्षोंकी बहुतायत है । उनके फलोंका भक्षण करनेसे ही वहाँके

निवासी इतने दिनोंतक जीवित रहते हैं। त्रिशृङ्गपर्वत-पर मणि, सुवर्ण एवं सम्पूर्ण रत्नोंसे युक्त शिखर क्रमशः उसके उत्तरसे दक्षिण समुद्रतक फैले हुए हैं। वहाँके निवासी उत्तरकौरव कहलाते हैं। वहाँ बहुत-से ऐसे वृक्ष हैं जिनसे दूध एवं रस निकलते हैं। उन वृक्षोंसे वस्त्र और आभूषण भी पाये जाते हैं। वहाँकी भूमि मणियोंकी बनी है तथा रेतोंमें सुवर्णखण्ड मिले रहते हैं। स्वर्गसुख भोगनेवाले पुरुष पुण्यकी अवधि समाप्त हो जानेपर यहाँ आकर निवास करते हैं। इनकी आयु तेरह हजार वर्षोंकी होती है। उसी द्वीपके पश्चिम चन्द्रद्वीप है। देवलोकसे चार हजार योजनकी दूरी पार करनेपर यह द्वीप मिलता है। हजार योजनकी लम्बाई-चौड़ाईमें इसकी सीमा है। उसके बीचमें 'चन्द्रकान्त' और 'सूर्यकान्त' नामसे प्रसिद्ध दो प्रस्रवणपर्वत हैं। उनके बीचमें 'चद्रावर्त्ता' नामकी एक महान् नदी है, जिसके किनारे बहुसंख्यक वृक्ष हैं और जिसमें अनेक छोटी-छोटी नदियाँ आकर मिलती हैं। 'कुरुवर्ष'की उत्तरी अन्तिम सीमापर यह नदी है। समुद्रकी लहरें प्रायः यहाँ आती रहती हैं। यहाँसे पाँच हजार योजन आगे जानेपर 'सूर्यद्वीप' मिलता है। वह वृत्ताकारमें हजार योजनके क्षेत्रफलमें फैला हुआ है। उसके मध्यभागमें सौ योजन विस्तारवाला तथा उतना ही ऊँचा श्रेष्ठ पर्वत है। उस पर्वतसे 'सूर्यावर्त' नामकी एक नदी प्रवाहित होती है। वहाँ भगवान् सूर्यका निवासस्थान है। वहाँकी प्रजा सूर्यो-पासक एवं दस हजार वर्ष आयुवाली तथा सूर्यके ही समान वर्णकी होती है। 'सूर्यद्वीप'से चार हजार योजनकी दूरीपर पश्चिममें भद्राकारनामक द्वीप है। यह द्वीप समुद्री देशमें है। इसका क्षेत्रफल एक सहस्र योजन है। वहाँ पवनदेवका रत्नजटित दिव्य मन्दिर है। जिसे लोग 'भद्रासन' कहते हैं। पवनदेव अनेक प्रकारका रूप धारणकर यहाँ निवास करते हैं। यहाँकी प्रजा तपे हुए सुवर्णके समान वर्णवाली होती है और इनकी आयु प्रायः पाँच हजार वर्षोंकी होती है।

(अध्याय ८३-८४)

भारतवर्षके नौ खण्डोंका वर्णन

भगवान् रुद्र कहते हैं—विप्रवरो! यह भूमण्डल कमलकी भाँति गोलाकारमें व्यवस्थित है—ऐसा कहा गया है। अब इसके अन्तर्वर्ती नौ उपवर्षों या खण्डोंका वर्णन करता हूँ—सुनो। उनके नाम इस प्रकार हैं—इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वारुण और भारत। ये सभी उपवर्ष समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। इनमेंसे एक-एकका प्रमाण हजार योजन है। भारतवर्षमें सात 'कुल'संज्ञक पर्वत हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्षगिरि, विन्ध्याचल और पारियात्र। इनके अतिरिक्त बहुत-से छोटे-छोटे पर्वत हैं, जिनके नाम यों बताये जाते हैं—मन्दर, शारद, दर्दुर, कैलास, मैनाक, वैद्युत, वारन्धम, पाण्डुर, तुङ्गप्रस्थ, कृष्णगिरि, जयन्त, ऐरावत, ऋष्यमूक, गोमन्त, चित्रकूट, श्रीपर्वत, चकोरकुट, श्रीशैल और कृतस्थल। इनसे भी कुछ छोटे बहुत-से दूसरे पर्वत हैं, जिनमें आर्य तथा म्लेच्छ लोगोंके जनपद हैं। भारतवासी जिन नदियोंका जल पीते हैं वे हैं—गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु, वितस्ता, विपाशा, चन्द्रभागा, सरयू, यमुना, इरावती, देविका, कुहू, गोमती, धूतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, कौशिकी, निश्चीरा, गण्डकी, इक्षुमती और लोहिता आदि। ये सभी नदियाँ हिमालयसे प्रादुर्भूत हुई हैं। 'पारियात्र*' पर्वतसे निकली हुई नदियोंके नाम इस प्रकार हैं—वेदस्मृति, वेदवती, सिन्धु, पर्णाशा, चन्द्रनाभा, नर्मदा, सदानीरा, रोहिणीपारा, चर्मण्वती, विदिशा, वेत्रवती,

* प्रायः अन्य पुराणोंमें इसका नाम 'पारिपात्र' है। यह विन्ध्यका पश्चिमी भाग है, जिसमें अरावलीसहित पठार पर्वतमाला भी सम्मिलित है।

शिप्रा, अवन्ती, और कुन्ती । शोण, ज्योतीरथा, नर्मदा, सुरसा, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, तमसा, पिप्पला, करतोया, पिशाचिका, चित्रोत्पला, विमला, विशाला, वञ्जका, वालुवाहिनी, शुक्तिमती, विरजा, पङ्क्तिनी और रात्री—ये नदियाँ ऋक्षवान्* नामक पर्वतसे प्रकट हुई हैं। विन्ध्यपर्वतकी उपत्यकासे निकली हुई नदियोंके नाम ये हैं—मणिजाला, शुभा, तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, वेणा, पाशा, वैतरणी, वैदिपाला, कुमुद्वती, तोया, दुर्गा और अन्तःशिला। सह्यपर्वतसे प्रकट हुई नदियाँ इन नामोंसे विख्यात हैं—गोदावरी, भीमरथी, कृष्णावेणी, वञ्जुला, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा और बाह्यकावेरी । मलयगिरिसे निकली हुई नदियाँ कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पावती और उत्पलावती नामोंसे विख्यात हैं। महेन्द्रपर्वतसे निकली हुई नदियाँ हैं—त्रिसामा, ऋषिकुल्या, इक्षुला, त्रिदिवा, लाङ्गूलिनी और वंशधरा। ऋषिका, सुकुमारी, मन्दगामिनी, कृपा और पलाशिनी—ये चार नदियाँ शुक्तिमान्†-पर्वतसे प्रवाहित हुई हैं। ये ही सब भारतके 'कुल'पर्वत और प्रधान नदियाँ मानी गयी हैं। इनके अतिरिक्त छोटी-छोटी बहुत-सी नदियाँ हैं। एकलाख योजनवाला यह समग्र भाग 'जम्बूद्वीप' कहलाता है। (अध्याय ८५)

शाक एवं कुश-द्वीपोंका वर्णन

भगवान् रुद्र कहते हैं—अब आप लोग शाकद्वीपका वर्णन सुनें। जम्बूद्वीप अपने दूने परिमाणके लवण-समुद्र-द्वारा आवृत है। गोलाईमें भी यही जम्बूद्वीपके दूने परिमाणमें है। यहाँके निवासी बड़े पवित्र और दीर्घजीवी होते हैं। दरिद्रता, बुढ़ापा और व्याधिका उन्हें पता नहीं रहता। इस शाकद्वीपमें भी सात ही 'कुल'पर्वत हैं। इस द्वीपके दोनों ओर समुद्र हैं—एक ओर लवण-समुद्र और दूसरी ओर क्षीरसमुद्र। वहाँ पूर्वमें फैला हुआ महान् पर्वत उदयाचलके नामसे प्रसिद्ध है। उसके ऊपर (पश्चिम) भागमें जो पर्वत है, उसका नाम 'जलधार' है। उसीको लोग 'चन्द्रगिरि' भी कहते हैं। इन्द्र वहींसे जल लेकर (संसारमें) वर्षा करते हैं। उसके बाद 'श्वेतक'-नामक पर्वत है। उसके अन्तर्गत छः छोटे-छोटे दूसरे पर्वत हैं। वहाँकी प्रजा इन पर्वतोंपर अनेक प्रकारसे मनोरञ्जन करती है। उसके बाद रजतगिरि है। उसीको जनता शाकगिरि भी कहती है। उसके बाद 'आम्बिकेय'पर्वत है, जिसे लोग 'विभ्राजक' तथा केसरी भी कहते हैं। वहींसे वायुका प्रवाह आरम्भ होता है। जो कुलपर्वतोंके नाम हैं, उन्हीं नामोंसे वहाँके वर्षों या खण्डोंकी भी प्रसिद्धि है। वे कुलपर्वत इस प्रकार हैं—उदय, सुकुमार, जलधार, क्षेमक और महाद्रुम। पर्वतोंके दूसरे-दूसरे नाम भी हैं। उसके मध्यमें शाक नामका एक वृक्ष है। वहाँ सात बड़ी-बड़ी नदियाँ हैं। एक-एक नदीके दो-दो नाम हैं। ये हैं—सुकुमारी, कुमारी, नन्दा, वेणिका, धेनु, इक्षुमती और गभस्ति।

भगवान् रुद्र कहते हैं—अब आप लोग कुश नामक तीसरे द्वीपका वर्णन सुनें। यह द्वीप विस्तारमें शाकद्वीपसे दूने परिमाणवाला है। क्षीरसमुद्रके चारों ओर कुशद्वीप है। यहाँ भी सात 'कुल'पर्वत हैं। उन सभी पर्वतोंके एक-एकके दो-दो नाम हैं। जैसे—कुमुद पर्वत, इसीका दूसरा नाम 'विद्रुम' भी है। इसी प्रकार दूसरा पर्वत उन्नत भी हेमनामसे विख्यात है, तीसरा पर्वत द्रोण या पुष्पवान् नामसे विख्यात है, चौथा कङ्क या कुश है, पाँचवाँ पर्वत ईश या अग्निमान् है, छठा पर्वत महिष या हरि है। इसपर अग्निका निवास है और सातवाँ ककुद्म या मन्दर है। ये पर्वत कुशद्वीपमें व्यवस्थित हैं।

* यह गोण्डवानासे उड़ीसातक फैला हुआ, विन्ध्यपर्वतमालाका पूर्वी भाग है।

† यह विन्ध्यपर्वतमालाका मध्यवर्ती भाग है। (पार्जीटर [illegible]) [illegible] निकलती है।

इन पर्वतोंसे विभाजित भूभाग ही विभिन्न वर्ष या खण्ड हैं। उनमें एक-एक वर्षके दो-दो नाम हैं। जैसे—कुमुदपर्वतसे सम्बन्धित वर्ष श्वेत या उद्भिद् कहा जाता है। उन्नतगिरिका वर्ष लोहित या वेणुमण्डल नामसे विख्यात है। बलाहकपर्वतका वर्ष जीमूत या रथाकर नामसे भी प्रसिद्ध है। द्रोण-गिरिके पासके वर्षको कुछ लोग हरिवर्ष कहते हैं और दूसरे बलाधन। यहाँ भी सात नदियाँ हैं। उनमें प्रत्येक नदीके भी दो-दो नाम हैं। जैसे—पहली नदी 'प्रतोया' है। उसीका दूसरा नाम 'प्रवेशा' है। दूसरी नदी 'शिवा' नामसे विख्यात है, जिसका एक नाम 'यशोदा' भी है। तीसरी नदीको 'चित्रा' कहते हैं। उसीकी एक संज्ञा 'कृष्णा' है। चौथी 'ह्लादिनी'को लोग 'चन्द्रा' भी कहते हैं। पाँचवीं नदी 'विद्युल्लता' नामसे प्रसिद्ध है। इसका दूसरा नाम 'शुक्ला' है। छठी नदी 'वर्णा' कहलाती है। उसका एक नाम 'विभावरी' भी है। सातवीं नदीकी संज्ञा 'महती' है। इसीको लोग 'धृति' भी कहते हैं। ये सभी नदियाँ अपना प्रधान स्थान रखती हैं। यहाँ अन्य छोटी-छोटी बहुत-सी नदियाँ हैं। यह कुशद्वीपके अवान्तर भागका वर्णन है। शाकद्वीप शास्त्रोंमें इसके दूने उपकरणोंसे युक्त है, प्रायः ऐसी बात कही जाती है। कुशद्वीपके मध्यमें एक बहुत बड़ी कुशकी झाड़ी है। इसलिये इसका नाम 'कुशद्वीप' पड़ा। अमृतकी तुलना करनेवाले दधिमण्डोद-समुद्रसे, जो मानमें 'क्षीरसमुद्र'-का दुगुना है, घिरा हुआ है। (अध्याय ८६-८७)

क्रौञ्च और शाल्मलिद्वीपका वर्णन

भगवान् रुद्र बोले—अब आपलोग क्रौञ्चद्वीपका वर्णन सुनें। द्वीपोंके क्रममें यह चौथा द्वीप है। इसका परिमाण कुशद्वीपसे दुगुना है। वहाँ एक समुद्र है, जिसे दुगुने परिमाणवाले इस क्रौञ्चद्वीपने घेर रखा है। उस द्वीपमें सात प्रधान पर्वत हैं। पहला जो क्रौञ्च है, उसे लोग 'विद्युल्लता,' 'रैवत' और 'मानस' भी कहते हैं। अन्य पर्वतोंके दो-दो नाम हैं। जैसे—पावन-अन्धकार अच्छोदक-देवावृत, सुराप-देविष्ट, काञ्चनशृङ्ग-देवनन्द, गोविन्द-द्विविन्द और पुण्डरीक-तोयासह। ये सातों रत्नमय पर्वत क्रौञ्चद्वीपमें स्थित हैं, जो एक-से-एक अधिक ऊँचे हैं।

अब वहाँके वर्षोंका वर्णन करता हूँ, उसे सुनो। इस क्रौञ्चद्वीपके वर्ष भी दो-दो नामोंसे पुकारे जाते हैं। जैसे—कुशल-माधव, वामक-संवर्तक, उष्णवान्-सप्रकाश, पावनक-सुदर्शन, अन्धकार-संमोह, मुनिदेश-प्रकाश और दुन्दुभि-अनर्थ आदि। वहाँ नदियाँ भी सात ही हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं। गौरी, कुमुद्वती, संध्या, रात्रि, मनोजवा, ख्याति और पुण्डरीका। ये सातों नदियाँ विभिन्न स्थानोंपर भिन्ननामोंसे पुकारी जाती हैं। गौरीको कहीं पुष्पवहा, कुमुद्वतीको आर्द्रवती, रौद्राको संध्या, सुखावहाको भोगजवा, क्षिप्रोदा-को ख्याति और बहुलाको पुण्डरीका कहते हैं। देशके वर्ण-वैचित्र्यसे प्रभावित अनेकों छोटी-छोटी नदियाँ हैं। इस क्रौञ्चद्वीपके चारों तरफ घृत-समुद्र है, जो शाल्मलिद्वीपसे घिरा है।

भगवान् रुद्र कहते हैं—इस प्रकार चार द्वीपों-का वर्णन हो चुका, अब आपलोग पाँचवें द्वीप तथा वहाँके निवासियोंका वर्णन सुनें। यह पाँचवाँ 'शाल्मलिद्वीप' परिमाणमें 'क्रौञ्चद्वीप'से दुगुना बड़ा है। यह द्वीप घृत-समुद्रके चारों ओर फैला हुआ है। घृत-समुद्रसे विस्तारमें यह दूना है। वहाँ सात प्रधान पर्वत और उतनी ही नदियाँ

हैं । सभी पर्वत पीले सुवर्णमय हैं तथा उनके नाम हैं— सर्वगुण, सौवर्णरोहित, सुमनस, कुशल, जाम्बूनद और वैद्युत । ये 'कुल'पर्वत कहलाते हैं । इन्हींके नामसे यहाँ-के सात वर्ष या खण्ड प्रसिद्ध हैं । अब छठे गोमेदद्वीप-का वर्णन किया जाता है । जिस प्रकार शाल्मलिद्वीप 'सुरोद'से घिरा हुआ है, वैसे ही 'सुरोद' भी अपने दुगुने परिमाणवाले 'गोमेद'से घिरा है । वहाँ दो ही प्रधान पर्वत हैं, जिनमें एकका नाम अवसर और दूसरेका नाम कुमुद है । यहाँ ईखके रसका समुद्र है । उस समुद्रसे दूने विस्तारमें पुष्करद्वीप है, जिससे वह घिर-सा गया है । वहाँ उस पुष्करपर ही मानस नामका एक पर्वत है । उसके भी दो भाग हो गये हैं । वे दोनों भाग बराबर-बराबर प्रमाणमें एक-एक वर्ष बन गये हैं । उसके सभी भागोंमें मीठा जल मिलता है । इसके बाद अब कटाहका वर्णन किया जाता है । यह पृथ्वीका प्रमाण हुआ । ब्रह्माण्डकी लम्बाई-चौड़ाई कटाह (कड़ाहे)की भाँति है । इस प्रकारके विधान किये हुए ब्रह्माण्ड-मण्डलोंकी संख्या सम्भव नहीं है । यह पृथ्वी महाप्रलयमें रसातलमें चली जाती है । प्रत्येक कल्पमें भगवान् नारायण वराहका रूप धारण कर इसे अपने दाढ़की सहायतासे वहाँसे ऊपर ले आते हैं और उन्हींकी कृपासे यह पृथ्वी समुचित स्थानपर स्थित हो पाती है । द्विजवरो ! पृथ्वीकी लम्बाई-चौड़ाईका मान मैंने तुमलोगोंके सामने वर्णन कर दिया । तुम्हारा कल्याण हो । अब मैं अपने निवासस्थान कैलासको जा रहा हूँ ।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! इस प्रकार कहकर महात्मा रुद्र उसी क्षण कैलासके लिये चल पड़े और सम्पूर्ण देवता और ऋषि भी जहाँसे आये थे, वहाँ जानेके लिये प्रस्थित हो गये ।

(अध्याय ८८-८९)

त्रिशक्ति-माहात्म्य *और सृष्टिदेवीका आख्यान

भगवती पृथ्वीने पूछा—भगवन् ! कुछ लोग रुद्रको परमात्मा एवं पुण्यमय शिव कहते हैं, इधर दूसरे लोग विष्णुको ही परमात्मा कहते हैं । कुछ अन्य लोग ब्रह्माको सर्वेश्वर बताते हैं । वस्तुतः इनमेंसे कौन-से देवता श्रेष्ठ तथा कौन कनिष्ठ हैं ? देव ! मेरे मनमें इसे जाननेका कौतूहल हो रहा है । अतः आप इसे बताने-की कृपा कीजिये ।

भगवान् वराह कहते हैं—वरानने ! भगवान् नारा-यण ही सबसे श्रेष्ठ हैं । उनके बाद ब्रह्माका स्थान है । देवि ! ब्रह्मासे ही रुद्रकी उत्पत्ति है और वे रुद्र (तपःसाधनाके प्रभावसे) सर्वज्ञ बन गये । उन भगवान् रुद्रके अनेक प्रकारके आश्चर्यमय कर्म हैं । सुन्दरि ! मैं उनके चरित्रोंका वर्णन करता हूँ, तुम उन्हें सुनो—

महान् रमणीय एवं नाना प्रकारके विचित्र धातुओंसे सुशोभित कैलास नामका एक पर्वत है, जो भगवान् शूलपाणि त्रिलोचन शिवका नित्य-निवास-स्थल है । एक दिनकी बात है—सम्पूर्ण प्राणिवर्गद्वारा नमस्कृत भगवान् पिनाकपाणि अपने सभीगणोंसे घिरे हुए उस कैलास-पर्वतपर विराजमान थे और उनके पासमें ही भगवती पार्वती भी बैठी थीं । इनमेंसे किन्हीं गणोंका मुँह सिंहके समान था और वे सिंहकी ही भाँति गर्जना कर रहे थे । कुछ गण हाथीके समान मुखवाले थे तो कुछ गण घोड़ेकी मुखाकृतिके और कुछके मुख सूँस-जैसे भी थे । उनमेंसे कितने तो गाते, नाचते, दौड़ते और ताली ठोंकते-हँसते-किलकिलाते, गरजते और मिट्टीके ढेलोंको उठाकर परस्पर लड़ रहे थे । कुछ बलके अभिमान

---

* 'वराहपुराण'का यह आख्यान बहुत प्रसिद्ध है । भास्करराययने 'ललितासहस्रनाम'—सौभाग्य भास्करभाष्य'के पृ० ११७, १३३, १३६—३०, १४५—५०, १५४ (३ बार), १६१ आदिपर तथा 'सेतुबन्ध'में भी पग-पगपर इस ('त्रिशक्तिमाहात्म्य')के श्लोकोंको उद्धृत किया है ।

रखनेवाले गण मल्लयुद्धके नियमसे लड़ रहे थे। भगवान् रुद्रका देवी पार्वतीके साथ हास-विलास भी चल रहा था, इतनेमें ही अविनाशी ब्रह्माजी भी देवताओंके साथ वहाँ पहुँच गये। उन्हें आया देखकर भगवान् शिवने उनकी विधिपूर्वक पूजा की और उनसे पूछा—'ब्रह्मन्! आप इस समय यहाँ कैसे पधारे? और आपके मनमें यह घबड़ाहट कैसी है?

ब्रह्माजीने कहा—'अन्धक'* नामके एक महान् दैत्यने सभी देवताओंको अत्यन्त पीड़ित कर रखा है। उससे त्राण पानेकी इच्छासे शरण खोजते हुए सभी देवता मेरे पास पहुँचे। तब मैंने इन लोगोंसे कहा कि 'हम सब लोग भगवान् शंकरके पास चलें।' देवेश! इसी कारण हम सभी यहाँ आये हुए हैं।

इस प्रकार कहकर ब्रह्माजी पिनाकपाणि भगवान् रुद्रकी ओर देखने लगे। साथ ही उन्होंने उसी क्षण परम प्रभु भगवान् नारायणको भी अपने मनमें स्मरण किया। बस, तत्क्षण भगवान् नारायण—ब्रह्मा एवं रुद्र—इन दोनों देवताओंके बीचमें विराजमान हो गये। अब ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र—ये तीनों ही परस्पर प्रेमपूर्वक दृष्टिसे देखने लगे। उस समय उन तीनोंको जो तीन प्रकारकी दृष्टियाँ थीं, अब एकरूपमें परिणत हो गयीं और इससे तत्काल एक कन्याका प्रादुर्भाव हुआ, जिसका स्वरूप परम दिव्य था। उसके अङ्ग नीले कमलके समान श्यामल थे तथा उसके सिरके बाल भी नीले घुँघुराले एवं मुड़े थे। उसकी नासिका, ललाट और मुखकी सुन्दरता असीम थी। विश्वकर्माने शास्त्रोंमें जो अग्निजिह्वके अङ्ग-लक्षण बतलाये हैं, वे सभी लक्षण सुन्दर प्रतिष्ठा पानेवाली उस कुमारी कन्यामें एकत्र दिखायी देते थे। अब ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर—इन तीनों देवताओंने उस दिव्य कन्याको देखकर पूछा—'शुभे! तुम कौन हो? और विज्ञानमयि! देवि! तुम क्या करना चाहती हो?'

इसपर शुक्ल, कृष्ण एवं रक्त—इन तीन वर्णोंसे सुशोभित उस कन्याने कहा—'देवश्रेष्ठो! मैं तो आपलोगोंकी दृष्टिसे ही उत्पन्न हुई हूँ। क्या आपलोग अपनेसे ही उत्पन्न अपनी पारमेश्वरी शक्ति मुझ कन्याको नहीं जानते?'

इसपर ब्रह्मा आदि तीनों देवताओंने अत्यन्त प्रसन्न होकर उस दिव्य कुमारीको वर दिया—'देवि! तुम्हारा नाम 'त्रिकला' होगा। तुम विश्वकी सर्वदा रक्षा करोगी। महाभागे! गुणोंके अनुसार तुम्हारे अन्य भी बहुत-से नाम होंगे और उन नामोंमें सम्पूर्ण कार्योंको सिद्ध करनेकी शक्ति होगी। सुन्दर मुख एवं अङ्गोंसे शोभा पानेवाली देवि! तुममें जो ये तीन वर्ण दिखायी पड़ते हैं, तुम इनसे अपनी तीन मूर्तियाँ बना लो।'

देवताओंके इस प्रकार कहनेपर उस कुमारीने अपने श्वेत, रक्त और श्यामल रंगसे युक्त तीन शरीर बना लिये। ब्रह्माके अंशसे 'ब्राह्मी' (सरस्वती) नामक मङ्गलमयी सौम्यरूपिणी शक्ति उत्पन्न हुई, जो प्रजाओंकी सृष्टि करती है। सूक्ष्म कटिभाग, सुन्दररूप तथा लाल वर्णवाली जो दूसरी कन्या थी, वह 'वैष्णवी' कहलायी। उसके हाथमें शङ्ख एवं चक्र सुशोभित हो रहे थे। वह विष्णुकी कला कही जाती है तथा अखिल विश्वका पालन करती है, जिसे विष्णुमाया भी कहते हैं। जो काले रंगसे शोभा पानेवाली रुद्रकी शक्ति थी और जिसने हाथमें त्रिशूल ले रखा था तथा जिसके दाँत बड़े विकराल थे, वह जगत्का संहार-कार्य करनेवाली 'रुद्राणी' है। ब्रह्मासे प्रकट हुई श्वेत वर्णवाली कन्या 'विभावरी' कहलाती है। उस कुमारीके नेत्र खिले हुए कमलके समान सुन्दर थे। वह ब्रह्माजीके परामर्शसे अन्तर्धान होकर सर्वज्ञता प्राप्त करनेकी अभिलाषासे श्वेतगिरिपर तपस्या करनेके लिये चली गयी और वहाँ पहुँचकर उसने तीव्र तप आरम्भ कर दिया। इधर जो कुमारी भगवान् विष्णुके अंशसे अवतरित हुई थी, वह भी अत्यन्त कठोर

* 'शिवपुराण', 'हरिवंश' आदिमें इसके भगवान् शंकर द्वारा वधका विस्तृत वर्णन है।

तपस्या करनेका संकल्प लेकर मन्दराचल पर्वतपर चली गयी। तीसरी जो श्यामलवर्णकी कन्या थी तथा जिसके नेत्र बड़े विशाल और दाढ़ भयंकर थे तथा जो रुद्रके अंशसे उत्पन्न हुई थी, वह कल्याणमयी कुमारी तपस्या करनेके उद्देश्यसे 'नीलगिरि' पर चली गयी।

कुछ समयके पश्चात् प्रजापति ब्रह्माजी प्रजाओंकी सृष्टिमें तत्पर हुए, पर बहुत समयतक प्रयास करनेपर भी प्रजाकी वृद्धि नहीं हुई। अब वे मन-ही-मन सोचने लगे कि क्या कारण है कि मेरी प्रजा बढ़ नहीं रही है। (भगवान् वराह पृथ्वीसे कहते हैं) सुव्रते! अब ब्रह्माजीने योगाभ्यासके सहारे अपने हृदयमें ध्यान लगाया तो श्वेतपर्वतपर स्थित 'सृष्टि' कुमारीकी तपस्याकी बात उनकी समझमें आ गयी। उस समय तपस्याके प्रभावसे उस कन्याके सम्पूर्ण पाप दग्ध हो चुके थे। फिर तो ब्रह्माजी कमलके समान नेत्रवाली वह दिव्य कुमारी जहाँ विराजमान थी, वहाँ पहुँचकर उस तपस्विनी दिव्य कुमारीको देखा और साथ ही वे ये वचन बोले— 'कमनीय कान्तिवाली कल्याणि! तुम प्रधान कार्यकी अवहेलना करके अब तपस्या क्यों कर रही हो? विशाल नेत्रोंवाली कन्यके! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम वर माँग लो।'

'सृष्टि' देवीने कहा—'भगवन्! मैं एक स्थानपर नहीं रहना चाहती, इसलिये मैं आपसे यह वर माँगती हूँ कि मैं सर्वत्रगामिनी बन जाऊँ।' जब सृष्टिदेवीने प्रजापति ब्रह्मासे ऐसी बात कही, तब उन्होंने उससे कहा— 'देवि! तुम सभी जगह जा सकोगी और सर्वव्यापिनी होगी। ब्रह्माजीके ऐसा कहते ही कमलके समान नेत्रोंवाली वह 'सृष्टि' देवी उन्हींके अङ्कमें लीन हो गयी। अब ब्रह्माजीकी सृष्टि बड़ी तेजीसे बढ़ने लगी और फिर शीघ्र ही उनके सात मानसपुत्र हुए। उन पुत्रोंसे भी अन्य संतानोंकी उत्पत्ति हुई। फिर उनसे बहुत-सी प्रजाएँ उत्पन्न हुईं। इसके बाद स्वेदज, उद्भिज्ज, जरायुज और अण्डज—इन चार प्रकारके प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई। फिर तो चर-अचर प्राणियोंकी सृष्टिसे यह सारा विश्व ही भर गया। यह सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गमात्मक जगत् तथा सारा वाङ्मय विश्व—इन सबकी रचनामें उस 'सृष्टि'देवीका ही हाथ है। उसीने भूत, भविष्य और वर्तमान—इन तीनों कालोंकी भी व्यवस्था की। (अध्याय ९०)

त्रिशक्ति-माहात्म्यमें 'सृष्टि', 'सरस्वती' तथा 'वैष्णवी' देवियोंका वर्णन

भगवान् वराह कहते हैं—सुन्दर अङ्गोंसे शोभा पानेवाली वसुंधरे! उस 'सृष्टिदेवी'का दूसरा विधान भी बहुत विस्तृत है, उसे बताता हूँ, सुनो—परमेष्ठी रुद्रके द्वारा जो वह तीन शक्तिवाली देवी बतायी गयी है, उसके प्रकरणमें सर्वप्रथम श्वेत वर्णवाली सृष्टिदेवीका प्रसङ्ग आया है। वह सम्पूर्ण अक्षरोंसे युक्त होनेपर भी 'एकाक्षरा' कहलाती है। यह देवी कहीं तो 'वागीशा' और कहीं 'सरस्वती' कही जाती है और कहीं वह 'विश्वेश्वरी' और 'अमिताक्षरा' नामसे भी प्रसिद्ध है। कुछ स्थलोंमें उसीको 'ज्ञाननिधि' अथवा 'विभावरी' देवी भी कहते हैं। अथवा वरानने! जितने भी स्त्रीवाची नाम हैं, वे सभी उसके नाम हैं, ऐसा समझना चाहिये।

विष्णुके अंशवाली 'वैष्णवी'देवीका वर्ण लाल है। उनकी आँखें बड़ी-बड़ी हैं तथा उनका रूप अत्यन्त मनोहर है। ये दोनों शक्तियाँ तथा तीसरी जो रुद्रके अंशसे अभिव्यक्त रौद्रीशक्ति है, भगवान् रुद्रको जाननेवालेके लिये एक साथ सिद्ध हो जाती है। देवी

वसुंधरे ! यह सर्वरूपमयी देवी एक ही है, परंतु (वह एक ही यहाँ इस प्रकार) तीन भेदोंसे निर्दिष्ट है। सुन्दरि ! मैंने तुम्हारे सामने इसी सनातनी सृष्टि देवीका वर्णन किया है। स्थावर-जङ्गममय यह अखिल जगत् उस सृष्टि देवीसे ओतप्रोत है। जो यह सृष्टि देवी है, जिससे आदिकालमें अव्यक्तजन्मा ब्रह्माकी सृष्टिका सम्बन्ध हुआ था, उसकी (महिमाको जानकर) पितामह ब्रह्माने उचित शब्दोंमें (इस प्रकार) स्तुति की थी।

ब्रह्माजी बोले—देवि ! तुम सत्यस्वरूपा, सदा अचल रहनेवाली, सबको आश्रय देनेमें कुशल, अविनाशी, सर्वव्यापी, सबको जन्म देनेवाली, अखिल प्राणियोंपर शासन करनेमें परम समर्थ, सर्वज्ञ, सिद्धि-बुद्धिरूपा तथा सम्पूर्ण सिद्धियोंको प्रदान करनेवाली हो। सुन्दरि ! तुम्हारी जय हो ! देवि ! ओंकार तुम्हारा स्वरूप है, तुम उसमें सदा विराजती हो, वेदोंकी उत्पत्ति भी तुमसे ही हुई है। मनोहर मुखवाली देवि ! देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, पशु और वीरुध (वृक्ष-लता आदि)—इन सबका जन्म तुम्हारी ही कृपासे होता है। तुम्हीं विद्या, विद्येश्वरी, सिद्धा, और सुरेश्वरी हो।'

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! जो वैष्णवी देवी तपस्या करनेके लिये मन्दराचल पर्वतपर गयी थी, अब उसका वर्णन सुनो—उस देवीने कौमारव्रत धारण कर विशाल-क्षेत्रमें एकाकी रहकर कठोर तप आरम्भ किया। बहुत दिनोंतक तपस्या करनेके पश्चात् उस देवीके मनमें विक्षोभ उत्पन्न हुआ, जिससे अन्य बहुत-सी कुमारियाँ उत्पन्न हो गयीं; उनके नेत्र बड़े सुन्दर एवं बाल काले और घुँघराले थे। उनके होठ बिम्बाफलके समान लाल थे और आँखें बड़ी-बड़ी थीं और उन कन्याओंके शरीरसे दिव्य प्रकाश फैल रहा था। ऐसी करोड़ों कुमारियाँ उस वैष्णवी देवीके शरीरसे प्रकट हुई थीं फिर उस देवीने उन कुमारियोंके लिये सैकड़ों नगर और ऊँचे महलोंका निर्माण किया। उन भवनोंके भीतर मणियोंकी सीढ़ियाँ, अनेक जलाशय एवं छोटे-छोटे सुन्दर उपवन थे। उस मन्दराचलपर स्थित उन असंख्य भवनोंमें अब वे कन्याएँ निवास करने लगीं। शोभने ! उनमेंसे प्रधान-प्रधान कुछ कन्याओंके नाम इस प्रकार हैं—विद्युत्प्रभा, चन्द्रकान्ति, सूर्यकान्ति, गम्भीरा, चारुकेशी, सुजाता, मुञ्जकेशिनी, उर्वशी, शशिनी, शीलमण्डिता, चारु-कन्या, विशालाक्षी, धन्या, चन्द्रप्रभा, स्वयम्प्रभा, चारुमुखी, शिवदूती, विभावरी, जया, विजया, जयन्ती और अपराजिता। इन देवियोंने भगवती वैष्णवीके अनुचरियोंका स्थान ग्रहण कर लिया। इतनेमें ब्रह्माके पुत्र तपोधन नारदजी एक दिन वहाँ अचानक आ गये। उन्हें देखकर वैष्णवीदेवीने विद्युत्प्रभासे कहा—तुम इन्हें यह आसन दो तथा पैर धोने और आचमन करनेके लिये जल भी बहुत शीघ्र इनके पास उपस्थित कर दो।

इस प्रकार वैष्णवी देवीके कहनेपर विद्युत्प्रभाने मुनिवर नारदको आसन, पाद्य और अर्घ्य निवेदन किया। और वे भी देवीको नमस्कार कर आसनपर बैठ गये। अब वैष्णवीने उनसे कहा—'मुनिवर ! इस समय आप किस लोकसे यहाँ पधारे हैं और आपका क्या कार्य है ? नारदमुनिने कहा—'कल्याणि ! मैं पहले ब्रह्मलोकमें गया था, फिर वहाँसे इन्द्रलोकमें और फिर कैलासपर्वतपर पहुँचा। देवेश्वरि ! पुनः मेरे मनमें आपके दर्शनकी इच्छा हुई, अतः यहाँ आ गया। इस प्रकार कहकर श्रीमान् नारद मुनि वैष्णवी देवीकी ओर देखने लगे। नारद आश्चर्यसे चकित हो गये ! उन्होंने मनमें सोचा। 'अहो ! इनका रूप तो बड़ा विचित्र है। इनकी सुन्दरता, धीरता एवं कान्ति कैसी आश्चर्यकारिणी है। फिर इतनेपर भी इनकी उपरति—निष्कामता तो और ही

आश्चर्यदायिनी है। यह सब देख नारदजी फिर कुछ खिन्न-से हो गये तथा सोचने लगे—'देवता, गन्धर्व, सिद्ध, यक्ष, किंनर और राक्षसोंकी स्त्रियोंमें भी कोई इतना सुन्दर नहीं है। विश्वकी अन्य स्त्रियोंमें भी कहीं ऐसा रूप नहीं दीखता।

फिर नारदजी सहसा उठे और वैष्णवीदेवीको प्रणाम कर आकाश मार्गद्वारा समुद्रमें स्थित महिषासुरकी राजधानीमें पहुँच गये। उसने ब्रह्माजीके वरप्रसादसे सारी देव-सेनाको पराजित कर दिया था। महिषासुरने सभी लोकोंमें विचरण करनेवाले नारदमुनिको आये देखकर बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे पूजा की।

नारदमुनिने उस असुरसे कहा—असुरेन्द्र ! सावधान होकर सुनो। विश्वमें रत्नके समान एक कन्या प्रकट हुई है। तुमने तो वरदानके प्रभावसे चर-अचर तीनों लोकोंको अपने वशमें कर लिया है। दैत्य ! मैं ब्रह्मलोकसे मन्दराचलपर गया, वहाँ मैंने देवीकी वह पुरी देखी, जो सैकड़ों कन्याओंसे व्याप्त है। उनमें जो सबसे प्रधान है वैसी देवताओं, दैत्यों और यक्षोंके यहाँ भी कोई सुन्दरी कन्या नहीं दिखायी देती। कहाँतक कहूँ, मैंने उसकी जैसी सुन्दरता देखी है तथा उसमें जितना सतीत्वका प्रभाव है, ऐसी कन्या समस्त ब्रह्माण्डमें भी कभी कहीं नहीं देखी। देवता, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध, चारण तथा सब अन्य दैत्योंके अधिपति भी उसी कन्याकी उपासना करते हैं। पर देवताओं और गन्धर्वोंपर जो विजय प्राप्त करनेमें समर्थ न हो, ऐसा कोई भी व्यक्ति उस कन्याको जीतनेमें समर्थ नहीं है।

वसुंधरे ! इस प्रकार कहकर नारद मुनि क्षणभर वहाँ ठहरकर फिर महिषासुरसे आज्ञा लेकर तुरंत वहाँसे प्रस्थित हो गये और वे जिधरसे आये थे, उधर ही आकाशकी ओर चले गये। (अध्याय ९१—९२)

महिषासुरकी मन्त्रणा और देवासुर-संग्राम

भगवान् वराह बोले—नारदजीके चले जानेपर महिषासुर सदा चकितचित्तसे उसी कन्याका ध्यान करने लगा। अतः उसे तनिक भी कहीं चैन न था। अब उसने अपने मन्त्रिमण्डलको बुलाया। उसके आठ मन्त्री थे, जो सभी शूरवीर, नीतिमान् एवं बहुश्रुत थे। वे थे—प्रघस, विघस, शङ्कुकर्ण, विभावसु, विद्युन्माली, सुमाली, पर्जन्य और क्रूर। वे महिषासुरके पास आकर बोले कि 'हम लोगोंके लिये जो सेवाकार्य हो, आप उसकी तुरंत आज्ञा कीजिये।' उनकी बात सुनकर दैत्योंका शासक पराक्रमी महिषासुर बोला—'नारदजीके कथनानुसार मैंने एक कन्याको पानेके लिये तुमलोगोंको यहाँ बुलाया है। मन्त्रियो ! देवर्षि नारदने मुझे एक लड़कीकी बात बतायी है; किंतु देवताओंके स्वामी इन्द्रको जीते बिना उसकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। अब आप सब लोग विचार-कर शीघ्र बतायें कि वह कन्या किस प्रकार सुलभ होगी और देवता कैसे पराजित होंगे !'

महिषासुरके ऐसा कहनेपर सभी मन्त्री अपना-अपना मत बतलाने लगे। प्रघस बोला—'दैत्यवर ! आपसे नारदमुनिने जिस कन्याकी बात कही है, वह महान् सती है। उसका नाम 'वैष्णवी' देवी है। उस सुन्दर रूप धारण करनेवाली देवीको पराशक्ति कहा जाता है। जो गुरुकी पत्नी, राजाकी रानी तथा सामन्त, मन्त्री या सेनापतिकी स्त्रियोंके अपहरणकी इच्छा करता है, वह राजा शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। प्रघसके इस प्रकार कहनेपर विघसने कहा—'राजन् ! उस देवीके विषयमें प्रघसने सत्य बात ही बतलायी है। यदि सब

लोगोंका एक मत हो जाय और बुद्धि इस बातका समर्थन करे तो सर्वप्रथम हमें उस कन्याका वरण ही करना चाहिये। परंतु स्वच्छन्दतापूर्वक उसका बलात् अपहरण या अपकर्षण कदापि ठीक नहीं है। मन्त्रिवरो! यदि मेरी बात आप लोगोंको रुचे तो हम सभी मन्त्री उस देवीके पास चलकर प्रार्थना करें। पहले साम-नीतिसे ही काम लेना चाहिये। यदि इससे काम न बने तो हम-लोगोंको दानका आश्रय लेना चाहिये। इतनेपर भी काम न बने तो भेद-नीतिका सहारा लिया जाय और यदि इतने पर भी काम न बने, तो अन्तमें दण्डका प्रयोग करना चाहिये। इस क्रमसे नीतियोंका प्रयोग करनेपर भी यदि वह कन्या न मिल सके तो हम सभी लोग अपने अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित होकर चलें और फिर बलपूर्वक उसे देवताओंसे छीन लें।

विघसके इस प्रकार कहनेपर अन्य मन्त्री बोले, उस सुन्दरी कन्याके विषयमें विघसने जो बात कही है, वह बहुत ही युक्त है। हम लोग यथाशीघ्र वही करें। अब शास्त्रोंके जानकार, नीतिज्ञ, पवित्र और शक्तिसम्पन्न एक दूतको वहाँ भेज दिया जाय। दूतके द्वारा उसके रूप, पराक्रम, शौर्य-गर्व, बल, बन्धुओंके सहयोग, सामग्री, रहनेके साधन आदिकी जानकारी प्राप्त कर उस देवीको प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न करना चाहिये।

जब विघसने सभामें यह बात कही तो सब लोग उसे 'साधु-साधु' (बहुत ठीक) कहने लगे। सुन्दरि! तदनन्तर सभी मन्त्रियोंने मन्त्रिश्रेष्ठ विघसकी प्रशंसा की और साथ ही उस देवीको देखनेके लिये सभी लक्षणोंसे युक्त 'विद्युत्प्रभनामक' दूतको भेजा। इधर महिषासुर-के मन्त्रियोंने मन्त्रिमण्डलकी पुनः बैठक बुलायी और परस्पर परामर्श कर उसे उस कन्याको शीघ्र प्राप्त करनेके लिये देवताओंपर आक्रमण कर विजय प्राप्त करनेकी सलाह दी। महिषकी सेनामें उस समय ९ पद्मकी संख्यामें असुर योद्धा थे। उसने अपने सेनापति विरूपाक्षको ससैन्य युद्धके लिये प्रस्थान करनेकी आज्ञा दी।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! इस सारी सेना-के साथ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला महान् पराक्रमी महिषासुर हाथीपर सवार होकर मन्दराचल पर्वतपर पहुँचा। उसके वहाँ पहुँचते ही देवसमुदायमें भगदड़ मच गयी। सभी असुरसैनिकोंने अपने-अपने शस्त्रों और वाहनोंके साथ गम्भीर गर्जना करते हुए देवताओंपर आक्रमण कर दिया। उनका तुमुल युद्ध देखकर रोंगटे खड़े हो जाते थे। अञ्जनके समान काले नीलकुक्षि, मेघवर्ण, बलाहक, उदाराक्ष, ललाटाक्ष, सुभीम, भीमविक्रम और स्वर्भानु—इन आठ दैत्योंने मोर्चेपर वसुओंको मारना आरम्भ किया। इधर ध्वाङ्क्ष, ध्वस्तकर्ण, शङ्कुकर्ण, वज्रके समान कठोर अङ्गोंवाला ज्योतिर्वीर्य, विद्युन्माली, रक्ताक्ष, भीमदंष्ट्र, विद्युज्जिह्व, अतिकाय, महाकाय, दीर्घबाहु और कृतकान्त—ये प्रधान गिने जानेवाले बारह दैत्य युद्ध-भूमिमें आदित्योंकी ओर दौड़े। काल, कृतान्त, रक्ताक्ष, हरण, मृगहा, नल, यज्ञहा, ब्रह्महा, गोघ्न, स्त्रीघ्न, और संवर्तक—इन ग्यारह दैत्योंने रुद्रोंपर चढ़ाई कर दी। महिषासुर भी उन देवताओंकी ओर बड़े वेगसे दौड़ा। इस प्रकार आदित्यों, वसुओं और रुद्रोंके साथ अगणित संख्यामें असुर और राक्षस लड़ने लगे। उस युद्धभूमिमें असुरोंके द्वारा देवताओंके सैनिक बड़े परिमाणमें नष्ट हो गये। अन्तमें देवताओंकी सेना भग्न हो गयी और इन्द्र तथा सम्पूर्ण देवता उस युद्ध-भूमिमें ठहर न सके। दानवोंने उन्हें अनेक प्रकारके शस्त्रों, शूलों, पट्टिशों और मुद्गरोंसे अर्दित कर दिया था। अन्तमें दानवोंसे पीड़ित होकर ये सभी देवता ब्रह्माजीके लोकमें गये।

(अध्याय ९३-९४)

महिषासुरका वध

भगवान् वराह बोले—वसुधे ! अब इधर विद्युत्प्रभ नामक दैत्य भी महिषासुरको प्रणामकर चला और उसके दूतके रूपमें भगवती वैष्णवीके पास पहुँचा, जहाँ वे सैकड़ों अन्य कुमारियोंके साथ बैठी थीं। फिर बिना किसी शिष्टाचारके ही उसने उनसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

विद्युत्प्रभ बोला—"देवि ! पूर्व समयकी बात है—सृष्टिके प्रारम्भमें सुपार्श्व नामक एक अत्यन्त ज्ञानी ऋषि थे। उनका जन्म सरस्वती-नदीके तटवर्ती देशमें हुआ था। सिन्धुद्वीप नामसे प्रसिद्ध उनके मित्र भी उन्हींके समान तेजस्वी एवं प्रतापी थे। माहिष्मती नामकी उत्तम पुरीमें उन्होंने निराहारका नियम लेकर कठिन तपस्या प्रारम्भ कर दी। विप्रचित्ति नामक दैत्यकी माहिष्मती ही नामकी कन्या बड़ी सुन्दरी थी। एक बार वह सखियोंके साथ घूमती हुई पर्वतकी उपत्यकामें गयी; जहाँ उसे एक तपोवन दिखायी पड़ा। उस तपोवनके स्वामी एक ऋषि थे। जो मौनव्रत धारण कर तपस्या कर रहे थे। उन महात्माका वह पवित्र आश्रम रम्य वनखण्डोंके कारण अत्यन्त मनोहर जान पड़ता था। जब विप्रचित्तिकुमारी माहिष्मतीने उसे देखा तो वह सोचने लगी—'मैं इस तपस्वीको भयभीत कर क्यों न स्वयं इस आश्रममें रहूँ और सखियोंके साथ आनन्दसे विहार करूँ।'

"ऐसा सोचकर उस दानवकन्या माहिष्मतीने अपना रूप एक भैंसका बनाया। उसके सिरपर अत्यन्त तीक्ष्ण सींग सुशोभित हो रहे थे। विश्वेश्वरि ! वह राक्षसी अपनी सखियोंको साथ लेकर सुपार्श्व ऋषिके पास पहुँची। फिर तो सुन्दर मुखवाली उस दैत्यकन्याने सखियोंसहित वहाँ पहुँचकर ऋषिको डराना आरम्भ कर दिया। एक बार तो वे ऋषि अवश्य डर गये, पर पीछे उन्होंने ज्ञाननेत्रसे देखा तो बात उनकी समझमें आ गयी कि यह सुन्दर नेत्रवाली (भैंस नहीं) कोई राक्षसी है। अतः मुनिने क्रोधमें आकर उसे शाप दे दिया—'दुष्टे ! तू भैंसका वेष बनाकर जो मुझे डरानेका प्रयास कर रही है, इसके फलस्वरूप तुझे सौ वर्षोंतक भैंसके रूपमें ही रहना पड़ेगा।'

"ऋषिके इस प्रकार कहनेपर दानवकन्या माहिष्मती काँप उठी और उनके पैरोंपर गिरकर रोती हुई कहने लगी—'मुने ! आप कृपया अपने इस शापको समाप्त कर दें। माहिष्मतीकी प्रार्थनापर दयालु मुनिने उसके शापके अन्तका समय बता दिया और उससे कहा—'भद्रे ! इस भैंसके रूपसे ही तुम एक पुत्र उत्पन्नकर शापसे मुक्त हो जाओगी, मेरी बात सर्वथा असत्य नहीं हो सकती।'

"ऋषिके यों कहनेपर माहिष्मती नर्मदानदीके तटपर गयी, जहाँ तपस्वी सिन्धुद्वीप तपस्या कर रहे थे। वहीं कुछ समय पूर्व एक दैत्यकन्या इन्दुमती जलमें नंगे स्नान कर रही थी। उसका रूप अत्यन्त मनोहर था। उसपर दृष्टि पड़ते ही मुनिका रेत शिलाखण्डपर स्खलित हो गया, जो एक सोते-से होकर नर्मदामें आया। अब माहिष्मतीकी दृष्टि उसपर पड़ी। उसने अपनी सखियोंसे कहा—'मैं यह स्वादिष्ठ जल पीना चाहती हूँ।' और ऐसा कहकर वह उस रेतको पी गयी, जिससे उसे गर्भ रह गया। समयानुसार उससे एक पुत्रकी उत्पत्ति हुई, जो बड़ा पराक्रमी, प्रतापी और बुद्धिमान् हुआ और वही 'महिषासुर' नामसे प्रसिद्ध हुआ है। देवि ! देवताओंके सैनिकोंको रौंदनेवाला वही महिष आपका वरण कर रहा है। अनघे ! वह महान् असुर युद्धभूमिमें देवसमुदायको भी परास्त कर चुका है। अब वह सारी त्रिलोकीको जीतकर आपको सौंप देगा। अतः आप भी उसका वरण करें।"

दूतके ऐसा कहनेपर भगवती वैष्णवीदेवी बड़े जोरोंसे हँस पड़ीं। उनके हँसते समय उस दूतको देवीके उदरमें चर और अचरसहित तीनों लोक दीखने लगे। वह उसी क्षण आश्चर्यसे घबराकर मानो चक्कर खाने लगा। अब उस दूतके उत्तरमें देवीकी प्रतिहारिणी (द्वारपालिका)ने, जिसका नाम जया था, भगवती वैष्णवीके हृदयकी बात कहना प्रारम्भ किया।

जया बोली—'कन्याको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले महिषने तुझसे जैसा कहा है, तुमने वैसी ही बात यहाँ आकर कही है। किंतु समस्या यह है कि इस वैष्णवीदेवीने सदाके लिये 'कौमार-व्रत' धारण कर रखा है। यहाँ इस देवीकी अनुगामिनी अन्य भी बहुत-सी वैसी ही कुमारियाँ हैं। उनमेंसे एक भी कुमारी तुम्हें लभ्य नहीं है। फिर स्वयं भगवती वैष्णवीके पानेकी तो कल्पना ही व्यर्थ है। दूत! तुम बहुत शीघ्र यहाँसे चले जाओ। तुम्हारी दूसरी कोई बात यहाँ नहीं हो सकेगी।'

इस प्रकार प्रतिहारिणीके कहनेपर विद्युत्प्रभ वहाँसे चला गया। इतनेमें ही परम तपस्वी मुनिवर नारदजी उच्च स्वरसे वीणाकी तान छेड़ते हुए आकाशमार्गसे वहाँ पहुँचे। उन मुनिने 'अहोभाग्य! अहोभाग्य!' कहते हुए उन कुमारीको प्रणाम किया और देवीद्वारा पूजित होकर वे सुन्दर आसनपर बैठ गये। फिर सम्पूर्ण देवियोंको प्रणामकर वे कहने लगे—'देवि! देवसमुदायने बड़े आदरसे मुझे आपके पास भेजा है; क्योंकि महिषासुरने संग्राममें उन्हें परास्त कर दिया है। देवि! यही नहीं, वह दैत्यराज आपको पानेके लिये भी प्रयत्नशील है। वरानने! देवताओंकी यह बात आपको बताने आया हूँ। देवेश्वरि! आप डटकर उस दैत्यसे युद्ध करें तथा उसे मार डालें।'

भगवती वैष्णवीसे यों कहकर नारदजी तुरंत अन्तर्धान हो गये। वे इच्छानुसार वहाँसे कहीं अन्यत्र चले गये। अब देवीने सभी कन्याओंसे कहा—'तुम सभी अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हो जाओ'। तब वे समस्त परम पराक्रमी कन्याएँ देवीकी आज्ञासे भयंकर आकार धारणकर ढाल, तलवार और धनुष आदि शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्ज हो दैत्योंका संहार करने तथा युद्ध करनेके विचारसे डट गयीं। इतनेमें ही महिषासुरकी सेना भी देवसेनाको छोड़कर वहीं आ गयी। फिर क्या था, उन स्वाभिमानिनी कन्याओं तथा दानवोंमें युद्ध छिड़ गया। उन कन्याओंके प्रयाससे असुरोंकी वह चतुरङ्गिणी सेना क्षणभरमें समाप्त हो गयी। कितनोंके सिर कटकर पृथ्वीपर गिर पड़े। अन्य बहुत-से दैत्योंकी छाती चीरकर क्रव्यादगण रक्त पीने लगे। अनेक प्रधान दानवोंके मस्तक कट गये और वे कबन्धरूपमें नृत्य करने लग गये। इस प्रकार एक ही क्षणमें पापबुद्धिवाले वे असुर युद्धभूमिसे भाग चले। कुछ दूसरे दैत्य भागते हुए महिषासुरके पास पहुँचे। निशाचरोंकी उस विशाल सेनामें हाहाकार मच गया। उनकी ऐसी व्याकुलता देखकर महिषासुरने सेनापतिसे कहा—'सेनापते! यह क्या? मेरे सामने ही सेनाका ऐसा संहार?' तब हाथीके समान आकृतिवाले 'यज्ञहनु' (विरूपाक्ष)ने महिषासुरसे कहा—'स्वामिन्! इन कुमारियोंने ही चारों ओरसे हमारे सैनिकोंको भगा दिया है।'

अब क्या था? महिषासुर हाथमें गदा लेकर उधर दौड़ पड़ा, जहाँ देवताओं एवं गन्धर्वोंसे सुपूजित भगवती वैष्णवी विराजमान थीं। उसे आते देखकर भगवती वैष्णवीने अपनी बीस भुजाएँ बना लीं और उनके बीसों हाथोंमें क्रमशः धनुष, ढाल, तलवार, शक्ति, बाण, फरसा, वज्र, शङ्ख, त्रिशूल, गदा, मुसल, चक्र, बर्छा, दण्ड, पाश, ध्वज, घण्टा, पानपात्र, अक्षमाला एवं कमल—ये आयुध विराजमान हो गये। उन देवीने कवच भी धारण कर लिया और सिंहपर सवार हो गयीं। फिर उन्होंने देवाधिदेव प्रलयंकर भगवान

भगवती वैष्णवी देवी



महिषासुर मर्दिनी

[पृष्ठ सं० १६३]

रुद्रको स्मरण किया। स्मरण करते ही साक्षात् वृषध्वज वहाँ तत्क्षण पहुँच गये। उन्हें प्रणामकर देवीने सूचित किया—'देवेश्वर! मैं सम्पूर्ण दैत्योंपर विजय प्राप्त करना चाहती हूँ। सनातन प्रभो! बस, आप केवल यहाँ उपस्थित रहकर (रण-क्रीडा) देखते रहें।'

यों कहकर भगवती परमेश्वरी सारी आसुरी सेनाका संहार कर महिषकी ओर दौड़ीं। महिष भी अब उनपर बड़े वेगसे टूट पड़ा। वह दानवराज कभी लड़ता, कभी भागता और कभी पुनः मोर्चेपर डट जाता। शोभने! उस दानवका देवीके साथ देवताओंके वर्षसे दस हजार वर्षोंतक यह संग्राम चलता रहा। अन्तमें वह डरकर सारे ब्रह्माण्डमें भागने लगा। फिर देवीने शतशृङ्गपर्वतपर* उसे पैरोंसे दबाकर शूलद्वारा मार डाला और तलवारद्वारा उसका सिर काटकर धड़से अलग कर दिया। महिषासुरका जीव शरीरसे निकलकर देवीके शस्त्र-निपातके प्रभावसे स्वर्गमें चला गया। उस अजेय असुरको पराजित देखकर ब्रह्माजीसहित सम्पूर्ण देवता देवीकी इस प्रकार स्तुति करने लगे।

देवताओंने स्तुति की—महान् ऐश्वर्योंसे सुसम्पन्न देवि! गम्भीरा, भीमदर्शना, जयस्था, स्थितिसिद्धान्ता, त्रिनेत्रा, विश्वतोमुखी, जया, जाप्या, महिषासुरमर्दिनी, सर्वगा, सर्वा, देवेशी, विश्वरूपिणी, वैष्णवी, वीतशोका, ध्रुवा, पद्मपत्रशुभेक्षणा, शुद्ध-सत्त्वव्रतस्था, चण्डरूपा, विभावरी, ऋद्धि-सिद्धिप्रदा, विद्या, अविद्या, अमृता, शिवा, शाङ्करी, वैष्णवी, ब्राह्मी, सर्वदेवनमस्कृता, घण्टाहस्ता, त्रिशूलास्त्रा, उग्ररूपा, विरूपाक्षी, महामाया और अमृतस्रवा—इन विशिष्ट नामोंसे युक्त हम आपकी उपासना करते हैं। आप परम पुण्यमयी देवीके लिये हमारा निरन्तर नमस्कार है। ध्रुवस्वरूपा देवि! आप सम्पूर्ण प्राणियोंकी हितचिन्तिका हैं। अखिल प्राणी आपके ही रूप हैं। विद्याओं, पुराणों और शिल्पशास्त्रोंकी आप ही जननी हैं। समस्त संसार आपपर ही अवलम्बित है। अम्बिके! सम्पूर्ण वेदोंके रहस्यों और सभी देहधारियोंके केवल आप ही शरण हैं। शुभे! आपको सामान्य जनता विद्या एवं अविद्या नामसे पुकारती है। आपके लिये हमारा निरन्तर शतशः नमस्कार है। परमेश्वरि! आप विरूपाक्षी, क्षान्ति, क्षोभितान्तर्जला और अमला नामसे भी विख्यात हैं। महादेवि! हम आपको बारंबार नमस्कार करते हैं। भगवती परमेश्वरि! रणसंकटके उपस्थित होनेपर जो आपकी शरण लेते हैं, उन भक्तोंके सामने किसी प्रकारका अशुभ नहीं आता। देवि! सिंह-व्याघ्रके भय, चोर-भय, राज-भय, या अन्य घोर भयके उपस्थित होनेपर जो पुरुष मनको सावधान कर इस स्तोत्रका सदा पाठ करेगा, वह इन सभी संकटोंसे छूट जायगा। देवि! कारागारमें पड़ा हुआ मानव भी यदि आपका स्मरण करेगा तो बन्धनोंसे उसकी मुक्ति हो जायगी और वह आनन्दपूर्वक सुखसे स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करेगा।

भगवान् वराह कहते हैं—सुन्दरी पृथ्वि! इस प्रकार देवताओंद्वारा स्तुति-नमस्कार किये जानेपर भगवती वैष्णवीने उनसे कहा—'देवतागण! आपलोग कोई उत्तम वर माँग लें।

देवता बोले—पुण्यस्वरूपिणी देवि! आपके इस स्तोत्रका जो पुरुष पाठ करेंगे, उनकी आप सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करनेकी कृपा करें। यही हमारा अभिलषित वर है। इसपर सर्वदेवमयी देवीने उन देवताओंसे 'एवमस्तु' कहकर वहाँसे उनको विदा कर दिया और स्वयं वहीं विराजमान रहीं। धरावरे! यह देवीके दूसरे स्वरूपका वर्णन हुआ। जो इसे जान लेता है, वह शोक-दुःख एवं दोषोंसे मुक्त होकर भगवतीके अनामयपदको प्राप्त करता है।

(अध्याय ९५)

* यह हिमालयका पुत्र कहा जाता है। पाण्डवोंका जन्म यहीं हुआ था। (महाभा० १। १२२-२३) यहाँ (वैष्णवी देवी-जम्मूसे ४५ मील) पर सिद्धि शीघ्र मिलती है। 'हरिविलास' तथा 'वैद्य-जीवन'के रचयिता षष्टिकाशतककर्ता लोलिम्बराज इन्हीं देवीके उपासक थे।

त्रिशक्तिमाहात्म्यमें रौद्रीव्रत

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! जो रौद्रीशक्ति मनमें तपस्याका निश्चय कर 'नीलगिरि'पर गयी थीं और जिनका प्राकट्य रुद्रकी तमःशक्तिसे हुआ था, अब उनके व्रतकी बात सुनो। अखिल जगत्की रक्षाके निश्चयसे वे दीर्घकालतक तपस्याके साधनमें लगी रहीं और पञ्चाग्नि-सेवनका नियम बना लिया। इस प्रकार उन देवीके तपस्या करते हुए कुछ समय बीत जानेपर 'रुरु'-नामक एक असुर उत्पन्न हुआ। जो महान् तेजस्वी था। उसे ब्रह्माजीका वर भी प्राप्त था। समुद्रके मध्यमें वनोंसे घिरी 'रत्नपुरी' उसकी राजधानी थी। सम्पूर्ण देवताओंको आतङ्कित कर वह दानवराज वहीं रहकर राज्य करता था। करोड़ों असुर उसके सहचर थे, जो एक-से-एक बढ़-चढ़कर थे। उस समय ऐश्वर्यसे युक्त वह 'रुरु' ऐसा जान पड़ता था, मानो दूसरा इन्द्र ही हो। बहुत समय व्यतीत हो जानेके पश्चात् उसके मनमें लोकपालोंपर विजय प्राप्त करनेकी इच्छा उत्पन्न हुई। देवताओंके साथ युद्ध करनेमें उसकी स्वाभाविक रुचि थी, अतः एक विशाल सेनाका संग्रह कर जब वह महान् असुर रुरु युद्ध करनेके विचारसे समुद्रसे बाहर निकला, तब उसका जल बहुत जोरोंसे ऊपर उछलने लगा और उसमें रहनेवाले नक्र, घड़ियाल तथा मत्स्य घबड़ा गये। वेलाचलके पार्श्ववर्ती सभी देश उस जलसे आप्लावित हो उठे। समुद्रका अगाध जल चारों ओर फैल गया और सहसा उसके भीतरसे अनेक असुर विचित्र कवच तथा आयुधसे सुसज्जित होकर बाहर निकल पड़े एवं युद्धके लिये आगे बढ़े। ऊँचे हाथियों तथा अश्व-रथ आदिपर सवार होकर वे असुर-सैनिक युद्धके लिये आगे बढ़े। उनके लाखों एवं करोड़ोंकी संख्यामें पदाति सैनिक भी युद्धके लिये निकल पड़े।

शोभने ! रुरुकी सेनाके रथ सूर्यके रथके समान थे और उनपर यन्त्रयुक्त शस्त्र सुसज्ज थे। ऐसे असंख्य रथोंपर उसके अनुगामी दैत्य हस्तत्राणसे सुरक्षित होकर चल पड़े इन असुर सैनिकोंने देवताओंके सैनिकोंकी शक्ति कुण्ठित कर दी और वह अपनी चतुरङ्गिणी सेना लेकर इन्द्रकी नगरी अमरावतीपुरीके लिये चल पड़ा। वहाँ पहुँचकर दानवराजने देवताओंके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया और वह उनपर मुद्गरों, मुसलों, भयंकर बाणों और दण्ड आदि आयुधोंसे प्रहार करने लगा। इस युद्धमें इन्द्रसहित सभी देवता उस समय अधिक देरतक टिक न सके और वे आहत हो मुँह पीछे कर भाग चले। उनका सारा उत्साह समाप्त हो गया तथा हृदय आतङ्कसे भर गया। अब वे भागते हुए उसी नीलगिरि पर्वतपर पहुँचे, जहाँ भगवती रौद्री तपस्यामें संलग्न होकर स्थित थीं। देवीने देवताओंको देखकर उच्चस्वरसे कहा—'भय मत करो'।

देवी बोलीं—देवतागण ! आपलोग इस प्रकार भीत एवं व्याकुल क्यों हैं ? यह मुझे तुरंत बतलाएँ।

देवताओंने कहा—'परमेश्वरि ! इधर देखिये ! यह 'रुरु' नामक महान् पराक्रमी दैत्यराज चला आ रहा है। इससे हम सभी देवता त्रस्त हो गये हैं, आप हमारी रक्षा कीजिये।' यह देखकर देवी अट्टहासके साथ हँस पड़ीं। देवीके हँसते ही उनके मुखसे बहुत-सी अन्य देवियाँ प्रकट हो गयीं, जिनसे मानो सारा विश्व भर गया। वे विकृत रूप एवं अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित थीं और अपने हाथोंमें पाश, अङ्कुश, त्रिशूल तथा धनुष धारण किये हुए थीं। वे सभी देवियाँ करोड़ोंकी संख्यामें थीं तथा भगवती तामसीको चारों ओरसे घेरकर खड़ी हो गयीं। वे सब दानवोंके

साथ युद्ध करने लगीं और तत्काल असुरोंके सभी सैनिकोंका क्षणभरमें सफाया कर दिया। देवता अब पुनः लड़ने लग गये थे। कालरात्रिकी सेना तथा देवताओंकी सेना अब नयी शक्तिसे सम्पन्न होकर दैत्योंसे लड़ने लगीं और उन सभीने समस्त दानवोंके सैनिकोंको यमलोक भेज दिया। बस, अब उस महान् युद्धभूमिमें केवल महादैत्य 'रुरु' ही बच रहा था। वह बड़ा मायावी था। अब उसने 'रौरवी' नामक भयंकर मायाकी रचना की, जिससे सम्पूर्ण देवता मोहित होकर नींदमें सो गये। अन्तमें देवीने उस युद्ध-स्थलपर त्रिशूलसे दानवको मार डाला। शुभलोचने! देवीके द्वारा आहत हो जानेपर 'रुरु'-दैत्यके चर्म (धड़) और मुण्ड—अलग-अलग हो गये। दानवराज 'रुरु'के चर्म और मुण्ड जिस समय पृथक् हुए, उसी क्षण देवीने उन्हें उठा लिया, अतः वे 'चामुण्डा' कहलाने लगीं। वे ही भगवती महारौद्री, परमेश्वरी, संहारिणी और 'कालरात्रि' कही जाती हैं। उनकी अनुचरी देवियाँ करोड़ोंकी संख्यामें बहुत-सी हैं। युद्धके अन्तमें उन अनुगामिनी देवियोंने इन महान् ऐश्वर्यशालिनी देवीको—सब ओरसे घेर लिया और वे भगवती रौद्रीसे कहने लगीं—'हम भूखसे घबड़ा गयी हैं। कल्याणस्वरूपिणि देवि! आप हमें भोजन देनेकी कृपा कीजिये।'

इस प्रकार उन देवियोंके प्रार्थना करनेपर जब रौद्री देवीके ध्यानमें कोई बात न आयी, तब उन्होंने देवाधिदेव पशुपति भगवान् रुद्रका स्मरण किया। उनके ध्यान करते ही पिनाकपाणि परमात्मा रुद्र वहाँ प्रकट हो गये। वे बोले—'देवि! कहो! तुम्हारा क्या कार्य है?'

देवीने कहा—देवेश! आप इन उपस्थित देवियोंके लिये भोजनकी कुछ सामग्री देनेकी कृपा करें; अन्यथा ये बलपूर्वक मुझे ही खा जायँगी।

रुद्रने कहा—देवेश्वरि! महाप्रभे! इनके खानेयोग्य वस्तु वह है—जो गर्भवती स्त्री दूसरी स्त्रीके पहने हुए वस्त्रको पहनकर अथवा विशेष करके दूसरे पुरुषका स्पर्शकर पाकका निर्माण करती है, वह इन देवियोंके लिये भोजनकी सामग्री है। अज्ञानी व्यक्तियोंद्वारा दिया हुआ बलिभाग भी ये देवियाँ ग्रहण करें और उसे पाकर सौ वर्षोंके लिये सर्वथा तृप्त हो जायँ। अन्य कुछ देवियाँ प्रसव-गृहमें छिद्रका अन्वेषण करें। वहाँ लोग उनकी पूजा करेंगे। देवेशि! उस स्थानपर उनका निवास होगा। गृह, क्षेत्र, तडागों, वापियों और उद्यानोंमें जाकर निरन्तर रोती हुई जो स्त्रियाँ मनमारे बैठी रहेंगी, उनके शरीरमें प्रवेश कर कुछ देवियाँ तृप्ति लाभ कर सकेंगी।

फिर भगवान् शंकरने इधर जब रुरुको मरा हुआ देखा, तब वे देवीकी इस प्रकार स्तुति करने लगे।

भगवान् रुद्र बोले—देवि! आपकी जय हो। चामुण्डे! भगवती भूतापहारिणि एवं सर्वगते परमेश्वरि! आपकी जय हो। देवि आप त्रिलोचना, भीमरूपा, वेद्या, महामाया, महोदया, मनोजवा, जया, जृम्भा, भीमाक्षी, क्षुभिताशया, महामारी, विचित्राङ्गा, नृत्यप्रिया, विकराला, महाकाली, कालिका, पापहारिणी, पाशहस्ता, दण्डहस्ता, भयानका, चामुण्डा, ज्वलमानास्या, तीक्ष्णदंष्ट्रा, महाबला, शतयानस्थिता, प्रेतासनगता, भीषणा, सर्वभूतभयंकरी, कराला, विकराला, महाकाला, करालिनी, काली, कराली, विक्रान्ता और कालरात्रि—इन नामोंसे प्रसिद्ध हैं; आपके लिये मेरा बारंबार नमस्कार है। परमेष्ठी रुद्रने जब इस प्रकार देवीकी स्तुति की तब वे भगवती परम संतुष्ट हो गयीं। साथ ही उन्होंने कहा—'देवेश! जो आपके मनमें हो, वह वर माँग लें।'

रुद्र बोले—"वरानने! यदि आप प्रसन्न हैं तो इस स्तुतिके द्वारा जो व्यक्ति आपका स्तवन करें, देवि! आप उन्हें वर देनेकी कृपा करें। इस स्तुतिका नाम

'त्रिप्रकार' होगा। जो भक्तिके साथ इसका पाठ करेगा, वह पुत्र, पौत्र, पशु और समृद्धसे सम्पन्न हो जायगा। तीन शक्तियोंसे सम्बद्ध इस स्तुतिको जो श्रद्धा भक्तिके साथ सुने, उसके सम्पूर्ण पाप विलीन हो जायँ और वह व्यक्ति अविनाशी पदका अधिकारी हो जाय।"

ऐसा कहकर भगवान् रुद्र अन्तर्धान हो गये। देवता भी स्वर्गको पधारे। वसुंधरे! देवीकी तीन प्रकारकी उत्पत्ति युक्त 'त्रिशक्ति-माहात्म्य'का यह प्रसङ्ग बहुत श्रेष्ठ है। अपने राज्यसे च्युत राजा यदि पवित्रतापूर्वक इन्द्रियोंको वशमें करके अष्टमी, नवमी और चतुर्दशीके दिन उपवास कर इसका श्रवण करेगा तो उसे एक वर्षमें अपना निष्कण्टक राज्य पुनः प्राप्त हो जायगा। न्यायसिद्धान्तके द्वारा ज्ञात होनेवाली पृथ्वी देवि! यह मैंने तुमसे 'त्रिशक्ति-सिद्धान्त'की बात बतलायी। इनमें सात्त्विकी एवं श्वेत वर्णवाली 'सृष्टि'देवीका सम्बन्ध ब्रह्मासे है। ऐसे ही वैष्णवी शक्तिका सम्बन्ध भगवान् विष्णुसे है। रौद्रीदेवी कृष्ण-वर्णसे युक्त एवं तमःसम्पन्न शिवकी शक्ति हैं। जो पुरुष स्वस्थचित्त होकर नवमी तिथिके दिन इसका श्रवण करेगा, उसे अतुल राज्यकी प्राप्ति होगी तथा वह सभी भयोंसे छूट जायगा। जिसके घरपर लिखा हुआ यह प्रसङ्ग रहता है, उसके घरमें भयंकर अग्निभय, सर्पभय, चोरभय, और राज्य आदिसे उत्पन्न भय नहीं होते। जो विद्वान् पुरुष पुस्तकरूपमें इस प्रसङ्गको लिखकर भक्तिके साथ इसकी पूजा करेगा, उसके द्वारा चर और अचर तीनों लोक सुपूजित हो जायँगे। उसके यहाँ बहुत-से पशु, पुत्र, धन-धान्य एवं उत्तम स्त्रियाँ प्राप्त हो जायँगी। यह स्तुति जिसके घरपर रहती है, उसके यहाँ प्रचुर रत्न, घोड़े, गौएँ, दास और दासियाँ—आदि सम्पत्तियाँ अवश्य प्राप्त हो जाती हैं।

भगवान् वराह कहते हैं—भूतधारिणि! यह रुद्रका माहात्म्य कहा गया है। मैंने पूर्णरूपसे तुम्हारे सामने इसका वर्णन कर दिया। चामुण्डाकी समग्र शक्तियोंकी संख्या नौ करोड़ है। वे पृथक्-पृथक् रूपसे स्थित हैं। इस प्रकार जो रुद्रसे सम्बन्ध रखनेवाली यह 'तामसी शक्ति चामुण्डा' कही गयी उसकी तथा वैष्णवी शक्तिके सम्मिलित भेद अठारह करोड़ हैं। इन सभी शक्तियोंके अध्यक्ष सर्वत्र विचरण करनेवाले भगवान् परमात्मा रुद्र ही हैं। जितनी ये शक्तियाँ हैं, रुद्र भी उतने ही हैं। महाभाग! जो इन शक्तियोंकी आराधना करता है, उसपर भगवान् रुद्र संतुष्ट होते हैं और वे साधककी मनःकल्पित सारी कामनाएँ सिद्ध कर देते हैं। (अध्याय ९६)

रुद्रके माहात्म्यका वर्णन

भगवान् वराह कहते हैं—सुमुखि पृथ्वि! अब तुम रुद्रके व्रतकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग सुनो, जिसे जानकर प्राणी पापोंसे मुक्त हो जाता है। जिस समय ब्रह्माजीने पूर्वकालमें रुद्रका सृजन किया, उस समय उन रुद्रकी विभु, पिङ्गाक्ष और फिर तीसरी बार नीललोहित संज्ञा हुई। अव्यक्तजन्मा परमशक्तिशाली ब्रह्माने कौतूहलवश प्रकट होते ही रुद्रको कन्धेपर उठा लिया। उस अवसरपर ब्रह्माका जो जन्म-सिद्ध पाँचवाँ सिर था, उससे आथर्वणमन्त्रका उच्चारण हो रहा था, जो इस प्रकार था—

कपालिन् रुद्र बभ्रोऽथ भव! कैरात सुव्रत!
पाहि विश्वं विशालाक्ष कुमार वरविक्रम!!
(९७।५)

अर्थात् 'हे सुव्रत कपाली, बभ्रु, भव, कैरात, विशालाक्ष, कुमार और वरविक्रम-नामधारी रुद्र, आप विश्वकी रक्षा कीजिये।' पृथ्वि! इस मन्त्रके

अनुसार ये रुद्रके भविष्यके कर्मसूचक नाम थे । पर 'कपाली' शब्द सुनकर रुद्रको क्रोध आ गया, अतः ब्रह्माजीके उस पाँचवें सिरको उन्होंने अपने बाँयें हाथके अँगूठेके नखसे काट डाला, पर कटा हुआ वह सिर उनके हाथमें ही चिपक गया । रुद्रने ब्रह्माजीकी शरण ली और बोले ।

रुद्रने कहा—उत्तम व्रतोंका पालन करनेवाले भगवन् ! कृपया यह बताइये कि यह कपाल मेरे हाथसे किस प्रकार अलग हो सकेगा तथा इस पापसे मैं कैसे मुक्त होऊँगा ?

ब्रह्माजी बोले—रुद्रदेव ! तुम नियमपूर्वक कापालिक व्रतका अनुष्ठान करो । इसके आचरण करते रहनेपर जब अनुकूल समय आयेगा, तब स्वयं अपने ही तेजसे तुम इस कपालसे मुक्त हो जाओगे ।

अव्यक्त-मूर्ति ब्रह्माजीने जब रुद्रसे इस प्रकार कहा तब महादेव पापनाशक महेन्द्रपर्वतपर चले गये । वहाँ रहकर उन्होंने उस सिरको तीन भागोंमें विभाजित कर दिया । तीन खण्ड हो जानेपर भगवान् रुद्रने उसके बालोंको भी अलग-अलग कर हाथमें लिया और उसका यज्ञोपवीत बना लिया । इस प्रकार सात द्वीपोंवाली इस पृथ्वीपर विचरते हुए वे प्रतिदिन तीर्थोंमें स्नान करते और फिर आगे बढ़ जाते थे । सर्वप्रथम उन्होंने समुद्रमें स्नान किया । इसके बाद गङ्गामें गोता लगाया । फिर वे सरस्वती, गङ्गा-यमुनाका सङ्गम, शतद्रु, (सतलज) महानदी, देविका, वितस्ता, चन्द्रभागा, गोमती, सिन्धु, तुङ्गभद्रा, गोदावरी, उत्तरगण्डकी, नैपाल, रुद्रमहालय, दारुवन, केदारवन, भद्रेश्वर होते हुए पवित्र क्षेत्र गयामें पहुँचे । वहाँ फल्गु नदीमें स्नान कर उन्होंने पितरोंका तर्पण किया । इस प्रकार भगवान् रुद्र सारे विश्व-ब्रह्माण्डमें चक्कर लगाते रहे । इस प्रकार उन्हें भ्रमण करते छः वर्ष बीत गये इसी बीच उनके परिधान, कौपीन और मेखला अलग हो गये । देवि ! अब रुद्र नग्न और कापालिक-रूपमें हाथमें कपाल लिये प्रत्येक तीर्थमें घूमते रहे, किंतु वह अलग न हुआ । इसके बाद वे दो वर्षोंतक भूमण्डलके सभी पवित्र तीर्थोंमें पुनः भ्रमण करते रहे । इस प्रकार बारह वर्ष बीत गये । फिर हरिहरक्षेत्रमें जाकर उन्होंने दिव्य नदी गङ्गा एवं देवाङ्गदकुण्डमें स्नानकर भगवान् सोमेश्वरकी विधिवत् पूजा की । फिर वे 'चक्र-तीर्थ'में गये और वहाँ स्नानकर 'त्रिजलेश्वर' महादेवकी आराधना की । तत्पश्चात् अयोध्या जाकर वे फिर वाराणसी पहुँचे और गङ्गामें स्नान करने लगे । सुन्दरि ! जब वे गङ्गामें स्नान कर रहे थे, उसी क्षण उनके हाथसे कपाल गिर गया । वसुंधरे ! तभीसे भूमण्डलपर वाराणसीपुरीमें यह उत्तम तीर्थ 'कपालमोचन' नामसे विख्यात हुआ । वहाँ मनुष्य यदि भक्तिपूर्वक स्नान करता है तो उसकी शुद्धि हो जाती है । अब ब्रह्माजी देवताओंके साथ वहाँ आये और इस प्रकार बोले ।

ब्रह्माजीने कहा—विशाल नेत्रोंवाले रुद्र ! अब तुम लोकमार्गमें सुव्यवस्थित होओ । हाथमें कपाल होनेसे व्यग्र-चित्त होकर तुम जो भ्रमण करते रहे, इससे तुम्हारा यह व्रत भूमण्डलपर जन-समाजमें 'नग्न-कापालिक-व्रत' नामसे विख्यात होगा । तुम जो पर्वतराज हिमालयपर भ्रमण करनेमें व्यस्त रहे, इसलिये देव ! वह व्रत 'बाभ्रव्य' नामसे भी प्रसिद्ध होगा । अब इस तीर्थमें जो तुम्हारी शुद्धि हुई है, इसके कारण यह व्रत शुद्ध-शैव होगा और इसमें पापप्रशमन करनेकी शक्ति भरी रहेगी । देवसमुदायने आगे करके तुम्हें जो विधानके साथ पूज्य बनाया है, उस शास्त्रविधानकी सबके लिये व्याख्या करूँगा । इसमें कुछ अन्यथा विचार नहीं है । तुम्हारे द्वारा आचरित यह 'बाभ्रव्यव्रत' एवं

'कापालिक' व्रतका जो आचरण करेगा, वह तुम्हारी कृपासे ब्रह्महत्यारा ही क्यों न हो, उस पापसे मुक्त हो जायगा। तुम जो नग्न, कपाली, पिङ्गल-वर्ण और पुनः शुद्ध-शैवव्रत पालन करते रहे, इसके कारण नग्न, कपाल, वाभ्रव्य और शुद्ध-शैवके नामसे यह व्रत प्रसिद्ध होगा। तुमने मुझे आगे करके विधिपूर्वक जिन मन्त्रोंके द्वारा पूजा की है, वे सम्पूर्ण शास्त्र 'पाशुपतशास्त्र' कहलायेंगे।

अव्यक्तमूर्ति ब्रह्माजी जिस समय रुद्रसे इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय देवताओंने 'जय-जयकार'की ध्वनि लगायी। अब महाभाग रुद्र परम संतुष्ट होकर अपने स्थान कैलासपर चले गये। ब्रह्माजी भी देवताओंके साथ श्रेष्ठ स्वर्गलोकमें सिधारे। अन्य देवता भी जैसे आये थे, वैसे ही आकाशमार्गद्वारा अपने स्थानपर चले गये। वसुंधरे! रुद्रके इस माहात्म्यका मैंने वर्णन किया। यह जो रुद्रका चरित्र है, इससे भूमण्डलपर स्थित कोई सम्पत्ति तुलना करनेमें समर्थ नहीं है। (अध्याय ९७)

सत्यतपाका शेष वृत्तान्त

पृथ्वी बोली—भगवन्! सत्यतपा नामक व्याध, जो पीछे ब्राह्मण हो गया था और जिसने अपनी शक्तिद्वारा बाघके भयसे आरुणि मुनिकी रक्षा की थी और जो दुर्वासाजीसे वेद-पुराण सुनकर हिमालयपर्वतपर चला गया था, आपने उसके भविष्यमें कोई विचित्र घटना घटनेकी बात बतलायी थी। विभो! मुझे उस घटनाको जाननेकी उत्सुकता हो रही है। कृपया आप उसे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह बोले—वसुंधरे! वास्तवमें बात यह है कि सत्यतपा भृगुवंशमें उत्पन्न शुद्ध ब्राह्मण ही था। उसी जन्ममें फिर उसका डाकुओंका साथ हो गया, जिसके कारण वह व्याध बन गया। बहुत दिन बीत जानेके पश्चात् 'आरुणिऋषि'का सङ्ग उसे सुलभ हुआ। अतः फिर उसमें ब्राह्मणत्व आ गया। दुर्वासाजी-के द्वारा भलीभाँति उपदेश ग्रहणकर फिर वह पूर्ण ब्राह्मण बन गया। (अब आश्चर्यकी कथा आगे सुनो—)

पृथ्वीदेवि! हिमालयपर्वतके उत्तरी भागमें 'पुष्पभद्रा' नामकी एक पवित्र नदी है। उस दिव्य नदीके तीरपर 'चित्रशिला'नामसे विख्यात एक शिला है। वहीं एक विशाल वटका वृक्ष है, जो 'भद्र'नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ रहकर सत्यतपा तप करने लगे। एक दिनकी बात है, लकड़ी काटते समय कुल्हाड़ीसे उनके बायें हाथकी तर्जनी अँगुली कट गयी। वह अँगुली जड़से कटकर अलग हो गयी, तब उस कटे हुए स्थानसे भस्मका चूर्ण बिखर उठा। उस अँगुलीसे न रक्त गिरा, न मांस और न मज्जा ही दिखायी पड़ी। फिर उस ब्राह्मणने अपनी कटी हुई अँगुलीको पहले-जैसे जोड़ भी दिया और वह जुड़ भी गयी। उसी भद्रवटके वृक्षके ऊपर एक किंनरदम्पतिका निवास था, जो उस समय वृक्षके ऊपर बैठा हुआ इन सब विचित्र कार्योंको देख रहा था। इस घटनासे उनके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ। प्रातःकाल वह इन्द्रलोकमें पहुँचा, जहाँ यक्ष, गन्धर्व, किंनर एवं इन्द्रके साथ सभी देवता विराजमान थे। वहाँ इन्द्रने उन सबसे कहा कि आप लोग कोई अपूर्व बात हुई हो तो बतलायें। रुद्र-सरोवरपर निवास करनेवाले उस किंनरदम्पतिने कहा— 'पुष्पभद्राके पवित्र तटपर मैंने एक महान् आश्चर्य देखा है। शुभे! फिर उसने सत्यतपासम्बन्धी अँगुलीके कटने तथा उस स्थानसे भस्म बिखरनेकी बात बतलायी। उसकी बात सुनकर सभी आश्चर्यसे भर गये और उसकी प्रशंसा की। फिर इन्द्रदेवने भगवान् विष्णुसे कहा—'प्रभो! आइये हमलोग हिमालयकी उस उत्तम घाटीमें चलें। वहाँ एक बड़े आश्चर्यकी घटना हुई है जिसे इस किंनरदम्पतिने बतलाया है।'

इस प्रकार बातचीत होनेके पश्चात् भगवान् विष्णुने वराहका रूप धारण किया और इन्द्रने अपना वेष एक व्याधका बनाया और दोनों सत्यतपा ऋषिके पास पहुँचे। वराहवेषधारी विष्णु उन ऋषिके आश्रमके सामने आकर घूमने लगे। वे कभी दीखते और कभी अदृश्य हो जाते। इतनेमें धनुष-बाण हाथमें लिये हुए वधिक-वेषधारी इन्द्रने ऋषिके सामने आकर कहा—'भगवन्! आपने यहाँ एक बहुत विशाल शूकर अवश्य देखा होगा। आप कृपापूर्वक मुझे बतलायें तो मैं उसका वध कर डालूँ, जिससे अपने आश्रित जीवोंका भरण-पोषण कर सकूँ।

वधिकके ऐसा कहनेपर सत्यतपा मुनि चिन्तामें पड़ गये और विचार करने लगे—'यदि मैं इस वधिकको सूअर दिखला दूँ तो यह उसे तुरंत मार डालेगा। यदि नहीं दिखाता तो इस वधिकका परिवार भूखसे महान् कष्ट पायगा, इसमें कोई संशय नहीं; क्योंकि यह वधिक अपनी स्त्री और पुत्रके साथ भूखसे कष्ट पा रहा है। इधर इस सूअरको बाण लग चुका है और वह मेरे आश्रममें आ गया है,—ऐसी स्थितिमें मुझे क्या करना चाहिये?' इस प्रकार सोचते हुए, जब वे कोई निश्चय नहीं कर पा रहे थे कि सहसा उनकी बुद्धिमें एक बात आ गयी—'गतिशील प्राणी आँखोंसे ही देखते हैं—देखना नेत्रेन्द्रियका ही कार्य है। बात बतानेवाली जीभ कुछ नहीं देखती। इस प्रकार देखनेवाली इन्द्रिय आँख है, जिह्वा नहीं, और जो जिह्वाका विषय है, उसे नेत्र तत्त्वतः प्रकाशित करनेमें असमर्थ है।' अतः इस विषयमें अब मैं निरुत्तर होकर चुप रहूँगा। सत्यतपाके मनके इस प्रकारके निश्चयको जानकर वधिकरूपी इन्द्र और सूअररूप बने हुए विष्णु—इन दोनोंके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। अतः वे दोनों महापुरुष अपने वास्तविक रूपमें उनके सामने प्रकट हो गये। साथ ही सत्यतपा ऋषिसे यह वचन कहा—'ऋषिवर! हम दोनों तुमपर बहुत प्रसन्न हैं। तुम परम श्रेष्ठ वर माँग लो।' यह सुनकर उस ऋषिने कहा—'देवेश्वरो! इस समय मेरे सामने आप लोगोंने प्रत्यक्ष उपस्थित होकर साक्षात् दर्शन दिया, इससे बढ़कर पृथ्वीपर मुझे दूसरा कोई श्रेष्ठ वर नहीं दीखता। हाँ, यदि आप बलपूर्वक वर देकर मुझे कृतार्थ करना चाहते हैं तो मैं यही वर माँगता हूँ—'इस पर्वकालमें जो व्यक्ति यहाँ सदा ब्राह्मणोंकी भक्तिपूर्वक एक मासतक लगातार अर्चना करे उसके सभी पाप नष्ट हो जायँ। यही नहीं, उसका संचित पाप भी भस्म हो जाय। साथ ही मुझे भी मोक्ष प्राप्त हो जाय।'

वसुंधरे! विष्णु और इन्द्र—दोनों देवता 'ऐसा ही होगा' कहकर अन्तर्धान हो गये। वे ऋषि वर पाकर सर्वत्र परमात्माको देखते हुए वहीं स्थिर रहे। इसी समय उनके गुरु आरुणि आते दिखायी पड़े, जो तीर्थोंमें घूमते हुए भूमण्डलकी प्रदक्षिणा करके लौटे थे। मुनिवर आरुणिकी सत्यतपाने महान् भक्तिके साथ पूजा की, उनका चरण धोया और आचमन कराया तथा उन्हें गौएँ प्रदान कीं। जब आरुणिजी आसनपर बैठ गये और भलीभाँति जान गये कि मेरा यह शिष्य सिद्ध हो गया है तथा तपस्यासे इसके पाप भस्म हो गये हैं तो उन्होंने सत्यतपासे कहा—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले पुत्र! तपके प्रभावसे तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध हो गया है। तुममें ब्रह्मभावकी स्थिति हो गयी है। वत्स! अब उठो और मेरे साथ उस परम पदकी यात्रा करो, जहाँ जाकर फिर जन्म नहीं लेना पड़ता'। तदनन्तर मुनिवर आरुणि और सत्यतपा—वे दोनों सिद्ध पुरुष भगवान् नारायणका ध्यान करके उनके श्रीविग्रहमें लीन हो गये। जो भी व्यक्ति इस विस्तृत पर्वाध्यायके एक पादका भी श्रवण करता है या किसी अन्यको सुनाता है, उसे भी अभीष्ट गतिकी प्राप्ति होती है। (अध्याय ९८)

तिलधेनुका माहात्म्य

पृथ्वी बोलीं—भगवन् ! अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीके शरीरसे जो आठ भुजाओंवाली गायत्री नामकी माया प्रकट हुई और जिसने चैत्रासुरके साथ युद्धकर उसका वध किया, उन्हीं देवीने देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके विचारसे 'नन्दा' नाम धारण किया तथा उन्हीं देवीने महिषासुरका भी वध किया। वही देवी 'वैष्णवी' नामसे विख्यात हुई। भगवन् ! यह सब कैसे क्या हुआ ? आप मुझे बतानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! स्वायम्भुव मन्वन्तरमें इन्हीं देवीने मन्दरगिरिपर महिषासुर नामक दैत्यका वध किया। फिर उनके द्वारा विन्ध्यपर्वतपर नन्दारूपसे चैत्रासुर मारा गया। अथवा ऐसा समझना चाहिये कि वे देवी ज्ञानशक्ति हैं और महिषासुर मूर्तिमान् अज्ञान है।

देवि ! अब मैं पाँच प्रकारके पातकोंका ध्वंस करनेवाला उपाय कहता हूँ, सुनो। भगवान् विष्णु देवताओंके भी देवता हैं। उनका यजन करनेसे पुत्र और धन प्राप्त होते हैं। इस जन्ममें जो पुरुष दरिद्रता, व्याधि और कुष्ठ-रोगसे दुःखी है, जिनके पास लक्ष्मी नहीं है, पुत्रका अभाव है, वह इस यज्ञके प्रभावसे तुरंत ही धनवान्, दीर्घायु, पुत्रवान् एवं सुखी हो जाता है। इसमें प्रधान कारण मण्डलमें विराजमान लक्ष्मी देवीके साथ भगवान् नारायणका दर्शन ही है। भगवान् नारायण परमदेवता हैं। देवि ! विधानपूर्वक जो उनका दर्शन करता है और कार्तिक महीनेके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिके दिन आचार्य-प्रदत्त मन्त्रका उच्चारण करते हुए उन देवताका यजन करता है, अथवा सम्पूर्ण द्वादशी तिथियोंके दिन या संक्रान्ति एवं सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहणके अवसरपर गुरुके आदेशानुसार जो उनकी पूजा एवं दर्शन करता है, उसपर श्रीहरि तुरंत ही प्रसन्न हो जाते हैं। उसके पाप दूर भाग जाते हैं। साथ ही उसपर अन्य देवता भी प्रसन्न हो जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—तीनों वर्ण भक्तिके अधिकारी हैं। गुरुको चाहिये जाति, शौच और क्रिया आदिके द्वारा एक वर्षतक उनकी परीक्षा करे। एक वर्षतक शिष्य गुरुमें श्रद्धा रखते हुए उनमें भगवान् विष्णुकी भावना करके अचल भक्ति करे। वर्ष पूरा हो जानेपर वह गुरुसे प्रार्थना करे—'भगवन् ! आप तपस्याके महान् धनी पुरुष विराजमान हैं और मेरे सामने प्रत्यक्ष हैं। हम चाहते हैं कि आपकी कृपासे संसाररूपी समुद्रको पार करानेवाला ज्ञान प्राप्त हो जाय। साथ ही संसारमें सुख देनेवाली लक्ष्मी भी हमें अभीष्ट है।'

विद्वान् पुरुष गुरुकी पूजा भी विष्णुके समान करे। श्रद्धालु पुरुष कार्तिकमासकी शुक्ला दशमी तिथिको दूधवाले वृक्षका मन्त्रसहित दन्तकाष्ठ ले और उससे मुँह धोये। फिर रात्रिभोजनके बाद साधक देवेश्वर भगवान् श्रीहरिके सामने सो जाय। रातमें जो स्वप्न दिखायी पड़े, उसे गुरुके सामने व्यक्त करना चाहिये और गुरुको भी इन स्वप्नोंमें कौन-सा शुभ है और कौन-सा अशुभ—इसपर विचार करना चाहिये। फिर एकादशीके दिन उपवास रहकर स्नान करके व्रती पुरुष देवालयमें जाय। वहाँ गुरुको चाहिये कि निश्चित की हुई भूमिपर मण्डल बनाकर उसपर सोलह पँखुड़ियोंवाला एक कमल तथा सर्वतोभद्र चक्र लिखे अथवा सफेद वस्त्रसे आठ पत्रवाला कमल बनाकर उसपर देवताओंको अङ्कित करे। उस चक्रको फिर यत्नसे उजले वस्त्रसे ऐसा आवेष्टित करे कि वह वस्त्र नेत्रबन्ध अर्थात् उस मण्डल-देवताकी प्रसन्नताका भी साधन बन जाय। वर्णके

अनुक्रमसे शिष्योंको मण्डपमें प्रवेश करनेके लिये गुरु आज्ञा दें। शिष्यको हाथमें फूल लेकर प्रवेश करना चाहिये । नौ भागोंवाले मण्डलमें क्रमशः पूर्व, अग्निकोण, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर और ईशान आदि दिशाओंमें लोकपालसहित इन्द्र, अग्निदेव, यमराज, निर्ऋति, वरुण वायु, कुबेर और रुद्रकी स्थापना तथा पूजा करे। मध्यभागमें परम प्रभु श्रीविष्णुकी अर्चना करनी चाहिये।

पुनः कमलके पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर पत्रोंपर बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा समस्त पातकोंकी शान्ति करनेवाले वासुदेवकी स्थापना एवं पूजा करनी चाहिये। ईशानकोणमें शङ्खकी, अग्निकोणमें चक्रकी, दक्षिणमें गदाकी और वायव्यकोणमें पद्मकी स्थापना एवं पूजा करनी चाहिये । ईशानकोणमें मुसलकी एवं दक्षिणमें गरुड़की तथा देवेश विष्णुके वामभागमें बुद्धिमान् पुरुष लक्ष्मीकी स्थापना एवं पूजा करे। प्रधान देवताके सामने धनुष और खड्गकी स्थापना करे। नवमदलमें श्रीवत्स और कौस्तुभमणिकी कल्पना करनी चाहिये। फिर आठ दिशाओंमें विधानके अनुसार आठ कलश स्थापित कर बीचमें नवें प्रधान विष्णु-कलशकी स्थापना करनी चाहिये। फिर उन कलशोंपर आठ लोकपालों तथा भगवान् विष्णुकी विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। साधकको यदि मुक्तिकी इच्छा हो तो विष्णुकलशसे, लक्ष्मीकी इच्छा हो तो इन्द्रकलशसे, प्रभूत संतानकी इच्छा हो तो अग्निकोणके कलशसे, मृत्युपर विजय पानेकी इच्छा हो तो दक्षिणके कलशसे, दुष्टोंका दमन करनेकी इच्छा हो तो निर्ऋतिकोणके कलशसे, शान्ति पानेकी इच्छा हो तो वरुणकलशसे, पाप-नाशकी इच्छा हो तो वायव्यकोणके कलशसे, धन-प्राप्तिकी इच्छा हो तो उत्तरके कलशसे तथा ज्ञानकी इच्छा एवं लोकपाल-पद पानेकी कामना हो तो वह रुद्रकलश-से स्नान करे। किसी एक कलशके जलसे स्नान करनेपर भी मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है। यदि साधक ब्राह्मण है तो उसे अव्याहत ज्ञान होता है। नवों कलशोंसे स्नान करनेसे तो मनुष्य पापमुक्त होकर साक्षात् भगवान् विष्णुके तुल्य सर्वतः परिपूर्ण हो जाता है।

पूजाके अन्तमें गुरुकी आज्ञासे सबकी प्रदक्षिणा करे। फिर गुरुदेव प्राणायामसहित आग्नेयी एवं वारुणी-धारणाद्वारा विधिपूर्वक शिष्यका अन्तःकरण शुद्ध कर उसे सोमरससे आप्यायित कर दीक्षाके प्रतिज्ञा-वचन सुनायें। इस प्रकार ब्राह्मणों, वेदों, विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, आदित्य, अग्नि, लोकपाल, ग्रहों, वैष्णव-पुरुषों और गुरुके सम्मान करनेवाले पुरुषको दीक्षाद्वारा शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है।

दीक्षाके अन्तमें प्रज्वलित अग्निमें—'**ॐ नमो भगवते सर्वरूपिणे हुं फट् स्वाहा**'—इस सोलह अक्षरवाले मन्त्र-द्वारा हवनकी विधि है। गर्भाधान आदि संस्कारोंमें जैसी हवनकी क्रियाएँ होती हैं, वैसी ही यहाँ भी कर्तव्य हैं। हवनके बाद यदि दीक्षा-प्राप्त शिष्य किसी देशका राजा हो तो वह गुरुके लिये हाथी-घोड़ा, सुवर्ण, अन्न और गाँव आदि अर्पण करे। यदि दीक्षित साधक मध्यम श्रेणीका व्यक्ति है तो वह साधारण दक्षिणा दे।

दीक्षाके अन्तमें साधक पुरुष यदि वराहपुराण सुनता है तो उससे सभी वेद, पुराण और सम्पूर्ण मन्त्रोंके जपका फल प्राप्त होता है। पुष्कर-तीर्थ, प्रयाग, गङ्गा-सागर-सङ्गम, देवालय, कुरुक्षेत्र, वाराणसी, ग्रहण तथा विषुव योगमें उत्तम जप करनेवालेको जो फल होता है, उससे दूना फल जो दीक्षित पुरुष इस वराहपुराणको सुनता है, उसे प्राप्त होता है। प्राणियोंको धारण करनेवाली पृथ्वी देवि! देवता लोग भी ऐसी कामना करते हैं कि कब ऐसा सुअवसर प्राप्त होगा, जब भारतवर्षमें हमारा जन्म होगा और हम दीक्षा प्राप्त कर किसी

प्रकारसे षोडशकलात्मक वराहपुराण सुन सकेंगे तथा इस देहका त्यागकर उस परम स्थानको जायँगे, जहाँसे पुनः वापस नहीं होना पड़ता।

अन्न-दानके विषयमें महात्मा वसिष्ठ एवं श्वेतका संवादात्मक एक बहुत पुराना इतिहास—सच्ची कथा कही जाती है। वसुंधरे! इलावृतवर्षमें श्वेत नामके एक महान् तपस्वी राजा थे। उन नरेशने हरे-भरे वृक्षोंवाले वनसहित यह पृथ्वी दान करनेके विचारसे तपोनिधि वसिष्ठजीसे कहा—'भगवन्! मैं ब्राह्मणोंको यह समूची पृथ्वी दान करना चाहता हूँ। आप मुझे आज्ञा देनेकी कृपा करें।' इसपर वसिष्ठजीने कहा—'राजन्! अन्न सभी समयमें (पुण्यफलके स्वरूप) सुख देनेवाला है। अतः तुम सदा अन्नदान करो। जिसने अन्नदान कर दिया, उसके लिये भूतलपर दूसरा दान कोई शेष न रहा। सम्पूर्ण दानोंमें अन्न-दान ही श्रेष्ठ है। अन्नसे ही प्राणी जीवन धारण करते और बढ़ते हैं, अतः राजन्! तुम प्रयत्न-पूर्वक अन्नदान करो।' किंतु राजा श्वेतने वैसा न कर बहुत-से हाथी-घोड़े रत्न, वस्त्र, आभूषण, धन-धान्यसे पूर्ण अनेक नगर एवं खजानेमें जो धन था, उसे ही ब्राह्मणोंको बुलाकर दान किया।

एक समयकी बात है—उत्तम धर्मके ज्ञाता राजा श्वेतने सम्पूर्ण पृथ्वीपर विजय प्राप्त करके अपने पुरोहित वसिष्ठजीसे जो जपकर्ताओंमें सर्वोत्तम माने जाते हैं कहा—'भगवन्! मैं एक हजार अश्वमेध यज्ञ करना चाहता हूँ। फिर राजा श्वेतने उनकी अनुमतिसे यज्ञ कर ब्राह्मणोंको बहुतसे सोना, चाँदी और रत्न दानमें दिये, किंतु उन राजाने उस समय भी अन्न और जलका दान नहीं किया; क्योंकि वे अन्न और जलको तुच्छ वस्तु समझते थे। अन्तमें कालधर्मके वश होकर जब वे परलोक पहुँचे तो वहाँ उन्हें भूख और विशेषकर प्यास सताने लगी। अतः वे अप्सराओंसहित स्वर्गको छोड़कर श्वेत पर्वतपर पहुँचे। उनके पूर्वजन्मका शरीर उस समय भस्म हो गया था। अतः भूखे राजा श्वेतने अपनी हड्डियोंको एकत्रकर चाटना प्रारम्भ किया। फिर विमानपर चढ़कर वे स्वर्गमें गये। इसी प्रकार बहुत समय व्यतीत हो जानेके बाद उत्तम व्रती उन राजा श्वेतको महात्मा वसिष्ठने अपनी हड्डियाँ चाटते हुए देखा। उन्होंने कहा—'राजन्! तुम अपनी हड्डी क्यों चाट रहे हो?' महात्मा वसिष्ठके ऐसी बात कहनेपर राजा श्वेतने उन मुनिवरसे ये वचन कहे—'भगवन्! मुझे क्षुधा सता रही है। मुनिवर! पूर्वजन्ममें मैंने अन्न और जलका दान नहीं किया, अतः इस समय मुझे भूख कष्ट दे रही है। राजा श्वेतके ऐसा कहनेपर मुनिवर वसिष्ठजीने पुनः उनसे कहा—'राजेन्द्र! मैं तुम्हारे लिये क्या करूँ। अदत्तदानका फल किसी प्राणीको नहीं मिलता। रत्न और सुवर्णका दान करनेसे मनुष्य सम्पत्तिशाली तो बन सकता है, पर अन्न और जल देनेसे उसकी सभी कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं; वह सर्वथा तृप्त हो जाता है। राजन्! तुम्हारी समझमें अन्न अत्यन्त तुच्छ वस्तु थी। अतः तुमने उसका दान नहीं किया।

राजा श्वेत बोले—अब मेरी, जिसने अन्नदान नहीं किया, तृप्ति कैसे होगी? यह मैं सिर झुकाकर आपसे पूछता हूँ, महामुने! बतानेकी कृपा कीजिये।

वसिष्ठजीने कहा—अनघ! इसका एक उपाय है, उसे सुनो। पूर्वकल्पमें विनीताश्व नामके एक बड़े प्रसिद्ध राजा हो चुके हैं, उन नरेशने कई अश्वमेध-यज्ञ किये। यज्ञोंमें ब्राह्मणोंको बहुत-सी गौएँ, हाथी और धन दिये, तुच्छ समझकर अन्नका दान नहीं किया। इसके बाद बहुत समय बीत जानेपर वे मरकर स्वर्ग पहुँचे और वहाँ वे राजा भी तुम्हारी ही तरह भूखसे दुःखका अनुभव करने

लगे। फिर सूर्यके समान प्रकाशमान विमानपर चढ़कर वे स्वर्गसे मर्त्यलोकमें नीलपर्वतपर गङ्गा नदीके तटपर, जहाँ उनका निधन हुआ था, पहुँचे और अपने शरीरको चाटने लगे। उन्होंने वहीं अपने 'होता' पुरोहितको देखकर पूछा—'भगवन्! मेरी क्षुधा मिटनेका उपाय क्या है?' होताने उत्तर दिया—'राजन्! आप 'तिलधेनु', 'जलधेनु', 'घृतधेनु' तथा 'रसधेनु'का दान करें—इससे क्षुधाका क्लेश तुरंत शान्त हो जायगा। जबतक सूर्य तपते हैं, चन्द्रमा प्रकाश पहुँचाते हैं, तबतकके लिये इससे आपकी क्षुधा शान्त हो जायगी।' ऐसी बात कहनेपर राजाने मुनिसे फिर इस प्रकार पूछा।

विनीताश्व बोले—ब्रह्मन्! 'तिलधेनु'-दानका विधान क्या है? विप्रवर! मैं यह भी पूछता हूँ कि उसका पुण्य स्वर्गमें किस प्रकार भोगा जाता है, आप कृपया यह सब हमें बतलायें।

होता बोले—राजन्! 'तिलधेनु'का विधान सुनो। (मानशास्त्रके अनुसार) चार कुडवका एक 'प्रस्थ' कहा गया है, ऐसे सोलह प्रस्थ तिलसे धेनुका स्वरूप बनाना चाहिये। इसी प्रकार चार 'प्रस्थ'का एक बछड़ा भी बनाना चाहिये। चन्दनसे उस गायकी नासिकाका निर्माण करे और गुड़से उसकी जीभ बनायी जाय। इसी प्रकार उसकी पूँछ भी फूलकी बनाकर फिर घण्टा और आभूषणसे अलंकृत करना चाहिये। ऐसी रचना करके सोनेके सींग बनवाये। उसकी दोहनी काँसेकी और खुर सोनेके हों, जो अन्य धेनुओंकी विधिमें निर्दिष्ट है। तिलधेनुके साथ मृगचर्म वस्त्र-रूपमें सर्वौषधिसहित मन्त्रद्वारा पवित्रकर उसका दान करना सर्वोत्तम है। दानके समय प्रार्थना करे—'तिलधेनो! तुम्हारी कृपासे मेरे लिये अन्न-जल एवं सब प्रकारके रस तथा दूसरी वस्तुएँ भी सुलभ हों। देवि! ब्राह्मणको अर्पित होकर तुम हमारे लिये सभी वस्तुओंका सम्पादन करो।' ग्रहीता ब्राह्मण कहे कि 'देवि मैं तुम्हें श्रद्धा-पूर्वक ग्रहण कर रहा हूँ, तुम मेरे परिवारका भरण-पोषण करो। देवि! तुम मेरी कामनाओंको पूरी करो। तुम्हें मेरा नमस्कार है।' राजन्! इस प्रकार प्रार्थना कर तिलधेनुका दान करना चाहिये। ऐसा करनेसे सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण होती हैं। जो व्यक्ति श्रद्धाके साथ इस प्रसङ्गको सुनता या तिलधेनुका दान करता है अथवा दूसरेको दान करनेकी प्रेरणा करता है, वह समस्त पापोंसे छूटकर विष्णुलोकमें जाता है। गोमयसे मण्डल बनाकर गोचर्म*-जितनी भूमिमें धेनुके आकारकी तिलधेनु होनी चाहिये।

(अध्याय ९९)

जलधेनु एवं रसधेनु-दानकी विधि

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजेन्द्र! अब 'जलधेनु'-दानका विधान बताता हूँ। किसी पवित्र दिनमें सबसे पहले 'गोचर्म'के बराबर भूमिको गायके गोबरसे लीपकर उसके मध्यभागमें जल, कपूर, अगरु और चन्दनयुक्त एक कलश स्थापित करे। फिर उस कलशमें जलधेनुकी धारणा कर इसी प्रकारके एक दूसरे कलशमें बछड़ेकी कल्पना करे। फिर वहीं एक मन्त्रपुष्पोंसे युक्त वर्द्धनीपात्र रखे। पूर्वोक्तकलशमें दूर्वाङ्कुर, जटामासी, उशीर (खश)की जड़, कुष्ठसंज्ञक ओषधि, शिलाजीत, नेत्रवाला, पवित्र पर्वतकी रेणु, आँवले-के फल, सरसों तथा सप्तधान्य आदि वस्तुओंको डालकर उसे पुष्पमालाओंसे सजाना चाहिये। राजन्!

* सप्तहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डान्निवर्तनम्। दश तान्येव गोचर्म दत्वा स्वर्गे महीयते॥

इस (पद्म० उत्त० ३३। ८-९, मार्क० पुरा० ४९। ३९, शातातप १। १५)के वचनानुसार—सात हाथका दण्ड, ३० दण्डका निवर्तन और दस निवर्तनका 'गोचर्म'मान होता है।

फिर चारों दिशाओंमें चार पात्रोंकी विशेषरूपसे कल्पना करे। इनमें एक पात्र घृतसे, दूसरा दहीसे, तीसरा मधुसे तथा चौथा शर्करासे पूर्ण होना चाहिये। इस कल्पित (कुम्भमयी) धेनुमें सुवर्णमय मुख एवं ताम्बेके शृङ्ग, पीठ तथा नेत्रकी कल्पना करनी चाहिये। पासमें काँसेकी दोहनी रखे तथा उसके कुशके रोयें बनाये और सूत्रसे उसके पूँछकी रचना करे। पुनः वस्त्र-आभरण तथा घण्टिकासे उसे सजाकर शुक्तिसे दाँत एवं गुड़से मुखकी रचना करे। चीनीसे उस धेनुकी जीभ और मक्खनसे स्तनोंका निर्माण कर ईखके चरण बनाये तथा चन्दन एवं फूलोंसे उस धेनुको सुशोभित कर काले मृगचर्मपर स्थापित करे। फिर चन्दन और फूलोंसे भलीभाँति उसकी पूजा करके वेदके पारगामी ब्राह्मणको निवेदित कर दे।

राजन्! जो मानव इस धेनु-दानको देखता और इस चर्चाको कहता-सुनता है तथा जो ब्राह्मण यह दान ग्रहण करता है—वे सभी सौभाग्यशाली पुरुष पापसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें जाते हैं। राजन्! जिसने सदक्षिण अश्वमेधयज्ञ किया और जिसने एक बार 'जलधेनु'का दान किया, उन दोनोंका फल समान होता है। इस प्रकार जलधेनुके दान करनेवाले व्यक्तिके सभी पाप समाप्त हो जाते हैं और वे जितेन्द्रिय पुरुष स्वर्गको जाते हैं।

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजन्! संक्षेपमें अब 'रसधेनु'का विधान कहता हूँ। लिपी हुई पवित्र भूमिपर काला मृगचर्म और कुश बिछाकर उसपर ईखके रससे भरा हुआ एक घड़ा रखे और फिर पूर्ववत् ही संकल्प करे। उस घड़ेके पासमें उसके चौथाई हिस्सेके बराबर एक छोटा कलश बछड़ेके निमित्त रखना चाहिये। उसके चारों पैरोंके स्थानपर ईखके चार डंडे रखे और उनमें चाँदीकी चार खुरियाँ लगा दे। उसकी सोनेकी सींग बनाकर श्रेष्ठ आभूषण पहना दे। उसकी पूँछकी जगह वस्त्र और स्तनकी जगह घृत रखकर उसे फूल और कंबलसे सजाना चाहिये। उसका मुख और जीभ शर्करासे बनाये। दाँतकी जगहपर फल रखे। उस रसधेनुकी पीठ ताम्बेकी बनाये और रोएँकी जगह फूल लगा दे तथा मोतीसे आँखोंकी रचना कर चारों दिशाओंमें सात प्रकारके अन्न रखे। फिर उस धेनुको सब प्रकारके उपकरणोंसे सुसज्जित तथा अखिल गन्धोंसे सुवासित करना चाहिये। उसके चारों दिशाओंमें तिलसे भरे हुए चार पात्र रखे। ऐसी धेनु समस्त लक्षणोंसे युक्त तथा परिवारवाले श्रोत्रिय ब्राह्मणको अर्पण कर दे। जिसे स्वर्गमें जानेकी कामना हो, वह पुरुष नित्य प्रति 'रसधेनु'का दान करे। इसके फलस्वरूप वह सम्पूर्ण पापोंसे रहित होकर स्वर्गलोकमें जानेका अधिकारी होता है। इसके दान देनेवाले और लेनेवाले—दोनोंको उस दिन एक ही समय भोजन करना चाहिये। ऐसा करनेसे उसे सोमरस-पान करनेका फल सब जगह सुलभ हो सकता है। गोदानके समय जो उसका दर्शन करते हैं, उन्हें परम गति मिलती है। सबसे पहले धेनुकी पूजा कर गन्ध, धूप और माला आदिसे अलंकृत करना आवश्यक है। भक्तिके साथ विद्वान् पुरुष उस धेनुकी प्रार्थना करे। श्रद्धाके साथ श्रेष्ठ ब्राह्मणको वह 'रसधेनु' देनी चाहिये। इस दानके प्रभावसे दाताकी अपनी दस पीढ़ी पहलेकी और दस पीढ़ी बादकी तथा एक इक्कीसवाँ व्यक्ति स्वयं इस प्रकार इक्कीस पीढ़ियाँ स्वर्गको चली जाती हैं। वहाँसे पुनः संसारमें आना असम्भव है।

राजन् ! यह 'रसधेनु'का दान सबसे उत्तम माना जाता है। इसका वर्णन मैंने तुम्हारे सामने कर दिया। महाराज ! तुम यह दान करो। इससे तुम्हें परम उत्तम स्थान प्राप्त होना अनिवार्य है। जो पुरुष भक्तिके साथ इस प्रसङ्गको सदा पढ़ता और सुनता है, उसके समस्त पाप दूर भाग जाते हैं और वह पुरुष विष्णुलोकको प्राप्त होता है।

(अध्याय १००-१०१)

गुड़धेनु-दानकी विधि

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजन् ! अब गुड़-धेनुका प्रसङ्ग बताता हूँ, उसे सुनो। इसके दान करनेसे सभी कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। लिपी हुई भूमिपर काला मृगचर्म और कुश बिछाकर उसपर वस्त्र फैला दे। फिर पर्याप्त गुड़ लेकर उससे धेनुकी आकृति तथा पासमें बछड़ेकी आकृति बनाये। फिर काँसेकी दोहनी रखकर उसका मुख सोनेका और उसकी सींग सोने अथवा अगरुकी लकड़ीसे एवं मणि तथा मोतियोंसे दाँत बनाये। गर्दनकी जगह रत्न स्थापित करना चाहिये। उस धेनुकी नासिका चन्दनसे निर्माण करे और अगुरु काष्ठ-से उसकी दोनों सींगें बनाये। उसकी पीठ ताँबेकी होनी चाहिये। उस धेनुकी पूँछ रेशमी वस्त्रसे कल्पित करे और फिर सभी आभूषणोंसे उसे अलंकृत करे। उसके पैरोंकी जगह चार ईख हों और खुर चाँदीके, फिर कम्बल और पट्ट-सूत्रसे उस धेनुको ढककर घण्टा और चँवरसे अलंकृत तथा सुशोभित करना चाहिये। श्रेष्ठ पत्तोंसे उसके कान तथा मक्खनसे उस धेनुके थनकी रचना करे। अनेक प्रकारके फलोंसे उस धेनुको भलीभाँति सुशोभित करना चाहिये। उत्तम गुड़धेनुका निर्माण चार भार गुड़के वजनसे बनाना चाहिये। अथवा इसके आधे भागसे भी उसका निर्माण सम्भव है। मध्य श्रेणीकी धेनु इसके आधे परिमाण-की मानी जाती है और एक भारमें अधम श्रेणीकी धेनुका निर्माण होता है। यदि पुरुष धनहीन हो तो वह अपनी शक्तिके अनुसार एक सौ आठ गुड़की डलियोंसे ही धेनु बना सकता है। घरमें सम्पत्ति हो तो उसके अनुसार इससे अधिक मात्रामें भी बनानेका विधान है। फिर चन्दन और फूल आदिसे उसकी पूजा कर उसे ब्राह्मणको दान करदे। चन्दन, पुष्प आदिसे पूजा करनेके पश्चात् घृतसे बना हुआ नैवेद्य एवं दीपक दिखाना अति आवश्यक है। अग्निहोत्री और श्रोत्रिय ब्राह्मणको गुड़धेनु देना उत्तम है। महाराज ! एक हजार सोनेके सिक्कोंसहित अथवा इसके आधे या आधे-के आधेके साथ गुड़धेनुका दान किया जाय अथवा अपनी शक्तिके अनुसार सौ या पचास सिक्कोंके साथ भी दान किया जा सकता है। चन्दन और फूलसे पूजा करके ब्राह्मणको अँगूठी और कानके आभूषण भी देना चाहिये। साथमें छाता और जूता दान देना चाहिये। दानके समय इस प्रकार प्रार्थना करे—'गुड़धेनो ! तुममें अपार शक्ति है। शुभे ! तुम्हारी कृपासे सम्पत्ति सुलभ हो जाती है। देवि ! मैं जो दान कर रहा हूँ, इससे प्रसन्न होकर तुम मुझे भक्ष्य और भोज्य पदार्थ देनेकी कृपा करो और लक्ष्मी आदि सभी पदार्थ मुझे सुलभ हो जायँ।' ऐसी प्रार्थना करनेके उपरान्त पहले कहे हुए मन्त्रोंको स्मरण करे। दाताको पूर्व मुख बैठकर ब्राह्मणको गुड़धेनुका दान करना चाहिये। पुनः प्रार्थना करे—'गुड़धेनो ! मेरे द्वारा मन, वाणी और कर्मद्वारा अर्जित पाप तुम्हारी कृपासे नष्ट हो जायँ। जिस समय गुड़धेनुका दान होता है, उस अवसरपर जो इस दृश्यको देखते हैं, उन्हें वह उत्तम स्थान प्राप्त होता है, जहाँ दूध तथा घृत एवं दही बहानेवाली नदियाँ हैं। जिस दिव्यलोकमें ऋषि, मुनि और सिद्धोंका समुदाय शोभा पाता है, वहाँ इस धेनुके दाता पुरुष पहुँच जाते हैं। गुड़धेनु-सम्बन्धी

दानके प्रभावसे दस पूर्वके, दस पीछे होनेवाले पुरुष तथा एक वह इस प्रकार इक्कीस पुरुष विष्णुलोकको यथाशीघ्र पहुँच जाते हैं। अयन, विषुवयोग, व्यतीपात और दिन-क्षय—ये इस दानमें साधन कहे गये हैं। इन्हीं अवसरोंपर गुड़धेनुके दानका विधान उत्तम है। महामते! सुपात्र ब्राह्मणको देखकर ही इस धेनुका श्रद्धाके साथ दान करना चाहिये। इससे भोग एवं मोक्ष सब सुलभ हो जाता है और समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं तथा दाता सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। गुड़धेनुकी कृपासे अखिल सौभाग्य, इस लोकमें अतुल आयु एवं आरोग्य तथा ऐश्वर्य सुलभ हो जाते हैं। जो इस प्रसङ्गको पढ़ता है तथा कई योजन दूर रहकर भी इस गुणधेनु-दानकी सम्मति देता है, वह इस संसारमें दीर्घकालतक वैभवसे सम्पन्न रहकर अन्तमें स्वर्गमें निवास करता है। (अध्याय १०२)

शर्करा तथा मधु-धेनुके दानकी विधि

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजन्! अब शर्करा-धेनुका वर्णन सुनो। लिपी हुई भूमिपर काला मृग-चर्म और कुश बिछाना चाहिये। राजन्! चार भार शर्करासे बनी हुई धेनु उत्तम कही जाती है। उसके चौथाई भागसे उसका बछड़ा बनाये। यदि दानकर्ता राजा हो तो वह आठ सौ भारसे ऊपरतककी धेनु बना सकता है। दाता अपनी शक्तिके ही अनुसार धेनुका निर्माण कराये, जिससे स्वयं अपनी आत्माको न कष्ट पहुँचे, न धनका ही समूल संहार हो जाय। धेनुकी चारों दिशाओंमें बीज स्थापित कर उसके मुखाग्र और सींग सोनेके तथा आँखें मोतीकी बनाये। गुड़से उसका मुखान्तर भाग तथा पिष्टसे उसकी जीभका निर्माण करे। गोकम्बलका निर्माण रेशमी सूत्रसे करे। कण्ठके भूषणोंसे उस धेनुको भूषित करे। ईखसे चरण, चाँदीसे खुर तथा मक्खनसे थनकी रचना करे। श्रेष्ठपत्रोंसे उसके कान बनाकर उसे श्वेत चँवरसे अलंकृत करना चाहिये। तत्पश्चात् उसके पासमें पञ्चरत्न रखकर उसे वस्त्रसे ढक देना चाहिये। फिर चन्दन और फूलोंसे अलंकृत करके यह गाय ब्राह्मणको दे दे। ब्राह्मण श्रोत्रिय, दरिद्र और साधु स्वभाववाला हो। अयन, विषुव, व्यतीपात और दिनक्षय—इन पुण्य अवसरोंपर अपनी शक्तिके अनुसार इस प्रकारकी गौ बनाकर दान करना चाहिये। यदि सत्पात्र एवं श्रोत्रिय ब्राह्मण घरपर आया हुआ दीख जाय तो आये हुए उस ब्राह्मणको धेनुके पुच्छभागका स्पर्श करते हुए दान करनेकी विधि है। पूर्व अथवा उत्तरकी तरफ मुख करके दाता बैठे। गौका मुख पूर्व और बछड़ेका मुख उत्तर हो। दान करते समय गोदानके मन्त्रोंको पढ़कर ही गौका दान करना चाहिये। दाता एक दिनतक शर्कराके आहारपर रहे और लेनेवाला ब्राह्मण भी इसी प्रकार तीन दिनतक रहे। यह शर्कराधेनु सम्पूर्ण पापोंको दूर करनेवाली तथा अखिल कामनाओंको देनेमें पूर्ण समर्थ है। इस प्रकार दान करनेवाला पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं और ऐश्वर्योंसे सम्पन्न हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं। शर्कराधेनुका दान करते समय जो लोग उसका दर्शन करते हैं, उन्हें परम गति मिलती है। जो मानव भक्तिपूर्वक इसे सुनता अथवा पढ़ता भी है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर विष्णुलोकको प्राप्त होता है।

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजन् ! अब सम्पूर्ण पापोंके नाशक 'मधुधेनु'के दानकी विधि सुनो । लिपी हुई पवित्र भूमिपर काला मृगचर्म और कुशा बिछाकर सोलह घड़े मधुसे एक धेनु तथा उसके चौथाई भागसे बछड़ेकी आकृति बनाकर स्थापित करे । उस धेनुका मुख सोनेका, उसके शृङ्ग (सींग) अगुरु एवं चन्दनके, पीठ ताँबेकी और सास्ना (गलकम्बल) रेशमी सूतके बनाये । उसके चरण ईखके हों । फिर उजले कम्बलसे उस धेनुको ढककर गुड़से उसके मुखकी तथा शर्करासे जिह्वाकी आकृति बनानी चाहिये । उसके ओंठ पुष्पके और दाँत फलोंके बने हों । वह कुशके रोयें तथा चाँदीके खुरोंसे सुशोभित हो और उसके कान श्रेष्ठ पत्तोंसे बनाने चाहिये । फिर उसके चारों दिशाओंमें सप्तधान्यके साथ तिलसे भरे हुए चार पात्र रखने चाहिये । फिर दो वस्त्रोंसे उसको ढककर कण्ठके आभूषणसे उसे अलंकृत कर दे । काँसेकी दोहनी बनाकर चन्दन और फूलोंसे उस धेनुकी पूजा करनी चाहिये । अयन, विषुव, व्यतीपात, दिनक्षय, संक्रान्ति और ग्रहणके अवसरपर इस धेनुके दानका विशेष महत्त्व है, अथवा अपनी इच्छासे इसे सभी कालमें सम्पादित किया जा सकता है । द्रव्य, ब्राह्मण और सम्पत्ति-को देखकर दानका प्रतिपादन करना चाहिये । दान लेनेवाला ब्राह्मण दरिद्र, विद्याभ्यासी, अग्निहोत्री, वेद-वेदान्तका पारगामी तथा आर्यावर्तदेशमें उत्पन्न हुआ होना चाहिये । धेनुकी पूँछभागका स्पर्श करके हाथमें जल और दक्षिणा लेकर चन्दन और धूपसे पूजा कर फिर दो वस्त्रोंसे ढककर अपनी शक्तिके अनुसार अन्नसहित उसका दान कर दे, कंजूसी न करे । सभी विधि जलपूर्वक होनी चाहिये । ब्राह्मणको दान करनेके पूर्व दाता इस प्रकार प्रार्थना करे—'मधुधेनो ! तुम्हें मेरा नमस्कार है । तुम्हारी कृपासे मेरे पितर और देवतागण प्रसन्न हो जायँ ।' गृहीता कहे—'देवि ! मैं विशेष रूपसे कुटुम्बकी रक्षाके लिये तुम्हें ग्रहण करता हूँ । मधुधेनो ! तुम कामदुहा हो । मेरी कामनाओंको पूर्ण करो । तुम्हें मेरा नमस्कार । '**मधुवाता०***' (ऋक्संहि० १ । ९० । ६-८) इस मन्त्रको पढ़कर इस धेनुका दान करना चाहिये । महाराज ! दानके पश्चात् छाता और जूता भी देना चाहिये । राजन् ! इस प्रकार भक्तिपूर्वक जो 'मधुधेनु'का दान करता है, वह एक दिन खीर और मधुके आहारपर रहे । दान लेनेवाले ब्राह्मणको मधु और खीरके आहारपर तीन रातें व्यतीत करनी चाहिये । इसका दाता दस पूर्वजों और आगे होनेवाली दस पीढ़ियों एवं स्वयं आप—इस प्रकार इक्कीस पीढ़ियोंको तारकर भगवान् विष्णुके स्थानमें पहुँचता है । जो मानव इस प्रसङ्गको श्रद्धाके साथ सुनता अथवा सुनाता है, वह समस्त पापोंसे छूटकर विष्णुलोकमें चला जाता है । (अध्याय १०३-१०४)

'क्षीरधेनु' तथा 'दधिधेनु'-दानकी विधि

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजन् ! अब क्षीर-धेनु-दानकी विधि सुनो—राजेन्द्र ! गायके गोबरसे लिपी गयी पवित्र भूमिपर 'गोचर्म'मात्र प्रमाणमें सब ओर कुशाएँ बिछा दे । उसके ऊपर विवेकी पुरुष, कृष्णमृगका चर्म रखे । उसपर गायके गोबरसे एक विस्तृत कुण्डिकाका निर्माण करे और वहाँ दूधसे भरा हुआ एक घड़ा रखे । उसके चौथाई भागवाला कलश बछड़ेके स्थानमें रखे, जिसका मुख सोनेका एवं सींग चन्दन तथा अगुरु-काष्ठके बने हों । कानोंके स्थानमें वृक्षके उत्तम पत्ते रखे । इस कुम्भके ऊपर तिलका पात्र रखनेका विधान है । गुड़से उसके मुखकी, शर्करासे जिह्वाकी, उत्तम फलोंसे दाँतोंकी और मोतियोंसे आँखोंकी

* यह पूरा मन्त्र इस प्रकार है—'मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधिः । मधु नक्तमु-तोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः मधु द्यौरस्तु नः पिता । मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः । (ऋक्० १ । ९० । ६-८, यजु० १३ । २७-२९) ।

रचना करनी चाहिये । उसके ईंखके चरण, कुशके रोयें और ताँबेकी पीठ बनायी जाय । सफेद कम्बलसे उसका गलकम्बल बनाये और काँसेकी दोहनी उसके पासमें रख दे । रेशमके सूतोंसे उसकी पूँछ तथा मक्खनसे उसका थन बनाये अथवा उसके सींग सोनेके एवं खुर चाँदीके हों । फिर पासमें पञ्चरत्न रखे । चारों दिशाओंमें तिलसे भरे हुए चार पात्र तथा सभी दिशाओंमें सप्तधान्य रखनेका नियम है । इस प्रकारके लक्षणोंसे सम्पन्न क्षीर-धेनुकी कल्पना करनी चाहिये । फिर दो वस्त्रोंसे ढककर चन्दन और फूलोंसे उसकी पूजा करनी चाहिये । उसे वस्त्र आदिसे अलंकृत करके मुद्रिका और कानके कुण्डलसे भी सजाये । तत्पश्चात् धूप-दीप देकर वह क्षीरधेनु ब्राह्मणको अर्पण कर दे । दानके समय खड़ाऊँ, जूते और छाता भी दे । **'आप्यायस्व'०** (तै० आर० ३ । १७) इस वेदोक्त मन्त्रसे प्रार्थना करनेका नियम है । राजन् ! पूर्वोक्त **'आश्रयः सर्वभूतानाम्०'** तथा **'आप्यायस्व ममाङ्गानि०** इन मन्त्रोंको क्षीरधेनुका दान लेनेवाला ब्राह्मण भी पढ़े । यह इस दानकी विधि कही गयी है । इस प्रकार दी जानेवाली धेनुका जो दर्शन करते हैं, उन्हें भी परमगति प्राप्त होती है । इस दानके साथ अपनी शक्तिके अनुसार एक हजार अथवा सौ सोनेके सिक्के देने चाहिये । महाराज ! 'क्षीर-धेनु' देनेसे जो फल होता है, अब उसे सुनो—इसका दाता साठ हजार वर्षोंतक इन्द्रलोकमें स्थान पाता है । फिर वह उत्तम माला और चन्दनसे सुशोभित होकर अपने पिता-पितामह आदिके साथ दिव्य विमानमें सवार होकर ब्रह्मलोकको जाता है । वहाँ वह बहुत दिनोंतक आनन्दका अनुभव करके फिर सूर्यके समान प्रकाशमान उत्तम विमानपर सवार होकर वह विष्णुलोकमें जाता है । जाते समय मार्गमें अप्सराएँ उसकी संगीत और वाद्योंसे सेवा करती हैं । वह विष्णुभवनमें बहुत दिनोंतक रहकर फिर श्रीविष्णुमें ही लीन हो जाता है । राजन् ! जो पुरुष इस 'क्षीरधेनुके' प्रसङ्गको सुनता है अथवा भक्तिभावसे पढ़ता है, वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुलोकमें चला जाता है ।

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजन् ! अब मैं तुम्हें 'दधि-धेनु'का विधान बताता हूँ, सुनो । पहले गोबरसे 'गोचर्म'के प्रमाणयुक्त पृथ्वीको लीपकर उसे पुष्पोंसे सुशोभित कर ले और उसपर कुशा बिछा देना चाहिये । फिर उसपर काला मृगचर्म और कम्बल बिछाकर पृथ्वीपर सप्तधान्य बिखेर दे और उसके ऊपर दहीसे भरा हुआ एक घड़ा रखे । उसके चौथाई भागमें बछड़ेके लिये छोटा कलश रखनेका विधान है । सोनेसे उसके मुखकी शोभा बनाये और दो वस्त्रोंसे आच्छादित करके फूल और चन्दनसे उसकी पूजा करे । तत्पश्चात् जो कुलीन एवं साधु स्वभावका हो तथा क्षमा आदि गुणोंसे युक्त हो—ऐसे बुद्धिमान् ब्राह्मणको वह दधिधेनु दान कर दे । धेनुके पुच्छभागमें बैठकर यह विधि सम्पन्न करनी चाहिये । अँगूठी और कानके भूषणोंसे अलंकृतकर खड़ाऊँ, जूता और छाता देकर **'दधिक्राव्णोरकारिषं०'** (ऋक्० ४ । ३९ । ६)—यह मन्त्र पढ़कर भलीभाँति सुपूजित 'दधिधेनु'का दान करे । राजेन्द्र ! जिस दिन यह दधिमयी धेनु दे, उस दिन दही खाकर ही रह जाय । राजन् ! यजमान एक दिन दहीके आहारपर रहे और ब्राह्मणको तीन रात्रियोंतक दहीके आहारपर रहना चाहिये । जो दधिधेनुके दान करते समय इस दृश्यको देखते हैं, उनको परम पदार्थ प्राप्त हो जाता है । जो मनुष्य श्रद्धाके साथ इस प्रसङ्गको सुनता अथवा किसी दूसरेको सुनाता है, वह भी अश्वमेध-यज्ञके फलको प्राप्तकर विष्णुलोकमें चला जाता है ।

(अध्याय १०५-१०६)

'नवनीतधेनु' तथा 'लवणधेनु'की दानविधि

पुरोहित होताजी बोले—राजन् ! अब 'नवनीतधेनु'के दानकी विधि सुनो, जिसे सुनकर मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूट सकता है। 'गोचर्मप्रमाण'की भूमिको गोबरसे लीपकर उसके ऊपर काला मृगचर्म बिछाकर ढाई सेर वजनका मक्खनसे भरा हुआ एक घड़ा वहाँ स्थापित करे। उसके उत्तर दिशामें चतुर्थांश भागवाला एक कलश बछड़ेके प्रतिनिधिस्वरूप रखे। राजन् ! उस घड़ेपर ही सोनेकी सींग और सुन्दर मुखकी रचना करनी चाहिये। मोतियोंसे उसके नेत्र तथा गुड़से जीभ बनाये। फूलोंद्वारा उसके होंठ, फलोंद्वारा दाँत तथा स्वच्छ सूत्रोंद्वारा उसका गलकम्बल बनाये, अथवा शर्करासे उसकी जीभ एवं रेशमी सूत्रोंसे उसके गलकम्बलका निर्माण करे। राजन् ! मक्खनसे उसका थन बनाये, ईखसे चरण, उसकी ताम्रमय पीठ, रौप्यमय खुरकी रचनाकर दर्भमय रोमोंसे उस धेनुको अलंकृत करे। पासमें पञ्चरत्न रखकर उसके चारों ओर तिलसे भरे हुए चार पात्र रख दिये जायँ। उस कलश (रूपी गौ)-को दो वस्त्रोंसे ढककर चन्दन और फूलसे सुशोभित करे। फिर चारों दिशाओंमें दीपक प्रज्वलित कर वह गौ ब्राह्मणको अर्पण कर दे। पूर्वोक्त धेनुओंके विषयमें जो मन्त्र कहे गये हैं, उन्हीं मन्त्रोंका यहाँ भी जप करना चाहिये। साथमें इतना अधिक कहे—देवि ! पूर्व समयमें सम्पूर्ण देवताओं और असुरोंने मिलकर समुद्रका मन्थन किया था। उस अवसरपर यह दिव्य अमृतमय पवित्र नवनीत निकला, जिससे सम्पूर्ण प्राणियोंकी तृप्ति होती है। ऐसे नवनीतको मेरा नमस्कार ! ऐसा कहकर परिवारवाले ब्राह्मणको वह गौ देना चाहिये। धेनु देनेके पश्चात् दोहनीपात्र और उसके उपकरण दे तथा उस गौको ब्राह्मणके घरतक पहुँचा दे। राजन् ! इस धेनुका दान लेनेवाले ब्राह्मणको चाहिये कि उस दिन वह हविष्य तथा रसपर ही रह जाय और देनेवाला भी इसी प्रकार तीन दिनोंतक रहे। राजन् ! धेनुदान करते समय इस दृश्यको देखनेवाला भी सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर भगवान् शिवके सायुज्यको प्राप्त कर लेता है। वह मानव अपने पहले हुए पितरों तथा आगे होनेवाले संततियोंके साथ प्रलयपर्यन्त विष्णुलोकमें निवास करता है। जो भक्तिपूर्वक इस प्रसङ्गको सुनता तथा सुनाता है, वह भी सम्पूर्ण पापोंसे शुद्ध होकर विष्णुलोकमें सम्मानित होता है।

पुरोहित होताजी बोले—राजेन्द्र ! अब 'लवणधेनु' दानका प्रसङ्ग सुनो। मनुष्यको चाहिये कि वह एक मन वजनके नमकसे एक धेनु बनाकर लिपी हुई पवित्र भूमिपर मृगचर्मके ऊपर कुशा बिछाकर उसपर इस लवणमयी धेनुकी स्थापना करे। साथमें चार सेर नमकका एक बछड़ा भी बनाना चाहिये, जिसके चरण ईखसे बने हों। उसके मुँह और सींग सोनेके तथा खुर चाँदीके होने चाहिये। राजन् ! उसके मुखका अन्तर्भाग गुड़का, दाँत फलके, जीभ शर्कराकी, नासिका चन्दनकी, आँखें रत्नकी, कान पत्तोंके, कोख श्रीखण्डकी, थन नवनीतके, पुच्छ सूत्रमय, पृष्ठ ताम्रमय और उसके रोयें कुशाके हों। राजेन्द्र ! पासमें काँसेकी दोहिनीपात्र भी रखना चाहिये। फिर घण्टा और आभूषणोंसे उस धेनुको भूषित करे। चन्दन, फूल और धूप आदिसे विधिपूर्वक उसकी पूजा कर दो वस्त्रोंसे ढककर फिर उसे ब्राह्मणको अर्पण कर दे। नक्षत्र और ग्रहोंद्वारा कष्ट होनेपर मनुष्य किसी समय भी लवणधेनुका दान कर सकता है। वैसे ग्रहण, संक्रान्तिकाल, व्यतीपात योग और अयन बदलते समय इसके दानकी विशेष विधि है। दान ग्रहण करनेवाला ब्राह्मण साधु-स्वभावका,

शुद्ध कुलमें उत्पन्न, बुद्धिमान्, वेद और वेदान्तका पूर्ण विद्वान्, श्रोत्रिय और अग्निहोत्री होना चाहिये तथा राजन् ! ऐसे ब्राह्मणको, जो अमत्सरी—(किसीसे द्वेष न करता) हो, उसे यह गौ देनी चाहिये । इस प्रकार पूजा करके मन्त्र पढ़कर गौके पूँछकी ओर बैठकर गौका दान करना चाहिये। साथ ही छाता-जूता भी दान करना चाहिये। फिर उसे दो वस्त्रोंसे ढककर अँगूठी, कानके कुण्डलोंसे पूजा करके दक्षिणा और कम्बल प्रदान करे। पहले कही हुई विधिका पालन करनेके साथ अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णसे ब्राह्मणकी विधिवत् पूजाकर ब्राह्मणके हाथमें दक्षिणासहित गौकी पूँछ पकड़ा दे । साथ ही दान करते समय कहना चाहिये—'ब्राह्मणदेव ! आप इस रुद्ररूपी धेनुको स्वीकार करें । आपको मेरा नमस्कार है ।' फिर गौसे प्रार्थना करे—'परमवन्दनीये ! रुद्ररूपिणी गो ! तुम्हें नमस्कार । तुम मेरा मनोरथ पूर्ण करो । लवणधेनु दान कर दाता एक दिन लवणके आहारपर रहे और लेनेवाले ब्राह्मणको तीन रातोंतक लवणके आहारपर रहना चाहिये । दाता इस दानके फलस्वरूप, जहाँ भगवान् शंकरका निवास है, उसे प्राप्त कर लेता है । जो भक्तिके साथ इसका श्रवण करता है अथवा दूसरेको सुनाता है, वह मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर भगवान् रुद्रके लोकको प्राप्त करता है ।

(अध्याय १०७-१०८)

'कार्पास' एवं 'धान्य-धेनु'की दानविधि

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजन् ! अब कर्पासमयी धेनुके दानकी विधि बताता हूँ, जिसके प्रभावसे मनुष्य उत्तम इन्द्रलोकको प्राप्त करता है । विषुवयोग,अयनके परिवर्तनका समय, युगादितिथि, ग्रहणके अवसर, ग्रहोंकी पीड़ा दुःस्वप्न-दर्शन तथा अरिष्टकी सम्भावना होनेपर मनुष्योंके लिये यह कर्पासधेनुका दान श्रेयोवह होता है । राजन् ! दानके लिये गायके गोबरसे लिपी भूमिपर कुश बिछाकर उसपर तिल बिखेरकर बीचमें वस्त्र और मालासे सुशोभित (कपाससे बनी) धेनुकी स्थापना करनी चाहिये। धूप, दीप और नैवेद्य आदिसे श्रद्धापूर्वक (मात्सर्य-रहित होकर) उसकी पूजा करनी चाहिये । कृपणताका त्यागकर चार भार कपाससे सर्वोत्तम गौकी रचना करे। दो भारसे गौकी रचना करना मध्यम तथा एक भारसे बनी हुई धेनु अधम श्रेणीकी कही गयी है । धनकी कंजूसीका सर्वथा त्याग करना अनिवार्य है । गायके चौथाई भागमें बछड़ेकी कल्पना करके उसका दान करना चाहिये । सोनेकी सींग, चाँदीका खुर, अनेक फलोंके दाँत और रत्न-गर्भसे युक्त धेनु होनी चाहिये । श्रद्धाके साथ ऐसी सर्वाङ्गपूर्ण कर्पासमयी धेनु बनाकर उसका मन्त्रोंके द्वारा आह्वान एवं प्रतिष्ठाकर उसे ब्राह्मणको निवेदित कर दे। श्रद्धाके साथ संयमपूर्वक गौको हाथसे स्पर्श करके दान करना चाहिये । पूर्वोक्त विधिका पालन करते हुए मन्त्र पढ़कर दान करे । मन्त्रका भाव इस प्रकार है—'देवि ! तुम्हारे अभावमें किसी भी देवताका कार्य नहीं चलता, यदि यह बात सत्य है तो देवि ! तुम इस संसारसागरसे मेरी रक्षा करो ! मेरा उद्धार करो !'

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजन् ! अब धान्यमयी धेनुका प्रसङ्ग सुनो, जिससे स्वयं पार्वतीजी भी संतुष्ट हो जाती हैं । विषुवयोग, अयनके परिवर्तनका समय अथवा कार्तिककी पूर्णिमाके शुभ समयमें इस दान-का विशेष महत्त्व है । इसके दान करनेसे जैसे राहुसे चन्द्रमाका उद्धार होता है, वैसे ही मनुष्य पापसे छूट

जाता है। अब उसी धेनुदानकी उत्तम विधि मैं कहता हूँ। राजेन्द्र! दस धेनु-दान करनेसे जो फल मिलता है, वह फल एक धान्यमयी धेनुके दानसे सुलभ हो जाता है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि पहलेकी भाँति गोबरसे लिपी हुई पवित्र भूमिपर काले मृगका चर्म बिछाकर उसपर इस धान्य-धेनुकी स्थापना कर उसकी पूजा करे। चार दोन, छः मन वजनके अन्नसे बनी हुई धेनु उत्तम और दो दोन, तीन मन अन्नसे बनी धेनु मध्यम मानी गयी है। सोनेकी सींग, चाँदीके खुर, रत्न-गोमेद तथा अगरु एवं चन्दनसे उस गायकी नासिका, मोतीसे दाँत तथा घी और मधुसे उस गायके मुखकी रचना करे। श्रेष्ठ वृक्षके पत्तोंसे कानकी रचनाकर काँसेका दोहनीपात्र उसके साथमें रखना चाहिये। उसके चरण ईखके और पूँछ रेशमी वस्त्रके बनाये। फिर रत्नोंसे भरे अनेक प्रकार-के फलोंको उसके पास रखे। खड़ाऊँ, जूता, छाता, पात्र तथा दर्पण भी वहाँ रखने चाहिये। पहलेके समान सभी अङ्गोंकी कल्पना करे और मधुसे उस गाय-का सुन्दर मुख बनाये। पुण्यकाल उपस्थित होनेपर पहले-जैसे ही दीपक आदिसे पूजा करनेके पश्चात् सर्व-प्रथम स्नान करके श्वेत वस्त्र धारण करे। फिर तीन बार उस गायकी प्रदक्षिणा करे और दण्डकी भाँति उसके सामने लेटकर उसे साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये। तत्पश्चात् ब्राह्मणसे प्रार्थना करे—'ब्राह्मणदेवता! आप महान् ऐश्वर्यसे सम्पन्न, वेद और वेदान्तके पारगामी विद्वान् हैं। द्विज-श्रेष्ठ! मेरी दी हुई यह गाय प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करनेकी कृपा कीजिये। इस दानके प्रभावसे देवाधिदेव भगवान् मधुसूदन मुझपर प्रसन्न हो जायँ। भगवान् गोविन्दके पास जो लक्ष्मी विराजती हैं, अग्निकी पत्नी स्वाहा, इन्द्रकी शची, शिवकी गौरी, ब्रह्माजीकी पत्नी गायत्री, चन्द्रमाकी ज्योत्स्ना, सूर्यकी प्रभा, बृहस्पतिकी बुद्धि तथा मुनियोंकी जो मेधा है, वे सभी यहाँ धान्यमयी अन्नपूर्णादेवी धेनुरूपमें मेरे पास विराजमान हैं।' इस प्रकार कहकर वह धेनु ब्राह्मणको अर्पण कर दे।

इस प्रकार गोदान करनेके बाद दाता व्यक्ति ब्राह्मणकी प्रदक्षिणा कर क्षमा माँगे। राजन्! धन और रत्नोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वीके दानसे अधिक पुण्यफल इस धान्यधेनुके दानसे मिलता है। राजेन्द्र! इससे मुक्ति और भुक्तिरूप फल सुलभ हो जाते हैं। अतः इसका दान अवश्य करना चाहिये। इस दानके प्रभावसे संसारमें दाताके सौभाग्य, आयु और आरोग्य बढ़ते हैं और मरनेपर सूर्य-के समान प्रकाशमान किङ्किणीकी जालियोंसे सुशोभित विमानद्वारा, अप्सराओंसे स्तुति किया जाता हुआ, वह भगवान् शिवके निवासस्थान कैलासको जाता है। जबतक उसे यह दान स्मरण रहता है, तबतक स्वर्गलोकमें उसकी प्रतिष्ठा होती है। फिर स्वर्गसे च्युत होनेपर वह जम्बूद्वीपका राजा होता है। 'धान्यधेनु'का यह माहात्म्य स्वयं भगवान्‌द्वारा कथित है। इसे सुनकर मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त एवं परम शुद्ध-विग्रह होकर रुद्रलोकमें पूजा, प्रतिष्ठा और सम्मान प्राप्त करता है।

(अध्याय १०९-११०)

कपिलादानकी विधि एवं माहात्म्य

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजन्! अब परमोत्तम कपिला गौका वर्णन करता हूँ, जिसके दान करनेसे मनुष्य उत्तम विष्णुलोकको प्राप्त होता है। पूर्वनिर्दिष्ट विधिके अनुसार बछड़ेसहित समस्त अलंकारोंसे अलंकृत तथा रत्नोंसे विभूषितकर कपिला-धेनुका दान करना चाहिये। (भगवान् वराह पृथ्वीसे कहते हैं—) भामिनि! कपिला गायके सिर और ग्रीवामें सम्पूर्ण तीर्थ निवास करते हैं। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर कपिला

गौके गले एवं मस्तकसे गिरे हुए जलको प्रेमपूर्वक सिर झुकाकर प्रणाम करता है, वह पवित्र हो जाता है और उसी क्षण उसके पाप भस्म हो जाते हैं। प्रातःकाल उठकर जिसने कपिला गौकी प्रदक्षिणा की, उसने मानो सम्पूर्ण पृथ्वीकी प्रदक्षिणा कर ली और उसके दस जन्मके किये हुए पाप उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं। पवित्र व्रतके आचरण करनेवाले पुरुषको कपिला गौके मूत्रसे स्नान करना चाहिये। ऐसा करनेवाला मानो गङ्गा आदि सभी तीर्थोंमें स्नान कर चुका। भक्तिपूर्वक उसके गोमूत्रसे स्नान करनेपर मनुष्य पवित्र हो जाता है। फिर जो जीवनपर्यन्त स्नान करता है, वह पापसे छूट जाय, इसमें तो संदेह ही क्या? एक मनुष्य जो एक हजार साधारण गौ-दान करता है और एक दूसरा व्यक्ति जो कपिला-दान करता है—इन दोनोंका फल समान है। यदि कपिला गौ कहीं मर गयी हो तो उसकी हड्डीकी गन्धको भी मनुष्य जबतक सूँघता है? तबतक उसके शरीरमें पुण्य व्याप्त होते रहते हैं। कपिलाके शरीरको खुजलाना और उसकी सेवा करना परम श्रेष्ठ धर्म माना जाता है। भय एवं रोग आदिके अवसरपर इसकी सेवा करनेसे सौ गौके दानके तुल्य पुण्य होता है। जो प्रतिदिन भूखी हुई कपिला गौको एक भी तृण देता है, उसे 'गोमेधयज्ञ'का फल होता है और वह अग्निके समान देदीप्यमान होकर दिव्य विमानोंद्वारा भगवान्‌के लोकको जाता है।

सोनेके समान रंगवाली कपिला प्रथम श्रेणीकी है और पिङ्गलवर्णवाली द्वितीय श्रेणीकी। लाल आँखवाली कपिला गौ तीसरी श्रेणीकी कपिला कही जाती है तथा वैडूर्यके समान पिङ्गलवर्णवाली चौथी कपिला है। अनेक वर्णोंवाली कपिला पाँचवीं, कुछ श्वेत और पीले रंगवाली छठी, सफेद एवं पीली आँखवाली सातवीं, काले और पीले रंगसे मिश्रित आठवीं, गुलाबी रंगवाली नवीं, पीली पूँछवाली दसवीं और सफेद खुरवाली ग्यारहवीं श्रेणीकी कपिला गौ कही गयी है। इन सम्पूर्ण लक्षणोंसे युक्त तथा अखिल अलंकारोंसे अलंकृत की हुई कपिला गौ भक्त ब्राह्मणको दान करनी चाहिये। इस गौके दान करनेपर भुक्ति और मुक्तिकी प्राप्ति होती है। साथ ही इस गौका दान करनेके प्रभावसे देनेवालेको भगवान् विष्णुका मार्ग सुलभ हो जाता है। (अध्याय १११)

कपिला-माहात्म्य, 'उभयतोमुखी' गोदान, हेम-कुम्भदान और पुराणकी प्रशंसा

पुरोहित होताजी कहते हैं—महाराज! अब मैं कपिलाके भेद तथा उभयमुखी गोदानका वर्णन करता हूँ, जिसे पूर्वकालमें पृथ्वीके पूछनेपर भगवान् वराहने कहा था।

पृथ्वीने पूछा—प्रभो! आपने जिस कपिला गौकी बात कही है तथा आपके द्वारा जिसका उत्पादन हुआ है, वह हेमधेनु सदा पुण्यमयी है। प्रभो! उसके कितने और क्या लक्षण हैं तथा स्वयम्भू ब्रह्माजीने स्वयं कितने प्रकारकी कपिलाएँ बतलायी हैं। माधव! दान करनेपर यह कपिला गौ किस प्रकारका पुण्य प्रदान कर सकती है। जगद्गुरो! विस्तारपूर्वक यह प्रसङ्ग मैं आपसे सुनना चाहती हूँ।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! यह प्रसङ्ग पवित्र एवं पापोंका नाश करनेवाला है। इसे भलीभाँति बतलाता हूँ, सुनो। इसके सुननेमात्रसे ही पुरुष अखिल पापोंसे मुक्त हो जाता है। वरानने! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने सम्पूर्ण तेजोंका सार एकत्र कर यज्ञोंमें अग्निहोत्रकी सम्पन्नताके लिये कपिला गौका निर्माण किया था। वसुंधरे! कपिला गौ पवित्रोंको पवित्र करनेवाली, मङ्गलोंका मङ्गल तथा पुण्योंमें परम पुण्यमयी है। तप इसीका रूप है, व्रतोंमें यह उत्तम व्रत, दानोंमें यह उत्तम दान तथा निधियोंमें यह अक्षय निधि है। पृथ्वीमें गुप्तरूपसे या प्रकटरूपसे जितने पवित्र तीर्थ हैं एवं

सम्पूर्ण लोकोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य प्रभृति द्विजातियोंद्वारा सायंकाल और प्रातःकाल अग्निहोत्र आदि हवनकी जो भी क्रियाएँ हैं, वे सभी कपिला गायके घृत, क्षीर तथा दहीसे होती हैं। विधिपूर्वक मन्त्रोंका उच्चारणकर इनमें व्याप्त घृतसे जो हवन करता या अतिथिकी पूजा करता है, वह सूर्यके समान प्रकाशमान विमानोंपर चढ़कर सूर्यमण्डलके मध्यभागसे होते हुए विष्णुलोकमें जाता है। अनन्तरूपिणी कपिला धेनुमें सिद्धि और बुद्धि देनेकी पूर्ण योग्यता है। सम्पूर्ण लक्षणोंसे लक्षित जिन कपिला धेनुओंका पहले वर्णन किया है, वे सभी महान् ऐश्वर्यसे सम्पन्न हैं। उनकी कृपासे निश्चय ही मानवोंका उद्धार हो जाता है। जिनमें कपिलाके एक भी लक्षण घटित हो, ऐसी स्थितिमें सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली कपिलाधेनुको सर्वोत्तम कहा गया है। ऐसी कपिलाके पुच्छ, मुख और रोम सब अग्निके समान माने जाते हैं। वह अग्निमयी कपिलादेवी 'सुवर्णाख्या' बतायी जाती है। जो ब्राह्मण प्रबल इच्छाके कारण हीनव्यक्तिसे ऐसी कपिलाधेनु दानमें लेकर उसका दूध पीता है तो इस निन्दित कर्मके कारण उस अधम ब्राह्मणको पतितके समान समझना चाहिये। जो ब्राह्मण हीन व्यक्तियोंसे कपिलाका दान लेता है उसके पितर उसी समयसे अपवित्र स्थानमें पड़ जाते हैं। ऐसे ब्राह्मणसे बात भी नहीं करनी चाहिये और एक आसनपर भी नहीं बैठना चाहिये। वसुंधरे! ब्राह्मण समाज दूरसे ही ऐसे प्रतिग्राही ब्राह्मणका त्याग कर दे। यदि ऐसे प्रतिग्राही ब्राह्मणसे वार्तालाप हो गया या एक आसनपर बैठ गया तो उस बैठनेवाले ब्राह्मणको प्राजापत्य एवं कृच्छ्र-व्रत करना चाहिये, तब उसकी शुद्धि होती है। अन्य करोड़ों विस्तृत दानोंकी क्या आवश्यकता? एक कपिला गौका दान ही साधारण हजार गौओंके दानके समान है। श्रोत्रिय, दरिद्र, शुद्ध आचारवाले तथा अग्निहोत्री ब्राह्मणको एक भी कपिला गौ देना सर्वोत्तम है।

गृहाश्रमी पुरुषको चाहिये कि दान देनेके लिये जल्दी ही प्रसव करनेवाली धेनुका पालन करे। जिस समय वह कपिला धेनु आधा प्रसव करनेकी स्थितिमें हो जाय, उसी समय उसे ब्राह्मणको दान कर देना चाहिये। जब उत्पन्न होनेवाले बछड़ेका मुख योनिके बाहर दीखने लगे और शेष अङ्ग अभी भीतर ही रहे, अर्थात् अभी पूरे गर्भका उसने मोचन (बाहर) नहीं किया, तबतक वह धेनु सम्पूर्ण पृथ्वीके समान मानी जाती है। वसुंधरे! ऐसी गायका दान करनेवाले पुरुष ब्रह्मवादियोंसे सुपूजित होकर ब्रह्मलोकमें उतने करोड़ वर्षोंतक निवास करते हैं, जितनी कि धेनु और बछड़ेके रोमोंकी संख्याएँ होती हैं। सोनेकी सींग, चाँदीके खुरसे सम्पन्न करके कपिला गौ ब्राह्मणके हाथमें दे। दान करते समय उस धेनुका पुच्छ ब्राह्मणके हाथपर रख दे। हाथपर जल लेकर शुद्ध वाणीमें ब्राह्मणसे संकल्प पढ़वावे। जो पुरुष इस प्रकार (उभयमुखी गौका) दान करता है, उसने मानो समुद्रसे घिरी हुई पर्वतों और वनोंसे तथा रत्नोंसे परिपूर्ण समूची पृथ्वीका दान कर दिया—इसमें कोई संशय नहीं। ऐसा मनुष्य इस दानसे निश्चय ही पृथ्वी-दानके तुल्य फलका भागी होता है। वह अपने पितरोंके साथ आनन्दित होकर भगवान् विष्णुके परम धाममें पहुँच जाता है। ब्राह्मणका धन छीननेवाला, गोघाती अथवा गर्भका पात करनेवाला पापी, दूसरोंको ठगनेवाला, वेदनिन्दक, नास्तिक, ब्राह्मणोंका निन्दक और सत्कर्ममें दोषदृष्टि रखनेवाला महान् पापी समझा जाता है। किंतु ऐसा घोर पापी भी बहुतसे सुवर्णोंसे युक्त उभयमुखी गौके दानसे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है। श्रेष्ठभावोंवाली पृथ्वी देवि! दाताको चाहिये कि उस दिन खीरका भोजन करे अथवा दूधके ही सहारे रहे। गोदानके समय ब्राह्मणसे प्रार्थना करे—'मैं यह उभयमुखी गाय देता

हूँ, आप इसे स्वीकार करें। इसके प्रभावसे मेरा इस लोक तथा परलोकमें निश्चय ही कल्याण हो।' फिर गायसे प्रार्थना करे—'अपने वंशकी वृद्धिके लिये मैंने तुम्हें दानमें दिया। तुम सदा मेरा कल्याण करो।' दान लेते समय ब्राह्मण उभयमुखी धेनुसे प्रार्थना करे—'धेनो! अपने कुटुम्बकी रक्षाके लिये मैं दानरूपमें तुम्हें स्वीकार कर रहा हूँ। देवताओंकी धात्रि! तुम्हें नमस्कार। रुद्राणि! तुम्हें बार-बार नमस्कार। तुम्हारी कृपासे मेरा निरन्तर कल्याण हो। आकाश तुम्हारा दाता और पृथ्वी गृहीत्री है। आजतक कौन इसे किसके लिये देनेमें समर्थ हो सका है।' वसुंधरे! ऐसा कह लेनेपर दाता ब्राह्मणको विदा करे और ब्राह्मण उस धेनुको अपने घर ले जाय।

वसुंधरे! इस प्रकार प्रसवके समय गायका जो दान करता है, उसने मानो सात द्वीपोंवाली पृथ्वीका दान कर दिया, इसमें कोई संशय नहीं। चन्द्रमाके समान मुखवाली, सूक्ष्म मध्य भागवाली, तपाये हुए सुवर्णवर्णकी कपिला गौकी प्रसव करते समय सम्पूर्ण देवसमुदाय निरन्तर स्तुति करता है। जो व्यक्ति प्रातःकाल उठकर समाहितचित्तसे तीन बार भक्तिपूर्वक इस कल्प—'गोदान-विधान'को पढ़ता है, उसके वर्षभरके किये हुए पाप उसी क्षण इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे वायुके झोंकेसे धूलके समूह। जो पुरुष श्राद्धके अवसरपर इस परम पावन प्रसङ्गका पाठ करता है, उस बुद्धिमान् पुरुषके अन्तरमें दिव्य संस्कार भर जाते हैं और पितर उसकी वस्तुओंको बड़े प्रेमसे ग्रहण करते हैं। अमावास्या तिथिमें ब्राह्मणोंके सम्मुख जो इसका पाठ करता है, उसके पितर सौ वर्षके लिये तृप्त हो जाते हैं। जो पुरुष मन लगाकर निरन्तर इसका श्रवण करता है, उसके सौ वर्षोंके भी किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं।

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजेन्द्र! इस परम प्राचीन गोदान-महिमाके रहस्यको भगवान् वराहने पृथ्वीको सुनाया था। सम्पूर्ण पापोंको शान्त करनेवाला यह पूरा प्रसङ्ग मैंने तुम्हें सुना दिया। माघ मासके शुक्लपक्षकी द्वादशीके दिन तिलधेनुका दान करना चाहिये। इसके फलस्वरूप दाता सम्पूर्ण कामनाओंसे सम्पन्न होकर अन्तमें भगवान् विष्णुके पदको प्राप्त करता है। महाराज! श्रावण मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिके दिन सुवर्णके साथ प्रत्यक्ष धेनुका दान करना चाहिये। राजेन्द्र! ऐसे तो सभी समयमें सब प्रकारकी धेनुओंका दान करना उत्तम है, पर इस दानसे सब प्रकारके पाप शान्त हो जाते हैं और दाताको भुक्ति-मुक्ति सुलभ हो जाती है। यह प्रसङ्ग बड़ा विस्तृत है, जिसे मैंने तुमसे संक्षेपमें ही बतलाया है। धेनुओंका दान मनुष्योंके लिये सब प्रकारकी कामनाएँ पूर्ण करनेवाला है। राजेन्द्र! जो ऐसा कुछ भी नहीं करता, वह भूखसे अत्यन्त पीड़ित होता रहता है।

राजन्! इस समय कार्तिकका महीना चल रहा है। इसमें भौतिक रत्नों और ओषधियोंसे युक्त 'ब्रह्माण्ड'का दान करना चाहिये। देवता, दानव और यक्ष सब ब्रह्माण्डके ही अन्तर्गत हैं। यह सम्पूर्ण बीजों और रसोंसे समन्वित है। इसे हेममय बताया गया है। कार्तिकमें शुक्लपक्षकी द्वादशीके दिन अथवा विशेष करके पूर्णमासीके अवसरपर इस रत्नसहित ब्रह्माण्डाकृतिको श्रेष्ठ पुरोहितको भक्तिके साथ दान करे। राजन्! ब्रह्माण्डभरमें जितने तीर्थ हैं तथा जितने दान हैं, वे सभी इस ब्रह्माण्डदाता पुरुषके द्वारा सम्पन्न हो गये—ऐसा समझना चाहिये। संक्षेपसे यह प्रसङ्ग तुम्हें बता दिया। राजन्! जो पुरुष हजारों दक्षिणाओंसे सम्पन्न होनेवाला यज्ञ करता है, वह तो ब्रह्माण्डके किसी एक देशकी पूजा करता है, पर जो पुरुष इस

सारे ब्रह्माण्डकी अर्चना कर, सामग्री दान करता है, उसके द्वारा मानो सभी हवन, पाठ और कीर्तन विधिपूर्वक सम्पन्न हो गये।'

इस प्रकारकी बात सुनकर राजाने उसी समय एक सुवर्ण-कुम्भमें ब्रह्माण्डकी कल्पना कर विधिपूर्वक उन ऋषिको ब्रह्माण्डका दान किया और उसके फलस्वरूप वह राजा सम्पूर्ण कामनाओंसे सम्पन्न हो स्वर्गको चला गया। अतएव राजेन्द्र! तुम भी यह दान करके सुखी हो जाओ। वसिष्ठजीके ऐसा कहनेपर उस राजाने भी ऐसा ही किया। फिर उन्हें वह परम सिद्धि प्राप्त हुई, जिसे पाकर मनुष्य कभी सोच नहीं करता।*

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! यह संहिता सम्पूर्ण इच्छाओंको पूर्ण करनेवाली है। इसका तुम्हारे सामने वर्णन कर दिया। वरारोहे! 'वराह'नामसे प्रसिद्ध इस संहितामें अखिल पातकोंको नष्ट करनेकी शक्ति है। सर्वज्ञ परमप्रभुसे ही इसका उद्भव हुआ था। तत्पश्चात् ब्रह्माजी इसके विशेषज्ञ हुए। ब्रह्माजीने इसे अपने पुत्र पुलस्त्यजीको बताया। पुलस्त्यजीने परशुरामजीको, परशुरामजीने अपने शिष्य उग्रको और उग्रने मनुको इसकी शिक्षा दी। यह तो पूर्वकल्पकी बात हुई। अब भविष्यकी बात सुनो। धराधरे! तुम्हारी कृपासे कपिल आदि सिद्ध पुरुष तपस्या करके इसे जाननेमें समर्थ होंगे। इसी क्रमसे फिर इसका ज्ञान वेदव्यासको होगा। व्यासदेवके शिष्य रोमहर्षणि नामसे विख्यात होंगे। वे शुनकके पुत्र शौनकसे इसका कथन करेंगे, इसमें कुछ संदेह नहीं। कृष्णद्वैपायन वेदव्यासजी सबके गुरु होंगे। वे अठारह पुराणोंके ज्ञाता हैं, जो इस प्रकार कहे गये हैं—पहला ब्रह्मपुराण, दूसरा पद्मपुराण, तीसरा वायुपुराण, चौथा शिवपुराण, पाँचवाँ भागवतपुराण, छठा नारदपुराण, सातवाँ मार्कण्डेयपुराण, आठवाँ अग्निपुराण, नवाँ भविष्यपुराण, दसवाँ ब्रह्मवैवर्तपुराण, ग्यारहवाँ लिङ्गपुराण, बारहवाँ वराहपुराण, तेरहवाँ स्कन्दपुराण, चौदहवाँ वामनपुराण, पंद्रहवाँ कूर्मपुराण, सोलहवाँ मत्स्यपुराण, सत्रहवाँ गरुडपुराण और अठारहवाँ ब्रह्माण्डपुराण। वसुंधरे! जो पुरुष कार्तिक मासकी द्वादशी तिथिके दिन भक्तिपूर्वक इसका पठन एवं व्याख्यान करता है, वह यदि संतानहीन हो तो उसे अवश्य ही पुत्रकी प्राप्ति होती है। प्राणियोंको आश्रय देनेवाली देवि! जिसके घरमें यह लिखा हुआ प्रसङ्ग सदा पूजित होता है, उसके यहाँ स्वयं भगवान् नारायण विराजते हैं। जो भक्तिके साथ निरन्तर इसका श्रवण करता है तथा सुनकर भगवान् आदिवराहसे सम्बन्ध रखनेवाले इस 'वराहपुराण'की पूजा करता है, उसने मानो सनातन भगवान् विष्णुकी पूजा कर ली। वसुंधरे! इसे सुनकर इस ग्रन्थ तथा भगवान्‌की गन्ध-पुष्पमाला और वस्त्रोंसे पूजन तथा भोजन-वस्त्रद्वारा ब्राह्मणोंका सम्मान करना चाहिये। यदि राजा हो तो अपनी शक्तिके अनुसार बहुतसे ग्राम देकर इस पुस्तक—वराहपुराणकी पूजा करे। ऐसा करनेवाला मानव सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुके सायुज्यको प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय ११२)



*[**विशेष द्रष्टव्य**—वराहपुराणके ये 'तिलधेनु' आदि दानके ९९ से ११२ तकके अध्याय 'कृत्यकल्पतरु', 'अपरार्क', 'हेमाद्रि दानखण्ड', नीलकण्ठ भट्टके 'दानमयूख', रघुनन्दनके 'दानतत्त्व' तथा अन्योंकी 'दानचन्द्रिका'-'दानकौमुदी', बल्लालसेनके 'दानसागर' आदिमें प्रायः सर्वथा इसी क्रमसे इन्हीं श्लोकोंमें प्राप्त होते हैं। इनमें 'अपरार्क'का तथा 'कृत्यकल्पतरु'के रचयिता पं० लक्ष्मीधरका समय १०वीं एवं ११वीं शती है। उस समय इस पुराणकी कितनी प्रतिष्ठा थी, यह इससे सूर्यालोककी तरह सुस्पष्ट हो जाता है।]

पृथ्वीद्वारा भगवान्‌की विभूतियोंका वर्णन

नैमिषारण्यके ऋषिसत्रमें सूतजीने कहा कि एक बार श्रीसनत्कुमारजी भ्रमण करते हुए पृथ्वीसे आकर मिले और पूछा—देवि! जिनके आधारपर तुम अवलम्बित हो तथा जिन वराहभगवान्से तुमने पुराणका श्रवण किया है, उसे तत्त्वपूर्वक कहनेकी कृपा करो। ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारकी बात सुनकर पृथ्वीने उनसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

पृथ्वी बोली—विप्रेन्द्र! भगवद्विभूतिका यह विषय अत्यन्त गोपनीय है। जिस समय संसारमें चन्द्रमा, अग्नि, सूर्य और नक्षत्र—इन सभीका अभाव था, सभी दिशाएँ स्तम्भित थीं, किसीको कुछ भी ज्ञान नहीं था, न पवनकी गति थी, न अग्नि और विद्युत् ही अपना प्रकाश फैला सकते थे, उस समय परम प्रभु परमात्माने मत्स्यका अवतार धारण कर रसातलसे वेदोंका उद्धार किया। फिर उन्होंने कूर्मका अवतार धारणकर अमृत प्रकट किया। हिरण्यकशिपु वर पाकर दृप्त (गर्वीला) हो गया था, उस समय भगवान्ने नरसिंहका अवतार धारण कर उसका संहार करके प्रह्लाद तथा विश्वकी रक्षा की। इसी प्रकार उन्होंने परशुराम तथा रामका अवतार धारण कर रावणादि दुष्टोंका संहार किया और भगवान् वामनद्वारा बलि बाँधे गये।

फिर सृष्टिके आरम्भमें जब मैं समुद्रमें डूबी जा रही थी, तब मैंने भगवान्से प्रार्थना की—'जगत्प्रभो! आप सम्पूर्ण विश्वके स्वामी हैं। देवेश! आप मुझपर प्रसन्न होइये। माधव! भक्तिपूर्वक मैं आपकी शरणमें पहुँची हूँ, आप कृपा करें। सूर्य, चन्द्रमा, यमराज और कुबेर—इन रूपोंमें आप ही विराजमान हैं। इन्द्र, वरुण, अग्नि, पवन, क्षर-अक्षर, दिशा और विदिशा आप ही हैं। हजारों युग-युगान्तरोंके समाप्त हो जानेपर भी आप सदा एकरस स्थित रहते हैं। पृथ्वी-जल-तेज-वायु और आकाश—ये पाँच महाभूत तथा शब्द-स्पर्श-रूप-रस और गन्ध—ये पाँच विषय आपके ही रूप हैं। ग्रहोंसहित सम्पूर्ण नक्षत्र तथा कला, काष्ठा और मुहूर्त आपके ही परिणाम हैं। सप्तर्षिवृन्द, सूर्य-चन्द्र आदि ज्योतिश्चक्र और ध्रुव—इन सबमें आप ही प्रकाशित होते हैं। मास-पक्ष, दिन-रात, ऋतु और वर्ष—ये सब भी आप ही हैं। नदियाँ, समुद्र, पर्वत तथा सर्पादि जीवोंके रूपमें परम प्रसिद्ध आप ही सत्तावान् हैं। मेरु-मन्दराचल, विन्ध्य, मलय-दर्दुर, हिमालय, निषध आदि पर्वत और प्रधान आयुध सुदर्शन चक्र—ये सब आपके ही रूप हैं। आप धनुषोंमें शिवजीके धनुष—'पिनाक' हैं, योगोंमें उत्तम 'सांख्य'योग हैं। लोकोंके लिये आप परमपरायण भगवान् श्रीनारायण हैं। यज्ञोंमें आप 'महायज्ञ' हैं और यूपों (यज्ञस्तम्भों)में आप स्थिर रहनेकी शक्ति हैं। वेदोंमें आपको 'सामवेद' कहा जाता है। आप महाव्रतधारी पुरुषके अवयव वेद और वेदाङ्ग हैं। गरजना, बरसना आपके द्वारा ही होता है। आप ब्रह्मा हैं। विष्णो! आपके द्वारा अमृतका सृजन होता है, जिसके प्रभावसे जनता जीवन धारण कर रही है। श्रद्धा-भक्ति, प्रीति, पुराण और पुरुष भी आप ही हैं। धेय और आधेय—सारा जगत्, जो कुछ इस समय वर्तमान है, वह आप ही हैं। सातों लोकोंके स्वामी भी आपको ही कहा जाता है। काल, मृत्यु, भूत, भविष्य, आदि-मध्य-अन्त, मेधा-बुद्धि और स्मृति आप ही हैं। सभी आदित्य आपके ही रूप हैं। युगोंका परिवर्तन करना आपका ही कार्य है। आपकी किसीसे तुलना नहीं की जा सकती, अतः आप अप्रमेय हैं। आप नागोंमें 'शेष' तथा सर्पोंमें 'तक्षक' हैं। उद्वह-प्रवह, वरुण और वारुणरूपसे भी आप ही विराजते हैं। आप ही इस विश्वलीलाके मुख्य सूत्रधार हैं। सभी गृहोंमें गृह-देवता आप ही हैं। सबके भीतर विराजमान, सबके अन्तरात्मा और मन आप ही हैं। विद्युत् और वैद्युत

एवं महाद्युति—ये आपके ही अङ्ग हैं। वृक्षोंमें आप वनस्पति तथा आप सत्क्रियाओंमें श्रद्धा हैं। आप ही गरुड़ बनकर अपने आत्मरूप (श्रीहरि)को वहन करते हैं और उनकी सेवामें परायण रहते हैं। दुन्दुभि और नेमिघोषसे जो शब्द होते हैं, वे आपके ही रूप हैं। निर्मल आकाश आपका ही रूप है। आप ही जय और विजय हैं। सर्वस्वरूप, सर्वव्यापी, चेतन और मन भी आप ही हैं। ऐश्वर्य आपका स्वरूप है। आप पर एवं परात्मक हैं। विष एवं अमृत भी आपके ही रूप हैं। जगद्वन्द्य प्रभो! आपको मेरा बारंबार प्रणाम है। लोकेश्वर! मैं डूबी जा रही हूँ, आप मेरी रक्षा करें।'

यह भगवान् केशवकी स्तुति है। व्रतमें दृढ़ स्थिति रखनेवाला जो पुरुष इसका पाठ करता है, वह यदि रोगोंसे पीड़ा पा रहा हो तो उसका दुःख दूर हो जाता है। यदि बन्धनमें पड़ा हो तो उससे उसकी मुक्ति हो जाती है। अपुत्री पुत्रवान् बन जाता है। दरिद्रको सम्पत्ति सुलभ हो जाती है। विवाहकी कामनावाले अविवाहित व्यक्तिका विवाह हो जाता है। कन्याको सुन्दर पति प्राप्त होता है। महान् प्रभु भगवान् माधवकी इस स्तुतिका जो पुरुष सायं और प्रातः पाठ करता है, वह भगवान् विष्णुके लोकमें चला जाता है। इस विषयमें कुछ भी अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। भगवान्‌की कही हुई ऐसी वाणीकी जबतक परिचर्चा होती रहती है, तबतक वह पुरुष स्वर्गलोकमें सुख पाता है।

(अध्याय ११३)

श्रीवराहावतारका वर्णन

सूतजी कहते हैं—पृथ्वीने जब भगवान् नारायणकी इस प्रकार स्तुति की तो परम समर्थ भगवान् केशव उसपर प्रसन्न हो गये। फिर कुछ समय-तक वे योगजनित ध्यान-समाधिमें स्थित रहे। तदनन्तर वे मधुर स्वरमें पृथ्वीसे कहने लगे—'देवि! मैं पर्वतों और वनोंसहित तुम्हारा शीघ्र ही उद्धार करूँगा, साथ ही पर्वतसहित सभी समुद्रों, सरिताओं और द्वीपोंको भी धारण करूँगा।'

इस प्रकार भगवान् माधवने पृथ्वीको आश्वासन देकर एक महान् तेजस्वी वराहका रूप धारण किया और छः हजार योजनकी ऊँचाई तथा तीन हजार योजनकी चौड़ाईमें—यों नौ हजार योजनके परिमाणमें अपना विग्रह बनाया। फिर अपने बायीं दाढ़की सहायतासे पर्वत, वन, द्वीप और नगरोंसहित पृथ्वीको समुद्रसे ऊपर उठा लिया। कई विज्ञानसंज्ञक पर्वत जो पृथ्वीमें लगे हुए थे, वे समुद्रमें गिर पड़े। उनमें कुछ तो संध्याकालीन मेघोंकी तरह विचित्र शोभा प्राप्त कर रहे थे और कुछ निर्मल चन्द्रमाकी तरह भगवान् वराहके मुखके ऊपर लगे सुशोभित हो रहे थे। इनमें कुछ पर्वत भगवान् चक्रपाणिके हाथमें इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे, मानो कमल खिले हों। इस प्रकार भगवान् वराह अपनी दाढ़पर एक हजार वर्षोंतक समुद्र-सहित पृथ्वीको धारण किये रह गये। उस दाढ़पर ही कई युगोंके कालका परिमाण व्यतीत हो गया। फिर इकहत्तरवें कल्पमें कर्दमप्रजापतिका प्राकट्य हुआ। तबसे अविनाशी भगवान् विष्णु पृथ्वीके आराध्यदेव माने जाते हैं। परम्पराके अनुसार यही उत्तम 'वराह-कल्प' कहलाया।

तदनन्तर पृथ्वीने भगवान्‌से प्रश्न किया—'भगवन्! आपकी प्रसन्नताका आधार क्या और कैसा है? प्रातः एवं सायंकालकी संध्याका स्वरूप क्या है? भगवन्! पूजामें आवाहन, स्थापन और विसर्जन कैसे किये जाते हैं तथा अर्घ्य, पाद्य, मधुपर्क-स्नानकी सामग्री, अगुरु, चन्दन और धूप कितने प्रमाणमें ग्राह्य हैं? शरद्,

हेमन्त, शिशिर, वसंत, ग्रीष्म और वर्षा ऋतुओंमें आपकी आराधनाका क्या विधान है ? उस समय उपयोग करने योग्य जो पुष्प और फल हैं तथा करने योग्य और न करने योग्य तथा शास्त्रसे निषिद्ध जो कर्म हैं, उन्हें भी बतानेकी कृपा करें । ऐश्वर्यवान् पुरुष कर्मोंका भोग करते हुए आपको कैसे प्राप्त करते हैं ? कर्मों तथा इनके फलोंका दूसरेमें कैसे संक्रमण होता है, आप यह भी कृपाकर बतायें । पूजाका क्या प्रमाण है, प्रतिमाकी स्थापना किस प्रकार और किस प्रमाणमें होनी चाहिये । भगवन् ! उपवासकी क्या विधि है और उसे कब किया जाय ? शुक्ल, पीत और रक्त वस्त्रोंको किस प्रकार धारण करना चाहिये ? उन वस्त्रोंमें कौन वस्त्र किनके लिये हितकारक होता है । प्रभो ! आपके लिये फल-शाक आदि कैसे अर्पण किये जायँ ? धर्मवत्सल ! मन्त्रके द्वारा आमन्त्रित करनेपर आये हुए देवताओंके लिये शास्त्रानुकूल कर्मका अनुष्ठान कैसे हो ? प्रभो ! भोजन कर लेनेके बाद कौन-सा धर्म-कर्म अनुष्ठेय है तथा जो लोग एक समय भोजनकर आपकी उपासना करते हैं, आपके मार्गका अनुसरण करनेवाले उन व्यक्तियोंको कौन-सी गति प्राप्त होती है । माधव ! कृच्छ्र और सांतपनव्रतके द्वारा जो आपकी उपासना करते हैं तथा जो वायुका आहार करके भगवान् श्रीकृष्णकी उपासना करनेवाले हैं, उन्हें कौन-सी गति मिलती है ? प्रभो ! आपकी भक्तिमें व्यवस्थित रहकर बिना लवणका भोजन करके जो आपकी आराधना करते हैं तथा जो आपकी भक्ति करते हुए पयोव्रत रखते हैं और माधव ! जो प्रतिदिन गौको ग्रास देकर आपकी शरणमें जाते हैं, प्रभो ! उन्हें कौन-सी गति मिलती है ?

भिक्षापर जीविका चलाकर गृहस्थधर्मका पालन करते हुए जो आपकी ओर अग्रसर होते हैं तथा जो आपके कर्मोंमें परायण रहकर आपके क्षेत्रोंमें प्राण त्यागते हैं, वे महाभाग किन लोकोंमें जाते हैं ? जो पञ्चाग्नि-साधन कर उसका फल भगवान् माधवको समर्पण करते हैं तथा जो पञ्चाग्निव्रतमें अथवा कण्टकमय शय्यापर रहकर भगवान् अच्युतका दर्शन करते हैं, वे किस उत्तम गतिको पाते हैं ? श्रीकृष्ण ! आपके भक्तिपरायण जो व्यक्ति गोशालामें शयन करके आपके शरणागत बने रहते हैं तथा शाकाहार करके आप भगवान् अच्युतकी ओर अग्रसर होते हैं, उनकी कौन-सी गति निश्चित है ? भगवन् ! जो मानव कण-भक्षण करके तथा पञ्चगव्य पानकर आप माधवकी शरण ग्रहण करते हैं, जो यवके आहारपर तथा गोमय पीकर आपकी उपासना करते हैं, नारायण ! उनके लिये वेदोंमें कौन-सी गति एवं विधि निर्दिष्ट है ? जो यावक (जौसे बने पदार्थ) खाकर आपकी उपासना करते हैं तथा आपकी सेवामें सदा संलग्न रहकर दीपकको सिरसे प्रणाम करके आपकी अर्चना करते हैं एवं जो प्रतिदिन आपके चिन्तनमें संलग्न रहकर दुग्धाहारपर रहते हैं, वे कौन गति पाते हैं ? आपके चिन्तनमें जो समय व्यतीत करनेवाले तथा 'अश्माशन'व्रत करके आपकी सदा उपासना करनेवाले हैं, उन्हें कौन गति सुलभ होती है ? भगवन् ! भक्ति-परायण जो विद्वान् व्यक्ति दूर्वाका आहार करके आपकी उपासना करते हैं एवं अपने धर्म-गुणका आचरण करते हुए प्रीतिपूर्वक घुटनेके बल बैठकर आपकी अर्चना करते हैं, उन्हें कौन गति मिलती है ? यह सब आप बतानेकी कृपा करें । भगवन् ! पृथ्वीपर सोनेवाला तथा पुत्र, स्त्री और घरसे सदा उदासीन होकर जो आपकी शरणमें चला जाता है, देवेश्वर ! उसे कौन-सी सिद्धि मिलती है ? यह बतानेकी कृपा कीजिये ।

माधव ! आप सम्पूर्ण रहस्योंके ज्ञाता, विश्व-पिता और सम्पूर्ण धर्मोंके निर्णायक हैं, अतः योग और सांख्यमें निर्णीत सर्वहितावह यह निर्णययुक्त उपदेश आप ही कर

सकते हैं। जो कृष्ण-नामका कीर्तन अथवा **'ॐ नमो नारायणाय'** कहकर आपकी उपासना करते हैं, उन्हें कौन-सी गति मिलती है? आप कृपापूर्वक यह भी बतायें।

भगवन्! मैं आपकी शिष्या और दासी हूँ। भक्ति-भावसे आपकी शरणमें उपस्थित हूँ। जगद्गुरो! मुझपर आपकी कृपा है, लोकमें धर्मके प्रचार-हेतु आप इस धर्मरहस्यको मुझसे कहनेकी कृपा करें—यह मेरी आकाङ्क्षा है। (अध्याय ११४)

विविध धर्मोंकी उत्पत्ति

सूतजी कहते हैं—उस समय पृथ्वीकी बात सुनकर भगवान् नारायणने कहा—'जगत्को आश्रय देनेवाली देवि! मैं अब स्वर्गमें सुख देनेवाले साधनोंको तुम्हें बतलाऊँगा। मैं श्रद्धारहित प्राणीके सैकड़ों यज्ञों और हजारों प्रकारके दान आदि धर्मोंसे संतुष्ट नहीं होता और न मैं धनसे ही प्रसन्न होता हूँ। किंतु माधवि! यदि कोई व्यक्ति चित्तको एकाग्र करके श्रद्धापूर्वक मेरा ध्यान-स्मरण करता है, वह चाहे बहुत दोषोंसे युक्त भी क्यों न हो, मैं उसके व्यवहारसे सदा संतुष्ट रहता हूँ। पृथ्वीदेवि! जो अत्यन्त बुद्धिमान् पुरुष मुझे आधी रात, अन्धकारपूर्ण समय, मध्याह्न अथवा अपराह्णके समय निरन्तर नमस्कार करते हैं, मैं उनपर सदा संतुष्ट रहता हूँ। मेरी भक्तिमें व्यवस्थित चित्तवाला भक्त कभी भक्तिसे विचलित नहीं होता। द्वादशी तिथिके दिन मेरी भक्तिमें तत्पर रहकर जो लोग उपवास करते हैं—मेरी भक्तिके परायण वे पुरुष मेरा साक्षात् दर्शन प्राप्त कर लेते हैं। सुन्दरि! जो ज्ञानवान् एवं गुणज्ञ हैं तथा जिनका हृदय भक्तिसे ओतप्रोत है, ऐसे मनुष्य इच्छानुसार स्वर्गमें वास करते हैं। सुमुखि! मुझे पाना बड़ा कठिन है। थोड़े प्रयाससे मुझे कोई प्राप्त नहीं कर सकता। माधवि! भक्त जिन कर्मोंके फलस्वरूप मेरा दर्शन पाते हैं, अब उन कर्मोंका तुमसे वर्णन करता हूँ। जो श्रद्धालु व्यक्ति द्वादशी तिथिके दिन उपवास करते हैं, वे मेरा दर्शन प्राप्त कर लेते हैं। जो उपवास करके हाथमें एक अञ्जलि जल लेकर **'ॐ नमो नारायणाय'** कहकर सूर्यकी ओर देखते हुए जलसे उन्हें अर्घ्य प्रदान करते हैं, उनकी अञ्जलिसे जलकी जितनी बूँदें गिरती हैं, उतने हजार वर्षोंतक वे स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं।

देवि! जो धर्मात्मा पुरुष द्वादशी तिथिमें विधिके साथ यत्नपूर्वक मेरी उपासना करते हैं तथा श्वेत पुष्पों एवं सुगन्धित धूपसे मेरी अर्चना करते हैं और मन्दिरमें मेरी स्थापना कर पूजा करते हैं, उन्हें जो गति मिलती है, वह सुनो। वसुंधरे! उज्ज्वल वस्त्र धारणकर मन्त्रोच्चारण-पूर्वक मेरे सिरपर पुष्प-अर्पण करना चाहिये। मन्त्रोंके भाव इस प्रकार हैं—'भगवान् श्रीहरि परम पूज्य एवं मान्य पुरुष हैं, वे पुष्पोंको स्वीकार करें एवं मुझपर प्रसन्न हो जायँ। भगवान् विष्णु व्यक्त और अव्यक्त गन्धको स्वीकार करनेवाले हैं। ऐसे भगवान् विष्णुके लिये मेरा बारंबार नमस्कार है। वे सुगन्धोंको पुनः-पुनः स्वीकार करें। भगवान् अच्युत अपनी शरणमें आये हुए भक्तकी बातको सुनकर प्रसन्न हो जाते हैं, उन्हें मेरा नमस्कार है। वे जगद्-व्याप्त सूक्ष्म गन्ध तथा मेरे द्वारा अर्पित किये हुए धूपको ग्रहण करें।' जो मेरा उपासक शास्त्रोंका श्रवण करके मेरे लिये ही कार्य सम्पादन करता है, वह मेरे लोकमें जानेका अधिकारी है। वहाँ वह चार भुजावाला होकर शोभा पाता है। देवि! जो मन्त्रोंद्वारा मेरी पूजा करता है, वह मुझे बड़ा प्रिय लगता है। तुम्हारी प्रसन्नताके लिये यह सब उत्तम प्रसङ्ग मैंने तुम्हें कह सुनाया। सावाँ, सत्तु, गेहूँ,

मूँग, धान, यव, तीना और कंगुनी—ये परम पवित्र अन्न हैं। जो मेरे भक्त पुरुष इन्हें खाते हैं, उन्हें शङ्ख, चक्र, हल और मूसल आदि-सहित मेरे चतुर्व्यूह स्वरूपका सदा दर्शन होता है।

वसुंधरे ! अब मोक्षकामी ब्राह्मणका कर्म बतलाता हूँ, उसे सुनो। मेरे उपासक ब्राह्मणको अध्यापनादि छः कर्मोंमें निरत रहकर अहंकारसे सदा दूर रहना चाहिये। उसे लाभ और हानिकी चिन्ता छोड़ इन्द्रियोंको वशमें रखकर भिक्षाके आहारपर जीवन बिताना चाहिये। उसे सदा मुझसे प्रीतिवाले कर्म करने चाहिये तथा पिशुनता (चुगली) आदिसे सर्वथा दूर रहना चाहिये। शास्त्रानुसरण करे, बालक, युवा और वृद्ध सबके लिये समान धर्म है। वसुंधरे ! एकाग्र-चित्त होना, इन्द्रियोंको वशमें रखना और इष्टापूर्त* कर्म करना—वेदोक्त यज्ञोंका अनुष्ठान, बगीचा लगाना, कूप-तालाब आदिका निर्माण करना ब्राह्मणका स्वाभाविक गुण होना चाहिये। ऐसा करनेवाला ब्राह्मण मुझे प्राप्त कर लेता है।

अब मेरी उपासनामें तत्पर रहनेवाले मध्यम श्रेणीके क्षत्रियके कर्तव्य धर्मोंका वर्णन सुनो। वह दान देनेमें शूर, कर्मकी जानकारी रखनेवाला, यज्ञोंमें परम कुशल, पवित्र, क्षत्रिय मुझसे सम्बन्ध रखनेवाले कर्मोंमें ज्ञानवान् तथा अहंकारसे शून्य हो। वह थोड़ा बोले, दूसरोंके गुणोंको समझे, भगवान्में सदा प्रीति रखे, विद्यागुरुसे किसी प्रकार मनमें द्वेष न करे तथा कभी कोई निन्दित कर्म न करे। उसे स्वागत-सत्कारादि करनेमें कुशल तथा कृपणतासे दूर रहना चाहिये। देवि! इन गुणोंसे सम्पन्न क्षत्रिय भी मुझे निःसंदेह प्राप्त कर लेता है।

वसुंधरे ! अब मैं अपनी उपासना या भक्तिमें संलग्न रहनेवाले वैश्योंके कर्म बतलाता हूँ। मेरे भक्तिमार्गका नित्य अवलम्बन वैश्यका धर्म है। उसके मनमें धनके प्रति विशेष लोभ, लाभ और हानिके भाव नहीं उठने चाहिये। वह ऋतुकालमें ही अपनी स्त्रीके पास जाय। वह अपने अन्तःकरणमें सदा शान्ति-संतोष बनाये रखे। वह मोहमें न पड़े, पवित्र एवं निपुण रहकर व्रतोंके अवसरपर उपवास करे और सदा मेरी उपासनामें रुचि रखे। वह नित्य गुरुकी पूजा करे तथा अपने सेवकोंपर दया रखे। इस प्रकारके लक्षणोंसे सम्पन्न जो वैश्य अपने कर्मोंका सम्पादन करता है, उसके लिये न तो मैं कभी अदृश्य होता हूँ और न वह कभी मेरे लिये; अर्थात् मेरा और उसका सदा साक्षात् सम्बन्ध बना रहता है।

माधवि ! अब मैं शूद्रके उन कर्मोंका वर्णन करता हूँ, जिनका सम्पादन करके वह मुझमें स्थित हो जाता है। जो शूद्र-दम्पति—स्त्री और पुरुष दोनों मेरी उपासना सदा भक्तिभावसे करनेवाले हों, भागवत-मतानुयायी, देश और कालकी जानकारी रखते हों, रजोगुण और तमोगुणके प्रभावसे मुक्त हों, अहंकाररहित, शुद्ध-हृदय, अतिथि-सेवी, विनम्र तथा सबके प्रति श्रद्धालु, अति पवित्र, लोभ और मोहसे दूर और बड़ोंको सदा सादर नमस्कार करनेवाले एवं मेरे स्वरूपका ध्यान करनेवाले हों तो मैं हजारों ऋषियोंको छोड़कर उन्हींपर रीझ जाता हूँ। देवि ! तुमने जो चारों वर्णोंके कर्म पूछे थे, मैंने उनका वर्णन कर दिया।

देवि ! इस प्रकार मेरी उपासनासे सम्बन्ध रखनेवाले गुणोंका, जिसने भक्तिके साथ अनुष्ठान कर लिया, वह मुझे पानेका अधिकारी है। अब क्षत्रियोंके लिये आचरणीय दूसरा कर्म बतलाता हूँ—उसे सुनो। वसुंधरे ! यह ऐसा कर्म है, जिसके प्रभावसे उसे 'योग'

* 'अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव साधनम्। आतिथ्यं वैश्वदेवं च इष्टमित्यभिधीयते॥ वापिकूपतडागानि देवतायतनानि च। अन्नप्रदानमर्थिभ्यः पूर्तमित्यभिधीयते॥' (मार्कण्डेयपुराण १८।६-७, अत्रिसंहिता ४३-४४ के) इस वचनानुसार अग्निहोत्र, तप, वेदपाठ, अतिथिसत्कार, बलिवैश्वदेव—'इष्टकर्म' तथा कूप-बावली, मन्दिर, तालाबका निर्माण, अन्नदान आदि 'पूर्त' कर्म हैं।

सुलभ हो जाता है। वह लाभ और हानिका त्याग कर मोह और कामसे अलग होकर, शीत और उष्णमें निर्विकार रहकर, लाभ और हानिकी चिन्ता न करे। तिक्त-कटु-मधुर, खट्टा-नमकीन और कषाय स्वादवाले पदार्थोंकी भी उसे स्पृहा नहीं करनी चाहिये। उत्तम सिद्धि प्राप्त हो, इसकी भी उसे अभिलाषा नहीं करनी चाहिये। भार्या, पुत्र, माता-पिता—ये सब मुझे सेवाके लिये मिले हैं, वह मनमें ऐसा भाव रखे। पर इनमें भी आसक्ति न रखकर सदा मेरी भक्तिमें ही तत्पर रहे। वह धैर्यवान्, कार्यकुशल, श्रद्धालु एवं व्रतका पालन करनेवाला हो। उत्सुकताके साथ सदा कर्तव्य कर्ममें तत्पर रहनेवाला, निन्दित कर्मोंसे अलग रहनेवाला, और जिसका बचपन, यौवन समानरूपसे धर्ममें बीता हो, जो भोजन थोड़ा करे, कुलीनतासे रहे, सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करनेवाला हो, प्रातःकाल जगनेवाला, क्षमाशील, पर्वकालमें मौन रहनेवाला और जबतक कर्मकी समाप्ति न हो, तबतक इसे निरन्तर करनेवाला हो, ऐसा क्षत्रिय 'योग'का अधिकारी होता है। निश्चित धर्मके पथपर रहकर अखाद्य वस्तुका त्याग करे, धर्मके अनुष्ठानमें परायण रहे और अपना मन सदा मुझमें लगाये रखे। वह यथासमय मल-मूत्रका त्यागकर स्नान कर ले। पुष्प-चन्दन और धूपको मेरी पूजाकी सामग्री मानकर उनका संग्रह करनेमें सदा लगा रहे। कभी कन्दमूल और फलसे ही अपने शरीरका निर्वाह करे। कभी दूध, कभी सत्तू और कभी केवल जलके ही आहारपर रहे। कभी छठी साँझ (तीसरे दिन), कभी चौथी साँझ तथा कभी अनुकूल समयमें निर्दोष फल मिल जायँ तो उनका आहार कर ले। वसुंधरे! दस दिन, एक पक्ष अथवा एक मासमें जो कुछ स्वतः मिल जाय, उसी आहारपर रह जाय। इस प्रकार जो सात वर्षोंतक मेरी आराधना करता है तथा पूर्वकथित कर्मोंमें जिसकी स्थिति बनी रहती है, ऐसा क्षत्रिय 'योग'का अधिकारी होता है तथा योगीलोग भी उसका दर्शन करने आते हैं। (अध्याय ११५)

सुख और दुःखका निरूपण

भगवान् वराह कहते हैं—महाभागे! मेरे द्वारा निर्दिष्ट विधानके अनुसार जो कर्म करता-कराता है, उसे किस प्रकार सफलता प्राप्त होती है, अब मैं यह बतलाता हूँ, सुनो। मेरा भक्त एकाग्रचित्त, सुस्थिर होकर अहंकारका परित्याग कर दे एवं अपने चित्तको सदा मुझमें समाहितकर क्षमाशील, जितेन्द्रिय होकर रहे। वह द्वादशी तिथिको फल-मूल अथवा शाकका आहार करे, अथवा पयोव्रती एवं सर्वथा शाकाहारपर रहनेवाला हो। षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, अमावास्या, चतुर्दशी—इन तिथियोंमें वह संयमपूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करे। इस प्रकार योगविधानपूर्वक मेरी उपासना करनेवाला दृढ़व्रती पवित्रात्मा व्यक्ति धर्मसे सम्पन्न होकर विष्णुलोकको जाता है। वहाँ उसकी अठारह भुजाएँ होती हैं और उनमें वह धनुष, तलवार, बाण तथा गदा धारणकर सारूप्य मोक्ष प्राप्त करता है। उसे ग्लानि, बुढ़ापा, मोह और रोग नहीं होते। वे छाछठ हजार वर्षोंतक मेरे लोकमें निवास करते हैं।

अब दुःखका स्वरूप बताता हूँ, उसे सुनो। उचित उपचार करनेसे दुःखसे मुक्ति अथवा उस क्लेशका विनाश सम्भव है। जो मानव सदा अहंकार एवं मोहसे आच्छादित है और मेरी शरणमें नहीं आता, अन्न सिद्ध हो जानेपर जो स्वयं पहले 'बलिवैश्वदेव' कर्म नहीं करता तथा जो सर्वभक्षी, सब कुछ बेचनेमें तत्पर तथा मुझे नमस्कार करनेसे भी विमुख है और मुझे प्राप्त करनेका प्रयत्न नहीं करता, भला इससे बढ़कर दूसरा दुःख और क्या

होगा ? जो बलिवैश्वदेवके समय आये हुए अतिथिको भोजन अर्पण न कर स्वयं खा लेता है, देवता उसके अन्नको ग्रहण नहीं करते। संसारकी विषम परिस्थितिमें यथाप्राप्त वस्तुसे जो असंतुष्ट रहकर दूसरेकी स्त्री आदिपर बुरी दृष्टि डालता है एवं दूसरोंको कष्ट पहुँचाता है, वह महान् मूर्ख है। जो मानव सत्कर्मोंका अनुष्ठान न करके घरमें ही आलस्यसे पड़ा रहता है, वह समयानुसार कालके चंगुलमें फँस जाता है, यह महान् दुःखका विषय है। कुछ पुरुष अपने कर्मोंके प्रभावसे सुन्दर रूप प्राप्त करते हैं और कुछ दूसरे कुरूप होते हैं। कुछ विद्वान् पुण्यात्मा, गुणोंके ज्ञाता और सम्पूर्ण शास्त्रोंके पारगामी होते हैं और कितने बोलनेमें भी असमर्थ, सर्वथा गूँगे। कितनोंके पास धन है, परंतु वे किसीको न तो देते हैं और न स्वयं ही उसका उपभोग करते हैं—इस प्रकार वे दरिद्र ही बने रहते हैं, फिर भला उस दारिद्र्यकी तुलनामें और कोई दूसरा दुःख क्या हो सकता है।* किसी पुरुषकी दो स्त्रियाँ हैं, उन दोनोंमेंसे पति एककी तो प्रशंसा करता है और दूसरीको हीन मानता है, तो उस भाग्यहीना स्त्रीके लिये इससे बढ़कर अन्य दुःख क्या होगा ? यह सब पूर्वके ही कर्मोंका तो फल है।

सुमध्यमे ! ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य इस प्रकार द्विजाति होकर भी जो पापकर्मोंमें ही सदा रचे-पचे रहें और जिन्हें पञ्चतत्त्वोंसे निर्मित मनुष्यशरीर प्राप्त हो फिर भी वे मुझे पानेमें असफल रहें तो इससे बढ़कर दुःख क्या होगा ? भद्रे ! तुमने जो पापका प्रसङ्ग मुझसे पूछा, वह पाप सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें बाधक है; अतः दुःखप्राप्ति करानेवाले प्राक्तन (पूर्वजन्मके) एवं तत्कालीन कर्मों और दुःखोंका स्वरूप मैंने तुम्हें बताया।

शुभ कर्मके विषयमें तुमने जो प्रश्न किया है, कल्याणि ! इस विषयमें निर्णीत तत्त्व मैं तुम्हें बताता हूँ, वह भी सुनो। जो शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करके उसका श्रेय मेरे भक्तोंको निवेदन कर देता है, उसके पास दुःखका आना सम्भव नहीं है। जो मेरी पूजा करके नैवेद्य अर्पण किये हुए अन्नको बाँटकर फिर बचे हुएको प्रसाद मानकर स्वयं ग्रहण करता है, उससे बढ़कर संसारमें सुखी कौन है ?

वसुंधरे ! मेरे कहे हुए नियमके अनुसार तीनों कालोंमें संध्या आदि उत्तम कर्म करके जो जीवन व्यतीत करता है, जगत्को आश्रय देनेवाली पृथ्वि ! जो देवता, अतिथि और दुःखी मानवोंके लिये अन्न देकर फिर स्वयं उसे ग्रहण करता है, जिसके यहाँ आया हुआ अतिथि कभी निराश नहीं लौटता अर्थात् जिस किसी प्रकारसे उसे कुछ-न-कुछ अर्पितकर उसे सत्कृत करता है, जो प्रत्येक मासमें एकादशीव्रत और अमावास्याको श्राद्धकर्म करता है, जिससे पितृगण परम तृप्त होते हैं, जो भोजन तैयार हो जानेपर उसमें हव्यान्न डालता है और उसे समानस्वादसे भक्षण करता है—भला उससे बढ़कर संसारमें कोई दूसरा सुख क्या हो सकता है।

देवि ! जिसकी दो भार्याएँ हैं और दोनोंमें जिसकी बुद्धि विकाररहित है, जो दोनोंको समान दृष्टिसे देखता है, जो पवित्रात्मा पुरुष सदा हिंसारहित कर्म करता है अर्थात् हिंसामें जिसकी कभी प्रवृत्ति नहीं होती, वह परम शुद्ध पुरुष मन्त्र-सुख भोगनेके लिये ही संसारमें आया है। दूसरेकी सुन्दर स्त्रीको देखकर जिसका चित्त चलायमान नहीं होता और जो मोती आदि रत्नों तथा सुवर्णको मिट्टीके ढेलेके समान देखता है, भला उससे बढ़कर सुखी कौन है ? हाथी और घोड़ोंसे परिपूर्ण युद्धस्थलमें जो योद्धा अपने प्राणोंका परित्याग करता है, संयोग-वियोगमें सदा अनासक्त रहकर जो कुत्सित कर्मोंका परित्याग करता है एवं स्वयं भगवद्भजन करते हुए संतुष्ट रहकर जीवन धारण करता है, उससे बढ़कर भला संसारमें सुखी कौन है ?

* गोस्वामी तुलसीदासजीने भी कहा है—'नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं।' इत्यादि (रामचरितमानस ७। १२०।७)

वसुंधरे ! स्त्रियोंके लिये पतिकी सेवा ही व्रत है, ऐसा समझकर जो स्त्री अपने स्वामीको सदा संतुष्ट रखती है, धनी होकर भी जो पण्डित पुरुष जितेन्द्रिय और पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंको वशमें रखे हुए है, जो अपमानको सहता है तथा दुःखमें उद्विग्न नहीं होता, इच्छा अथवा अनिच्छासे भी जो मेरे उत्तम क्षेत्रमें प्राणोंको छोड़ता है, जो पुरुष माता और पिताकी सदा पूजा करता है तथा देवताकी भाँति नित्यप्रति उनका दर्शन करता है, तो इस सुखसे बढ़कर संसारमें अन्य कोई सुख नहीं है । सम्पूर्ण देवताओंमें जो मेरी ही भावना करके पूजा करता है, उससे मैं तिरोहित नहीं होता हूँ और न वह मुझसे ही तिरोहित होता है । भद्रे ! तुमने जो सम्पूर्ण लोकोंके हितसाधनके लिये पूछा था, वह पवित्र एवं निर्णीत वस्तुतत्त्व मैंने तुम्हारे सामने व्यक्त कर दिया । (अध्याय ११६)

भगवान्‌की सेवामें परिहार्य बत्तीस अपराध

भगवान् वराह कहते हैं—भद्रे ! आहारकी एक सुनिश्चित शास्त्रीय मर्यादा है । अतः मनुष्यको क्या खाना चाहिये और क्या नहीं खाना चाहिये, अब यह बताता हूँ, सुनो । माधवि ! जो भोजनके लिये उद्यत पुरुष मुझे अर्पित करके भोजन करता है, उसने अशुभ कर्म ही क्यों न किये हों, फिर भी वह धर्मात्मा ही समझा जाने योग्य है । धर्मके जाननेवाले पुरुषको प्रतिदिन धान, यव आदि—सब प्रकारके साधनमें सहायक (जीवनरक्षणीय) अन्नसे निर्मित आहारका ही सेवन करना चाहिये । अब जो साधनमें बाधक हैं, तुम्हें उन्हें बताता हूँ । जो मुझे अपवित्र वस्तुएँ भी निवेदन करके खाता है, वह धर्म एवं मुक्ति-परम्पराके विरुद्ध महान् अपराध करता है, चाहे वह महान् तेजस्वी ही क्यों न हो, यह मेरा पहला भागवत अपराध है । अपराधीका अन्न मुझे बिल्कुल नहीं रुचता है । जो दूसरेका अन्न खाकर मेरी सेवा या उपासना करता है, यह दूसरा अपराध है । जो मनुष्य स्त्री-सङ्ग करके मेरा स्पर्श करता है, उसके द्वारा होनेवाला यह तृतीय कोटिका सेवापराध है । इससे धर्ममें बाधा पड़ती है । वसुंधरे ! जो रजस्वला नारीको देखकर मेरी पूजा करता है, मैं इसे चौथा अपराध मानता हूँ । जो मृतकका स्पर्श करके अपने शरीरको शुद्ध नहीं करता और अपवित्रावस्थामें ही मेरी सपर्यामें लग जाता है, यह पाँचवाँ अपराध है, जिसे मैं क्षमा नहीं करता । वसुंधरे ! मृतकको देखकर बिना आचमन किये मेरा स्पर्श करना छठा अपराध है । पृथ्वि ! यदि उपासक मेरी पूजाके बीचमें ही शौचके लिये चला जाय तो यह मेरी सेवाका सातवाँ अपराध है । वसुंधरे ! जो नीले वस्त्रसे आवृत होकर मेरी सेवामें उपस्थित होता है, यह उसके द्वारा आचरित होनेवाला आठवाँ सेवा-अपराध है । जगत्‌को धारण करनेवाली पृथ्वि ! जो मेरी पूजाके समय अनुचित—अनर्गल बातें कहता है, यह मेरी सेवाका नवाँ अपराध है । वसुंधरे ! जो शास्त्रविरुद्ध वस्तुका स्पर्श करके मुझे पानेके लिये प्रयत्नशील रहता है, उसका यह आचरण दसवाँ अपराध माना जाता है ।

जो व्यक्ति क्रोधमें आकर मेरी उपासना करता है, यह मेरी सेवाका ग्यारहवाँ अपराध है, इससे मैं अत्यत अप्रसन्न होता हूँ । वसुंधरे ! जो निषिद्ध कर्मोंको पवित्र मानकर मुझे निवेदित करता है, वह बारहवाँ अपराध है । जो लाल वस्त्र या कौसुम्भ रंगके (वनकुसुमसे रँगे) वस्त्र पहनकर मेरी सेवा करता है, वह तेरहवाँ सेवा-अपराध है । धरे ! जो अन्धकारमें मेरा स्पर्श करता है, उसे मैं चौदहवाँ सेवा-अपराध मानता हूँ । वसुंधरे ! जो मनुष्य काले वस्त्र धारणकर मेरे कर्मोंका सम्पादन करता है, वह पंद्रहवाँ अपराध करता है । जगद्धात्रि ! जो बिना धोती पहने हुए

मेरी उपचर्यामें संलग्न होता है, उसके द्वारा आचरित इस अपराधको मैं सोलहवाँ मानता हूँ। माधवि! अज्ञानवश जो स्वयं पकाकर बिना मुझे अर्पण किये खा लेता है, यह सतरहवाँ अपराध है।

वसुंधरे! जो अभक्ष्य (मत्स्य-मांस) भक्षण करके मेरी शरणमें आता है, उसके इस आचरणको मैं अट्ठारहवाँ सेवापराध मानता हूँ। वसुंधरे! जो जालपाद-(बतख)का मांस भक्षण करके मेरे पास आता है, उसका यह कर्म मेरी दृष्टिमें उन्नीसवाँ अपराध है। जो दीपकका स्पर्श करके बिना हाथ धोये ही मेरी उपासनामें संलग्न हो जाता है, जगद्धात्रि! उसका वह कर्म मेरी सेवाका बीसवाँ अपराध है। वरानने! जो श्मशानभूमिमें जाकर बिना शुद्ध हुए मेरी सेवामें उपस्थित हो जाता है, वह मेरी सेवाका इक्कीसवाँ अपराध है। वसुंधरे! बाईसवाँ अपराध वह है, जो पिण्याक (हींग)-भक्षण कर मेरी उपासनामें उपस्थित होता है।

देवि! जो सूअर आदिके मांसको प्राप्त करनेका यत्न करता है, उसके इस कार्यको मैं तेईसवाँ अपराध मानता हूँ। जो मनुष्य मदिरा पीकर मेरी सेवामें उपस्थित होता है, वसुंधरे! मेरी दृष्टिमें यह चौबीसवाँ अपराध है। जो कुसुम्भ (करमी)का शाक खाकर मेरे पास आता है, देवि! वह मेरी सेवाका पचीसवाँ अपराध है। पृथ्वि! जो दूसरेके वस्त्र पहनकर मेरी सेवामें उपस्थित होता है, उसके उस कर्मको मैं छब्बीसवाँ अपराध मानता हूँ। वसुंधरे! सेवापराधोंमें सत्ताईसवाँ अपराध वह है, जो नया अन्न उत्पन्न होनेपर उसके द्वारा देवताओं और पितरोंका यजन न कर उसे स्वयं खा लेता है। देवि! जो व्यक्ति जूता पहनकर किसी जलाशय या बावलीपर चला जाता है, उसके इस कार्यको मैं अट्ठाईसवाँ अपराध मानता हूँ। गुणशालिनि! शरीरमें उबटन लगाकर जो बिना स्नान किये मेरे पास चला आता है, यह मेरा उन्तीसवाँ अपराध है, जो पुरुष अजीर्णसे ग्रस्त होकर मेरे पास आता है, उसका यह कार्य मेरी सेवाका तीसवाँ अपराध है। यशस्विनि! जो पुरुष मुझे चन्दन और पुष्प अर्पण किये बिना पहले धूप देनेमें ही तत्पर हो जाता है, उसके इस अपराधको मैं इकतीसवाँ मानता हूँ। मनस्विनि! भेरी आदिद्वारा मङ्गलशब्द किये बिना ही मेरे मन्दिरके फाटकको खोलना बत्तीसवाँ अपराध है। देवि! इस बत्तीसवें अपराधको महापराध समझना चाहिये।

वसुंधरे! जो पुरुष सदा संयमशील रहकर शास्त्रकी जानकारी रखता हुआ मेरे कर्ममें सदा संलग्न रहता है, वह आवश्यक कर्म करनेके पश्चात् मेरे लोकको चला जाता है। परमधर्म अहिंसामें परायण रहते हुए सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करना चाहिये। स्वयं अमानी, पवित्र और दक्ष रहकर सदा मेरे भजनके मार्गपर ही चलता रहे। साधक पुरुष इन्द्रियोंको जीतकर सेवा एवं नामादि अपराधोंसे निरन्तर बचा रहे। वह उदार हो और धर्मपर आस्था रखे, अपनी स्त्रीसे ही संतुष्ट रहे। शास्त्रज्ञ और सूक्ष्म बुद्धिसम्पन्न होकर मेरे मार्गपर आरूढ़ रहे। भद्रे! मेरी कल्पनामें चारों वर्णोंके लिये सन्मार्गमें रहनेकी यही व्यवस्था है।

वसुंधरे! जो स्त्री आचार्यमें श्रद्धा रखती है, देवताओं-की भक्ति करती है, अपने स्वामीके प्रति निष्ठा एवं प्रीति रखती है और संसारमें भी उत्तम व्यवहार करती है, वह यदि पतिसे पहले मेरे लोकमें पहुँचती है, तो वह अपने स्वामीकी प्रतीक्षा करती है। यदि पुरुष मेरा भक्त है और अपनी पत्नीको छोड़कर मेरे धाममें पहले पहुँचता है, वह भी अपनी उस भार्याकी प्रतीक्षा करता है। देवि! अब कर्मोंमें दूसरे उत्तम कर्मको तुम्हारे सामने व्यक्त करता हूँ।

सुमुखि! ऋषिलोग भी मेरी उपासनामें स्थित रहते हुए भी मेरा दर्शन पानेमें असमर्थ हैं। ऐसी स्थितिमें

मेरे कर्मपरायण अन्य मनुष्योंकी तो बात ही क्या ? माधवि ! जो अन्य देवताओंमें श्रद्धा रखते हैं, उनकी बुद्धि मारी गयी है। वे मूर्ख मेरी मायाके प्रभावसे मुग्ध हैं, उनके चित्तमें पाप भरा हुआ है। ऐसे व्यक्ति मुझे पानेके अधिकारी नहीं हैं। भगवति ! मोक्षकी इच्छा रखनेवाले जिन पुरुषोंद्वारा मैं प्राप्य हूँ, उन परमशुद्ध भाववाले पुरुषोंका विवरण सुनाता हूँ। देवि ! यह आख्यान धर्मसे ओत-प्रोत है। इसे तुम्हें सुना चुका। माधवि ! दुष्ट व्यक्तिको इसका उपदेश नहीं करना चाहिये। जो अश्रद्धालु व्यक्ति इसका अधिकारी नहीं है, जिसने दीक्षा नहीं ली है एवं जो कभी मेरे पास आनेका प्रयत्न नहीं करता, उसे इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। माधवि ! दुष्ट, मूर्ख और नास्तिक व्यक्ति इस उपदेशको सुननेके अधिकारी नहीं हैं। देवि ! यह मेरा धर्म महान् एवं ओजस्वी है, इसका मैं वर्णन कर चुका। अब सम्पूर्ण प्राणियोंके हितके लिये तुम दूसरा कौन-सा प्रसङ्ग पूछना चाहती हो, वह बताओ। [यह अध्याय 'कल्याण'—साधनाङ्कके पृष्ठ ५३८ पर 'वराहपुराण'के नामोल्लेखपूर्वक उद्धृत है।]

(अध्याय ११७)

पूजाके उपचार

भगवान् वराह बोले—भद्रे ! अब मैं प्रायश्चित्तोंका तत्त्वपूर्वक वर्णन करता हूँ, तुम उसे सुनो ! भक्तको चाहिये, मन्त्रविद्याकी सहायतासे यथावत् सभी वस्तु मुझे वा अन्य देवताओंको अर्पण करे। फिर आगे कहे जानेवाले मन्त्रका उच्चारणकर दीयटका काष्ठ उठाना चाहिये। दीपकाष्ठका भूमिस्पर्श करना आवश्यक है, अतः जबतक वह पृथ्वीका स्पर्श न करे, तबतक दीपक जलाना निषिद्ध है। दीपक जलानेके पश्चात् हाथ धो लेना चाहिये। तत्पश्चात् पुनः इष्टदेवके पास उपस्थित होकर सर्वप्रथम उनके चरणोंकी वन्दना करनी चाहिये। फिर आगे कहे जानेवाले मन्त्र-भावसे भगवान्को दन्तधावन देना चाहिये। मन्त्रका भाव यह है—'भगवन् ! प्रत्येक भुवन आपका स्वरूप है, आपके द्वारा सूर्यका तेज भी कुण्ठित रहता है, आप अनादि, अनन्त और सर्व-स्वरूप हैं। यह दन्त-धावन आप स्वीकार कीजिये।' वसुंधरे ! तुमने जो कुछ कहा है, वह सब धर्मसे निर्णीत है। श्रीविग्रहके हाथमें दन्तधावन देकर पुनः यथावत् कर्म करना चाहिये। इष्ट-देवके सिरसे निर्माल्य उतारकर उसे स्वयं अपने सिरपर रखे। सुन्दरि ! इसके बाद जलसे हाथको शुद्ध कर मुख-प्रक्षालन आदि कर्म करना चाहिये। फिर शुद्ध जलसे इष्टदेवताके मुखका प्रक्षालन करे। सुन्दरि ! इसका मन्त्र इस प्रकार है।[1] इस मन्त्रसे पूजा करनेके फलस्वरूप पूजक संसारसे मुक्त हो जाता है। मन्त्रका भाव यह है—'भगवन् ! आत्म-(विष्णु) स्वरूप इस जलको ग्रहण करें। इसी जलद्वारा अन्य देवताओंने भी सदा अपना मुख धोया है।' फिर पञ्चरात्र-मन्त्रद्वारा सुन्दर चन्दन, धूप-दीप और नैवेद्य अर्पण करना चाहिये। इसके बाद हाथमें पुष्पाञ्जलि लेकर यह प्रार्थना करे—'भगवन् ! आप भक्तोंपर कृपा करनेवाले हैं। आप नारायणको मेरा नमस्कार है।' पुनः प्रार्थना करे—'भगवन् ! आपकी कृपासे मन्त्रके जाननेवाले यज्ञ करनेमें सफल होते हैं। प्राणियोंकी सृष्टि आपकी ही कृपासे होती है।' माधवि ! इस प्रकार प्रातःकाल उठकर फिर अन्य फूल हाथमें ले मुझमें श्रद्धा रखनेवाला ज्ञानी पुरुष पवित्र होकर मुझ देवेश्वरकी पूजा करे। सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न हो जानेपर वह भूमिपर डण्डेकी भाँति पड़कर साष्टाङ्ग प्रणाम करे[2] और प्रार्थना करे—'भगवन् ! आप मुझपर

---

१. तद्भगवंस्त्वं गुणांश्च आत्मनश्चापि गृह्ण वारिणः। इमा आपस्तु देवानां मुखान्यप्रक्षाल्यन्॥ (१। ११८। १०)

२. साष्टाङ्गप्रणाममें हृदय, सिर, नेत्र, मन, वचन, पैर, हाथ और घुटने—इन आठ अङ्गोंका पृथ्वीसे स्पर्श होना चाहिये—

उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचसा तथा। पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टाङ्ग उच्यते॥

प्रसन्न हो जायँ।' फिर सिरपर अञ्जलि रखकर निम्नलिखित प्रार्थना करनी चाहिये। 'भगवन्! शास्त्रोंके प्रभावसे आपकी जानकारी प्राप्त हो जानेपर साधककी यदि आपको पानेकी इच्छा और चेष्टा होती है तो आप उसे प्राप्त हो जाते हैं। योगियोंको भी आपकी कृपासे ही मुक्ति सुलभ हुई, अतएव मैं भी आपकी उपासना–कार्य करनेमें संलग्न हो गया हूँ। आपकी शास्त्रीय आज्ञाका मैंने सम्पादान किया है, इससे आप मुझपर प्रसन्न हो जायँ।' फिर मेरी भक्तिमें संलग्न रहनेवाला साधक पुरुष इस प्रकार शास्त्रकी विधिका पालनकर कुछ देरतक मेरी प्रदक्षिणा करे।

मेरा भक्त कोई भी क्रिया उतावलेपनसे न करे। इस प्रकार सभी कार्य सम्पन्न कर मेरी भक्तिमें दृढ़ आस्था रखनेवाला पुरुष घृत तथा तेलसे मेरा अभ्यञ्जन करे। कार्य सम्पादन करनेवाला मन्त्रज्ञ व्यक्ति तेल, घृत आदि स्नेह-पदार्थोंकी ओर लक्ष्य कर एकाग्रचित्तसे इस प्रकार उच्चारण करे—'लोकनाथ! प्रेमके साथ मैं यह स्निग्ध पदार्थ लेकर आपको अपने हाथसे अर्पण कर रहा हूँ। इसके फलस्वरूप सम्पूर्ण लोकोंमें मुझे आत्मसिद्धि प्राप्त हो। भगवन्! आपको मेरा बारंबार नमस्कार है। मेरे मुखसे जो अनुचित बात निकल गयी हो, उसे क्षमा कीजिये।'

इस प्रकार कहते हुए सर्वप्रथम मेरे मस्तकपर स्नेह-पदार्थ (तेल या घी) लगाना चाहिये। पहले उसे मेरे दाहिने अङ्गमें लगाकर फिर बायें अङ्गमें लगाये। इसके बाद पीठमें लगाकर कटिभागमें लगानेकी विधि है। भद्रे! इसके पश्चात् अपने व्रतमें अटल रहनेवाला पुरुष गायके गोबरसे भूमिका उपलेपन करे। भद्रे! गोमयद्वारा उपलेपन करते समय देखने तथा सुननेसे प्राणीको जो पुण्य प्राप्त होता है, उसे मैं कहता हूँ, सुनो। साथ ही मैं अभ्यञ्जन करनेका पुण्य भी सुनाता हूँ। उनकी जितनी बूँदें (उस गोमयकी पृथ्वीपर तथा इत्र, तेल आदिकी) इष्टदेवके ऊपर गिरती हैं, उतने हजार वर्षोंतक वह श्रद्धालु पुरुष स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठा पाता है। इसके पश्चात् उसे पुण्यात्माओंके लोक प्राप्त होते हैं। इतना ही नहीं, इस प्रकार जो भी मेरे गात्रोंमें तेल अथवा घृतसे अभ्यञ्जन करता है, वह एक-एक कणकी जितनी संख्याएँ होती हैं, उतने हजार वर्षोंतक स्वर्गलोकमें जाता है और मेरे उस लोकमें उसकी महान् प्रतिष्ठा होती है।

भद्रे! अब जो उद्वर्तन (सुगन्धित वस्तुओंसे बना हुआ अनुलेप) मुझे प्रिय है, उसे बताता हूँ, जिससे मेरे अङ्ग तो शुद्ध होते ही हैं, मुझे प्रसन्नता भी प्राप्त होती है। कार्य-सम्पादन करनेवाला शास्त्रज्ञानी पुरुष लोध, पीपर, मधु, मधूक (महुवा), अश्वपर्ण अथवा रोहिण एवं कर्कट आदिके चूर्णको एकत्र करके उपलेपन बनाये तो मुझे अधिक प्रिय है। यह अनुलेपन अथवा अन्य अन्नोंके चूर्णद्वारा भी अनुलेपन बनाया जा सकता है। जिसके हाथोंद्वारा मेरा अनुलेप होता है, उसपर मैं बहुत प्रसन्न होता हूँ। क्योंकि यह अनुलेपन मेरे शरीरको बहुत सुख देनेवाला है। अतः इसे अवश्य करना चाहिये। यदि मेरी भक्ति करनेवाला परमसिद्धि चाहता है तो इस प्रकार अनुलेपन लगाकर मेरा स्नान कराये। इसके बाद आँवला और सुगन्धित उत्तम पदार्थोंको एकत्र करे और दृढव्रती पुरुष उससे मेरे सम्पूर्ण गात्रोंको मले। तत्पश्चात् जलका घड़ा लेकर इस आशयका मन्त्र उच्चारण करे—'भगवन्! आप देवताओंके भी देवता, अनादि, सर्वश्रेष्ठ पुरुष हैं। आपका स्वरूप अत्यन्त शुद्ध है, व्यक्तरूपसे पधारकर यह स्नान स्वीकार कीजिये।' मेरे मार्गका अनुसरण करनेवाला पुरुष इस प्रकार कहकर मेरा स्नान कराये। घड़ा सोने अथवा चाँदीका हो। यदि ये द्रव्य न उपलब्ध हो सकें तो कर्मका ज्ञान रखनेवाला पुरुष मेरा ताँबेके घड़ेसे स्नान करा सकता है। इस प्रकार सविधिकर्मसे स्नान कराकर

मन्त्रोंको पढ़ते हुए चन्दन अर्पण करना चाहिये। मन्त्रार्थ यह है—'प्रभो! सम्पूर्ण गन्धोंसे आपके मनमें प्रसन्नता प्राप्त होती है। ये चन्दन कई प्रकारके होते हैं, यह शास्त्रकी सम्मति है। ये सभी देवादि लोकोंमें उत्पन्न होते हैं। आपकी कृपासे सत्कार्योंमें इनका उपयोग होता है। मैंने आपके अङ्गोंमें लगानेके लिये इन पवित्र चन्दनोंको प्रस्तुत किया है। भक्तिसे संतुष्ट भगवन्! आप इन्हें कृपाकर स्वीकार करें।'

इस प्रकार चन्दन आदि सुगन्धयुक्त पदार्थ एवं माला आदि अर्पण करके पूजन करनेका विधान है। कर्ममें श्रद्धा रखनेवाला कर्मशील पुरुष ऐसी अर्चना करके यह कहते हुए पुष्पाञ्जलि दे—'अच्युत! ये समयानुसार जलमें तथा स्थलमें उत्पन्न होनेवाले पवित्र पुष्प हैं। संसारसे मेरा उद्धार हो जाय, इसलिये यह पुष्प आप स्वीकार कीजिये! स्वीकार कीजिये!'

इस प्रकार मेरे भागवत-सम्प्रदायोक्त विधिका पालन करते हुए मेरी अर्चना करनेके पश्चात् मुझे सुगन्धद्रव्योंसे बना हुआ धूप देना चाहिये। धूपसे मुझे बहुत प्रेम है। इसके प्रदानसे दाताके मातृ-पितृ-कुलोंकी आत्मा पवित्र हो जाती है। विधिके साथ धूप लेकर यह मन्त्र[1] पढ़ना चाहिये—मन्त्रका भाव यह है—'भगवन्! यह दिव्य धूप बहुत-से सुगन्धित द्रव्योंसे सम्पन्न है। इसमें वनस्पतिका रस भी सम्मिलित है। जन्म-मृत्युसे मुझे मोक्ष मिल जाय, इसलिये मैं आपको यह धूप निवेदित करता हूँ, आप इसे स्वीकार करनेकी कृपा कीजिये। 'भगवन्! सम्पूर्ण देवताओं तथा प्राणियोंके लिये शान्ति सुलभ हो। मैं भी सदा शान्तिसे सम्पन्न रहूँ। ज्ञानियोंकी योगभावमयी शान्तिसे आप धूप ग्रहण करें। आपको मेरा नमस्कार है। जगद्गुरो! आपके अतिरिक्त इस संसारसागरसे मेरा उद्धार करनेवाला दूसरा कोई नहीं है।'

इस प्रकार माला, चन्दन, अनुलेपन आदि सामग्रियोंसे पूजा करके रेशमी स्वच्छ वस्त्र, जिसका कुछ भाग पीले रंगका हो, निवेदित करना चाहिये। ऐसी अभ्यर्चना करनेके उपरान्त सिरपर अञ्जलि बाँधे हुए इस मन्त्रका पाठ करे[2]। मन्त्रका भाव यह है—'सम्पूर्ण प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले भगवन्! आप पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं! लक्ष्मी आपके पास शोभा पाती हैं, आपका विग्रह आनन्दमय है। आप ही सबके रक्षक, रचयिता और अधिष्ठाता हैं। प्रभो! आप आदि पुरुष हैं, आपका रूप सर्वथा दुर्दर्श, दुर्ज्ञेय है। आपके दिव्य अङ्गको आच्छादित करनेके लिये यह कौशेय (रेशमी) वस्त्र, जो कुछ पीले रंगसे सुशोभित एवं मनोहर है, मैं अर्पण करता हूँ। आप स्वीकार कीजिये।'

'देवि! फिर मुझे वस्त्रोंसे विभूषित कर हाथमें एक पुष्प ले और उससे आसनकी कल्पना कर मुझे अर्पण करे। वस्त्र मेरे विग्रहके अनुसार होना चाहिये। पूजा करते समय प्रणव, धर्म एवं पुण्यमय विचारसे पूजनको सम्पन्न करना चाहिये। आसन अर्पण करनेके मन्त्रका भाव यह है—'भगवन्! यह आसन बैठने योग्य, आपकी प्रीति उत्पन्न करनेवाला, प्राज्ञकी रक्षामें उपयुक्त,

---

१ वनस्पतिरसो दिव्यो बहुद्रव्यसमन्वितः ॥ मम संसारमोक्षाय धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।
शान्तिर्वै सर्वदेवानां शान्तिर्मम परायणम् ॥ सांख्यानां शान्तियोगेन धूपं गृह्ण नमोऽस्तु ते।
त्राता नान्योऽस्ति मे कश्चित्त्वां विहाय जगद्गुरो॥
(११८। ४४—४६)

२ प्रीयतां भगवान्पुरुषोत्तमः श्रीनिवासः श्रीमानानन्दरूपः।
गोप्ता कर्त्ताधिकर्त्ता मान्यनाथो भूतनाथ आदिरव्यक्तरूपः।
क्षौमं वस्त्रं पीतरूपं मनोज्ञं देवाङ्गे स्वे गात्रप्रच्छादनाय॥ (११८। ४९)

प्राणियोंके लिये श्रेयोवह, आपके योग्य एवं सत्यस्वरूप है । इसे आप ग्रहण कीजिये ।'

इस प्रकार श्लाघ्य नैवेद्य आदि पदार्थोंको अर्पण कर मेरे मार्गका अनुसरण करनेवाला पुरुष यथाशीघ्र कल्पित मुख-प्रक्षालन देनेके लिये उद्यत हो जाय । पुनः पवित्र होकर देवताओंके लिये स्तुति करे—आप सभी लोग भगवत्-परायण हों । फिर उत्तम जल लेकर अपनी शुद्धि करे । यों भगवान्‌को नैवेद्य अर्पण करके शेष प्रसाद हटा दे । इसके उपरान्त हाथमें ताम्बूल लेकर यह मन्त्र पढ़े । मन्त्रका भाव यह है—'जगत्प्रभो ! यह ताम्बूल सम्पूर्ण सुगन्धयुक्त पदार्थोंसे संयुक्त है । देवताओंके लिये सम्यक् प्रकारसे यह अलंकारका कार्य देता है । आप इसे स्वीकार करें, साथ ही आपकी प्रतिमाके प्रभावसे हमारा भवन विशिष्ट हो जाय । भगवन् ! आपकी प्रसन्नताके लिये मैंने श्रीमुखमें यह श्रेष्ठ अलंकार अर्पण किया है । इससे मुखकी शोभा बढ़ती है । अतः आप इसे ग्रहण करनेकी कृपा कीजिये ।' मेरा भक्त इन उपचारोंसे मेरी आराधना करे । इसके परिणामस्वरूप वह सदा मेरे महान् लोकोंको प्राप्त कर वहाँ नित्य निवास करता है । (अध्याय ११८)

श्रीहरिके भोज्यपदार्थ एवं भजन-ध्यानके नियम

पृथ्वीने कहा—माधव ! मैं आपके मुखारविन्दसे पूजनकी विधिका श्रवण कर चुकी । निश्चय ही इस कर्म (पूजा)में संसारसे मुक्ति दिलानेकी सामर्थ्य है । भगवन् ! अब मैं आपसे आपकी पूजाविधि एवं द्रव्योंके विषयमें कुछ जानना चाहती हूँ, आप इसे मुझे बतलानेकी कृपा करें ।

भगवान् वराह बोले—वसुंधरे ! जिस विधिसे पूजाकी वस्तु मुझको अर्पित करनी चाहिये, अब वह बताता हूँ, सुनो । सात प्रकारके अन्नोंको लेकर उनमें दूधका सम्मिश्रण करे । साथ ही मुझे मधूक और उदुम्बर आदिके शाक भी प्रिय हैं । माधवि ! अब मेरे योग्य जो धान्य हैं, उन्हें कहता हूँ—अच्छे गन्धसे युक्त 'धर्मचिल्लिक' नामक शाक और लाल धानका चावल तथा अन्य उत्तम स्वादिष्ट चावल मुझे प्रिय हैं । उत्तम कुङ्कुम और मधु भी मुझे प्रिय हैं । आमोदा, शिवसुन्दरी, शिरीष और आकुल संज्ञक धानके चावल भी मेरे लिये उपयुक्त हैं । यवसे बने अनेक प्रकारके अन्न तथा शाक भी मेरे पूजनमें उपयुक्त होते हैं । मूँग, माष (उड़द) तिल, कंगुनी, कुल्थी, गेहूँ, सावाँ—ये सभी मुझे प्रिय हैं । जब ब्रह्मयज्ञ विस्तृतरूपसे चल रहा हो, वेदके पारगामी विद्वान् यज्ञ करा रहे हों, उस समय मेरी प्रसन्नताके लिये ये वस्तुएँ मुझे अर्पण करनी चाहिये । यज्ञमें बकरी, भैंस आदि पशुओंका दूध, दही और घृत सर्वथा निषिद्ध हैं ।

वसुंधरे ! मुझसे सम्बन्ध रखनेवाले कर्मोंमें जो वस्तुएँ योग्य हैं, उन्हें मैंने बतला दिया । मेरे भक्तोंको सुख पहुँचानेवाले वे उक्त पदार्थ भोज्य और कल्याणप्रद हैं । वसुंधरे ! जिसे उत्तम सिद्धि पानेकी इच्छा हो, उसे इस प्रकार मेरा यजन करना चाहिये । इस विधिसे जो यजन करेंगे, वे कर्ममें कुशल पुरुष मेरी परम सिद्धि पानेके पूर्ण अधिकारी होंगे ।

भगवान् वराह कहते हैं—'वसुंधरे ! मेरा उपासक इन्द्रियोंको वशमें रखकर जो कुछ अन्न उपलब्ध हो, उसे ग्रहण करे । भामिनि ! मैं नीचे-ऊपर, इधर-उधर, दिशाओं और विदिशाओंमें तथा सभी जीवोंमें सर्वत्र विराजमान हूँ । अतएव जिसे परम गति पानेकी इच्छा हो, उसे चाहिये कि सब प्रकारसे सभी प्राणियोंको मेरा ही रूप जानकर उनकी वन्दना करे । प्रातःकाल एक अञ्जलि जल लेकर पूर्वाभिमुख हो मेरी उपासना

करनी चाहिये । **'ॐ नमो नारायणाय'** यह मन्त्र जपना चाहिये । उसे यह भावना करनी चाहिये कि जो सम्पूर्ण संसारमें श्रेष्ठ हैं, जिनकी 'ईशान' संज्ञा है, जो आदि पुरुष हैं, जो स्वभावतया ही कृपालु हैं, उन भगवान् नारायणका हम संसारसे अपने उद्धारके लिये यजन करते हैं ।

इसके बाद पश्चिमाभिमुख होकर फिर अञ्जलि भर जल हाथमें ले । साथ ही द्वादशाक्षर वासुदेव-मन्त्र पढ़कर इस मन्त्रका उच्चारण करे ।* 'भगवन् ! आप जिस प्रकार सर्वप्रथम संसारकी सृष्टि करनेवाले हैं, पुराण पुरुष हैं और परम विभूति हैं, वैसे ही आप आदिपुरुषके अनेक रूप भी हैं । आपका संकल्प कभी विफल नहीं होता । इस प्रकार अनन्तरूपसे विराजनेवाले आप (प्रभु) को मैं नमस्कार करता हूँ ।' इसके बाद उसी समयसे पुनः एक अञ्जलि जल हाथमें ले और उत्तरमुख खड़ा होकर ॐ **'नमो नारायणाय'** कह कर इस मन्त्रका उच्चारण करे—'जो परम दिव्य, पुराण पुरुष हैं, आदि, मध्य और अन्तमें जिनकी सत्ता काम करती है, जिनके अनन्त रूप हैं, जो संसारको उत्पन्न करते तथा जो शान्तस्वरूप हैं, संसारसे मुक्त करनेके लिये जो अद्वितीय पुरुष हैं, उन जगत्स्रष्टा प्रभुका हम यजन करते हैं ।'¹

इसके पश्चात् उसी समयसे दक्षिणाभिमुख होकर **'ॐ नमः पुरुषोत्तमाय'** यह मन्त्र पढ़कर ऐसी धारणा करनी चाहिये कि 'जो यज्ञस्वरूप हैं, एवं जिनके अनन्त रूप हैं, सत्य और ऋत जिनकी अनादिकालसे संज्ञाएँ हैं, जो अनादिस्वरूप काल हैं, तथा समयानुसार विभिन्न रूप धारण करते हैं, उन प्रभुको संसारसे मुक्त होनेके लिये हम भजते हैं ।' तदनन्तर काष्ठकी भाँति अपने शरीरको निश्चल बनाकर, इन्द्रियोंको वशमें करते हुए, मनको भगवान्में लगाकर इस प्रकार धारणा करे—'भगवन् ! सूर्य और चन्द्रमा आपके नेत्र हैं, कमलके समान आपकी आँखें हैं, जगत्में आपकी प्रधानता है, आप लोकके स्वामी हैं, तीनों लोकोंसे उद्धार करना आपका स्वभाव है, ऐसे सोमरस पीनेवाले आप (प्रभु)का हम यजन करते हैं ।'

वसुंधरे ! यदि उत्तम गति पानेकी इच्छा हो तो साधकको तीनों संध्याओंमें बुद्धि, युक्ति और मतिकी सहायता लेकर इसी प्रकारसे मेरी उपासना करनी चाहिये । यह प्रसङ्ग गोपनीयोंमें परम गोपनीय, योगोंकी परम निधि, सांख्योंका परम तत्त्व और कर्मोंमें उत्तम कर्म है । देवि ! मूर्ख, कृपण और दुष्ट व्यक्तिको इसका उपदेश नहीं करना चाहिये । किंतु जो दीक्षित, उत्तम शिष्य एवं दृढ़व्रती है, उसे ही इसे बताना उचित है । मुझ विष्णुके मुखारविन्दसे निकला हुआ यह गुह्य तत्त्व मरणकाल उपस्थित होनेपर भी बुद्धिमें धारण करने योग्य है । इसे कभी विस्मृत नहीं करना चाहिये । जो प्रातःकाल उठकर सदा इसका पाठ करता है, वह दृढ़व्रती पुरुष मेरे लोकमें स्थान पानेका अधिकारी है, इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं करना चाहिये । इस प्रकार जो व्यक्ति तीनों संध्याओंमें कर्मका सम्पादन करता है, वह हीन योनियोंमें कभी नहीं पड़ता । (अध्याय ११९-२०)

---

* यथा तु देवः प्रथमादिकर्त्ता पुराणकल्पश्च यथा विभूतिः ।
तथा स्थितं चादिमनन्तरूपममोघसंकल्पमनन्तमीडे ॥ १२० । ११ ॥

१ यजामहे दिव्यपरं पुराणमनादिमध्यान्तमनन्तरूपम् ।
भवोद्भवं विश्वकरं प्रशान्तं संसारमोक्षावहमद्वितीयम् ॥ १२० । १३ ॥

मुक्तिके साधन

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! अब जिस कर्मके प्रभावसे प्राणीको पुनः गर्भमें नहीं जाना पड़ता, उसे बताता हूँ, तुम सुनो ! यह सम्पूर्ण शास्त्रों एवं धर्मोंका निश्च्योत है । जो बड़ा-से-बड़ा कार्य करके भी अपनी प्रशंसा नहीं करता और जो सदा शुद्ध अन्तःकरणसे शास्त्रीय सत्कर्मोंका अनुष्ठान करता रहता है, वह उन सत् कर्मोंके प्रभावसे भी पुनः जन्म नहीं पाता । जो मेरा सामर्थ्यशाली भक्त होकर सबपर कृपा करता है तथा कार्य और अकार्यके विषयमें जिसे पूर्ण ज्ञान है एवं जिसकी सम्पूर्ण धर्मोंमें श्रद्धा है, वह पुनः गर्भमें नहीं आता । जो सर्दी-गर्मी, वात-वर्षा और भूख-प्यासको सहता है, जो गरीब होनेपर भी लोभ, मोह एवं आलस्यसे दूर रहता है, कभी झूठ नहीं बोलता, किसीकी निन्दा नहीं करता, जो अपनी ही स्त्रीसे संतुष्ट रहता है, दूसरेकी स्त्रियोंसे दूर रहता है तथा जो सत्यवादी, पवित्र आत्मा एवं निरन्तर भगवान्‌का प्रिय भक्त है, वह मेरे लोकको प्राप्त होता है । जो संविभाग (बाँट) कर खाता है, जो ब्राह्मणोंका भक्त है और जो सबसे मधुर वाणी बोलता है, वह कुत्सितयोनियोंमें न जाकर मेरे लोकका अधिकारी होता है ।

वसुंधरे ! अब मैं तुम्हें एक दूसरा उपाय बतलाता हूँ, सुनो ! जिसके प्रभावसे मेरी निरंतर उपासना करनेवाला पुरुष विकृतयोनियोंमें नहीं जाता । जो कभी किसी जीवकी हिंसा नहीं करता, जो सम्पूर्ण-प्राणियोंके हितमें लगा रहता है और जो मन, कर्म, वचनसे पवित्र है, वह विकृतयोनियोंमें नहीं पड़ता । जिसके मनमें सदा सर्वत्र समता है, जो मिट्टीके ढेले, पत्थर और सुवर्णको समान समझता है, जो बाल्यकालमें भी शान्तस्वभावसे रहनेवाला, इन्द्रियविजयी, और सदा शुभ कार्यमें रत रहता है, उसे नीचयोनि नहीं प्राप्त होती । जो दूसरे द्वारा किये अपकारोंपर कभी किंचिन्मात्र भी ध्यान नहीं देता, जिसे सदा कर्तव्य कर्म ही स्मृत रहते हैं । और जो सब कुछ यथार्थ बोलता है, वह नीचयोनियोंमें नहीं पड़ता । जो व्यर्थ बातोंसे सदा दूर रहता है, जिसकी तत्वज्ञानमें अटल निष्ठा है, जो सदा अपनी वृत्तिमें तत्पर रहकर परोक्षमें भी कभी किसीकी निन्दा नहीं करता, उसे हीनयोनियोंमें नहीं जाना पड़ता । भद्रे ! जो ऋतुकालमें ही संतान-प्राप्तिकी इच्छासे अपनी स्त्रीसे सहवास करता और सदा मेरी उपासनामें लगा रहता है, वह साधक हीनयोनिमें नहीं जाता ।

वसुंधरे ! अब एक दूसरी बात बताता हूँ, तुम उसे सुनो । जो सदा संयत रहनेवाले पुरुषोंका धर्म है और जिसका मनु, अङ्गिरा, शुक्राचार्य, गौतम मुनि, चन्द्रमा, रुद्र, शङ्ख-लिखित, कश्यप, धर्मदेव, अग्निदेव, पवनदेव, यमराज, इन्द्र, वरुण, कुबेर, शाण्डिल्यमुनि, पुलस्त्य, आदित्य, पितृगण और स्वयम्भू ब्रह्मा आदि वेद-धर्म-द्रष्टाओंने पृथक्-पृथक् रूपसे देखा और वर्णन किया है, उस धर्मके पालनमें जो मनुष्य निश्चितरूपसे तत्पर रहकर अपने-आपमें परमात्माको देखता है, वह विकृतयोनिमें न जाकर मेरे लोकमें जानेका अधिकारी है । जो अपने धर्मका पालन करता है तथा अपनी बुद्धिके अनुसार ठीक बोलता है, दूसरेकी निन्दासे दूर रहता है, सम्पूर्ण धर्मोंमें जिसकी निश्चित बुद्धि रहती है, जो दूसरोंके धर्मोंकी निन्दा नहीं करता तथा जो अपने धार्मिक मार्गपर अटल रहता है, ऐसे उत्तम गुणोंसे युक्त एवं मेरे कर्मोंका सम्पादन करनेवाला पुरुष विकृतयोनिमें न जाकर मेरे लोकको ही प्राप्त होता है ।

जिनकी इन्द्रियाँ वशमें हैं, जिन्होंने क्रोधपर पूरा नियन्त्रण कर लिया है, जो लोभ और मोहसे सदा दूर

रहते हैं, जो विश्वके उपकारमें तत्पर हैं, जो देवता, अतिथि तथा गुरुमें श्रद्धा रखते हैं, जो कभी किसीकी हिंसा नहीं करते, मद्य-मांसका कभी सेवन नहीं करते, जो अनुचित भाव-बन्धन करनेकी चेष्टा नहीं करते, जो ब्राह्मणको 'कपिला' धेनुका दान करते हैं—ऐसे धर्मसे युक्त पुरुष गर्भमें नहीं पड़ते; वे मेरे लोकको ही प्राप्त होते हैं। जो अपने सभी पुत्रोंके प्रति समता रखता है, क्रोधमें भरे हुए ब्राह्मणको देखकर भी उसे प्रसन्न करनेकी ही चेष्टा करता है, जो भक्तिपूर्वक कपिला-गौका स्पर्श करता है, जो कुमारी कन्याके प्रति कभी अपवित्र भाव नहीं करता, जो कभी अग्निका लङ्घन नहीं करता, जो जलमें शौच नहीं करता एवं गुरुमें श्रद्धा-बुद्धि रखता है, जो उनकी तथा ईश्वरकी कभी निन्दा नहीं करता, इस प्रकारका धर्ममें तत्पर पुरुष निश्चय ही मुझे प्राप्त कर लेता है और वह पुरुष माताके गर्भमें न जाकर मेरे ही लोकको प्राप्त होता है।

(अध्याय १२१)

कोकामुखतीर्थ (वराहक्षेत्र*)का माहात्म्य

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! अब मैं तुम्हें गोपनीयोंमें भी एक परम गोपनीय रहस्य बतलाता हूँ, जिसके प्रभावसे पशु-योनिमें गये हुए प्राणी भी पापसे मुक्त हो जाते हैं, इसे तुम ध्यानसे सुनो। जो मानव अष्टमी और चतुर्दशी तिथिमें स्त्री-सङ्ग नहीं करता तथा दूसरेके अन्नको खाकर उसकी निन्दा नहीं करता, वह मेरे लोकको प्राप्त होता है। बाल्यकालमें भी जो सदा मेरे व्रतका पालन करता है, जो जिस-किसी प्रकारसे भी सदा संतुष्ट रहता है तथा जो माता-पिताकी पूजा करता है, वह मेरे लोकमें जाता है। जो परिश्रमसे भी प्राप्त सामग्रीको बाँटकर खाता-पीता है, जो गुणी, दाता तथा संयतभोक्ता है तथा जो सभी कर्तव्य-कार्योंमें स्वतः लगा रहता है एवं अपने मनको सदा वशमें किये रहता है, वह मेरे लोकको प्राप्त होता है। जो कुत्सित कर्म नहीं करता, जो ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करता है, समर्थ होकर भी जो सम्पूर्ण प्राणियोंपर क्षमा-दया करता है, वह मेरे लोकको प्राप्त होता है। जो निःस्पृह रहकर दूसरोंकी सम्पत्तिके प्रति कभी लोभ नहीं करता, ऐसा पुरुष मेरे लोकमें जाता है। वरारोहे ! एक गोपनीय विषय जो देवताओंके लिये भी दुष्प्राप्य एवं दुर्ज्ञेय है, उसे अब मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो। जरायुज, अण्डज, उद्भिज्ज और स्वेदज—इन चार प्रकारके प्राणियोंकी जो हिंसा नहीं करता, जो पवित्रात्मा एवं दयाशील है और जो 'कोकामुख'नामक तीर्थमें अपने प्राणोंका परित्याग करता है, वह मुझे परम प्रिय है। मेरी कृपादृष्टिसे वह कभी वियुक्त नहीं होता।'

पृथ्वी बोली—माधव ! मैं आपकी शिष्या, दासी और आपमें अटल श्रद्धा रखनेवाली हूँ, आपमें भक्ति रखनेके बलपर आपसे पूछती हूँ कि वाराणसी, चक्रतीर्थ, नैमिषारण्य, अट्टहासतीर्थ, भद्रकर्णह्रद, द्विरण्ड, मुकुट, मण्डलेश्वर, केदारक्षेत्र, देवदारुवन, जालेश्वर, दुर्ग, गोकर्ण, कुब्जाम्रेश्वर, एकलिङ्ग—ऐसे प्रसिद्ध एवं पवित्र तीर्थस्थानोंको छोड़कर आप 'कोकामुख'क्षेत्रकी ही इतनी प्रशंसा क्यों करते हैं ?

भगवान् वराह बोले—भीरु ! तुम्हारा कहना ठीक है, बात ऐसी ही है, 'कोकामुख' मुझे अत्यन्त ही प्रिय है। अब 'कोकामुख'क्षेत्र जिन कारणोंसे अधिक प्रसिद्ध है, वह मैं तुम्हें बताता हूँ। तुमसे जिन क्षेत्रोंका वर्णन किया है, वे सभी भगवान् रुद्रसे सम्बन्ध रखनेवाले 'पाशुपततीर्थ' हैं, जिन्हें 'पाशुपत-क्षेत्र' कहते

* इसका उल्लेख आगे १४०वें अध्यायमें भी है। नंदलाल देके अनुसार यह स्थान नाथपुरके पास तम्बर, अरुणा और सुनकोशी नदियोंके त्रिवेणी सङ्गमद्वारा निर्मित है। (Geographical Dictionary of Ancient and Mediaeval India, Page 101) ('कल्याण' तीर्थाङ्क—पृ० १८५-८६)।

हैं, किंतु यह 'कोकामुख-क्षेत्र' मुझ श्रीहरिका है। वरानने! इसी विषयमें मैं तुम्हें एक परम प्रसिद्ध उपाख्यान बताता हूँ, इसमें 'कोकामुख' क्षेत्रकी प्रसिद्धिका हेतु संनिहित है।

एक बार इस 'कोकामुख'-क्षेत्रमें मांसके लोभमें एक व्याध घूम रहा था। वहीं एक अल्प जलवाले सरोवरमें एक मत्स्य भी रहता था। उसको देखकर व्याधने तुरंत ही बंसी (कटिये)से उसे बाहर खींच लिया, तथापि वह बलवान् मत्स्य उसके हाथसे तुरंत निकल गया। इतनेमें एक बाजकी दृष्टि, जो आकाशमें चक्कर लगा रहा था, उस मत्स्यपर पड़ी और वह उसको पकड़नेके लिये नीचे उतरा और फिर उसे पकड़कर तेजीसे उड़ चला। परंतु वह भी उसके बोझको न सँभाल सका और उस मछलीके साथ ही इसी 'कोकामुख'-क्षेत्रमें गिर पड़ा। किंतु आश्चर्य! वह गिरते ही इस तीर्थके प्रभावसे रूप, गुण एवं वयसे युक्त एक कुलीन राजपुत्रके रूपमें परिणत हो गया! कुछ समय बाद उसी व्याधकी स्त्री भी मांस लिये हुए वहाँ जा पहुँची। इतनेमें ही मांसके लिये लालायित रहनेवाली एक मादा चील भी उसके हाथसे मांस छीननेके लिये आयी, जो मांस छीननेके लिये बार-बार झपाटा मारने लगी। उसी क्षण बलपूर्वक मांस लेनेकी इच्छा रखनेवाली उस मादा चीलपर व्याधने बाण मारा, जिससे वह मेरे इस 'कोकाक्षेत्र'में गिर पड़ी और उसके प्राण निकल गये।

तदनन्तर उस चीलने चन्द्रपुरनामक नगरमें सुन्दरी राज-पुत्रीके रूपमें जन्म ग्रहण किया। उसका यश बड़ी तेजीसे चारों ओर फैलने लगा। वह कन्या धीरे-धीरे बढ़ती गयी और शनैः-शनैः रूप, गुण, अवस्था एवं सभी (चौसठ) कलाओंके ज्ञानसे सम्पन्न हो गयी, परंतु वह पुरुषोंकी सदा निन्दा करती। उसे रूपवान्, गुणवान्, शूर-वीर तथा सौम्य स्वभावके पुरुषोंकी चर्चा भी अच्छी न लगती थी, और वह उनकी भी निन्दा किया करती थी। युवती होनेपर उसका 'आनन्दपुर'नगरके एक शकजातिके पुरुषके साथ विवाह हुआ। विवाहके बाद दोनों पति-पत्नी गार्हस्थ्यधर्मका पालन करते हुए साथ रहने लगे। फिर वे परस्परके प्रेमबन्धनमें इस प्रकार बँध गये कि एक मुहूर्त भी कोई किसीको छोड़ना न चाहता था। अब वही कन्या अत्यन्त नम्र होकर अपने स्वामीकी सब प्रकार सेवा करने लगी।

एक दिन मध्याह्नके समय राजकुमारके सिरमें तीव्र वेदना उत्पन्न हुई। अनेक कुशल वैद्य चिकित्सामें लगे; किंतु उसकी शिरोव्यथा दूर न हो सकी। अन्य मन्त्र-यन्त्र भी विफल हुए। इस प्रकार पर्याप्त समय बीत जानेके बाद एक दिन उस राजकुमारीने अपने स्वामीसे यह जिज्ञासा की—'प्रभो! आपके सिरमें जो यह वेदना है, यह क्या और कैसे है? यदि मुझपर आपका तनिक भी स्नेह हो तो आप मुझे इसे तत्त्वतः बतानेकी कृपा कीजिये। अनेक कुशल वैद्य आपका उपचार कर रहे हैं, पर उन्हें वेदना दूर करनेमें सफलता नहीं मिलती है। इसपर राजकुमारने कहा—'भद्रे! क्या तुम यह भूल गयी कि यह मनुष्य-शरीर व्याधियोंका ही मन्दिर है? यह मनुष्य-शरीर रोग और दुःखोंसे ही भरा है, संसाररूपी सागरमें पड़े हुए मुझसे तुम्हें बार-बार ऐसा प्रश्न करना उचित नहीं है।' राजकुमारके ऐसा कहनेपर उस राजकन्याके मनमें उत्सुकता अब और बढ़ गयी।

कुछ दिन बाद पुनः उस राजपुत्रीने अत्यन्त आग्रहपूर्वक उस प्रश्नको राजकुमारसे पूछा। इसपर शक-नरेशने अपनी भार्यासे कहा—'भद्रे! तुम इस मानुषी भावका त्याग करो और अपने पूर्वजन्मकी बातें स्मरण करो। अथवा यदि तुम्हें पूर्वजन्मकी बातें जाननी हों तो कल्याणि! तुम चलकर मेरे माता-पिताको प्रसन्न करो। तुम उनकी

पूजा करो; क्योंकि उन्होंने मुझे अपने उदरमें धारण किया था। उनका सम्मान करके और उनकी आज्ञा लेनेके पश्चात् मैं 'कोकामुख'क्षेत्रमें चलकर तुम्हें निःसंदेह यह प्रसङ्ग सुनाऊँगा। अनिन्दिते! अपने पूर्वजन्मोंका ज्ञान देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। सारा वृत्तान्त मैं तुम्हें वहीं बताऊँगा।'

तदनन्तर वह राजकुमारी अपने सास और श्वशुरके सामने गयी और उनके चरणोंको पकड़कर बोली—'मुझे आप दोनोंसे कुछ निवेदन करना है। मैं इस विषयमें आपलोगोंसे अनुमति प्राप्त करना चाहती हूँ। फिर उसने कहा कि 'हम दोनों स्त्री-पुरुष आपकी आज्ञासे पवित्र 'कोकामुख'-नामक क्षेत्रमें जाना चाहते हैं। आपलोग ही हमारे गुरु हैं। इस कार्यकी गरिमाको देखकर आप हमलोगोंको रोकें नहीं। आजतक मैंने कभी कुछ भी आपलोगोंसे नहीं माँगा है। यह प्रथम अवसर है कि हम आपके सामने याचना करने आये हैं। अतः आपलोग मेरी इस याचनाको पूर्ण करनेकी कृपा करें। समस्या यह है कि आपके ये कुमार निरन्तर सिरकी वेदनासे पीड़ित रहते हैं और दोपहरके समयमें तो ये मृतकके तुल्य हो जाते हैं। कोई भी उपचार सफल नहीं हो रहा है। ये सब सुख-भोगोंको छोड़कर सदा पीड़ासे दुःखी रहते हैं। इनका यह दुःख 'कोकामुख'-क्षेत्रमें गये बिना दूर होनेका नहीं है।'

उस समय शकजातियोंके अध्यक्ष उन नरेशने पुत्रवधूकी बात सुनकर अपने हाथसे पुत्र एवं पुत्रवधूके सिरको सहलाकर कहा—'पुत्र! 'कोकामुख'-क्षेत्रमें जानेकी बात तुमलोगोंके मनमें कैसे आयी? हाथी, घोड़े, सवारियाँ, अप्सराओंकी तुलना करनेवाली स्त्रियाँ, कोष और रत्नभंडार तथा सात अङ्गोंसहित हमारी यह सम्पूर्ण राज्य-सम्पत्ति आदि सभी तुम्हारे अधीन हैं। तुम इन सबको ले लो। सारी सम्पत्तियोंका उत्तराधिकारी पुत्र ही होता है। मेरे प्राण तुम्हींमें सदा बसे रहते हैं। तुम 'कोकामुख'-क्षेत्र मत जाओ।'

पिताके इस प्रकार कहनेपर राजकुमारने उनके चरण पकड़ लिये और नम्रतापूर्वक कहने लगा—'पिताजी! राज, कोष, सवारी अथवा सेनासे मेरा क्या प्रयोजन? मैं तो अभी उस 'कोकामुख'-क्षेत्रमें ही जाना चाहता हूँ। मैं सिरकी वेदनासे नितान्त पीड़ित हूँ। यदि मैं जीवित रहा, तब राज्य, सेना और कोष भी मेरे ही होंगे, इसमें कोई संशय नहीं, पर इस पीड़ासे मुक्ति तो मुझे वहाँ जानेसे ही मिलेगी।

अन्तमें शक-नरेशने पुत्रकी बातपर विचार करके उसे जानेकी आज्ञा दे दी। जब राजकुमारने 'कोकामुख'की यात्रा आरम्भ की तो उसके साथ बहुत-से व्यापारीवर्ग और नागरिक स्त्री-पुरुष भी चल पड़े। बहुत समयके बाद वे सभी इस 'कोकामुख'क्षेत्रमें पहुँचे। वहाँ पहुँचकर राजकुमारीने अपने स्वामीसे ये वचन कहे—'स्वामिन्! आपसे मैंने जो पहले प्रश्न किया था, उस समय आपने मुझे 'कोकामुख-क्षेत्र'में पहुँचकर बतलानेका आश्वासन दिया था, अतः अब बतानेकी कृपा कीजिये।' इसपर राजकुमारने अपनी भार्यासे स्नेहपूर्वक कहा—'प्रिये! अब रात्रि हो गयी है। इस समय तुम सुखपूर्वक सो जाओ। वह सब मैं प्रातःकाल बताऊँगा।' प्रातःकाल वे दोनों स्नान करके रेशमी वस्त्र धारण करके बैठे। राजकुमारने सर्वप्रथम सिर झुकाकर भगवान् विष्णुको प्रणाम किया। तत्पश्चात् वह अपनी पत्नीको पकड़कर, पूर्व-उत्तर भागमें (अपने मत्स्य-देहकी पड़ी) अस्थियोंको दिखाकर कहने लगा—'प्रिये! ये मेरे पूर्व शरीरकी हड्डियाँ हैं। पूर्वजन्ममें मैं मत्स्य था। एक बार जब मैं इस 'कोकामुख-'क्षेत्रके जलमें विचर रहा था कि एक व्याधने बंसीसे मुझे पकड़ लिया। उस समय मैं अपनी शक्ति लगाकर उसके हाथसे तो निकल गया। पर एक चील मुझे लेकर फिर उड़ गयी और नखोंसे मेरे शरीरको क्षत-विक्षत कर दिया। इतनेमें उससे छूटकर मैं

गिर गया। उसीके किये हुए प्रहारके कारण अब भी मेरे सिरमें वेदना बनी रहती है। इस प्रसङ्गको केवल मैं ही जानता हूँ। मेरे बिना इस रहस्यको कोई दूसरा नहीं जानता। भद्रे! तुमने जो बात पूछी थी, मैंने उसका रहस्य बतला दिया। सुन्दरि! तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम्हारा मन जहाँ लगे, वहाँ जा सकती हो।'

वसुंधरे! अब राजकुमारी भी करुण-स्वरमें अपने पतिसे कहने लगी—'भद्र! इसी कारण मैं भी अपनी गुप्त बात आपको नहीं बतला सकी थी। पूर्वजन्ममें मैं जैसी जो कुछ थी, अब वह आपसे बतलाती हूँ, आप सुनें। मैं पूर्वजन्ममें आकाशमें विचरनेवाली एक चील थी। भूख और प्याससे मुझे महान् कष्ट हो रहा था। खानेके योग्य पदार्थका अन्वेषण करती हुई मैं एक पेड़पर बैठी थी, इतनेमें मुझे एक व्याध दिखायी दिया। वह वनके बहुत-से पशुओंको मारकर उनके मांसोंको लेकर उसी मार्गसे गुजर रहा था। वह भी भूखसे व्याकुल था, अतः मांस-भारको अपनी पत्नीके पास रखकर उसे पकानेके विचारसे लकड़ी ढूँढ़ने निकला। काष्ठोंको एकत्रकर वह आग जलाने ही जा रहा था कि मैंने झपटकर अपने वज्रमय कठोर नखोंसे उस मांसपिण्डको उठा लिया। पर वह मांसभार मेरे लिये दुर्वह था, अतः उसे दूर न ले जाकर वहीं समीप ही बैठी रही। इधर वह व्याध शिकारकी खोजमें लगा ही था। अब उसकी दृष्टि मांस खाती हुई मुझ चीलपर पड़ी। फिर तो उसने धनुष उठाया और मुझपर बाणका संधान कर मार गिराया। मैं वहाँसे लुढ़ककर चक्कर काटती हुई प्राणहीन और निश्चेष्ट होकर पृथ्वीपर गिरी और मेरी जीवनलीला समाप्त हो गयी। किंतु इस 'कोकामुख' क्षेत्रकी महिमासे मेरे मनमें कोई कामना न रहनेपर भी मेरा जन्म राजाके घर हुआ। इस प्रकार मुझे आपकी स्त्री होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मेरे पूर्वजन्मकी ही ये हड्डियाँ हैं। अब इनका थोड़ा-सा भाग ही अवशेष है।' इस 'कोकामुख' तीर्थकी ही यह महिमा है जिसके फलस्वरूप तिर्यक् योनिके (तिरछी चलने या उड़नेवाली) जीवका भी उत्तम कुलमें जन्म हो जाता है। राजकुमारने भी साधु-साधु कहकर उसका बड़ा सम्मान किया। साथ ही उसे उस क्षेत्रमें होनेवाले कुछ धार्मिक कर्मोंका भी निर्देश किया और उन्हें राजकुमारीने सम्पन्न किया। अन्य लोगोंने भी जिन्हें जो प्रिय जान पड़ा, उस धर्मका आचरण किया। उस समय उस दम्पतिने प्रसन्नतासे आदरपूर्वक ब्राह्मणोंको यथोचित द्रव्य-अन्न और रत्न भी दिये। वसुंधरे! उस समय अन्य भी जितने लोग वहाँ आये थे, उन सबने भी अपनी सामर्थ्यके अनुसार स्वयं व्रतका पालन करते हुए भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको धन दिया। इस प्रकार वे लोग कुछ दिनोंतक वहीं रुके रहे और इसके फलस्वरूप वे श्वेतद्वीपको प्राप्त हुए। उस पुण्यमय धाममें पहुँचनेपर सभी पुरुष शुक्लवस्त्र एवं दिव्य भूषणोंसे अलंकृत होकर सुशोभित—प्रकाशित होने लगे। वहाँ रहनेवाली स्त्रियाँ भी दिव्य वस्त्र एवं अलौकिक आभूषणोंसे आभूषित होकर रूप, तेज एवं सत्त्वसे युक्त होकर प्रकाशित होने लगीं।

देवि! यह मैंने तुमसे 'कोकामुख'क्षेत्रकी महिमा बतलायी, जहाँ मत्स्य और चील आदि कामनामुक्त जीवोंने भी उत्तम गति प्राप्त की थी, जिसे चान्द्रायणव्रत करने, जलमें शयन करने तथा भगवद्धर्मोंका आचरण करनेवाले भी बड़ी कठिनतासे प्राप्त कर पाते हैं। फिर वहाँ राजकुमार और राजकुमारी— इन दोनों व्यक्तियोंने बहुतसे उत्तम धान्य और रत्न-दान किये। अन्य श्रद्धालु व्यक्तियोंने भी धर्माचरणकर प्रारब्धके अनुसार वाञ्छनीय मृत्यु प्राप्त की और उन्हें श्वेतद्वीप सुलभ हो गया। वह राजकुमार भी मनुष्यलोकके सभी श्रेष्ठ भोगोंको भोगकर सबसे उत्तम मेरे लोकको प्राप्त हुआ। सुमध्यमे! वहाँकी सभी सुवासिनी स्त्रियाँ भी मायाके

प्रभावसे मुक्त हो गयीं। सबपर धर्म तथा मेरी भक्तिभावनाकी गहरी छाप पड़ी थी। मेरी कृपासे वे सब श्वेतद्वीप पहुँचीं। यह प्रसङ्ग धर्म, कीर्ति, शक्ति और महान् यशका उन्नायक है। यह सभी तपस्याओंमें महान् तप, आख्यानोंमें उत्तम आख्यान, कृतियोंमें सर्वोत्तम कृति तथा धर्मोंमें सर्वोत्कृष्ट धर्म है, जिसका वर्णन मैंने तुमसे किया। भद्रे! जो क्रोधी, मूर्ख, कृपण, अभक्त, अश्रद्धालु तथा शठ व्यक्ति हैं, उन्हें यह प्रसङ्ग नहीं सुनाना चाहिये, जो दीक्षित तथा सदसद्विचारशील हैं, यह प्रसङ्ग उन्हें ही सुनाना चाहिये। जो शास्त्र-पारगामी पुरुष मृत्युकाल उपस्थित होनेपर मनको सावधान करके इस प्रसङ्गको मनमें धारण करता है, वह जन्म-मरणके बन्धनसे छूट जाता है। जो इस विधिके अनुसार 'कोकामुख'-क्षेत्रमें जाकर संयमपूर्वक जीवन व्यतीत करता है, वह भी उस परमसिद्धिको पाता है, जिसे पूर्वकालमें चील और मत्स्यने प्राप्त किया था। (अध्याय १२२)

पुष्पादिका माहात्म्य

पृथ्वी बोली—प्रभो! कोकामुखतीर्थकी अद्भुत महिमा सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। माधव! अब मैं यह जानना चाहती हूँ कि किस धर्म, तप अथवा कर्मके अनुष्ठानसे मनुष्य आपका दर्शन पा सकते हैं? प्रभो! कृपया प्रसन्न होकर आप मुझसे यह सारा प्रसङ्ग बतलाइये, यह मेरी प्रार्थना है।

भगवान् वराह बोले—देवि! पावसऋतुके बाद जलाशयोंके जल स्वच्छ हो जाते हैं, जब आकाश और चन्द्र-मण्डल निर्मल दीखने लगते हैं, उस समय न अधिक शीत रहता है और न गर्मी। जब हंसोंका कलरव आरम्भ हो जाता है, कुमुद, रक्त कमल, नीले एवं अन्य कमलोंकी सुरभि सर्वत्र फैलने लगती है, उस समय कार्तिक मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथि मुझे अत्यन्त प्रिय है। उस अवसरपर जो मेरी पूजा करता है, मैं उसका फल बताता हूँ, सुनो—वसुंधरे! मेरा वह भक्त कल्पपर्यन्त धनी—लक्ष्मीका पात्र बना रहता है, जो दूसरे देवताके उपासकके लिये असम्भव है। माधवि! उस अवसरपर साधकको चाहिये कि मेरी आराधना कर इस स्तोत्रका पाठ करे। स्तोत्रका भाव यह है—'जगत्प्रभो! ब्रह्मा, रुद्र और ऋषि जिसकी पूजा एवं वन्दना करते हैं, लोकनाथ! उन आपकी आराधना करनेके उपयुक्त यह द्वादशी तिथि प्राप्त हुई है। आपसे मैं प्रार्थना करता हूँ, आप उठिये और निद्राका परित्याग कीजिये। मेघ चले गये, चन्द्रमाकी कलाएँ पूर्ण हो गयी हैं। शरद्ऋतुमें विकसित होनेवाले पुष्पोंको मैं आपको समर्पित करूँगा। अब आप जागनेकी कृपा करें। यशस्विनि! इस प्रकार द्वादशीको पुष्पाञ्जलि अर्पित कर मेरी उपासना करनेवाले भक्तोंको परमगति प्राप्त होती है।

शिशिरऋतुमें वनस्पतियाँ नवीन हो जाती हैं। उस समयके पुष्पोंसे मेरी अर्चना करनेके लिये पृथ्वीपर घुटनोंके बल बैठकर हाथोंमें फूल लेकर मेरा उपासक कहे—'तीनों लोकोंकी रक्षा करनेवाले प्रभो! आप संसारके स्रष्टा हैं। यह शिशिरऋतु भी आपका ही स्वरूप है। यह शीत-समय सबके लिये दुस्तर एवं दुःसह है। इस समय मैं आपकी आराधना करता हूँ। आप इस संसारसे मेरा उद्धार करनेकी कृपा कीजिये।'

वसुंधरे! जो पुरुष भक्ति—सहित इस भावनाके साथ शिशिरऋतुमें मेरी पूजा करता है, उसे परासिद्धि प्राप्त होती है। अब मैं तुम्हें एक दूसरी बात बताता हूँ, तुम उसे सुनो। मार्गशीर्ष और वैशाख मास भी मुझे बहुत प्रिय हैं। उन मासोंमें मुझे पुष्पादि अर्पण करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसे मैं बतलाता हूँ। जो भाग्यशाली व्यक्ति मुझे पवित्र गन्ध-पुष्पादि पदार्थ अर्पित करता

है, वह नौ हजार नौ सौ वर्षोंतक विष्णुलोकमें स्थिरता-पूर्वक सुखसे निवास करता है—इसमें कोई संदेह नहीं। एक-एक गन्धयुक्त पुष्प-पत्र (या तुलसीपत्र*) देनेका यह महान् फल है। सदा श्रद्धासे सम्पन्न होकर चन्दन एवं पुष्पोंसे मेरी पूजा करनी चाहिये। जो पुरुष नियम-पूर्वक रहकर कार्तिक, अगहन एवं वैशाख—इन तीन महीनोंकी द्वादशी तिथियोंके दिन खिले हुए पुष्पोंकी वनमाला तथा चन्दन आदिको मुझपर चढ़ाता है, उसने मानो बारह वर्षोंतक मेरी पूजा कर ली। कार्तिक मासकी द्वादशी तिथिमें साखू वृक्षके फूल तथा चन्दनसे मेरी पूजा करनेका विधान है। भद्रे! इसी प्रकार अगहन मासमें चन्दन एवं कमलके पुष्पको एक साथ मिलाकर जो मुझे अर्पण करता है, उसे महान् फल प्राप्त होता है।

पृथ्वीदेवी भगवान्‌की बातोंको सुनकर हँस पड़ीं। पुनः वे नम्रतापूर्वक बोलीं—'प्रभो! वर्षमें तीन सौ साठ दिन तथा बारह मास होते हैं। उनमें आप केवल दो ही महीनोंकी द्वादशी तिथिकी ही मुझसे क्यों प्रशंसा करते हैं?' जब पृथ्वीदेवीने भगवान् वराहसे यह प्रश्न किया तब वराह भगवान्‌ने मुस्कुराते हुए कहा—देवि! जिस कारण ये दोनों मास मुझे अधिक प्रिय हैं, वह धर्म-युक्त वचन सुनो! तिथियोंमें द्वादशी तिथि सबसे श्रेष्ठ मानी जाती है, क्योंकि इसकी उपासनासे सम्पूर्ण यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी अधिक फल प्राप्त होता है। हजारों ब्राह्मणोंको दान देनेका जो फल होता है, वह इस कार्तिक और वैशाख मासकी द्वादशीमें एकको ही दान देनेसे प्राप्त हो जाता है। क्योंकि इस कार्तिक मासकी द्वादशीके दिन मैं जगता हूँ और वैशाख मासकी द्वादशीमें सर्वशक्तिसम्पन्न हो जाता हूँ। वसुंधरे! इसके योगसे विपुल चिन्ता समाप्त हो जाती है। इसीसे मैंने इसकी महिमाका वर्णन किया है। इसलिये मेरे भक्त पुरुषको चाहिये कि मनको संयत रखकर वैशाख और कार्तिक मासकी द्वादशीके दिन हाथमें चन्दन गन्ध और (तुलसी)पत्र लिये हुए इस मन्त्रका उच्चारण करे। मन्त्रका अर्थ यह है—'भगवन्! ये वैशाख और कार्तिक मास सदा सभी मासोंमें श्रेष्ठ माने जाते हैं। इस अवसरपर आप मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं चन्दन और तुलसीपत्रोंको अर्पित करूँ और आप इन्हें स्वीकार करें। साथ ही मुझमें धर्मकी वृद्धि कीजिये।' फिर **'ॐ नमो नारायणाय'** कहकर चन्दन एवं तुलसीपत्र अर्पित करना चाहिये। अब मैं गन्धयुक्त पत्र-पुष्पोंके गुण और उन्हें चढ़ानेके फलका वर्णन करता हूँ। मानव पवित्र होकर हाथमें चन्दन, गन्ध (तुलसी) पत्र और फूल लेकर **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** का उच्चारण करते हुए उन्हें अर्पित करे। साथ ही यह मन्त्र कहे—'भगवन्! आप मुझे आज्ञा देनेकी कृपा करें। इन सुन्दर फूलों और मलयचन्दनसे मैं आपकी अर्चना करना चाहता हूँ। प्रभो! आपको मेरा नमस्कार है। इसे स्वीकार करें; मेरा मन परम पवित्र हो जाय—यह आपसे प्रार्थना है।' मेरे कर्ममें संलग्न रहनेवाला पुरुष, इन गन्ध-पुष्पोंको मुझे देता हुआ जो फल प्राप्त करता है, वह यह है कि उसका न पुनर्जन्म होता है और न मरण। उसके पास ग्लानि और क्षुधा भी नहीं फटक पाती। वह देवताओंके वर्षसे एक हजार वर्षोंतक मेरे लोकमें स्थान पाता है। चन्दनयुक्त एक-एक पुष्प अर्पित करनेका ऐसा फल है।

(अध्याय १२३)

---

*. भगवन्नाज्ञापय! इमं बहुतरं नित्यं वैशाखं चैव कार्तिकम्॥ गृहाण गन्धपत्राणि धर्ममेवं प्रवर्धय॥ नमो नारायणेत्युक्त्वा गन्धपत्रं प्रदापयेत् (१२३। ३६-३७)। यहाँ यह ध्यान देनेकी बात है कि मूल वराहपुराणमें 'तुलसी' नहीं 'गन्धपत्र' शब्द ही प्रयुक्त है। हाजरा आदि कुछ विद्वानोंकी दृढ़ मान्यता है कि जिन पुराणोंमें 'तुलसी' शब्द नहीं है, वे अत्यधिक प्राचीन हैं। वेदोंमें भी 'तुलसी' शब्द नहीं है।

वसन्त आदि ऋतुओंमें भगवान्‌की पूजाकरनेकी विधि और माहात्म्य

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! फाल्गुन मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिके दिन पवित्र होकर शान्त मनसे भगवान् श्रीहरिकी पूजा करनेका विधान है । इस वसन्त ऋतुमें क्रमशः कुछ श्वेत, कुछ पाण्डुरङ्गके जो अत्यन्त प्रशंसनीय गन्धसे युक्त सुन्दर पुष्प हैं, उनके द्वारा प्रसन्न-अन्तःकरण होकर मन्त्रद्वारा पूजा करनी चाहिये। सभी वस्तुएँ भगवान्‌से सम्बन्ध रखनेवाली एवं पवित्र हों। पूजाके पहले '**ॐ नमो नारायणाय**' कहकर बादमें यह मन्त्र पढ़े[1]—जिसका भाव है, 'देवेश्वर ! आप ॐकारस्वरूप हैं । शङ्ख, चक्र एवं गदासे आपकी भुजाएँ शोभा पाती हैं । जगत्प्रभो ! आप महान् पराक्रमी पुरुष हैं। आपके लिये मेरा बारंबार नमस्कार है। प्रभो ! वसन्तऋतुमें वृक्ष फूलोंसे लदे हैं । सर्वत्र गन्धयुक्त रस भरा है। अब आप इस पुष्प युक्त वृक्ष, वन और पर्वतों तथा मुझपर अपनी कृपादृष्टि डालनेकी दया कीजिये ।

सुमध्यमे ! जो पुरुष फाल्गुन मासमें इस प्रकार मेरी पूजा करता है, उसे दुःखमय संसारमें आनेका संयोग नहीं प्राप्त होता, अपितु वह मेरे लोकको प्राप्त होता है। अब तुम जो श्रेष्ठ वैशाख मासके शुक्लपक्षकी द्वादशीके फल-की बात मुझसे पूछ चुकी हो, उसे कहता हूँ, सुनो। शालवृक्ष तथा अन्य भी बहुत-से वृक्ष जब फूलोंसे परिपूर्ण हो जायँ तो साधक उनके फूलोंको हाथमें लेकर मेरी आराधनाके लिये तत्पर हो जाय। उस अवसरपर मेरे प्रह्लाद, नारद आदि भागवतोंको भी पूज्य मानकर पूजा करे । माधवि ! ऋषिलोग वेदोंमें कहे हुए मन्त्रोंद्वारा सदा मेरी स्तुति करते हैं । अप्सराओंद्वारा गीतों, वाद्यों एवं नृत्योंसे मैं सुपूजित होता रहता हूँ । अलौकिक दिव्य पुरुष मुझ पुराणपुरुषोत्तमका स्तवन करनेमें संलग्न रहते हैं । मैं सम्पूर्ण प्राणियोंका आराध्यदेव एवं सम्पूर्ण लोकोंका स्वामी हूँ । अतः सिद्ध, विद्याधर, किन्नर, यक्ष-पिशाच, उरग, राक्षस, आदित्य, वसु, रुद्रगण, मरुद्गण, विश्वेदेवता, अश्विनीकुमार, ब्रह्मा, सोम, इन्द्र, अग्नि, नारद-पर्वत, असित-देवल, पुलह-पुलस्त्य, भृगु, अङ्गिरा, मित्रावसु और परावसु—ये सब-के-सब मेरी स्तुतिमें सदा तत्पर रहते हैं ।

उसी समय महान् ओजस्वी देवताओंके मुखसे निकली हुई प्रतिध्वनिको सुनकर भगवान् नारायणने पृथ्वीसे कहा—'महाभागे ! देखो ! देव-समुदाय वेदध्वनि कर रहा है । उनके मुखसे निकले हुए इस महान् शब्दको क्या तुम नहीं सुन रही हो ?' इसपर पृथ्वीने भगवान् नारायणसे कहा—'भगवन् ! आप जगत्‌की सृष्टि करनेमें परम कुशल हैं । देवतालोग वराहके रूपमें विराजमान आप प्रभुके दर्शनकी आकाङ्क्षा करते हैं, क्योंकि वे आपके द्वारा ही बनाये गये हैं ।

इसपर भगवान् नारायणने पृथ्वीको उत्तर दिया—'वसुंधरे! मैं अपने मार्गका अनुसरण करने-वाले उन देवताओंसे पूर्ण परिचित हूँ । एक हजार दिव्य वर्षोंतक मैंने केवल लीलामात्रसे तुम्हें अपने एक दाँतके ऊपर धारण कर रखा है । ब्रह्मासहित आदित्य, वसु एवं रुद्रगण तथा स्कन्द और इन्द्र आदि देवता मुझे देखनेके लिये यहाँ आना चाहते हैं ।

वसुंधरा अब प्रभुके चरणोंपर गिर गयी । वह कहने लगी—'भगवन् ! मैं रसातलमें पहुँच गयी थी । आपने ही मेरा वहाँसे उद्धार किया है । मैं आपकी शरणमें आयी हूँ । आपमें मेरी अचल श्रद्धा है । आप सर्वसमर्थ एवं मेरे लिये परम आश्रय हैं । भगवन् ! मैं आपसे पूछना चाहती हूँ कि कर्मका स्वरूप क्या है ? किस कर्मके प्रभावसे आप प्राप्त होते हैं तथा नर-जन्मकी

१–ॐनमोऽस्तु देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर । नमोऽस्तु ते लोकनाथ प्रवीराय नमोऽस्तु ते ॥ (१२४।५)

सफलता किसमें है ? भगवन् ! शेष ऋतुओंमें किन पुष्पोंसे किस प्रकार आपकी पूजा करनेसे अथवा किस कर्मसे आप प्रसन्न होते हैं, उसे भी बतानेकी कृपा कीजिये ।

श्रीवराह भगवान् बोले—वसुंधरे ! मोक्षमार्गमें अटल रहनेवाले मेरे भक्तोंने जिसका जप किया है, अब मैं उस मन्त्रका वर्णन करता हूँ, सुनो । उसमें ऐसी शक्ति है कि इसके निरन्तर पाठ करनेसे मेरी अवश्य तुष्टि होती है । मन्त्रका भाव यह है—'भगवन् ! आप सम्पूर्ण मासोंमें मुख्य माधव (वैशाख) मास हैं, अतः 'माधव' नामसे आपकी भी प्रसिद्धि है । वसन्त ऋतुमें चन्दन, रस और पुष्पादिसे अलंकृत आपकी प्रतिष्ठित प्रतिमाका दर्शन करके पुण्य प्राप्त करना चाहिये । जो सातों लोकोंमें शूरवीर और नारायण नामसे प्रसिद्ध हैं, ऐसे आप प्रभुका यज्ञोंमें निरन्तर यजन किया जाता है ।'

इस प्रकार ग्रीष्म-ऋतुमें भी मेरे कथनका पालन करते हुए सम्पूर्ण विधियोंका आचरण करना चाहिये । उस समय भगवान्में श्रद्धा रखनेवाले सम्पूर्ण प्राणियोंको प्रिय आगे कहे जानेवाले मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये । मन्त्रका भाव यह है—'भगवन् ! सम्पूर्ण मासोंमें प्रधानरूपसे आप जेष्ठ मासका रूप धारण करके शोभा पा रहे हैं । इस ग्रीष्म-ऋतुमें विराजमान आप प्रभुका दर्शन करना चाहिये, जिसके फलस्वरूप सारा दुःख दूर हो जाय ।'

वरारोहे ! इसी प्रकार तुम भी ग्रीष्म-ऋतुमें मेरी पूजा करो । इससे प्राणी जन्म और मृत्युके चक्करमें नहीं पड़ता तथा उसे मेरा लोक प्राप्त होता है । वसुंधरे ! भूमण्डलपर शाल आदि जितने भी फलवाले वृक्ष हैं तथा उस समय जितने गन्धपूर्ण उपलब्ध पुष्प हैं, उन सबसे मुझ श्रीहरिकी अर्चना करनेकी विधि है । ऐसे ही वर्षा-ऋतुके श्रावण आदि मासोंमें भी मुझसे सम्बन्ध रखनेवाले कर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये ।

देवि ! अब दूसरा वह कर्म तुम्हें बता रहा हूँ, जिसके प्रभावसे संसारसे मुक्ति मिल सकती है । कदम्ब, मुकुल, सरल और अर्जुन आदि देव-वृक्ष हैं । मेरी प्रतिमाकी स्थापना करके विधि-निर्दिष्ट कर्मके अनुसार इन वृक्षोंके फूलोंसे '**ॐ नमो नारायणाय**' कहकर मेरा आदरपूर्वक अर्चन करना चाहिये । फिर प्रार्थना करे—'लोकनाथ ! मेघके समान आपकी कान्ति है । आप अपनी महिमामें स्थित हैं । ध्यानमें परायण रहनेवाले आश्रित जन आपके जिस रूपका दर्शन करते हैं, वे इस वर्षा-ऋतुमें योगनिद्रामें अभिरुचि रखनेवाले एवं मेघ-वर्णसे सुशोभित आप प्रभुके दिव्य स्वरूपका दर्शन करें । आषाढ़ मासकी शुक्ल द्वादशी तिथिके दिन इस विधानसे जो पुरुष शान्ति प्रदान करनेवाले मेरे इस पवित्र कर्मका अनुष्ठान करता है, वह जन्म और मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाता है । देवि ! ये ऋतुओंके अनुसार उत्तम कर्म हैं, जिनका मैंने तुमसे वर्णन किया है । महाभागे ! यह वृत्त सर्वथा गोपनीय है । इसके प्रभावसे मेरे कर्मपरायण रहनेवाले मनुष्य संसारसागरको तर जाते हैं । देवता भी इसे नहीं जानते; क्योंकि मैं भगवान् नारायण यहाँ स्वयं वराहके रूपमें विराजमान हूँ । इस प्रकारके ज्ञानका उन्हें भी अभाव है । यह विषय दीक्षा-हीन, मूर्ख, चुगली करनेवाले, निन्दित शिष्य एवं शास्त्रके अर्थोंमें दोषारोपण करनेवालेसे नहीं कहना चाहिये । गोघाती एवं धूर्तोंके बीच भी इसका कथन अनुचित है; क्योंकि उनके मध्य इसको कहनेसे लाभके बदले हानि ही होती है । जो भगवान्में श्रद्धा रखनेवाले हैं तथा जिन्होंने धार्मिक दीक्षा ली है, उनके सामने ही इसकी व्याख्या करनी चाहिये । (अध्याय १२४)

माया-चक्रका वर्णन तथा मायापुरी (हरिद्वार)का माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—पवित्र व्रतोंका अनुष्ठान करनेवाली भगवती वसुंधराने छः ऋतुओंके वैष्णव-कृत्योंका वर्णन सुनकर भगवान् नारायणसे पुनः पूछा—'भगवन् ! आपने मङ्गल एवं पवित्रमय जिन विषयोंका वर्णन किया है, जिनकी स्वर्गादि लोकों तथा मेरे भूलोकमें प्रसिद्धि हो चुकी है, वे आपके—वैष्णव-धर्मके कृत्य मेरे मनको आनन्दित कर रहे हैं। माधव ! आपके मुखारविन्दसे निकले हुए इन कर्मोंको सुनकर मेरी बुद्धि निर्मल हो गयी। पर मेरे मनमें एक सूक्ष्म कौतूहल उत्पन्न हो गया है। मेरा हित करनेके विचारसे उसे आप बतलानेकी कृपा कीजिये। भगवन् ! आप अपनी जिस मायाका सर्वदा वर्णन किया करते हैं, उसका स्वरूप क्या है तथा उसे 'माया' क्यों कहा जाता है ? मैं इसे तथा इसके आन्तरिक रहस्योंको जानना चाहती हूँ।'

इसपर मायापति भगवान् नारायण हँसकर बोले—'पृथ्वी देवि ! तुम जो मुझसे यह मायाकी बात पूछ रही हो, इसे न पूछनेमें ही तुम्हारी भलाई है। तुम व्यर्थमें यह कष्ट क्यों मोल लेना चाहती हो ? इसे देखनेसे तो तुम्हें कष्ट ही होगा। ब्रह्मासहित रुद्र एवं इन्द्र आदि देवता भी आजतक मुझे तथा मेरी मायाको जाननेमें असफल रहे हैं, फिर तुम्हारी तो बात ही क्या ? विशालाक्षि ! जब मेघ पानी बरसाते हैं तो जलसे सारा जगत् भर उठता है। पर कभी वही सारा देश फिर शुष्कबंजर बन जाता है। कृष्णपक्षमें चन्द्रदेव क्षीण होते हैं और शुक्लपक्षमें बढ़ते हैं, यह सब मेरी मायाका ही तो प्रभाव है। सुन्दरि ! अमावास्याकी रात्रिमें चन्द्रमा दृष्टिगोचर नहीं होते, हेमन्त-ऋतुमें कुएँका जल गर्म हो जाता है—विचारकी दृष्टिसे देखें तो यह सब मेरी माया ही है। इसी प्रकार ग्रीष्म-ऋतुमें जल ठंडा हो जाता है। पश्चिम दिशामें जाकर सूर्य अस्त हो जाते हैं। पुनः वे प्रातःकाल पूरबमें उदित होते हैं। प्राणियोंके शरीरमें रक्त और शुक्र इन दोनोंका समावेश रहता है, वस्तुतः यह सब मेरी माया ही तो है। सुन्दरि ! प्राणी गर्भमें आता है, उसे वहाँ सुख और दुःखका अनुभव होता है, पुनः उत्पन्न हो जानेपर उसे वह बात भूल जाती है। अपने कर्ममें रचा-पचा जीव अपने स्वरूपको भूल जाता है, उसकी स्पृहा समाप्त हो जाती है, वस्तुतः यह सब मेरी मायाका ही प्रताप है। कर्मके प्रभावसे जीव दूसरी जगह पहुँच जाता है। शुक्र और रक्तके संयोगसे जीवधारियोंकी उत्पत्ति होती है, दो भुजाएँ, दो पैर, बहुत-सी अँगुलियाँ, मस्तक, कटि, पीठ, पेट, दाँत, ओंठ, नाक, कान, नेत्र, कपोल, ललाट और जीभ इत्यादिसे संगठित प्राणीकी उत्पत्ति मेरी मायाका ही चमत्कार है। वही प्राणी जब खाता-पीता है तो जठराग्निके द्वारा उसका पाचन होता है। तत्पश्चात् जीवके शरीरसे वही अधोमार्गसे बाहर निकल जाता है, यह सब मेरी प्रबल मायाकी ही करामात है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पाँच विषयोंमें अन्न खानेसे प्रवृत्ति होती है, ये सभी कार्य मेरी मायाकी ही देन है।

देवि ! कुछ जल आकाशस्थ बादलोंमें लटके रहते हैं और कुछ जलराशि भूमिपर नदी, सरोवर, आदिमें रहती हैं। पर जिन नदियों आदिमें इस जलकी प्रतिष्ठा है, वे नदियाँ भी कभी बढ़ती और कभी घटती हैं—यह सब मेरी मायाका ही प्रभाव है। वर्षाऋतुमें सभी नदियोंमें अथाह जल हो जाता है, बावलियाँ और तालाब जलसे भर जाते हैं, पर ग्रीष्मऋतुमें वे ही सब सूख जाते हैं, यह सब मेरी मायाका ही तो बल है। मेघ 'लवण-समुद्रसे' खारा जल लेकर मधुर जलके रूपमें उसे भूलोकमें बरसाते हैं, यह मेरी मायाका ही प्रभाव है। रोगसे दुःखी हुए कितने प्राणी रसायन तथा ओषधियाँ खाते हैं और उस ओषधिके प्रभावसे नीरोग हो जाते

हैं, किंतु कभी उसी ओषधिके देनेपर प्राणीकी मृत्यु भी हो जाती है, उस समय मैं ही कालका रूप धारण कर ओषधिकी शक्तिका हरण कर लेता हूँ, यह सब मेरी मायाका ही प्रभाव है। पहले गर्भकी रचना होती है, इसके उपरान्त पुरुष उत्पन्न हो जाता है, फिर युवावस्था होती है, बुढ़ापा भी आ जाता है, जिसमें सभी इन्द्रियोंकी शक्ति समाप्त हो जाती है—यह सब मेरी मायाका बल है। भूमिमें बीज गिराया जाता है और उससे अङ्कुरकी उत्पत्ति हो जाती है। तत्पश्चात् वह अङ्कुर अद्भुत पत्तोंसे सम्पन्न हो जाता है—यह विचित्रता मेरी मायाका ही स्वरूप है। एक ही बीज गिरानेसे वैसे ही अनेक अन्नके दाने निकल जाते हैं, वस्तुतः मैं ही अपनी मायाके सहयोगसे उसमें अमृत शक्तिकी उत्पत्ति कर देता हूँ।

जगत्को विदित है कि गरुड़ मुझ भगवान् विष्णुका वहन करते हैं। वस्तुतः मैं ही स्वयं गरुड़ बनकर वेगसे अपने-आपको वहन करता हूँ। जितने देवता जो यज्ञका भाग पाकर संतुष्ट होते हैं, उस अवसरपर मैं ही अपनी इस मायाका सृजनकर उन अखिल देवताओंको तृप्त करता हूँ, किंतु सभी प्राणी यही जानते हैं कि ये देवता ही सदा यज्ञका भाग ग्रहण करते हैं। पर वस्तुतः मैं ही मायाकी रचना कर देवताओंके लिये यज्ञ कराता हूँ। बृहस्पतिजी यज्ञ कराते हैं—यह जानकर संसारमें सभी लोग उनकी सेवा करते हैं। पर आङ्गिरसी मायाका सृजन करना और देवताओंके लिये यज्ञकी व्यवस्था करना मेरा ही काम है। सम्पूर्ण संसार जानता है कि वरुण देवताकी कृपासे समुद्रकी रक्षा होती है, किंतु वरुणसे सम्बन्ध रखनेवाली इस मायाका निर्माण कर मैं ही महान् समुद्रकी रक्षा करता हूँ। सारा विश्व यही जानता है कि कुबेरजी धनाध्यक्ष हैं। परंतु रहस्य यह है कि मैं ही मायाका आश्रय लेकर कुबेरके भी धनकी रक्षा करता हूँ। 'इन्द्रने ही वृत्रासुरको मारा था,' इस प्रकारकी बात संसार जानता है, किंतु वज्रसे वस्तुतः मैंने ही उसे मारा था। सूर्य, ध्रुव आदि तपते हैं—ऐसी बात सर्वविदित है किंतु तथ्य यह है कि इनमें मेरा ही तेज है। संसारमें लोग कहते हैं, अरे! जल कहाँ चला गया? पर बात यह है कि बड़वानलका रूप धारणकर सम्पूर्ण जलका शोषण मैं ही करता हूँ। मायासे ओत-प्रोत वायुरूप बनकर मेघोंको संचालित करना मेरा ही कार्य है। अमृतका निवास कहाँ है? इस गहन विषयको देवता भी नहीं जानते हैं, पर तथ्य यह है कि मेरी मायाके शासनसे वह ओषधिमें निवास करता है। संसार जानता है कि राजा ही प्रजाओंकी रक्षा करता है। किंतु तथ्य यह है कि राजाका रूप धारण करके मैं ही स्वयं पृथ्वीका पालन करता हूँ। युगकी समाप्तिके अवसरपर ये जो बारह सूर्य उदित होते हैं, उनमें मैं ही अपनी शक्तिका आधान करके वह कार्य सम्पन्न करता रहता हूँ। वसुंधरे! संसारमें मायाकी सृष्टि करना मुझपर निर्भर है। देवि! सूर्य अपने किरणसे सम्पूर्ण जगत्में निरन्तर ताप पहुँचाता है। ऐसी स्थितिमें किरणमयी मायाकी सृष्टि करना और सम्पूर्ण संसारमें उसका प्रसारण करना मेरे ही हाथका खेल है। जिस समय संवर्तकमेघ मूसल-जैसी धाराओंसे जल बरसाते हैं, उस अवसरपर मायाका आश्रय लेकर संवर्तक मेघोंद्वारा मैं ही समस्त जगत्को जलसे भर देता हूँ। वरारोहे! मैं जो शेषनागकी शय्यापर सोता हूँ, यह मेरी मायाका ही पराक्रम है। शेषनागका रूप धारण करना और उनपर शयन करना यह सब एकमात्र मेरी योगमाया-का ही कार्य है। वसुंधरे! वाराही मायाका आश्रय लेकर मैंने तुम्हें ऊपर उठाया था—क्या तुम यह भूल गयी?

तुम भी वैष्णवी मायाका लक्ष्य हुई हो, क्या इस बातको नहीं जानती हो।

सुश्रोणि ! सत्रह बार तो तुम मेरे दाढ़ोंपर नित्य प्रलयकालमें आश्रय पा चुकी हो। उस समय मेरे द्वारा मायाका सृजन हुआ था और तुम 'एकार्णव'— समुद्रमें डूब रही थी। मैं मायाके ही योगसे जलमें रहता हूँ। ब्रह्मा और रुद्रका सृजन करना और भरण-पोषण करना मेरी ही मायाका कार्य है। फिर भी मेरी मायासे मोहित हो जानेके कारण वे मेरी इस मायाको नहीं जानते हैं। पितरोंका समुदाय जो सूर्यके समान तेजस्वी है, वह भी वस्तुतः मैं ही हूँ तथा पितृमयी मायाका आश्रय लेकर पितरोंका रूप धारण कर मैं ही पितृभाग हव्यको ग्रहण करता हूँ। अधिक क्या, एक दूसरी विचित्र बात सुनो, जो एक बार एक (पुरुष) ऋषि भी मायाद्वारा स्त्रीके स्वरूप (योनि)में परिणत (परिवर्तित) कर दिये गये थे।

पृथ्वी बोली—भगवन् ! उस ऋषिने कौन-सा अपकर्म किया था, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें स्त्रीकी योनि प्राप्त हुई ? इस बातसे तो मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। आप यह सारा प्रसङ्ग बतानेकी कृपा कीजिये। उस ब्राह्मणश्रेष्ठने फिर स्त्रीरूप धारण कर कौन-से पापयुक्त कर्म किये, यह सब भी विस्तारसे बतायें। पृथ्वीकी बात सुनकर श्रीभगवान् अत्यन्त प्रसन्न हो गये और मधुर वचनमें कहने लगे, देवि ! यह विषय अत्यन्त गूढ़ और महत्त्वपूर्ण है। सुन्दरि ! तुम यह धर्मयुक्त कथा सुनो। देवि ! मेरी माया ज्ञान एवं विश्वकी सभी वस्तुओंको आच्छादित किये है, उसकी बात सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इस मायाके प्रभावसे सोमशर्मा नामक ऋषि भी प्रभावित हुए थे। इससे वे उत्तम, मध्यम और अधम—अनेक प्रकारकी स्थितियोंके चक्करमें घूमते रहे। फिर मेरी मायाकी ही प्रेरणासे उन्हें पुनः ब्राह्मणत्व सुलभ हुआ। सोमशर्मा उत्तम ब्राह्मण होकर भी स्त्रीकी योनिमें परिवर्तित हो गये, यद्यपि उसमें भी उनके द्वारा कोई विकृत कर्म नहीं हुआ और न कोई अपराध ही किया। वसुंधरे ! बात यह है कि वे (सोमशर्मा) सदा मेरी आराधना, उपासनादि कर्मोंमें ही लगे रहते थे। वे निरन्तर मेरी रमणीय आकृति— मेरे सुन्दर स्वरूपका ही चिन्तन करते रहते। भामिनि ! इस प्रकार पर्याप्त समयतक उनकी भक्ति, तपश्चर्या, अनन्यभावसे स्तुति करते रहनेपर मैं उनपर प्रसन्न हुआ। देवि ! मैंने उस समय उन्हें अपने स्वरूपका दर्शन कराया और कहा—'ब्राह्मण-देवता ! मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट हूँ, तुम मुझसे जो चाहे वर माँग लो। रत्न, सुवर्ण, गौएँ तथा अकण्टक राज्य—जो कुछ तुम्हारे हृदयमें हो माँगो, मैं सब कुछ तुम्हें दे सकता हूँ। अथवा विप्रवर उस स्वर्गका सुख, जहाँ वाराङ्गनाएँ तथा आनन्दका अनुभव करनेकी अनन्त सामग्रियाँ हैं तथा जो सुवर्णके भाण्डोंसे सुशोभित एवं धन और रत्नोंसे परिपूर्ण है, जहाँ अप्सराएँ दिव्यरूप धारण किये रहती हैं, उसे ही माँग लो। अथवा जो भी इष्ट वस्तु तुम्हारे ध्यानमें आती हो, वह सब मेरे वरसे तुम्हें सुलभ हो सकती है।'

वसुंधरे ! उस समय मेरी बात सुनकर उन श्रेष्ठ ब्राह्मणने भूमिपर पड़कर मुझे साष्टाङ्ग प्रणाम किया और मधुर शब्दोंमें कहने लगे—'देव ! आप मुझपर यदि रुष्ट न हों तो मैं आपसे जो वर माँग रहा हूँ, वही दीजिये। भगवन् ! आपके द्वारा निर्दिष्ट वरदानों—सुवर्ण, गौएँ, स्त्री, राज्य, ऐश्वर्य एवं अप्सराओंसे सुशोभित स्वर्ग आदिसे माधव ! मेरा कोई भी प्रयोजन नहीं है। मैं तो केवल आपकी मायाका—जिसकी सहायतासे आप सारी क्रीडाएँ करते हैं, रहस्य ही जानना चाहता हूँ।'

वसुंधरे ! ब्राह्मणकी बात सुनकर मैंने कहा— 'द्विजवर ! मायासे तुम्हारा क्या प्रयोजन है ? ब्राह्मणदेव !

तुम अनुचित तथा अकार्यकी कामना कर रहे हो।' पर मेरी मायासे प्रेरित होकर उस ब्राह्मणने मुझसे पुनः यही कहा—'भगवन् ! आप यदि मेरे किसी कर्म अथवा तपस्यासे तनिक भी संतुष्ट हैं तो मुझे बस वही वर दें (अर्थात् अपनी मायाका ही दर्शन करायें) ।'

अब मैंने उस तपस्वी ब्राह्मणसे कहा—'द्विजवर ! तुम 'कुब्जाम्रक'* तीर्थमें जाओ और वहाँ गङ्गामें स्नान करो, इससे तुम्हें मायाका दर्शन होगा ।' देवि ! मेरी इस बातको सुनकर ब्राह्मणने मेरी प्रदक्षिणा की और दर्शनकी अभिलाषासे वह ऋषिकेश चला गया। वहाँ उसने बड़ी सावधानीसे अपनी कुण्डी, दण्ड और भाण्डको गङ्गातटपर एक ओर रखकर विधिपूर्वक तीर्थकी पूजा की और उसके बाद वह गङ्गामें स्नान करनेके लिये उतरा। वह स्नानार्थ अभी डूबा ही था और उसके अङ्ग बस भींग ही रहे थे कि इतनेमें देखता है कि वह किसी निषादके घरमें उसकी स्त्रीके गर्भमें प्रविष्ट हो गया है। उस समय गर्भके क्लेशसे जब उसे असह्य वेदना होने लगी तो वह अपने मनमें सोचने लगा—'मेरे द्वारा अवश्य ही कोई बुरा कर्म बन गया है, जिससे मैं इस निषादीके गर्भमें आकर नरक-यातना भोग रहा हूँ। अहो ! मेरी तपस्या एवं जीवनको धिक्कार है, जो इस हीन स्त्रीके गर्भमें वास कर रहा हूँ और नौ द्वारों तथा तीन सौ हड्डियोंसे पूर्ण विष्ठा और मूत्रसे सने रक्त-मांसके कीचड़में पड़ा हुआ हूँ। यहाँकी दुर्गन्ध असह्य है तथा कफ, पित्त, वायुसे उत्पन्न रोग दुःखोंकी तो कोई गणना ही नहीं। बहुत कहनेसे क्या प्रयोजन ? मैं इस गर्भमें महान् दुःख पा रहा हूँ ! अरे ! देखो तो कहाँ तो वे भगवान् विष्णु, कहाँ मैं और कहाँ वह गङ्गाजीका जल ? किसी प्रकार इस गर्भसे मेरा छुटकारा हो जाय तो फिर मैं उसी भक्तिकार्य—गङ्गा-स्नानादिमें लग जाऊँगा ।'

इस प्रकार सोचते-सोचते वह ब्राह्मण शीघ्र ही निषादीके गर्भसे बाहर आया। पर भूमिपर गिरते ही उसने जो गर्भमें निश्चय किया था, वह सब विस्मृत हो गया। अब वह धन-धान्यसे परिपूर्ण निषादके घरमें एक कन्याके रूपमें रहने लगा। भगवान् विष्णुकी मायासे मुग्ध होनेके कारण पूर्वकी कुछ भी बातें उसे याद न रहीं। इस प्रकार बहुत दिन बीत गये। फिर उस कन्याका विवाह हुआ। मायाके प्रभावसे ही उसके बहुत-से पुत्र और पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। अब कन्यारूपमें वह (ब्राह्मण) सभी भक्ष्य एवं अभक्ष्य वस्तुओंको भी खा लेता तथा पेय एवं अपेय वस्तुएँ भी पी लेता। वह निरन्तर (मत्स्यादि) जीवोंकी हिंसामें निरत रहता तथा कर्तव्याकर्तव्यज्ञानसे भी शून्य हो गया।

वसुंधरे ! इस प्रकार जब निषादी स्त्रीरूपमें रहते उस ब्राह्मणके पचास वर्ष बीत गये, तब मैंने उसे पुनः स्मरण किया। वह (निषादीरूप ब्राह्मण) घड़ा लेकर विष्ठालिप्त वस्त्रोंको धोनेके लिये पुनः गङ्गाके तटपर गया और उसे एक ओर रखकर स्नान करनेके लिये गङ्गाके जलमें प्रविष्ट हुआ। कड़ी धूपसे संतप्त होनेके कारण उसका शरीर पसीनेसे लथपथ-सा हो रहा था। अतः उसकी इच्छा हुई कि सिर डुबाकर स्नान कर लूँ। पर ऐसा करते ही वह तपस्याका धनी (निषादीरूप) ब्राह्मण उसी क्षण पूर्ववत् तपस्वी बन गया। स्नान करके बाहर निकलते ही उसकी दृष्टि अपने पूर्वके रखे हुए दण्ड, कमण्डलु और वस्त्रोंपर पड़ी, जिन्हें देखते ही उसे पहले-जैसा ज्ञान उत्पन्न हो गया। पूर्व समयमें उस ब्राह्मणने जिस प्रकार विष्णुकी माया जाननेकी कामना की थी, वह भी उसे याद हो आयी;

* यह 'ऋषिकेश'का ही अन्यतम (एक दूसरा) नाम है। इसका वर्णन वराहपु० अ० ५५, १२५-२६, महाभारत ३। ८४। ४०, कूर्मपुराण ३४। ३४, ३६। १०, पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड २८। ४० तथा 'अर्चावतारस्थल-वैभवदर्पण' पृ० १०० आदिपर भी है (—'नन्दलाल दे')।

गङ्गासे बाहर निकलकर अब उसने अपने वस्त्र पहने और लज्जित होकर वह वहीं पुनः बालुकापर बैठकर योग एवं तपके विषयमें विचार करने लगा और कहने लगा—'अरे ! मुझ पापीद्वारा कितने निन्दनीय अकार्य कर्म बन गये ।'

इस प्रकार उसने अपनेको निन्दनीय मानकर बहुत धिक्कारा और कहने लगा—'साधुपुरुषोंद्वारा निन्दित कर्म करनेवाले मुझको धिक्कार है। मैं सदाचारसे सर्वथा भ्रष्ट हो गया था, जिस कारण मुझे निषादकी योनिमें जाना पड़ा। इस कुलमें उत्पन्न होनेपर मैंने कितने ही भक्ष्य और अभक्ष्य वस्तुओंका सेवन किया और सभी प्रकारके जीवोंका वध किया, अभक्ष्य-भक्षण तथा अपेय वस्तुओंका पान किया और न बेचने योग्य वस्तुओंका विक्रय किया, मुझे वाच्यावाच्यका भी ध्यान न रहा। निषादके सम्पर्कसे मैंने अनेक पुत्रों और पुत्रियोंकी भी उत्पत्ति की। किस दुष्कर्मके फलस्वरूप मुझे निषादकी पत्नी होना पड़ा, यह भी विचार करने योग्य है ।'

वसुंधरे ! इधर तो वह ब्राह्मण इस प्रकार यहाँ ऐसा सोच रहा था, उधर निषाद क्रोध एवं दुःखसे पागल हो रहा था । वह उसी समय अपने पुत्रोंसे घिरा अपनी भार्याको खोजता हुआ हरिद्वार पहुँचा और वहाँ प्रत्येक तपस्वीसे अपनी उस स्त्रीके विषयमें पूछने लगा। फिर वह विलाप-सा करता हुआ कहने लगा—'प्रिये ! तुम मुझे तथा अपने सभी पुत्रोंको छोड़कर कहाँ चली गयी ? अभी दूध पीनेवाली तुम्हारी छोटी बालिका भूखसे व्याकुल होकर रो रही है । फिर वह वहाँ उपस्थित तपस्वियोंसे पूछने लगा—'तपस्वियो ! मेरी पत्नी जल लेनेके लिये हाथमें घड़ा लेकर गङ्गाके तटपर आयी थी। क्या आपलोगोंने उसे देखा है ? उस समय सभी मनुष्य जो हरिद्वारमें आये हुए थे, वे उस तपस्वी ब्राह्मण तथा उसके घड़ेको यथापूर्व उपस्थित देख रहे थे। इसके पश्चात् दुःखसे संतप्त उस निषादने जब अपनी प्रिय भार्याको नहीं देखा तो उसकी दृष्टि वस्त्र और घड़ेपर पड़ी। अब वह अत्यन्त करुण विलाप करने लगा—'अहो ! मेरी स्त्रीके ये वस्त्र और घड़ा तो नदीके तटपर ही पड़े हैं, किंतु गङ्गामें स्नान करनेके लिये आयी हुई मेरी पत्नी नहीं दिखायी पड़ रही है । लगता है, जब वह बेचारी दुःखी अबला स्नान कर रही होगी उस समय जिह्वालोलुप किसी ग्राहने उसे पानीमें पकड़ लिया होगा । अथवा वह पिशाचों, भूतों या राक्षसोंका आहार बन गयी। प्रिये ! मैंने कभी जाग्रत् या स्वप्नमें भी तुमसे कोई अप्रिय बात नहीं कही। लगता है किसी रोगसे वह उन्मत्त-सी होकर गङ्गाके तटपर चली आयी थी। पूर्वजन्ममें मैंने कौन-सा पापकर्म किया था, जो मेरे इस महान् संकटका कारण बन गया, जिसके फलस्वरूप मेरी पत्नी मेरे देखते-ही-देखते आँखोंसे ओझल हो गयी और अब उसका कहीं कुछ पता नहीं चल रहा है। फिर वह प्रलापमें कहने लगा—'प्रिये ! तुम सदा मेरे चित्तका अनुसरण करती रही हो । सुभगे ! मेरे पास आ जाओ। देखो, ये बालक डर गये हैं, इधर-उधर भटक रहे हैं और इन्हें अनाथ-जैसे क्लेशोंका सामना करना पड़ता है। सुन्दरि ! तुम मुझे तथा इन तीन नन्हे-नन्हे बालकोंको तो देखो ! चारों कन्याएँ और सभी बच्चे बड़ा कष्ट पा रहे हैं, इनपर ध्यान दो । मेरे ये छोटे-छोटे पुत्र तुम्हें पानेके लिये लालायित हो रो रहे हैं । मुझ पापीकी इन संतानोंकी तुम रक्षा करो। मुझे भी क्षुधा सता रही है, मैं प्याससे भी अत्यन्त व्याकुल हूँ। तुम्हें इसका पता होना चाहिये ।'

(भगवान् वराह कहते हैं—) कल्याणि ! उस समय जो ब्राह्मण स्त्रीका जन्म पाकर निषादकी पत्नी बना था और जो अब मेरी उस मायासे मुक्त होकर बैठा हुआ था, निषादके इस प्रकार कहनेपर लज्जाके साथ उससे कहने लगा—'अब तुम जाओ । तुम्हारी वह भार्या यहाँ

नहीं है । वह तुम्हारा सुख और संयोग लेकर चली गयी, और अब कभी न लौटेगी ।' इधर वह निषाद जहाँ-तहाँ भटककर विलाप ही करता रहा । अब उस ब्राह्मणका हृदय करुणासे भर गया और कहने लगा—'जाओ, अब क्यों इतना कष्ट पा रहे हो । अनेक प्रकारके आहार हैं, उनसे बच्चोंकी रक्षा करना । ये बच्चे दयाके पात्र हैं । तुम कभी भी इनका परित्याग मत करना ।'

संन्यासीकी बात सुनकर उनके सामने दुःख एवं शोकसे भरे हुए निषादने उनसे मधुर वाणीमें कहा—'निश्चय ही आप प्रधान मुनिवरोंमें भी श्रेष्ठ एवं धर्मात्माओंमें भी परम धर्मात्मा पुरुष हैं । विप्रवर ! तभी तो आपके मीठे वचनोंसे मुझे सान्त्वना मिल गयी ।' उस समय निषादकी बात सुनकर श्रेष्ठ व्रतका पालन करनेवाले मुनिके मनमें भी दुःख एवं शोक छा गया । उन्होंने मधुर वचनमें कहा—'निषाद ! तुम्हारा कल्याण हो । अब विलाप करना बंद करो । मैं ही तो तुम्हारी प्रिय पत्नी बना था । वही मैं यहाँ गङ्गातटपर आया और स्नान करते हुए मैं एक मुनिके रूपमें परिवर्तित हो गया ।'

फिर तो संन्यासीकी बात सुनकर निषादकी भी चिन्ताएँ दूर हो गयीं । उसने उन श्रेष्ठ ब्राह्मणसे कहा—'विप्रवर ! आप यह क्या कह रहे हैं, आजतक कभी ऐसी घटना नहीं घटी है । अथवा ऐसी घटना तो सर्वथा असम्भव है कि कोई स्त्री होकर पुनः पुरुष हो जाय । अब दुःखके कारण ब्राह्मणके मनमें भी घबराहट उत्पन्न हो गयी । उस गङ्गाके तटपर ही ब्राह्मणने निषादसे मीठी बात कही—'धीवर ! अब यथाशीघ्र इन बालकोंको लेकर अपने देशमें चले जाइये और क्रमानुसार सभी बच्चोंपर यथायोग्य स्नेह रखकर इनकी देखभाल रखिये ।'

ब्राह्मणके इस प्रकार कहनेपर भी निषाद वहाँसे नहीं गया, उसने मीठे स्वरमें उससे पूछा—'विप्रवर ! आपके द्वारा कौन-सा पाप बन गया था, जिससे आप स्त्री बन गये थे, और अब फिर पुरुष हो गये ? यह मुझे बतानेकी कृपा करें ।

इसपर ऋषिने कहा—'मैं हरिद्वार तीर्थके तटवर्ती क्षेत्रोंमें भ्रमण करता और एक ही बार भोजन कर जगदीश्वर जनार्दनकी पूजा करता रहता था । उन प्रभुके दर्शनकी आकाङ्क्षासे मैंने बहुत-से उत्तम धर्म-कर्म किये । बहुत समय बीत जानेके पश्चात् मुझे भगवान् श्रीहरिने दर्शन दिया और मुझसे वर माँगनेको कहा । मैंने प्रार्थना की—'प्रभो ! आप भक्तोंपर कृपा करनेवाले सर्वव्यापक पुरुष हैं । आप मुझे अपनी मायाका दर्शन कराइये ।'

इसपर भगवान् विष्णुने कहा था—'ब्राह्मणदेव ! माया देखनेकी इच्छा छोड़ दो ।' किंतु मैंने बार-बार उनसे वही आग्रह किया, तब भगवान्‌ने कहा—'अच्छा, नहीं मानते हो तो 'कुब्जाम्रक' क्षेत्र (ऋषीकेश)में जाओ । वहाँ गङ्गामें स्नान करनेपर तुम्हें माया दिखलायी पड़ेगी और वे अन्तर्धान हो गये । मैं भी माया-दर्शनकी लालसासे गङ्गातटपर गया और वहाँ अपने दण्ड, कमण्डलु एवं वस्त्रको यत्नसे एक ओर रखकर स्नान करनेके लिये निर्मल जलमें पैठा । इसके बाद मैं कुछ भी न जान सका कि कहाँ क्या है और क्या हो रहा है ? तत्पश्चात् मैं किसी मल्लाहिनके उदरसे कन्याके रूपमें उत्पन्न होकर तुम्हारी पत्नी बन गया । वही मैं आज फिर किसी कारण जब गङ्गाके जलमें पैठकर स्नान करने लगा तो पहले-जैसे ही ऋषिके रूपमें परिणत हो गया हूँ । निषाद ! देखो, पहले-जैसे ही यहाँ मेरी कुण्डी और मेरे वस्त्र भी विराजमान हैं । पचास वर्षोंतक मैं तुम्हारे घरमें रह चुका हूँ, परंतु मेरे पास जो दण्ड एवं वस्त्र थे, जिन्हें गङ्गाके तटपर मैंने रखा था, अभी जीर्ण-शीर्ण

नहीं हुए हैं और न वे गङ्गाके प्रवाहोंद्वारा प्रवाहित ही हुए हैं।

ब्राह्मणके इस प्रकार कहते ही वह निषाद सहसा गायब हो गया। उसके साथ जो बालक थे, वे भी तिरोहित हो गये। देवि! यह देखकर वह ब्राह्मण भी चकित होकर पुनः तपमें संलग्न हो गया। उसने अपनी भुजाओंको ऊपर उठाकर साँसकी गति भी रोक ली और केवल वायुके आहारपर रहने लगा। इस तरह अपराह्ण हो गया। इस प्रकार कुछ समय तपस्या कर जब वह जलसे बाहर आया तो श्रद्धापूर्वक पूजाके लिये कुछ पुष्पोंको तोड़कर विधिपूर्वक भगवान्‌की पूजा करनेके लिये वीरासनसे बैठ गया। अब बहुत-से प्रधान तपस्वी ब्राह्मणोंने जो वहाँ गङ्गामें स्नान करनेके लिये आये थे, उसे घेर लिया और उससे कहने लगे—'द्विजवर! आपने आज पूर्वाह्णमें अपने दण्ड, कमण्डलु और अन्य उपकरण यहाँ रख दिये थे और स्नान कर मल्लाहोंके पास गये थे, फिर क्या आप यह स्थान भूलकर कहीं अन्यत्र चले गये थे? आपके आनेमें इतनी देर कैसे हुई?'

देवि! जब उस मुनिने ब्राह्मणोंकी बात सुनी तो वह मौन हो गया। साथ ही बैठकर वह मन-ही-मन ब्राह्मणोंद्वारा निर्दिष्ट बातपर सोचने लगा। "एक ओर तो उधर पचास वर्षका समय व्यतीत हो गया है और इधर अमावस्या भी आज ही है। ये सब ब्राह्मण मुझसे कह रहे हैं 'तुमने पूर्वाह्णमें अपने वस्त्रोंको यहाँ स्नानके लिये रखा तो अब अपराह्णमें इन्हें लेने क्यों आये हो? तुम्हें इतनी देर कैसे हो गयी,' यह सब क्या बात है?" देवि! ठीक इसी समय मैंने ब्राह्मणको पुनः अपना रूप दिखलाया और कहा—'ब्राह्मणदेव! आप कुछ घबड़ाये-से क्यों दीखते हैं? क्या आपने कुछ विशेष बात देखी है? आप कुछ मुझे व्यग्र-से दीख रहे हैं। अस्तु! जो कुछ हो, अब आप पूर्ण सावधान हो जाइये!'

मेरे इस प्रकार कहनेपर उस ब्राह्मणने अपना मस्तक भूमिपर टेक दिया और दुःखी होकर बार-बार दीर्घ श्वास लेता हुआ कहने लगा—

"जगद्गुरो! ये ब्राह्मण मुझसे कह रहे हैं कि 'तुमने पूर्वाह्णकी वेलामें वस्त्र, दण्ड और कमण्डलु आदि वस्तुएँ यहाँ रखीं और फिर अपराह्णमें यहाँ आये हो? क्या तुम इस स्थानको भूल गये थे?' माधव! इधर समस्या यह है कि निषादकी योनिमें कन्यारूपसे उत्पन्न होकर मैं एक निषादकी स्त्रीके रूपमें पचास वर्षोंतक रहा। उस शरीरसे उस कुकर्मी निषादद्वारा मेरे तीन पुत्र और चार पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। फिर एक दिन जब मैं गङ्गामें स्नान करनेके लिये यहाँ आकर तटपर अपना वस्त्र रखकर निर्मल जलमें स्नान करने लगा और डुबकी लगायी तो पुनः मुझे मुनियोंद्वारा अभिलषित तपस्वीका रूप प्राप्त हो गया। माधव! मैं तो सदा आपकी सेवामें लगा रहता था, किंतु पता नहीं, मेरे किस विकृत कर्मका ऐसा फल हो गया, जिसके परिणाम-स्वरूप मुझे निषादके यहाँ नरककी यातना भोगनी पड़ी! मैंने तो केवल माया-दर्शनका वर माँगा था, परंतु मेरे ध्यानमें और कोई पाप नहीं आता, जिसके फलस्वरूप आपने मुझे नरकमें गिरा दिया।"

वसुंधरे! उस समय वह ब्राह्मण बड़ी करुणाके साथ ग्लानि प्रकट कर रहा था। इसपर मैंने उससे कहा—"ब्राह्मणश्रेष्ठ! आप चिन्ता न करें। मैंने आपसे पहले ही कहा था कि ब्राह्मणदेवता! आप मुझसे अन्य वर माँग लें; किंतु आपने मुझसे वरके रूपमें माया-दर्शनकी ही याचना की। द्विजवर! आपने वैष्णवी माया देखनेकी इच्छा की थी, उसे ही तो देखा है। विप्रवर! दिन, अपराह्ण, पचास वर्ष और निषादके घर—तत्त्वतः ये सब कहीं कुछ भी नहीं है। यह सब केवल वैष्णवी मायाका ही प्रभाव है। आपने कोई भी अशुभ

कर्म नहीं किया है । आश्चर्यमें पड़कर आप जो पश्चात्ताप कर रहे हैं, वह सब भी मायाके अतिरिक्त कुछ नहीं है । न तुम्हारे द्वारा किया हुआ अर्चन भ्रष्ट हुआ है, न तुम्हारी तपस्या ही नष्ट हुई है । द्विजवर ! पूर्वजन्ममें तुमने कुछ ऐसे कर्म अवश्य किये थे, जिसके फलस्वरूप यह परिस्थिति तुम्हें प्राप्त हुई । हाँ ! पूर्वजन्ममें तुमने मेरे एक शुद्ध ब्राह्मण भक्तका अभिवादन नहीं किया था । यह उसीका फल है कि तुम्हें इस दुःखपूर्ण प्रारब्धका भोग भोगना पड़ा । मेरे शुद्ध भक्त मेरे ही स्वरूप हैं । ऐसे ब्राह्मणोंको जो लोग प्रणाम करते हैं, वे वस्तुतः मुझे ही प्रणाम करते हैं और वे तत्त्वतः मुझे जान जाते हैं—इसमें कोई संदेह नहीं । जो ब्राह्मण मेरे दर्शनकी अभिलाषा करते हैं, वे ब्राह्मण मेरे भक्त, शुद्धस्वरूप एवं पूज्य हैं । विशेषरूपसे कलियुगमें मैं ब्राह्मणका ही रूप धारण करके रहता हूँ, अतएव जो ब्राह्मणका भक्त है, वह निःसंदेह मेरा ही भक्त है । ब्राह्मण ! अब तुम सिद्ध हो चुके हो, अतः अपने स्थानपर पधारो । जिस समय तुम अपने प्राणोंका त्याग करोगे, उस समय तुम मेरे उत्तम स्थान—श्वेतद्वीपको प्राप्त करोगे, इसमें कोई संदेह नहीं ।"

वरारोहे ! इस प्रकार कहकर मैं वहीं अन्तर्धान हो गया और उस ब्राह्मणने फिर कठोर तपस्या आरम्भ की। अन्तमें वह 'मायातीर्थ'* में अपना शरीर त्यागकर श्वेतद्वीपमें पहुँचा, जहाँ वह धनुष, बाण, तलवार और तूणीर (तरकस) धारणकर मेरा सारूप्य प्राप्तकर मुझ मायाके आश्रयदाताका सदा दर्शन करता रहता है । अतः वसुंधरे ! तुम्हें भी इस मायासे क्या प्रयोजन ? माया देखनेकी इच्छा करना ठीक नहीं । देवता, दानव और राक्षस भी मेरी मायाका रहस्य नहीं जानते ।

वसुंधरे ! यह 'माया-चक्र' नामक मायाकी आश्चर्यमयी कथा मैंने तुम्हें सुनायी । यह आख्यान पुण्योंसे युक्त तथा सुखप्रद है । जो पुरुष भक्तोंके सामने इसकी व्याख्या करता है और भक्तिहीनों तथा शास्त्रोंमें दोषदृष्टि रखनेवालोंसे नहीं कहता, उसकी जगत्‌में प्रतिष्ठा होती है । देवि ! जो व्रती पुरुष इसका प्रातःकाल उठकर पाठ करता है, उसने मानो बारह वर्षोंतक तपपूर्वक मेरे सामने इसका पाठ किया । वसुंधरे ! इस महान् आख्यानको जो सदा श्रवण करता है, उसकी बुद्धि कभी मायासे लिप्त नहीं होती और न उसे निकृष्ट योनियोंमें ही जाना पड़ता है ।

(अध्याय १२५)

कुब्जाम्रकतीर्थ (हृषीकेश)का माहात्म्य, रैभ्यमुनिपर भगवत्कृपा

इस प्रकार मायाके पराक्रमकी बातको सुनकर पृथ्वीने भगवान्‌से फिर पूछा ।

पृथ्वी बोली—'भगवन् ! आपने जिस 'कुब्जाम्रक'-तीर्थकी चर्चा की, उसमें रहने तथा स्नानादि करनेसे जो पुण्य होता है, आप अब उसे मुझे बतानेकी कृपा कीजिये ।

भगवान् वराह बोले—पृथ्वीदेवि ! 'कुब्जाम्रक' तीर्थका जो सार-तत्त्व है, अब उसे मैं तुम्हें विस्तारसे बतला रहा हूँ । सुन्दरि ! 'कुब्जाम्रक' तीर्थकी जैसे उत्पत्ति हुई, जिस क्रमसे यह 'तीर्थ' बना, वहाँ जो अनुष्ठेय धर्म है तथा वहाँ प्राणत्याग करनेपर जिस लोककी प्राप्ति होती है, यह सब तुम ध्यान देकर सुनो । वसुंधरे ! आदि

* यह 'मायातीर्थ' या 'मायापुरी'—'हरिद्वार'का ही नामान्तर है ।

सत्ययुगमें जब पृथ्वी जलमग्न थी, तब ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे मैंने मधु और कैटभ नामक राक्षसोंका वध किया और ब्रह्मदेवकी रक्षा की। उसी समय मेरी दृष्टि अपने आश्रित भक्त रैभ्यमुनिपर पड़ी। वे अत्यन्त निष्ठासे सदा मेरी स्तुति-आराधनामें निरत रहते थे। वे युक्तिमान्, गुणी, परमपवित्र, कार्यकुशल और जितेन्द्रिय पुरुष थे और ऊपर बाँहें उठाकर दस हजार वर्षोंतक तपस्यामें संलग्न रहे। वे एक हजार वर्षोंतक केवल जल पीकर तथा पाँच सौ वर्षोंतक शैवाल खाकर तपस्या करते रहे। देवि! महात्मा रैभ्यकी इस तपस्यासे मेरा हृदय करुणासे अत्यन्त विह्वल हो उठा। उस समय हरिद्वारके कुछ उत्तर पहुँचकर मैंने एक आम्रके वृक्षका आश्रय लिया और उन मुनिको तपस्या करते देखा। मेरे आश्रय लेनेसे वह आम्र-वृक्ष थोड़ा कुबड़ा हो गया। मनस्विनि! इस प्रकार वह स्थान 'कुब्जाम्रक' नामसे प्रसिद्ध हो गया। यहाँपर (स्वतः) मरनेवाला व्यक्ति भी मेरे लोकमें ही जाता है।

मैंने रैभ्य मुनिको कुबड़े आम्रवृक्षका रूप धारण कर दर्शन दिया था, फिर भी वे मुझे पहचान गये और घुटनोंके बल भूमिपर गिरकर मेरी स्तुति की। वसुंधरे! अपने व्रतमें अडिग रहनेवाले उन मुनिको इस प्रकार अपनी स्तुति तथा प्रणाम करते देखकर मैंने प्रसन्न मनसे उन्हें वर माँगनेके लिये कहा। मेरी बात सुनकर उन तपस्वीने मीठी वाणीमें कहा—'भगवन्! आप जगत्‌के स्वामी हैं और याचना करनेवालोंकी आशा पूर्ण करते हैं। भगवन्! मधुसूदन!! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं यह चाहता हूँ कि जबतक यह संसार रहे तथा अन्य लोक रहें, तबतक आपका यहाँ निवास हो। और जनार्दन! जबतक आप यहाँ स्थित रहें, तबतक आपमें मेरी निष्ठा बनी रहे। प्रभो! यदि आप मुझपर संतुष्ट हैं तो मेरा यह मनोरथ पूर्ण करनेकी कृपा कीजिये।'

वसुंधरे! उस समय ऋषिवर रैभ्यकी बात सुनकर पुनः मैंने कहा—'ब्रह्मर्षे! बहुत ठीक। ऐसा ही होगा।' फिर उन ब्राह्मणने बड़े हर्षके साथ मुझसे कहा—'प्रभो! आप इस प्रधान तीर्थकी महिमा भी बतलानेकी कृपा करें और मैं उसे सुनूँ। यही नहीं, इस क्षेत्रमें अन्य भी जितने क्षेत्र हैं, उनका भी आप माहात्म्य बतलायें।' देवि! तब मैंने कहा—'ब्रह्मन्! तुम मुझसे जो पूछ रहे हो, वह विषय तत्त्वपूर्वक सुनो। मेरा 'कुब्जाम्रक'तीर्थ परम पवित्र स्थान है। इसका सेवन करनेसे सभी सुख सुलभ हो जाते हैं। यह 'कुब्जाम्रक' तीर्थ कुमुदपुष्पकी आकृतिमें स्थित है। यहाँ केवल स्नान करनेसे मानव स्वर्ग प्राप्त कर लेता है। कार्तिक, अगहन एवं वैशाख मासके शुभ अवसरपर जो पुरुष यहाँ दुष्कर धर्मोंका अनुष्ठान करता है, वह स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक ही क्यों न हो—अपने प्राणोंका त्याग कर मेरे लोकको प्राप्त होता है।'

वसुंधरे! 'कुब्जाम्रक'तीर्थमें जो दूसरा तीर्थ है, उसे भी बतलाता हूँ, सुनो। सुन्दरि! यहाँ 'मानस' नामसे मेरा एक प्रसिद्ध तीर्थ है। सुनयने! वहाँ स्नान कर मनुष्य इन्द्रके नन्दनवनमें जाता है और अप्सराओंके साथ देवताओंके वर्षसे एक हजार वर्षोंतक वह आनन्दका उपभोग करता रहता है।

वसुंधरे! अब यहाँके एक दूसरे तीर्थका वर्णन करता हूँ सुनो—वह स्थान 'मायातीर्थ'के नामसे विख्यात है, जिसके प्रभावसे मायाकी जानकारी प्राप्त हो जाती है। उस तीर्थमें स्नान करनेवाला पुरुष दस हजार वर्षोंतक मेरी भक्तिमें रत रहता है। यशस्विनि! 'मायातीर्थ'में जो प्राण छोड़ता है, महान् योगियोंके समान वह मेरे लोकको प्राप्त होता है।

देवी पृथ्वि! अब यहाँका एक दूसरा तीर्थ बतलाता हूँ—उस तीर्थका नाम 'सर्वकामिक' है। वैशाख मासकी

द्वादशी तिथिके दिन जो कोई वहाँ स्नान करता है, वह पंद्रह हजार वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है। यदि इस 'सर्वकामिक'तीर्थमें वह प्राण त्याग करता है तो सभी आसक्तियोंसे मुक्त होकर मेरे लोकको प्राप्त होता है।

सुलोचने ! अब एक 'पूर्णमुख' नामक तीर्थकी महिमा बतलाता हूँ, जिसे कोई नहीं जानता। गङ्गाका जल इधर प्रायः सर्वत्र शीतल रहता है, किंतु यहाँ जिस स्थानपर गङ्गामें गर्म जल मिले, उसे ही 'पूर्णतीर्थ' समझना चाहिये। देवि ! वहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य चन्द्रलोकमें प्रतिष्ठा पाता है और पंद्रह हजार वर्षोंतक उसे चन्द्र-दर्शनका आनन्द मिलता है। फिर जब वह स्वर्गसे नीचे गिरता है तो ब्राह्मणके घर उत्पन्न होता है और मेरा पवित्र भक्त, कार्य-कुशल और सम्पूर्ण धर्म एवं गुणोंसे सम्पन्न होता है और अगहन महीनेके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिके दिन प्राण त्यागकर वह मेरे लोकमें पहुँचता है, जहाँ वह सदा मुझे चतुर्भुजरूपमें प्रकाशित देखता है तथा पुनः कभी जन्म और मृत्युके चक्करमें नहीं पड़ता।

वसुंधरे ! मैं अब पुनः एक दूसरे तीर्थका वर्णन करता हूँ। यहाँ वैशाख मासके शुक्लपक्षकी द्वादशीके दिन तप तथा धर्मके अनुष्ठानके पश्चात् अपने शरीरका त्याग करनेवाला पुरुष मेरे लोकको प्राप्त करता है, जहाँ जन्म-मृत्यु, ग्लानि, आसक्ति, भय तथा अज्ञानजनित अभिनिवेशादिसे उसे किसी प्रकारका क्लेश नहीं होता। अब मैं (ऋषिकेश)में ही स्थित एक दूसरे तीर्थकी बात बतलाता हूँ। वह 'करवीर' नामसे प्रसिद्ध है एवं सम्पूर्ण लोकोंको सुखी करनेवाला है। शुभे ! अब उसका चिह्न भी बतलाता हूँ, जिसकी सहायतासे ज्ञानी पुरुष इसे पहचान सकें। सुन्दरि ! माघ मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिके दिन मध्याह्न कालके समय इस 'करवीर'तीर्थमें कनेरके फूल खिल जाते हैं—यह निश्चय है। उस तीर्थमें स्नान करनेवाला मनुष्य स्वतन्त्रतापूर्वक सर्वत्र अव्याहत-गमन करनेमें पूर्णसमर्थ हो जाता है। यदि माघ मासकी द्वादशी तिथिके दिन उस क्षेत्रमें किसीकी मृत्यु हो जाती है तो उसे ब्रह्मा, रुद्र और मेरे दर्शनका सौभाग्य प्राप्त होता है। वसुंधरे ! अब एक दूसरे तीर्थका प्रसङ्ग सुनो। भद्रे ! उस 'कुब्जाम्रकक्षेत्र'का यह स्थान मुझे बहुत प्रिय है। उस स्थानका नाम 'पुण्डरीकतीर्थ' है, जो महान् फल देनेकी शक्तिवाला है। सुमुखि ! उस तीर्थका विशेष चिह्न बतलाता हूँ, सुनो—'सुन्दरि ! द्वादशी तिथिके दिन मध्याह्नकालमें वहाँ रथके चक्केकी आकृतिवाला एक कछुआ विचरण करता है।' वसुमति ! अब तुमसे इसके विषयमें एक दूसरी बात बताता हूँ, उसे सुनो—'सुन्दरि ! वहाँ अवगाहन करनेपर 'पुण्डरीक-यज्ञ'के अनुष्ठानका फल मिलता है। यदि वहाँ किसीकी मृत्यु होती है तो उसे दस 'पुण्डरीक'यज्ञोंके अनुष्ठानका फल प्राप्त होता है।'

अब मैं 'कुब्जाम्रक' (ऋषिकेश)में स्थित एक दूसरे—'अग्नितीर्थ'की बात बतलाता हूँ, उसे सुनो—'देवि ! द्वादशी तिथिके दिन पुण्यात्मा लोगोंको ही इस तीर्थकी स्थिति ज्ञात होती है। कार्तिक, अगहन, आषाढ़ एवं वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीके दिन जो पुरुष उस तीर्थमें यत्नपूर्वक निवास करता है, वह उस तीर्थका रहस्य जान सकता है।' वसुंधरे ! उस तीर्थका चिह्न यह है कि हेमन्त ऋतुमें तो वहाँका जल उष्ण रहता है, पर ग्रीष्म ऋतुमें वह शीतल हो जाता है। महाभागे ! इसी विचित्रताके कारण इस स्थानका नाम 'अग्नितीर्थ' पड़ गया है।

देवि ! अब एक दूसरे तीर्थका परिचय देता हूँ, उसका नाम 'वायव्य-तीर्थ' है। उस तीर्थमें जो स्नान करके तर्पण आदि कार्य करता है, उसे वाजपेय

यज्ञका फल प्राप्त होता है। वह वायव्यतीर्थ एक 'सरोवर'के रूपमें है। वहाँ केवल पंद्रह दिनोंतक रहकर मेरी उपासना करते हुए जिसकी मृत्यु हो जाती है, उसका इस पृथ्वीपर पुनः जन्म या मरण नहीं होता। वह चार भुजाओंसे युक्त होकर मेरा सारूप्य प्राप्तकर मेरे लोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। उस 'वायव्य'तीर्थकी पहचान यह है कि वहाँ वनमें पीपलके वृक्ष हैं, जिनके पत्ते चौबीसों द्वादशियोंको निरन्तर हिलते ही रहते हैं।

पृथ्वि ! अब 'कुब्जाम्रक'तीर्थके अन्तर्वर्ती 'शक्रतीर्थ'का परिचय देता हूँ। वसुंधरे ! वहाँ इन्द्र हाथमें वज्र लिये हुए सुशोभित रहते हैं। महातपे ! उस तीर्थमें दस रात्रि उपवास रहकर जो मनुष्य मर जाता है, वह मेरे लोकको प्राप्त कर लेता है। इस शक्रतीर्थके दक्षिण भागमें पाँच वृक्ष खड़े हैं, यही उसकी पहचान है। देवि ! वरुणदेवने बारह हजार वर्षोंतक इस 'कुब्जाम्रक'-तीर्थमें तपस्या की थी। अतः यहाँ स्नान करनेसे व्यक्ति आठ हजार वर्षोंतक वरुणलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। वहाँ ऊपरसे पानीकी एक धारा निरन्तर गिरती रहती है, यही उस तीर्थकी पहचान है।

पृथ्वि ! उक्त 'कुब्जाम्रक'-तीर्थ (ऋषिकेश)में 'सप्तसामुद्रक' नामका भी एक श्रेष्ठ स्थान है। उस तीर्थमें स्नान करनेवाला धर्मात्मा मनुष्य तीन अश्वमेध-यज्ञोंका फल पा लेता है। यदि आसक्तिरहित होकर कोई प्राणी सात रातोंतक यहाँ निवास कर प्राणत्याग करता है तो वह मेरे लोकमें चला जाता है। सुन्दरि ! अब उस 'सप्तसामुद्रक' तीर्थका लक्षण बताता हूँ, सुनो—'वैशाख मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिके दिन वहाँ एक विशेष चमत्कार दीखता है। उस दिन उस तीर्थमें गङ्गाका जल कभी तो दूधके समान उज्ज्वल वर्णका दीखता है और कभी पुनः उसी जलमें पीले रंग-की आभा प्रकट हो जाती है। फिर वही कभी लाल रंगमें परिणत हो जाता है और फिर थोड़ी देर बाद ही उसमें मरकतमणि तथा मोतीके समान झलक आने लगती है। आत्मज्ञानी पुरुष इन्हीं चिह्नोंसे उस तीर्थका ज्ञान प्राप्त करते हैं।'

शुभाङ्गि ! कुब्जाम्रक तीर्थके मध्यवर्ती एक अन्य महान् तीर्थका अब तुम्हें परिचय देता हूँ। भगवान्‌में भक्ति रखनेवाले समस्त पुरुषोंके प्रिय उस तीर्थका नाम 'मानसर' है। उसमें स्नान करनेपर मानवको मानसरोवरमें जानेका सौभाग्य प्राप्त होता है। वहाँ इन्द्र, रुद्र एवं मरुद्गण आदि सम्पूर्ण देवताओंका उसे दर्शन मिलता है। वसुंधरे ! इस तीर्थमें यदि कोई मनुष्य तीस रात्रियोंतक निवासकर मृत्युको प्राप्त होता है तो वह सम्पूर्ण सङ्गोंसे मुक्त होकर मेरे लोकको प्राप्त करता है। अब 'मानसर-' तीर्थका स्वरूप बतलाता हूँ, जिससे मनुष्योंको उसकी पहचान हो जाय—जानकारी प्राप्त हो सके। वह तीर्थ पचास कोसके विस्तारमें है।

अब तुम्हें एक दूसरी बात बताता हूँ, उसे सुनो। इस 'कुब्जाम्रक-तीर्थ'में बहुत पहले एक महान् अद्भुत घटना घट चुकी है। उसका प्रसङ्ग यह है—जहाँ मेरे भोगकी सामग्री रखी पड़ी रहती थी, वहीं एक सर्पिणी निर्भय होकर निवास करती थी। वह अपनी इच्छासे चन्दन, माला आदि पूजनकी वस्तुओंको खाया करती। इतनेमें ही एक दिन वहाँ कोई नेवला आ गया और उसने स्वच्छन्दतासे आनन्द करनेवाली उस सर्पिणीको देख लिया। अब उस नेवले और सर्पिणीमें भयंकर युद्ध छिड़ गया। उस दिन माघ मासकी द्वादशी तिथि थी और दोपहरका समय था। यह संघर्ष मेरे उस मन्दिरमें ही पर्याप्त समयतक चलता रहा। अन्तमें सर्पिणीने नेवलेको डस लिया, साथ ही विषदिग्ध नेवलेने भी उस सर्पिणीको तुरंत मार गिराया। इस प्रकार वे दोनों आपसमें लड़कर मर गये। अब वह नागिन प्राग्ज्योतिषपुर (आसाम)के राजाके यहाँ

एक राजकुमारीके रूपमें उत्पन्न हुई। इधर उसी समय कोसलदेशमें उस नेवलेका भी एक राजाके यहाँ जन्म हुआ। देवि ! वह राजकुमार रूपवान्, गुणवान् और सम्पूर्ण शास्त्रोंका ज्ञाता तथा सभी कलाओंसे युक्त था। दोनों अपने-अपने घर सुखपूर्वक रहते हुए इस प्रकार बढ़ने लगे, जैसे शुक्लपक्षका चन्द्रमा प्रतिरात्रि बढ़ता दीखता है। पर वह कन्या यदि कहीं किसी नेवलेको देख लेती तो तुरंत उसे मारनेके लिये दौड़ पड़ती। इसी प्रकार इधर राजकुमार भी जब किसी नागिन या साँपिनको देखता तो उसे मारनेके लिये तुरंत उद्यत हो जाता। कुछ दिन बाद मेरी कृपासे कोसल देशके राजकुमारने ही उस कन्याका पाणिग्रहण किया और इसके बाद वे दोनों लाक्षा एवं काष्ठकी तरह एक साथ रहने लगे। जान पड़ता था, मानो इन्द्र और शची नन्दनवनमें विहार कर रहे हों।

वसुंधरे ! इस प्रकार उस राजकुमार एवं राजकुमारीके परस्पर प्रेमपूर्वक रहते हुए पर्याप्त समय व्यतीत हो गये। वे दोनों उपवनमें एक साथ आनन्दपूर्वक इस प्रकार विहार करते, मानो समुद्र और उसकी वेला (तटी)। इस प्रकार पूरे सतहत्तर वर्ष व्यतीत हो गये। मेरी मायासे मोहित होनेके कारण वे दोनों एक दूसरेको पहचान भी न सके। एक समयकी बात है, वे दोनों ही उपवनमें घूम रहे थे कि राजकुमारकी दृष्टि एक सर्पिणीपर पड़ी और वह उसे मारनेके लिये तैयार हो गया। राजकुमारीके मना करते रहनेपर भी वह अपने विचारोंसे विचलित न हुआ और उसने उस सर्पिणीको मार ही डाला। अब राजकुमारीके मनमें प्रतिक्रियास्वरूप भीषण रोष उत्पन्न हो गया। किंतु वह कुछ बोल न पायी। इधर उसी समय राजपुत्रीके सामने बिलसे एक नेवला निकला और भोजनके लिये किसी सर्पकी खोजमें इधर-उधर घूमने लगा। राजकुमारीने उसे देख लिया। यद्यपि नेवलेका दर्शन शुभ-सूचक है और वह नेवला केवल इधर-उधर घूम रहा था, फिर भी क्रोधके वशीभूत होकर राजकुमारी उसे मारने लगी। राजकुमारने उसे बहुत रोका, किंतु प्राग्ज्योतिष्नरेशकी उस पुत्रीने शुभ दर्शन नेवलेको मार ही डाला।

वसुंधरे! अब राजकुमारको बड़ा क्रोध हुआ, उसने राजकुमारीसे कहा—'देवि ! स्त्रियोंके लिये पति सदा आदरका पात्र होता है और मैं तुम्हारा पति हूँ, किंतु तुमने मेरी बातको निष्ठुरतापूर्वक ठुकरा दिया। यह नेवला मङ्गलमय, शुभदर्शन प्राणी है और विशेषकर राजाओंकी यह प्रिय वस्तु है, इसका दर्शन शुभकी सूचना देता है। कहो तुमने इस मङ्गलस्वरूप नेवलेको मेरे मना करनेपर भी क्यों मार डाला ?'

वसुंधरे ! इसपर प्राग्ज्योतिष्नरेशकी वह कन्या कोसलनरेशके पुत्रसे रोष भरकर कहने लगी कि मेरे बार-बार रोकनेपर भी आपने उस सर्पिणीको मार डाला, अतएव मैंने भी सर्पोंके मारनेवाले इस नेवलेको मार डाला। वसुंधरे ! राजकुमारीकी इस बातको सुनकर कठोर शब्दोंमें डाँटते हुए राजकुमारने उससे कहा—भद्रे ! साँपके दाँत बड़े तीक्ष्ण तथा उसका विष बड़ा तीव्र होता है। उसे देखते ही लोग डर जाते हैं। यह दुष्ट प्राणी मनुष्य आदिको डस लेता है और उससे वे मर जाते हैं। अतः सबका अहित करनेवाले एवं विषसे भरे हुए इस जीवको मैंने मारा है। इधर प्रजाकी रक्षा करना राजाओंका धर्म है। जो बुरे मार्गपर चलते हैं, उनकी उचित तथा कठोर दण्डोंद्वारा ताड़ना करना हमारा कर्तव्य है। जो निरपराध साधुओं एवं स्त्रियोंको भी क्लेश पहुँचाते हैं, वे भी यथार्थ-राजधर्मके अनुसार दण्डके पात्र हैं और वधके योग्य हैं। मुझे तो राजधर्मोंका पालन करना ही चाहिये, पर मुझे तुम यह तो बताओ कि इस नेवलेका क्या अपराध था ? यह

दर्शनीय एवं सुन्दर रूपवाला था। यह राजाओंके घरमें पालने योग्य तथा शुभदर्शन और पवित्र माना जाता है, फिर भी तुमने इसे मार डाला। तुमने मेरे बार-बार मना करनेपर भी इस नेवलेको मारा है, अतएव अबसे तुम मेरी पत्नी नहीं रही और न अब मैं ही तुम्हारा पति रह गया। अधिक क्या? स्त्रियाँ सदा अवध्य बतलायी गयी हैं, इसी कारण मैं तुम्हें छोड़ देता हूँ और तुम्हारा वध नहीं करता।

देवि ! राजकुमारीसे इस प्रकार कहकर राजकुमार अपने नगर लौट गया। क्रोधके कारण उन दोनोंका परस्परका सारा स्नेह नष्ट हो गया। धीरे-धीरे मन्त्रियों-द्वारा यह बात कोसलनरेशको विदित हुई तो उन्होंने उन मन्त्रियोंके सामने ही द्वारपालोंको आज्ञा देकर राजकुमार और वधूको आदरपूर्वक बुलवाया। पुत्र और पुत्रवधूको अपने पास उपस्थित देखकर राजाने कहा—"पुत्र ! तुमलोगोंमें जो परस्पर अकृत्रिम और अपूर्व स्नेह था, वह सहसा कहाँ चला गया? तुम लोग परस्पर अब सर्वथा विरुद्ध कैसे हो गये? पुत्र ! यह राजकुमारी कार्यकुशल, सुन्दर स्वभाववाली एवं धर्मनिष्ठ है। आजसे पहले इसने हमारे परिवारमें भी कभी किसीको अप्रिय वचन नहीं कहा है, अतः तुम्हें इसका परित्याग कदापि नहीं करना चाहिये। तुम राजा हो, तुम्हारा राजधर्म ही मुख्य धर्म है, और उसका पालन स्त्रीके सहारे ही हो सकता है। अहो ! लोगोंका यह कथन परम सत्य ही है कि 'स्त्रियोंके द्वारा ही पुत्र एवं कुलका संरक्षण होता है।"

पृथ्वि ! उस समय राजपुत्रने पिताकी बात आदरपूर्वक सुन ली, और उनके दोनों चरणोंको पकड़कर वह कहने लगा—"पिताजी, आपकी पुत्रवधूमें कहीं कोई भी दोष नहीं है, किंतु इसने बार-बार रोकनेपर भी मेरे देखते-ही-देखते एक नेवलेको मार डाला। उसे सामने मरा पड़ा देखकर मुझे क्रोध आ गया और मैंने कह दिया कि 'अब न तो तुम मेरी पत्नी हो और न मैं तुम्हारा पति।' महाराज ! बस इतना ही कारण है, और कुछ नहीं।" पृथ्वि ! इस प्रकार अपने पतिकी बात सुनकर प्राग्जोतिषपुर-की उस कन्याने भी अपने श्वसुरको शिर झुकाकर प्रणाम किया और कहने लगी—'इन्होंने एक सर्पिणीको जिसका कोई भी अपराध न था तथा जो अत्यन्त भयभीत थी, मेरे सैकड़ों बार मना करनेपर भी उसे मार डाला। सर्पिणीकी मृत्यु देखकर मेरे मनमें बड़ा क्षोभ और दुःख हुआ, पर मैंने इनसे कुछ भी नहीं कहा। बस यही इतनी-सी ही बात है।"

वसुंधरे ! उन कोसलदेशके राजाने अपने पुत्र और पुत्रवधूकी बात सुनकर सभाके बीचमें ही उन दोनोंसे बड़ी मधुर वाणीमें कहना आरम्भ किया। वे बोले—'पुत्रि ! इस राजकुमारने तो सर्पिणीको मारा और तुमने नेवलेको, फिर इस बातको लेकर तुमलोग आपसमें क्यों क्रोध कर रहे हो? यह तो बतलाओ। पुत्र, नेवलेके मर जानेपर तुम्हें क्रोध करनेका क्या कारण है? अथवा राजकुमारी, यदि सर्पिणी मर गयी तो इसमें तुम्हारे क्रोधका क्या कारण है?'

उस समय कोसलनरेशको आनन्द देनेवाले उस यशस्वी राजकुमारने पिताकी बात सुनकर मधुर स्वरमें कहा—'महाराज ! इस प्रश्नसे आपका क्या प्रयोजन है? आप इसे न पूछें। आपको जो कुछ पूछना हो, वह इस राजकुमारीसे ही पूछिये।' पुत्रकी बात सुनकर कोसलनरेशने कहा—'पुत्र ! बताओ। तुम दोनोंके बीच स्नेहविच्छेदका क्या कारण है? पुत्रोंमें जो योग्य होनेपर भी अपने पिताके पूछनेपर गोपनीय बात छिपा लेते हैं, वे अधम ही हैं, उन्हें तप्त-

बालुकामय घोर रौरव नरकमें गिरना पड़ता है। किंतु जो शुभ अथवा अशुभ सभी बातोंको पिताके पूछनेपर बता देते हैं—ऐसे पुत्रोंको वह दिव्य गति मिलती है, जिसे सत्यवादी लोग पाते हैं। अतएव पुत्र ! तुम्हें मुझसे वह बात अवश्य बतलानी चाहिये, जिसके कारण गुणशालिनी पत्नीके प्रति तुम्हारी प्रीति समाप्त हो गयी है।

पिताकी यह बात सुनकर कोसलवासियोंके आनन्दको बढ़ानेवाले उस राजकुमारने जनसमाजमें स्नेह-सनी वाणीसे कहा—'पिताजी ! यह सारा समाज यथायोग्य अपने-अपने स्थानपर पधारे, कल प्रातःकाल जो आवश्यक बात होगी, मैं आपसे निवेदन करूँगा।' रात्रिके समाप्त होनेपर प्रातःकाल दुन्दुभियोंके शब्दोंसे तथा सूत, मागध एवं वन्दीजनोंकी वन्दनाओंसे कोसल-नरेश जगाये गये। इतनेमें ही कमलके समान आँखोंवाला वह महान् यशस्वी राजकुमार भी स्नान कर मङ्गलद्रव्योंसहित राजद्वारपर उपस्थित हुआ। द्वारपालने राजाके पास पहुँचकर इसकी सूचना दी और कहा—'महाराज ! आपके दर्शनकी लालसासे राजकुमार दरवाजेपर उपस्थित हैं।' उसकी बात सुनकर कोसलनरेश बोले—'कञ्चुकिन् ! मेरे साधुवादी पुत्रको यहाँ शीघ्र लाओ।'

नरेशके ऐसा कहनेपर उनकी आज्ञाके अनुसार द्वारपालने राजकुमारका वहाँ प्रवेश करा दिया। विनीत एवं शुद्धहृदय राजकुमारने पिताके महलमें जाकर उनके चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम किया। पिताने भी आनन्द-पूर्वक राजकुमारको 'जयजीव' कहकर दीर्घजीवी होनेका आशीर्वाद दिया और उन्होंने हँसकर अपने पुत्र राजकुमारसे कहा—'शुभोदय ! मैंने पहले तुमसे जो पूछा था, वह बात बताओ।' तब राजकुमारने अपने पितासे कहा—'महाराज ! इसके बतलानेसे किसी अच्छे फलकी सम्भावना नहीं है, राजेन्द्र ! यदि आप इसे सुननेके लिये उत्सुक ही हैं तो मेरे साथ 'कुब्जाम्रक'तीर्थमें चलनेकी कृपा करें। मैं इसे वहाँ चलकर आपको बतला दूँगा।'

सुनयने ! उस समय राजाने पुत्रकी बात सुनकर उससे प्रेमपूर्वक कहा—'बेटा ! बहुत ठीक।' फिर जब राजकुमार वहाँसे चला गया तो राजाने अपने उपस्थित मन्त्रिमण्डलसे मीठे स्वरमें कहा—'मन्त्रियो ! आपलोग मेरी निश्चित की हुई एक बात सुनें, इस समय हम 'कुब्जाम्रक'तीर्थमें जाना चाहते हैं, इसकी आपलोग शीघ्र व्यवस्था कर दें। शीघ्रातिशीघ्र हाथी, घोड़े, रथ आदि जुतवाये जायँ।' उस समय राजाकी बात सुननेके पश्चात् मन्त्रियोंने उत्तर दिया—'महाराज ! आप इन सबोंको तैयार ही समझें।'

इसके बाद बड़े पुत्रकी अनुमतिसे राजाने अपने छोटे पुत्रको राज्यपर अभिषिक्त कर दिया और राजधानीसे चलकर सम्पूर्ण द्रव्यों तथा अन्तःपुरकी स्त्रियोंके साथ वे लोग बहुत दिनोंके बाद 'कुब्जाम्रक' नामक तीर्थमें पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने उस तीर्थके नियमोंका पालन करते हुए अन्न-वस्त्र, सुवर्ण-गौ, हाथी-घोड़े और पृथ्वी आदि बहुत-से दान किये। इस प्रकार बहुत दिन व्यतीत हो जानेपर एक दिन राजाने राजकुमारसे पूछा—'वत्स ! अब वह गोपनीय बात बताओ। तुमने कुल, शील और गुणोंसे सम्पन्न मेरी इस निर्दोष सुन्दरी पुत्रवधूका क्यों परित्याग कर दिया है ?' इसपर राजकुमारने कहा—'इस समय आप शयन करें, प्रातःकाल यह सब बातें मैं आपको बतला दूँगा।'

रात बीत जानेके बाद प्रातःकाल सूर्योदय होनेपर राजकुमारने गङ्गामें स्नानकर रेशमी वस्त्र धारण करके विधिपूर्वक मेरी पूजा की। तत्पश्चात् उस गुरुवत्सल राजकुमारने पिताकी प्रदक्षिणा कर यह वचन कहा—'पिताजी ! आइये, हमलोग वहाँ चलें, जहाँकी आप गोपनीय बातें पूछ रहे हैं। इसके बाद राजा,

राजकुमार और कमलके समान नेत्रोंवाली वह राजकुमारी—सभी उस निर्माल्यकूटके पास पहुँचे, जहाँ वह पुरानी घटना घटी थी। राजपुत्र उस स्थानपर पहुँचकर अपने पिताके दोनों चरणोंको पकड़कर कहने लगा—'महाराज! पूर्व जन्ममें मैं एक नेवला था और यहींसे थोड़ी ही दूरपर एक केलेके वृक्षके नीचे मेरा निवास था। एक दिन कालके चंगुलमें फँसकर मैं इस 'निर्माल्य-कूट'पर चला आया, जहाँ सुगन्धित द्रव्यों और विविध पुष्पोंको खाती हुई एक भयंकर विषवाली सर्पिणी विचर रही थी। उसे देखकर मुझे क्रोध आया और फिर सहसा मैंने उसपर आक्रमण कर दिया। महाराज! इस प्रकार उसके साथ मेरा भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया। उस दिन माघमासकी द्वादशी तिथि थी। किसीने भी हमलोगोंको नहीं देखा। उस समय यद्यपि मैं युद्ध करते हुए अपने शरीरकी रक्षापर भी ध्यान रखता था; फिर भी उस सर्पिणीने मेरी नाकके छिद्रमें डँस लिया। इस प्रकार विषदिग्ध होनेपर भी मैंने उस सर्पिणीको मार ही डाला। अन्ततः हम दोनोंकी मृत्यु हो गयी। इसके बाद मैं आप (कोसलदेश राजा)के घरमें एक राजपुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ। राजन्! यही कारण है कि क्रोधवश मैंने उस सर्पिणीको मार डाला था।'

राजकुमारकी बात समाप्त होते ही राजकुमारी भी कहने लगी—'महाराज! मैं ही पूर्वजन्ममें इस 'निर्माल्यकूट'-क्षेत्रमें रहनेवाली वह सर्पिणी थी। उस लड़ाईमें मरकर मैं प्राग्जोतिष्नरेशके यहाँ कन्याके रूपमें उत्पन्न होकर आपकी पुत्रवधू हुई। राजन्! मेरी मृत्युके कारण-भूत प्राक्तन तमोमय संस्कारोंकी स्मृति मेरे जीवात्मापर बनी थी, अतः मैंने भी उस नेवलेको मार डाला। प्रभो! यही वह गोपनीय रहस्य है।'

वसुंधरे! इस प्रकार पुत्रवधू और पुत्रकी बात सुनकर राजा सर्वथा निर्विण्ण हो गये और वे वहाँसे पुनः 'माया-तीर्थ'-में चले गये और वहीं उनके जीवनका अन्त हुआ। उस राजकुमारी तथा राजकुमारने भी 'पुण्डरीक-तीर्थ'में पहुँचकर मनका निग्रहकर प्राणोंका त्याग किया और वे उस श्रेष्ठ स्थानपर पहुँच गये, जहाँ भगवान् जनार्दन सदा विराजमान रहते हैं। इस प्रकार राजा, राजकुमार और यशस्विनी राजकुमारी कठिन तपके द्वारा कर्मबन्धनको विच्छिन्न कर श्वेतद्वीपमें पहुँचे और उनका सारा परिवार भी महान् पुण्यके द्वारा परम सिद्धिको प्राप्तकर श्वेतद्वीप पहुँच गया।

देवि! यह मैंने तुमसे 'कुब्जाम्रक'-तीर्थकी महिमा बतलायी। इसका वर्णन मैंने उन ब्राह्मण-श्रेष्ठ रैभ्यसे भी किया था। यह बहुत पवित्र प्रसङ्ग है। चारों वर्णों-का कर्तव्य है कि वे इसका पठन एवं चिन्तन करें। इसे मूर्ख, गोहत्या करनेवाले, वेद-वेदाङ्गके निन्दक, गुरुसे द्वेष करनेवाले और शास्त्रोंमें दोष देखनेवाले व्यक्तिके सामने कभी नहीं कहना चाहिये। इसे भगवान्‌के भक्तों तथा वैष्णव-दीक्षा-सम्पन्न पुरुषोंके सामने ही कहना चाहिये। पृथ्वि! जो प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करता है, वह अपने कुलके आगे-पीछेकी दस-दस पीढ़ियोंको तार देता है। देवि! अपने भक्तोंकी सुख-प्राप्तिके लिये मैंने 'कुब्जाम्रक-तीर्थ'के अन्तर्वर्ती स्थानोंका वर्णन किया, अब तुम दूसरी कौन-सी बात पूछना चाहती हो, वह कहो। (अध्याय १२६)

'दीक्षासूत्र'का* वर्णन

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार अनेक धर्मोंको सुनकर बहुतोंकी मुक्ति सुलभ हो जाय, इस उद्देश्य-से पृथ्वीने भगवान् जनार्दनसे पूछा—भगवन्! 'माया तीर्थ'की महिमा बड़ी अद्भुत है। इसके माहात्म्य-श्रवणसे

* दीक्षाका परम श्रेष्ठ वर्णन 'कुलार्णवतन्त्र' उल्लास १४, 'शारदातिलक' पटल ४-५, 'शिवपुराण'वायवीयसंहिता, नारदपुराण अ० ९० तथा अग्निपुराण अध्याय ८१ से ९०में भी आया है। 'कल्याण'के अग्निपुराणाङ्क पृष्ठ १४३ से १५६ तककी टिप्पणियाँ पर्याप्त उपयोगी हैं।

मेरा अन्तःकरण शुद्ध हो गया। अब प्राणियोंके कल्याण तथा विश्वकी रक्षाके लिये आप कृपाकर मुझे अपनी दीक्षा-विधिका उपदेश करें।

भगवान् वराह बोले—देवि! तुमने जो भागवती-दीक्षाके विषयमें पूछा है, अब उसे बताता हूँ, सुनो। यह दीक्षा कर्ममय संसारसे मुक्त और सर्वसुख प्रदान करनेवाली है। इस दीक्षाका रहस्य योगव्रतमें स्थित रहनेवाले देवतातक भी नहीं जानते। इस मङ्गलमय धर्मका रहस्य केवल मैं ही जानता हूँ। देवि! उत्तम दीक्षा वह है, जिसके प्रभावसे मुझमें मन लगाकर मनुष्य सुख-पूर्वक गर्भवासरूप संसार-समुद्रसे पार पा जाता है। इसके लिये साधकको चाहिये कि वह गुरुके समीप जाकर उनसे प्रार्थना करे कि 'गुरुदेव! मैं आपका शिष्य होना चाहता हूँ, आप मुझे दीक्षा देनेकी कृपा कीजिये।' फिर उनकी आज्ञासे दीक्षाके उपयोगी पदार्थों—धानका लावा, मधु, कुश, घृत, चन्दन, पुष्प, दीप-धूप-नैवेद्य, काला मृगचर्म, पलाशका दण्ड, कमण्डलु, कलश, वस्त्र, खड़ाऊँ, स्वच्छ यज्ञोपवीत, अर्घ्यपात्र, चरुस्थाली, दर्वी, तिल-यव, अनेक प्रकारके फल, दीक्षित पुरुषोंके खाने-योग्य अन्न, पीनेयोग्य तथा तीर्थोंके जल आदि वस्तुओंको लाकर एकत्र करे। साथ ही आवश्यक (उपयोगी) विविध प्रकारके बीज, रत्न, एवं काच आदि पदार्थोंको भी एकत्र कर ले।

तदनन्तर माङ्गलिक द्रव्य लगाकर स्नान करे और गुरुके चरणोंको पकड़कर उनसे आज्ञा लेकर एक बड़ी वेदीका निर्माण करे। यदि दीक्षा लेनेवाला व्यक्ति ब्राह्मण हो तो उसे चाहिये कि वह सोलह हाथ लम्बी-चौड़ी चौकोर वेदी बनाकर उसके ऊपर कलशकी स्थापना करे। धान्यके ऊपर नवीन एवं सुदृढ कलशकी विधिपूर्वक स्थापना कर वेदमन्त्रोंका उच्चारण करके उसमें जल भर दे और फिर पुष्पों तथा पल्लवोंसे उसे अलंकृत कर दे। तत्पश्चात् उसपर विधिपूर्वक तिलोंसे भरा हुआ एक पात्र स्थापित कर गुरुमें मेरी भावना करके पहलेसे एकत्र किये हुए द्रव्योंके द्वारा उनकी विधिपूर्वक पूजा करे। गुरुके प्रति निश्चितरूपसे धर्मको जानने तथा पालन करनेवाला शिष्य पुरुष उनकी सविधि पूजाकर पूर्वोक्त निर्दिष्ट द्रव्योंको उस वेदीपर स्थापित करे। सुन्दरि! फिर चारों भागोंमें जलसे भरे हुए चार कलशोंको आमके पल्लवोंसे पूर्णकर ब्राह्मणोंको दानार्थ संकल्प कर दे। इसके बाद वेदीको श्वेत सूतोंद्वारा सब ओरसे घेर दे और चारों पार्श्वभागोंमें चार पूर्णपात्र रखे। उस समय दीक्षा देनेवाले गुरुका कर्तव्य है कि उक्त कार्य सम्पन्न करके शिष्यको ऐसा मन्त्र दे, जो रुचि एवं वर्णादिके न्यायके अनुसार हो अथवा जिससे उसकी हार्दिक तुष्टि हो। जिसके मनमें गुरुके प्रति पवित्र भक्ति-भावना हो तथा जिस दीक्षाकी विशेष अभिलाषा हो, वह भगवान् विष्णुके मन्दिरमें जाकर नियमका पालन करते हुए सभी कार्योंको सम्पन्न करे। फिर आचार्य पूर्वाभिमुख बैठकर दीक्षाकी इच्छा रखनेवाले सभी शिष्योंको निम्नलिखित उपदेश सुनाये।

जो व्यक्ति मेरा भक्त होकर भी किन्हीं अन्य भगवद्भक्त सत्पुरुषोंको देखकर उनके लिये आदरपूर्वक उठकर स्वागत-सत्कार आदि कर्म नहीं करता, वह मानो मेरी ही हिंसा करता है। जो कन्या-का दान करके अपने कर्मसे उसका उपकार नहीं करता, उसने मानो अपने पूर्वके आठ पितरोंकी हत्या कर दी। जो निष्ठुर व्यक्ति अपनी साध्वी स्त्रीका भी, जो एक प्रिय मित्रका कार्य करती है, वध करता है—वह हिंसक व्यक्ति पुनः स्त्री-योनिमें जन्म पाता है और पूर्वोक्त कर्मके प्रभावसे उसे पुनः दाम्पत्यसुखकी प्राप्ति नहीं होती। ब्राह्मणका वध करनेवाला, कृतघ्न, गोघाती— ये पापी समझे जाते हैं तथा जो अन्य पापी कहे गये हैं, वे यदि शिष्य बनकर दीक्षा लेना चाहें तो उन्हें शिष्य न बनाकर उनका परित्याग ही कर देना चाहिये।

दीक्षित पुरुषको चाहिये कि वह यदि परमसिद्धि या मोक्ष पानेकी इच्छा रखता हो या सनातन धर्मका संग्रह करना चाहता हो तो बेल, गूलर तथा उपयोगी वृक्षोंको कभी न काटे। क्या खाना चाहिये, क्या नहीं खाना चाहिये, इसे आचार्यको भी अपने शिष्यको बता देना चाहिये। गूलरका ताजा फल भक्ष्य है, पर उसका बासी फल सर्वथा अभक्ष्य है। लहसुन, प्याज आदि वस्तुएँ जिनसे दुर्गन्ध निकलती हैं, वे सभी अभक्ष्य मानी जाती हैं।

दीक्षित व्यक्तिके लिये उचित है कि वह सभी प्रकारके मांस-मछलियोंका निश्चयपूर्वक सर्वथा त्याग कर दे। उसे दूसरोंकी निन्दा और प्राणीकी हिंसा भी कभी नहीं करनी चाहिये। वह किसीकी चुगली न करे और चोरी तो सर्वथा त्याग दे। दूरसे आये हुए अतिथिको आदर-सत्कारपूर्वक भोजनादि कराना चाहिये। वह गुरु, राजा तथा ब्राह्मणकी स्त्रीके प्रति मनमें कभी बुरी भावना न करे। सुवर्ण, रत्न और युवती स्त्री—इनकी ओर चित्त न लगाये। दूसरेके उत्तम भाग्य और अपनी विपत्तिको देखकर दुःख न करे, यह सनातन धर्म है।

वसुंधरे! दीक्षाके पहले मन्त्र लेनेवाले शिष्यके प्रति गुरु इन सब बातोंका उपदेश दें। सुन्दरि! साथ ही छुरा तथा जलसे भरा हुआ एक पात्र भी रखना चाहिये, फिर मन्त्रोच्चारणपूर्वक मेरा आवाहन एवं विधिके साथ मेरा पूजन करना चाहिये।

देवि! इस प्रकार अर्घ्य एवं पाद्य देनेके उपरान्त गुरु हाथमें अस्तूरा लेकर शुद्ध भावसे यह मन्त्र पढ़े। मन्त्रका भाव यह है—'शिष्य! विष्णुमय जलकी सहायतासे तुम्हारा क्षौरकर्म किया जा रहा है। इस अवसरपर वरुण देवता तुम्हारे सिरकी रक्षा करें। यह दीक्षा संसारसे उद्धार करनेवाली है।' फिर नाई क्षौरकर्म करे और यजमान उस कलशको उस नाईको ही दे दे। नाई ऐसी सावधानीसे (सिरका) क्षौरकर्म करे कि कहीं त्वचाके कटनेसे एक बिन्दु भी रक्त न निकले। इस प्रकार सविधि कृत्य सम्पन्न कर लेना चाहिये। इसके उपरान्त यजमान भगवान्में श्रद्धा रखनेवाले पुरुषोंको प्रणाम करके अग्नि प्रज्वलित करे और फिर वह धानका लावा, काले तिल, घृत और मधु—इन वस्तुओंको मिलाकर उसमें सात आहुतियाँ प्रदान करे। फिर तिल और खीरसे बीस आहुतियाँ देनी चाहिये। हवनके पश्चात् घुटनोंके बल जमीनपर झुककर इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। मन्त्रका भाव यह है—'दोनों अश्विनीकुमार, दसों दिशाएँ, सूर्य और चन्द्रमा—ये सभी इस कार्यमें साक्षी हैं। सत्यके बलपर ही पृथ्वी तथा आकाश अवलम्बित है। सत्यके बलसे ही सूर्य गतिशील हैं तथा पवनदेव प्रवाहित होते हैं।' तदनन्तर मन्त्र-पूर्वक विधिके साथ आचार्यकी पूजा कर उन्हें प्रसन्न करना चाहिये। गुरुको भगवान्में भक्ति रखनेवाला एवं दिव्य पुरुष होना चाहिये। फिर तीन बार गुरुकी प्रदक्षिणा कर उनके चरणोंको श्रद्धापूर्वक पकड़ ले और कहे—'गुरुदेव! मैं आपकी कृपा तथा इच्छाके अनुसार 'दीक्षा-ग्रहण-कर्म' में उद्यत हुआ हूँ। मुझसे कुछ अनुचित हुआ हो तो आप उसे क्षमा करनेकी कृपा करें। फिर स्वयं वह पूरब दिशाकी ओर मुख करके बैठ जाय। इस समय गुरुकी दृष्टि केवल शिष्यपर ही रहनी चाहिये। गुरुका कर्तव्य है कि हाथमें कमण्डलु एवं यज्ञोपवीत लेकर कहे—'शिष्य! भगवान् विष्णुकी कृपासे तुम्हें यह सुअवसर प्राप्त हुआ है। साथ ही सिद्धदीक्षा और कमण्डलु—ये वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। कर्मके प्रभावसे दीक्षासम्बन्धी इस शुभ अवसरपर तुम अपने हाथोंमें कमण्डलु ले लो। इसके बाद गुरु उसे मन्त्रकी दीक्षा दें। दीक्षाप्राप्त पुरुष गुरुके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम करे और उनकी प्रदक्षिणा कर इस प्रकार कहे—'गुरुदेव! मैंने अब आपकी शरण प्राप्त की है। आपके द्वारा मुझे 'वैष्णवीदीक्षा' सुलभ हो गयी, यह आपकी

कृपाका फल है।' फिर गुरु उसे उठाकर शुद्ध जलसे तथा दिव्य तन्तुओंद्वारा निर्मित एक वस्त्र शिष्यको दें। उस समय गुरुको कहना चाहिये—'वत्स! तुम यह वस्त्र तथा पवित्र कमण्डलु ग्रहण करो। पुनः शिष्य गुरुको चन्दन लगाकर हाथमें मधुपर्क लेकर कहे—'भगवन्! आप पार्थिव शरीरको शुद्ध करनेवाले इस मधुपर्कको ग्रहण कीजिये।'

तत्पश्चात् शिष्यको गुरुके चरणोंको पकड़कर उन्हें यत्नपूर्वक संतुष्ट करना चाहिये। फिर मनपर संयम रखते हुए अञ्जलिको मस्तकसे लगाकर गुरुप्रदत्त मन्त्रको हृदयमें धारण करे और कहे—'भगवान्‌में भक्ति रखनेवाले सभी पुरुष मेरी बात सुननेकी कृपा करें। गुरुदेवने मेरी सभी कामनाओंको पूर्ण कर दिया। मैं इनका सेवक और शिष्य हो गया और ये देवताके समान मेरे गुरु हो गये।'

वसुंधरे! आगम (वैष्णव) शास्त्रोंमें ब्राह्मणकी दीक्षाकी यही विधि कही गयी है। अब जो अन्य तीन वर्णोंके लिये दीक्षाकी विधि है, वह भी मुझसे सुनो।

(अध्याय १२७)

क्षत्रियादि दीक्षा एवं गणान्तिकादीक्षाकी विधि तथा दीक्षित पुरुषके कर्तव्य

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! मैंने ब्राह्मण दीक्षाके समय जिन वस्तुओंके संग्रहकी बात कही है, क्षत्रियको भी उन सबको एकत्र करना चाहिये। उसे केवल एक कृष्णसार मृगका चर्म नहीं लाना चाहिये। इसी प्रकार उसे पलाशके स्थानपर पीपल-वृक्षका दण्ड ग्रहण करना चाहिये और काले मृगके चर्मकी जगह काले बकरेका चर्म लेना चाहिये। उसकी दीक्षावेदी भी सोलह हाथकी जगह बारह हाथके प्रमाणकी हो। उसको गोबरसे लीप दे।

तदनन्तर गुरुके पैर पकड़कर वह कहे—'विष्णो! मैंने सम्पूर्ण शस्त्रों एवं क्षत्रियके क्रूर कर्मोंका परित्याग कर दिया है और मैं अब आप विष्णुस्वरूप गुरुदेवकी शरणमें आ गया हूँ। आप जन्म-मरणरूपी संसार-सागरसे मेरा उद्धार कीजिये। इस प्रकार गुरुसे प्रार्थना कर उनमें मेरी भावना करते हुए उनके दोनों चरणोंको पकड़कर कहे—'देवदेव वराह! अब मैं शस्त्रका स्पर्श करना नहीं चाहता और न अब मैं किसी-की निन्दा ही करूँगा। आपने वराहरूप धारण कर संसार-सागरसे मुक्त होनेके लिये जिन कर्मोंको करनेका निर्देश किया है, अब मैं वही करनेके लिये तत्पर हूँ। तत्पश्चात् पूर्वनिर्दिष्ट विधिके अनुसार ही अनेक प्रकारके चन्दन, धूप एवं पत्र आदि उपकरणोंसे सबकी पूजा कर दीक्षा ग्रहण करे। दीक्षा लेनेके बाद, शुद्ध भगवद्भक्त पुरुषोंको भोजन कराना चाहिये। क्षत्रियकी दीक्षाके लिये यह निश्चित विधि है।

सुन्दरि! अब वैश्यकी दीक्षाकी विधि बतलाता हूँ, वैश्य (जाति)का साधक जिस प्रकार सिद्धि प्राप्त कर लेता है, उसे सुनो। वह भी पूर्ववत् सभी सामग्रियोंको एकत्र कर दस हाथकी चौकोर वेदी बनाये और पूर्वोक्त नियमानुसार उसे गायके गोबरसे लीप दे। फिर बकरेके चर्मसे अपने शरीरको वेष्टितकर दाहिने हाथमें गूलरका दातुन लेकर शुद्ध भगवद्भक्त पुरुषोंकी तीन बार प्रदक्षिणा करे। फिर गुरुके सम्मुख घुटनेके बल बैठकर कहे—'भगवन्! मैं वैश्य हूँ। मैं सम्पूर्ण सांसारिक प्रपञ्चोंका परित्याग कर आपकी शरणमें आया हूँ। आप प्रसन्न होकर मुझे संसार-बन्धनसे मुक्त करनेवाला मन्त्र देनेकी कृपा करें।' मेरा भक्तिरूप प्रसाद पानेकी इच्छावाला वह वैश्य इस प्रकार मेरी प्रार्थना कर गुरुके चरणोंका स्पर्श करे। साथ ही कहे—'गुरो! इस समय मैं आपकी कृपासे 'वैष्णवीदीक्षा' प्राप्त करनेके लिये प्रस्तुत

हुआ हूँ।' इसके बाद भगवद्भक्त पुरुषोंके सामने उनमें देवताकी भावना करके अभिवादन करे। इसके पश्चात् जिसमें किसी प्रकारके अपराधका भागी न होना पड़े, ऐसा भोजन करना उचित है।

पृथ्वि! अब द्विजेतरोंकी दीक्षाकी विधि बतलाता हूँ। जो यह दीक्षा लेता है, उसके फलस्वरूप सम्पूर्ण पापोंसे उसकी मुक्ति हो जाती है। दीक्षाकी इच्छा रखनेवालेको चाहिये कि सम्पूर्ण संसारके उपयोगी जिन द्रव्योंको मैं पहले कह चुका हूँ, वह भी उन्हीं सभीका सम्यक् प्रकारसे संग्रह करे और आठ हाथके प्रमाणकी चौकोर वेदी बनाकर उसे गोबरसे लीप दे। उसके लिये नीले बकरेका चर्म एवं बाँसका दण्ड तथा नीला वस्त्र ही उपयुक्त है। इस प्रकार इन वस्तुओंका संग्रह कर पूर्वोक्त विधिसे दीक्षाका कार्य सम्पन्न कर वह मेरी शरणमें आकर कहे—'भगवन्! मैंने अब अपने अपवित्र कर्म तथा अभक्ष्य भक्षणका परित्याग कर दिया है।' फिर गुरुके चरणोंको पकड़कर कहे—'प्रभो! भगवान् श्रीहरिकी मुझपर कृपा हो गयी है। उनकी प्रसन्नतासे पहलेकी भाँति गोपनीय मन्त्र मुझे प्राप्त होनेका अवसर मिला है। आप मुझपर प्रसन्न हो जायँ।' पश्चात् चार बार गुरुकी प्रदक्षिणा कर उन्हें प्रणाम करे। फिर चन्दन एवं पुष्पसे गुरुकी पूजा कर भक्तोंको नियमके अनुसार भोजन कराये।'

वसुंधरे! दीक्षित हो जानेपर सभी वर्णोंको, जिस प्रकारके छत्र दिये जायँ, यहाँ उसका स्पष्टीकरण किया जाता है। ब्राह्मणके लिये श्वेत, क्षत्रियके लिये लाल, वैश्यके लिये पीला तथा द्विजेतरके लिये नीला छत्र (छाता) देनेकी विधि है।

पृथ्वी बोली—केशव! सभी वर्णोंकी न्यायानुसार प्राप्त होनेवाली दीक्षा मैं सुन चुकी, अब मैं यह जानना चाहती हूँ कि आपके कर्ममें सदा संलग्न रहनेवाले दीक्षित पुरुषके कर्तव्य क्या हैं?

भगवान् वराह बोले—कल्याणि! तुम जो बात पूछती हो, उसका गूढ़तम सार तथा रहस्ययुक्त उत्तर तो यह है कि वस्तुतः दीक्षित व्यक्तिको निरन्तर एकमात्र मेरा ही चिन्तन करना चाहिये। महाभागे! 'गणान्तिका-दीक्षा'का रहस्य अत्यन्त गोपनीय वस्तु है और इसे मेरा ही स्वरूप समझना चाहिये। विशालाक्षि! मेरी भक्तिमें लगे रहनेवाले दीक्षित पवित्रात्मा व्यक्तिको विधिपूर्वक मन्त्रके द्वारा इसे ग्रहण करना चाहिये। जो भगवद्भक्त होकर इस दृष्टिजनित या स्पर्शजनित* गणान्तिकादीक्षाको ग्रहण करता है, उसके लिये और कोई कर्तव्य कार्य शेष नहीं रह जाता। उसके लिये दीक्षा ही सर्वफलदायिका होती है। किंतु सुन्दरि! जो व्यक्ति केवल कानसे ही सुनकर मन्त्रोंकी दीक्षा ग्रहण करता है, उसे 'आसुरी-दीक्षा' कहते हैं। अतएव पवित्र मनवाले पुरुषको चाहिये कि मुझसे सम्बन्धित गुह्य दीक्षा ग्रहण करे। जो बुद्धिमान् पुरुष इस दीक्षा-के सहारे मेरा ध्यान-स्मरण करता है, उसने मानो हजारों जन्मोंतक मेरा ध्यान-चिन्तन कर लिया—ऐसा समझना चाहिये।

वसुंधरे! इस 'गणान्तिकादीक्षा'के लिये कार्तिक, मार्गशीर्ष और वैशाख मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथियाँ प्रशस्त हैं। दीक्षाकी बात निश्चित हो जानेपर उसे तीन दिनोंतक शुद्ध आहारपर रहना चाहिये। फिर मेरे धर्मपर अटल विश्वास रखकर उचित

* 'कुलार्णव' (१४। ५४,५६) तथा 'श्रीविद्यार्णव' (१३। ७। १–३) में ये दीक्षाएँ इस प्रकार निर्दिष्ट हैं—

हस्ते शिवं पुरं ध्यात्वा जपन् मूलाङ्गमालिनीम्। गुरुः स्पृशेच्छिष्यतनुं स्पर्शदीक्षा भवेदियम्॥ ...

निमील्य नयने ध्यात्वा परतत्त्वं प्रसन्नधीः। सम्यक् पश्येद् गुरुः शिष्यं दृग्दीक्षा सा भवेत् प्रिये॥

अर्थात् अपने हाथमें परशिव एवं गुरुका ध्यान तथा 'मालिनीविद्या'का जप करते हुए जो आचार्य अपने शिष्यका स्पर्श करते हैं, वह 'स्पर्शदीक्षा' तथा नेत्रोंको बंदकर परतत्त्वका ध्यानकर शिष्यको भली प्रकार देखना 'दृग्दीक्षा' है। 'मालिनीविद्या' का वर्णन 'अग्निपुराण'के १४५वें अध्यायमें है। (द्र० अग्निपुराण पू० पृ० २५९)

समयमें दीक्षा लेनी चाहिये। सुशोभने! साधक पुरुष मेरे सामने अग्नि प्रज्वलित कर कुशका परिस्तरण करे। फिर भावनामयी 'दीक्षा'की स्थापना करे। तत्पश्चात् शिष्य देव-भावनासे परम पवित्र होकर दीक्षाके कार्यमें संलग्न हो जाय। उस समय गुरु **'ॐ नमो नारायणाय'** कहकर यह मन्त्र पढ़े। मन्त्रका भाव है—'शिष्य! यह दीक्षा भगवान् नारायणके दाहिने अङ्गसे प्रकट हुई है। उनकी कृपासे ही पितामह ब्रह्माने इसे धारण किया है, वही दीक्षा तुम भी ग्रहण करो।' इसके बाद स्नानकर रेशमी वस्त्र धारणकर वह मेरे अङ्गोंका स्पर्श करे। फिर उसी समय कंघी और अञ्जन समर्पण कर मुझ भगवान् नारायणको मन्त्रसे स्नान कराये। मन्त्रका भाव यह है—'देवेश्वर! स्नान करनेके लिये यह जल सुवर्णके कलशमें रखकर आपकी सेवामें समर्पित है। मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रहा हूँ, आप इससे स्नान करनेकी कृपा करें। फिर **'ॐ नमो नारायणाय'** का उच्चारण कर कहे 'माधव! आपकी कृपाके बलपर गुरुदेवकी दयासे यह मन्त्रमयी दीक्षा मुझे प्राप्त हुई है। यह दीक्षा मुझे इस योग्य बना दे कि कभी भी मेरा मन अधर्मकी ओर न जा सके।'

वसुंधरे! जो व्यक्ति इस विधिके अनुसार मेरे कर्ममें दीक्षित होता है, उसमें गुरुकी कृपासे महान् तेजका आधान हो जाता है। फलस्वरूप वह मेरे लोकको प्राप्त होता है। सुन्दरि! यह दीक्षा चुगलखोर, धूर्त एवं कुत्सित शिष्यको नहीं देनी चाहिये। इसे विधिपूर्वक ग्रहण कराकर योग्य एवं सज्जन शिष्यके हाथमें एक माला देनी चाहिये। देवि! १०८ दानोंकी जपमाला उत्तम, ५४ दानोंकी मध्यम तथा २७ दानोंकी गणान्तिका माला* कनिष्ठ कही गयी है। रुद्राक्षकी माला परमोत्तम है, पुत्रजीवककी माला मध्यम एवं कमल-गट्टेकी माला कनिष्ठ समझनी चाहिये। देवि! यह दीक्षाप्रसङ्गका मैंने तुमसे वर्णन किया। यह 'गणान्तिका' नामकी प्रसिद्ध दीक्षा शुद्धस्वरूप, सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये हितकारी तथा मोक्ष चाहनेवालोंके लिये उत्तम साधन है। साधक जप करनेकी इस मालाको जूठे हाथ न छुए और न इसे स्त्रियोंके हाथमें ही दे, बायें हाथसे भी इसका स्पर्श न करे। इसे अन्तरिक्ष (दीवाल)में किसी कीलके सहारे लटका देना चाहिये। जपके समय इसे किसीको दिखाना भी ठीक नहीं है। जपके पूर्व एवं उपरान्त इसकी भी पूजा-स्तुति करनी चाहिये।

देवि! यह मैंने तुमसे दीक्षाका गूढ रहस्य बतलाया। जो पुरुष मेरी उपासनामें परायण होकर इस विधिके अनुसार मेरे (भगवत्सम्बन्धी) इन कर्मोंको सम्पन्न करता है, वह अपने सात कुलोंको तार देता है।

(अध्याय १२८)

पूजाविधि और ताम्रधातुकी महिमा

पृथ्वी बोली—भगवन्! अब आप मुझे यह बतानेकी कृपा करें कि आपके उपासक पुरुषको संध्या आदि कर्म तथा आपकी पूजा किस प्रकार करनी चाहिये?

भगवान् वराह कहते हैं—माधवि! संध्यामें संसारसे मुक्त करनेकी शक्ति है। अतः प्रातःकाल शौच-स्नानादिसे निवृत्त होकर विधिपूर्वक संध्याकी उपासना करनी चाहिये। पहले श्रद्धालु पुरुष हाथमें एक अञ्जलि जल लेकर कुछ क्षणतक मेरा ध्यान करे। फिर कहे—'भगवन्! आदिकालमें आप ही व्यक्तरूपसे विराजमान थे। आपसे संसारकी सृष्टि हुई। ब्रह्मा, रुद्र तथा अन्य

* जैनधर्ममें इसका नाम 'गणितीया माला' है।

सभी देवता आपसे ही उत्पन्न होकर आपके ध्यानमें तत्पर हुए। वे संध्याके समयमें ध्यानद्वारा आपकी आराधना करते हैं। आप ही सातोंदिन, पक्ष, मास, ऋतु आदि कालक्रमकी व्यवस्था करनेके लिये सूर्यरूपसे प्रकट हैं। अतः भगवन्! इस संध्याकालमें हम आपकी उपासना करते हैं। आपको हमारा नमस्कार है।' उपासनाका यह विषय अत्यन्त गोपनीय, रहस्यमय तथा परम श्रेष्ठ है। जो इसका सदा पाठ करता है, वह पापसे लिप्त नहीं हो सकता। जिसने दीक्षा नहीं ली है एवं यज्ञोपवीत धारण नहीं किया है, उसे कभी भी इस मन्त्रको नहीं बताना चाहिये।

देवि! संध्याके बाद मेरी पूजाके लिये पहले 'कर्माङ्ग-दीपक' जलानेकी विधि है। इसके लिये साधक पुरुष यों प्रार्थना करे—'भगवन्! मैं आपके धर्मोंका पालन करता हुआ यह उत्तम दीप अर्पण कर रहा हूँ, आप इसे कृपाकर स्वीकार कीजिये।' फिर घुटनोंके बल बैठकर कहे—'विष्णो! 'ॐ' आपका स्वरूप है। आप ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण, कृपामय एवं तेजस्वरूप हैं। आपको मेरा नमस्कार है। भगवन्! आपकी आज्ञासे समस्त देवता अग्निमें निवास करते हैं। अग्निमें जो दाहिका शक्ति है, वह आपका ही तेज है। मुझमें और मन्त्रमें भी आपका ही तेज काम कर रहा है। यह दीपक तथा सभी वैदिक-तान्त्रिक मन्त्र भी आपके ही स्वरूप हैं। आप ही समस्त कल्याणोंके स्रोत हैं। आप यह दीपक स्वीकार करें।'

तदनन्तर मेरा उपासक अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान, चन्दन, पुष्प आदिसे मेरा अर्चन कर, धूप दिखलाये। धूप उत्तम गन्धसे युक्त और मनको आकृष्ट करनेवाला हो। उसे हाथमें लेकर **'ॐ नमो नारायणाय'** इस मन्त्रका उच्चारण कर इस प्रकार कहे—'केशव! आपके अङ्ग तो स्वभावतः सुगन्धित हैं ही; फिर भी मैं इन्हें इस सुन्दर गन्धवाले धूपसे सुगन्धित करना चाहता हूँ। फलस्वरूप मेरे भी सभी अङ्गोंको गन्धयुक्त बनानेकी कृपा करें। प्रभो! आपको धूप अर्पण करना साधकके लिये सम्पूर्ण संसारसे मुक्त करनेका परम साधन है।'

इस प्रकार उत्तम दीपक हाथमें लेकर घुटनेके बल बैठ जाय और पूजाकर पुनः कहे—'विष्णो! आपके लिये नमस्कार है। आप परम तेजस्वी हैं। सम्पूर्ण देवता अग्निमें निवास करते हैं। और अग्नि आपके ही तेजसे प्रतिष्ठित है। तेज स्वयं आपका आत्मा है। भगवन्! प्रकाशमान यह दीप तेजोमय है। संसारसे मुक्त होनेके लिये मैं इसे आपको अर्पण करता हूँ। आप इसे स्वीकार करनेकी कृपा कीजिये। आप मूर्तिमान् होकर मेरे इस अर्पणको सफल बनाइये। वसुंधरे! जो इस प्रकार मुझे दीपक अर्पण करता है, उसके समस्त पिता-पितामह आदि पितर तर जाते हैं।

भगवान् नारायणकी इस प्रकारकी बात सुनकर पृथ्वीका मन आश्चर्यसे भर गया। अतः उन्होंने पूछा—'भगवन्! मैं यह जानना चाहती हूँ कि आपके पूजाकी सामग्री कैसे पात्रोंमें रखी जानी चाहिये, जिससे आपको प्रसन्नता प्राप्त हो? भगवन्! इसे आप तत्त्वतः बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह बोले—'देवि! मेरी पूजाके पात्र सोने, चाँदी और काँसे आदिके भी हो सकते हैं, किंतु उन सबको छोड़कर मुझे ताँबेका पात्र ही बहुत अच्छा लगता है।' भगवान् नारायणकी यह बात सुनकर धर्मकी इच्छा रखनेवाली पृथ्वी देवीने उन जगत्प्रभुके प्रति यह मधुर वचन कहा—'भगवन्! आपको ताँबेका पात्र ही अधिक रुचता है, इसका रहस्य क्या है, यह मुझे बतलानेकी कृपा करें।'

उस समय पृथ्वीका प्रश्न सुनकर अनादि, परम स्वतन्त्र भगवान् नारायण, जो विश्वमें सबसे बड़े देवता हैं, पृथ्वीसे इस प्रकार बोले—'माधवि! आजसे सात

हजार युग पूर्व ताँबेकी उत्पत्ति हुई थी और वह मुझे देखनेमें अधिक प्रिय प्रतीत हुआ। कमलनयने! पूर्व समयमें 'गुडाकेश' नामका एक महान् असुर ताँबेका रूप बनाकर मेरी आराधना करने लगा। विशालाक्षि! उसने धर्मकी कामनासे चौदह हजार वर्षोंतक कठोर तप करते हुए मेरी आराधना की। उसके हार्दिक भाव एवं तीव्र तपसे मैं संतुष्ट हो गया, अतः ताँबेके समान चमकनेवाले उस दिव्य स्थानपर मैं गया, जहाँ ताँबेकी उत्पत्ति हुई थी। देवेश्वरि! उस आश्रमको देखकर मैंने उससे प्रसन्न होकर कुछ बातें कहीं। इतनेमें वह महान् असुर मुझे देखकर घुटनोंके बल बैठ गया और मेरी स्तुति करने लगा। फिर मेरी उपासनामें तत्पर रहनेवाले उस 'गुडाकेश' नामक असुरने मेरे चतुर्भुज रूपको देखा तो नम्रतापूर्वक हाथ जोड़ लिया और भूमिपर मस्तक झुकाकर मेरी प्रार्थनाके लिये उद्यत हो गया। उस असुरको देखकर मेरा अन्तःकरण प्रसन्न हो गया और मैंने उससे कहा—'गुडाकेश! तुम बड़े भाग्यशाली हो। कहो, मैं तुम्हारे लिये कौन-सा कार्य करूँ? सुव्रत! मेरी आराधना बड़ी कठिन वस्तु है, फिर भी तुम्हारी मन-क्रम-वचनोंद्वारा सम्पादित भक्तिसे मैं परम संतुष्ट हूँ। अनघ! अब तुम्हें जो रुचे, तुम वह वर माँग लो।'

वसुंधरे! मेरी इस प्रकारकी बात सुनकर गुडाकेशने हाथ जोड़कर शुद्ध हृदयसे कहा—'देव! यदि आप सचमुच मुझपर अन्तर्हृदय एवं मनसे प्रसन्न हैं तो मुझपर ऐसी कृपा करें कि हजारों जन्मोंतक मेरी आपमें दृढ़ भक्ति बनी रहे। केशव! साथ ही मेरी यह इच्छा है कि आपके हाथसे छूटे हुए चक्रके द्वारा मेरी मृत्यु हो और इस प्रकार मेरे शरीरके गिरनेपर उससे जो कुछ भी वसा (चर्वी), मज्जा, मेदा और मांस आदि बिखरें, वे सब ताँबेके* रूपमें परिवर्तित हो जायँ तथा उसमें सबको पवित्र करनेकी शक्ति निहित हो। फिर मङ्गलमय धार्मिक कार्य करनेवाले पुरुष उस ताँबेसे आपके पात्रका निर्माण करायें। उस ताँबेके पात्रमें आपकी पूजनोपयोगी वस्तु रखकर साधक आपको निवेदित करे तथा उस अर्पित की हुई वस्तुसे आप पूर्ण प्रसन्न हों। भगवन्! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे यही वर देनेकी कृपा करें।'

उस समय भगवान् नारायणने गुडाकेशसे कहा—'असुरराज! तुमने उग्र तपस्या करते समय जो कुछ भी सोचा है, वह सब वैसा ही होगा। जबतक मेरा बनाया हुआ संसार स्थित रहेगा, तबतक तुम ताम्रमय बनकर मुझमें स्थित रहोगे।' सुव्रते! उसी समयसे गुडाकेशका शरीर ताम्रमय बनकर जगत्‌में प्रतिष्ठित हुआ। इसीलिये ताँबेके पात्रमें रखकर जो वस्तु मुझ भगवान्‌को अर्पित की जाती है, उससे मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। देवि! यही कारण है कि ताँबा मङ्गलस्वरूप, पवित्र एवं मुझे अत्यन्त प्रिय है। वसुंधरे! फिर मैंने उस असुरसे कहा कि देखो, मध्याह्नकालके सूर्यमें तुम्हें मेरे चक्रका दर्शन होगा। वैशाखमासके शुक्लपक्षकी द्वादशीके दिन मध्याह्नकालमें मेरा तेजोमय चक्र तुम्हारे शरीरका अन्त करेगा, जिससे तुम मेरे लोकको प्राप्त कर लोगे, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।

गुडाकेशसे यह कहकर मैं वहीं अन्तर्धान हो गया। उधर गुडाकेश भी मेरे चक्रद्वारा अपने वधकी प्रतीक्षा करते हुए तपस्यामें संलग्न रहा। उसके इसी प्रकार सोचते-सोचते वैशाखमासके शुक्लपक्षकी वह द्वादशी तिथि आ

---

* ताँबेकी इस उत्पत्तिकी कथामें घृणाकी कोई बात नहीं है। भूमिमाता (मेदिनी)की उत्पत्ति भी मधु-कैटभ दैत्यके मेदसे तथा सभी रत्नोंकी उत्पत्ति बलासुरकी अस्थि, वसा, (चर्वी) मज्जा इत्यादिसे हुई है, यह कथा प्रायः गरुडादि सभी पुराणोंमें प्रसिद्ध है। 'द्रष्टव्य—गरुडपुराण अध्याय ६८-८०; पद्मपुराण भूमिखं० २३, उत्तर खं० ७; विष्णुधर्मोत्तरपुराण,२। १५, अग्निपुराण अ० २४६ शुक्रनीति, 'बृहत्संहिता', 'शैव (शिवतत्त्व) 'रत्नाकर', 'युक्तिकल्पतरु', 'मानसोल्लास', (अभिलाषचिन्तामणि) आदि।

पहुँची। उस दिन उसने अपना धर्म निश्चय कर मेरी पूजा की और प्रार्थनामें संलग्न हो गया। फिर कहने लगा—'प्रभो! आप अग्निके समान अपने तेजोमय चक्रको छोड़िये, जिससे मेरे अङ्ग भलीभाँति छिन्न-भिन्न हो जायँ और मेरा आत्मा शीघ्र ही आपको प्राप्त कर ले।'

इस प्रकार वह गुडाकेश मेरे चक्रद्वारा विदीर्ण होकर मुझमें लीन हुआ और उसीके मांससे ताँबा उत्पन्न हुआ। उसका रक्त सुवर्ण हुआ और उसके शरीरकी हड्डियाँ चाँदी बनीं। उसकी अन्य धातु भी तैजस धातुओंके रूपमें परिवर्तित हो गयी और वे ही राँगा, सीसा, टीन, काँसा आदि बने तथा उसके मलसे अन्य प्राकृतिक खनिज—गंधक आदि द्रव्योंका प्रादुर्भाव हुआ। देवि! इसीलिये ताँबेके पात्र-द्वारा मुझे चन्दन, अङ्गराग, जल, अर्घ्य, पाद्यादि अन्य वस्तुएँ अर्पण की जाती हैं। देवि! ताम्रके पात्रमें स्थित एक-एक पके चावलमें अनन्त फल भरा है। इससे श्रद्धालु पुरुषोंकी मेरी उपासनामें रुचि बढ़ती है। इस प्रकारसे उत्पन्न होनेके कारण ताम्र मुझे अधिक प्रिय है। दीक्षित पुरुष इस ताम्रपात्रसे ही पाद्य एवं अर्घ्य देते हैं। देवि! इस प्रकार मैंने दीक्षाकी विधि एवं ताँबेकी उत्पत्तिके प्रसङ्गका तत्त्वतः वर्णन किया। अब तुम दूसरी कौन-सी बात पूछना चाहती हो? वह बतलाओ।

(अध्याय १२९)

राजाके अन्न-भक्षणका प्रायश्चित्त

पृथ्वी बोलीं—प्रभो! आपकी दीक्षाका माहात्म्य अत्यद्भुत है। महाभाग! इसे सुनकर मैं अत्यन्त निर्मल हो गयी। किंतु मेरे मनमें एक शङ्का रह गयी है। आपने इसके पूर्व बत्तीस प्रकारके अपराध कहे हैं। यदि अल्पबुद्धिवाले मनुष्यद्वारा इनमेंसे कोई अपराध बन जाता है तो उसकी शुद्धि किस प्रकार हो? माधव! आप मुझे इसे बतानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह बोले—देवि! मेरी उपासनामें संलग्न रहनेवाले शुद्ध भागवत पुरुष यदि लोभ अथवा भयसे राजाका अन्न खाते हैं तो उन्हें दस हजार वर्षोंतक नरककी यातनाएँ सहनी पड़ती हैं।

भगवान्की यह बात सुनकर पृथ्वीदेवी काँप उठीं। वे अत्यन्त दीन-मन होकर भगवान्से मधुर वचनोंमें फिर इस प्रकार कहने लगीं।

पृथ्वी बोलीं—भगवन्! राजाओंमें ऐसा कौन-सा दोष है, जिससे उनके अन्न खानेसे प्राणीको नरकमें जाना पड़ता है।

भगवान् वराह बोले— पृथ्वि! राजाका अन्न कभी खाने योग्य नहीं है। राजा यथासम्भव संसारमें यद्यपि सबसे समान भावसे ही व्यवहार करता है, फिर भी उससे दारुण राजस या तामस कर्म भी घटित हो जाते हैं, इसलिये पृथ्वीदेवि! राजाका अन्न गर्हित—निन्द्य बतलाया गया है। अतएव जगत्में सम्यक् प्रकारसे धर्मका आचरण करनेवाले व्यक्तिको राजाका अन्न खाना उचित नहीं है। वसुंधरे! अब भक्तोंको जिस प्रकार राजाका अन्न खाना चाहिये, मैं उन-उन प्रक्रियाओंको बताता हूँ, उसे सुनो। पहले राजाको चाहिये कि वह शास्त्रीय-विधिके अनुसार मन्दिर बनवाकर उसमें मेरी प्रतिष्ठा करे और फिर भक्त-भागवतोंको धन-धान्य-समृद्धि आदि प्रदान कर वैष्णवोंद्वारा मेरा नैवेद्य तैयार कराकर मुझे समर्पित करके भोजन करे-कराये। इस प्रकार राजाका अन्न खानेसे भागवतों (मेरे भक्तों)को अन्नका दोष नहीं लगता।

पृथ्वी बोलीं—जनार्दन ! यदि कोई मनुष्य आपका भक्त अनजानमें राजान्न-भक्षण कर लेता है तो वह कौन-सा कर्म करे; जिससे उसकी शुद्धि हो जाय ?

भगवान् वराह बोले—देवि ! एक बार चान्द्रायण या सांतपन-व्रत (छः रात्रियोंका उपवास)के अनुष्ठान अथवा कई बार तप्तकृच्छ्र-व्रत (जल, दूध और घीको एक साथ गर्मकर एक दिन पीने तथा दूसरे दिन उपवास)के आचरणद्वारा मनुष्य राजान्न-भक्षणके दोषसे छुटकारा प्राप्त कर लेता है और उसमें लेशमात्र भी दोष नहीं रह जाता। राजाका अन्न खाना उचित नहीं है। विशेषकर उसे जो मेरी पूजा-आराधना करता हुआ जीवन व्यतीत करना चाहता या उत्तम गति पानेकी चेष्टा करता है। (अध्याय १३०)

दातुन न करने तथा मृतक एवं रजस्वलाके स्पर्शका प्रायश्चित्त

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! जो मानव दातुनका प्रयोग न कर मेरी उपासनामें सम्मिलित होता है, उसके इस एक अपकर्मसे ही पूर्वके किये हुए सारे धर्म नष्ट हो जाते हैं। मनुष्यका शरीर नाना प्रकारके मल एवं गंदे द्रव्योंसे भरा है। यह देह कफ, पित्त, पीब, रक्त आदिसे युक्त है और मनुष्यका मुख दुर्गन्धपूर्ण रहता है। दातुन करनेसे मुँहकी दुर्गन्ध सर्वथा नष्ट हो जाती है। पवित्रता भगवान् तथा देवताओंको प्रिय है और सदाचारसे वह बढ़ती है।

पृथ्वीने कहा—भगवन् ! दातुनका उपयोग न कर जो आपके कर्मका सम्पादन करता है, उसके लिये क्या प्रायश्चित्त है ? यह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये, जिससे उसका सारा पुण्य नष्ट न हो सके।

भगवान् वराह कहते हैं—महाभागे ! इसका प्रायश्चित्त यह है कि व्यक्ति सात दिनोंतक आकाश-शयन—खुली हवामें—सर्वथा बाहर सोये, इससे उसके दातुन न करनेके दोष नष्ट हो जाते हैं। भद्रे ! दातुनसम्बन्धी प्रायश्चित्त तुम्हें बतला दिया। जो व्यक्ति इस विधानसे प्रायश्चित्त करता है, उसके अपराध नष्ट हो जाते हैं।

भगवान् वराह कहते हैं—इसी प्रकार जो मनुष्य अपवित्र अवस्थामें किसी मृतक (शव)का स्पर्श करता है, उसे गर्हितरूपमें चौदह हजार वर्षोंतक नरक-वास करना पड़ता है और जो व्यक्ति मृतकका स्पर्शकर बिना प्रायश्चित्त किये हुए मेरे क्षेत्रमें चला जाता है, उसे हजारों वर्षोंतक विविध कष्टमय निकृष्ट (नीच) योनियोंमें जाना पड़ता है।

यह सुनकर पृथ्वीको बड़ा क्लेश हुआ। उन्होंने सहानुभूतिसे पूछा—भगवन् ! यह तो बड़े ही दुःखकी बात है। कृपया इसके लिये भी किसी प्रायश्चित्तका वर्णन करें, जिससे प्राणी उस विकट संकटसे बच सके।

भगवान् वराह बोले—देवि ! शव-स्पर्श करनेवाला मानव तीन दिनोंतक जौ खाकर और पुनः एक दिन उपवास रहकर शुद्ध हो सकता है। उसे इसका इसी रूपमें प्रायश्चित्त करना चाहिये।

इसी प्रकार जो शास्त्रकी विधिके प्रतिकूल श्मशानमें जाता है, उसके पितर भी श्मशानमें रहकर अभक्ष्य-भोजी बन जाते हैं। इसलिये उसका भी प्रायश्चित्त कर लेना चाहिये।

पृथ्वीने पूछा—भगवन् ! आपके भजन-पूजनमें लगे रहनेवालोंको भी इस प्रकारका पाप लग जाता है ? यदि कर्मसिद्धान्तसे उनको पाप लगता है तो उसका भी प्रायश्चित्त बतानेकी कृपा करें।

भगवान् वराहने कहा—ऐसा व्यक्ति सात दिनोंतक एक समय भोजन करे और तीन रातक बिना भोजन किये

रहे और फिर पञ्चगव्यका पान करे। इस प्रकार प्रायश्चित्त करनेसे उसका पाप दूर हो जाता है। इसी प्रकार रजस्वला-स्त्रीका संसर्गी मनुष्य यदि भगवान्‌की मूर्तिका स्पर्श कर लेता है तो उसे भी हजार वर्षोंतक नरकमें रहना पड़ता है। नरकसे निकलकर वह पुनः अन्धा, दरिद्र और मूर्ख होता है।

रजस्वला स्त्रीका संस्पर्शदोष तपस्यासे ही दूर होता है। उसे शीतकालमें तीन राततक खुले आकाशमें शयनकर भगवत्परायण होकर तपस्याका अनुष्ठान करना चाहिये। (अध्याय १३१-१३२)

भगवान्‌की पूजा करते समय होनेवाले अपराधोंके प्रायश्चित्त

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि! इसी प्रकार पूजाके समय मुझे स्पर्श किये हुए रहनेपर यदि शरीरके दोष वायु या अजीर्णके कारण अधोवायु निकल गयी तो इस दोषसे वह पाँच वर्षोंतक मक्खी, तीन वर्षोंतक चूहा, तीन वर्षोंतक कुत्ता एवं फिर नौ वर्षोंतक कछुएका शरीर पाता है। देवि! जो मेरे कर्ममें—पूजा-पाठ, जप-तपमें उद्यत रहनेवाला पुरुष शास्त्रका रहस्य जानता है, फिर भी यदि उसके द्वारा अप-कर्म बन जाय तो इसमें उसका प्रारब्ध एवं मोह ही कारण हैं।

देवि! अब मैं इसका प्रायश्चित्त बतलाता हूँ, सुनो। अनघे! जिस कर्मके प्रभावसे ऐसा अपराध बन जानेपर भी उपासक पुरुषका उद्धार हो सकता है। ऐसे व्यक्तिको तीन दिन और तीन रातोंतक यवके आहारपर रहना चाहिये। इस प्रकार प्रायश्चित्त करनेके पश्चात् वह मेरी दृष्टिमें निरपराध है और सम्पूर्ण आसक्तियोंका त्यागकर वह मेरे लोकमें पहुँच जाता है। भद्रे! तुमने जो पूछा था कि—'पूजाके समय बने हुए कलुषित (निन्दित) कर्म-अपराधोंसे पुरुषकी क्या गति होती है?' इसके विषयमें मैंने तुम्हें बता दिया। अब मेरे उपासना-कर्मके बीचमें ही जो मलत्याग करने जाता है, अनघे! उसके विषयमें मैं अपना निर्णय कहता हूँ, सुनो। वह व्यक्ति भी बहुत वर्षोंतक नारकीय यातनाओंको भोगता है। उसका प्रायश्चित्त यह है कि वह व्यक्ति एक रात जलमें पड़ा रहे तथा एक रात खुले आकाशके नीचे शयन करे। इस प्रकार विधान करनेसे वह इस अपराधसे छूट जाता है। पृथ्वि! पूजाके अवसरपर मेरे भक्तोंद्वारा होनेवाले अपराधोंके प्रायश्चित्त मैंने तुम्हें बतला दिये हैं। अब देवि! मेरी भक्तिमें रहनेवाला जो व्यक्ति मेरे कर्मोंका त्याग करके दूसरे कर्मोंमें लग जाता है, उसका फल बतलाता हूँ। वह व्यक्ति दूसरे जन्ममें मूर्ख होता है। अब उसके लिये प्रायश्चित्तकी विधि बतलाता हूँ। उसे पंद्रह दिनोंतक खुले आकाशमें सोना चाहिये। इससे वह पापसे निश्चय ही मुक्त हो जाता है।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! जो व्यक्ति नीला वस्त्र पहनकर मेरी उपासना करता है, वह पाँच सौ वर्षोंतक कीड़ा बनकर रहता है। अब उसके अपराधका प्रायश्चित्त बतलाता हूँ। उसे विधिपूर्वक 'चान्द्रायणव्रत'का अनुष्ठान करना चाहिये। इससे वह पापसे मुक्त हो जाता है। जो व्यक्ति अविधिपूर्वक मेरा स्पर्श करता है और मेरी उपासनामें लगता है, उसे भी दोष लगता है और वह मेरा प्रियपात्र नहीं बन सकता। उसके द्वारा दिये गये गन्ध, माल्य, सुगन्धित पदार्थ तथा मोदक आदिको मैं कभी ग्रहण नहीं करता।

पृथ्वी बोली—प्रभो! आप जो मुझे आचारके व्यतिक्रमकी बात सुना रहे हैं तो कृपाकर इनके प्रायश्चित्तोंको तथा सदाचारके नियमोंको भी बतानेकी कृपा

कीजिये। भगवन्! किस कर्मके विधानसे सम्पन्न होकर आपके कर्म-परायण रहनेवाले भागवत-पुरुष आपके श्रीविग्रहके पास पहुँचकर स्पर्श तथा उपासना करनेके योग्य होते हैं? यह भी बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह कहते हैं—सुश्रोणि! जो सम्पूर्ण कर्मोंका त्याग करके मेरी शरणमें आकर उपासना करता है, उसका कर्तव्य सुनो। मेरे उपासकको चाहिये कि वह पूर्वमुख बैठकर जलसे दोनों पैरोंको धोकर फिर तीन बार हाथसे पवित्र मृत्तिकाका स्पर्शकर जलसे अपने हाथ धो डाले। इसके उपरान्त मुख, नासिकाके दोनों छिद्र, दोनों आँख और दोनों कानोंको भी धोये। दोनों पैरोंको पाँच-पाँच बार धोये। फिर दोनों हाथोंसे मुख पोंछकर सारे संसारको भूलकर एकमात्र मेरा स्मरण करते हुए प्राणायाम करे। उपासकको चाहिये कि वह परब्रह्मका ध्यान करते हुए, जलसिक्त अंगुलियोंसे तीन बार अपने सिरका, तीन बार दोनों कानोंका और तीन बार नासिकाके छिद्रोंका स्पर्श करे, फिर तीन बार जल ऊपर फेंकना चाहिये।

यदि उसे मुझे प्रसन्न करनेकी इच्छा है तो फिर मेरे श्रीविग्रहके वामभागका स्पर्श करे। मेरे कर्ममें स्थित पुरुष यदि इस प्रकारका कर्म करता है तो उसे कोई दोष स्पर्श नहीं कर सकता।

पृथ्वी बोली—भगवन्! जो दम्भी या व्यभिचारी पुरुष अविधिपूर्वक स्पर्शकर मेरी पूजा करने लगता है, उसके लिये तापन और शोधनकी भी क्रिया होती होगी? अतः उसे आप बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! मेरे कर्मका अनादर करनेवाले व्यक्तियोंको जो गति प्राप्त होती है, इसके विषयमें विचारपूर्वक मैं कहता हूँ, सुनो। मुझसे सम्बन्धित नियमोंका ठीक रूपसे पालन न कर जो अपवित्र व्यक्ति मेरी उपासनामें लग जाता है, उसे ग्यारह हजार वर्षोंतक नियमानुसार कीड़ा होकर रहना पड़ता है, इसमें कोई संशय नहीं है। उसकी शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त यह है—उसे महासांतपन अथवा तप्तकृच्छ्रव्रत करना चाहिये। यशस्विनि! ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य—इनमें जो भी मेरे मतके समर्थक हैं, उन्हें इस विधिके अनुसार यह प्रायश्चित्त करना आवश्यक है। इसके फलस्वरूप पापसे छूटकर वे परम गति प्राप्त कर लेते हैं। मेरी भक्तिमें तत्पर रहनेवाला जो व्यक्ति क्रोधमें भरकर मेरे गात्रोंका स्पर्श करता है और जिसका चित्त एकाग्र नहीं रहता, उसपर मैं प्रसन्न नहीं होता, बल्कि मुझे उसपर क्रोध ही होता है। जो सदा इन्द्रियोंको वशमें रखता है, जिसके मनमें मेरे प्रति श्रद्धा है, पाँचों इन्द्रियाँ नियमानुसार कार्य करती हैं तथा जो लाभ और हानिसे कोई प्रयोजन नहीं रखता, ऐसा पवित्र व्यक्ति मुझे प्रिय है। जिसमें अहंकार लेशमात्र भी नहीं रहता तथा मेरी सेवामें जिसकी विशेष रुचि रहती है, वह मुझे प्रिय है। अब इनके अतिरिक्त दूसरे व्यक्तियोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। जो मुझमें श्रद्धा-भक्ति रखता है, जो शुद्ध एवं पवित्र भी है, फिर भी यदि क्रोधके आवेशमें मेरा स्पर्श करता या मेरी परिक्रमा करता है, वह उस क्रोधके फलस्वरूप सौ वर्षोंतक चील पक्षीकी योनिमें जन्म पाता है, फिर सौ वर्षोंतक उसे बाज बनकर रहना पड़ता है और तीन सौ वर्षोंतक वह मेढकका जीवन व्यतीत कर दस वर्षोंतक राक्षसका शरीर पाता है। फिर वह इक्कीस वर्षोंतक अंधा रहकर बत्तीस वर्षोंतक गीध तथा दस वर्षोंतक चक्रवाककी योनिमें रहता है। इसमें वह शैवाल भक्षण करता तथा आकाशमें उड़ता रहता है। इस प्रकार क्रोधी उपासकोंकी दुर्गति होती है और उन्हें संसारचक्रमें भटकना पड़ता है।

पृथ्वीने कहा—जगत्प्रभो! आपने जो बात बतलायी उसे सुनकर मेरा हृदय विषाद एवं आतङ्कसे भर गया है।

देवेश्वर ! मैं प्रार्थना करती हूँ कि मेरी प्रसन्नताके लिये अखिल जगत्‌को सुखी बनानेवाला आप कोई ऐसा प्रायश्चित्त बतानेकी कृपा करें, जिसका पालन करके कर्मशील विवेकी पुरुष इस पापसे मुक्त होकर शुद्ध हो सके ? भगवन् ! वह प्रायश्चित्त ऐसा होना चाहिये, जिसे थोड़ी शक्तिवाले तथा लोभ एवं मोहसे ग्रस्त व्यक्ति भी निर्भीकतापूर्वक सरलतासे सम्पादन कर सकें और कठिन यातनाओंसे उनका उद्धार हो जाय।

पृथ्वीके इस प्रकार प्रार्थना करनेके समय ही कमल-नयन भगवान् वराहके सम्मुख योगीश्वर सनत्कुमार भी पहुँच गये। वे ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं। उन मुनिवरने पृथ्वीकी बात सुनकर भगवान् वराहकी प्रेरणासे उससे इस प्रकार कहने लगे।

सनत्कुमारजी बोले—'देवि ! तुम धन्य हो जो भगवान्‌से इस प्रकारका प्रश्न किया है। इस समय साक्षात् भगवान् नारायण ही वराहका रूप धारणकर यहाँ विराजमान हैं। सम्पूर्ण मायाकी रचना इन्हींके द्वारा हुई है। इनसे तुम्हारा क्या 'वार्तालाप हुआ है, उसका सारांश बतलाओ। उस समय सनत्कुमारकी बात सुनकर पृथ्वीने उनसे कहा—'ब्रह्मन् ! मैंने इनसे क्रियायोग एवं अध्यात्मका रहस्य पूछा था। ब्रह्मन् ! मेरे पूछनेपर इन भगवान् नारायणने मुझे ज्ञानयोगके साथ उपासनाकी बातें बतलायीं। साथ ही क्रोधके आवेशमें आकर उपासना करनेके दोषका भी वर्णन किया। फिर इसके प्रायश्चित्तमें उन्होंने बताया कि गृहस्थके घरसे शुद्ध भिक्षा माँगकर मनुष्य उस पापसे मुक्त हो जाता है। यह भगवान् जनार्दनका मेरे प्रति उपदेश था। फिर उन्होंने ऐसी विधि बतलायी, जिसे करनेसे भक्तको सभी प्रकारके सुख-सम्पत्तिकी प्राप्ति हो।' यह सुनकर सनत्कुमारजी भी पृथ्वीके साथ ही पुनः भगवान्‌के उपदेशोंको सुनने लगे।

भगवान् वराह बोले—जगत्‌में जो प्राणी पूजाके अयोग्य पुष्पसे मेरी अर्चना करता है, उसकी पूजा-को न तो मैं स्वीकार करता हूँ और न वैसा व्यक्ति ही मुझे प्रिय है। देवि ! जिनकी मुझमें तो भक्ति है, किंतु जो अज्ञानसे भरे हैं, वे मुझे प्रसन्न नहीं कर पाते, उन्हें तो रौरव नामक भयंकर नरकमें गिरना पड़ता है। अज्ञानके दोषके कारण वे अनेक दुःखोंका अनुभव करते हैं। ऐसा व्यक्ति दस वर्षोंतक वानर, तेरह वर्षोंतक बिल्ली, पाँच वर्षोंतक बक, बारह वर्षोंतक बैल, आठ वर्षोंतक बकरा, एक महीने ग्राममें रहनेवाला मुर्गा तथा तीन वर्षोंतक भैंसके रूपमें जीवन व्यतीत करता है, इसमें कोई संशय नहीं। भद्रे ! जो पुष्प मुझे अप्रिय है, इसके प्रसङ्गमें मैं इतनी बातें बता चुका। साथ ही जो गन्धहीन, कुरूप पुष्प मुझे अर्पण करते हैं, उनकी दुर्गति भी बतला दी।

पृथ्वीने पूछा—भगवन् ! जिसका अन्तःकरण परम शुद्ध है, उसीके व्यवहारसे यदि आप प्रसन्न होते हैं तो कोई ऐसा साधन बतलाइये, जिसका प्रयोग करके आपके कर्ममें परायण रहनेवाले भक्त अन्तर्हृदयसे शुद्ध हो जायँ।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! जिसके विषयमें तुम मुझसे पूछ रही हो, उसका विचारपूर्वक वर्णन करता हूँ, सुनो। प्रायश्चित्तके सहारे मानव शुद्ध हो जाते हैं। ऐसे व्यक्तिको एक महीनेतक एक समय भोजन करना चाहिये। दिनमें वह सात बार वीरासनका अभ्यास करे, एक महीनेतक दिनके चौथे पहरमें (केवल) घृत अथवा पायस (खीर)का आहार करे। तीन दिनोंतक यवान्न (जौ) खाकर रहे और तीन दिनोंतक वह केवल वायुके आधारपर ही रह जाय। जो व्यक्ति इस विधिका पालन कर मेरे कर्मोंमें उद्यत रहता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर मेरे लोकको प्राप्त होता है।

(अध्याय १३३-१३४)

सेवापराध और प्रायश्चित्त-कर्मसूत्र

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वीदेवि ! जो लाल वस्त्र पहनकर मेरी उपासना करता है, वह भी दोषी माना जाता है । अब उसके लिये दोषमुक्त करनेवाला प्रायश्चित्त बतलाता हूँ, सुनो । प्रायश्चित्तका प्रकार यह है—ऐसे पुरुषको चाहिये कि सत्रह दिनोंतक वह एक समय भोजन करे, तीन दिनोंतक वायु पीकर रहे और एक दिन केवल जलके आहारपर बिताये । यह प्रायश्चित्त सम्पूर्ण संसारकी आसक्तियोंसे मुक्त करानेवाला है। जो पुरुष अँधेरी रातमें बिना दीपक जलाये मेरा स्पर्श करता है तथा जल्दीके कारण अथवा मूर्खतावश शास्त्रकी आज्ञाका पालन न कर मेरा स्पर्श करता है, उसका भी पतन होता है । वह अधम मानव उस दोषसे क्लेश भोगता है । वह एक जन्मतक अन्धा होकर अज्ञानमय जीवन बिताता है और अभक्ष्य-अपेय पदार्थोंको खाता-पीता रहता है । अब मैं रात्रिके अन्धकारमें दीपरहित स्थितिमें अपने स्पर्शदोषका प्रायश्चित्त बतलाता हूँ, जिससे दोष-मुक्त होकर वह मेरे लोकको प्राप्त होता है । ऐसा व्यक्ति अनन्य भक्तिभावसे पंद्रह दिनोंतक आँखें ढककर रहे और बीस दिनोंतक सावधान होकर एक समय भोजन करे और फिर जिस किसी भी महीनेकी द्वादशी तिथिको एक समय भोजन कर और जल पीकर रह जाय । इसके पश्चात् गोमूत्रमें सिद्ध किया हुआ यवान्न भक्षण करे । इस प्रायश्चित्तके प्रभावसे वह इस दोषसे मुक्त हो जाता है ।

देवि ! जो व्यक्ति काला वस्त्र पहनकर मेरी उपासना करता है, उसका भी पतन होता है । वह अगले जन्ममें पाँच वर्षोंतक लाक्षा (लाह) आदि वस्तुओंमें रहनेवाला घुन होता है, फिर पाँच वर्षोंतक नेवला और दस वर्षोंतक कछुआ होकर रहता है । फिर कबूतरकी योनिमें जन्म लेकर वह चौदह वर्षोंतक मेरे मन्दिरके पार्श्वभागमें रहता है । अब उसका प्रायश्चित्त बतलाता हूँ । उसे चाहिये कि सात दिनोंतक यवके आटेकी लपसी और तीन दिनोंतक यवके सत्तूकी एक पिण्डी तथा तीन रातोंतक तीन-तीन पिण्डियाँ खाय । इससे वह पापसे मुक्त हो जाता है। जो बिना धोये वस्त्र पहनकर मेरी उपासनामें लग जाता है, वह भी इस अपराधसे संसारमें गिर जाता है । जिसके फलस्वरूप वह एक जन्मतक मतवाला हाथी, एक जन्मतक ऊँट, एक जन्म भेड़िया, एक जन्ममें सियार और फिर एक जन्ममें घोड़ा होता है । इसके बाद एक जन्ममें वह मोर और पुनः एक जन्ममें मृग भी होता है । इस प्रकार सात जन्म व्यतीत होनेपर उसे मनुष्यकी योनि मिलती है । उस जन्ममें वह मेरा भक्त गुणज्ञ पुरुष और कार्यकुशल होकर मेरी उपासनामें परायण होता है तथा निरपराधी और अहंकार-शून्य जीवन व्यतीत करता है । अब उसके शुद्ध होनेका उपाय बतलाता हूँ, उसे सुनो, जिससे उसे हीन योनियोंमें नहीं जाना पड़ता ।

वह क्रमशः तीन दिनोंतक यव, तीन दिन तिलकी खली और फिर तीन दिनोंतक वह पत्ते, जल, खीर एवं वायुके आहारपर रह जाय । इस प्रकारके नियमका पालन करनेसे अशुद्ध वस्त्र पहननेवाले उपासकका दोष मिट जाता है और उसे कई जन्मोंतक संसारमें भटकना नहीं पड़ता ।

देवि ! जो मानव बत्तक आदि पक्षियों या किसी भी प्रकारका मांस खाकर मेरी पूजामें लगता है, वह पंद्रह वर्षोंतक बत्तककी योनिमें रहता है । फिर वह दस वर्षोंतक तेन्दुआ नामक हिंसक वन्य जन्तु होता है और पाँच वर्षोंतक उसे सूअर बनना पड़ता है । मेरे प्रति किये गये उस अपराधसे उसे इतने वर्षोंतक संसारमें भटकना पड़ता है । इस प्रकारके मांस खानेवाले व्यक्तिके लिये प्रायश्चित्त यह है कि वह क्रमशः तीन-तीन दिनोंतक यव, वायु,

फल, तिल, बिना नमकके अन्नके आहारपर रहे। इस प्रकारका पंद्रह दिनोंमें प्रायश्चित्त पूरा कर एक बारके मांसभक्षणदोषसे शुद्ध होता है। बार-बारके ऐसे अपराधोंका कोई प्रायश्चित्त नहीं है।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! दीपकका स्पर्श करके हाथ धो लेना चाहिये, अन्यथा इससे भी दोषका भागी बनना पड़ता है। महाभागे ! इसके प्रायश्चित्तका यह रूप है कि जिस किसी भी महीनेके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिके शुभ अवसरपर दिनके चौथे भागमें भोजन करके ठंडी ऋतुमें रात्रिके अवसरपर खुले आकाशमें सोये, फिर दीपदानकर इस दोषसे वह मुक्त हो जाता है। भद्रे ! न्यायके अनुसार इस कर्मके प्रभावसे पुरुषमें पवित्रता आ जाती है और वह मेरे कर्म-पथपर आरूढ़ हो जाता है। दीपक स्पर्श करके बिना हाथ धोये हुए मेरे कर्ममें लगनेका यह प्रसङ्ग तुम्हें बतला दिया। यह प्रायश्चित्त संसारमें शुद्ध करनेके लिये परम साधन है, जिसका पालन करके पुरुष कल्याण प्राप्त कर लेता है।

देवि ! जो मनुष्य श्मशानभूमिमें जाकर बिना स्नान किये ही मुझे स्पर्श करता है, उसे भी सेवापराधका दोष लगता है, फलस्वरूप वह चौदह वर्षोंतक पृथ्वीपर शृगाल होकर रहता है। फिर सात वर्षोंतक आकाशमें उड़नेवाला गीध होता है। इसके पश्चात् चौदह वर्षोंतक उसे पिशाचयोनिमें जाना पड़ता है।

पृथ्वी बोली—जगत्प्रभो ! भक्तोंकी याचना पूर्ण करना आपका स्वभाव है। आपने यह जो परम गोपनीय विषय कहा है, इससे मुझे अत्यन्त आश्चर्य हो रहा है, अतः प्रभो ! आपसे मेरी प्रार्थना है कि वह सम्पूर्ण विषय मुझे स्पष्टरूपसे बतानेकी कृपा करें। कमललोचन भगवान् शंकरने तो श्मशानकी बड़ी प्रशंसा की है। और उसे पवित्र बतलाया है, फिर वहाँ दोष क्या है ? रुद्र तो परम बुद्धिमान् हैं, उनमें किसी ऐश्वर्यकी भी कमी नहीं है, तब भी वे दीप्तिमान कपालको लिये सदा श्मशानभूमिमें विराजते हैं, फिर आप उसकी निन्दा कैसे करते हैं ?

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! पवित्र व्रत करनेवाले पुरुष भी आजतक इस रहस्यसे अनभिज्ञ हैं। अखिल भूतोंके अध्यक्ष भगवान् शंकरको कोई नहीं जानता। उन्होंने त्रिपुरवधके समय बहुतेरे बालक-वृद्धों तथा बहुत-सी स्त्रियोंको भी मार डाला था, अतएव उस पापसे वे बड़े दुःखी थे। उस समय मैंने उन नष्टैश्वर्य भगवान् शंकरको स्मरण किया और वे मेरे पास पहुँचे। उस समय ज्यों ही मैंने उनपर अपनी दिव्य दृष्टि डाली कि वे पुनः सम्पूर्ण भूतोंके शासक महान् रुद्र बन गये। उस समय उनकी इच्छा मेरे यजनकी हुई, पर सहसा उनका ज्ञान और योगका बल नष्ट-सा हो गया। तब मैंने उनसे कहा—'प्रभो ! आप ऐसे मुग्ध-से क्यों बैठे हैं ? (आप मोहसे कैसे घिरे हैं ?)' बनाना, बिगाड़ना और बिगड़े हुएको पुनः बनाना—यह सब तो आपके हाथकी बात है। मृत्यु आपके अधीन रहती है, आप सबके मूल कारण और परमाश्रय हैं, आपको देवताओंका भी देवता कहा जाता है, आप साम और ऋक्स्वरूप हैं। देवेश्वर ! आपकी इस म्लानताका कारण क्या है ? आप कृपया इन्हें स्पष्टरूपसे बतलाइये। आप अपने योग और मायाको भी सँभालें। देखें, यह परब्रह्म परमेश्वरकी लीला है। मेरे मनमें आपको प्रसन्न करनेकी इच्छा हुई है, अतएव मैं यहाँ आया हूँ।'

वसुंधरे ! फिर तो मेरी बात सुनकर शंकरजीको पूर्ण ज्ञान हो गया। उन्होंने मधुर वाणीमें मुझसे कहा—'नारायण ! आप ध्यान देकर मेरी वाणी सुननेकी कृपा कीजिये। आप सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र शासक हैं। विष्णो ! अब आपकी कृपासे मुझमें पुनः देवत्व जाग्रत् हो गया।

माधव ! मुझे योगकी उपलब्धि हो गयी और सांख्यका ज्ञान भी सुलभ हो गया, मेरी चिन्ताएँ शान्त हो गयीं, यही नहीं, आपकी कृपासे पूर्णमासीके अवसरपर उमड़नेवाले समुद्रकी भाँति मैं आनन्दमय बन गया हूँ। भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेवाले भगवन् ! मैं आपको तत्त्वतः जानता हूँ और आप मुझे। हम दोनोंकी अभिन्नताको दूसरा कोई भी नहीं देख सकता है। आप महान् ऐश्वर्यसे सम्पन्न हैं। सम्पूर्ण मायाकी रचना आपके द्वारा हुई है।'

माधवि ! भूतगणोंके महान् अधिष्ठाता रुद्रने इस प्रकार मुझसे कहा और एक मुहूर्ततक वे ध्यानमें बैठे रहे। इसके बाद पुनः मुझसे कहा—'विष्णो ! आपकी कृपासे ही मैंने त्रिपुरासुरका वध किया था, उस समय मैंने बहुत-से दानवों और गर्भिणी स्त्रियोंका भी संहार कर दिया था। दसों दिशाओंमें भागते हुए बालक एवं वृद्धोंको भी मैंने मार डाला था। उस पापके कारण मैं योगमाया और ऐश्वर्योंसे शून्य हो गया हूँ। आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप मुझे कोई ऐसा साधन बतलाइये, जिसके आचरणसे मेरे पाप नष्ट हो जायँ और मैं शुद्ध हो जाऊँ।

भगवान् रुद्रको इस प्रकार चिन्तित देखकर मैंने उनसे कहा—'शंकरजी ! आप कपालकी माला धारण करें और 'समल' स्थानमें चले जायँ।' उस समय मेरी ऐसी बात सुनकर उन भूतभावन भगवान् भवने मुझसे पुनः कहा—'जगत्प्रभो ! वह 'समल' स्थान कहाँ है ? आप मुझे बोध देकर पूर्णरूपसे समझानेकी कृपा करें।' इसपर मैंने उनसे कहा—'शंकरजी ! श्मशान ही रक्त-पीबके गन्धसे युक्त 'समल'-स्थान है, जहाँ कोई भी मनुष्य जाना नहीं चाहता। वहाँ मनुष्य जाकर स्पृहारहित हो जाता है। शिवजी ! आप कपालोंको लेकर वहीं रमण करें। अपने व्रतमें अटल रहकर देवताओंके वर्षसे आप एक हजार वर्षतक वहाँ रहें और पापोंको नष्ट करनेके लिये आप वहाँ रहकर मौनव्रतका पालन करें। पूरे एक हजार वर्षतक उस श्मशान-भूमिमें रहनेके पश्चात् आप मुनिवर गौतम मुनिके आश्रमपर जायँ। वहाँ आपको पूर्ण आत्मज्ञानकी उपलब्धि हो जायगी और उस समय आप इस कपालसे भी मुक्त हो जायँगे।'

वसुंधरे ! इस प्रकार रुद्रको वर देकर मैं वहीं अन्तर्धान हो गया और रुद्र भी गजचर्मसे आच्छन्न होकर श्मशान-भूमिमें भ्रमण करते हुए निवास करने लगे। इसीलिये श्मशान-भूमि मुझे पसंद नहीं है और मैंने श्मशान-भूमिको निन्दित बताया है। वहाँ जाकर बिना संस्कार किये हुए प्राणीको मेरी पूजा-अर्चामें उपस्थित नहीं होना चाहिये। अब वह प्रायश्चित्त बताता हूँ, जिसका पालन करनेसे साधक इस पापसे छूट जाता है। वह पंद्रह दिनोंतक दिनके चौथे भागमें एक बार भोजन करे। रातमें एक वस्त्र पहनकर कुशके विस्तरपर आकाश-शयन करे, अर्थात् शीतकालकी रात्रिमें खुले आकाशमें शयन करे और प्रातःकाल उठकर वह पञ्चगव्यका प्राशन करे। ऐसा करनेसे उसके पापकर्मका परिमार्जन हो जाता है और वह पुरुष सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर मेरे लोकको प्राप्त होता है।

सुश्रोणि ! इस प्रकार जो व्यक्ति हींग खाकर मेरी उपासना करता है, उसे भी दोष लगता है, अब उसके पापका परिणाम तथा शोधन करनेवाला प्रायश्चित्त सुनो। वह जन्मान्तरमें दस वर्षतक उल्लू और तीन वर्षोंतक कछुआ होकर निवास करता है और उसे फिरसे मनुष्यकी योनि मिलती है और मेरी उपासनामें उसकी रुचि होती है। वसुंधरे ! जिन्हें इस संसारमें केवल दूसरोंके दोष ही दिखायी पड़ते हैं, सुन्दरि ! उनसे मुक्त होनेके लिये महान् ओजस्वी प्रायश्चित्त बतलाता हूँ, जिसका पालन कर वह पवित्र होकर संसार-सागरको पार कर जाता है। इस

पापसे छूटनेके लिये मनुष्यको एक दिन यवकी लपसी खाकर तथा एक दिन गोमूत्रके आहारपर रहना चाहिये। रातमें वह वीरासनसे बैठकर तथा आकाश-शयनद्वारा कालक्षेप करे। इस विधिका पालन करनेसे वह पुरुष संसारमें न जाकर मेरे लोकमें पहुँच जाता है।

सुशोभने! जो दम्भी मनुष्य मदिरा पानकर मेरी उपासनामें सम्मिलित होता है, उसका दोष बताता हूँ, तुम मनको एकाग्र करके सुनो। इस अपराधके कारण वह व्यक्ति दस हजार वर्षोंतक दरिद्र होता है। जो मेरा भक्त है और जिसने वैष्णव दीक्षा भी ग्रहण कर ली है, वह यदि कोई कार्य सिद्ध करनेके उद्देश्यसे मोहित होकर मद्य पी लेता है तो उसके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है। वसुंधरे! अब अदीक्षित उपासकके लिये प्रायश्चित्तके उपाय बतलाता हूँ, वह सुनो। यदि यह अग्निवर्ण-प्रतप्त सुराका पान करे तो उक्त पापसे छूट सकता है। जो पुरुष इस विधिके अनुसार प्रायश्चित्त करता है, वह न तो पापसे लिप्त होता है और न संसारमें उसकी उत्पत्ति ही होती है।

पृथ्वि! मेरी उपासना करनेवाला जो पुरुष वनकुसुमका, जिसे लोक-व्यवहारमें 'बरे' कहते हैं, शाक खाता है, वह पंद्रह वर्षोंतक घोर नरकमें पड़ता है। इसके बाद उसको भूलोकमें सूअरकी योनि प्राप्त होती है। फिर तीन वर्षोंतक वह कुत्ता और एक वर्षतक शृगाल होकर जीवन व्यतीत करता है।

भगवान् वराहकी बात सुनकर देवी पृथ्वीने श्रीहरिसे पुनः पूछा कि—'कुसुमके शाकका नैवेद्य अर्पण करनेसे जो पाप बन जाता है, प्रभो! उससे कैसे उद्धार हो सकता है—इसके लिये प्रायश्चित्त बतानेकी कृपा कीजिये।'

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! जो मानव 'वनकुसुम'के शाकको मुझे अर्पितकर स्वयं भी खा लेता है, वह दस हजार वर्षोंतक नरकमें क्लेश पाता है। उसका प्रायश्चित्त 'चान्द्रायण-व्रत' ही है। परंतु यदि वह केवल उसका प्रसाद भोग बनाकर ही रह जाता है, खाता नहीं है तो वह बारह दिनोंतक पयोव्रत करे। जो इस प्रकार प्रायश्चित्त कर लेता है, वह पापसे लिप्त नहीं होता और मेरे लोकको ही प्राप्त होता है।

माधवि! मेरे कर्ममें परायण जो मन्दबुद्धिका व्यक्ति दूसरेके वस्त्रको बिना ही धोये पहन लेते हैं तथा मेरी उपासनामें लग जाते हैं तो उन्हें भी प्रायश्चित्ती बनना पड़ता है। देवि! यदि वह मेरा स्पर्श करता है तथा परिचर्या करता है तो वह दस वर्षोंतक हरिण बनकर रहता है, फिर एक जन्ममें वह लँगड़ा होता है और बादमें वह मूर्ख, क्रोधी और अन्तमें पुनः मेरा भक्त होता है। सुश्रोणि! अब मैं उसका प्रायश्चित्त बतलाता हूँ, जिससे पाप-मुक्त होकर उसकी मेरी भक्तिमें रुचि उत्पन्न होती है। वह मेरी भक्तिमें संलग्न होकर दिनके आठवें भागमें आहार ग्रहण करे। जिस दिन माघमासके शुक्ल-पक्षकी द्वादशी तिथि हो, उस दिन जलाशयपर जाकर शान्त-दान्त और दृढव्रती होकर अनन्यभावसे मेरा चिन्तन करे। इस प्रकार जब दिन-रात समाप्त हो जाय तो प्रातःकाल सूर्योदय हो जानेपर पञ्चगव्यका प्राशन कर मेरे कार्यमें उद्यत हो जाय। जो इस विधानसे प्रायश्चित्त करता है, वह अखिल पापोंसे मुक्त होकर मेरे लोकको प्राप्त होता है।

जो व्यक्ति नये अन्न उत्पन्न होनेपर नवान्नविधिका पालन न करके उसे अपने उपयोगमें लेता है, उसके पितरोंको पंद्रह वर्षोंतक कुछ भी प्राप्त नहीं होता। और जो मेरा भक्त होकर भी नये अन्नोंको दूसरोंको न देकर स्वयं अपने ही खा लेता है तो वह निश्चय ही धर्मसे च्युत हो जाता है। महाभागे! इसके लिये प्रायश्चित्त बतलाता हूँ, जो मेरे भक्तोंके लिये सुखदायी है। वह तीन रात उपवास कर चौथे दिन आकाश-

शयन कर सूर्यके उदय होनेके पश्चात् पञ्चगव्यका प्राशन कर सद्यः पापसे मुक्त हो जाता है। जो व्यक्ति इस विधिके अनुसार प्रायश्चित्त कर लेता है, वह अखिल आसक्तियोंका भलीभाँति त्याग कर मेरे लोकमें चला जाता है।

इसी प्रकार भूमे! जो मानव मुझे बिना चन्दन और माला अर्पण किये ही धूप देता है, वह इस दोषके कारण दूसरे जन्ममें राक्षस होता है और उसके शरीरसे मुर्देकी दुर्गन्ध निकलती रहती है और इक्कीस वर्षोंतक वह लौहशालामें निवास करता है। अब उसके लिये भी प्रायश्चित्त बताता हूँ, सुनो। उसकी विधि यह है—जिस-किसी मासके शुक्लपक्षकी द्वादशीतिथिके दिन वह व्रत करके दिनके आठवें भागमें सायंकाल यथालब्ध आहार ग्रहण करे। फिर प्रातःकाल जब सूर्यमण्डल दिखायी पड़ने लगे, उस समय वह पञ्चगव्यका प्राशन करे। इसके प्रभावसे वह पुरुष पापसे सद्यः छूट जाता है। इस विधिके अनुसार जो प्रायश्चित्तका पालन करता है, उसके पिता-पितामह आदि पितर भी तर जाते हैं।

भूमे! जो मनुष्य पहले भेरी आदिद्वारा शब्द किये बिना ही मुझे जगाता है, वह निश्चय ही एक जन्ममें बहरा होता है। अब! मैं उसका प्रायश्चित्त बतलाता हूँ, जिससे वह पापसे छूट जाता है। वह किसी शीत-ऋतुके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिकी रातमें आकाश-शयन करे। इस नियमका पालन करनेसे मानव पापसे शीघ्र छूट जाता है।

वसुंधरे! जो मानव बहुत अधिक भोजन करके अजीर्ण-युक्त बिना स्नान किये ही मेरी उपासनामें आ जाता है, वह इस अपराधके कारण क्रमशः कुत्ता, वानर, बकरा और शृगालकी योनियोंमें एक-एक बार जन्म लेकर फिर अन्धा और बहरा होता है। बादमें इस क्लेशमय संसारको पारकर वह किसी अच्छे कुलमें उत्पन्न होता है। उस समय अपराधसे छूट जानेके कारण वह पुरुष परम शुद्ध और श्रेष्ठ भगवद्भक्त होता है। मैं अब उसके लिये प्रायश्चित्त बतलाता हूँ, जिसके पालन करनेसे वह पापसे छूट जाय। प्रायश्चित्तका स्वरूप यह है कि उसे क्रमशः तीन-तीन दिनोंतक यावक, मूलक, पायस (खीर) सत्तू तथा वायुके आहारके आधारपर रहकर फिर तीन रात आकाश-शयन करना चाहिये। फिर ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर दन्तधावन कर शरीरको परम शुद्ध करनेके लिये उसे पञ्चगव्यका प्राशन करना चाहिये। जो मानव इस विधानके अनुसार प्रायश्चित्त करता है, उसपर पापका प्रभाव नहीं पड़ सकता और वह मेरे लोकको प्राप्त होता है।

महेश्वरि! यह प्रसङ्ग आख्यानोंमें महाख्यान और तपस्याओंमें परम तप है। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करता है, वह व्यक्ति मेरे लोकको प्राप्त होता है। साथ ही वह अपने दस पूर्व और दस पीछेकी पीढ़ियोंको तार देता है। यह प्रसङ्ग परम मङ्गलकारी तथा सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाला है। अपने व्रतमें अटल रहनेवाला जो भागवत पुरुष इसका सदा पाठ करता है, वह सम्पूर्ण अपराधोंका आचरण करके भी उससे लिप्त नहीं होता। यह जप करने योग्य तथा परमप्रमाणभूत शास्त्र है। इसे मूर्खोंके समाजमें अथवा निन्दित व्यक्तियोंके सामने नहीं पढ़ना चाहिये। देवि! तुमने मुझसे जो पूछा था, वह आचारका निर्णीत विषय मैंने तुम्हें बतला दिया, अब तुम दूसरा कौन-सा प्रसङ्ग सुनना चाहती हो, यह बतलाओ।

(अध्याय १३५—१३६)

वराहक्षेत्रकी* महिमाके प्रसङ्गमें गीध और शृगालका वृत्तान्त तथा आदित्यको वरदान

पृथ्वी बोली—भगवन्! आपने मुझे तथा अपने भक्तोंको प्रिय लगनेवाली बड़ी सुन्दर बात सुनायी। महाबाहो! अब मैं यह जानना चाहती हूँ कि 'कुब्जाम्रक' क्षेत्रमें सबसे श्रेष्ठ एवं पवित्र आचरणीय व्रत क्या है? तथा भक्तोंको सुख देनेवाला इसके अतिरिक्त अन्य तीर्थ कौन-सा है?

भगवान् वराह बोले—देवि! ऐसे तो मेरे सभी क्षेत्र परम शुद्ध हैं; फिर भी 'कोकामुख', 'कुब्जाम्रक' तथा 'सौकरव'-स्थान (वराहक्षेत्र) क्रमशः उत्तरोत्तर उत्तम माने जाते हैं; क्योंकि इनमें सम्पूर्ण प्राणियोंको संसारसे मुक्त करनेके लिये अपार शक्ति है। देवि! भागीरथी गङ्गाके समीप यह वही स्थान है, जहाँ मैंने तुम्हें समुद्रसे निकालकर स्थापित किया था।

पृथ्वी बोली—प्रभो! 'सौकरव'में मरनेवाले प्राणी किन लोकोंको प्राप्त होते हैं तथा वहाँ स्नान करने एवं उस तीर्थके जलके पान करनेवालेको कौन-सा पुण्य प्राप्त होता है? कमलनयन! आपके उस वराहक्षेत्रमें कितने तीर्थ हैं, आप यह सब मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—महाभागे! वराहक्षेत्रके दर्शन-अभिगमन आदिसे श्रेष्ठ पुण्य तो प्राप्त ही होता है, साथ ही उस तीर्थमें जिनकी मृत्यु होती है, उनके पूर्वके दस तथा आगे आनेवाली पीढ़ीके दस तथा (मातुल आदि कुलके) अन्य बारह पुरुष स्वर्गमें चले जाते हैं। सुश्रोणि! वहाँ जाने तथा मेरे (श्रीविग्रहके) मुखका दर्शन करनेमात्रसे सात जन्मोंतक वह पुरुष विशाल धन-धान्यसे परिपूर्ण श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न होता है, साथ ही वह रूपवान्, गुणवान् तथा मेरा भक्त होता है। जो मनुष्य वराहक्षेत्रमें अपने प्राणोंका त्याग करते हैं वे उस तीर्थके प्रभावसे शरीर त्यागनेके पश्चात् शङ्ख, चक्र और गदा आदि आयुधोंसे विभूषित चतुर्भुजरूप धारण कर श्वेतद्वीपको प्राप्त होते हैं। वसुंधरे! इसके अन्तर्गत 'चक्रतीर्थ' नामका एक प्रतिष्ठित क्षेत्र है, जिसमें व्यक्ति इन्द्रियोंपर संयम रखते हुए नियमानुकूल भोजन और वैशाखमासकी द्वादशी तिथिको विधिपूर्वक स्नानकर ग्यारह हजार वर्षोंतक विख्यात कुलमें जन्म पाकर प्रभूत धन-धान्यसे सम्पन्न रहकर मेरी परिचर्यामें परायण रहता है।

पृथ्वी बोली—भगवन्! सुना जाता है कि इस वराह-तीर्थमें चन्द्रमाने भी आपकी उपासना की थी, जो बड़े कौतूहलका विषय है। अतः आप इसे विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह बोले—देवि! चन्द्रमा मुझे स्वभावतया ही प्रिय हैं; अतः तप करनेके बाद मैंने उन्हें अपना देवदुर्लभ दर्शन दिया। पर मेरे उस स्वरूपको देखकर वे अपनेको सँभाल न सके और अचेत हो गये। मेरे तेजसे वे ऐसे मोहित हो गये कि मुझे देखनेकी भी उनमें शक्ति न रही। उन्होंने आँखें बंद कर लीं और घबराहटके कारण त्रस्त-नेत्र होकर कुछ भी बोल न पाये। इसपर मैंने उनसे धीरेसे कहा—'परम तपस्वी सोम! तुम किस उद्देश्यसे तप कर रहे हो? तुम्हारे मनमें जो बात हो, वह मुझसे बताओ। मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, अतः तुम्हें सब कुछ प्राप्त हो जायगा—इसमें कोई संशय नहीं।'

इसपर 'सोमतीर्थ'में स्थित होकर चन्द्रमाने कहा—'भगवन्! आप योगियोंके स्वामी हैं और संसारमें सबसे श्रेष्ठ हैं। आप यदि मुझपर प्रसन्न हैं तो यहाँ निवास करनेकी कृपा कीजिये, साथ ही मैं यह भी चाहता हूँ कि जबतक ये लोक रहें, तबतक आपमें मेरी निश्चलरूपसे अतुल श्रद्धा और भक्ति सदा बनी रहे। मेरा जो रूप है, वह कभी आपसे रिक्त न हो और वह सातों द्वीपोंमें सर्वत्र

* नन्दलाल दे आदिके अनुसार यह एटाके पासका 'सोरो' नामक स्थान है और अन्योंके मतसे पटनाके पासका [illegible] ।

दिखायी पड़े। यज्ञोंमें ब्राह्मण-समुदाय मेरे नामसे प्रसिद्ध सोमरसका पान करें। प्रभो! इसके प्रभावसे उन्हें परम एवं दिव्य गति प्राप्त हो जाय। अमावास्याको मुझमें क्षीणता आ जायगी, उसमें पितरोंके लिये पिण्डकी क्रियाएँ लाभकर होंगी, पर पूर्णिमाको मैं पुनः नियमानुसार सुन्दर दर्शनीय बन जाऊँ। अधर्ममें मेरी बुद्धि कभी न जाय और मैं ओषधियोंका भी स्वामी बन जाऊँ। महादेव! आप यदि मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे आनन्दित करनेके लिये यह वर देनेकी कृपा कीजिये।'

वसुंधरे! चन्द्रमाकी इन बातोंको सुनकर और उन्हें वैसा वरदान देकर मैं वहीं अन्तर्धान हो गया। महाभागे! चन्द्रमाने जहाँ एक पैरपर खड़े रहकर पाँच हजार वर्षोंतक महान् तपस्या की थी, वह 'सोमतीर्थ'-नामसे विख्यात हुआ तथा उन्हें दुर्लभ सिद्धि एवं कान्ति प्राप्त हुई। जो मेरा भक्त इस सोमतीर्थमें श्रद्धासे स्नानकर प्रतिदिन दिनके आठवें भागमें भोजन करके मेरी उपासनामें लगा रहता है, अब उसके फलका वर्णन करता हूँ। वह पैंतीस हजार वर्षोंतक ब्राह्मणका शरीर पाता है और वेद-वेदाङ्गका पारगामी विद्वान्, धनवान्, गुणवान्, दानी एवं मेरा निर्दोष भक्त होता है और संसारसागरको पार कर जाता है। यशस्विनि! यह ऐसा महत्त्वपूर्ण तीर्थ है, जहाँ महात्मा चन्द्रमाने दीर्घकालतक तपस्या की थी।

अब उस 'सोमतीर्थका' लक्षण बतलाता हूँ, सुनो। वैशाख शुक्ल द्वादशीको चन्द्रमाके अस्त होने एवं अन्धकारके प्रवृत्त होनेपर जहाँ बिना चन्द्रमाके ही पृथ्वीपर चन्द्रिका चमकती दीखे, उसे ही सोमतीर्थ समझना चाहिये। वास्तवमें यह महान् आश्चर्यका विषय है कि चन्द्रमाका आलोक (प्रकाश) तो दीखता है, पर स्वयं चन्द्रमा वहाँ नहीं दीखते। महाभागे! ये परम पवित्र सौकरवतीर्थ तथा सोमतीर्थ—मुझसे सम्बन्ध रखते हैं।

वसुंधरे! अब मैं एक दूसरी बात बतलाता हूँ, उसे सुनो; जिससे इस क्षेत्रकी अद्भुत महिमा प्रख्यापित होती है। यहाँ एक शृगाली रहती थी, जो बिना श्रद्धाके ही पूर्वकर्मवश दैवयोगसे मरकर इस क्षेत्रके प्रभावसे अगले जन्ममें गुणवती, रूपवती और चौंसठ कलाओंसे सम्पन्न श्यामा*सर्वाङ्गसुन्दरी राजाकी पुत्री हुई थी। उसी सोमतीर्थके पूर्वीभागमें 'गृध्रवट'नामका भी एक प्रसिद्ध तीर्थ है, जहाँ एक गीधकी अनायास मृत्यु हुई, जिसकी कोई कामना न थी, पर उसे मनुष्यकी योनि प्राप्त हुई थी।

पृथ्वी बोली—प्रभो! इस तीर्थके प्रभावसे तिर्यक्-योनिमें पड़े हुए गीध और शृगाली मनुष्य-शरीरको कैसे प्राप्त हुए? यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है! साथ ही उस तीर्थमें स्नान करनेसे अथवा प्राणत्याग करनेसे मनुष्य किस गतिको प्राप्त करते हैं तथा उनके शरीरपर कौनसे विशेष चिह्न होते हैं? केशव! आप मुझे यह भी बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह बोले—देवि! धर्मप्रधान सत्ययुगके बाद त्रेतायुगका प्रवेश ही हुआ था। उस समय काम्पिल्य† नगरमें ब्रह्मदत्त‡नामक एक धर्मनिष्ठ राजा रहते थे। उनका सभी लक्षणोंसे सम्पन्न एक सोमदत्त-नामक पुत्र था। एक बार वह पितरोंके उद्देश्यसे

* शास्त्रोंमें 'श्यामा' स्त्रीके अनेक रूप निर्दिष्ट हैं। (द्रष्टव्य–'वाचस्पत्य' एवं 'शब्दकल्पद्रुम'कोश अथवा 'मोनियर विलियम'का संस्कृत-अंग्रेजी कोश)। यह मुख्यतः सुवर्णके रंगकी अत्यन्त दीप्तिमती गौरवर्णकी स्त्री होती है। यथा—

श्यामा गुणवती गौरी दिव्यालंकारभूषिता। चतुरा शीलसम्पन्ना चित्तेनारुन्धती समा॥

अथवा—'तप्तकाञ्चनवर्णाभा सा स्त्री श्यामेति कथ्यते।' (पुरुषोत्तममासमाहा० ३। ४५)

† काम्पिल्य-फर्रुखाबाद जिलेमें कायमगंजसे ६ मील, फतेहगढ़से २८ मील पूर्वोत्तर गङ्गानदीके तटपर है। यहाँ राजा द्रुपदकी राजधानी थी। द्रौपदीका स्वयंवर यहीं हुआ था। (द्रष्टव्य—तीर्थाङ्क—पृ० ९०, १०७, ५३८ तथा महाभारत नामानुक्रमणिका, गीताप्रेस)

‡ ब्रह्मदत्तका यह चरित्र वाल्मी०रामा०बालकाण्ड, मत्स्यपुराण अध्याय १९–२१, हरिवंश १। २२–२५, शिवपुराण उमासंहिता ४१ तथा अन्यान्य पुराणोंमें भी प्राप्त होता है।

मृगोंके अन्वेषणमें आखेटके लिये बाघ और सिंहोंसे भरे वनमें गया; किंतु राजकुमारको पितृकार्यके उपयुक्त कोई वस्तु न दीखी। इस प्रकार वह इधर-उधर घूम ही रहा था कि उसकी दाहिनी ओरसे एक सियारिन निकली, जो (अनायास एक मृगपर छोड़े हुए) उसके बाणसे बिंध गयी और व्यथासे तड़पने लगी। फिर वह इस तीर्थमें जल पीकर एक शाखोट-वृक्षके नीचे गिर पड़ी। धूपसे व्याकुल तथा बाणसे बिंधी होनेके कारण न चाहनेपर भी उसके प्राण इस सोमतीर्थमें ही निकल गये। भद्रे! उसी समय सोमदत्त भी भूख-प्याससे पीड़ित होकर इस 'गृध्रवट'नामक तीर्थमें पहुँचा और विश्राम करनेके लिये ठहर गया। इतनेमें ही उस वटकी शाखापर उसे एक गीध बैठा दिखाई दिया। यशस्विनि! उसने उसे भी एक ही बाणसे मार गिराया, जो उसी वृक्षकी जड़पर गिरा। हृदयमें बाण लगनेसे उसे मूर्छा आ गयी और उसके प्राणपखेरू उड़ गये। उस गीधको देखकर राजकुमारके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। अतः उसने बाणोंके पर बनानेके लिये उस गीधके पंख काट लिये और उन्हें लेकर घर आया। इस प्रकार गीधके न चाहनेपर भी उस तीर्थमें मृत्यु होनेपर उसकी सद्गति हो गयी और कालान्तरमें वह कलिङ्गदेशके नरेशके घर रूपवान्, विद्वान् एवं गुणसम्पन्न राजपुत्र हुआ।

वसुंधरे! उधर जो शृगाली मरी थी, वह काञ्चीनरेश-के यहाँ राजपुत्रीके रूपमें उत्पन्न हुई, जो सर्वाङ्गसुन्दरी श्यामा, अत्यन्त रूप-गुणसे सम्पन्न, कार्य-कुशल और चौंसठ कलाओंसे सम्पन्न थी। उसका स्वर कोयलके समान मधुर एवं सुखदायी था। इधर अनायास काञ्चीनरेश और कलिङ्ग-नरेशकी प्रीति बढ़ गयी और परिणामतः काञ्ची-नरेशकी कन्याका कलिङ्गराजके पुत्रके साथ विधिपूर्वक विवाह हो गया। काञ्चीनरेशने वर-वधूको दहेजमें अनेक प्रकारके रत्न, आभूषण, हाथी, घोड़े, भैंस और दास-दासियाँ दीं। फिर विवाहोपरान्त कलिङ्गराज वधूसहित अपने पुत्रको लेकर अपनी राजधानीको वापस लौट आये।

देवि! विवाहके बाद दम्पतीके प्रेमपूर्वक रहते कुछ वर्ष व्यतीत हो गये। उनकी प्रीति रोहिणी और चन्द्रमाकी तरह निरन्तर बढ़ती गयी। वे नन्दनवनकी उपमावाले वन-उपवन-उद्यानादि एवं क्रीडाके अन्य दिव्य-स्थलोंमें आनन्दपूर्वक विहार करते। इधर कलिङ्गराज-कुमार अपनी बुद्धि, सुशीलता और श्रेष्ठ कर्मोंसे नगरकी जनताको भी परम संतुष्ट रखता। उधर अन्तःपुर एवं नगरकी स्त्रियोंको राजकुमारीने संतुष्ट कर रखा था। इस प्रकार उन दोनोंके सौम्य गुणों एवं शीलयुक्त व्यवहारसे सभी राज्यवासी संतुष्ट थे।

एक बार उस राजकुमारीने उस राजकुमारसे वार्तालापके प्रसङ्गमें कहा कि मैं आपसे एक रहस्यकी बात पूछती हूँ। यदि मुझपर आपका स्नेह हो तो आप मुझे उसे बतानेकी कृपा करें। पत्नीकी बात सुनकर राजकुमारने कहा—'भद्रे! मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ कि तुम्हारे मनकी अभिलाषा पूरी करनेके लिये अवश्य प्रयत्न करूँगा। देवि! सत्यके आधारपर ही विश्व ठहरा है। सत्य भगवान्का ही स्वरूप है। और तपस्याका मूल भी सत्य ही है तथा सत्यके आधारपर ही हमारा राज्य टिका हुआ है। मैं कभी भी मिथ्या नहीं बोलता। इसके पहले भी मेरे मुँहसे कभी झूठी बात नहीं निकली है। अतः तुम कहो, मैं तुम्हारे लिये कौन-सा कार्य करूँ? हाथी, घोड़े, रथ, रत्न, सवारी, धन अथवा परमश्रेष्ठ अपना पट्टबन्ध, शिरोमुकुटतक मैं तुम्हें समर्पण करनेको तैयार हूँ।'

इसपर काञ्चीनरेशकी उस कन्याने अपने पतिदेवके चरणोंको पकड़कर यह बात कही—'पतिदेव! मैं रत्न, हाथी, घोड़े एवं रथ कुछ भी नहीं चाहती। आपके पट्टबन्ध-

से मेरा क्या प्रयोजन ? मैं तो केवल यही चाहती हूँ कि मध्याह्नकालमें एकान्तमें निश्चिन्त सो सकूँ । प्राणनाथ ! आप ऐसी व्यवस्था कर दें कि मैं उस समय जितनी देरतक सोयी रहूँ, उस समय मुझे मेरे श्वशुर, सास अथवा दूसरा कोई भी देख न सके—यही मेरा व्रत है । यही नहीं अपने सगे-सम्बन्धी अथवा घरके अन्य स्वजन भी सोयी हुई अवस्थामें मुझपर कभी दृष्टि न डालें ।'

वसुंधरे ! इसपर कलिङ्गदेशके उस राजकुमारने उसका समर्थन कर दिया और कहा—'तुम विश्वास करो, सोते समय तुम्हें कोई भी न देखेगा ।' कुछ समयके बाद कलिंगनरेशने उस राजकुमारको राज्यपद-पर अभिषिक्त कर दिया । फिर कुछ दिनोंके पश्चात् उनकी मृत्यु हो गयी । अब राजकुमार राज्यका विधिपूर्वक समुचित ढंगसे संचालन करने लगा । राजकुमारी जिस स्थानपर अकेली सोती, वहाँ उसे कोई देख नहीं पाता था । फिर यथासमय उस राजकुमारके कलिङ्ग-कुलको आनन्दित करनेवाले सूर्यके समान तेजस्वी पाँच पुत्र उत्पन्न हुए । इस प्रकार उस राजकुमारके निष्कण्टक राज्य करते हुए सतहत्तर वर्ष बीत गये । अठहत्तरवें वर्ष एक दिन जब सूर्य मध्य आकाशमें स्थित थे, तब वह एकान्तमें बैठकर इन बातोंको प्रारम्भसे सोचने लगा । उस दिन माघ मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथि थी, अतः उसके मनमें आया कि 'मैं अपनी पत्नीको देखूँ कि वह एकान्तमें किसकी अर्चना करती है अथवा उसका व्रत कौन-सा है ? निर्जनस्थानमें सोती रहकर क्या करती है ? कोई स्त्री सोकर व्रत करे, ऐसा तो कोई धर्म-संग्रह नहीं दीखता है । मनुने भी किसी ऐसे धर्मका उल्लेख नहीं किया । बृहस्पति अथवा धर्मराजके बनाये हुए धर्म-शास्त्रमें भी कहीं इस प्रकारका उल्लेख नहीं पाया जाता है । ऐसा तो कहीं देखा-सुना नहीं गया कि कोई स्त्री सोयी रहकर किसी व्रतका आचरण करे । यह तो इच्छानुसार भोगोंका उपभोग करती—बना-बनाया भोजन पान करती और अत्यन्त महीन रेशमी वस्त्र धारण कर श्रेष्ठ गन्धोंसे विभूषित तथा सब प्रकारके रत्नोंसे अलंकृत रहती है । पर सम्भव है, इस प्रकार देखनेपर वह प्रकुपित हो जाय । जो कुछ हो उसे एक बार देखना अवश्य चाहिये कि वह किस प्रकार कौन-सा व्रत करती है ? किंनरोंने बतलाया है कि वशीकरण मन्त्रको सिद्ध कर लेनेपर स्त्री योगीश्वरी बन-कर जहाँ उसकी इच्छा हो, जा सकती है । इस प्रकार इसमें वह शक्ति आ जायगी, जो कामरागसे दूसरेका भी स्पर्श कर सकती है तथा दूसरोंसे इसका भाव भी हो सकता है ।'

पृथ्वि ! इस प्रकार राजकुमारके सोचते-विचारते सूर्य अस्त हो गये और सबको विश्राम देनेवाली भगवती रात्रिका आगमन हुआ । फिर रात्रि बीतनेपर मङ्गलमय प्रभातका भी उदय हुआ । मागध, वन्दीगण, सूत और वैतालिक राजाकी स्तुति करने लगे । शङ्ख और दुन्दुभिकी ध्वनियोंसे उसकी निद्रा भङ्ग हुई । इधर अखिललोकनायक भगवान् भास्कर भी उदित हो गये । उस समय पहलेकी बातोंका स्मरण करते हुए राजकुमारके मनमें अन्य कोई चिन्ता नहीं रह गयी थी, केवल वही चिन्ता उसके हृदयमें व्याप्त थी । उसने विधिपूर्वक स्नान कर दो रेशमी वस्त्र पहन लिये । इस प्रकार भलीभाँति तैयार होकर उसने सबको दूर हटा दिया और कहा कि 'मैं किसी व्रतमें दीक्षित हो गया हूँ, अतः कोई भी स्त्री अथवा पुरुष मेरा स्पर्श न करे; अन्यथा वह दण्ड-विधानके अनुसार मेरा वध्य हो सकता है ।'

वसुंधरे ! कलिङ्गनरेश इस प्रकारकी आज्ञा देकर शीघ्रतापूर्वक चलकर जहाँ राजकुमारी रहती थी, वहाँ पहुँचा और अपनी स्त्रीको देखा । वह चारपाईके पास नीचे आसन लगाकर बैठी थी और अपने मनमें

इष्टदेवका चिन्तन कर रही थी, साथ ही सिरके दर्दसे पीड़ित होकर रो रही थी। राजकुमारी कह रही थी—'मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा ऐसा दुष्कर कर्म किया है, जिससे मैं इस दयनीय दशाको प्राप्त हो गयी हूँ। मैं अनाथकी भाँति क्लेश सहती हूँ, किंतु मेरे पतिदेवको भी इसका पता नहीं है। मेरा व्रत सब तरहसे विकृत ही कहा जा सकता है। मेरा बड़ा सौभाग्य होता यदि मैं कभी सौकरवक्षेत्रमें जा सकती और मेरे हृदयमें जो बात बसी है, उसे अपने पतिसे वह कह पाती।'

कलिङ्गनरेश अपनी स्त्रीकी बात सुन रहा था। उसने उठकर दोनों हाथोंसे अपनी पत्नीको पकड़कर कहा—'भद्रे! तुम यह क्या कह रही हो? अपनेको तुम इस प्रकार बार-बार कोसती क्यों हो? तुम प्रारब्धकी बातोंको क्यों सोचती हो और अपनेको क्यों कोसती हो। तुम्हें तो यह एक महान् शिरोरोग है। इसे दूर करनेके लिये अष्टाङ्ग-कुशल वैद्य क्या तुम्हें नहीं मिलते, जो तुम्हारे सिरकी कठिन पीड़ाको दूर कर सकें। वायु, कफ, पित्त आदि रोगोंसे तुम्हें संनिपात हो गया है, अथवा असमय-पर तुममें पित्तका प्रकोप हो गया है। तुम व्रतके बहाने व्यर्थमें इतना क्लेश क्यों पाती हो। तुम कहती हो कि 'सौकरवक्षेत्रमें चलनेपर कहूँगी', इस विषयमें ऐसा क्या गोपनीय है, जिसे तुम कहना नहीं चाहती हो?'

अब राजकुमारी बड़े संकोचमें पड़ गयी। वह दुःखसे पीड़ित तो थी ही, उसने स्वामीके चरण पकड़ लिये और कहने लगी—'महाराज! आप मुझपर प्रसन्न हों, यह बात आप इस समय पूछ रहे हैं, यह ठीक नहीं। वीरवर! मेरा यह वृत्त जन्मान्तरीय कर्मोंसे सम्बद्ध है।' पत्नीकी बात सुनकर कलिङ्गदेशके उस नरेशने परम हित करनेके विचारसे उसके प्रति मधुर वचन कहा—'देवि! मेरे सामने यह कौन-सी गोपनीय बात है। तुम ठीक-ठीक बात बतला दो।' पतिकी बात सुनकर राजकुमारीकी आँखें आश्चर्यसे भर गयीं। वह मधुर वाणीमें बोली—'प्राणनाथ! शास्त्रोंके अनुसार स्त्रीके लिये स्वामी ही धर्म, अर्थ और सर्वस्व है। उसका पति ही परमात्मा है। अतएव आप जो मुझसे पूछ रहे हैं, वह मुझे अवश्य कहना चाहिये। फिर भी जो बात मेरे हृदयमें बैठ गयी है उसे कहनेमें मैं असमर्थ हूँ। पीड़ा पहुँचानेवाली मेरी यह बात आप मुझसे पूछें, यह उचित नहीं जान पड़ता। महाभाग! इस दुःखका मेरे शरीरसे दूर होना असम्भव-सा दीखता है। आप सुखमें सदा समय बिताते हैं, यह बड़ी अच्छी बात है। स्वामिन्! मेरे समान बहुत-सी स्त्रियाँ आपके अन्तःपुरमें हैं। जिन्हें आप विविध प्रकारके अन्न और उत्तम भूषण दिया करते हैं और वे आपकी सेवा करती हैं, फिर मुझसे आपका क्या तात्पर्य? राजन्! आप हाथी, रथ और घोड़ेपर यात्रा किया करते हैं, यह सब ठीक है, पर राजन्! इस विषयमें मुझसे आपको कुछ नहीं पूछना चाहिये। आप मेरे इष्ट देवता, गुरु एवं साक्षात् सनातन यज्ञपुरुष हैं। मानद! मेरे लिये आप धर्म, अर्थ, काम, यश और स्वर्ग सब कुछ हैं। आपके पूछनेपर मुझको चाहिये कि सदा सभी बातें सत्य एवं प्रिय कहें। क्योंकि सभी पतिव्रताओंके लिये यह सनातन धर्म है। तथापि मेरी बातोंपर निश्चित विचार करके मेरी पीड़ाके विषयमें आपको नहीं पूछना चाहिये।'

उस समय कलिङ्ग-नरेशको अपनी पत्नीकी पीड़ासे भीषण मानसिक संताप हो रहा था, अतएव उसने मधुर वाणीमें कहा—'देवि! मैं तुम्हारा पति हूँ, ऐसी स्थितिमें मेरे पूछनेपर तुम्हें शुभ हो या अशुभ उसे अवश्य बताना चाहिये। धर्मके मार्गपर चलनेवाली स्त्रीका कर्तव्य है कि वह गुप्त बात भी पतिके सामने प्रकट कर दे। जो स्त्री किसी राग या लोभसे मोहित होकर अपकर्म

कर उसे पतिसे छिपाती है तो विद्वत्समाज उसे सती नहीं कहता। यशस्विनि! ऐसा विचार करके तुम्हें मुझसे अपनी गुप्त बात भी अवश्य कहनी चाहिये। यदि इस गोपनीय बातको तुम मुझे बता देती हो तो तुम्हें अधर्मका भागी नहीं होना पड़ेगा।'

राजकुमारी बोली—'प्राणनाथ! राजा देवता, गुरु एवं ईश्वरके समान पूज्य हैं—आप मेरे पति भी हैं। महाराज! सुनिये! यद्यपि मेरा कार्य बहुत गुह्य नहीं है, तब भी मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ, स्वामिन्! अपने राज्यपर बड़े राजकुमारका अभिषेक कर दीजिये, यह नियम कुलके अनुसार है और आप मेरे साथ 'सौकरव (वराह)-क्षेत्र'में चलनेकी कृपा करें।'

पत्नीकी यह बात सुनकर कलिङ्ग-नरेशने सहर्ष उसका अनुमोदन कर दिया। अपने वाक्योंसे पत्नीको प्रसन्न कर उसने कहा—'सुन्दरि! तुम्हारे कथनानुसार मैं पुत्रको राज्यपर बैठा दूँगा। फिर वे दोनों रनिवाससे बाहर निकले। राजकुमारने कञ्चुकीको देखकर कहा—'द्वारपाल! तुम यहाँके सब लोगोंको सूचित कर दो। वे आकर यहाँ उपस्थित हों।

इसके बाद कलिङ्ग-नरेशने अपनी रुचिके अनुसार उस समय कुछ खाने योग्य अन्न-जल ग्रहण किया और आचमन करके कुछ समयतक विश्राम किया। फिर उन्होंने अपने पुत्रका अभिषेक करनेके लिये मन्त्रिमण्डलको बुलाया और आज्ञा दी—'सब लोग आचारके अनुसार माङ्गलिक कृत्य करके राजधानीका संस्कार करनेमें जुट जायँ। फिर कलिङ्ग-नरेशने अपने वृद्ध मन्त्रीसे कहा-'तात! कल मैं राज्यपर अपने पुत्रका विधिके अनुसार अभिषेक करना चाहता हूँ। उसकी आप शीघ्र तैयारी करें।' नरेशकी बात सुनकर मन्त्रियोंने कहा—'राजन्! सभी वस्तुएँ तैयार हैं। आप जो कह रहे हैं, वह हम सभीको पसंद है। महाराज! आपके ये राजकुमार सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें सदा संलग्न रहते हैं। प्रजापर प्रेम रखनेवाले, नीतिके पूर्ण जानकार, विचारशील और शूरवीर भी हैं। प्रभो! आपके मनमें जो अभिलाषा है, वह हमलोगोंको सम्यक् प्रकारसे प्रिय लगती है।' ऐसी बात कहकर मन्त्रीलोग अपने स्थानपर चले गये और भगवान् सूर्य अस्त हो गये। राजा और रानीने सुखपूर्वक शयन किया। रात आनन्दपूर्वक बीत गयी।

प्रातःकाल गन्धर्वों, वन्दीजनों, सूतों एवं मागधोंने अपने समुचित स्तुति-पाठसे राजाको जगाया। राजाने शुभ मुहूर्तका अवसर पाकर उस परम योग्य अपने कुमारका अभिषेक कर दिया। कलिङ्गनरेश धर्मका पूर्ण ज्ञाता था। राजगद्दीपर बैठानेके पश्चात् उसने राजकुमारका मस्तक सूँघा। साथ ही उससे यह मधुर वचन कहा—'बेटा! तुम पुत्रोंमें श्रेष्ठ हो। मैं तुम्हें राजधर्म बताता हूँ, वह सुनो—'तात! यदि तुम चाहते हो कि मुझे परम धर्म प्राप्त हो जाय तथा मेरे पितर तर जायँ तो तुम्हें धर्मात्मा पुरुषोंको किसी प्रकार क्लेश नहीं देना चाहिये। जो दूसरोंकी स्त्रियोंपर बुरी दृष्टि डालते हैं, बालकोंका वध करते हैं तथा स्त्रीकी हत्या करनेमें नहीं हिचकते, ऐसे व्यक्ति दण्डके पात्र हैं। कोई भी सुन्दर स्त्री सामने आ जाय तो तुम्हें आँखें मूँद लेनी (कुदृष्टि नहीं डालनी) चाहिये। दूसरोंके अर्जित धनके प्रति तुम्हें लोभ नहीं करना चाहिये और न अन्यायसे ही धन कमाना चाहिये। तुम्हें न्यायपूर्वक पूरी तैयारी तथा दक्षतासे अपने देशकी रक्षा करनी चाहिये। तुम सदा उद्योगशील होकर तत्पर रहना और मन्त्रियोंकी मन्त्रणाका पालन करना, वे जो बात बतायें, उन्हें विचारपूर्वक करना। अपने शरीरकी रक्षापर पूरा ध्यान देना है। बेटा! यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो तुम्हारे जिस व्यवहारसे प्रजा आनन्दसे रहे एवं ब्राह्मण जिससे संतुष्ट रहें, तुम्हें वही कर्म करना चाहिये। राजाओंके

लिये सात प्रकारके महान् व्यसन कहे गये हैं—उनसे तुम्हें सदा दूर रहना चाहिये। तुम्हारी सम्पत्तिमें किसी प्रकार दोष आ जाय, ऐसा काम तुम्हें कभी भी नहीं करना चाहिये। राज्यकर्मके सम्बन्धमें अपने मन्त्रीसे तुम्हें किसी प्रकार अप्रिय वचन नहीं कहना चाहिये। मैं इस समय तीर्थमें जानेके लिये प्रस्तुत हूँ, तुमको मुझे रोकना नहीं चाहिये। पुत्र! यदि मुझे प्रसन्न करना चाहते हो तो इतना काम करनेके लिये शीघ्र उद्यत हो जाओ।'

पृथ्वीदेवि! उस समय पिताकी बात सुनकर राजकुमारने उनके पैर पकड़ लिये और उनसे करुणापूर्वक वचन कहना आरम्भ किया। राजकुमारने कहा—'पिताजी! आप यदि यहाँ नहीं रहेंगे तो राज्य-खजाना और सेनासे मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। आप-के बिना जीवित नहीं रह सकता। भले ही आपने अभिषेक करके मुझे राजा बना दिया। पर पिताजी! मैं तो केवल बालकोंके खेल ही जानता हूँ। राजा-लोग जिस प्रकार राज्यकी व्यवस्था करते हैं, उन सभीसे तो मैं सर्वथा अनभिज्ञ हूँ।

अपने पुत्रकी बात सुनकर राजाने उससे सामपूर्वक कहा—'पुत्र! तुम जो कहते हो कि 'मैं कुछ नहीं जानता' तो इस विषयमें तुम्हारे मन्त्री एवं नगरके रहनेवाले सत्पुरुष सब कुछ बता देंगे।' देवि! उस समय अपने पुत्रको इस प्रकारका उपदेश देकर कलिङ्ग-नरेश धर्म-शास्त्रकी विधिके अनुसार 'सौकरव (वराह) क्षेत्र'में जानेके लिये तैयार हो गया। उसे वहाँ जाते देखकर वहाँके रहनेवाले लोग भी अपनी स्त्री तथा पुत्रोंके सहित सब-के-सब पीछे चल पड़े। इतना ही नहीं, अन्तः-पुरकी स्त्रियाँ भी बड़ी प्रसन्नतासे हाथी, घोड़े, रथ आदि सवारियोंपर चढ़कर उसके पीछे-पीछे चल पड़ीं।

इस प्रकार वह कलिङ्गराज बहुत समयके पश्चात् 'सौकरव'तीर्थमें पहुँचे। वहाँ पहुँचकर धन-धान्यका यथोचित दान किया और इस प्रकार धर्म करते हुए धीरे-धीरे समय बीतता गया। इस प्रकार कुछ दिन बीत जानेके पश्चात् राजाने अपनी पत्नीसे यह मधुर वचन कहा—'सुन्दरि! आज मेरे जीवनके हजार वर्ष पूरे हो गये। अब मैंने तुमसे जो पूछा था, उस परम गोपनीय विषयको मुझे बताओ। इसपर वह राजकुमारी राजाके दोनों चरणोंको पकड़कर बोली—'मानद! महाभाग! आप मुझसे जो बात पूछ रहे हैं, उसे तीन रातोंतक उपवास करनेके बाद आप सुननेकी कृपा करें।' उसने पत्नीकी बातका अनुमोदन किया और कहा—कमलनयनि! तुम जैसी बात कहती हो, वह मुझे पसंद है। फिर स्नानकर तीन राततक नियमपूर्वक रहनेके लिये संकल्प किया। तदनन्तर तीन राततक नियमपूर्वक रहकर दम्पतीने स्नान किया और पवित्र रेशमी वस्त्र धारणकर अलंकारोंसे अपने शरीरको आभूषित किया तथा भगवान् विष्णुको प्रणाम किया। फिर राजकुमारीने अपने अलंकारोंको उतारकर मुझे (विष्णु-वराहको) अर्पण कर दिया तथा उस नरेशसे बोली—'नाथ! आइये! हम दोनों एकान्त स्थानपर चलें। आपके मनमें जिस गोपनीय बातको जाननेकी इच्छा है, उसे समझें।

तत्पश्चात् कलिङ्गनरेश और काशीराजकुमारी एकान्त स्थानमें गये। फिर राजकुमारीने कहा—'राजन्! मैं पूर्वजन्ममें एक श्रृगाली थी, मेरा जन्म तिर्यक्-योनिमें हुआ था। मृगके भ्रमसे सोमदत्त नामक एक राजकुमारने बाण चलाया और मैं उससे बिंध गयी। मेरे सिरमें अब भी उस तीखे बाणके चिह्न (संस्कार) अवशेष हैं, आप इसे देखनेकी कृपा कीजिये। उसीके दोषसे मेरे सिरमें यह रोग सदा बना रहता है। काशीनरेशके कुलमें मेरा जन्म हुआ। फिर संयोग तथा अपने पिताजीकी कृपासे मैं आपकी पत्नी

बन गयी हूँ। सौकरवक्षेत्रके प्रभावसे मेरा ऐसा जन्म हुआ है और सिद्धि सुलभ हुई है। प्राणनाथ ! आपको मेरा प्रणाम है' यह कहकर फिर वह चुप हो गयी।

अब राजकुमारको भी अपने पूर्वजन्मकी स्मृति हो आयी। वह कहने लगा—'महाभागे ! देखो, मैं भी पूर्वजन्ममें एक गीध था। उसी सोमदत्तने एक बाणद्वारा मुझे भी मार डाला था। इस तीर्थके परिणाम स्वरूप मैं कलिङ्गदेशका राजा बना हूँ। मुझे बहुत कष्टका सामना करना पड़ता था। पर वही आज मैं महान् राज्यका अधिकारी बन गया था। सुशोभने ! आज सिद्धि भी मेरे हाथमें आ गयी है। देखो, मेरे मनमें कोई भी संकल्प नहीं था, फिर भी सूकरक्षेत्रकी ऐसी महिमा है।

वसुंधरे ! इसके बाद वे दोनों दम्पती तथा वहाँ जो भी नगर-ग्रामनिवासी मेरे भक्त एवं प्रेमी उपस्थित थे, वे सभी यह प्रसङ्ग सुनकर हानि-लाभका विचार छोड़कर सर्वथा शुभ ध्यानमें संलग्न हो गये और वहीं प्राण त्यागकर आसक्तियोंसे शून्य होकर चतुर्भुज-रूप धारणकर शङ्ख, चक्रादि आयुधोंसे सज्जित होकर श्वेतद्वीप पहुँचे।

जो व्यक्ति इस प्रकार नियमके अनुसार इस तीर्थमें निवास करता है और उसकी वहाँ मृत्यु हो जाती है तो वह श्वेतद्वीपको अवश्य प्राप्त कर लेता है। वसुंधरे ! यहीं एक आखेटक तीर्थ है। उसमें स्नान करनेसे जो फल मिलता है, वह सुनो। यहाँ स्नान करनेवाले प्राणी नन्दनवनमें पहुँचकर ग्यारह हजार वर्षोंतक निरन्तर परमानन्दका उपभोग करते हैं। फिर जब वे स्वर्गसे च्युत होते हैं तो विशाल कुलमें उत्पन्न होकर मेरे भक्त होते हैं—इसमें कोई संशय नहीं। एक बात और, जो कोई मनुष्य यहाँके 'गृध्रवटनामक' तीर्थमें स्नान कर और संध्या, तर्पण आदि कर्म करता है, वह जो फल प्राप्त करता है, वह बतलाता हूँ। वह इस पुण्यके प्रभावसे नौ हजार नौ सौ वर्षोंतक इन्द्रलोकमें पहुँचकर देवताओंके साथ आनन्दका उपभोग करता है। फिर जब वह इन्द्रलोकसे च्युत होता है तो मेरे इस तीर्थके प्रभावसे वह मेरा भक्त बन जाता है और उसकी सारी आसक्तियाँ दूर हो जाती हैं।

भगवान् नारायणसे ऐसा सुनकर उत्तम व्रतका आचरण करनेवाली देवी पृथ्वी समस्त लोकोंके स्वामी भगवान् जनार्दनसे मधुर वचनोंमें बोली—देव ! किस कर्मके फलस्वरूप प्राणीको यह तीर्थ प्राप्त होता है अथवा वहाँ स्नान करने और मरनेका कैसे संयोग प्राप्त होता है, इसे यथार्थरूपसे कहनेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! तुम महान् भाग्य शालिनी हो। सुनो ! जिन मनुष्योंने पूर्वजन्ममें सद्धर्मोंका पालन किया है, पर किसी बुरे कर्मके दोषसे पशुकी योनिमें जन्म पा जाते हैं, वे किन्हीं अन्य जन्मोंके उपार्जित पुण्यों तथा तीर्थ-स्नान, जप एवं महान् दान तथा देवार्चनोंके प्रभावसे ही भले तीर्थमें मरनेका संयोग प्राप्त करते हैं।

तीर्थोंके दर्शन एवं अवगाहन करनेके प्रभावसे पाप नष्ट हो जाते हैं। वस्तुतः धर्मानुमोदित इस वराहक्षेत्र-कर्मकी गति बड़ी गहन है। उसके प्रभावसे जो बहुत छोटा-सा दीखता है, वह बहुत बड़ा बननेकी शक्ति पास कर लेता है और उसे अद्भुत पुण्यकी प्राप्ति होती है। इसीसे उस शृगाली एवं गीधको मनुष्ययोनि एवं साम्राज्यकी प्राप्ति हुई थी और उन्हें जन्मान्तरकी भी स्मृति बनी रही। यह सब इस तीर्थका ही प्रभाव है और अन्तमें वे श्वेतद्वीपको प्राप्त हुए।

देवि ! अब अन्य तीर्थकी बात बतलाता हूँ, उसे सुनो। यहाँ एक 'वैवस्वत'नामका तीर्थ है, जहाँ पुत्रकी कामनासे कभी सूर्यदेवने कठोर तपस्या की थी और बादमें उन्होंने वहाँ दस हजार वर्षोंतक निरन्तर चान्द्रायण-व्रत भी किया था, फिर सात हजार वर्षोंतक

वे मात्र वायुके आहारपर रहे। भद्रे! तब मैं उनपर संतुष्ट हुआ और उनसे वर माँगनेके लिये कहा। इसपर उन्होंने कहा—'भगवन्! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे एक पुत्र प्रदान करनेकी कृपा कीजिये।

फिर मेरे वरदानसे 'यम' और 'यमुना' नामकी उन्हें दो जुड़वीं संतानें हुईं। तबसे 'सौकरव' क्षेत्रके अन्तर्गतका यह तीर्थ 'वैवस्वततीर्थ' नामसे प्रसिद्ध हुआ। वसुंधरे! जो मनुष्य वहाँ जाकर दिनके आठवें भागमें अर्थात् सूर्यास्तके कुछ पूर्व स्नान कर भोजन करता है, वह दस हजार वर्षोंतक सूर्यके लोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। यदि किसी प्राणीकी वहाँ अनायास मृत्यु हो जाती है तो वह इस तीर्थके प्रभावसे यमपुरीमें नहीं जाता। भद्रे! इस 'सौकरव'तीर्थ (वराहक्षेत्र)में स्नान करने और मरनेका फल तथा वहाँकी घटनाएँ मैंने तुम्हें बतला दीं। यह आख्यान भी आख्यानोंमें महान् तथा पवित्रोंमें परम पवित्र 'आख्यान' है तथा यह सौकरव तीर्थोंमें परम श्रेष्ठ तीर्थ है। यहाँ संध्योपासन तथा जप-तप अनुष्ठानके फल परम उत्तम हैं। यह परम तेज एवं सभी भागवत पुरुषोंका परमप्रिय रहस्य है। जिसे दूसरोंकी निन्दा करनेका स्वभाव है एवं जो अज्ञानी हैं, उनके सामने इसका उपदेश नहीं करना चाहिये। जिनकी भगवान्में श्रद्धा है, जो वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ हैं, जिन्होंने दीक्षा ले रखी है, जो सम्पूर्ण शास्त्रोंको जानते हैं, उन्हीं लोगोंके सामने यह दिव्य प्रसङ्ग सुनाना चाहिये। यह सौकरव-क्षेत्रमें प्राप्त होनेवाला महान् पुण्य तुमसे बतला दिया। पृथ्वि! जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करता है, उसने मानो बारह वर्षोंतक मेरा ध्यान कर लिया, इसमें कोई संदेह नहीं है और उसे शाश्वत मुक्ति सुलभ हो जाती है। जो इसके केवल एक अध्यायका भी पाठ कर लेता है, वह अपने दस कुलोंको तार देता है। (अध्याय १३७)

वराहक्षेत्रान्तर्वर्ती 'आदित्यतीर्थ'का प्रभाव (खञ्जरीटकी कथा)

सूतजी कहते हैं—भगवान् वराहके मुखारविन्दसे (वराहक्षेत्र)की महिमा, गुणस्तुति और जात्यन्तर-परिवर्तनकी शक्ति सुनकर पृथ्वीदेवीका हृदय आश्चर्यसे भर गया, अतः उन्होंने भगवान् नारायणसे कहा—प्रभो! 'वराहक्षेत्र'में मरा हुआ प्राणी न चाहनेपर भी मनुष्य-जन्म पानेका अधिकारी हो जाता है; अतः निःसंदेह—यह क्षेत्र बहुत पवित्र है। प्रभो! अब आप वहाँका कोई दूसरा प्रसङ्ग बतानेकी कृपा कीजिये। देवेश्वर! मैं यह जानना चाहती हूँ कि शास्त्रोंमें वहाँ गायन-वादन-करने, नृत्य एवं जागरण करने, गोदान-अन्नदान और जलदान करने, सम्यक् प्रकारसे स्नान करने अथवा गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदिसे आपकी पूजा करनेका क्या फल होता है। जप और यज्ञ आदि अन्य कर्म करनेसे शुद्ध मनवाले प्राणी वहाँ किस गतिको प्राप्त करते हैं। भगवन्! आप अपने भक्तको सुख पहुँचानेके विचारसे यह सब प्रसङ्ग बतलानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह बोले—देवि! यह कथा अत्यन्त पुण्यप्रद एवं सुख देनेवाली है। पहले इसी सौकरव-क्षेत्रमें एक खञ्जरीट* (खञ्जन, खंडरिच, waytail,) पक्षी रहता था। उसने एक बार बहुत-से कीड़ोंको खा लिया, फलतः वह अजीर्णसे अत्यन्त पीड़ित होकर मरणासन्न हो गया और इस 'सूकरक्षेत्र'में ही गिर पड़ा। इतनेमें-ही बहुत-से बालक इधर-उधरसे दौड़ते एवं खेलते हुए वहाँ पहुँचे और उस शिथिलगात्र पक्षीको देखकर कहने लगे—'हमलोग इसे पकड़ेंगे।' फिर उनमें परस्पर विवाद छिड़ गया, कोई कहता 'यह मेरा है' और कोई कहता कि 'उसका।' इस प्रकार खेल-खेलमें ही उनमें झगड़ा छिड़ गया और महान् कलह-कोलाहल मच गया।

* इसे 'ममोला' या 'धोबिन'-चिड़िया भी कहते हैं। गोस्वामीजीने 'कृष्णगीतावली' २२। २ में—'मनहुँ इन्दुपर 'खंजरीट' दोऊ कछुक अरुन बिधि रचे सँवारी,'—में 'खञ्जरीट'का तथा मानस २। ११६। ७, ३। २९। १० और ४। १५। ६ तथा 'विनयपत्रिका' १५। २ आदिमें 'खंजन' शब्दका प्रयोग किया है।

तबतक एक बालकने उसे उठाकर गङ्गाके जलमें फेंक दिया, साथ ही कहा—'भाई ! यह तुम्हीं लोगोंका है, इससे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है।'

वसुंधरे ! इस प्रकार वह मृतखञ्जरीट (खंडरिच) पक्षी गङ्गाके जलसे भलीभाँति भीग गया। जहाँ वह गङ्गामें पड़ा था, वह 'आदित्यतीर्थ' था। फिर तो वह उस तीर्थके प्रभावसे अनेक उत्तम यज्ञ करनेवाले धन एवं रत्नसे परिपूर्ण किसी वैश्यके घरमें उत्पन्न हुआ। वसुंधरे ! वह रूपवान्, गुणवान्, विवेकी, पवित्र तथा मुझमें भक्ति रखनेवाला पुरुष हुआ।

सुव्रते ! इस प्रकार उस बालकके बारह वर्ष बीत गये। एक बार जब माता और पिता सुखसे बैठे हुए थे, उनपर उस गुणी बालककी दृष्टि पड़ी। उसने पृथ्वीपर सिर रखकर उन्हें प्रणाम कर कहा—'पिताजी ! यदि आपलोग मेरा प्रिय करना चाहते हों, तो मुझे एक वर देनेकी कृपा करें। मेरी प्रार्थना यह है कि आप दोनों मेरे मनोरथमें किसी प्रकारकी बाधा न डालें। पिताजी ! मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ, आप मेरे गुरु हैं, जैसा आप कहेंगे वही होगा।'

देवि ! अपने पुत्रकी यह बात सुनकर दम्पती हर्षसे भर गये और उन्होंने सुन्दर नेत्रोंवाले बालकसे यह बात कही—'पुत्र ! तुम जो-जो कहोगे और जो कुछ तुम्हारे हृदयमें बात हो, हमलोग वह सब कर देंगे। बस, अब तुम विश्वासपूर्वक बोलो। पुत्र ! हमारी तीन हजार गायें हैं, जो सभी खूब दूध देती हैं। तुम जिसे चाहो, उसे इन्हें दे सकते हो, इसमें लेशमात्र विचारनेकी आवश्यकता नहीं है। यदि तुम चाहो तो हमारा व्यापारका काम बहुत विख्यात है, उसका भी सारा अधिकार तुम्हें सौंप दूँ। तुम न्यायपूर्वक उसकी व्यवस्था करो अथवा मित्रोंको धन बाँट दो। पुत्र ! तुम धन-धान्य, रत्न आदि जिसे जो भी चाहो, उसे दे सकते हो, इसमें कोई भी प्रतिबन्ध नहीं है। हम अच्छे कुल तथा जातिमें उत्पन्न बहुत-सी सुन्दरी भली कन्याओंको भी विवाह-विधिके द्वारा तुम्हें प्राप्त करा सकते हैं। सौम्य ! यदि तुम्हारे मनमें—जैसे पूर्वके वैश्यलोग वेदमें कहे हुए विधानके अनुसार यज्ञ करते थे—वैसे यज्ञकी इच्छा हो तो तुम उसे भी कर सकते हो। वैश्यका कर्म खेती है। इसके लिये आठ-आठ बलवान् बैलों-द्वारा चलनेवाले एक सौ हल भी हमारे पास हैं। फिर तुम और क्या पाना चाहते हो ? जितने ब्राह्मणोंको भोजन कराकर तुम तृप्त करना चाहते हो, यह कार्य तथा अन्य कुछ कार्य भी जैसे चाहो, वह सब स्वेच्छानुसार सम्पन्न कर सकते हो।'

वसुंधरे ! अपने माता-पिताकी बात सुनकर उस धर्मात्मा बालकने उनके चरण पकड़ लिये और उनसे कहने लगा—गोदानसे इस समय मेरा कोई प्रयोजन नहीं है, न मित्रोंके विषयमें ही मुझे कोई चिन्ता है। मुझे विवाह या यज्ञके फल भी अभीष्ट नहीं हैं। मैं व्यापारका काम करूँ, खेती और गोरक्षामें मेरा समय व्यतीत हो अथवा सम्पूर्ण अतिथियोंका सत्कार करूँ—इन बातोंके लिये भी मेरे हृदयमें कोई आसक्ति नहीं। पिताजी ! मेरे मनमें तो बस, भगवान् नारायणके क्षेत्र 'सौकरव' (वराहक्षेत्र)की ही एक प्रगाढ़ चिन्ता है।

देवि ! बालकके माता-पिता दोनों ही मेरे उपासक थे, उन्होंने पुत्रकी यह बात सुनी तो वे दोनों ही दुःखमें भरकर करुण विलाप करने लग गये और कहने लगे, (माता कहती है)—'बेटा ! अभी तुम्हें जनमे केवल बारह वर्षही बीते हैं, वत्स ! भगवान् नारायणकी शरणमें जानेकी चिन्ता तुम्हें अभीसे कैसे हो गयी। जिस समय तुम्हें उसके योग्य आयु प्राप्त होगी, तब उस विषयमें विचार करना। अभी तो मैं भोजन लेकर तुम्हारे पीछे-पीछे दौड़ती चलती हूँ। पुत्र ! तुम 'सौकरव'

(वराहक्षेत्र)में जानेकी बात अभी क्यों सोचते हो ? तुम तो अभी दुधमुँहे बच्चे हो । मेरे स्तन धन्य हैं, जिससे सदा दूध स्रवित होता है (और तुम उसे पीते हो) । बेटा ! तुमने अपने स्पर्शसुखकी आशा लगानेवाली मुझ माँके प्रति यह क्या सोचा ? जब तुम रातमें सोकर करवटें बदलते हो तो उस समय अब भी मुझे माँ-माँ कहकर पुकारते हो । फिर (वराहक्षेत्र जाने तथा नारायणके आश्रमकी) इस प्रकारकी बातें क्यों सोचते हो ? तुम जब खेलते हो तो अन्य स्त्रियाँ भी बड़े स्नेहसे तुम्हारा स्पर्श करती हैं । वत्स ! किसीने भी कहीं खेलमें, घरपर अथवा अपने परिजनमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया, नौकरोंने तुम्हें कोई कटु वचन नहीं कहे । तुम्हें डरवानेके लिये भी मैंने कभी अपने हाथमें छड़ी नहीं ली । फिर पुत्र ! तुम्हारे इस निर्वेद (वैराग्य)का कारण क्या है ?'

वसुधे ! माताकी यह बात सुनकर उस बालकने उससे मधुर वचनोंमें कहा—'माँ ! मैं तुम्हारे गर्भमें रह चुका हूँ, तुम्हारे उदरसे ही मेरा जन्म हुआ है, तुम्हारी गोदमें खेला हूँ, प्रेमसे मैंने तुम्हारे स्तनोंका पान किया है । धूल लगे हुए शरीरसे तुम्हारी गोदमें बैठा हूँ । मातः ! तुम मुझपर जो इतनी करुणा करती हो, यह तुम्हारे लिये उचित ही है, किंतु मेरी पूजनीया माँ ! तुम अब पुत्र-सम्बन्धी मोहका परित्याग करो । यह संसार एक घोर महासागरके समान है । यहाँ प्राणी आते हैं और चले जाते हैं, कुछ लोग तो चले गये और कुछ लोग जा रहे हैं । कोई जीव दीखता है, फिर वह नष्ट हो जाता है और आगे कभी दिखायी नहीं पड़ता । इस प्रकार कौन किससे जनमा, कहाँ उसका सम्बन्ध हुआ, किसकी कौन माता हुई और कौन किसका पिता हुआ, इसका कोई ठिकाना नहीं । हजारों माता-पिता, सैकड़ों पुत्र और स्त्रियाँ प्रत्येक जन्ममें आते-जाते रहते हैं । फिर वे किस-किसके हुए या हम ही किसके रहे ? अतः माँ ! इस प्रकारकी चिन्तामें पड़कर तुम्हें कभी भी सोच नहीं करना चाहिये ।'

पुत्रकी इस प्रकारकी बातें सुनकर माता और पिताको बड़ा आश्चर्य हुआ, अतः वे फिर बोले—'बेटा ! अहो ! यह तो बड़ी मार्मिक बात है । पुत्र ! इसका रहस्य बतलाओ ।' उनकी यह बात सुनकर वह वैश्यकुमार मधुर वाणीमें अपने माता-पितासे कहने लगा—'पूज्यवरो ! यदि इस गुह्य बातको सुनकर और विचारकर आप कुछ कहना चाहते हैं तो आपको 'वराहक्षेत्र'का रहस्य पूछना चाहिये और उसे सुननेके लिये 'सौकरवक्षेत्र'में ही पधारनेकी कृपा कीजिये और वहीं यह गुह्य विषय आप लोगोंको पूछना समुचित होगा । वहीं मैं अपनी भी एक आश्चर्यकारी बात बतलाऊँगा । पिताजी ! 'सौकरवक्षेत्र'में एक 'सूर्य'तीर्थ है । वहाँ पहुँच जानेपर यह बात बतलाऊँगा ।' इसपर दम्पतीने पुत्रसे कहा—'बहुत अच्छा ।'

फिर उस बालकके माता-पिता दोनोंने सौकरवतीर्थमें जानेका संकल्प किया । उन्होंने सब प्रकारके द्रव्य साथमें लिये और 'सौकरवतीर्थ'के लिये चल पड़े । कमलपत्रके समान बड़े-बड़े नेत्रोंवाले उस वैश्योंके नेताने अपने जानेके पहले बीस हजार गायोंको ही सबसे आगे हँकवाया, फिर उसके सभी परिजन द्रव्योंसहित प्रस्थित हुए । उनके घरमें जो कुछ था, सब कुछ उन्होंने भगवान् नारायणको समर्पित कर दिया । फिर माघ मासकी त्रयोदशी तिथिके दिन पूर्वाह्ण कालमें अपने सभी स्वजनों और सम्बन्धियोंको बुलाकर विधिपूर्वक शुभ मुहूर्तमें उसने स्वयं भी यात्रा कर दी । 'भगवान् नारायणका दर्शन होगा' इससे उनके मनमें बड़ा हर्ष था । श्रीहरिके प्रेममें प्रवाहित वे सभी लोग बहुत समयके पश्चात् वैशाख मासकी द्वादशी तिथिके दिन मेरे क्षेत्रमें आ गये । वहाँ पहुँचनेपर सभीने विधिपूर्वक स्नानकर पितरोंका तर्पण किया ।

उस वैश्यने दिव्य वस्त्रोंसे विभूषित बीस हजार गौओंको साथ ले लिया था और उन्हें भाङ्गुरस नामक व्यक्तिको सौंपकर आगे प्रस्तुत कर रखा था। उनमेंसे बीस गायोंको वहीं दान कर दिया। इसी प्रकार वह प्रतिदिन बहुत-से धन और रत्न दानमें बाँटने लगा।

इस प्रकार अपने स्त्री-पुत्र और स्वजनोंके साथ उसके वहाँ रहते-रहते सभी (सस्य) धान्य—पौधोंको संवर्धन—पालन करनेवाली 'वर्षाऋतु' आ गयी, जिससे कदम्ब, कुटज (कोरैया) और अर्जुन नामके वृक्ष पुष्पित हो गये। नदियोंके गर्जन, मोरोंके मधुर स्वर, कोरैया, अर्जुन और कदम्ब आदि वृक्षोंकी सुखद गन्ध और भौंरोंका गुञ्जन, पवनका प्रवाह—यह सब उस ऋतुकी विशेषता थी। फिर शरद् ऋतुका प्रवेश हुआ और अगस्त्य-नक्षत्रका उदय हुआ। तड़ागोंके जलमें स्वच्छता आ गयी और उनमें कमल, कुमुद आदि पुष्प खिल गये। अन्य सुरम्य कमल-फूलोंसे भी सर्वत्र शोभाकी वृद्धि होने लगी। अब शीतल, सुगन्ध एवं परम सुखदायी वायु बहने लगी। फिर धीरे-धीरे यह ऋतु भी समाप्त हो चली और कार्तिक महीनेके शुक्ल पक्ष-की एकादशी तिथि आयी। सुभ्रु! उस समय उस वैश्य दम्पतीने स्नान कर, रेशमी वस्त्र धारण किया और अपने पुत्रसे कहा—'पुत्र! हमलोग यहाँ छः महीने सुखपूर्वक रह चुके। आज द्वादशी तिथि आ गयी है, अब वह गोपनीय बात हमलोगोंको तुम क्यों नहीं बताते, जिसे तुमने यहाँ आकर बतानेको कहा था?'

देवि! अपने माता-पिताकी बात सुनकर उस धर्मात्मा पुत्रने उनसे मधुर वचनोंमें कहा—'महाभाग! आपने जो बात पूछी है, वह प्रसङ्ग बड़ा रहस्यपूर्ण एवं गोपनीय है। इसे मैं कल प्रातः आपलोगोंको बतलाऊँगा। पिताजी! आज यह द्वादशी तिथि है। इस पुण्य अवसरपर दीक्षित योगियोंके कुलमें उत्पन्न तथा विष्णुकी भक्तिमें तत्पर रहनेवाले जो व्यक्ति दान करते हैं, वे भगवत्कृपासे भयंकर संसार-सागरको पार कर जाते हैं।'

वसुंधरे! इस प्रकार उन लोगोंमें परस्पर बात करते-करते मङ्गलमयी रात्रि समाप्त हो गयी और फिर दिन-रात्रिकी संधिका समय आ गया एवं सूर्यमण्डल उदित हुआ। तब वह बालक यथाविधि स्नानादिसे शुद्ध होकर रेशमी वस्त्र धारणकर शङ्ख-चक्र, एवं गदा धारण-करनेवाले भगवान् श्रीहरिको प्रणाम कर माता-पिताके दोनों चरणोंको पकड़कर बोला—'महाभाग! पिताजी! जिस प्रयोजनसे हमलोग यहाँ आये हुए हैं तथा जो बात आप मुझसे बार-बार पूछ रहे हैं एवं जिस गोपनीय बातको इस 'सौकरवक्षेत्र'में कहनेके लिये मैंने प्रतिज्ञा की थी, उसे सुनें, वह प्रसङ्ग इस प्रकार है—''मैं पूर्व जन्ममें एक खञ्जरीट (खंडरिच) पक्षी था। एक बार मैं बहुत-से कीड़ोंको खाकर अजीर्ण-ग्रस्त होकर हिलने-डुलनेमें भी असमर्थ हो गया। उसी समय कुछ बालकोंने मुझे पकड़ लिया और खेल-खेलमें, एकके हाथसे दूसरे लेते रहे। कोई कहता 'इसे मैंने देखा' और कोई कहता 'उसने'। इस प्रकार वे आपसमें झगड़ने लगे। इसी बीच विवादसे ऊबकर एक बालकने मुझे घुमाकर गङ्गाके 'आदित्यतीर्थ'-नामक स्थानपर जलमें फेंक दिया, जहाँ मेरे प्राण प्रयाण कर गये। यद्यपि मेरे मनमें कोई अभिलाषा न थी, फिर भी उस तीर्थके प्रभावसे मुझे आप लोगोंका पुत्र होनेका सौभाग्य मिला। इस प्रकार तेरह वर्ष पूरे हो चुके। यही वह गोपनीय बात थी, जिसे मैंने आपसे कह दी।''

इसपर माता-पिता पुनः बोले—'पुत्र! भगवान् विष्णुके बतलाये जितने कर्म हैं, उनमें तुम जिस-जिस कर्मको करोगे, उन्हें हम भी विधिपूर्वक सम्पन्न करेंगे।' शास्त्र कहते हैं कि 'घटमाला'कर्म संसारसे मुक्त करनेके लिये परम साधन है, अतः वे सभी कुछ दिनोंतक उसका आचरण करते हुए मेरी उपासनामें संलग्न रहे। पर्याप्त धर्मानुष्ठानके बाद उनका नश्वर शरीर छूट गया और वे अपने धर्मके

प्रभावसे तथा मेरे क्षेत्रकी महिमासे संसारसे मुक्त होकर श्वेतद्वीपमें पधारे। जो लोग उनके साथ गये थे, वे योगमें निरत हो गये। उनके शरीरसे कमलके समान गन्ध निकलती थी। देवि! मेरे क्षेत्रके प्रसादसे वे भी यथायोग्य आनन्दका उपभोग करने तथा इस क्षेत्रके प्रभावसे बहुत-से प्राणी पशुयोनिसे छूटकर श्वेतद्वीपमें पहुँच गये। जो व्यक्ति प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करता है, वह अपने दस आगे और दस पीछेके पुरुषोंको तार देता है। मूर्ख, पापी, शास्त्रनिन्दक और चुगलखोर व्यक्तियोंके सामने इसकी व्याख्या या पाठ नहीं करना चाहिये। ब्राह्मणोंके समाजमें अथवा अकेले एकान्त स्थानमें इसका अध्ययन करे; क्योंकि यह सम्पूर्ण संसारसे मुक्त करनेके लिये परम साधन है।

(अध्याय १३८)

भगवान्‌के मन्दिरमें लेपन एवं संकीर्तनका माहात्म्य

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! मेरे मन्दिरका गोमयसे लेपन करनेवालेको जो फल प्राप्त होता है, वह ध्यान देकर मुझसे सुनो। (मन्दिरको) लीपते हुए मनुष्य जितने पग चलता है, उतने हजार वर्षोंतक वह दिव्य लोकोंमें आनन्द करता है। देवि! यदि मेरा कोई भक्त व्यक्ति बारह वर्षोंतक मन्दिरके लीपनेका कार्य करता है, तो वह धन और धान्यसे भरे-पूरे किसी शुद्ध एवं विशाल कुलमें जन्म पाता है और देवताओंद्वारा अभिवन्दित होता हुआ कुशद्वीपको प्राप्त करता है और वहाँ दस हजार वर्षोंतक निवास करता है। शुभे! देवि! जो मेरे अन्तर्गृहका स्वयं लेपन करता है अथवा न्यायपूर्वक दूसरोंसे लेपन कराता है, वह मेरे लोकको प्राप्त होता है। वसुंधरे! अब मैं (गोबर)की महिमा बताता हूँ, तुम उसे सुनो। मन्दिर लीपनेके लिये जो प्राणी किसी समीपके स्थानसे अथवा कहीं दूर जाकर जितने पग चलकर गोमय लाता है, वह (गोबरको लानेवाला व्यक्ति) उतने ही हजार वर्षोंतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठा पाता है। स्वर्गकी अवधि समाप्त हो जानेपर वह शाल्मलि द्वीपमें (जन्म प्राप्तकर) आनन्दका उपभोग करता है और वहाँ बारह हजार एक सौ वर्षोंतक निवास करता है। फिर वह भारतवर्षमें राजा होकर मेरा भक्त होता है तथा सभी धर्मज्ञोंमें वह श्रेष्ठ तथा मेरा उपासक होता है। अगले जन्ममें भी अपने प्राक्तन संस्कार एवं अभ्यासके कारण पुनः गोमय ला करके मेरे मन्दिरका लेपन करता है तथा उसके फलस्वरूप मेरे लोकको प्राप्त होता है। कोई गौको स्नान करा रहा हो या गायके गोबरसे मेरे मन्दिरका उपलेपन करता हो, उस समय जो व्यक्ति उसके पास जल पहुँचाता है, वह उस जलकी बूँदोंके तुल्य सहस्र वर्षोंतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है और वहाँसे जब भ्रष्ट होता है तो वह क्रौञ्च द्वीपमें जाता है और क्रौञ्च द्वीपसे भ्रष्ट होकर भूमण्डलपर धार्मिक राजा होता है। पुनः उसी पुण्यके प्रभावसे वह प्राणी मेरे श्वेत द्वीपमें पहुँचता है।

वसुंधरे! जो स्त्री-पुरुष मेरे मन्दिरमें मार्जन-कर्म करते (झाड़ू लगाते) हैं, वे सभी अपराधोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकमें सम्मानपूर्वक निवास करते हैं तथा मार्जनके समय धूलके जितने कण उड़ते हैं, उतने सौ-वर्षोंतक स्वर्गलोकमें निवास करते हैं और वहाँसे च्युत होनेपर वे शाकद्वीपको प्राप्त होते हैं। ऐसा व्यक्ति वहाँ बहुत दिनोंतक निवासकर फिर पवित्र भारतभूमिपर धार्मिक राजा होता है और सब प्रकारके भोगोंको प्राप्तकर मेरी उपासनाकर श्वेत द्वीपको प्राप्त होता है।

देवि! अब तुम्हें कुछ अन्य बातें बताता हूँ, वह सुनो। जो प्राणी मेरी आराधनाके समय पद्य-गान करते हैं, उन्हें जो फल प्राप्त होता है, उसे बतलाता हूँ, तुम

सुनो । गाये जानेवाले पद्यकी पङ्क्तियोंके जितने अक्षर होते हैं, उतने हजार वर्षोंतक गायक पुरुष इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठा पाता है । गायनमें सदा परायण रहनेवाला मेरा वह भक्त इन्द्रलोक तथा रमणीय नन्दनवनमें देवताओंके साथ आनन्द करनेके बाद जब वहाँसे च्युत होता है तो भूमण्डलमें वैष्णवकुलमें जन्म पाकर वैष्णवोंके साथ ही निवास करता है और वहाँ भी भक्तिके साथ मेरे यशोगानमें संलग्न रहता है । फिर आयु समाप्त होनेपर शुद्ध अन्तःकरणवाला वह पुरुष मेरी कृपासे मेरे ही लोकमें चला जाता है ।

पृथ्वी बोली—अहो, भक्ति-संगीतका कैसा विस्मयकारी प्रभाव है, अतः अब मैं सुनना चाहती हूँ कि इस गायनके प्रभावसे कितने पुरुष सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं ।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! वराहक्षेत्रमें मेरे मन्दिरके पास एक चण्डाल रहता था, जो मेरी भक्तिमें तत्पर रहकर सारी रात जगकर मेरा यश गाता रहता था । कभी वह सुदूर अन्य प्रदेशतक भ्रमण करते हुए मेरा भक्ति-संगीत गाता रहता । इस प्रकार उसने बहुत-से संवत्सर व्यतीत कर दिये ।

एक समयकी बात है, कार्तिकमासके शुक्लपक्षकी द्वादशीकी रातमें जब सभी लोग सो गये थे, उसने वीणा उठायी और भक्ति-गीत गाते हुए भ्रमण करना प्रारम्भ किया । इसी बीच उसे एक ब्रह्मराक्षसने पकड़ लिया । चण्डाल बेचारा निर्बल था और ब्रह्मराक्षस अत्यन्त बली, अतः वह अपनेको उससे छुड़ा न सका और दुःख एवं शोकसे व्याकुल होकर वह निश्चेष्ट-सा हो गया । फिर उस ब्रह्मराक्षससे कहने लगा—'अरे, मुझसे तुम्हारा क्या अभीष्ट सिद्ध होनेवाला है, जो तुम इस प्रकार मुझपर चढ़ बैठे हो ।' उसकी यह बात सुनकर मनुष्योंके मांसके लोभी ब्रह्मराक्षसने चण्डालसे कहा—'आज दस रातोंसे मुझे कोई भोजन नहीं मिला है । ब्रह्माने मेरे भोजनके लिये ही तुम्हें यहाँ भेज दिया है । आज मैं मज्जा, मांस और रक्तोंसे भरे-पूरे तेरे शरीरका भक्षण करूँगा । इससे मेरी तृप्ति हो जायगी ।'

वसुंधरे ! चण्डाल मेरे गुणगानके लिये लालायित था । उस व्यक्तिने ब्रह्मराक्षससे प्रार्थना की—'महाभाग ! मैं तुम्हारी बात मानता हूँ । ब्रह्माने तुम्हारे खानेके लिये ही मुझे भेजा है, परंतु परम प्रभुकी भक्तिसे सम्पन्न होकर इस जागरणमें मैं देवाधिदेव जगदीश्वरके पद्यगानके लिये समुत्सुक हूँ । अतः वनमें उनके आवासस्थलके पास जाकर संगीत सुनाकर मैं लौट आऊँ, तब तुम मुझे खा लेना, परंतु इस समय मुझे जाने दो, क्योंकि मैंने यह व्रत धारण कर रखा है कि निशीथ(आधीरात)में भगवान् श्रीहरिको प्रसन्न करनेके लिये भक्तिसंगीत सुनाया करूँगा । व्रत पूरा होनेपर तुम मुझे खा लेना । इसपर क्षुधार्त्त ब्रह्मराक्षस कठोर शब्दोंमें बोला—"अरे मूर्ख ! क्यों ऐसी झूठी बात बनाता है । तू कहता है कि 'तुम्हारे पास फिर मैं आऊँगा' । भला ऐसा कौन मनुष्य है, जो मृत्युके मुखमें पहुँचकर फिर जीवित लौट जाय । तुम ब्रह्मराक्षसके मुखमें पड़कर भी फिर जानेकी इच्छा करते हो ?' चण्डाल बोला—'ब्रह्मराक्षस ! मैं यद्यपि पहलेके निन्दित कर्मोंके प्रभावसे इस समय चण्डाल बना हूँ, किंतु मेरे अन्तःकरणमें धर्म स्थित है । तुम मेरी प्रतिज्ञा सुनो, मैं धर्मानुसार पुनः निश्चित आऊँगा । ब्रह्मराक्षस ! अपने जागरणव्रतको पूराकर मैं लौटकर यहाँ अवश्य आऊँगा । देखो, सम्पूर्ण जगत् सत्यके आधारपर ही टिका है । अन्य सब लोक भी सत्यपर ही आधृत हैं । ब्रह्मवादी ऋषियोंने सत्यके द्वारा ही सिद्धि प्राप्त की थी । कन्या सत्यप्रतिज्ञापूर्वक ही दान की जाती है । ब्राह्मणलोग भी सदा सत्य ही बोलते हैं । राजालोग सत्य-भाषण करनेके प्रभावसे ही तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त करते हैं* ।

* सत्यमूलं जगत्सर्वं लोकाः सत्ये प्रतिष्ठिताः । सत्येन दीयते कन्या सत्यं जल्पन्ति ब्राह्मणाः ॥
सत्यं जयन्ति राजानस्त्रीण्येतान्यब्रुवन्नृतम् ।
(वराहपु० १३९ । ५०-५१)

स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति भी सत्यके प्रभावसे ही सुलभ होती है। सूर्य भी सत्यके प्रतापसे ही तपते हैं और चन्द्रमा भी सत्यके ही प्रभावसे जगत्‌को रञ्जित—आनन्दित करते हैं।* मैं सत्यतापूर्वक प्रतिज्ञा करता हूँ कि 'यदि मैं लौटकर तुम्हारे पास फिर न आऊँ तो षष्ठी, अष्टमी, अमावास्या, दोनों पक्षकी चतुर्दशी—इन तिथियोंमें जो स्नानतक नहीं करता, उसकी जो दुर्गति होती है, वह गति मुझे प्राप्त हो। जो व्यक्ति अज्ञान तथा मोहमें पड़कर गुरु और राजाकी पत्नीके साथ गमन करता है, उसे जो गति मिलती है, वही गति यदि मैं फिर न लौटूँ तो मुझे प्राप्त हो। मिथ्या यज्ञ करनेवाले पुरुषोंको तथा मिथ्याभाषण करनेवाले लोगोंको जो गति प्राप्त होती है, वही गति यदि मैं पुनः न आ सकूँ तो मुझे प्राप्त हो। ब्राह्मणका वध करनेपर, मदिरा-पान, चोरी और व्रतभङ्ग करनेपर मनुष्यको जो गति प्राप्त होती है, यदि मैं पुनः न लौटूँ तो वह मुझे प्राप्त हो।'

देवि! उस समय चण्डालकी बात सुनकर वह ब्रह्मराक्षस प्रसन्न हो गया। अतः वह मधुर वाणीमें कहने लगा—'अच्छा, तुम जाओ, नमस्कार।' इस प्रकार अपने निश्चयमें अडिग चण्डाल ब्रह्मराक्षससे ऐसा कहकर मेरे संगीतमें तल्लीन हो गया। उसके नाचते-गाते सम्पूर्ण रात्रि बीत गयी। प्रातःकाल होनेपर जब वह ब्रह्मराक्षसके पास वापस चला तो इतनेमें कोई पुरुष उसके सामने आकर खड़ा हो गया और उसने उससे कहा—'साधो! तुम इतनी शीघ्रतासे कहाँ चले जा रहे हो? तुम्हें उस ब्रह्मराक्षसके पास कदापि नहीं जाना चाहिये। वह ब्रह्मराक्षस तो शवतकको खा जाता है; अतः तुम्हें वहाँ प्रत्यक्ष मृत्युमुखमें नहीं जाना चाहिये।'

चण्डालने कहा—'पहले जब मुझे ब्रह्मराक्षस खानेको तैयार था, तब मैंने उसके सामने प्रतिज्ञा की थी कि मैं वापस आ जाऊँगा। सत्यका पालन करना परम आवश्यक है।' इसपर उस पुरुषने उसके हितकी इच्छासे कहा—'चण्डाल! वहाँ मत जाओ; क्योंकि जीवनकी रक्षाके लिये सत्यत्यागका दोष नहीं होता।' किंतु चण्डाल अपने व्रतमें अटल था। अतः वह मधुर वाणीमें बोला—'मित्र! तुम जो कह रहे हो, वह मुझे अभीष्ट नहीं है। मुझसे सत्यका त्याग नहीं हो सकता; क्योंकि मेरा व्रत अचल है। जगत्‌की जड़ सत्य है और सत्यपर ही यह सारा संसार टिका है। सत्य ही परम धर्म है। परमात्मा भी सत्यपर ही प्रतिष्ठित है; अतः मैं किसी प्रकार भी असत्यका आचरण नहीं करूँगा।' इस प्रकार कहकर वह चण्डाल ब्रह्मराक्षसके पास चला गया और उसका सम्मान करते हुए बोला—'महाभाग! मैं आ गया हूँ। अब मुझे भक्षण करनेमें तुम विलम्ब न करो। तुम्हारी कृपासे अब मैं भगवान् विष्णुके उत्तम स्थानको जाऊँगा। अब तुम अपनी इच्छाके अनुसार मेरे शरीरके इन अङ्गोंको खा सकते हो।

अब वह ब्रह्मराक्षस मधुर वाणीमें कहने लगा—'साधु वत्स! साधु! मैं तुमसे संतुष्ट हो गया, क्योंकि तुमने सत्य-धर्मका भलीभाँति पालन किया है। चण्डालोंको प्रायः किसी धर्मका ज्ञान नहीं होता, पर तुम्हारी बुद्धि पवित्र है।'

'भद्र! यदि तुम्हें जीनेकी इच्छा है तो विष्णु-मन्दिरके पास जाकर गत रातमें तुमने जो गान किया है, उसका फल मुझे दे दो, मैं तुम्हें छोड़ दूँगा, न तो खाऊँगा और न डराऊँगा।' ब्रह्मराक्षसकी बात सुनकर चण्डाल बोला—'ब्रह्मराक्षस! तुम्हारे इस वाक्यका क्या अभिप्राय है? मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ। पहले 'मैं खाना चाहता हूँ'—यह कहकर अब तुम भगवद्गुणानुवाद-का पुण्य क्यों चाहते हो?' चण्डालकी बात सुनकर ब्रह्मराक्षस बोला—'बस, तुम अपने एक पहरके गीतका

* सत्येन गम्यते स्वर्गो मोक्षः सत्येन चाप्यते। सत्येन तपते सूर्यः सोमः सत्येन रज्यते। (वराहपु० १३९। ५३)

ही पुण्य मुझे दे दो। फिर मैं तुम्हें छोड़ दूँगा और स्त्री-पुत्रके साथ तुम जीवित रह सकोगे।' पर उस चण्डालको गीतके पुण्यका लोभ था। अतः वह बोला—'ब्रह्मराक्षस! मैं संगीतका फल नहीं दे सकता। तुम अपने नियमके अनुसार मुझे खा जाओ और मनोऽभिलषित रुधिरका पान कर लो।' अब वह ब्रह्मराक्षस कहने लगा, 'तात! तुमने जो विष्णुके मन्दिरमें गायन-कार्य किये हैं, उनमेंसे केवल एक गीतका ही फल मुझे देनेकी कृपा करो। तुम्हारे इस एक गीतके फलसे ही मैं तर सकता हूँ और अपने परिवारको भी तार सकता हूँ। इसपर चण्डालने उसे सान्त्वना देते हुए, आश्चर्य-चकित होकर उससे पूछा—'ब्रह्मराक्षस! तुमने कौन-सा विकृत कर्म किया है, जिस दोषसे तुम्हें ब्रह्मराक्षस होना पड़ा है। तुम मुझे बताओ।'

ब्रह्मराक्षस बोला—'मैं पूर्वजन्ममें चरकगोत्रीय सोमशर्मा नामका एक यायावर ब्राह्मण था। मुझे यद्यपि वेदके सूत्र और मन्त्र कुछ भी ठीक-ठीक ज्ञात न थे, फिर भी यज्ञादि कर्म करानेमें लगा रहता था। लोभ और मोहसे आकृष्ट होकर फिर मैं मूर्खोंका पौरोहित्य करने लगा—उनके यज्ञ, हवन आदिका कार्य कराने लगा। एक समयकी बात है कि जब मैं संयोगवश एक 'पाञ्चरात्र'संज्ञक यज्ञ करा रहा था कि इतनेमें ही मुझे उदरशूल उत्पन्न हुआ और मेरे प्राण निकल गये। उसकी पूर्णाहुति नहीं हुई। अतः मेरी यह स्थिति हुई है। उस दूषित कर्मके प्रभावसे ही मैं ब्रह्मराक्षस हो गया। मैंने उस यज्ञमें मन्त्रहीन, स्वरहीन और नियमविरुद्ध प्राग्वंश* आदिकी स्थापना की थी, हवन भी अविधिपूर्वक ही कराया। उसी कर्म-दोषके परिणामस्वरूप मुझे यह राक्षसी योनि प्राप्त हुई है। अब तुम अपने गीतका फल देकर मेरा उद्धार करो। विष्णुगीतके पुण्यद्वारा अब मुझ अधमको शीघ्र ही इस पापसे मुक्त कर दो।'

देवि! वह चण्डाल एक उत्तमव्रती व्यक्ति था। उसने ब्रह्मराक्षसकी बात सुनकर उसके वचनोंका सहर्ष अनुमोदन किया, साथ ही बोला—'राक्षस! यदि मेरे गीतके फलसे तुम शुद्धमना एवं क्लेशमुक्त हो सकते हो तो लो, मैंने अत्यन्त सुन्दर स्वरोंसे जो सर्वोत्कृष्ट गान किया है, उसीका फल मैं तुम्हें प्रदान करता हूँ। जो पुरुष श्रीहरिके सामने इस भक्ति-संगीतका गान करता है, वह लोगोंको अत्यन्त कठिन परिस्थितियोंसे भी तार देता है।' ऐसा कहकर उस चण्डालने उस गीतका फल ब्रह्मराक्षसको दे दिया। भद्रे! फलतः वह ब्रह्मराक्षस तत्काल एक दिव्य पुरुषके रूपमें परिवर्तित हो गया। ऐसा जान पड़ता था, मानो वह शरदृतुका चन्द्रमा हो। मेरे गुणयुक्त गीतोंका फल अनन्त है। देवि! यह मैंने भक्ति-संगीतके गायनके श्रेष्ठ फलका वर्णन कर दिया, जिस गीतके एक शब्दके प्रभावसे मनुष्य संसार-सागरसे तर जाता है।

अब जो वाद्यका फल होता है, उसे बताता हूँ, इसकी सहायतासे वसिष्ठने देवताओंसे शबला गौको प्राप्त किया था। (शम्पा) झाँप और ताल अथवा इनके संयोग-प्रयोगसे मनुष्य नौ हजार नौ सौ वर्षोंतक कुबेरके भवनमें जाकर इच्छानुसार आनन्दका उपभोग करता है। फिर वहाँसे अवकाश मिलनेपर झाँप और तालोंसे सम्पन्न होकर स्वतन्त्रतापूर्वक मेरे लोकोंमें पहुँच जाता है। अब जो मनुष्य मेरी आराधनाके समय नृत्य करता है, उसका पुण्य कहता हूँ, सुनो। इसके फलस्वरूप वह संसार-बन्धनको काटकर मेरे लोकको प्राप्त करता है।

जो मानव जागरण करके गीत और वाद्यके साथ मेरे सामने नृत्य करता है, वह जम्बूद्वीपमें जन्म

* 'प्राग्वंशशाला'—यह वेदीके पूर्व ओरमें बनी हुई पत्नी-शाला है, जिसमें घरके स्त्री, बच्चे आदि बैठते हैं। (भागवत ४।५।१४)की टीकामें अधिकांश व्याख्याताओंने इसे यज्ञशालाका बाँस माना है, पर वह ठीक नहीं लगता। द्रष्टव्य—श्रौतकोश भाग २, 'श्रौतपदार्थनिर्वचनम्' ३।१३—१५।

पाकर, राजाओंका भी राजा होता है और सम्पूर्ण धर्मोंसे सम्पन्न होकर वह सम्पूर्ण पृथ्वीका रक्षक होता है। मेरा भक्त मुझे पुष्प और उपहार अर्पण कर मेरे लोकको प्राप्त होता है। वसुंधरे! जो सत्कर्मके पथपर पैर रखकर मेरी उपासना करता है तथा जो पुष्पोंको लाकर मेरे ऊपर चढ़ाता है, वह महान् उत्तम कर्मका सम्पादन कर लेता है, अतः वह मेरे लोकमें जानेका अधिकारी हो जाता है। वसुंधरे! जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करता है, वह अपने पूर्वकी दस तथा आगे होनेवाली दस पीढ़ियोंको तार देता है। मूर्खों एवं निन्दकोंके सामने इसका प्रवचन नहीं करना चाहिये। यह धर्मोंमें परम धर्म और क्रियाओंमें परम क्रिया है। शास्त्रकी निन्दा करनेवाले व्यक्तिके सामने कभी भी इसका कथन नहीं करना चाहिये। जो मुझमें श्रद्धा रखते हैं तथा जिनमें मुक्तिकी अभिलाषा है, उनके सामने ही उसका पठन-पाठन करना चाहिये। (अध्याय १३९)

कोकामुख-बदरी-क्षेत्रका माहात्म्य

पृथ्वी बोली—भगवन्! आपने जिन तीर्थोंके माहात्म्यका वर्णन किया है, उन्हें मैं सुन चुकी। अब मैं यह जानना चाहती हूँ कि आप सगुण साकारविग्रह धारणकर सदा किस क्षेत्रमें सुशोभित होते हैं; जहाँ आपका उत्तम कर्म सम्पादनकर श्रेष्ठ गति प्राप्त की जाय।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! कोकामुख* तीर्थका नाम तो मैं तुम्हें पहले बता ही चुका हूँ, जो गिरिराज हिमालयकी तलहटीमें स्थित है। इसके अतिरिक्त दूसरा लोहार्गल† नामका एक स्थान है, जिसे मैं एक क्षण भी नहीं छोड़ता। ऐसे तो ज्ञानकी दृष्टिसे चर-अचर सारा जगत् मुझसे व्याप्त है और कोई भी स्थान मुझसे रिक्त नहीं, किंतु जो लोग मेरी गूढ़ गतिको जानना चाहते हैं, वे मेरी आराधनामें लगनेकी इच्छासे यथाशीघ्र 'कोकामुख' जानेका प्रयत्न करें।

धरणीने पूछा—जगत्प्रभो! जब आप सर्वत्र रहते हैं, तो आप 'कोकामुख'क्षेत्रको ही कैसे श्रेष्ठ बतलाते हैं?

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! 'कोकामुख'-क्षेत्रसे बढ़कर कोई भी स्थान मेरे लिये श्रेष्ठ, पवित्र, उत्तम या प्रिय नहीं है। जो व्यक्ति 'कोकामुख'क्षेत्रमें पहुँच गया, वह पुनः इस संसारमें जन्म नहीं पाता। 'कोकामुख'क्षेत्रके समान दूसरा कोई स्थान न हुआ, न आगे होगा। वहाँ मेरी मूर्तिका गुप्तरूपसे निवास है।

पृथ्वी बोली—देवेश्वर! आप सर्वोपरि देवता हैं। भक्तोंको अभय प्रदान करना आपका स्वाभाविक गुण है। अब इस 'कोकामुख'क्षेत्रमें जितने गोपनीय स्थान हैं, उन्हें मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! जहाँ इसमें मुख्य पर्वतसे सदा जलकी बूँदें भूमिपर गिरती हैं, उस स्थानको 'जलबिन्दु'तीर्थ कहते हैं। वहाँ पृथ्वीपर मूसलकी तुलना करनेवाली पर्वतसे एक धारा गिरती है, जिसका नाम 'विष्णुधारा' है। जो वहाँ मात्र एक दिन-रात उपवासकर यत्नपूर्वक स्नान करता है, उसे एक हजार 'अग्निष्टोम-यज्ञों'के अनुष्ठान करनेका फल प्राप्त होता है और उसकी बुद्धिमें कर्तव्यनिर्धारणमें कभी व्यामोह नहीं होता। फिर अन्तमें वह 'विष्णुधारा'के तटपर ही मरनेका सौभाग्य प्राप्तकर नित्य मेरी इस मूर्तिका दर्शन करता रहता है, इसमें

* देखिये पृष्ठ २०१ और उसकी टिप्पणी।

† द्रष्टव्य-अध्याय १५१ तथा पृष्ठ ३६५की टिप्पणी।

कोई संशय नहीं । उस 'कोकामुख'क्षेत्रमें एक 'विष्णुपद' नामका स्थान है । वसुंधरे ! वहाँ भी मेरी मूर्ति है, किंतु इस रहस्यको कोई नहीं जानता । देवि ! जो व्यक्ति वहाँ स्नान कर एक रात निवास करता है, वह मुझमें श्रद्धा रखनेवाला व्यक्ति 'क्रौञ्च'द्वीपमें जन्म पाता है और अन्तमें जब प्राणोंका त्याग करता है, तब आसक्तियोंसे मुक्त होकर मेरे लोकको प्राप्त होता है ।

इसी 'कोका'मण्डलमें 'चतुर्धारा' नामक एक स्थान है । वहाँ ऊँचे पर्वतसे धाराएँ गिरती हैं । जो मानव पाँच राततक निवास करते हुए वहाँ स्नान करता है, वह कुशद्वीपमें निवास करनेके पश्चात् मेरे लोकमें स्थान पाता है । कर्म-फलको सुखमें परिवर्तित करनेवाला यहाँ एक 'अनित्य' नामक प्रसिद्ध क्षेत्र है, जिसे देवतालोग भी जाननेमें असमर्थ हैं, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या ? श्रेष्ठ गन्धोंवाली पृथ्वि ! वहाँ एक दिन-रात निवास करके स्नान करनेवाला पुरुष पुष्करद्वीपमें जन्म पाता है और फिर वह सभी पापोंसे मुक्त होकर मेरे लोकको जाता है । वहीं मेरा एक अत्यन्त गोपनीय 'ब्रह्मसर' नामसे प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ शिलातलपर एक पवित्र धारा गिरती है । जो मेरा भक्त पाँच राततक वहाँ निवास कर स्नान करता है, वह सूर्यलोकको प्राप्त होता है । सूर्यधाराके आश्रयमें रहनेवाला वह व्यक्ति जब प्राणोंका त्याग करता है तो वह मेरे लोकको प्राप्त होता है ।

देवि ! यहीं मेरा एक परम गुप्त स्थान है, जिसे 'धेनुवट' कहते हैं । वहाँ ऊँची शिलासे एक मोटी धारा गिरती है । मेरे कर्ममें संलग्न जो पुरुष वहाँ प्रतिदिन स्नान करता और सात राततक रह जाता है तो उसे ऐसा माना जाता है कि उसने सातों समुद्रोंमें स्नान कर लिया है । फलतः वह मेरी उपासनामें लगा हुआ सातों द्वीपोंमें विहार करता चलता है तथा अन्तमें मेरा ध्यान-भजन करते हुए मरकर वह सातों द्वीपोंका अतिक्रमण कर मेरे लोकको प्राप्त कर लेता है । देवि ! वहाँपर 'कोटिवट' नामका एक गुप्तक्षेत्र है, जहाँ वटवृक्षकी जड़से निकलकर एक धारा गिरती है । वहाँ एक राततक निवास करके स्नान करनेवाला मनुष्य मेरे उस पर्वत-शृङ्गपर वटके पत्तोंकी संख्याके हजार गुने वर्षोंतक रूप और सम्पत्तिसे सम्पन्न रहता है । फिर देवि ! मृत्यु होनेपर वह अग्निके समान तेजस्वी होकर मेरे लोकको प्राप्त होता है ।

देवि ! मेरे इस क्षेत्रमें 'पाप-प्रमोचन'नामका एक गुप्त स्थान है । जो कोई वहाँ एक दिन-रात रहकर स्नान करता है, वह चारों वेदोंमें पारंगत होकर जन्म पाता है । वहीं एक कौशिकी नामकी नदी है । जो मानव वहाँ पाँच रात्रितक निवास करता हुआ स्नान करता है, वह इन्द्रलोकमें जाता है । कौशिकी नदीसे होकर वहाँ एक धारा बहती है । जो मनुष्य एक रात रहकर उसमें स्नान करता है उसे यमलोकके घोर कष्टोंको नहीं भोगना पड़ता । मेरा वह भक्त प्राणोंका त्याग कर मेरे धाममें चला जाता है ।

भद्रे ! मेरे बदरीक्षेत्रमें एक और विशिष्ट स्थान है, जिसके प्रभावसे मनुष्य संसार-सागरको लाँघ जाते हैं । उसका नाम 'दंष्ट्राङ्कुर' है और यहीं कोका नदीका उद्गम-स्थान है । इस गुह्य स्थानको जाननेमें सभी असमर्थ हैं, इस कारण लोग वहाँ जा नहीं पाते । भद्रे ! वहाँ स्नान करके एक दिन-रात पवित्र-भावसे निवास करनेवाला मानव 'शाल्मलि'द्वीपमें जन्म पाता है । फिर मेरी उपासनामें संलग्न रहता हुआ वह व्यक्ति प्राणत्याग करनेके उपरान्त 'शाल्मलि'द्वीपका भी परित्याग कर मेरे संनिकट पहुँच जाता है ।

महाभागे ! वहीं एक परमफलदायक दूसरा गुप्त स्थान भी है, जिसे 'विष्णुतीर्थ' कहते हैं । वहाँ पर्वतके बीचसे जलकी धारा निकलकर कोकानदीमें गिरती

है । उस जलको 'त्रिस्रोतस्' कहते हैं, यह सम्पूर्ण संसारसे मुक्त करानेवाला है । पृथ्वीदेवि ! वहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य संसारके बन्धनको काटकर वायुदेवताके लोकको प्राप्त होता है और वायुका स्वरूप धारण करके ही वह वहाँ निवास करता है । फिर मेरी उपासनामें संलग्न रहता हुआ वह व्यक्ति जब प्राणोंका त्याग करता है, तब उस लोकसे चलकर मेरे लोकमें पहुँच जाता है । यहीं 'कौशिकी' और 'कोका'के सङ्गमपर एक श्रेष्ठ स्थान है, जिसके उत्तर भागमें 'सर्वकामिका' नामकी शिला शोभा पाती है । वहाँ स्नानपूर्वक जो एक दिन-रात निवास करता है, उसकी प्रशस्त एवं विशाल कुलमें उत्पत्ति होती है और उसे जातिस्मरता प्राप्त होती है—(पूर्वजन्मकी सारी बातें याद रहती हैं) । इस कौशिकी-कोकासङ्गममें (सर्वकामिका शिलाके पास) स्नान करनेसे मनुष्य स्वर्ग अथवा भूमण्डल जहाँ कहीं भी जाना चाहता है, या जो कुछ प्राप्त करना चाहता है, वह सब कुछ ही प्राप्त कर लेता है । मेरी आराधनामें तत्पर रहनेवाला मानव उस स्थानपर प्राणोंके परित्याग करनेके बाद सब प्रकारकी आसक्तियोंसे मुक्त हो करके मेरे लोकमें चला जाता है । भद्रे ! 'कोकामुख'क्षेत्रमें 'मत्स्यशिला' नामक एक गुह्य स्थान है । उस श्रेष्ठ स्थानपर कौशिकी नदीसे निकली हुई तीन धाराएँ गिरती हैं । देवि ! यदि उसमें स्नान करते समय जलमें मछली दिखलायी पड़ जाय तो उसे समझना चाहिये कि स्वयं भगवान् नारायण ही मुझे प्राप्त हो गये । सुन्दरि ! मत्स्यको देखनेके पश्चात् यजन (पूजन) करता हुआ पुरुष मधु और लाजा (लावा)से समन्वित अर्घ्य प्रदान करे । देवि ! जो मेरे ऐसे उत्तम एवं परम गुह्य क्षेत्रमें स्नान करता है, वह मेरु पर्वतके उत्तर भागमें 'पद्मपत्र' नामक स्थानपर निवास करता है । कुछ दिन वहाँ रहनेके पश्चात् मेरे उस गोपनीय स्थानको जब छोड़ता है, तब मेरे लोकमें चला जाता है ।

वसुंधरे ! पाँच योजनके विस्तारमें मेरा 'कोकामुख'-नामक क्षेत्र है । उसे जाननेवाला पापकर्ममें लिप्त नहीं होता । अब एक दूसरे स्थानका परिचय सुनो । परम रमणीय इस 'कोकामुख'क्षेत्रमें जहाँ मैं दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके बैठता हूँ, वहीं 'शिलाचन्दन' नामका एक स्थान है, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है । पुरुषकी आकृतिसे सम्पन्न होनेपर भी मैं वहाँ वराहका रूप धारण करके रहता हूँ । वहाँ सुन्दर ऊँचा मुख और ऊपरतक उठे हुए दाढ़सहित मैं अखिल विश्वको देखता हूँ । देवि ! जो मेरे प्रेमी भक्त मुझे स्मरण करते हैं, तथा मेरे उपास्य कर्मोंमें रत रहते हैं, उनके पापोंका सर्वथा नाश हो जाता है । अतः वे पवित्रात्मा पुरुष संसार-बन्धनसे छूट जाते हैं । यह महत्त्वपूर्ण 'कोकामुखस्थान' गुह्योंमें भी परम गुह्य है और सिद्धोंके लिये परम सिद्धि-प्रदाता है । साधक पुरुष सांख्ययोगके प्रभावसे जिस महान् सिद्धिको प्राप्त नहीं कर पाते, वही सिद्धि 'कोकामुख'-क्षेत्रमें जानेपर सहज सुलभ हो जाती है । वसुंधरे ! यह रहस्य मैं तुम्हें बता चुका ।

महाभागे ! तुम्हारे प्रश्नके उत्तरमें मैंने श्रेष्ठ स्थानों-का वर्णन कर दिया । अब तुम अन्य कौन-सा प्रसङ्ग सुनना चाहती हो ? पृथ्वीदेवि ! मेरा कहा हुआ यह 'कोकामुख'-तीर्थ सर्वोत्तम स्थान है । जो वहाँ जाकर दर्शन-स्नानादि करता है, वह अपने दस पूर्वके पुरुषोंको और दस आगे होनेवाले कुटुम्बियोंको तार देता है । फिर यदि वहाँ दैवयोगसे कदाचित् शरीरका परित्याग कर देता है तो वह परम शुद्ध भगवद्भक्तके कुलमें जन्म लेता है । उसका मन एकमात्र मुझमें लगता है और वह मेरे धर्म-का प्रचारक होता है । जो मानव प्रातःकाल उठकर इसका सदा श्रवण करता है, वह शरीर त्यागनेके

पश्चात् मेरे लोकमें जाता है। उसके पाँच सौ जन्मोंके सब पाप मिट जाते हैं और वह मेरा प्रिय भक्त हो जाता है। जो प्रातःकाल इस उपाख्यानको नित्य पढ़ता है, उसे मेरा उत्तम स्थान प्राप्त होता है, इसमें कोई संशय नहीं।

(अध्याय १४०)

'बदरिकाश्रम'का माहात्म्य

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! उसी हिमालय पर्वतपर एक अत्यन्त गुह्य स्थान है, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। इसे 'बदरिकाश्रम' कहते हैं। इसमें संसारसे उद्धार करनेकी दिव्य शक्ति है। जिनकी मुझमें श्रद्धा है, केवल वे ही उस भूमिमें पहुँचनेमें सफल होते हैं। उसे प्राप्त करनेपर मानवके सभी मनोरथ पूर्ण हो सकते हैं। उस ऊँचे पर्वतशिखरपर 'ब्रह्मकुण्ड' नामका एक प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ मैं हिममें स्थित होकर निवास करता हूँ। जो मनुष्य वहाँ तीन राततक उपवास रहकर स्नान करता है, वह 'अग्निष्टोम'यज्ञका फल प्राप्त करता है। मेरे व्रतमें आस्था रखनेवाला जितेन्द्रिय मनुष्य यदि वहाँ प्राणोंका त्याग करता है तो वह सत्य-लोकका उल्लङ्घनकर मेरे धामको प्राप्त होता है। मेरे उसी उत्तम क्षेत्रमें एक 'अग्निसत्यपद' नामक स्थान है, जहाँ हिमालयके तीन शृङ्गोंसे विशाल धाराएँ गिरती हैं। मेरे कर्ममें परायण रहनेवाला जो मानव वहाँ तीन राततक निवास कर स्नान करता है, वह सत्यवादी एवं कार्यमें परम कुशल होता है। वहाँके जलका स्पर्श करके यदि कोई प्राणोंका त्याग करता है तो वह मेरे लोकमें आनन्दपूर्वक निवास करता है।

देवि ! इसी बदरिकाश्रममें 'इन्द्रलोक' नामका भी मेरा एक प्रसिद्ध आश्रम है। वहाँ इन्द्रने मुझे भलीभाँति संतुष्ट किया था। हिमालयके शृङ्गोंसे निरन्तर वहाँ मोटी धाराएँ गिरती हैं। उस विशाल शिलातलपर मेरा धर्म सदा व्यवस्थित रहता है। जो मानव वहाँ एक रात भी रहकर स्नान करता है, वह सत्यवक्ता एवं परम पवित्र होकर 'सत्यलोक'में प्रतिष्ठा पाता है। जो वहाँ नित्य व्रत करनेके पश्चात् अपने प्राणोंका त्याग करता है, वह मेरे लोकमें जाता है। बदरिकाश्रमसे सम्बन्ध रखनेवाला 'पञ्चशिख' नामका एक ऐसा तीर्थ है, जहाँ हिमालयकी पाँच चोटियोंसे जलकी धाराएँ गिरती हैं। वे धाराएँ पाँच नदीके रूपमें परिवर्तित हो गयी हैं। वहाँ जो मानव स्नान करता है, वह 'अश्वमेधयज्ञ'का फल प्राप्तकर देवताओंके साथ आनन्दका उपभोग करता है। दुष्कर तप करनेके पश्चात् यदि वहाँ कोई प्राण-त्याग करता है तो वह स्वर्गलोकका अतिक्रमण कर मेरे लोकमें प्रतिष्ठित होता है। मेरे उसी क्षेत्रमें 'चतुःस्रोत' नामसे प्रसिद्ध एक स्थान है। जहाँ हिमालयकी चारों दिशाओंसे चार धाराएँ गिरती हैं। जो मनुष्य एक रात भी वहाँ निवास कर स्नान करता है, वह स्वर्गके ऊर्ध्वभागमें आनन्दपूर्वक निवास करता है, और वहाँसे भ्रष्ट होकर मनुष्यलोकमें जन्म लेनेपर मेरा भक्त होता है। फिर संसारके दुष्कर कर्म (कठिन साधना) करके प्राणोंका त्यागकर स्वर्गका अतिक्रमण कर मेरे लोकको प्राप्त होता है।

वसुंधरे ! मेरे उसी क्षेत्रमें एक 'वेदधार' नामका तीर्थ है, जहाँ ब्रह्माजीके मुखसे चारों वेद प्रकट हुए थे। यहाँ चार विशाल धाराएँ ऊँची शिलापर गिरती हैं, जो मनुष्य चार राततक यहाँ रहकर स्नान करता है, वह चारों वेदोंके अध्ययनका अधिकारी होता है। जो मेरा उपासक मनुष्य वहाँ अपने प्राणोंका त्याग

करता है, मेरे लोकमें प्रतिष्ठित होता है । यहीं द्वादश दिव्य-'कुण्ड' नामक वह स्थान है, जहाँ मैंने बारह सूर्योंको स्थापित किया था । वहाँके पर्वत-शृङ्गकी जड़ विशाल है । इसके नीचे बहुत-सी शिलाएँ हैं । किसी भी द्वादशी तिथिको यदि कोई वहाँ स्नान करता है तो जहाँ द्वादश सूर्य रहते हैं, वह उस लोकमें जाता है, इसमें कोई संशय नहीं । फिर मेरे कर्ममें स्थित रहनेवाला वह मनुष्य प्राणोंका परित्याग कर आदित्योंके पाससे अलग होकर मेरे लोकमें प्रतिष्ठित होता है ।

यहीं 'सोमाभिषेक' नामसे प्रसिद्ध एक तीर्थ है, जहाँ मैंने चन्द्रमाका ब्राह्मणोंके राजाके रूपमें अभिषेक किया था । उन अत्रिनन्दन चन्द्रमाने मुझे यहीं संतुष्ट किया था । वसुंधरे ! चौदह करोड़ वर्षोंतक तपोऽनुष्ठान कर मेरी कृपासे चन्द्रमाको परम सिद्धि उपलब्ध हुई थी । यह सारा जगत् एवं इसकी उत्तम ओषधियाँ सब उन चन्द्रमाके ही अधिकारमें हैं । इसी स्थानपर इन्द्र, स्कन्द और मरुद्गण प्रकट और विलीन हुआ करते हैं । देवि ! मुझसे सम्बन्ध रखने-वाली वहाँकी सभी वस्तुएँ सोममय होकर अन्तमें मुझमें स्थित हो जायँगी । वहाँ 'सोमगिरि' नामसे प्रसिद्ध एक ऐसा स्थान है, जहाँ भूमिपर, कुण्डमें एवं विशालवनमें भी धाराएँ गिरती हैं । देवि ! यह मैं तुम्हें बता चुका । जो मानव तीन राततक वहाँ रहकर स्नान करता है, वह सोमलोकको प्राप्तकर आनन्दका उपभोग करता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं । देवि ! फिर अत्यन्त कठोर तप करनेके बाद जब उसकी मृत्यु होती है तो वह चन्द्रलोकका उल्लङ्घन कर मेरे लोकको प्राप्त करता है ।

देवि ! मेरे इसी बदरिकाश्रमक्षेत्रमें 'उर्वशी-कुण्ड'-नामक वह गुप्त क्षेत्र भी है, जहाँ उर्वशी नामकी अप्सरा मेरी दाहिनी जाँघको विदीर्ण कर प्रकट हुई थी । देवि ! देवताओंका कार्य साधन करनेके लिये मैं वहाँ (निरन्तर) तप करता रहता हूँ, पर मुझे कोई नहीं जानता, मैं स्वयं ही अपने-आपको जानता हूँ । वहाँ मेरे तपस्या करते हुए बहुत वर्ष बीत गये, किंतु इन्द्र, ब्रह्मा एवं महेश्वर आदि देवता भी यह रहस्य न जान सके ।

देवि ! 'बदरिकाश्रम'में तपका फल सुनिश्चित है, अतः स्वयं मैंने भी वहाँ रहकर बहुत वर्षोंतक तपस्या की है । पृथ्वीदेवि ! वहाँपर मैं दस करोड़, दस अरब तथा कई पद्म वर्षोंतक तप करनेमें तत्पर रहा । उस समय मैं ऐसे गुप्त स्थानमें था कि देवतालोग भी मुझे देख न सके । अतः उन्हें महान् दुःख हुआ और अत्यन्त विस्मयमें पड़ गये । वसुंधरे ! मैं तो तपमें संलग्न था और सभीको देख रहा था, किंतु मेरी योगमायाके प्रभावसे आवृत होनेके कारण उन सभीको मुझे देखनेकी शक्ति न थी । तब उन सब देवताओंने ब्रह्माजीसे कहा—पितामह ! भगवान् विष्णुके बिना जगत्में हमें शान्ति नहीं मिल रही है । तब देवताओंकी बात सुनकर लोक-पितामह ब्रह्मा मुझसे कहनेके लिये उद्यत हुए । देवि ! उस समय मैं योगमायाके पटके भीतर छिपा था । अतः ! उन्हें दर्शन न हो सका । अतएव देवता, गन्धर्व, सिद्ध और ऋषिगण परम प्रसन्न होकर मेरी स्तुति करनेके लिये चल पड़े । इन्द्रादि सभी देवता वहाँ मेरी प्रार्थना करने लगे । उन्होंने स्तुति की—'नाथ ! आपके अदर्शनमें हम सब महान् दुःखी एवं उत्साहहीन हैं । हमसे कोई भी प्रयत्न होना शक्य नहीं है । हृषीकेश ! आप महान् अनुग्रह करके हमारी रक्षा कीजिये ।' बड़ी आँखोंसे शोभा पानेवाली पृथ्वि ! देवताओंकी इस प्रार्थनापर मैंने उनपर कृपादृष्टि डाली । मेरे देखते ही वे परम शान्त हो गये । यह इसी उर्वशी-तीर्थकी विशेषता है । इस 'उर्वशी-कुण्ड'में जो मानव एक रात भी रहकर स्नान करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे

मुक्त हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं । वह 'उर्वशी'लोकमें जाकर अनन्त समयतक क्रीडा करनेका अवसर प्राप्त करता है । देवि ! मेरी उपासनामें परायण रहनेवाला जो मानव वहाँ प्राणोंका त्याग करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर सीधे मुझमें ही लीन हो जाता है ।

वसुंधरे ! इस 'बदरिकाश्रम'का पुण्य जहाँ-जहाँ रह कर स्मरण किया जाय, वहीं विष्णुके स्थानकी भावना जाग उठती है । ऐसा करनेवाला मानव फिर संसारमें नहीं आता । जो व्यक्ति इसका पठन एवं श्रवण करता है, वह ब्रह्मचारी, क्रोधविजयी, सत्यवादी, जितेन्द्रिय तथा मुझमें श्रद्धा रखनेवाला, ध्यान एवं योगमें सदा रत होकर मुक्तिके फलका भागी होता है । जो इसे जानता है, वही समस्त ध्यानयोगको जानता है । वह अपने आत्मतत्त्वको प्राप्त करके परम गतिको प्राप्त कर लेता है । (अध्याय १४१)

उपासनाकर्म एवं नारीधर्मका वर्णन

पृथ्वी बोली—माधव ! मैं आपकी दासी आपसे यह प्रार्थना करती हूँ कि स्त्रियोंमें प्राण और बल बहुत थोड़ा होता है, वे अनशन करने या क्षुधाके वेगको सहन करनेमें (प्रायः) असमर्थ होती हैं ।

भगवान् वराह बोले—महाभागे ! सर्वप्रथम इन्द्रियोंको वशमें रखकर फिर मुझमें चित्त लगाकर तथा संन्यासयोगका आश्रय लेकर सभी कर्मोंको मेरा समझता हुआ करे । फिर चित्तको एकाग्र करके अपने व्रतमें दृढ़ रहते हुए, सभी कर्म मुझे अर्पण कर दे । ऐसा करनेसे स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक कोई भी क्यों न हो, वह जन्म-मरणरूपी संसार-बन्धनसे छूट जाता है अथवा परम गति पानेकी इच्छा हो तो ज्ञानरूपी संन्यासयोगका आश्रय ग्रहण करे । यदि प्राणीका चित्त समानरूपसे मुझमें स्थिर हो गया तो वह सब प्रकारके भक्ष्याभक्ष्य पदार्थोंको खाता हुआ, पीने योग्य अथवा अपेय पदार्थोंको पीता हुआ भी उस कर्मदोषसे लिप्त नहीं होता । मन, बुद्धि और चित्तको यदि समानरूपसे मुझमें स्थापित कर दिया तो कुछ भी कर्म करता हुआ वह ठीक उसी प्रकार उससे लिप्त नहीं होता, जैसे कमलका पत्र जलमें रहता हुआ भी जलसे अलग ही रहता है । समत्वके प्रभावसे कर्मका संयोग होते हुए भी प्राणी उससे लिप्त नहीं होता है । इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये । देवि ! रात-दिन, एक मुहूर्त, एक क्षण, एक कला, एक निमेष अथवा एक पल भी अवसर मिल जाय तो चित्तको समरूपमें मुझमें स्थापित करना चाहिये । यदि चित्त व्यवस्थितरूपसे सम रह सके तो जो लोग दिन-रात सदा मिश्रित कर्म करते रहते हैं, उन्हें भी परम सिद्धि प्राप्त हो जाती है । जागते-सोते, सुनते और देखते हुए भी जो व्यक्ति मुझमें चित्त लगाये रखता है, उस मुझमें चित्त लगाये पुरुषको क्या भय ? देवि ! कोई दुराचारी चण्डाल हो या सदाचारी ब्राह्मण इससे मेरा कोई तात्पर्य नहीं । मैं तो उसीकी प्रशंसा करता हूँ, जो सदा अनन्यचित्त है—एकमात्र मेरा भक्त है । जो सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञानी पुरुष ज्ञानरूपी संस्कारसे पवित्र होकर मेरी उपासना करते हैं । मेरे कर्ममें तत्पर रहनेवाले उन व्यक्तियोंका चित्त सदा मुझमें लगा रहता है । जो लोग अपने हृदयमें पूर्णरूपसे मुझे स्थापित करके कर्मोंका सम्पादन करते हैं, वे संसारके कर्मोंमें लगे रहनेपर भी सुखकी नींद सोते हैं । देवि ! जिनका चित्त परम शान्त है, वे मेरे प्रिय पात्र हैं । कारण, वे अपने शुभ अथवा अशुभ जो भी कर्म हैं, उन सबको मुझमें अर्पण करके निश्चिन्त रहते हैं ।

देवि ! जिनका चित्त सदा चञ्चल रहता है, वे अधम मानव दुःखी हो जाते हैं, चञ्चल-चित्त ही प्राणीका वास्तविक शत्रु है और शान्तचित्त उसके मोक्षका साधन है । अतएव वसुंधरे ! तुम चित्तको मुझमें लगा दो । ज्ञान और योगका आश्रय लेकर मनको एकाग्र करती हुई तुम मेरी उपासना करो । जो निरन्तर मुझमें चित्त लगाकर अपने व्रतमें निश्चित रहता हुआ मेरी उपासना करता है, वह मेरा सांनिध्य (समीपता) प्राप्तकर अन्तमें मुझमें ही लीन हो जाता है ।

वसुंधरे ! पुनः दूसरी बात बताता हूँ, सुनो । ज्ञानका चित्तसे सम्बन्ध है और क्रियाका योगसे । ज्ञानी पुरुष कर्मके प्रभावसे मेरे स्थानको प्राप्त कर लेते हैं । योगके सिद्ध पारगामी पुरुष भी वहीं जाते हैं । मेरे मार्गका अनुसरण करनेवाले मानव ज्ञान, योग एवं सांख्यका चित्तमें चिन्तन न होनेपर भी परम सिद्धि पानेके अधिकारी हो जाते हैं । देवि ! ऋतुकाल उपस्थित होनेपर मुझमें श्रद्धा रखनेवाली स्त्रीका कर्तव्य है कि वह तीन दिनोंतक निराहार रहे । उसे वायुके आहारपर समय व्यतीत करना चाहिये । चौथे दिन गृह-सम्बन्धी कार्योंको सम्पन्न करे । उस समय अन्य स्थानोंपर जाना निषिद्ध है । सर्वप्रथम सिर धोकर स्नान करे, फिर निर्मल श्वेतवस्त्र धारणकरे वसुंधरे! चित्त-पर अपना अधिकार रखकर जो स्त्री मन और बुद्धिको सम रखकर कर्म करती है, वह सदा मेरे हृदयमें निवास करती है । भोजनकी सामग्रीको मेरा नैवेद्य मानकर ग्रहण करना चाहिये । भूमे ! इन्द्रियोंको वशमें रखकर चित्तको एकाग्र करे और तब संन्यासयोगकी साधना करनी चाहिये । स्त्री, पुरुष या नपुंसक जो कोई भी हो, उन्हें नित्य ऐसा करना ही चाहिये । ज्ञान रहते हुए भी मेरे कर्मके सम्बन्धमें जो योगकी सहायता नहीं लेते और सांसारिक कार्योंमें जीवन व्यतीत करते हैं, ऐसे मानव आजतक भी मेरे विषयमें अनभिज्ञ हैं । देवि ! वे सांसारिक मोहमें लिप्त मुझे नहीं जानते । उनमें माता, पिता, पुत्र और स्त्री—ये सैकड़ों एवं हजारों मोहकी शृङ्खलाएँ हैं, जिनमें वे चक्कर काटते रहते हैं और मुझे नहीं जान पाते । मोह और अज्ञानसे ढका हुआ यह संसार अनेक प्रकारकी आसक्तियोंमें बँधा है । इससे मनुष्य मुझमें चित्त नहीं लगा पाता । मृत्युके समय ये सभी साथ छोड़कर इस संसारसे पृथक्-पृथक् स्थानपर चले जाते हैं । फिर सब अपने-अपने कर्मोंके अनुसार जन्म पाते हैं । पृथ्वीदेवि ! संसारके मोहमें पड़े हुए प्रायः सभी मानव अज्ञानी ही बने रहते हैं । इसीमें उनका पूरा समय बीत जाता है । पुनः उनके पुनर्जन्म होंगे और मृत्यु भी, किंतु मेरे सांनिध्यके लिये कोई यत्न नहीं करता ।

वसुंधरे ! यह सब 'संन्यासयोग'का विषय है । जिसे इसके रहस्यका ज्ञान हो जाता है, वह सदा योगमें लगकर संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं । जो मानव प्रातःकाल उठकर निरन्तर इसका श्रवण करता है, उसे पुष्कल सिद्धि प्राप्त हो जाती है । और अन्तमें वह मेरे लोकको प्राप्त होता है ।

(अध्याय १४२)

मन्दारकी महिमाका निरूपण

भगवान् वराह कहते हैं—सुन्दरि ! गङ्गाके दक्षिण तटपर तथा विन्ध्यपर्वतके पिछले भागमें मेरा एक परम गुह्य एकान्त स्थान है, जिसे मेरे प्रेमी भक्त मन्दार नामसे पुकारते हैं । देवि ! वहीं त्रेतायुगमें 'राम' नामसे प्रसिद्ध एक महान् प्रतापी पुरुषका प्राकट्य होगा । वे वहाँ मेरे विग्रहकी स्थापना करेंगे, इससे संदेह नहीं ।

पृथ्वी बोली—देवेश नारायण ! आपने धर्म एवं अर्थसे संयुक्त मन्दार नामक जिस स्थानका वर्णन किया है ।

उस स्थानपर मनुष्योंके लिये कौन-से कर्तव्य-कर्म हैं, तथा उन मानवोंको किन लोकोंकी प्राप्ति होती है, इसे जाननेके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्सुकता हो गयी है, अतः आप विस्तारसे इसे बतलानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! मन्दारका रहस्य अत्यन्त गोपनीय है। एक बार जब मन्दारपर सर्वत्र पुष्प खिले हुए थे और मैं मनोविनोद कर रहा था तो एक सुन्दर पुष्पको मैंने उठाकर अपने हृदयसे लगा लिया। तबसे विन्ध्यपर्वतपर स्थित उस मन्दारमें मेरा चित्त संलग्न हो गया। वसुंधरे ! ग्यारह कुण्ड उस पर्वतकी शोभा बढ़ाते हैं। सुभगे ! भक्तोंपर कृपा करनेकी इच्छासे मैं उस मन्दार नामक वृक्षके नीचे निवास करता हूँ। विन्ध्यपर्वतकी तलहटीमें वह परम सुन्दर स्थान अत्यन्त दर्शनीय है। उस महान् वृक्ष मन्दारमें एक बड़े आश्चर्यकी बात है, वह भी सुनो। वह विशाल वृक्ष द्वादशी और चतुर्दशी तिथिके दिन फलता है। वहाँ दोपहरके समयमें लोग उसे भलीभाँति देख सकते हैं। पर अन्य दिनोंमें वह किसीको दिखलायी नहीं देता। वहाँ मानव एक समय भोजन करके निवास करता है तो स्नान करते ही उसकी आत्मा शुद्ध हो जाती है और वह परमगतिको प्राप्त होता है।

देवि ! उसके उत्तर-भागमें 'प्रापण' नामका एक पर्वत है, जहाँ दक्षिण-दिशासे होती हुई तीन धाराएँ गिरती हैं। मेरुके दक्षिण शिखरपर 'मोदन' नामका एक स्थान है और उसके पूरब और उत्तरके बीचमें 'वैकुण्ठकारण' नामका एक गुह्य स्थान है। वहाँ हल्दीके रंगकी भाँति चमकनेवाली एक धारा गिरती है। जो मानव एक रात रहकर वहाँ स्नान करता है, उसे स्वर्ग प्राप्त हो जाता है। वहाँ जाकर वह देवताओंके साथ आनन्दका अनुभव करता है और उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं और वह अपने समस्त कुलका उद्धार कर देता है। विन्ध्यगिरिकी चोटियोंपर मेरुशिखर-से 'समस्रोत' नामकी धारा गिरकर एक गहरे तालाबके रूपमें परिवर्तित हो जाती है। वहाँ मनुष्यको चाहिये कि स्नान करके एक रात निवास करे। ऊँची शिलावाले मेरुपर्वतके पूर्वपार्श्वमें रहकर चित्तको सावधान करके जो अपने प्राणका परित्याग करता है, उसके सम्पूर्ण बन्धन कट जाते हैं और वह मेरे लोकमें चला जाता है। मन्दारके पूर्वमें 'कोटरसंस्थित' नामक स्थानमें मूसलकी आकृति-जैसी एक पवित्र धारा गिरती है। वहाँ स्नानकर पाँच दिन निवास करनेसे वह मेरुगिरिके पूर्वभागमें स्वर्ग-सुख प्राप्त करता है। पुनः वहाँ भी वह अत्यन्त कठिन कर्मका सम्पादन कर वह मेरे लोकको प्राप्त होता है। यशस्विनि ! मन्दारके दक्षिण और पश्चिम भागमें सूर्यके समान प्रकाशमान एक धारा गिरती है। वहाँ स्नानकर मनुष्यको एक दिन-रात निवास करना चाहिये। इससे मेरुके पश्चिम भागमें ध्रुवके स्थानमें रहकर भक्तिपरायण वह मनुष्य जब भौतिक शरीरसे अलग होता है तो मेरे लोकको प्राप्त होता है। वह महान् यशस्वी मानव रहकर तथा चक्रवर्ती नरेशके समान प्राणोंका परित्याग कर मेरुके शृङ्गोंको छोड़कर मेरी संनिधिमें आ जाता है। उससे तीन कोसकी दूरीपर दक्षिण दिशामें 'गभीरक' नामक एक गुह्य स्थान है, जहाँ गहरे जलवाला एक महान् सरोवर है। वहाँ स्नानकर आठ दिनोंतक निवास करनेसे स्वच्छन्द गमन करनेकी शक्ति मिलती है और अन्तमें वह मेरे लोकको प्राप्त होता है।

देवि ! अब उस क्षेत्रका मण्डल बतलाता हूँ, सुनो। मेरुपर्वतपर स्थित 'मन्दर' नामक एक स्थान है, जो 'स्यमन्त-पञ्चक' नामसे प्रसिद्ध है, वहाँ मैं सदा निवास करता हूँ। विन्ध्यकी ऊँची शिलापर दक्षिणकी ओर चक्र, वामभागमें गदा और आगे हल-मूसल और शङ्ख, विराजमान रहते हैं। यह गुह्य रहस्य है। देवि ! जो मानव मेरी शरणमें आ जाते हैं, वे ही इस परमपवित्र रहस्यको जानते हैं, अन्य मनुष्य नहीं; क्योंकि मेरी मायाने उनकी बुद्धिको मोहित कर रखा है।

(अध्याय १४३)

सोमेश्वरलिङ्ग, मुक्तिक्षेत्र (मुक्तिनाथ) और त्रिवेणी आदिका माहात्म्य

पृथ्वी बोली—प्रभो ! आपकी कृपासे मैं मन्दारका वर्णन सुन चुकी । अब इससे जो श्रेष्ठ स्थान हो, उसे बतानेकी कृपा कीजिये ।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! 'शालग्राम' (मुक्तिनाथ क्षेत्र) नामसे मेरा एक परम प्रिय एवं प्रसिद्ध स्थान है। पहले द्वापरयुगमें यदुवंशमें शूरसेन नामके एक कुशल कर्मठ व्यक्ति हुए, जिनके पुत्र वसुदेवजी हुए। वसुधे ! उनकी सहधर्मिणीका नाम देवकी है । महाभागे ! उसी देवकीके गर्भसे मैं अवतार धारण करता हूँ और करूँगा । देवताओंके शत्रुओंका मर्दन करना मेरे अवतारोंका मुख्य उद्देश्य है। उस समय 'वासुदेव'नामसे मेरी प्रसिद्धि होगी । यादवोंके कुलको बढ़ानेवाले शूरसेनके वहाँ रहते समय एक श्रेष्ठ महर्षि, जिनका नाम सालङ्कायन था, मेरी आराधना करनेके लिये दसों दिशाओंमें भ्रमण कर रहे थे। पहले उन्होंने मेरुगिरिकी चोटीपर जाकर पुत्रके लिये तपस्या आरम्भ की । वसुंधरे ! इसके बाद वे 'पिण्डारक'*में और फिर 'लोहार्गल'†क्षेत्रमें भी जाकर एक हजार वर्षतक तप करते रहे । देवि ! ब्रह्मर्षि 'सालङ्कायन' वहाँ इधर-उधर मेरा अन्वेषण कर रहे थे, किंतु मेरे वहाँ रहनेपर भी उन्हें मेरा दर्शन नहीं हुआ ।

भगवान् शंकर भी वहाँ शिलाके रूपमें विराजने लगे, जहाँ मैं शालग्राम-शिलारूपमें विराजता हूँ । वहाँकी चक्राङ्कित शिलाएँ सब मेरा ही स्वरूप हैं । पुनः वहाँकी कुछ शिलाएँ 'शिवनाभा' और कुछ 'चक्रनाभा' नामसे प्रसिद्ध हैं । यह शिवरूप पर्वत सोमेश्वर नामसे प्रसिद्ध है । चन्द्रदेव अपना शाप मिटानेके लिये यहाँ एक हजार वर्षोंतक तपस्या करते रहे, जिससे वे शापमुक्त होकर परम तेजस्वी बन गये और भगवान् शंकरकी स्तुति की । उनकी दिव्य स्तुतिसे प्रसन्न होकर वर देनेवाले भगवान् शंकर 'सोमेश्वरलिङ्ग'से प्रकट होकर तीन नेत्रोंसे सम्पन्न होकर सामने स्थित हो गये ।

चन्द्रमाने कहा—'जिनका सौम्य स्वरूप है, उमादेवी जिनकी पत्नी हैं, भक्तोंपर कृपा करनेके लिये जो सदा आतुर रहते हैं, ऐसे पञ्चमुख भगवान् त्रिलोचन नीलकण्ठ शंकरको मैं प्रणाम करता हूँ । जिनके ललाटपर चन्द्रमा सुशोभित हैं, जो हाथमें पिनाक धनुष धारण किये हुए हैं तथा भक्तोंको अभयदान देना जिनका स्वभाव है, ऐसे दिव्य रूपधारी देवेश्वर शंकरको मैं प्रणाम करता हूँ । जिनके हाथमें त्रिशूल और डमरू हैं, अनेक प्रकारके मुखवाले गण जिनकी सदा सेवा करते रहते हैं, उन भगवान् वृषध्वजको मैं प्रणाम करता हूँ । जो त्रिपुर, अन्धक एवं महाकाल नामके भयंकर असुरोंके संहारक हैं, जो हाथीके चर्मको पहनते हैं, उन प्रलयमें भी अचल भगवान् शंकरको मैं प्रणाम करता हूँ । जो सर्पका यज्ञोपवीत पहनते हैं, रुद्राक्षकी माला जिनकी छवि छिटकाती है, भक्तोंकी

---

* इसका महाभारत १ । ३५ । ११, ३ । ८२ । ६५; ८८ । २१, ५ । १०३ । १४ आदिमें तथा भागवत ११ । १ । ११ में भी उल्लेख है । अब इसका नाम 'पिण्डार' है, यह द्वारकासे २० मील दूर जामनगर जिलेमें, कल्याणपुर तालुकेमें स्थित है । (J. B. I. XIV)

† एक लोहार्गल (लोहागर) राजस्थानमें नवलगढ़से २० मीलकी दूरीपर है (तीर्थाङ्क पृष्ठ २८२) । पर नन्दलाल देके अनुसार, जिन्होंने 'वराहपुराण' पर विशेष शोध किया था, यह हिमालयमें कूर्माचल (कुमायूँ)के अन्तर्गत चम्पावतसे ३ मील उत्तर 'लोहाघाट' है । This is a sacred place in the Himalaya (Varâha Purâṇa, chapter, 140. 5, 144. 8, 151). Lohâghât in Kumaun, 3 miles to the north of Champawat, on the river Loha. The place is secred to Viṣṇu. (Brahmânda Purâṇa ch. 51) (Geographical Dictionary of Ancient and Mediaevel India, page 115) आगे १५१वें अध्यायमें इसका विस्तृत माहात्म्य है ।

इच्छा पूर्ण करना जिनका स्वाभाविक गुण है तथा जो सबके शासक हैं, उन अद्भुतरूपधारी भगवान् शंकरको मैं प्रणाम करता हूँ। सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि जिनके नेत्र हैं, मन एवं वाणीकी जिनके पास पहुँच नहीं है तथा जिन्होंने अपने जटासमूहसे गङ्गाको प्रकट किया एवं हिमालय पर्वतके कैलासशिखरपर अपना आश्रम बना रखा है, उन भगवान् शंकरको मैं प्रणाम करता हूँ।'

देवि ! चन्द्रमाने जब भगवान् शंकरकी इस प्रकार स्तुति की तो उन्होंने कहा—'गोपते ! मुझसे तुम अपना अभिलषित वर माँग लो।'

चन्द्रमाने कहा—'भगवन् ! आप यदि वर देना चाहते हैं तो मेरी यह अभिलाषा है कि आप मेरे इस 'सोमेश्वर'लिङ्गमें सदा निवास करें और इसमें श्रद्धा रखकर उपासना करनेवाले पुरुषोंका मनोरथ पूर्ण करनेकी कृपा करें।'

देवेश्वर शंकरने कहा—'शीत किरणोंके स्वामी शशाङ्क ! भगवान् विष्णुके साथ मैं यहाँ सदा निवास करता आया हूँ। तुम भी मेरे ही स्वरूप हो, पर अब मैं आजसे यहाँ विशेषरूपसे रहूँगा और इस लिङ्गकी पूजा करनेवाले श्रद्धालु पुरुषोंको सदा मेरी पूजाका फल प्राप्त होता रहेगा। तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हें देवदुर्लभ वर दे रहा हूँ। यहाँ पहले सालङ्कायन मुनिने भी महान् तप किया है। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णुने उन्हें उनके साथ रहनेका वर दे रखा है। अतः कलानिधे! हम दोनोंका यहाँ रहना पहलेसे ही निश्चित है। श्रीहरिके द्वारा अधिष्ठित पर्वतका नाम 'शालग्राम'-गिरि है और मैं 'सोमेश्वर' नामसे स्थित हूँ। इन दोनों पर्वतोंसे सम्बन्ध रखनेवाली ये शिलाएँ भी 'विष्णुशिला' तथा 'शिवशिला' नामसे प्रसिद्ध होंगी। पूर्व समयमें रेवाने भी मेरी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये तपस्या की थी। उसके मनमें इच्छा थी कि मुझे भगवान् शिवके समान पुत्र चाहिये। मैंने सोचा कि मैं तो किसीका भी पुत्र नहीं हूँ, फिर अब क्या करूँ। सोम ! उस समय बहुत सोच-विचारकर मैंने उससे कहा था—'देवि ! तुमने मेरी अपार भक्ति की है, अतः मैं पुत्र बनकर गणेशके सहित लिङ्गरूपसे तुम्हारे गर्भ (तलहटी the bed) में निवास करूँगा। इस प्रकार रेवाने मेरा सांनिध्य प्राप्त कर लिया और यहाँ आ गयी। तबसे इसकी भी 'रेवाखण्ड' नामसे प्रसिद्धि हुई। साथ ही गण्डकी भी सूखे पत्ते खाकर तथा वायु पीकर देवताओंके वर्षसे सौ वर्षोंतक तपस्यामें तत्पर रही। उस समय वह सदा भगवान् विष्णुका ही चिन्तन करती थी। अन्तमें जगत्के स्वामी श्रीहरि वहाँ स्वयं पधारे और बोले—'पुण्यमयी गण्डकि ! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। सुव्रते ! तुम मुझसे वर माँगो।'

इसके पूर्व भी गण्डकीको एक बार शङ्ख, चक्र एवं गदाधारी भगवान्का दर्शन प्राप्त हुआ था। फिर उन प्रभुकी बात सुनकर गण्डकीने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम कर इस प्रकार स्तुति प्रारम्भ की—'भगवन् ! मैंने आपके जिस रूपका दर्शन किया है, वह देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। इस स्थावर-जङ्गममय सम्पूर्ण संसारकी सृष्टि आपकी ही कृपाका प्रसाद है। जिस समय आप नेत्र बंद कर लेते हैं, उस समय सारा विश्व संहृत हो जाता है। श्रुतिके निर्देशानुसार अनादि, अनन्त एवं असीमस्वरूप जो ब्रह्म हैं, वह आप ही हैं। महाविष्णो ! जो आपको जानता है, वह वेदका तत्त्वज्ञ पुरुष है। आपकी ही आदिशक्ति योगमाया तथा प्रधान प्रकृति नामसे प्रसिद्ध है। आप अव्यक्त, चित्स्वरूप, निर्गुण, निरञ्जन, निर्विकार एवं आनन्दस्वरूप परम शुद्ध परमात्मा हैं। आप स्वयं सृष्टिकी रचनासे पृथक् रहते हैं और आपकी योगमाया सभी कार्योंका सम्पादन करती है। आपके निरञ्जन रूपको भला मैं एक मूर्ख अबला यथार्थतः कैसे जानूँ।'

गण्डकीकी प्रार्थनासे प्रभावित होकर भगवान् विष्णुने कहा—'देवि ! तुम्हारी जो इच्छा हो, जो अन्य मनुष्योंके लिये सब प्रकारसे दुर्लभ एवं अप्राप्य है, वह वर मुझसे माँग लो। भला मेरा दर्शन हो जानेपर प्राणीका कौन-सा मनोरथ अपूर्ण रह सकता है ?'

हिमांशो ! इसपर जनताको तारनेवाली देवी गण्डकीने श्रीहरिके सामने हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक मधुर वचनोंमें कहा—'भगवन् ! आप यदि प्रसन्न हैं तो मुझे अभिलषित वर देनेकी कृपा कीजिये। मैं चाहती हूँ कि आप मेरे गर्भमें आकर निवास करें।'

इसपर भगवान् विष्णु प्रसन्न होकर सोचने लगे कि मेरे साथ सदा रहनेका लाभ उठानेवाली इस गण्डकी नदीने कैसा अद्भुत वर माँगा है। इससे सम्पूर्ण प्राणियोंका तो बन्धन कट सकता है। अतः इसे यह वर अवश्य दूँगा। अतः वे प्रसन्नतापूर्वक बोले—'देवि ! मैं शालग्रामशिलाका रूप धारण कर तुम्हारे गर्भ (bed of river)में निवास करूँगा और मेरी संनिधिके कारण तुम नदियोंमें श्रेष्ठ मानी जाओगी। तुम्हारे दर्शन, स्पर्श, जलपान तथा अवगाहन करनेसे मनुष्योंके मन, वाणी एवं कर्मसे बने हुए पापोंका नाश होगा। जो पुरुष तुम्हारे जलमें स्नान करके देवताओं, ऋषियों एवं पितरोंका तर्पण करेगा, वह अपने पितरोंको तारकर उन्हें स्वर्गमें पहुँचा देगा। साथ ही मेरा प्रिय बनकर वह स्वयं भी ब्रह्मलोकमें चला जायगा। तुम्हारे तटपर मृत प्राणियोंको मेरे लोककी प्राप्ति होगी, जहाँ जाकर सोच नहीं होता।'

इस प्रकार देवी गण्डकीको वर देकर भगवान् विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये। शशाङ्क ! तबसे हम और भगवान् विष्णु इस क्षेत्र*में निवास करते हैं।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! इस प्रकार कहकर भगवान् शंकरने चन्द्रमाको प्रभा प्रदान कर उनके अङ्गोंपर अपना हाथ भी फेरा। इससे वे तत्क्षण परम स्वच्छ हो गये। फिर भगवान् शंकर वहाँसे प्रस्थान कर गये। इसी 'सोमेश्वर' लिङ्गके दक्षिण भागमें रावणने बाणसे पर्वतका भेदन किया था, जहाँसे जलकी एक पवित्र धारा निकली। यह स्नान करनेवालेके पापोंको हरण करती तथा प्रचुर पुण्य प्रदान करती है। इसका नाम 'बाण-गङ्गा' है। सोमेश्वरके पूर्व भागमें रावणका वह तपोवन है, जहाँ तीन राततक रहकर उसने तपस्या और नृत्यकार्य किये थे और उसके नृत्यसे संतुष्ट होकर भगवान् शंकर-ने उसे वर प्रदान किया था। इस कारण उस स्थानको 'नर्तनाचल' कहते हैं। बाणगङ्गामें स्नान करने तथा 'बाणेश्वर'का दर्शन करनेपर मनुष्यको गङ्गामें स्नान करनेका फल मिलता है और देवताकी भाँति उसे स्वर्गमें आनन्द भोगनेका सौभाग्य प्राप्त होता है।

वसुंधरे ! उसी समय सालङ्कायन मुनि भी मेरे शाल-ग्राम-क्षेत्रमें आकर महान् तप करने लगे। उनके मनमें इच्छा थी कि 'मुझे शिवजीके ही समान पुत्र चाहिये।' मुनिके इस श्रेष्ठ भावको जानकर भगवान् शंकरने अपना एक दूसरा सुन्दर सुखप्रद रूप निर्माण किया और अपनी योगमायाकी सहायतासे वे सालङ्कायनके पुत्र बनकर उनके दक्षिण भागमें विराज गये; परंतु सालङ्कायन मुनि इसे न जान सके। वे मेरी आराधनामें बैठे ही रहे। तब शंकरकी ही दूसरी मूर्ति नन्दीने हँसकर सालङ्कायन मुनिसे कहा—'मुनिवर ! आप अब उपासनासे विरत हों। आपका मनोरथ सफल हो गया।'

देवि ! नन्दीकी यह बात सुनकर मुनिवर सालङ्कायन-का मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वे आश्चर्यसे बोले—'अहो ! यदि मेरे इस तपका फल उदय हो गया तो भगवान् विष्णुको भी अवश्य दर्शन देना चाहिये। मैं जबतक उन्हें न देखूँगा, तबतक मैं तपस्यासे उपरत न होऊँगा।' फिर वे नन्दीसे बोले—'पुत्र ! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, तुम योगका आश्रय लेकर मथुरा

* यह शालग्राम क्षेत्र नेपालका 'मुक्तिनाथ' है।

जाओ । वहाँ मेरा एक पवित्र आश्रम है । उस जगह मेरी प्रचुरमात्रामें गोसम्पत्ति पड़ी है । वहाँ आमुष्यायण नामका मेरा शिष्य भी है । उन्हें लेकर तुम यथाशीघ्र यहाँ आ जाओ ।' सालङ्कायन मुनिकी आज्ञासे नन्दी उसी क्षण मथुराको चल पड़े । वहाँ पहुँचकर उन्होंने ऋषिके आश्रमका अन्वेषण किया और आमुष्यायण उन्हें दिखायी पड़ गये । पुनः कुशल-प्रश्नके बाद घरपर स्थित गो आदि सम्पत्तिके विषयमें भी बातचीत की । उन्होंने उत्तर दिया—'साधो ! तपस्याके परमधनी मेरे गुरुदेवकी कृपासे यहाँ सर्वत्र कुशल है । अब आप मेरे गुरुजीकी कुशल बतानेकी कृपा करें । इस समय वे कहाँ विराजमान हैं ? आप कहाँसे पधारे हैं और आपके यहाँ आनेका प्रयोजन क्या है ? यह बात विस्तारपूर्वक बतायें और अर्घ्य आदि स्वीकार करें ।' आमुष्यायणके इस प्रकार कहनेपर नन्दीने उनका दिया हुआ अर्घ्य स्वीकार किया और सालङ्कायन मुनिका वृत्तान्त बताया तथा अपने आनेकी बात स्पष्ट कर दी । फिर नन्दी आमुष्यायणके साथ गोधन लेकर वहाँसे वापस हुए । बहुत दिनोंतक चलनेके बाद वे गण्डकी नदीके तीरपर त्रिवेणीसङ्गमपर पहुँचे । 'देविका'* नामकी एक नदी भी वहीं आकर तपस्या कर रही थी । पुलस्त्य एवं पुलह मुनिके आश्रम† के पास यह तथा गङ्गानदी भी आकर मिली । इन तीन नदियोंके एक साथ मिल जानेके कारण यह स्थान 'त्रिवेणी-सङ्गम' नामसे प्रसिद्ध हुआ । आगे चलकर इस महान् तीर्थका नाम 'कामिक' हुआ । इस तीर्थसे पितृगण बहुत प्रसन्न होते हैं । यहाँ भगवान् शंकरका एक महान् लिङ्ग है, जिसे 'त्रिजलेश्वर' महादेव कहते हैं । इसके दर्शन करनेसे भुक्ति एवं मुक्ति दोनों सुलभ हो जाती है और सभी पाप नष्ट हो जाते हैं ।

पृथ्वी बोली—प्रभो ! मैंने तो सुना है कि त्रिवेणी केवल प्रयागमें ही है, जहाँ भगवान् महेश्वर एक 'शूलटङ्क' नामसे तथा दूसरे 'सोमेश्वर'नामसे प्रसिद्ध हैं । साथ ही वहाँ स्वयं श्रीहरि भी 'वेणीमाधव' नामसे विराजते हैं । वहाँ गङ्गा, यमुना और सरस्वती—ये तीन नदियाँ हैं, वहाँ सम्पूर्ण देवताओं, ऋषियों, नदियों एवं तीर्थोंका समाज भी विराजमान रहता है । उस 'तीर्थराज'में स्नान करनेवाले तथा प्राणत्याग करनेवाले व्यक्ति मोक्षके भागी होते हैं । फिर आप जो गण्डकीकी 'त्रिवेणी' बता रहे हैं, यह वही 'त्रिवेणी' है या कोई दूसरी ? महाभाग ! आप अखिल जगत्का हित करनेकी इच्छासे इसे बतानेकी कृपा करें । दयानिधे ! मेरी कलुषित बुद्धिपर ध्यान न देकर इस प्रसङ्गको स्पष्ट करनेकी अवश्य कृपा करें ।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध है । हिमालय पर्वतके रमणीय स्थलमें देवतालोग निवास करते हैं । बहुत पहले जगत्के हित-सम्पादनके विचारसे भगवान् विष्णु वहीं तपस्या करने लगे । कुछ समय बाद उनके श्रीविग्रहसे एक अत्यन्त दिव्य तेज प्रकट हुआ, जिससे चर और अचर—सम्पूर्ण संसार जलने लगा और विष्णुके गण्डस्थल (कपोल) पसीनेसे भींग गये और उसी स्वेदसे दिव्य नदी गङ्गा प्रवाहित हुई । इस अद्भुत घटनासे जन-महर्लोक प्रभृति सभी आश्चर्यमें भर गये और गङ्गाके प्रादुर्भावस्थलका पता लगाने चले, पर पता न लग सका । अन्तमें ब्रह्मासहित सभी देवता भगवान् शंकरके पास पहुँचे और उन्हें प्रणाम कर एक ओर खड़े हो गये और फिर उनसे गङ्गाके उद्गमका पता पूछा ।

* यहाँ यह 'देविका' मुक्तिनाथ पर्वतपरकी एक छोटी-सी नदी है ।

† पुलहाश्रमका वर्णन 'श्रीमद्भागवत' ५ । ७ । ८, ११; ८ । ३० आदिमें भी आया है । यह आजका नेपाल राज्यके अन्तर्गतका 'मुक्तिनाथ'पर्वत ही है ('कल्याण'का 'तीर्थाङ्क' पृ० १५४) । यहाँ प्रकरणके अन्तमें आगे 'हरिहरक्षेत्र' (सोनपुर) का वर्णन हुआ है, जो पटनाके सामने गङ्गाके उत्तरतटपर स्थित है ।

इसपर भगवान् शंकर कुछ क्षणके लिये ध्यानस्थ हुए। और फिर बोले—'आप लोगोंको इसका उत्पत्तिस्थल दिखाता हूँ।' यों कहकर वे उमादेवी, अपने गणों तथा देवताओंके सहित उस ओर प्रस्थित हो गये, जहाँ भगवान् विष्णु तपस्यामें स्थित थे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने कहा—'भगवन् ! आप सर्वसमर्थ हैं। अखिल जगत् आपसे बना है। आपके मनमें क्या अभिलाषा उत्पन्न हो गयी कि आप तप कर रहे हैं ? सम्पूर्ण संसार आपपर आश्रय पाये हुए हैं। आप सभीके अधिष्ठाता हैं। फिर आपके लिये कौन-सा दुर्लभ पदार्थ है, जिसके लिये आप यह कठोर तप कर रहे हैं ?'

इसपर जगत्प्रभु विष्णुने उन्हें प्रणाम करके उत्तर दिया—'मैं संसारकी हितकामनासे तप करनेके लिये उद्यत हुआ हूँ। आपके दर्शन करनेके लिये भी मनमें बड़ी उत्सुकता थी। जगत्प्रभो ! इस समय आपका दर्शन पा जानेसे मेरा यह मनोरथ सफल हो गया।'

भगवान् शंकर बोले—भगवन् ! यह मुक्तिक्षेत्र है। इसके दर्शन करनेसे ही मनुष्य मुक्ति पानेका अधिकारी हो जाता है। क्योंकि यहाँ आपके गण्डस्थल (कपोल)से प्रकट हुई 'गण्डकी' नदी नदियोंमें श्रेष्ठ होगी, जिसके गर्भमें आप सुशोभित होंगे—इसमें कोई संशय नहीं है। आप जगत्के स्वामी हैं। जब आपका यहाँ निवास होगा तो केशव ! आपके सम्पर्कसे मैं शिव, ब्रह्मा, समस्त देवता, ऋषि, यज्ञ एवं तीर्थ—प्रायः सभी इस गण्डकी नदीमें सदा निवास करेंगे। प्रभो ! जो मनुष्य पूरे कार्तिक मासमें यहाँ स्नान करेगा, उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जायँगे और वह निश्चय ही मुक्तिका भागी होगा। यह तीर्थोंमें परम तीर्थ तथा मङ्गलोंमें परम मङ्गल है। यहाँ स्नान करनेसे मानव गङ्गा-स्नानके फलके भागी हो जायँगे। इसके स्मरण करने, देखने तथा स्पर्श करनेसे मनुष्य पापसे छूट सकता है। इसकी समता करनेवाली दूसरी कोई नदी नहीं है। केवल गङ्गा इससे श्रेष्ठ है। भुक्ति-मुक्ति देनेवाली परम पुण्यमयी वह गण्डकी जहाँ है, वहीं 'देविका' नामसे प्रसिद्ध एक दूसरी नदी भी गण्डकीके साथ मिल गयी है। यहींसे थोड़ी दूरपर पुलस्त्य और पुलह मुनि आश्रम बनाकर सृष्टिका विधान सम्पन्न होनेके लिये महान् तपस्या कर रहे थे। तपके फलस्वरूप उन्हें सृष्टि करनेकी शक्ति सुलभ हो गयी। उसी समय ब्रह्माके शरीरसे एक पुण्यमयी नदी गङ्गा जो नदियोंमें प्रधान मानी जाती है। वह तथा एक और नदी देविका गण्डकीमें आकर मिल गयी। अतः उस महान् पवित्र नदीका नाम त्रिवेणी पड़ गया, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। वह पवित्र मुक्तप्रद क्षेत्र एक योजनके विस्तारमें है।

देवि ! पूर्व समयकी बात है। वेद-विद्याविशारद कर्दममुनिके दो पुत्र थे, जिनका नाम क्रमशः जय और विजय था। ये दोनों यज्ञविद्यामें निपुण तथा वेद एवं वेदाङ्गके पारगामी विद्वान् थे और भगवान् श्रीहरिमें भी उनकी बड़ी निष्ठा थी। संयोगसे कभी उन दोनों परम कुशल ब्राह्मणोंको राजा मरुतने यज्ञके लिये बुलाया। यज्ञ समाप्त होजानेपर राजाने उन दोनों भाइयोंकी पूजा की और उन्हें प्रभूत दक्षिणा दी। अब वे दोनों ब्राह्मण घर आ गये और दक्षिणामें मिली हुई सम्पत्तिको बाँटने लगे। इसी समय उनमें आपसमें संघर्ष छिड़ गया। बड़े पुत्र जयका कथन था कि धनको बराबर-बराबर बाँटना चाहिये। विजयने कहा—जिसने जो अर्जन किया है, वह धन उसका है। तब जयने विजयसे कहा—'क्या मुझे तुम शक्तिहीन मानकर ऐसा कहते हो। सब सम्पत्ति लेकर तुम जो मुझे देना नहीं चाहते तो ग्राह बन जाओ।' इसपर विजयने भी जयसे कहा—'क्या धनके लोभसे तुम

सर्वथा अन्धे ही हो गये हो ! तुम मदान्ध होकर जो मुझसे इस प्रकार कह रहे हो तो तुम मदान्ध हाथी ही हो जाओ।'

इस प्रकार एक दूसरेके शापके कारण वे दोनों ब्राह्मण अलग-अलग गज और ग्राह बन गये। इनमें विजय तो गण्डकी नदीमें जातिस्मर ग्राह हुआ और जय त्रिवेणीके वन्य क्षेत्रमें हाथी। वह हाथीके बच्चों और हथिनियोंके साथ क्रीडा करता हुआ वहीं वनमें रहने लगा। इस प्रकार ग्राह और गजराज—दोनोंको वहीं रहते हुए कई हजार वर्ष बीत गये। एक समयकी बात है—वह हाथी कभी हथिनियोंके झुंडको साथ लेकर त्रिवेणीमें पहुँचा और उसके बीचमें जाकर स्नान करने लगा। वह हथिनियोंपर जल छिड़कता और हथिनियाँ उसपर जल छिड़कतीं। वह सूँड़से स्वयं ही जल पीता और उन हथिनियोंको भी पिलाता। इस प्रकार प्रसन्नमन होकर वह उनके साथ क्रीडा करता रहा। उसकी इसी क्रीडाके बीच दैवयोगसे प्रेरित वह ग्राह अपने पूर्व वैरका स्मरण करता हुआ उस हाथीके पास आया और उसके पैरको अत्यन्त दृढ़तासे पकड़ लिया। इसपर हाथीने भी उसपर अपने दाँतोंसे प्रहार किया। इधर अब वह ग्राह उस हाथीको जलमें खींचने लगा। हाथी बाहर निकलना चाहता और ग्राह उसे भीतर खींच ले जाना चाहता था। इस प्रकार उन दोनोंमें कई हजार वर्षोंतक युद्ध चलता रहा।

इस प्रकार मत्सर (द्वेष एवं क्रोध) से परिपूर्ण गज एवं ग्राह—इन दोनोंके परस्पर लड़नेसे वहाँके बहुत-से प्राणियोंको महान् पीड़ा पहुँची। बहुतेरे जीव तो अपने प्राणोंसे भी हाथ धो बैठे। तब उस क्षेत्रके स्वामी 'जलेश्वर'ने भगवान् श्रीहरिको इसकी सूचना दी और इसपर कृपालु भगवान्ने सुदर्शन चक्रसे ग्राहके मुँहको चीर डाला। वसुंधरे! वे अपने चक्रको बार-बार चला रहे थे। इससे शिलाओंपर भी चोट पहुँची। अतः चक्रके आघातसे शिलाओंमें भी उनके चिह्न पड़ गये जिससे वे शिलाएँ वज्रकीटद्वारा खायी-सी दीखती हैं। सुन्दरि! इस त्रिवेणीक्षेत्रके विषयमें तुम्हें संदेह करना ठीक नहीं है। इस क्षेत्रकी ऐसी महिमा है, जिसका वर्णन मैंने तुमसे किया।*

वसुंधरे! राजा भरत भी पुलह-पुलस्त्यमुनिके आश्रमके निकट जाकर 'त्रिजलेश्वर' भगवान्की पूजामें संलग्न हुए तो उनकी संसारसे सर्वथा विरति हो गयी और मृगके शरीर छूटनेके पश्चात् वे जडभरत हुए†। इस जन्ममें भी पुनः उन्होंने इनकी पूजा की। इसीसे वे जलेश्वर या जडेश्वर भी कहलाने लगे। भक्ति-पूर्वक उनकी पूजा करनेसे योगसिद्धि प्राप्त हो जाती है। सुभगे! जब मैं श्रेष्ठ शालग्राम-क्षेत्रमें था तो वहीं मुझे यह बात विदित हुई कि जलेश्वरने (जडभरत) मेरी स्तुति की है। वसुधे! भक्तोंपर कृपा करनेके लिये मैं विवश हो जाता हूँ, अतः मैंने अपना सुदर्शन चक्र चलाया। मेरा प्रथम चक्र जहाँ गिरा, वहाँ 'चक्रतीर्थ' बन गया। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य तेजसे सम्पन्न होकर सूर्यके लोकमें प्रतिष्ठा पाता है और मरकर मेरे लोकको प्राप्त होता है। मेरे तथा भगवान् शंकरके वहाँ रहनेके कारण ही यह तीर्थ 'हरिहरक्षेत्र' कहलाने लगा।

यहाँ 'त्रिधारक' नामका तीर्थ है, जिसके पूर्वभागमें 'हंसतीर्थ' नामसे प्रसिद्ध एक स्थान है। वहाँका एक कौतुकपूर्ण सर्वोत्कृष्ट वृत्तान्त बताता हूँ, सुनो। किसी समयकी शिवरात्रिके दिन जब इस मन्दिरमें उत्सव चल रहा था, अनेक प्रकारके नैवेद्य अर्पण करके शंकरजीकी उपासना चल रही थी, इतनेमें ही कुछ भूखे कौए उस अन्नपर टूट पड़े और एक कौआ अन्न उठाकर ऊपर

* इसमें तथा श्रीमद्भागवत ८। २—४ एवं वामन-पुराणके 'गजेन्द्रमोक्ष' कथामें कुछ अन्तर है।

† यह कथा भागवत ५। १० में है।

उड़ गया और दूसरा उसको छीननेके लिये उसपर झपटा। इस प्रकार वे दोनों परस्पर लड़ते हुए एक कुण्डमें गिर पड़े। वहाँ गिरते ही सहसा उनकी आकृति हंसके समान हो गयी और जब वे बाहर निकले तो उनसे चन्द्रमाके तुल्य प्रकाश फैलने लगा। वहाँकी जनता यह देखकर महान् आश्चर्यमें भर गयी। तबसे लोग उस स्थानको 'हंसतीर्थ' कहने लगे। बहुत पहले यहीं यक्षोंने भगवान् शंकरकी आराधना की थी। उस समयसे वह 'यक्षतीर्थ'के नामसे कहा जाता है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य पवित्र होकर यक्षोंके लोकमें प्रतिष्ठा पाता है।

(अध्याय १४४)



शालग्राम-क्षेत्रका माहात्म्य

धरणीने पूछा—भगवन्! आप सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी हैं। मैं जानना चाहती हूँ कि मुनिवर सालङ्कायनने आपके उस मुक्तिप्रद क्षेत्रमें तपस्या करते हुए अन्य कौन-सा कार्य किया और कौन-सी सिद्धि प्राप्त की?'

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! सालङ्कायन मुनि वहाँ दीर्घ कालतक तप करते रहे। उनके सामने शालका एक उत्तम वृक्ष था, जिससे सुगन्ध फैल रही थी। सालङ्कायन ऋषि निरन्तर तप करनेसे थक गये थे। इतनेमें उनकी दृष्टि उस शाल वृक्षपर पड़ी। वे उस विशाल वृक्षके नीचे गये और विश्राम करने लगे। उनके मनमें मेरे दर्शनकी अभिलाषा बनी रही। उस समय शाल वृक्षके पूर्वभागमें पश्चिमकी ओर मुख करके मुनि बैठे थे। मेरी मायाने उन्हें ज्ञानशून्य बना दिया था, अतः वे मुझे देख न सके। सुन्दरि! कुछ दिनोंके बाद जब वैशाख मासकी द्वादशी तिथि आयी तो वहीं पूर्व दिशामें ही उन्हें मेरा दर्शन प्राप्त हुआ। उस समय उत्तम व्रतका पालन करनेवाले उन तपस्वी मुनिने मुझे वहाँ देखकर बार-बार प्रणाम किया और वेद-के मन्त्रोंसे मेरी स्तुति करने लगे। उस अवसरपर मेरे तीक्ष्ण तेजसे मुनिके नेत्र चौंधिया गये, अतः उन्होंने धीरेसे अपने नेत्र बंद कर लिये और स्तुति करने लगे। फिर ज्यों ही उन्होंने अपनी आँखें खोलीं, तो उन्होंने देखा कि मैं उस वृक्षके दक्षिण भागमें खड़ा हूँ। अब वे ऋषि मेरे सामने आकर बैठ गये और ऋग्वेदके स्तोत्रोंसे मेरी स्तुति करने लगे। तबतक मैं शालके पश्चिम ओर चला गया। तब वे मुनि भी वहीं पश्चिमकी ओर जाकर बैठ गये और 'यजुर्वेद'के मन्त्रोंसे मेरी स्तुति की। देवि! इसके बाद मैं उसके उत्तर दिशामें चला गया। वहाँ भी वे सामवेदके मन्त्रोंका गान करके मेरी स्तुति करने लगे। सुन्दरि! फिर तो उन ऋषिप्रवर सालङ्कायनकी स्तुतियोंसे संतुष्ट होकर मैं उनपर अत्यन्त प्रसन्न हो गया। अतः उनसे कहा—'मुनिवर सालङ्कायन! तुम्हारे इस तप एवं स्तुतिके प्रभावसे मैं परम संतुष्ट हूँ। तपस्याके फलस्वरूप तुम्हें परम सिद्धि प्राप्त हो गयी है।'

इसपर सालङ्कायन मुनिने विनयपूर्वक मुझसे कहा—'हरे! मैं भूमण्डलपर निरन्तर भ्रमण तथा तप करता रहा। किंतु निश्चित रूपसे मुझे आज ही आपका शुभ दर्शन प्राप्त हुआ है। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और मुझे वर देना चाहते हैं तो जगन्नाथ! मुझे भगवान् शिवके समान पुत्र देनेकी कृपा कीजिये। मुनीश्वर! ईश्वरकी ही एक दूसरी मूर्ति नन्दिकेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है जो (नन्दिकेश्वर) आपके दाहिने अङ्गसे पुत्रके रूपमें प्रकट हो चुके हैं। ब्राह्मणदेव! अब आप तपसे उपरत हों। योगमायाकी शक्तिसे सम्पन्न होकर वे इस समय मेरे साथ व्रजमें विराज रहे हैं। आपके शिष्य आमुष्यायणको मथुरासे बुलाकर उनके

साथ वे शूलपाणि-रूपमें वहाँ अवस्थित हैं। अब एक दूसरी गुप्त बात भी बताता हूँ, उसे सुनें। आजसे यह उत्तम क्षेत्र 'शालग्राम'क्षेत्र कहलायगा। साथ ही आपने जो यह वृक्ष देखा है, वह भी निःसंदेह मैं ही हूँ। इसे भगवान् शंकरके अतिरिक्त अन्य कोई भी व्यक्ति नहीं जानता। मैं अपनी योगमायासे सदा छिपा रहता हूँ, किंतु आपके तपसे मैं प्रकट हुआ हूँ।'

वसुधे! उस समय सालङ्कायन मुनिको इस प्रकार वर देकर उनके देखते-ही-देखते मैं अन्तर्धान हो गया। उस वृक्षकी प्रदक्षिणा करके सालङ्कायन मुनि भी अपने आश्रमको चल पड़े।

वसुंधरे! अब एक दूसरा महान् आश्चर्यपूर्ण स्थान बतलाता हूँ। यहाँ 'शङ्खप्रभ'नामसे प्रसिद्ध मेरा एक परम गुह्य क्षेत्र है। वहाँ द्वादशीके पर्वपर आधी रातमें शङ्खकी ध्वनि सुनायी देती है। उसी क्षेत्रके दक्षिण दिशामें 'गदाकुण्ड' नामसे विख्यात मेरा एक अन्य स्थान भी है, जहाँसे एक स्रोत प्रवाहित है। वहाँ तीन दिनोंतक रहकर स्नान करनेकी विधि है। इसमें स्नान करनेवाला व्यक्ति वेदान्तवादी ब्राह्मणोंके समान फलभागी होता है। यदि श्रद्धालु एवं गुणवान् मनुष्य उस क्षेत्रमें प्राणका परित्याग करता है तो वह हाथमें गदा लिये हुए विशालकाय होकर मेरे लोकको प्राप्त करता है।

वसुंधरे! यहीं 'देवह्रद' संज्ञावाला मेरा एक दूसरा क्षेत्र भी है। यह अगाध जलवाला श्रेष्ठ देव सरोवर सुन्दर एवं शीतल जलसे सम्पन्न होकर सबको सुख पहुँचाता है। देवता भी उसके लिये तरसते हैं। पृथ्वी देवि! वह ह्रद सदा जलसे परिपूर्ण रहता है। उसमें अनेक ऐसी मछलियाँ भी विचरण करती रहती हैं, जिनपर चक्रका चिह्न अङ्कित रहता है।

सुनयने! अब वहाँका एक दूसरा प्रसङ्ग बताता हूँ, उसे सुनो। वहाँ एक आश्चर्ययुक्त घटना निरन्तर घटती रहती है। मुझमें श्रद्धा रखनेवाला मानव ही इस अलौकिक आश्चर्यमय दृश्यको देख सकता है, पापी पुरुष उसे देखनेमें असमर्थ हैं। उस परम पवित्र देवह्रदमें सूर्योदयके समय सुनहरे रंगके छत्तीस स्वर्णकमल दिखायी पड़ते हैं, जिन्हें सभी लोग मध्याह्न कालतक देखते हैं। उसमें स्नान करनेपर मानसिक, वाचिक एवं शारीरिक मल धुल जाते हैं और वे शुद्ध होकर स्वर्ग चले जाते हैं। जो व्यक्ति दस दिनोंतक वहाँ निवास एवं स्नान करता है, उसे विधिपूर्वक अनुष्ठित दस अश्वमेध-यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। यदि मेरे चिन्तनमें संलग्न प्राणी वहाँ अपना प्राण त्याग करता है तो वह अश्वमेध-यज्ञके फलको भोगकर मेरा सारूप्य मोक्ष प्राप्त करता है।

देवि! यहीं श्रीकृष्णके विग्रहसे 'कृष्णगण्डकी' का प्रादुर्भाव हुआ है। इसी प्रकार 'त्रिशूलगङ्गा'-नामकी प्रसिद्ध विशाल नदी जो शिवके शरीरसे निकली है, वह भी यहीं है। इस प्रकार दोनों नदियोंके बीचका यह प्रदेश तीर्थ बन गया है। इस स्थानको 'सर्वतीर्थकदम्बक' कहते हैं। यहाँका कदली-वन शिववनकी सुषमा बढ़ाता है। निचुल, जायफल, नागकेसर, खजूर, अशोक, वकुल, आम्र, प्रियालक, नारियल, सोपारी, चम्पा, जामुन, धव, नारङ्गी, बेर, जम्बीर, मातुलुङ्ग, केतकी, मल्लिका (चमेली), यूथिका (जूही), कूई, कोरया, कुटन और अनार आदि अनेक फलों तथा फूलोंवाले वृक्षोंसे उसकी अनुपम शोभा होती रहती है। देवता लोग अपनी पत्नियोंके साथ वहाँ आकर आनन्दका अनुभव करते हैं। इस परम पुण्यमय सरोवरमें उन दो महान् नदियोंका सङ्गम है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य सौ अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। वहाँ वैशाख मासमें स्नान करनेसे एक हजार गाय दान करनेका, माघ महीनेमें स्नान करनेका तथा प्रयागमें मकर स्नानका फल पा लेता है। कार्तिक मासमें सूर्य जब तुला राशिपर आ जायँ, तब वहाँ विधिपूर्वक स्नान करनेवाला निश्चय ही मुक्तिफलका

अधिकारी हो जाता है। देवि! इस प्रकार यह हम लोगोंका 'हरिहरात्मक'क्षेत्र है। जो यहाँ शरीरका त्याग करते हैं, उन मेरे कर्मके अनुसरण करनेवाले व्यक्तियोंको उत्तम गति प्राप्त होती है। पहले 'मुक्तिक्षेत्र', तब 'रुरुखण्ड' फिर उन दोनों दिव्य स्थलोंसे निर्मित बहात्र-प्रदेश और त्रिवेणी-सङ्गम—इन तीर्थोंमें उत्तरोत्तर क्रमशः एक-से-एक श्रेष्ठ माने जाते हैं। गण्डकीसे सङ्गम-क्षेत्रको परम प्रमाण जानना चाहिये। देवि! इस प्रकार नदियोंमें वह गण्डकी नदी सर्वश्रेष्ठ है। भागीरथी गङ्गासे वह जहाँ मिलती है, वहाँ स्नान करनेसे बहुत फल होता है। यह वही महान् क्षेत्र है, जिसे 'हरिहर-क्षेत्र' कहते हैं। यहाँ पवित्र गण्डकी नदी भगवती भागीरथीसे मिलती है। इस तीर्थके महत्त्वको तो देवतालोग भी भलीभाँति नहीं जानते।

भद्रे! मैं तुमसे शालग्राम-क्षेत्र* और सब पापोंको नष्ट करनेवाले गण्डकीके माहात्म्यका वर्णन कर चुका।

जो मानव प्रातःकाल उठकर इसका सदा पाठ करता है, वह अपनी इक्कीस पीढ़ियोंको तार देता है। ऐसा मानव मृत्युके समय कभी मोहमें नहीं पड़ता। वह यदि परम सिद्धि चाहता है तो मेरे धाममें चला जाता है। महादेवि! मैंने तुमसे शालग्राम-क्षेत्रके इस श्रेष्ठ माहात्म्यका वर्णन कर दिया। अब तुम्हें अन्य कौन-सा प्रसङ्ग सुननेकी इच्छा है? कहो! (अध्याय १४५)

रुरुक्षेत्र† एवं हृषीकेशके माहात्म्यका वर्णन

पृथ्वी बोली—प्रभो! आपने जो शालग्राम-क्षेत्रके बहुत अद्भुत माहात्म्यका वर्णन किया, जिसके श्रवण करनेसे मेरी चिन्ता शान्त हो गयी। अब मैं यह जानना चाहती हूँ कि 'रुरु'-खण्डकी प्रसिद्धि कैसे हुई और वह उत्तम क्षेत्र आपका शुभ आश्रम कैसे बन गया? जगन्नाथ! आप इसे मुझे बतानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! पहले भृगुवंशमें देवदत्त नामके एक वेद-वेदाङ्गपारगामी विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। वे अपने पवित्र आश्रममें रहकर दस हजार वर्षोंतक कठोर तपस्या करते रहे। इससे इन्द्रके मनमें महान् चिन्ता उत्पन्न हो गयी। अतः उन्होंने कामदेव, वसन्तऋतु तथा गन्धर्वोंके साथ प्रम्लोचा नामकी अप्सराको बुलाकर उनकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये भेजा और वह अप्सरा इनके साथ मुनिवर देवदत्तके आश्रमपर चली गयी। वहाँ अनेक प्रकारके वृक्ष और लताएँ पहलेसे ही उनके आश्रमकी शोभा बढ़ा रहे थे तथा कोकिलोंका समूह मधुर कूजन कर रहा था। आम्रकी मञ्जरियाँ, भौंरोंका गुञ्जन, गन्धर्वोंका संगीत, शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु—ये एक-से-एक रागोद्दीपक थे। अत्यन्त स्वच्छ सुगन्धित और मधुर जलसे सरोवर भरा था, जिसमें कमलोंका समुदाय खिला हुआ था। इसी समय उस परम सुन्दरी अप्सराने अत्यन्त मधुर संगीतका तान छोड़ा। इधर कामदेवने भी अपना पुष्पमय धनुष खींचा और उसपर बाणोंका संधान कर शान्त चित्तवाले मुनिवर देवदत्तको अपना लक्ष्य बनाया। रम्य आलापसे सम्पन्न उस सुमधुर संगीतको सुनकर उन उत्तम व्रती मुनिवर देवदत्तका चित्त विक्षुब्ध हो उठा। अब वे इधर-उधर देखते हुए आश्रममें घूमने लगे। इसी बीच सुन्दर अङ्गोंसे शोभा पानेवाली वह प्रम्लोचा भी उन्हें दीख गयी। उस समय वह गेंद उछाल रही थी। उसकी दृष्टि पड़ते ही मुनिवर देवदत्त कामदेवके बाणसे बिंध गये। उसी समय प्रम्लोचाके अङ्गोंपर मलयवायुका झोंका लगा, जिससे उसके वस्त्र भी खिसक गये। अब मुनि अपनेको सँभाल न सके। उन्होंने उससे पूछा—'सुभगे! तुम कौन हो तथा इस उपवनमें कैसे आयी हो?' अन्तमें उसकी सम्मतिसे उसके साथ रहते हुए उन्होंने अपने तपके प्रभावसे अनेक मनोहर भोगोंको भोगा। सुख-भोगमें आसक्त

* विल्फोर्ड तथा पद्मपुराण, पातालखं० अ० ७८के अनुसार यह शालग्राम पर्वत 'मुक्तिनाथ' ही है। द्रष्टव्य—"कल्याण"का 'तीर्थाङ्क'—पृ० १५४।

† श्रीविष्णुपुराण १। १५। १३ आदिके अनुसार यह भी 'मुक्तिनाथ'के ही आसपासका पर्वत है।

होकर दिन-रात वे कभी सोते भी न थे। इस प्रकार बहुत दिन व्यतीत हो गये। एक दिनकी बात है, उनका विवेक जाग्रत् हुआ और वे अज्ञानरूपी नींदसे सहसा जाग उठे। वे कहने लगे—'अहो! भगवान् श्रीहरिकी माया कैसी प्रबल है, जिसके प्रभावसे मैं भी मोहके गर्तमें डूब गया। यह जानते हुए भी कि इससे मेरी तपस्या नष्ट हो जायगी, प्रबल दैवके अधीन होनेके कारण मैंने यह कुत्सित कार्य कर डाला। 'सुभाषित'के नामसे यह प्रवाद प्रसिद्ध है कि नारी अग्निके कुण्ड-जैसी है और पुरुष घृतके घड़ेके समान, पर मेरी समझसे तो यह मूर्खोंका प्रवादमात्र है। विचारकी दृष्टिसे देखा जाय तो वस्तुतः इनमें बड़ा अन्तर है। क्योंकि घीका घड़ा तो आगपर रखनेसे पिघलता है, न कि देखनेमात्रसे। किंतु पुरुष तो स्त्रीको देखकर ही पिघल उठता है। तथापि इस स्त्रीका यहाँ कोई अपराध नहीं है; क्योंकि मैं स्वयं अपनी इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करनेमें असमर्थ था।'

इस प्रकार पश्चात्ताप करते हुए उन्होंने प्रम्लोचाको वहाँसे विदा कर दिया। फिर वे सोचने लगे—'इस स्थानमें यह विघ्न हुआ, अतः मैं अब इस आश्रमका परित्यागकर कहीं अन्यत्र चलूँ और वहाँ तीव्र तपस्याका आश्रय लेकर इस शरीरको सुखा दूँ। इस प्रकार निश्चय कर वे भृगुमुनिके आश्रमपर गये और वहाँ गण्डकी नदीके सङ्गममें स्नानकर देवताओं और पितरोंका तर्पण किया एवं भगवान् विष्णु और शिवकी भलीभाँति पूजा की। फिर वे भगवान् शंकरके दर्शनकी अभिलाषासे गण्डकीके तटपर स्थित भृगुतुङ्ग*पर कठोर तपस्या करने लगे। इस प्रकार बहुत दिन बीतनेपर भगवान् शंकर उन मुनिपर संतुष्ट हुए। उनके लिङ्गरूपमें सहसा ऊपर एवं नीचेसे जलकी तिरछी धाराएँ निकलने लगीं। फिर वे बोले—'मुने! इधर मुझे देखो, मैं शिव हूँ। तुम्हें जानना चाहिये कि विष्णु भी मैं ही हूँ। हम दोनोंमें तत्त्वतः कोई भेद नहीं है। इसके पूर्वके तपमें तुम्हारी मुझमें और विष्णुमें भेद-दृष्टि थी, अतः तुम्हें विघ्नोंका सामना करना पड़ा तथा तुम्हारी महान् तपस्या क्षीण हो गयी। अब तुम हम दोनोंको समानभावसे ही देखो। इससे तुम्हें फिर शीघ्र ही सिद्धि सुलभ हो जायगी। जहाँ तुमने तपस्या की है और अनेकों शिवलिङ्गोंका प्राकट्य हुआ है, वह स्थान 'सङ्गम'-नामसे प्रसिद्ध होगा। इस गण्डकी-तीर्थमें स्नान करके जो यहाँ मेरे इन लिङ्गोंकी पूजा करेगा, उसे सम्यक् प्रकारसे योगका उत्तम फल प्राप्त हो जायगा, इसमें कोई संदेह नहीं।' मुनिको वर देकर भगवान् शंकर वहीं अन्तर्धान हो गये और वे उनके बताये मार्गका अनुसरण करने लगे। अतः वे परम सायुज्य-पदको प्राप्त हुए।

इधर मुनिके सम्पर्कसे प्रम्लोचा भी गर्भवती हो गयी थी। आश्रमके पास ही उससे एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसे वहीं छोड़कर वह स्वर्गलोकमें चली गयी। उससे उत्पन्न हुई कन्या भी 'रुरु'नामक मृगोंद्वारा पालित होकर धीरे-धीरे बड़ी हुई, अतः उसका नाम भी 'रुरु'† हुआ। वह अपने पिता देवदत्तके आश्रमपर ही रहती, अनेक युवक उसे अपनी पत्नी बनाना चाहते, किंतु उसने किसीकी भी बात न मानी और भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये तपस्या करने लगी। वह कठोर तप करती हुई केवल सूखे पत्ते खाकर रहती और बादमें पत्ते खाना भी छोड़कर केवल वायुके आहारपर रहती हुई वह भगवान् श्रीहरिकी आराधनामें तत्पर हो गयी। इस प्रकार सौ वर्षोंतक द्वन्द्वोंको सहती हुई निश्छल-भावसे भगवद्ध्यानमें समाधिस्थ होकर

---

* श्रीनन्दलाल 'दे' आदिके अनुसार यह गण्डकीके पूर्वोत्तरतटपर नेपालका 'मुक्तिनाथ' पर्वत ही है। 'महाभारत' १। ७५, ५७, २१६। २; ३। ९४। ५०, ८५। ११-१२; ९०। २३; १३। २५। १८-१९ में भी इस (भृगुतुङ्ग)का उल्लेख है। टीकाकार पं० नीलकण्ठके अनुसार यह 'तुङ्गनाथ' है।' According to Nilkantha it is 'Tunganath' (Geog Dic. of Anc. & Med. India P. 34)

† स्वल्पान्तरसे यह कथा श्रीमद्भागवत ४। ३०। १३ तथा 'विष्णुपुराण'के प्रथम अंशके १५ वें अध्यायमें भी है।

स्थाणु (ठूँठ)के समान निश्चल रहने लगी। अब उसके शरीरके दिव्य प्रकाशसे सारा संसार व्याप्त हो गया।

अब मैं उसके सामने प्रत्यक्ष हुआ। नियन्त्रित इन्द्रियोंवाली उस कन्याके सामने स्वयं मैं नियन्त्रित-रूपसे प्रकट हुआ, अतः तबसे मैं 'हृषीकेश' नामसे यहाँ स्थित हुआ*। फिर मैंने उससे कहा— 'बाले! तुम्हारी इस उत्तम तपस्यासे मैं पूर्ण संतुष्ट हूँ। तुम्हारे मनमें जो कुछ बात हो, वह मुझसे वररूपमें माँग लो। अन्य किन्हीं व्यक्तियोंके लिये जो अत्यन्त दुर्लभ है, ऐसा अदेय वर भी मैं तुम्हें इस समय देनेके लिये तत्पर हूँ।'

तब 'रुरु'नामकी उस दिव्य कन्याने मुझ श्रीहरिकी बारंबार प्रणाम-स्तुति की और कहा—'जगत्पते! आप यदि मुझे वर देना चाहते हैं तो देवाधिदेव! आप इसी रूपसे यहाँ विराजनेकी कृपा कीजिये।' तब मैंने उससे कहा—'बाले! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तो यहीं हूँ, अब तुम मुझसे कोई अन्य वर भी माँग लो।' इसपर उसने मुझे प्रणाम कर कहा—'देवेश! आप यदि मुझपर प्रसन्न हैं तो आप ऐसी कृपा करें कि यह क्षेत्र मेरे ही नामसे प्रसिद्ध हो जाय—इसके अतिरिक्त मेरी अन्य कोई अभिलाषा नहीं है।' सुभगे! तब मैंने कहा—'देवि! ऐसा ही होगा, तुम्हारा यह शरीर सर्वोत्तम तीर्थ होगा और यह समस्त क्षेत्र भी तुम्हारे ही नामसे विख्यात होगा। साथ ही जो मनुष्य इस तीर्थमें तीन रातोंतक निवास एवं स्नान करेगा, वह मेरे दर्शनसे पवित्र हो जायगा—इसमें कोई संशय नहीं। उसके जाने अनजाने किये गये सभी पाप नष्ट हो जायँगे—इसमें कोई संदेह नहीं।'

देवि! इस प्रकार 'रुरु'को वर देकर मैं वहीं अन्तर्धान हो गया और वह भी समयानुसार पवित्र तीर्थ बन गयी।

(अध्याय १४६)

'गोनिष्क्रमण'-तीर्थ और उसका माहात्म्य

धरणीने कहा—भगवन्! आपकी कृपासे मैंने रुरु-क्षेत्र हृषीकेशकी महिमाका वर्णन सुना। देवेश! अब जो अन्य पावन क्षेत्र हैं, उन्हें बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! हिमालय-पर्वतके शिखरपर मेरा एक क्षेत्र है, जिसका नाम है–'गोनिष्क्रमण', जहाँ पहले सुरभी आदि गौएँ समुद्रसे तरकर बाहर निकली थीं। बहुत पहले 'और्वनाम'से प्रसिद्ध एक प्रजापति थे, जिन्होंने यहाँ दीर्घकालतक निष्कामभावसे तपस्या की थी। वसुंधरे! कुछ दिनोंके बाद जिस ऊँचे पर्वतपर वे तपस्या कर रहे थे, फलों एवं फूलोंसे परिपूर्ण लक्ष्मी भी वहाँ प्रकट हो गयीं। अतः वहाँ कुछ और तपस्वी ब्राह्मण आ गये। इसी समय कहींसे घूमते हुए वहाँ महान् तेजस्वी भगवान् शंकर भी आ गये। एक बार और्व मुनि जब कुछ कमलपुष्पोंके लिये हरिद्वार गये थे कि महादेवने अपने उग्र तेजसे और्व मुनिके उस प्रिय आश्रम-को भस्म कर दिया और फिर वहाँसे यथाशीघ्र अपने वासस्थान हिमालयपर चले गये। देवि! ठीक उसी समय मुनिवर और्व पत्र-पुष्पकी टोकरी लिये हरिद्वारसे अपने उस आश्रमपर आ गये। यद्यपि मुनि शान्त एवं मृदु स्वभावके क्षमाशील एवं सत्यव्रतमें तत्पर रहनेवाले थे, तथापि प्रभूत फूलों, फलों एवं जलोंसे सम्पन्न उस आश्रमको दग्ध हुआ देखकर वे क्रोधसे भर गये। दुःखके कारण उनकी आँखें डबडबा गयीं और क्रोधसे भरकर उन्होंने यह शाप दिया—'प्रचुर फूलों, फलों और उदकोंसे सम्पन्न मेरे इस आश्रमको जिसने जलाया है, वह भी दुःखसे

* हृषीकाणि नियम्याहं यतः प्रत्यक्षतां गतः। 'हृषीकेश' इति ख्यातो नाम्ना तत्रैव संस्थितः॥
(वराहपुरा० १४६। ७२)

संतप्त होकर सारे संसारमें भटकता फिरेगा। फलतः भगवान् शंकर समस्त संसारके स्वामी होते हुए भी उसी क्षण व्याकुल हो उठे और उन्होंने उमा देवीसे कहा— 'प्रिये! और्व मुनिकी कठिन तपस्या देखकर देवसमुदायके हृदयमें आतङ्क छा गया था। इसलिये मुझसे उन्होंने प्रार्थना की कि 'भगवन्! अखिल जगत् जल रहा है। फिर भी वे (और्व) इससे बचानेके लिये कोई चेष्टा नहीं करते। हमारी प्रार्थना है कि आप उसके निवारणके लिये कोई ऐसा उपाय कीजिये, जिससे सबकी सुरक्षा हो सके।' जब देवताओंने मुझसे इस प्रकार कहा, तब मैंने और्वके आश्रमपर तृतीय नेत्रकी दृष्टि डाल दी, अतः उनका वह आश्रम भस्म हो गया। हमलोग तो वहाँसे बाहर निकल गये; किंतु आश्रमके जलनेसे और्वको महान् दुःख तथा संताप हुआ। शिवे! वे क्रोधसे भर उठे हैं और अब उनके रोषयुक्त शापसे हमारे मनमें भी बड़ी व्यथा हो रही है।'

वसुंधरे! फिर महाभाग शम्भुने अशान्त होकर इधर-उधर भ्रमण करना आरम्भ किया; किंतु किसी क्षण वे शान्त न रह सके। मैं भी उनके आत्मा होनेसे उस समय उनके दुःखसे दुःखी और संतप्त होकर निश्चेष्ट-सा हो गया। इधर पार्वतीने भगवान् शंकरसे कहा—'अब हमलोग भगवान् नारायणके पास चलें। सम्भव है, उनकी वाणी और परामर्शसे हमें शान्ति मिल जाय। अथवा भगवान् नारायणको साथ ले फिर हम सभी और्वके पास चलें और उनसे प्रार्थना करें कि आपने जो शाप दिया है, उसे वापस कर लें; क्योंकि इससे हम सभी जल रहे हैं।'

देवि! फिर उस समय इस प्रकारके सभी प्रयत्न किये गये, किंतु और्वने उत्तर दिया—'मेरी बात कभी भी मिथ्या नहीं हो सकती। हाँ, मैं उपाय बतला सकता हूँ, सुरभि गायोंको लेकर आप लोग वहाँ जायँ। और ये गौएँ अपने दूधोंसे रुद्रको स्नान करायें तो निश्चय ही इस शापसे आप सब छूट जायँगे, इसमें संदेह नहीं।'

कल्याणि! उस अवसरपर मैंने महान् शक्तिशालिनी सतहत्तर सुरभि गायोंको स्वर्गसे नीचे उतारा और उनके दूधसे सिक्त हो जानेपर रुद्र एवं अन्य सबोंकी जलन भी सदाके लिये शान्त हो गयी। तबसे उस स्थानका नाम 'गोनिष्क्रमण'-तीर्थ हो गया। जो मनुष्य वहाँ एक रात भी निवास एवं स्नान करता है, वह 'गोलोक'में जाकर आनन्दका उपभोग करता है। उत्तम धर्मके आचरण करनेके पश्चात् यदि उसकी वहाँ (गोनिष्क्रमण-तीर्थमें) मृत्यु होती है तो वह शङ्ख, चक्र एवं गदासे सम्पन्न होकर मेरे लोकमें प्रतिष्ठा पाता है।

यहाँ गौओंके मुखसे निकला हुआ एक अत्यन्त श्रुति-सुखद शब्द सुनायी पड़ता है। एक बार ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको मैंने स्वयं ऐसा सुसंस्कृत शब्द सुना था, अतः इसमें कोई संदेह नहीं करना चाहिये। ऐसा ही 'गोस्थलक'-नामका एक परम पवित्र क्षेत्र है। वहाँ मुझमें श्रद्धा रखनेवाले पवित्रात्मा पुरुषको शुभ कर्म करना चाहिये। उसके प्रभावसे वह पापोंसे यथाशीघ्र छूट जाता है। महाभागे! जिस समय शंकरको और्वमुनिका शाप लगा था और वे उससे जल रहे थे, तब वे मरुद्गणोंके साथ वहाँ गये तथा शापसे उनकी मुक्ति हो गयी, इसीसे इस क्षेत्रकी ऐसी महिमा है। यह 'गोस्थलक' नामवाला क्षेत्र परम श्रेष्ठ एवं सब प्रकारसे शान्ति प्रदान करनेवाला है।

महाभागे! यह प्रसङ्ग सम्पूर्ण मङ्गलोंको प्रदान करनेवाला और मेरे मार्गके अनुसरण करनेवाले भक्तोंमें श्रद्धाकी वृद्धि करनेवाला है। यह श्रेष्ठोंमें परम श्रेष्ठ,

मङ्गलोंमें परम मङ्गल, लाभोंमें परम लाभ और धर्मोंमें उत्तम धर्म है। यशस्विनि! मेरे निर्दिष्ट पथके पथिक पुरुष इसका पाठ करनेके प्रभावसे तेज, शोभा, लक्ष्मी तथा सब मनोरथोंको प्राप्त कर लेते हैं। मनस्विनि! इसके पाठक इस अध्यायमें जितने अक्षर हैं, उतने वर्षोंतक मेरे धाममें सुशोभित होते हैं। प्रतिदिन इसे पढ़नेवाले मानवका कभी पतन नहीं होता और उसकी इक्कीस पीढ़ियाँ तर जाती हैं। निन्दक, मूर्ख और दुष्टोंके सामने इसका प्रवचन नहीं करना चाहिये। इसके स्वाध्याय करनेकी योग्यतावाले पुत्र या शिष्यको ही इसे सुनाना चाहिये। वसुंधरे! पाँच योजनके विस्तारवाले इस क्षेत्रसे मेरा अतिशय प्रेम है। अतएव मैं यहाँ सदा निवास करता हूँ। यहाँ गङ्गाकी धारा पूर्व दिशासे होकर पश्चिम दिशामें विपरीत बहती है।* ऐसे गुह्य-रहस्यकी जानकारी सभी सत्कर्मोंमें सुख प्रदान करती है। महाभागे! यही वह गुप्त क्षेत्र है, जिसके विषयमें तुमने पूछा था। (अध्याय १४७)

स्तुतस्वामीका माहात्म्य

पृथ्वी बोली—जगत्प्रभो! गौओंकी महिमा बड़ी विचित्र है। इसे सुनकर मेरी सम्पूर्ण शङ्काएँ शान्त हो गयीं। नारायण! ऐसे ही अन्य भी कुछ गुप्त तीर्थोंको बतानेकी कृपा कीजिये। प्रभो! यदि इस क्षेत्रसे भी कोई विशिष्ट श्रेष्ठ क्षेत्र हो तो उसे भी सुनाइये।

भगवान् वराह कहते हैं—महाभागे! अब मैं तुम्हें एक दूसरा क्षेत्र बताता हूँ, जिसका नाम है 'स्तुतस्वामी'। सुन्दरि! द्वापरयुग आनेपर मैं वहाँ निवास करूँगा। उस समय श्रीवसुदेवजी मेरे पिता होंगे और देवकी माता; कृष्ण मेरा नाम होगा और उस समय मैं सभी असुरोंका संहार करूँगा। उस समय मेरे पाँच—शाण्डिल्य, जाजलि, कपिल, उपसायक और भृगु नामक धर्मनिष्ठ शिष्य होंगे और मैं वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार रूपोंमें सदा प्रत्यक्ष रहूँगा। उस समय कुछ लोग इस चतुर्व्यूहकी उपासनासे, कुछ ज्ञानके प्रभावसे और कुछ व्यक्ति सत्कर्ममें परायण रहकर मुक्त होंगे। सुश्रोणि! कितनोंको तो इच्छानुसार किया हुआ यज्ञ तथा बहुतोंको कर्मयोग इस संसारसे तार देता है। कुछ सज्जन योगका फल भोगकर मुझमें स्थित संसारको देखते हैं। मुझमें विधिपूर्वक निष्ठा रखनेवाले कितने मनुष्य सब जीवोंमें मेरा ही रूप देखते हैं। भूमे! बहुत-से पुरुष अखिल धर्मोंका आचरण करते, सब कुछ भोजन कर लेते और सभी पदार्थोंका विक्रय भी करते हैं, तब भी यदि उनका चित्त मुझमें एकाग्र रहा और वे उचित व्यवस्थामें लगे रहे, तो उन्हें मेरा दर्शन सुलभ हो जाता है।

देवि! यह वराहपुराण संसारसे उद्धार करनेके लिये परम साधन एवं महान् शास्त्र है। मेरे भक्तोंकी व्यवस्था ठीक रूपसे चल सके, इसलिये मैंने इस परम प्रिय प्रयोगका वर्णन किया है। शाण्डिल्यप्रभृति मेरे वे शिष्य इच्छानुसार इन साधनोंका प्रचार (प्रवचन) करेंगे।

मेरे इस 'स्तुतस्वामी' क्षेत्रसे लगभग पाँच कोसकी दूरीपर पश्चिम दिशामें एक कुण्ड है। उसका जल मुझे बहुत प्रिय लगता है। उस अगाध जलवाले सरोवरका पानी स्वर्ण अथवा मरकतमणिके समान चमकता है। मेरे इस सरोवरमें पाँच दिनोंतक स्नान करनेसे मनुष्यके सभी पाप धुल जाते हैं। इसके समीप ही 'धूतपाप' नामक तीर्थ है, जो मणिपुरगिरिके ऊपर है। वहाँ निवास करनेवाले प्राणीपर तबतक जल-धारा नहीं गिरती, जबतक उसके सभी पाप समाप्त न हो जायँ। यह बड़े आश्चर्यकी बात है। सुश्रोणि! सम्पूर्ण पापोंके

* अनुमानतः यह स्थान ऋषिकेशके ऊपर व्यासघाटसे कुछ दूर आगे है।

नष्ट हो जानेपर ही प्राणीपर धारा वहाँ गिरती है। ऐसे ही वहाँ एक पीपलका वृक्ष भी है।

पृथ्वी बोली—'भगवन्! आप ही 'स्तुतस्वामी' हैं मैंने ऐसी बात सुनी है। अब इस 'स्तुतस्वामी' नामसे आपका अभिप्राय क्या है? इसे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! जब मैं 'मणिपूर' नामक स्थानपर था, उस समय मन्त्रोंके प्रवचन करनेवाले ब्रह्मा आदि बहुत-से देवतालोग मेरी स्तुति करने लगे। परम सौभाग्यवती देवि! इसी कारण नारद, असित, देवल तथा पर्वत नामवाले मुनिगणोंने भक्तिसे सम्पन्न होकर उस समय उस 'मणिपूर'-पर्वतपर मेरा नाम 'स्तुतस्वामी' रखा। तबसे मेरे सत्कर्मसे सम्बन्धित मेरा यह 'स्तुतस्वामी' नाम विख्यात हुआ। भद्रे! मैंने तुमसे अखिल धर्मोंको आश्रय देनेवाला यह 'श्रीस्तुतिस्वामीका माहात्म्य' बतलाया। अब तुम दूसरा कौन प्रसङ्ग पूछना चाहती हो, यह बतलाओ। (अध्याय १४८)



द्वारका-माहात्म्य

पृथ्वी बोली—भगवन्! देवेश्वर! आपकी कृपासे 'स्तुतस्वामी'के माहात्म्य सुननेका सौभाग्य मिला है। कृपानिधे! अब इन स्तुतस्वामीके गुण एवं माहात्म्य मुझे सुनानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! द्वापरयुगमें यादवोंके कुलमें कुलोद्धारक 'शौरि-वसुदेव' नामसे मेरे पिता होंगे। उस समय विश्वकर्माद्वारा निर्मित दिव्य पुरी द्वारकामें मैं पाँच सौ वर्षोंतक निवास करूँगा। उन्हीं दिनों दुर्वासा नामसे विख्यात एक ऋषि होंगे, जो मेरे कुलको शाप दे देंगे। पृथ्वि! उन ऋषिके शापसे संतप्त होनेके कारण वृष्णि, अन्धक एवं भोज-कुलके सभी व्यक्तियोंका संहार हो जायगा। उसी समय जाम्बवती नामवाली मेरी एक प्रिय पत्नी होगी। वह मेरे सुखकी साधिका बनेगी। उससे एक महान् भाग्यशाली पुत्रका जन्म होगा। रूप एवं यौवनका गर्व करनेवाला मेरा वह परम सुन्दर पुत्र साम्ब नामसे विख्यात होगा, जो मुझे प्रिय होगा।

अब मैं वैष्णव पुरुषोंको सुख प्रदान करनेवाले द्वारकाके स्थानोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। 'पञ्चसर' नामसे विख्यात मेरा एक गुह्य क्षेत्र है। समुद्रके तटसे कुछ दूर जाकर मेरे कर्ममें (भक्तिमें) संलग्न मानवको सुखी बनानेवाले उस क्षेत्रमें छः दिनोंतक निवासकर स्नान करना चाहिये। इसके फलस्वरूप स्नान करनेवाला मनुष्य अप्सराओंसे भरे हुए स्वर्गलोकमें आनन्दका उपभोग करता है। उस 'पञ्चसर'धाममें प्राण-त्याग करनेवाला मनुष्य मेरे लोक (वैकुण्ठ)में प्रतिष्ठा पाता है। वहीं समुद्रमें मकरकी आकृतिवाला एक स्थान है, जहाँ अनेक मगरमच्छ इधर-उधर घूमते हुए दिखलायी पड़ते हैं, पर जलमें स्नान करनेवाले व्यक्तियोंके प्रति वे कुछ भी अपराध नहीं करते। मानव उस विमल जलमें जब पिण्डोंको फेंकते हैं तो उन्हें दूर रहनेपर भी वे झपटकर ले लेते हैं, परंतु बिना दिये वे उन्हें नहीं लेते। इसी प्रकार यदि कोई पापी मनुष्य जलमें पिण्ड देता है, तो उसे वे नहीं लेते, किंतु धर्मात्मा पुरुषोंके फेंके हुए पिण्डोंको वे ग्रहण कर लेते हैं।

देवि! मेरे इस द्वारकाक्षेत्रमें 'पञ्चपिण्ड' नामसे प्रसिद्ध एक गुह्य स्थान है, उसमें अगाध जल है। उसे पार करना सभीके लिये कठिन है। वह एक कोसके विस्तारमें फैला है। मनुष्य पाँच रात वहाँ रहकर मेरा अभिषेक करे। इससे वह इन्द्रके लोकमें निःसंदेह आनन्द भोगता है। यशस्विनि! यदि वहाँ उसके प्राण

शरीरसे निकल गये तो फिर वह वहाँसे मेरे धाममें पहुँच जाता है। उसी द्वारकाक्षेत्रमें हंसकुण्डनामसे विख्यात एक तीर्थ है, जहाँ 'मणिपूर' पर्वतसे होकर एक धारा गिरती है। उस तीर्थमें छः दिनोंतक रहकर स्नान करनेकी बड़ी महिमा है। महाभागे! इसमें स्नान करनेवाला उससे आसक्तिरहित होकर वरुणलोकमें आनन्द प्राप्त करता है। वरानने! यदि उस 'हंसतीर्थ'में वह अपने पाञ्चभौतिक शरीरका त्याग करता है तो वरुणलोकका परित्याग कर मेरे लोकमें पहुँचकर प्रतिष्ठा पाता है। उसी प्रसिद्ध द्वारका-क्षेत्रमें 'कदम्ब' नामसे प्रसिद्ध एक स्थान है। यह वह स्थान है, जहाँ वृष्णिकुलके शुद्ध व्यक्ति मेरे धाम सिधारे थे। मनुष्यको चाहिये कि चार राततक वहाँ निवास करके मेरा अभिषेक करे। ऐसा करनेसे वह पुण्यात्मा पुरुष निःसंदेह ऋषियोंके लोकोंको प्राप्त कर लेता है।

वसुंधरे! मेरे उसी द्वारकाक्षेत्रमें 'चक्रतीर्थ' नामसे प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ स्थान है। वहाँ मणिपूर पर्वतसे होती हुई पाँच धाराएँ गिरती हैं। पाँच दिनोंतक वहाँ रहकर अभिषेक करनेवाला मनुष्य दस हजार वर्षोंतक स्वर्गमें सुख भोगता है। लोभ और मोहसे मुक्त होकर मानव यदि वहाँ प्राण छोड़ता है तो सम्पूर्ण आसक्तियोंका परित्याग कर वह मेरे धाममें चला जाता है। उसी द्वारकाक्षेत्रमें एक 'रैवतक' नामका तीर्थ है, जहाँ मैं लीला करता हूँ, वह स्थान समस्त लोकोंमें प्रसिद्ध है। बहुत-सी लताएँ, वल्लरियाँ और फूल उसकी छवि छिटकाते रहते हैं। उसके दसों दिशाओंमें अनेक वर्णवाले पत्थर तथा गुहाएँ हैं और वह वापियों तथा कन्दराओंसे भी युक्त है तथा देवसमुदायके लिये भी दुर्लभ है। मनुष्यको छः दिनोंतक वहाँ रहकर अभिषेक करना चाहिये। फिर तो वह कृतकृत्य होकर निश्चय ही चन्द्रमाके लोकमें चला जाता है। मेरी पूजामें निरत वह पुरुष यदि वहाँ प्राणोंका त्याग करता है तो उस लोकसे मेरे धाममें निवास करने चला जाता है। महाभागे! वहाँकी भी एक अलौकिक बात बतलाता हूँ, सुनो। धर्मके अभिलाषी प्रायः सभी पुरुष वह दृश्य देख सकते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। वहाँ सम्पूर्ण वृक्षोंके बहुत-से पत्ते गिरते हैं, किंतु एक भी पत्ता किसीको दिखायी नहीं पड़ता। सभी पत्ते विमल जलमें चले जाते हैं। एक विशाल वृक्ष मेरे पूर्व भागमें है तथा इसके अतिरिक्त कुछ वृक्ष मेरे पार्श्वभागमें हैं। देवतालोग भी इन वृक्षोंका दर्शन करनेमें असमर्थ हैं। पाँच कोसका विस्तारवाला वह स्थान तथा महान् वृक्ष अत्यन्त शोभनीय हैं। सुन्दर गन्धवाले पद्म एवं उत्पल उसे चारों ओरसे घेरे हुए हैं। बहुत-सी मछलियाँ और जलोंसे पूर्ण तालाब भी उसके सभी भागोंमें हैं। मनुष्यको आठ दिनोंतक वहाँ रहकर अभिषेक करना चाहिये। इसमें स्नान करनेवाला अप्सराओंसे युक्त दिव्य नन्दनवनमें विहार करता है।

वसुंधरे! मेरे इस द्वारका-क्षेत्रमें 'विष्णुसंक्रम' नामका एक स्थान है, जहाँ 'जरा' नामक व्याधने मुझे अपने बाणसे मारा था। मैंने वहाँ पुनः अपनी मूर्तिकी स्थापना कर दी है। महाभागे! वहाँ एक कुण्ड भी है। यह स्थान 'मणिपूर पर्वत'पर है, ऐसा सुना जाता है। वहाँ एक धारा गिरती है। लाभ एवं हानिसे निश्चिन्त होकर वहाँ निवास करनेवाला मनुष्य सूर्यलोकका उल्लङ्घन कर मेरे लोकमें प्रतिष्ठा पाता है।

देवि! दसों दिशाओंमें चारों ओर फैला हुआ यह मेरा 'द्वारकाक्षेत्र' तीस योजनके प्रमाणमें है। वरारोहे! वहाँ जो पुण्यात्मा मनुष्य मेरा भक्तिपूर्वक दर्शन करेंगे, उन्हें बहुत शीघ्र ही परम गति प्राप्त हो जायगी। यह प्रसङ्ग आख्यानोंमें महान् आख्यान, शान्तियोंमें परम शान्ति, धर्मोंमें परम धर्म, द्युतियोंमें परम द्युति, लाभोंमें परम लाभ, क्रियाओंमें परम क्रिया, श्रुतियोंमें परम श्रुति तथा तपस्याओंमें परम तपस्या है। भद्रे! जो

मानव प्रातःकाल उठकर इसका अध्ययन करता है, वह अपने कुलकी इक्कीस पीढ़ियोंको तार देता है। देवि! द्वारका-क्षेत्रके इस पुनीत प्रसङ्गको मैंने तुम्हें सुना दिया। अब उचित एवं लोकोपकारी अन्य कोई प्रसङ्ग तुम पूछना चाहती हो तो पूछो!

(अध्याय १४९)



सानन्दूर-माहात्म्य

पृथ्वी बोली—प्रभो! आपने कृपापूर्वक मुझे द्वारका-माहात्म्यका वर्णन सुनाया। इस परम पवित्र विषयको सुननेसे मैं कृतकृत्य हो गयी। जगत्प्रभो! यदि इससे भी अधिक कोई गुह्य प्रसङ्ग हो तो वह भी मैं सुनना चाहती हूँ। जनार्दन! यदि मुझपर आपकी अपार दया हो, तो वह भी कहनेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! 'सानन्दूर' नामसे प्रसिद्ध मेरा एक परम गुप्त निवासस्थल है। यह क्षेत्र समुद्रसे उत्तर और मलयगिरिसे दक्षिणकी ओर है। वहाँ मेरी एक मध्यम प्रमाणकी अत्यन्त आश्चर्यमयी प्रतिमा है। जिसे कुछ लोग लोहेकी, कुछ लोग ताँबेकी और कितने व्यक्ति कांस्य (काँसा)धातुसे निर्मित समझते हैं तथा कुछ लोग कहते हैं कि यह सीसेकी बनी है। मेरी उस प्रतिमाको अन्य व्यक्ति प्रस्तरकी बनी हुई भी कहते हैं। भूमे! अब वहांके स्थानोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। यशस्विनि! इस 'सानन्दूर' नामक मेरे क्षेत्रकी ऐसी महिमा है कि वहाँ जानेवाले मानव संसार-सागरसे पार हो जाते हैं।

वरानने! 'सानन्दूर' क्षेत्रमें संगमन नामका एक मेरा परम उत्तम गुह्य क्षेत्र है। प्रिये! राम और समुद्रके समागमका वह स्थान है। महाभागे! वहाँ स्वच्छ जल-वाला एक कुण्ड है। बहुत-सी वल्लरियों, लताओं और पक्षियोंसे उसकी विचित्र शोभा होती है। समुद्रके संनिकटमें ही कुछ योजन दूरीपर वह स्थान है। अनेक सुगन्धित उत्तम कुमुद एवं कमलके पुष्प उसकी सदा मनोहरता बढ़ाते रहते हैं। मनुष्यको चाहिये कि वहाँ छः दिनोंतक निवास एवं अवगाहन करे। इसके प्रभावसे वह कुछ समय समुद्रके भवनमें रहकर मेरे धाममें चला जाता है।

सुमध्यमे! सानन्दूर क्षेत्रमें 'शक्रसर' नामसे विख्यात मेरा एक परम गुह्य क्षेत्र है। वहाँसे पूर्व भागमें कुछ योजनकी दूरीपर वह स्थान है। उस कुण्डके मध्यभाग-में विषमरूपसे चार धाराएँ गिरती हैं। कल्याणि! उन धाराओंके जल अत्यन्त निर्मल होते हैं। चार दिनोंतक रहकर वहाँ मनुष्यको स्नान करना चाहिये। इस पुण्यसे वह चार लोकपालोंके उत्तम नगरोंमें जानेका अधिकारी होता है। वहाँके तालाबका नाम 'शक्रसर' है। यदि वहाँ कोई व्यक्ति प्राण परित्याग करता है। तो वह लोकपालोंका स्थान छोड़कर मेरे धाममें आनन्दपूर्वक निवास करता है। महाभागे! वहाँ जो आश्चर्यकी बात देखी जाती है, उसे कहता हूँ, सुनो। भूमे! जिनका अन्तःकरण पवित्र है तथा जो मुझमें श्रद्धा रखते हैं, वे ही उस दृश्यको देख पाते हैं। उस दृश्यके प्रभावसे संसार-सागरसे पुरुषोंका उद्धार हो जाता है। भद्रे! वहाँ चारों दिशाओंसे चार धाराएँ गिरती हैं। वहाँका गिरा हुआ जल न अधिक बढ़ता है और न कम ही होता है, उसकी स्थिति सदा समान बनी रहती है। भाद्रपद मासके शुक्ल पक्ष-की द्वादशी तिथिके पुण्यपर्वपर कानोंको मनोहर सुनायी पड़नेवाला उत्तम गीत वहाँ उच्चरित होता रहता है।

वसुंधरे! शूर्पारक नामसे प्रसिद्ध मेरा एक परम पवित्र एवं गुह्य क्षेत्र है, जो परशुराम और श्रीरामके आश्रमोंसे

सुशोभित है। देवि ! वह पावन स्थल समुद्रके तटपर है। मैं वहाँ शाल्मली वृक्षके नीचे निवास करता हूँ। वहाँ पाँच दिनोंतक रहकर मनुष्यको स्नान करना चाहिये। इसके फलस्वरूप मनुष्य ऋषिलोकमें जाकर अरुन्धतीका दर्शन कर सकता है। यदि मेरे शुद्ध सत्कर्ममें संलग्न रहता हुआ वह पुरुष अपने प्राणोंका त्याग करता है, तो ऋषि-लोकको छोड़कर मेरे स्थानमें पहुँच जाता है। महाभागे ! इसकी एक आश्चर्यमयी बात यह है कि यहाँ जो मुझे एक बार प्रणाम करता है, वह बारह वर्षोंतक किये गये नमस्कारके फलका भागी हो जाता है। इस शूर्पारक*-क्षेत्रमें निष्ठावान् पुरुष ही मेरा दर्शन कर पाते हैं, मायासे मोहित व्यक्ति मुझे नहीं देख पाते।

महाभागे ! इसी 'सानन्दूर'क्षेत्रमें मेरा एक परम गुप्त स्थान है। वायव्य (पश्चिम और उत्तरके) कोणमें विराजमान उस क्षेत्रका नाम 'जटाकुण्ड' है। प्रिये ! चारों ओर वह दस योजनतक फैला है। यह स्थान मलयाचलके दक्षिण और समुद्रके उत्तर भागमें है। यहाँ रहकर मानवको पाँच दिनोंतक स्नान करना चाहिये। इसके फलस्वरूप वह व्यक्ति अगस्त्यमुनिके आश्रममें जाकर निश्चय ही आनन्दपूर्वक निवास कर सकता है। यदि मेरा चिन्तन करता हुआ मानव वहाँ प्राण-विसर्जन करता है, तो वह उस स्थानको छोड़कर मेरे लोकमें जानेका पूर्ण अधिकारी बन जाता है। सुश्रोणि ! उस कुण्डकी नौ धाराएँ हैं।

भद्रे ! यह 'सानन्दूर' क्षेत्रकी महिमाका मैंने वर्णन किया। इसे सुननेसे भगवान् श्रीहरिमें भक्ति और श्रद्धा बढ़ती है। यह क्षेत्र गुह्योंमें परम गुह्य और स्थानोंमें सर्वोत्तम स्थान है। सुश्रोणि ! नौ प्रकारकी भक्तियोंमें संलग्न जो व्यक्ति इस 'सानन्दूर'क्षेत्रमें जाता है, उसे मेरे कथनानुसार परमसिद्धि प्राप्त हो जाती है। जो मनुष्य प्रतिदिन प्रसन्नताके साथ इसे पढ़ता अथवा सुनता है, उसके अठारह पीढ़ीके पूर्व पुरुष तर जाते हैं। (अध्याय १५०)

लोहार्गल-क्षेत्रका माहात्म्य

पृथ्वी बोली—विष्णो ! आप जगत्के स्वामी हैं। मैं आपके मुखसे 'सानन्दूर'क्षेत्रकी परम उत्तम एवं रहस्यपूर्ण महिमा सुन चुकी। इसके सुननेसे मुझे परम शान्ति प्राप्त हुई। यदि इससे भिन्न और कोई सुखदायी गुप्त क्षेत्र हो, तो मैं उसे भी जानना चाहती हूँ, आप कृपया उसे भी बतलायें।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! मैं अब तत्त्वपूर्वक एक दूसरे गुप्त क्षेत्रका प्रसङ्ग बताता हूँ, सुनो। 'सिद्धवट' नामक स्थानसे तीस योजनकी दूरीपर म्लेच्छों-का देश है, जिसके मध्य दक्षिण भागमें हिमालयपर्वत स्थित है। वहीं मेरा 'लोहार्गल'† नामसे प्रसिद्ध एक गुप्त क्षेत्र है। वह पंद्रह आयामका क्षेत्र चारों ओर पाँच योजन-तक फैला है। चतुर्दिक् वेष्टित वह स्थान पापियोंके लिये दुर्गम एवं दुःसह है, पर जो सदा मेरे चिन्तनमें तत्पर रहते हैं और जिनका सारा समय पुण्यकार्यमें लगता है, उनके लिये वह परम सुलभ है। भद्रे ! उस स्थानके उत्तर दिशामें मैं निवास करता हूँ। वहाँ सुवर्णमयी मेरी प्रशस्त प्रतिमा है।

वसुंधरे ! एक समय मेरे उस उत्तम स्थानपर सम्पूर्ण दानवोंने आक्रमण कर दिया। मायाके बलसे

* 'शूर्पारक'क्षेत्र आजके बम्बई नगरका 'थाणा' स्थान है। इसका भागवत १०।७९।२० तथा महाभारत २।३१।६५; ३।८५।४३; ११८।८; १२।४९।६६–७, जातक ४।१३८ आदिमें भी वर्णन आया है। एवं इसका सोपार या ओपार नामसे बाइबिलमें भी उल्लेख मिलता है।

† इसका वर्णन अ० १४०।५ आदिमें भी आया है, यह लोहानदीपर स्थित 'लोहाघाट' है। देखिये पृष्ठ २६५की टिप्पणी। 'Lohaghat in kumauon, 3 miles north to the champawat, on the river Loha.' (N. L. Dey. Geog. Dic. of Anc. & Med. India, P. 115)

मानव प्रातःकाल उठकर इसका अध्ययन करता है, वह अपने कुलकी इक्कीस पीढ़ियोंको तार देता है। देवि! द्वारका-क्षेत्रके इस पुनीत प्रसङ्गको मैंने तुम्हें सुना दिया। अब उचित एवं लोकोपकारी अन्य कोई प्रसङ्ग तुम पूछना चाहती हो तो पूछो!

(अध्याय १४९)



सानन्दूर-माहात्म्य

पृथ्वी बोली—प्रभो! आपने कृपापूर्वक मुझे द्वारका-माहात्म्यका वर्णन सुनाया। इस परम पवित्र विषयको सुननेसे मैं कृतकृत्य हो गयी। जगत्प्रभो! यदि इससे भी अधिक कोई गुह्य प्रसङ्ग हो तो वह भी मैं सुनना चाहती हूँ। जनार्दन! यदि मुझपर आपकी अपार दया हो, तो वह भी कहनेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! 'सानन्दूर' नामसे प्रसिद्ध मेरा एक परम गुप्त निवासस्थल है। यह क्षेत्र समुद्रसे उत्तर और मलयगिरिसे दक्षिणकी ओर है। वहाँ मेरी एक मध्यम प्रमाणकी अत्यन्त आश्चर्यमयी प्रतिमा है। जिसे कुछ लोग लोहेकी, कुछ लोग ताँबेकी और कितने व्यक्ति कांस्य (काँसा)धातुसे निर्मित समझते हैं तथा कुछ लोग कहते हैं कि यह सीसेकी बनी है। मेरी उस प्रतिमाको अन्य व्यक्ति प्रस्तरकी बनी हुई भी कहते हैं। भूमे! अब वहाँके स्थानोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। यशस्विनि! इस 'सानन्दूर' नामक मेरे क्षेत्रकी ऐसी महिमा है कि वहाँ जानेवाले मानव संसार-सागरसे पार हो जाते हैं।

वरानने! 'सानन्दूर' क्षेत्रमें संगमन नामका एक मेरा परम उत्तम गुह्य क्षेत्र है। प्रिये! राम और समुद्रके समागमका वह स्थान है। महाभागे! वहाँ स्वच्छ जल-वाला एक कुण्ड है। बहुत-सी वल्लरियों, लताओं और पक्षियोंसे उसकी विचित्र शोभा होती है। समुद्रके संनिकटमें ही कुछ योजन दूरीपर वह स्थान है। अनेक सुगन्धित उत्तम कुमुद एवं कमलके पुष्प उसकी सदा मनोहरता बढ़ाते रहते हैं। मनुष्यको चाहिये कि वहाँ छः दिनोंतक निवास एवं अवगाहन करे। इसके प्रभावसे वह कुछ समय समुद्रके भवनमें रहकर मेरे धाममें चला जाता है।

सुमध्यमे! सानन्दूर क्षेत्रमें 'शक्रसर' नामसे विख्यात मेरा एक परम गुह्य क्षेत्र है। वहाँसे पूर्व भागमें कुछ योजनकी दूरीपर वह स्थान है। उस कुण्डके मध्यभाग-में विषमरूपसे चार धाराएँ गिरती हैं। कल्याणि! उन धाराओंके जल अत्यन्त निर्मल होते हैं। चार दिनोंतक रहकर वहाँ मनुष्यको स्नान करना चाहिये। इस पुण्यसे वह चार लोकपालोंके उत्तम नगरोंमें जानेका अधिकारी होता है। वहाँके तालावका नाम 'शक्रसर' है। यदि वहाँ कोई व्यक्ति प्राण परित्याग करता है। तो वह लोकपालोंका स्थान छोड़कर मेरे धाममें आनन्दपूर्वक निवास करता है। महाभागे! वहाँ जो आश्चर्यकी बात देखी जाती है, उसे कहता हूँ, सुनो। भूमे! जिनका अन्तःकरण पवित्र है तथा जो मुझमें श्रद्धा रखते हैं, वे ही उस दृश्यको देख पाते हैं। उस दृश्यके प्रभावसे संसार-सागरसे पुरुषोंका उद्धार हो जाता है। भद्रे! वहाँ चारों दिशाओंसे चार धाराएँ गिरती हैं। वहाँका गिरा हुआ जल न अधिक बढ़ता है और न कम ही होता है, उसकी स्थिति सदा समान बनी रहती है। भाद्रपद मासके शुक्ल पक्ष-की द्वादशी तिथिके पुण्यपर्वपर कानोंको मनोहर सुनायी पड़नेवाला उत्तम गीत वहाँ उच्चरित होता रहता है।

वसुंधरे! शूर्पारक नामसे प्रसिद्ध मेरा एक परम पवित्र एवं गुह्य क्षेत्र है, जो परशुराम और श्रीरामके आश्रमोंसे

सुशोभित है। देवि ! वह पावन स्थल समुद्रके तटपर है। मैं वहाँ शाल्मली वृक्षके नीचे निवास करता हूँ। वहाँ पाँच दिनोंतक रहकर मनुष्यको स्नान करना चाहिये। इसके फलस्वरूप मनुष्य ऋषिलोकमें जाकर अरुन्धतीका दर्शन कर सकता है। यदि मेरे शुद्ध सत्कर्ममें संलग्न रहता हुआ वह पुरुष अपने प्राणोंका त्याग करता है, तो ऋषिलोकको छोड़कर मेरे स्थानमें पहुँच जाता है। महाभागे ! इसकी एक आश्चर्यमयी बात यह है कि यहाँ जो मुझे एक बार प्रणाम करता है, वह बारह वर्षोंतक किये गये नमस्कारके फलका भागी हो जाता है। इस शूर्पारक*-क्षेत्रमें निष्ठावान् पुरुष ही मेरा दर्शन कर पाते हैं, मायासे मोहित व्यक्ति मुझे नहीं देख पाते।

महाभागे ! इसी 'सानन्दूर'क्षेत्रमें मेरा एक परम गुप्त स्थान है। वायव्य (पश्चिम और उत्तरके) कोणमें विराजमान उस क्षेत्रका नाम 'जटाकुण्ड' है। प्रिये ! चारों ओर वह दस योजनतक फैला है। यह स्थान मलयाचलके दक्षिण और समुद्रके उत्तर भागमें है। यहाँ रहकर मानवको पाँच दिनोंतक स्नान करना चाहिये। इसके फलस्वरूप वह व्यक्ति अगस्त्यमुनिके आश्रममें जाकर निश्चय ही आनन्दपूर्वक निवास कर सकता है। यदि मेरा चिन्तन करता हुआ मानव वहाँ प्राण-विसर्जन करता है, तो वह उस स्थानको छोड़कर मेरे लोकमें जानेका पूर्ण अधिकारी बन जाता है। सुश्रोणि ! उस कुण्डकी नौ धाराएँ हैं।

भद्रे ! यह 'सानन्दूर' क्षेत्रकी महिमाका मैंने वर्णन किया। इसे सुननेसे भगवान् श्रीहरिमें भक्ति और श्रद्धा बढ़ती है। यह क्षेत्र गुह्योंमें परम गुह्य और स्थानोंमें सर्वोत्तम स्थान है। सुश्रोणि ! नौ प्रकारकी भक्तियोंमें संलग्न जो व्यक्ति इस 'सानन्दूर'क्षेत्रमें जाता है, उसे मेरे कथनानुसार परमसिद्धि प्राप्त हो जाती है। जो मनुष्य प्रतिदिन प्रसन्नताके साथ इसे पढ़ता अथवा सुनता है, उसके अठारह पीढ़ीके पूर्व पुरुष तर जाते हैं। (अध्याय १५०)

लोहार्गल-क्षेत्रका माहात्म्य

पृथ्वी बोली—विष्णो ! आप जगत्के स्वामी हैं। मैं आपके मुखसे 'सानन्दूर'क्षेत्रकी परम उत्तम एवं रहस्यपूर्ण महिमा सुन चुकी। इसके सुननेसे मुझे परम शान्ति प्राप्त हुई। यदि इससे भिन्न और कोई सुखदायी गुप्त क्षेत्र हो, तो मैं उसे भी जानना चाहती हूँ, आप कृपया उसे भी बतलायें।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! मैं अब तत्त्वपूर्वक एक दूसरे गुप्त क्षेत्रका प्रसङ्ग बताता हूँ, सुनो। 'सिद्धवट' नामक स्थानसे तीस योजनकी दूरीपर म्लेच्छोंका देश है, जिसके मध्य दक्षिण भागमें हिमालयपर्वत स्थित है। वहीं मेरा 'लोहार्गल'† नामसे प्रसिद्ध एक गुप्त क्षेत्र है। वह पंद्रह आयामका क्षेत्र चारों ओर पाँच योजनतक फैला है। चतुर्दिक् वेष्टित वह स्थान पापियोंके लिये दुर्गम एवं दुःसह है, पर जो सदा मेरे चिन्तनमें तत्पर रहते हैं और जिनका सारा समय पुण्यकार्यमें लगता है, उनके लिये वह परम सुलभ है। भद्रे ! उस स्थानके उत्तर दिशामें मैं निवास करता हूँ। वहाँ सुवर्णमयी मेरी प्रशस्त प्रतिमा है।

वसुंधरे ! एक समय मेरे उस उत्तम स्थानपर सम्पूर्ण दानवोंने आक्रमण कर दिया। मायाके बलसे

* 'शूर्पारक'क्षेत्र आजके बम्बई नगरका 'थाणा' स्थान है। इसका भागवत १०।७९।२० तथा महाभारत २।३१।६५; ३।८५।४३; ११८।८; १२।४९।६६-७, जातक ४।१३८ आदिमें भी वर्णन आया है। एवं इसका सोपार या ओपार नामसे बाइबिलमें भी उल्लेख मिलता है।

† इसका वर्णन अ० १४०।५ आदिमें भी आया है, यह लोहानदीपर स्थित 'लोहाघाट' है। देखिये पृष्ठ २६५की टिप्पणी। 'Lohaghat in kumaon, 3 miles north to the champawat, on the river Loha.' (N. L. Dey. Geog. Dic. of Anc. & Med. India. P. 115)

उन्होंने मेरी अवहेलना भी कर दी थी, तब ब्रह्मा, रुद्र, स्कन्द, इन्द्र, मरुद्गण, आदित्य, वसुगण, वायु, अश्विनीकुमार, चन्द्रमा, बृहस्पति तथा समस्त देव-समुदायको मैंने वहाँ सुरक्षित किया और अपना तेजस्वी सुदर्शनचक्र उठाकर उन निशाचरोंका संहार कर दिया। इससे देवगण आनन्दित हो विचरने लगे। तभीसे मैंने उस स्थानका नाम 'लोहार्गल' रख दिया और प्रबल शक्तिशाली देवसमुदायकी वहाँ प्रतिष्ठा कर अपनी भी प्रतिमा प्रतिष्ठित कर दी। उस स्थानपर मेरी प्रतिष्ठित मूर्तिका जो व्यक्ति यत्नपूर्वक दर्शन करता है, भूमे! वह मेरा भक्त हो जाता है। जो मनुष्य तीन रातोंतक वहाँ निवास करके शास्त्रविहित कर्म करता है और नियमके साथ वहाँके कुण्डमें स्नान करता है, वह कई हजार वर्षोंतक स्वर्गमें जाकर आनन्द भोगता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं। यदि अपने कर्ममें भलीभाँति तत्पर रहनेवाला वह व्यक्ति वहाँ प्राण त्यागता है तो उन स्वर्गलोकोंसे भी आगे मेरे धाममें चला जाता है।

एक बार मैंने एक अश्वकी रचनाकर उसे अखिल आभूषणोंसे अलंकृत किया। वह अश्व श्वेत कमल, शङ्ख अथवा कुन्दपुष्पके समान विद्योतित हो रहा था। धनुष, अक्षसूत्र और कमण्डलु लेकर तथा उसपर आसीन होकर मैंने यात्रा आरम्भ की और चलते-चलते सीधे श्वेतपर्वतपर पहुँचा, जहाँ कुरुवंशी रहते थे। फिर वहाँसे मैंने उन्हें गिराना आरम्भ किया और आकाशतलसे बहुतसे दूसरोंको भी मार गिराया। इस प्रकार सभीको नष्टकर भी वह अश्व आकाशमें शान्त, ज्यों-का-त्यों सुरक्षित तथा सुस्थिर रहा।

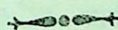
भगवान् वराह बोले—सुमध्यमे! तबसे पुरुष उत्तम कुलके अश्वोंपर चढ़कर स्वर्गतककी यात्रा करने लगे। देवि! 'पञ्चसार' नामसे प्रसिद्ध मेरा एक परम गुप्त क्षेत्र है। वहाँ शङ्खके समान सफेद एवं तीव्र गतिसे बहनेवाली चार धाराएँ गिरती हैं। उस क्षेत्रमें चार दिनोंतक रहकर व्यक्ति 'चैत्राङ्गद'लोकमें जाकर गन्धर्वोंके साथ विहार करता है और वहाँ प्राणत्यागकर प्राणी मेरे लोकको प्राप्त होता है। यहीं 'नारदकुण्ड'-नामसे विख्यात मेरा एक दूसरा उत्तम क्षेत्र है, जहाँ तालवृक्षके समान मोटी पाँच धाराएँ गिरती हैं। उस तीर्थमें एक दिन निवास और स्नान कर पुरुष देवर्षि नारदजीके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त करता है और वहाँ मरकर मेरे धामको जाता है। यहीं एक 'वसिष्ठ'कुण्ड है, जिसमें तीन धाराएँ गिरती हैं। वहाँ पाँच रात स्नान तथा निवास कर मनुष्य वसिष्ठजीके लोकमें आनन्द प्राप्त करता है। मेरे कर्मोंमें लगा वह पुरुष यदि यहाँ प्राण छोड़ता है तो उस लोकको छोड़कर मेरे धाममें पहुँच जाता है।

देवि! इस 'लोहार्गल'क्षेत्रमें मेरा एक पञ्चकुण्ड नामक प्रधान तीर्थ है, जहाँ हिमालयसे निकलकर पाँच धाराएँ गिरती हैं। वहाँ पाँच दिनोंतक निवास एवं स्नानकर मनुष्य 'पञ्चशिख'स्थानपर निवास करता है। यदि इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर वह मेरा भक्त वहाँ प्राण त्यागता है तो वह मेरे लोकको प्राप्त कर लेता है।

इसी 'लोहार्गल'-क्षेत्रमें 'सप्तर्षिकुण्ड'संज्ञक एक अन्य तीर्थ है। वहाँके स्नानके पुण्यसे पुरुष ऋषियोंके लोकोंमें जाकर हर्षपूर्वक निवास करता है। देवि! वहीं 'अग्निसर' नामसे विख्यात एक कुण्ड है, जहाँ आठ रातोंतक रहकर तथा उस कुण्डमें स्नानकर प्राणी सभी सुखोंका उपभोगकर अङ्गिरामुनिके लोकको प्राप्त होता है, इसमें कोई संशय नहीं। यदि मुझसे सम्बन्धित कर्ममें तत्पर वह पुरुष वहाँ प्राण छोड़ता है तो अग्निके लोकका त्यागकर मेरे धामको प्राप्त होता है।

देवि! उसी 'लोहार्गल'क्षेत्रमें 'उमाकुण्ड'नामसे एक प्रसिद्ध स्थान है। यह वह स्थान है, जहाँ भगवान्

शंकरकी परमसुन्दरी पत्नी गौरीका प्राकट्य हुआ था। वहाँ दस रातोंतक रहकर मनुष्यको स्नान करना चाहिये। इससे उसे गौरीका दर्शन सुलभ होता है और उनके लोकमें वह सानन्द निवास करता है। यदि आयु क्षीण होनेपर वह मनुष्य उस स्थानपर प्राणका त्याग करता है तो उस लोकसे हटकर मेरे धाममें शोभा पाता है। भगवान् शंकरके साथ उमादेवीका यहीं विवाह हुआ था। इसमें हंस, कारण्डव, चक्रवाक, सारस आदि पक्षी सदा निवास करते हैं। हिमालय पर्वतसे होकर यहाँ निर्मल जलकी तीन धाराएँ गिरती हैं। मनुष्य बारह दिनोंतक यहाँ निवास और स्नान करे तो वह रुद्रलोकमें आनन्द करता है। यदि वहाँ वह अत्यन्त कठिन कर्म करके प्राणोंको छोड़ता है, तो रुद्रलोकसे पृथक् होकर मेरे स्थानकी यात्रा करता है। वहीं 'ब्रह्मकुण्ड'नामक स्थानमें चारों वेदोंकी उत्पत्ति हुई थी। इसीके उत्तर-पार्श्वमें सुवर्णके समान रंगवाली एक स्वच्छ धारा गिरती है, जहाँ ऋग्वेदकी ध्वनि हुई थी। यहीं पश्चिमभागमें यजुर्वेदसे युक्त धारा तथा दक्षिण-पार्श्वमें अथर्ववेदसे समन्वित धारा गिरती है। सात रातोंतक रहकर जो मनुष्य वहाँ स्नान करता है, वह ब्रह्माके लोकको प्राप्त करता है। यदि अहंकारशून्य होकर वह व्यक्ति वहाँ प्राण त्यागता है तो उस लोकका परित्याग करके मेरे लोकमें आ जाता है। महाभागे! मेरे इस 'लोहार्गल'क्षेत्रकी कथा बड़ी ही रहस्यात्मक है। सिद्धि चाहनेवाले मनुष्यको वहाँ अवश्य जाना चाहिये। वरानने! वह क्षेत्र पचीस योजनकी दूरीमें चारों ओर फैला है और स्वयं ही प्रकट हुआ है। यह विषय आख्यानोंमें परम आख्यान, धर्मोंमें सर्वोत्कृष्ट धर्म तथा पवित्रोंमें परम पवित्र है। जो श्रद्धालु पुरुष इसका पाठ करते हैं अथवा सुनते हैं, उनके माता एवं पिता—इन दोनों कुलोंके दस-दस पूर्वपुरुषोंका संसार-सागरसे उद्धार हो जाता है। (अध्याय १५१)



मथुरातीर्थकी प्रशंसा

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! भगवान् श्रीहरिके द्वारा 'लोहार्गल'क्षेत्रकी महिमा सुनकर पृथ्वीको बड़ा आश्चर्य हुआ और वे बोलीं—

प्रभो! आपकी कृपासे मैंने 'लोहार्गल'क्षेत्रका माहात्म्य सुना। यदि इससे भी श्रेष्ठ तीर्थोंमें सर्वोत्तम एवं सबके लिये कल्याणकारी कोई तीर्थ हो तो उसे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! मथुराके समान मेरे लिये दूसरा कोई भी तीर्थ आकाश, पाताल एवं मर्त्य—इन तीनों लोकोंमें कहीं प्रिय प्रतीत नहीं होता। इसी पुरीमें मेरा श्रीकृष्णावतार हुआ, अतः यह पुष्कर, प्रयाग, उज्जैन, काशी एवं नैमिषारण्यसे भी बढ़कर है। वहाँ विधिपूर्वक निवास करनेवाला मानव निःसंदेह आवागमनसे मुक्त हो जाता है। माघमासके उत्तम पर्वपर प्रयागमें निवास करनेसे मनुष्यको जो पुण्य-फल प्राप्त होता है, वह मथुरामें एक दिन रहनेपर ही मिल जाता है। इसी प्रकार वाराणसीमें हजार वर्षोंतक निवास करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह मथुरामें एक क्षण निवास करनेपर सुलभ हो जाता है। वसुंधरे! कार्तिक मासमें पुष्करक्षेत्रके निवासका जो सुविख्यात पुण्य (फल) है, वही पुण्य मथुरामें निवास करनेवाले जितेन्द्रिय पुरुषको सहज प्राप्त हो जाता है। यदि कोई 'मथुरामण्डल'का नाम भी उच्चारण करता है और उसे दूसरा कोई सुन लेता है तो सुननेवाला भी सब पापोंसे छूट जाता है। भूमण्डलपर समुद्रपर्यन्त जितने तीर्थ एवं सरोवर हैं, वे सभी मथुराके अन्तर्गत स्थित हैं, क्योंकि साक्षात् भगवान् श्रीहरि

ही गुप्तरूपसे वहाँ निरन्तर निवास करते हैं । कुब्जाम्रक, सौकरव और मथुरा—ये परम विशिष्ट तीर्थ हैं, जहाँ योग-तपकी साधना न रहनेपर भी इन स्थानोंके निवासी सिद्धि पा जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है ।

देवि ! द्वापरयुग आनेपर मैं वहाँ राजा ययातिके वंशमें अवतार ग्रहण करूँगा और मेरी क्षत्रिय जाति होगी । उस समय मैं चार मूर्ति—कृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध बनकर चतुर्व्यूहके रूपमें सौ वर्षोंतक वहाँ निवास करूँगा। मेरे ये चारों विग्रह क्रमशः चन्दन, सुवर्ण, अशोक एवं कमलके सदृश रूपवाले होंगे । उस समय धर्मसे द्वेष करनेवाले कंस आदि महान् भयंकर बत्तीस दैत्य उत्पन्न होंगे, जिनका मैं संहार करूँगा, वहाँ सूर्यकी पुत्री यमुनाका सुन्दर प्रवाह सदा संनिकट शोभा पाता है । मथुरामें मेरे और बहुत-से गुप्त तीर्थ हैं । देवि ! उन तीर्थोंमें स्नान करनेपर मनुष्य मेरे लोकमें प्रतिष्ठित होता है और वहाँ मरनेपर वह चार भुजाओंसे युक्त होकर मेरा स्वरूप बन जाता है ।

देवि ! मथुरामण्डलमें 'विश्रान्ति'नामका एक तीर्थ है, जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है । वहाँ स्नान करनेवाला मानव मेरे लोकमें रहनेका स्थान पाता है और वहाँ मेरी प्रतिमाका दर्शनकर सम्पूर्ण तीर्थोंके अवगाहनका फल प्राप्त करता है । जो दो बार उसकी प्रदक्षिणा कर लेता है, वह विष्णुलोकका भागी होता है । इसी प्रकार एक कनखल नामक अत्यन्त गुह्य स्थान है, जहाँ केवल स्नान करनेसे ही मनुष्य स्वर्ग-सुखका अधिकारी हो जाता है । ऐसे ही 'विन्दुक' नामसे विख्यात मेरा एक परम गोप्य क्षेत्र है । देवि ! उस क्षेत्रमें स्नान करनेवाला व्यक्ति मेरे लोकमें प्रतिष्ठा पाता है ।

वसुंधरे ! अब उस तीर्थमें घटित एक प्राचीन इतिहास सुनो । पाञ्चालदेशमें प्रसिद्ध काम्पिल्य* नगरमें राजा ब्रह्मदत्त रहते थे । वहीं तिन्दुक नामक एक नाई रहता था । बहुत दिनोंतक यहाँ निवास करनेके बाद उसका पूरा परिवार क्षीण हो गया और वह पीड़ित होकर वहाँसे मथुरा चला आया और एक ब्राह्मणके घर रहने लगा । वहाँ वह ब्राह्मणके सैकड़ों कार्य करते हुए प्रतिदिन यमुना-स्नान भी करता । इस प्रकार दीर्घकाल व्यतीत होनेपर उसकी इसी तीर्थमें मृत्यु हुई, जिससे दूसरे जन्ममें वह जातिस्मर ब्राह्मण हुआ ।

इसी मथुरामें एक 'सूर्यतीर्थ' है, जो सब पापोंसे मुक्त करनेवाला है, जहाँ विरोचनपुत्र बलिने पहले सूर्यदेवकी उपासना की थी । उसकी उपासनासे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्यदेवने तपका कारण पूछा । इसपर बलिने कहा—'देवेश्वर ! पातालमें मेरा निवास है । इस समय मैं राज्यसे वञ्चित हो गया हूँ एवं धनहीन हूँ ।' इसपर भगवान् सूर्यने बलिको अपने मुकुटसे चिन्तामणि निकाल-कर दिया, जिसे लेकर बलि पाताललोक चले गये । वहाँ स्नान करनेसे मनुष्यके समस्त पाप समाप्त हो जाते हैं और वहाँ मरनेपर उस प्राणीको मेरे लोककी प्राप्ति होती है । देवि ! प्रत्येक रविवारके दिन, संक्रान्तिके अवसरपर अथवा सूर्य एवं चन्द्रग्रहणमें उस तीर्थमें स्नान करनेसे राजसूय यज्ञके समान फल मिलता है । ध्रुवने भी यहीं स्नानादिपूर्वक कठोर तपस्या की थी, जिससे वह आज भी 'ध्रुवलोक'में प्रतिष्ठा पाता है । वसुधे ! जो पुरुष इस 'ध्रुवतीर्थ'में श्रद्धा रखता है, उसके सभी पितर तर जाते हैं । 'ध्रुवतीर्थ'के दक्षिण भागमें तीर्थराजका स्थान है । देवि ! वहाँ अवगाहन कर मानव मेरा धाम प्राप्त करता है । देवि ! मथुरामें 'कोटितीर्थ' नामक एक स्थान है, जिसका दर्शन देवताओं-के लिये भी दुर्लभ है । वहाँ स्नान एवं दान करनेसे मेरे धाममें प्रतिष्ठा मिलती है । उस 'कोटितीर्थ'में स्नान करके पितरों एवं देवताओंका तर्पण करना चाहिये ।

* फर्रुखाबाद जिलेका 'कम्पिल' नगर ।

इससे पितामह आदि सभी पितर तर जाते हैं। उस तीर्थमें स्नान करनेवाला मनुष्य ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा पाता है। यहीं पितरोंके लिये भी दुर्लभ एक 'वायुतीर्थ' है, जहाँ पिण्डदान करनेसे पुरुष पितृलोकमें जाता है। देवि! गयामें पिण्डदान करनेसे मनुष्यको जो फल मिलता है, वही फल यहाँ ज्येष्ठमें पिण्ड देनेसे प्राप्त हो जाता है—इसमें कोई संशय नहीं। इन बारह तीर्थोंका केवल स्मरण करनेसे भी पाप दूर हो जाते हैं और मनुष्यकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

(अध्याय १५२)

मथुरा, यमुना और अक्रूरतीर्थोंके माहात्म्य

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! 'शिवकुण्ड'के उत्तर 'नवक'-नामक एक पवित्र क्षेत्र है, जहाँ स्नान करनेमात्रसे ही प्राणीको सौभाग्य सुलभ हो जाता है और पापी पुरुष भी मेरे धाममें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

अब इस तीर्थकी एक पुरानी घटना सुनो। पहले नैमिषारण्यमें एक दुष्ट निषाद रहता था। एक बार वह किसी मासकी चतुर्दशीको मथुरा आया और उसके मनमें यमुनामें तैरनेकी इच्छा उत्पन्न हुई। यद्यपि वह यमुनामें तैरता हुआ 'संयमन' तीर्थतक पहुँच गया, फिर भी दैवयोगसे वह उससे बाहर न निकल पाया और वहीं उसका प्राणान्त भी हो गया। दूसरे जन्ममें वही (निषाद) क्षत्रियवंशमें उत्पन्न होकर सम्पूर्ण भूमण्डलका स्वामी बना, जिसकी राजधानी सौराष्ट्रमें थी और कालान्तरमें वही 'यक्ष्मधनु' नामसे प्रख्यात हुआ। वह अपने धर्म (क्षात्रधर्म तथा राजधर्म)का भलीभाँति पालन करता तथा अपने राज्यकी रक्षा और प्रजाका रञ्जन करनेमें समर्थ और सफल था। उसका विवाह काशिराजकी सुन्दरी कन्या पीवरीसे हुआ। यक्ष्मधनुकी और भी रानियाँ थीं, किंतु सभी रानियोंमें पीवरी ही उसे सबसे अधिक प्रिय थी। वह उसके साथ भवनों, उद्यानों, उपवनों और नदी-तटोंपर विहार करता हुआ राज्यसुखका उपभोग करने लगा। कालान्तरमें उसके सात पुत्र और पाँच पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। इस प्रकार यक्ष्मधनुके सतहत्तर वर्ष बीत गये। एक समय जब वह शयन कर रहा था तो अचानक उसे मथुराके संयमन-तीर्थकी स्मृति हो आयी और उसके मुँहसे 'हा! हा'! शब्द निकलने लगा। इसपर पासमें सोयी उसकी पटरानी पीवरीने कहा—'राजन्! आप यह क्या कह रहे हैं?' राजाने उत्तर दिया—'प्रिये! जो किसी मादक वस्तु आदिके सेवनसे बेसुध रहता है, नींदमें रहता है अथवा जिसका चित्त विक्षिप्त रहता है, उसके मुखसे असम्बद्ध शब्दोंका निकल जाना स्वाभाविक है। मैं नींदमें था, इसीसे ये शब्द निकल गये। अतः इस विषयमें तुम्हें नहीं पूछना चाहिये।' फिर रानीके बार-बार आग्रह करनेपर यक्ष्मधनुने कहा—'शुभानने! यदि मेरी बात तुम्हें सुननी आवश्यक जान पड़ती है तो हम दोनों मथुरापुरी चलें। वहीं मैं तुम्हें यह बात बताऊँगा। ग्राम, रत्न, खजाना और जनताकी सँभालके लिये पुत्रको राज्यपर अभिषिक्त कर देना चाहिये। देवि! विद्याके समान कोई आँख नहीं है, धर्मके समान कोई बल नहीं है, रागके समान कोई दुःख नहीं है और त्यागसे बढ़कर दूसरा कोई सुख नहीं है। संसारका संग्रह करनेवालेकी अपेक्षा त्यागी पुरुष सदैव श्रेष्ठ माना गया है!'

वसुंधरे! राजा यक्ष्मधनुने इस प्रकार अपनी पत्नी पीवरीसे सलाहकर अपने ज्येष्ठ पुत्रका राज्याभिषेक किया और उसके साथ श्रेष्ठ पुरुषों (मन्त्री आदि)के रहनेकी व्यवस्था कर दी। फिर पुरवासी जनतासे विदा ले हाथी, घोड़ा, कोष और कुछ पैदल चलनेवाले पुरुषोंको साथ लेकर वे दोनों मथुराके लिये चल पड़े और बहुत दिनोंके बाद वे मथुरा पहुँचे। मथुरापुरी उस समय देवताओंकी पुरी 'अमरावती' जैसी प्रतीत हो रही थी। बारह तीर्थोंसे सम्पन्न

उस पुण्यमयी पुरीने मानो पापोंको नष्ट करनेके लिये अपनेको मनोहर बना लिया हो।

वसुंधरे! जब राजा यक्ष्मधनु और पीवरीने मथुरापुरीका दर्शन किया तो उनका हृदय प्रसन्न हो गया। फिर उस रानीने उस रहस्यको पूछा, जिसके लिये वे मथुरा आये थे। इसपर यक्ष्मधनुने कहा—'पहले तुम अपनी रहस्यपूर्ण बात बताओ, तब मैं बताऊँगा।'

पीवरी बोली—पहले मेरा निवास गङ्गाके तटपर था, किंतु वहाँ भी मेरा नाम 'पीवरी' ही था। एकबार मैं कार्तिक द्वादशीके दिन इस मथुरापुरीके दर्शनके लिये यहाँ आयी। उसी समय नावद्वारा यमुनाको पार करते समय मैं अचानक 'धारापतन'तीर्थके गहरे जलमें गिर गयी, जिससे मेरे प्राण निकल गये। इसी तीर्थके प्रभावसे मेरा काशी-नरेशके यहाँ जन्म तथा फिर आपसे विवाह हुआ।'

वसुंधरे! इसके बाद राजा यक्ष्मधनुने जिस प्रकार संयमन-तीर्थमें उसकी मृत्यु हुई थी, वह सब कथा पीवरीसे सुनायी। अब वे दोनों मथुरामें ही रहने लगे और यमुनामें स्नान करनेका नियम बना लिया। प्रतिदिन नियमसे वे मेरा दर्शन करते। कालान्तरमें वहीं शरीर त्यागकर सभी बन्धनोंसे मुक्त होकर वे मेरे लोकको प्राप्त हुए।

देवि! उसी मथुरामें 'मधुवन' नामक एक अत्यन्त सुन्दर स्थान है और यहीं एक 'कुन्दवन'के नामसे मेरा प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ जानेपर ही व्यक्ति सफल-मनोरथ हो जाता है। यहीं वनोंमें प्रधान एक 'काम्यकवन' है, जहाँ स्नान करनेसे मनुष्य मेरे धामको प्राप्त होता है। यहाँके 'विमल-कुण्ड' तीर्थमें स्नान करनेसे प्राणीके सम्पूर्ण पाप धुल जाते हैं और जो वहीं प्राणोंका परित्याग करता है, वह मेरे लोकमें प्रतिष्ठा पाता है। पाँचवें वनको 'बकुलवन' कहते हैं। वहाँ स्नान कर मनुष्य 'अग्निलोक'को प्राप्त करता है। यमुनाके उस पार 'भद्रवन' नामका छठा वन है। मेरी भक्तिमें परायण रहनेवाले पुरुष ही वहाँ जा पाते हैं और उन्हें नागलोककी प्राप्ति होती है। 'खदिर'वन सातवाँ है और आठवाँ 'महावन'। नवें वनका नाम 'लौहजङ्घवन' है, क्योंकि लौहजङ्घ ही इसकी रक्षा करता था। दसवें वनका नाम 'बिल्ववन' है। वहाँ जाकर प्राणी ब्रह्माजीके लोकमें प्रतिष्ठा पाता है। 'भाण्डीर' वन ग्यारहवाँ है, जिसके दर्शनमात्रसे मनुष्य माताके गर्भमें नहीं आता। बारहवाँ वन 'वृन्दावन' है, जहाँकी अधिष्ठात्री वृन्दादेवी हैं। देवि! समस्त पापोंका संहार करनेवाला यह स्थान मुझे बहुत प्रिय है। वसुंधरे! वृन्दावन जाकर जो गोविन्दका दर्शन करते हैं, उन्हें यमपुरीमें कदापि नहीं जाना पड़ता। उनको पुण्यात्मा पुरुषोंकी गति सहज सुलभ हो जाती है।

यमुनेश्वर-तीर्थके 'धारापतन'में स्नानकरनेपर मनुष्य स्वर्गका आनन्द पाता है और यहाँ प्राण त्यागनेवाला मेरे धामको जाता है। इसके आगे नागतीर्थ एवं 'घण्टाभरणतीर्थ' है, जिसमें स्नानकर मनुष्य सूर्यलोकमें जाता है। वसुधे! यहाँ 'सोमतीर्थ'का वह पवित्र स्थान है, जहाँ द्वापरमें चन्द्रमा मेरा दर्शन करते हैं। इसमें अभिषेककर मनुष्य चन्द्रलोकमें निवास करता है। यहीं जहाँ सरस्वती नदी ऊपरसे उतरी है, वह पवित्र स्थान सम्पूर्ण पापोंका हरनेवाला है।

मथुराके पश्चिममें ऋषिगण निरन्तर मेरी पूजा करते हैं। प्राचीन कालमें सृष्टिके अवसरपर ब्रह्माद्वारा

मनसे निर्मित होनेके कारण इसका नाम 'मानसतीर्थ' पड़ गया है। यहाँ जो स्नान करते हैं, उन्हें स्वर्ग मिलता है। यहीं भगवान् श्रीगणेशका एक पुण्यमय तीर्थ है, जिसके प्रभावसे पाप दूरसे ही भाग जाते हैं। यहाँ चतुर्थी, अष्टमी और चतुर्दशीके दिन स्नान करनेसे मनुष्योंके सामने श्रीगणेशजीके प्रभावसे दुःख पासमें नहीं फटकते। विद्या आरम्भ की जाय अथवा यज्ञ एवं दान आदिकी क्रियाएँ सम्पन्न करनी हों तो सभी समयोंमें गौरीनन्दन गणेशजी धर्मकर्ता पुरुषके कार्यको सदा निर्विघ्नपूर्ण कर देते हैं। यहीं आधा कोसके परिमाणवाला परम दुष्कर 'शिवक्षेत्र' है, जहाँ रहकर भगवान् शंकर इस मथुरापुरीकी निरन्तर रक्षा करते हैं। उसके जलमें स्नान और उस जलका पानकर मनुष्य मथुरावासका फल प्राप्त करता है।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! अब मैं एक दूसरे दुर्लभ 'अक्रूर' तीर्थका वर्णन करता हूँ। अयन,* विषुव† तथा विष्णुपदीके‡ शुभ अवसरपर मैं श्रीकृष्णरूपमें वहाँ स्थित रहता हूँ। यहाँ सूर्यग्रहणके समय स्नान करनेसे मनुष्य 'राजसूय' एवं 'अश्वमेध' यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। अब इस तीर्थके एक बहुत पुराने इतिहासको सुनो। पहले यहाँ सुधन नामक एक धनी एवं भक्त वैश्य रहता था। वह स्त्री-पुत्र और अपने बन्धुओंके साथ सदा मेरी उपासनामें लगा रहता तथा गन्ध, पुष्प, धूप तथा दीप अर्पण करके नित्य नियमानुसार मुझ श्रीहरिकी पूजा करता था। वह प्रायः एकादशीको इसी अक्रूरतीर्थमें आकर मेरे सामने नृत्य करता।

एक बार वह रात्रिजागरण, नृत्य तथा कीर्तन आदि करनेके उद्देश्यसे मेरे पास आ रहा था कि किसी भयंकर ब्रह्मराक्षसने उसके पैर पकड़ लिये। उसकी आकृति बड़ी डरावनी थी तथा बाल ऊपरको उठे हुए थे। उसने सुधनसे कहा—'वैश्य! आज मैं तुम्हें खाकर तृप्ति प्राप्त करूँगा।' इसपर सुधन बोला—'राक्षस! बस, तुम थोड़ी देर प्रतीक्षा करो, मैं तुम्हें पर्याप्त भोजन दूँगा और बादमें तुम मेरे इस शरीरको भी भक्षण कर लेना। पर इस समय मैं देवेश्वर श्रीहरिके सामने नृत्य एवं जागरण करनेके लिये जा रहा हूँ। मैं अपना यह व्रत पूरा कर प्रातः सूर्यके उदय होते ही तुम्हारे पास वापस आ जाऊँगा तब तुम मेरे इस शरीरको अवश्य खा लेना। भगवान् नारायणकी प्रसन्नताके लिये किये जानेवाले मेरे इस व्रतको भङ्ग करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है।' इसपर ब्रह्मराक्षस आदरपूर्वक मधुर वाणीसे बोला—'साधो! तुम यह असत्य बात क्यों कह रहे हो? भला, ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो राक्षसके मुखसे छूटकर पुनः स्वेच्छासे उसके पास लौट आये।'

इसपर वैश्यवर बोला—'सम्पूर्ण संसारकी जड़ सत्य है। सत्यपर ही अखिल जगत् प्रतिष्ठित है। वेदके पारगामी ऋषिलोग सत्यके बलपर ही सिद्धि प्राप्त करते हैं। यद्यपि पूर्वजन्मके कर्मवश मेरी उत्पत्ति धनी वैश्यकुलमें हुई है, फिर भी मैं निर्दोष हूँ। ब्रह्मराक्षस! मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि वहाँ जागरण और नृत्य करके सुखपूर्वक मैं अवश्य लौट आऊँगा। सत्यसे ही कन्याका दान होता है और ब्राह्मण सदा सत्य बोलते हैं। सत्यसे ही राजाओंका राज्य चलता है। सत्यसे ही पृथ्वी सुरक्षित है। सत्यसे ही स्वर्ग सुलभ होता है और

*-सूर्यके कर्कराशिमें आनेपर दक्षिणायन एवं मकर-राशिमें आनेपर उत्तरायण होता है। सूर्यकी इस षाण्मासिक गति एवं स्थितिको 'अयन' कहते हैं।

†-जिस समय दिन और रातका मान बराबर होता है—उसका नाम 'विषुव' है। यह स्थिति प्रायः २१ मार्च और २३ सितम्बरको होती है।

‡-वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ राशियोंकी सूर्य-संक्रान्तियोंका नाम 'विष्णुपदी' है।

सत्यसे ही मोक्ष मिलता है । अतः यदि मैं तुम्हारे सामने न आऊँ तो पृथ्वीका दान करके पुनः उसका उपभोग करनेसे जो पाप होता है, मैं उसका भागी बनूँ । अथवा क्रोध या द्वेषवश जो पत्नीका त्याग करता है, वह पाप मुझे लगे । यदि मैं पुनः तुम्हारे पास न आऊँ तो एक साथ बैठकर भोजन करनेवाले व्यक्तियोंमें जो पङ्क्तिभेदका पाप करता है, मुझे वह पाप लगे । अथवा यदि मैं फिर तुम्हारे पास पुनः न आऊँ, तो एक बार कन्यादान करके फिर दूसरेको दान करने अथवा ब्राह्मण-की हत्या करने, मदिरा पीने, चोरी करने या व्रत भङ्ग करनेपर जो बुरी गति मिलती है, वह गति मुझे प्राप्त हो ।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! सुधनकी बात सुनकर वह ब्रह्मराक्षस संतुष्ट हो गया । उसने कहा—'भाई ! तुम वन्दनीय हो और अब जा सकते हो ।' इसपर वह कलामर्मज्ञ वैश्य मेरे सामने आकर नृत्य-गान करने लगा और प्रातःकालतक नृत्य करता रहा । दूसरे दिन उसने **'ॐ नमो नारायणाय'** प्रातःकालका उच्चारण कर यमुनामें गोता लगाया और मथुरा पहुँचकर मेरे दिव्य रूपका दर्शन किया । देवि ! उसी समय मैं एक दूसरा रूप धारणकर उसके सामने प्रकट हुआ और उससे मैंने पूछा—'आप ! इतनी शीघ्रतासे कहाँ जा रहे हैं ?' इसपर सुधनुने कहा—'मैं अपनी प्रतिज्ञानुसार ब्रह्मराक्षसके पास जा रहा हूँ ।' उस समय मैंने उसे मना किया और कहा—'अनघ ! तुम्हें वहाँ नहीं जाना चाहिये । जीवन रहनेपर ही धर्मानुष्ठान सम्भव है । इसपर उस वैश्यने उत्तर दिया—'महाभाग ! मैं ब्रह्मराक्षसके पास अवश्य जाऊँगा, जिससे मेरी (सत्यकी) प्रतिज्ञा सुरक्षित हो । जगत्प्रभु भगवान् विष्णुके निमित्त जागरण और नृत्य करनेका मेरा व्रत था । वह नियम सुखपूर्वक सम्पन्न हो गया ।' इस प्रकार कहकर वह वहाँसे चला गया और ब्रह्मराक्षससे कहा—'राक्षस ! तुम अब इच्छानुसार मेरे इस शरीरको खा जाओ ।'

इसपर ब्रह्मराक्षसने कहा—'वैश्यवर ! तुम वस्तुतः सत्य एवं धर्मका पालन करनेवाले साधुपुरुष हो, तुम्हारा कल्याण हो । मैं तुम्हारे व्यवहारसे संतुष्ट हूँ । महाभाग ! अब तुम अपने नृत्य एवं जागरणके पूरे पुण्य-को मुझे देनेकी कृपा करो । तुम्हारे प्रभावसे मेरा भी उद्धार हो जायगा ।'

'राक्षस ! मैं तुम्हें अपने रात्रिजागरण एवं नृत्यका पुण्य नहीं दे सकता । आधीरात, एक प्रहर तथा आधे प्रहरके भी जागरणका पुण्य मैं तुम्हें नहीं दे सकता—वैश्यने कहा ।'

'तब बस एक नृत्यका ही पुण्य मुझे देनेकी दया करो ।'—राक्षस बोला ।

'मैं तुम्हें पुण्य तो यह भी नहीं दे सकता । पर जो बात कह चुका हूँ, उसके लिये आ गया हूँ । साथ ही मैं यह भी जानना चाहता हूँ कि तुम किस कर्मके दोषसे ब्रह्मराक्षस हुए ? यदि यह बहुत गोप्य न हो तो मुझे बता दो ।'—वैश्यने कहा ।

अब ब्रह्मराक्षसके मुखपर हँसी छा गयी । उसने कहा—'वैश्यवर ! तुम ऐसी बात क्यों कहते हो । मैं तो तुम्हारे पासका ही रहनेवाला हूँ । मेरा नाम 'अग्निदत्त' है । मैं पूर्वजन्ममें वेदाभ्यासी ब्राह्मण था । किंतु चौर्यदोषसे मुझे ब्रह्मराक्षस होना पड़ा । दैवयोगसे तुमसे भेंट हो गयी है । अब तुम मेरा उपकार करनेकी कृपा करो । वैश्यवर ! तुम यदि एक ही 'नृत्य एवं गान'का पुण्य मुझे दे दो तो मेरा उद्धार हो जाय ।' वैश्यने कहा—'राक्षस ! मैंने एक नृत्यके पुण्यका फल तुम्हें दे दिया ।' फिर तो उस एक नृत्यके पुण्यके प्रतापसे उसका तत्काल उद्धार हो गया और ब्रह्मराक्षसकी योनिसे सदाके लिये मुक्ति मिल गयी ।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! उसी समय वहाँ ब्रह्मराक्षसकी जगह शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किये मैं (भगवान् श्रीहरि) प्रकट हो गया। उस समय मेरे (श्रीविष्णुरूपके अपने) श्रीविग्रहकी आभा परम दिव्य थी। भक्तोंकी याचना पूर्ण करनेवाले (श्रीविष्णुरूपमें) मैंने उस वैश्यसे मधुर वाणीमें कहा—'तुम अब सपरिवार उत्तम विमानपर चढ़कर मेरे दिव्य विष्णुलोकको जाओ।'

वसुंधरे ! इस प्रकार कहकर मैं (भगवान् श्रीहरि) वहीं अन्तर्धान हो गया और सुधन भी अपने परिवारके सहित दिव्य विमानद्वारा सशरीर विष्णुलोकमें चला गया। देवि ! 'अक्रूर-तीर्थ'की यह महिमा मैंने तुम्हें बतला दी। उस कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिको जो तीर्थमें स्नान करता है, उसे 'राजसूययज्ञ'का फल प्राप्त होता है और वहाँ श्राद्ध तथा वृषोत्सर्ग करनेवाला पुरुष अपने कुलके सभी पितरोंको तार देता है।

(अध्याय १५३—५५)

मथुरामण्डलके 'वृन्दावन' आदि तीर्थ और उनमें स्नान-दानादिका महत्त्व

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! अब मैं मथुरा-मण्डलके 'वत्स-क्रीडन'नामक तीर्थका वर्णन करता हूँ। यहाँ लाल रंगकी बहुत-सी शिलाएँ हैं। यहाँ स्नान करनेमात्रसे मनुष्य वायुदेवके लोकको प्राप्त होता है। यहीं दूसरा एक 'भाण्डीर' वन भी है, जिसकी साखू, ताल-तमाल, अर्जुन, इङ्गुदी, पीलुक, करील तथा लाल फूलवाले अनेक वृक्ष शोभा बढ़ाते हैं। यहाँ स्नान करनेसे मनुष्यके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं और वह इन्द्रके लोकको प्राप्त होता है। वल्लरियों तथा लताओंसे आच्छादित यहाँका रमणीय वृन्दावन देवता, दानवों और सिद्धोंके लिये भी दुर्लभ है। गायों और गोपालोंके साथ मैं यहाँ (कृष्णावतारमें) क्रीडा करता हूँ। यहाँ एक रात निवास तथा कालिन्दीमें अवगाहनकर मनुष्य गन्धर्वलोकको प्राप्त होता है और वहाँ प्राणोंका त्याग कर मनुष्य मेरे धामको प्राप्त होता है।

वसुंधरे ! यहाँ एक दूसरा तीर्थ 'केशिस्थल' है। 'वृन्दावन'के इसी स्थानपर मैंने केशीदैत्यका वध किया था। उस 'केशीतीर्थ'में पिण्डदान करनेसे गयामें पिण्ड देनेके समान ही फल मिलता है। यहाँ स्नान-दान और हवन करनेसे 'अग्निष्टोम'यज्ञका फल मिलता है। यहाँ द्वादशादित्यतीर्थपर यमुना लहराती है, जहाँ कालियनाग आनन्द पूर्वक निवास करता था। यहीं (कालियह्रदमें) मैंने उसका दमन और द्वादश आदित्योंकी स्थापना की थी। इस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है और जो व्यक्ति यहाँ प्राणोंका परित्याग करता है, वह मेरे धाममें आ जाता है। इस स्थानका नाम 'हरिदेव' क्षेत्र और 'कालियह्रद' है। इस 'हरिदेव'क्षेत्रके उत्तर और 'कालियह्रद'के दक्षिण-भागमें जिनका पाञ्चभौतिक शरीर छूटता है, उनका संसारमें पुनरावर्तन नहीं होता*।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! यमुनाके उस पार 'यमलार्जुन' नामक तीर्थ है, जहाँ शकट (भाण्डोंसे भरी हुई गाड़ी) भग्न और भाण्ड छिन्न-भिन्न हुए थे। वहाँ स्नान और उपवास करनेका फल अनन्त है। वसुंधरे ! ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिके दिन उस तीर्थमें स्नान और दान करनेसे महान् पातकी मनुष्यको भी परमगति प्राप्त होती है। इन्द्रियनिग्रही मनुष्य यमुनाके जलमें स्नान करनेपर पवित्र हो जाता है और सम्यक् प्रकारसे श्रीहरिकी अर्चना करके वह परम गति प्राप्त कर सकता है। देवि ! स्वर्गमें गये हुए पितृगण यह गाते हैं—'हमारे कुलमें उत्पन्न जो पुरुष मथुरामें निवास करके कालिन्दीमें स्नान करेगा और भगवान्

* ग्रीक ग्रन्थोंमें 'वृन्दावन'का नाम भी *Kliso boras* या 'कालिकावर्त' अर्थात् कालियनागका स्थान है। १८वीं शतीमें काशीके राजा चेतसिंहने दोनों नगरोंके पूरे दूधसे यहाँ अर्चना की थी। (Cunningham's Anc. Geog. P. 316) वृन्दावनके विशेष वर्णनके लिये 'भागवत' 'कल्याण' 'तीर्थाङ्क,' पद्म० पाताल खण्ड ७० से ८२ तथा रघुवंश ६।५० आदि देखना चाहिये। 'दे' के अनुसार आजका वृन्दावन चैतन्य महाप्रभुके अनुयायी गोस्वामीबन्धुओंकी खोज है, प्राचीन वृन्दावन मथुरासे कुछ अधिक दूर होना चाहिये। ('दे'का भूगोल पृष्ठ ४२)

गोविन्दकी पूजा करेगा तथा ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिके अवसरपर यमुनाके किनारे पिण्डदान करेगा, वह परम कल्याणका भाजन होगा।'

देवि! मथुरा तीर्थ महान् है। अनेक नामोंवाले बहुत-से वन उसकी शोभा बढ़ाते हैं। वहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य भगवान् रुद्रके लोकमें प्रतिष्ठा पाता है। चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिके पुण्य अवसरपर यहाँ अवगाहन करनेवाला मानव मेरे लोकमें निश्चय ही चला जाता है। यमुनाके दूसरे पारमें 'भाण्डहृद' नामसे विख्यात एक दुर्लभ तीर्थ है। विश्वके अलौकिक कार्यको सम्पन्न करनेवाले आदित्यगण वहाँ प्रतिदिन दृष्टिगोचर होते हैं। वहाँ जो मनुष्य स्नान करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकको प्राप्त होता है। वहीं स्वच्छ जलसे भरा 'सप्तसामुद्रिक' नामक एक कूप है। वसुधे! वहाँ स्नान करनेसे मानव सभी लोकोंमें स्वच्छन्दताके साथ विचरण कर सकता है। यहीं वीरस्थल नामसे प्रसिद्ध मेरा एक और परम गुह्य क्षेत्र है, जहाँ खिले हुए कमल जलकी निरन्तर शोभा बढ़ाते हैं। सुमध्यमे! जो मनुष्य एक रात यहाँ निवास करके स्नान करता है, वह मेरी कृपासे वीरलोकमें आदर पाता है।

इसी मथुरामण्डलमें 'गोपीश्वर'नामसे विख्यात एक तीर्थ है, जहाँ हजारों गोपियाँ सुन्दर रूप धारण करके भगवान् श्रीकृष्णको आनन्दित करनेके लिये पधारी थीं और मैंने (श्रीकृष्णरूपमें) उनके साथ रासलीला की थी एवं बाल्यकालमें यमलार्जुन नामक दो वृक्षोंको भी तोड़ा था। यहीं इन्द्रने एक कूपके पास रत्न और ओषधियोंसे सम्पन्न जलपूर्ण कलशोंसे गोप-वेषधारी भगवान् श्रीकृष्णका अभिषेक किया था। तभीसे उस कूपका नाम 'सप्तसामुद्रिक' कूप पड़ गया। जो पुरुष इस 'सप्तसामुद्रिक' कूपपर जाकर पितरोंके लिये श्राद्ध करता है, वह अपने कुलकी सतहत्तर पीढ़ियोंको तार देता है। सोमवती अमावास्याके दिन जो वहाँ पिण्डदान करता है, उसके पितर करोड़ वर्षके लिये तृप्त हो जाते हैं।

वसुंधरे! यहाँ 'वसुपत्र'नामसे विख्यात एक तीर्थ है, जो मेरा परम पवित्र एवं उत्तम स्थान है। मथुराके दक्षिण-भागमें 'फाल्गुनक' और लगभग आधे योजनकी दूरीपर पश्चिमकी ओर धेनुकासुरका 'तालवन' नामका प्रसिद्ध स्थान है। विशालाक्षि! यहाँ 'संपीठककुण्ड' नामका भी मेरा एक श्रेष्ठ तीर्थ है, जिसमें सदा पवित्र एवं स्वच्छ जल भरा रहता है। जो लोग एक रात यहाँ निवास करके स्नान करते हैं, उन्हें 'अग्निष्टोम' यज्ञका फल मिलता है—इसमें कोई संशय नहीं।

वसुंधरे! कृष्णावतारमें मैंने बड़े पवित्र भावसे सूर्यदेवकी आराधना की थी, जिससे मुझे (पीछे साम्ब-जैसे) रूपवान्, गुणवान् एवं ज्ञानी पुत्रकी प्राप्ति हुई थी। यहीं आराधनाके समय मुझे हाथमें कमल लिये हुए भगवान् सूर्यके दर्शन हुए थे। देवि! तबसे भाद्रपद मासके कृष्ण पक्षकी सप्तमी तिथिको प्रखर तेजवाले सूर्य वहाँ सदा विराजते हैं। उस कुण्डमें जो मनुष्य सावधान होकर स्नान करता है, उसे संसारमें कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती; क्योंकि सूर्य सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके दाता हैं। देवि! यदि रविवारके दिन सप्तमी तिथि पड़ जाय तो उस शुभ समयमें स्नान करनेवाला पुरुष हो अथवा स्त्री, वह समग्र फल प्राप्त करता है। प्राचीन समयमें राजा शान्तनुने भी इसी स्थानपर तपस्या कर भीष्म नामक परम पराक्रमी पुत्रको प्राप्त किया था और जिसे लेकर वे तुरंत हस्तिनापुरके लिये प्रस्थित हो गये थे। अतएव वहाँ स्नान तथा दान करनेसे निश्चय ही मनोऽभिलषित फल मिलता है। (अध्याय १५६-५७)

मथुरा-तीर्थका प्रादुर्भाव, इसकी प्रदक्षिणाकी विधि एवं माहात्म्य

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! मेरे मथुरा-क्षेत्रकी सीमा बीस योजनमें है*, जिसमें जहाँ-कहीं भी स्नान कर मानव सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है। वर्षाऋतुमें मथुरा विशेष आनन्दप्रद रहती है और हरिशयनीके बाद चार मासके लिये तो मानो सातों द्वीपोंके पुण्यमय तीर्थ और मन्दिर मथुरामें ही पहुँच जाते हैं। जो देवोत्थानके समय मेरे उठनेपर मथुरामें मेरा दर्शन करते हैं, उनके सामने वहाँ मैं सदा उपस्थित रहता हूँ, इसमें कोई संशय नहीं। वसुधे ! उस समय मेरे (श्रीकृष्णरूपके) कमल-जैसे मुखको देखकर मनुष्य सात जन्मोंके पापोंसे तत्काल मुक्त हो जाता है। जिसने मथुरामें पहुँचकर मेरे (श्रीकृष्णके विग्रह)की विधिवत् पूजा कर प्रदक्षिणा कर ली, उसने मानो सात द्वीपोंवाली पृथ्वीकी प्रदक्षिणा कर ली।

धरणीने पूछा—भगवन् ! प्रायः सभी तीर्थ क्षेत्र पशु, भूत, पिशाच और विनायक—इन उपद्रव करनेवाले प्राणियोंसे बाधित होते रहते हैं। फिर यह मथुरापुरी किस देवताके द्वारा सुरक्षित रहकर अनन्त फल प्रदान करनेमें समर्थ है ?

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! मेरे प्रभावसे विघ्न-कारी शक्तियाँ मेरे इस क्षेत्रपर या भक्तोंपर कभी दृष्टि नहीं डाल पातीं। इसकी रक्षाके लिये मैंने दस दिक्पालों और चार लोकपालोंको नियुक्त कर रखा है, जो निरन्तर इस पुरीकी रक्षामें तत्पर रहते हैं। इसके पूर्वमें इन्द्र, दक्षिणमें यम, पश्चिममें वरुण, उत्तरमें कुबेर तथा मध्यभागमें उमापति महादेवजी रक्षा करते हैं। जो मनुष्य मथुरामें कोठेदार मकान बनवाता है, उस जीवन्मुक्त पुरुषको चार भुजाओंवाले विष्णुका ही रूप समझना चाहिये।

अब यहाँके निर्मल जलवाले 'मथुराकुण्ड'की एक आश्चर्य-की बात कहता हूँ, सुनो। हेमन्त-ऋतुमें इसका जल गर्म रहता है और ग्रीष्म-ऋतुमें बर्फके समान शीतल। साथ ही वर्षाऋतुमें वहाँका पानी न बढ़ता है और न ग्रीष्मऋतुमें सूखता ही है। वसुंधरे ! मथुरामें पग-पगपर तीर्थ हैं, जिनमें स्नानकर मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है।

'मुचुकुन्दतीर्थ'नामक यहाँ एक दिव्य क्षेत्र है, जहाँ देवासुरसंग्रामके बाद राजा मुचुकुन्दने शयन किया था। वहाँ स्नान करनेवालेको अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है तथा मरनेवालोंको मेरे लोककी।

देवि ! भगवान् केशवके नाम-संकीर्तनमें ऐसी शक्ति है कि वह इस जन्मके तथा पूर्वजन्मोंमें किये हुए सभी पापोंको उसी क्षण नष्ट कर डालता है। अतः कार्तिक शुक्लकी अक्षय-नवमीको भगवन्नाम-कीर्तन करते हुए मथुराकी प्रदक्षिणा करनेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। इसकी विधि यह है कि कार्तिक शुक्ला अष्टमीको मथुरामें जाकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए निवास करे तथा रात्रिमें ही प्रदक्षिणाका संकल्प कर ले। प्रातःकाल दन्तधावन कर स्नान करके धौतवस्त्र पहन ले और मौन होकर इसकी प्रदक्षिणा प्रारम्भ करे। इससे मनुष्यके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। प्रदक्षिणा

* मथुराका माहात्म्य इस वराहपुराणके अतिरिक्त 'नारदपुराण' उत्तरभाग अध्याय ७५—८०; पद्मपुराण, पातालखण्ड, अध्याय ६९ से ८३, उत्तरखण्ड ९५; स्कन्दपु० ४। २० आदिमें भी है। यह सप्तपुरियोंमेंसे एक है। इसका पूर्वनाम मधुरा (वाल्मी० उत्तर-काण्ड ७। १०८), मधुपुरी तथा महोली भी है। यहाँ (वराहपुराणमें) इसकी सीमा बीस योजन कही गयी है। हुएनशांगके समय मथुरा मण्डल ८३३ मीलमें एवं मथुरानगर प्रायः चार मीलके घेरेमें था। (Julien's Hiueon Thsang II. 20, Cunningham's Ancient Geography. P. 314). जैन-ग्रन्थोंमें इसका नाम 'सौरिपुर' है। पीछे वीरसिंह, जयसिंह तथा पेशवाओंने यहाँ बार-बार अनेक मन्दिर बनवाये। यहाँके मन्दिरों तथा वनोंके विशेष परिचय एवं आधुनिक निर्देशके लिये "कल्याण" 'तीर्थाङ्क'के ९५—१०५ तकके पृष्ठोंको देखना चाहिये।

करते समय मनुष्यको यदि कोई दूसरा व्यक्ति स्पर्श करता है तो उसके भी सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं, इसमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। प्रदक्षिणा करनेपर जो पुण्य मिलता है, वही पुण्य मथुरामें जाकर स्वयं प्रकट होनेवाले भगवान् श्रीहरिके दर्शनसे सुलभ हो जाता है।

भूमिकी परिक्रमाकी गणना भी योजनोंके प्रमाणमें की गयी है। पृथ्वीमें स्थित साठ करोड़ हजार और साठ करोड़ सौ तीर्थ हैं। देवताओं और आकाशमें स्थित तारागणोंकी संख्या भी इतनी है। यह गणना विश्वके आयुस्वरूप वायु, ब्रह्मा, लोमश, नारद, ध्रुव, जाम्बवान्, बलि और हनूमान्ने की है। इन लोगोंने वन, पर्वत समुद्रसहित इस भूमिकी बाहरी रेखासे अनेक बार परिक्रमाएँ की थीं। सुग्रीव, पाँचों पाण्डव और मार्कण्डेय-प्रभृति कुछ योगसिद्धलोगोंने पृथ्वीके भीतर भ्रमण कर भी तीर्थोंकी गणना की। पर अन्य जो थोड़े ओज बल अथवा बुद्धिवाले हैं, वे मनसे भी इन सबोंके परिभ्रमणमें असमर्थ हैं, प्रत्यक्ष गमनकी तो बात ही क्या ? किंतु इन सातों द्वीपों और तीर्थोंमें घूमनेसे जो फल होता है, उससे भी अधिक फल मथुराकी परिक्रमामें मिल जाता है। जो मथुराकी प्रदक्षिणा करता है, वह मानो सात द्वीपोंवाली पृथ्वीकी प्रदक्षिणा कर लेता है। सभी मनोरथको चाहनेवाले मनुष्योंको सब प्रकारसे प्रयत्न कर मथुरा जाकर इसकी विधिपूर्वक प्रदक्षिणा करनी चाहिये। एक बार सप्तर्षियोंके पूछनेपर ब्रह्माजीने कहा था—'समस्त वेदोंके अध्ययन, सभी तीर्थोंमें स्नान, अनेक प्रकारके दान और यज्ञ-यागादि एवं कुआँ-तालाब, धर्मशाला बनवानेसे जो पुण्य होता है और उनका जो फल मिलता है, उससे सौ गुना अधिक फल मथुराकी परिक्रमासे प्राप्त होता है।' ब्रह्माजीसे यह बात सुनकर सातों ऋषियोंने उन्हें प्रणाम किया और वहाँसे मथुरा आकर वहाँ आश्रम बनाये। उनके साथ ध्रुव भी थे। फिर उन सबोंने अपनी कामनाकी पूर्तिके लिये कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी नवमी तिथिको मथुराकी विधिवत् परिक्रमा की। इससे वे सभी मुक्त हो गये।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथिको व्रती साधक मथुरामें उपस्थित होकर 'विश्रान्तितीर्थ'में स्नान करे और देवताओं तथा पितरोंके पूजनमें संलग्न हो जाय। फिर विश्रान्तिके दर्शन करनेके पश्चात् दीर्घविष्णु और भगवान् केशवदेवका दर्शन करना चाहिये। उस रात ब्रह्मचर्यपूर्वक उपवास या अल्पाहार करे, साथ ही अपने अन्तःकरणको शुद्ध करनेके लिये अपवादभूत सायंकाल भी दन्तधावन करे। फिर स्नान करके धौतवस्त्र पहने और मौनव्रत धारण कर हाथमें तिल, चावल और कुशा लेकर पितरों एवं देवताओंकी पूजा करे।

फिर नवमीको प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें संयम-पूर्वक पवित्र होकर सूर्योदयके पूर्व ही प्रदक्षिणार्थ यात्राका कार्य आरम्भ कर देना चाहिये। प्रातःकालका स्नान 'दक्षिणकोटि' नामक तीर्थमें करनेकी विधि है। सर्वप्रथम दोनों पैरोंको धोकर आचमन करके मङ्गलोंके स्वरूप तथा बालब्रह्मचारी हनुमान्जीको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करे, जिनके स्मरणसे समस्त उपद्रव शान्त हो जाते हैं। फिर प्रार्थना करे—'भगवन् ! आपने जिस प्रकार भगवान् श्रीरामकी यात्रामें सिद्धि प्रदान की थी, उसी प्रकार मेरी इस परिक्रमा-यात्रामें सफलता प्रदान करें।' फिर गणेश्वर, भगवान् विष्णु, हनुमान्जी तथा कार्तिकेयकी विधिपूर्वक फल, माला तथा दीप आदिके द्वारा पूजन कर यात्रा आरम्भ करे। यात्रामें 'वसुमती'देवी-का दर्शन बहुत आवश्यक है। वहीं राजाओंके आयुध रखनेके स्थानमें सम्पूर्ण भयको भगानेवाली भगवती



कृष्णगङ्गा (यमुना) के तटपर श्यामा-श्याम

'अपराजिता'का भी दर्शन करे। देवि ! फिर 'कंस-वासनिका', 'औग्रसेना', 'चर्चिका' तथा 'वधूटी' देवियोंका दर्शन करे। ये देवियाँ दानवोंको पराजय और देवताओं-को विजयप्रदान करानेवाली हैं। पुनः देवताओंसे सुपूजित आठ माताओं, गृहदेवियों और वास्तुदेवियोंका दर्शनकर तथा उनसे आज्ञा लेकर यात्रा आरम्भ करे। जबतक परिक्रमामें 'दक्षिणकोटि'तीर्थ न मिले, तबतक मौन होकर यात्रा करनी चाहिये। 'दक्षिणकोटि'तीर्थमें स्नान, पितृतर्पण, देवदर्शन और प्रणाम कर भगवान् श्रीकृष्णद्वारा पूजित भगवती 'इक्षुवासा'को प्रणाम करे। इसके बाद 'वासपुत्र', 'अर्कस्थल', 'वीरस्थल', 'कुशस्थल', 'पुण्यस्थल' और प्रचुर पापोंके नाशक 'महास्थल'पर जाय। ये सभी तीर्थ सम्पूर्ण पापोंको दूर भगा देते हैं। फिर 'हयमुक्ति', 'सिन्दूर' और 'सहायक' नामके प्रसिद्ध स्थानोंपर जाय।

इस विषयमें ऋषियोंकी कही हुई एक प्राचीन गाथा सुनी जाती है—कहते हैं, कभी कोई राजकुमार घोड़ेपर सवार होकर मथुराकी सुखपूर्वक परिक्रमा कर रहा था। पर बीचमें ही नौकरसहित घोड़ेकी तो मुक्ति हो गयी, पर वह राजकुमार इस संसारमें ही पड़ा रह गया। अतएव जिसे श्रेष्ठ फलकी इच्छा हो, उसे सवारीपर चढ़कर मथुराकी कदापि परिक्रमा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि इससे मुक्ति नहीं मिलती'।

उस 'हयमुक्ति'तीर्थका दर्शन एवं स्पर्श करनेसे पापोंसे मुक्ति मिल जाती है। बीचमें 'शिवकुण्ड' नामसे प्रसिद्ध एक महान् तीर्थ है। भगवान् कृष्णको विजयी बनानेवाली 'मल्लिका'—देवीका भी दर्शन करना चाहिये। फिर 'कदम्बखण्ड'की यात्राकर सपरिवार 'चर्चिका' योगिनीका दर्शन करे। फिर पापोंके हरण करनेवाले 'वर्षखात' नामक श्रेष्ठ कुण्डपर जाकर स्नान और तर्पण करना चाहिये।

देवि ! यहाँ भूतोंके अध्यक्ष भगवान् महादेवका दिव्य विग्रह है। इसके आगे 'कृष्णक्रीडा-सेतुबन्ध' तथा 'बलिहृद' कुण्ड है, जहाँ श्रीकृष्णने जलविहार किया था। इसके दर्शनमात्रसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है। यहीं कुछ आगे गंधोंसे सुवासित रहनेवाला 'स्तम्भोच्चय' नामक एक शिखर है, जिसे भगवान् श्रीकृष्णने सजाया और पूजित किया था। इसकी भी यत्नके साथ प्रदक्षिणा तथा पूजा करनी चाहिये, इससे प्राणी सभी पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकको जाता है। इसके पश्चात् 'नारायणस्थान'तीर्थपर जाकर फिर 'कुब्जिका' तथा 'वामनस्थान'पर जाये। यहीं 'विघ्नेश्वरी' देवीका भी स्थान है, जो श्रीकृष्णकी रक्षा करनेके लिये यहाँ सदा तत्पर रहती हैं। कंसको मारनेकी अभिलाषा रखनेवाले श्रीकृष्ण, बलभद्र और गोपोंने देवीके संकेतसे यहाँ मन्त्रणा की थी। तबसे इन्हें 'सिद्धिदा, 'भोगदा' और 'सिद्धेश्वरी' भी कहा जाता है और कुछ व्यक्ति इन्हें 'संकेतकेश्वरी' भी कहते हैं। इनका दर्शन करनेसे अवश्य सिद्धि प्राप्त होती है। यहाँके कुण्डका स्वच्छ जल सब पापोंको नष्ट कर देता है। इसके बाद 'गोकर्णेश्वरी'-देवीका दर्शनकर सरस्वती नदी और विघ्नराज गणेशके दर्शन करनेसे मनुष्य श्रेयको प्राप्त करता है।

फिर प्रचुर पुण्यवाले 'गार्ग्यतीर्थ', 'भद्रेश्वर-तीर्थ' तथा 'सोमेश्वर' तीर्थमें जाना चाहिये। 'सोमेश्वर'तीर्थमें स्नान करके भगवान् सोमेश्वरका दर्शन फिर 'घण्टाभरणक', 'गरुडकेशव', 'धारालोपनक', 'वैकुण्ठ', 'खण्डवेलक', 'मन्दाकिनी', 'संयमन', 'असिकुण्ड', 'गोपतीर्थ', 'मुक्तिकेश्वर' 'वैलक्षगरुड़' और 'महापातक-नाशन' तीर्थोंमें भी जाना चाहिये।

तत्पश्चात् भगवान् शिवसे यों प्रार्थना करे—'देवेश ! आप मुक्ति देनेवाले प्रधान देवता हैं। सप्तर्षियोंने भी पृथ्वीकी परिक्रमाके समय आपकी स्तुति की थी। इसी प्रकार मैं भी आपसे प्रार्थना करता हूँ।

आपकी आज्ञासे मथुराकी प्रदक्षिणामें मुझे सफलता प्राप्त हो जाय।' इस भाँति उस क्षेत्रके स्वामी देवाधिदेव शिवकी प्रार्थना कर 'विश्रान्तिसंज्ञक' तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ जाकर स्नान, तर्पण एवं प्रणाम करना चाहिये।

तदनन्तर श्रीकृष्णकी बहन आर्तिहरा भगवती 'सुमङ्गला' देवीके मन्दिरमें जाकर उनसे मथुरा-यात्राकी सिद्धिके लिये इस प्रकार प्रार्थना करे—'शिवे! आप सम्पूर्ण मङ्गल-पूर्ण कार्योंको सम्पन्न करनेमें कुशल हैं। आपकी कृपासे प्राणीके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। आप प्रसन्न हो जायँ, जिससे मुझे भी इस यात्रामें सफलता प्राप्त हो।' इसके उपरान्त 'पिप्पलेश्वर' महादेवके स्थानपर जाय। पिप्पलाद मुनिने यहाँ उनकी अर्चना की थी। वे महान् तपस्वी मुनि परिक्रमा करनेसे थक गये थे। इस स्थानपर भगवान् शिवने उनकी थकावट दूर की थी। उस समय पिप्पलाद मुनिने वहाँकी भूमिका उपलेपन किया और उसके ऊपर अपने नामसे अङ्कित भगवान् शंकरकी प्रतिमा स्थापित कर दी। इससे उन्हें यात्रामें सफलता मिली। अतः इनका दर्शन शुभका सूचक है। मन्दिरमें प्रवेश करते समय दक्षिण-भागका सुशब्द कार्यकी अनुकूलता सूचित करता है। स्वयं श्रीकृष्णको कंसवधकी सफलताके लिये प्रार्थना करनेपर इन देवीका शुभसूचक उत्तम दर्शन पहले और अन्तमें भी प्राप्त हुआ था। अतः इनका दर्शन करनेसे मनुष्यके सभी अभीष्ट कार्य पूर्ण होते हैं। उस समय कंसके बड़े-बड़े पहलवानोंको मारनेके विचारसे श्रीकृष्णने वज्रके समान मुखवाले भगवान् सूर्यका भी ध्यान किया था। जब वे सभी मल्ल कालके ग्रास बन गये, तब उन्होंने वहीं उन वज्रानन सूर्यकी स्थापना कर दी। तबसे मथुरामें निवास करनेवाले व्यक्तियोंने इन वरदाता सूर्यको अपने कुलका प्रधान देवता मान लिया है। अतः 'सूर्य-तीर्थ'पर उनका दर्शन करके प्रदक्षिणाकी यात्रा समाप्त करनी चाहिये। मथुराकी प्रदक्षिणाके समय मनुष्यके जितने पैर पृथ्वीपर पड़ते हैं, उसके कुलके उतने व्यक्ति सनातन सूर्यलोकमें स्थान पाते हैं। मथुराकी परिक्रमा पूर्ण करके आनेवाले मनुष्यको जो कोई भी देख लेता है तो वह भी पापोंसे छूट जाता है और जो परिक्रमाकी बात सुनते हैं, वे भी अपराधोंसे मुक्त होकर परमपद प्राप्त कर लेते हैं। (अध्याय १५८–६०)

देववन और 'चक्रतीर्थ'का प्रभाव

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! अधर्मी एवं दुरात्मा मनुष्य भी मथुराके सेवनसे तथा वहाँके वनोंके दर्शन अथवा उस पुरीकी परिक्रमासे नरक-क्लेशसे मुक्त हो जाते हैं तथा स्वर्गभोगके अधिकारी हो जाते हैं।

देवि! इस मथुरामण्डलमें बारह वन हैं, जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—मधुवन, तालवन, कुन्दवन, काम्यकवन, बहुवन, भद्रवन, खदिरवन, महावन, लौह-वन, बिल्ववन, भाण्डीर-वन और वृन्दावन। ये सभी परम श्रेष्ठ और मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। लौह-वनके प्रभावसे प्राणीके समस्त पाप दूर हो जाते हैं तथा बिल्ववन तो देवताओंसे भी प्रशंसित है। जो मानव इन वनोंका दर्शन करते हैं, उन्हें नरक नहीं भोगना पड़ता।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! अब मथुराके उत्तर भागमें स्थित 'चक्रतीर्थ'की महिमा कहता हूँ, उसे सुनो। पहले जम्बूद्वीपकी शोभा बढ़ानेवाला 'महागृहोदय' नामसे प्रसिद्ध एक उत्तम नगर था। शुभे! उस दिव्य नगरमें एक वेदोंका पारगामी प्रतिष्ठित ब्राह्मण रहता था। देवि! एक समयकी बात है, वह अपने पुत्रको

लेकर शालग्राम (मुक्तिनाथ) तीर्थको गया और वहीं अपना निवास बना लिया। सदा वह नियमतः वहाँ पवित्र नदीमें स्नान कर देवताओंका दर्शन करता, यही उसका नित्यकर्म था। वहीं उसे एक 'कान्यकुब्ज'के सिद्ध पुरुषके दर्शन हुए, जो बहुधा 'कल्पग्राम'में भी जाया करता था। बातचीतके प्रसङ्गमें वह सिद्ध प्रायः प्रतिदिन 'कल्पग्राम'की प्रशंसा करता। उस ग्रामकी विभूति सुनकर उस श्रेष्ठ ब्राह्मणके मनमें भी विचार उठा कि मैं भी उस 'कल्पग्राम'में चलूँ और उसने सिद्ध पुरुषसे प्रार्थना की—'मित्रवर! आप सिद्ध पुरुष हैं, अतः एक बार मुझे भी आप 'कल्पग्राम' ले चलनेकी कृपा कीजिये।'

पृथ्वि! उस श्रेष्ठ ब्राह्मणकी बात सुनकर सिद्ध पुरुषने कहा—'द्विजवर! वहाँ तो केवल सिद्ध पुरुष ही जा सकते हैं, सामान्य व्यक्तिका वहाँ जाना सम्भव नहीं है।' इसपर उस ब्राह्मणने कहा—'मुझे भी आत्मयोगकी शक्ति सुलभ है, अतः उसके सहारे मैं अपने पुत्रके साथ वहाँ चल सकूँगा।' फिर तो उस सिद्ध पुरुषने अपने दाहिने हाथमें उस वेदज्ञ ब्राह्मणको तथा बाँयें हाथमें उसके परम बुद्धिमान् पुत्रको लेकर ऊपर उड़ा और 'कल्पग्राम'में पहुँच गया। वहाँ पहुँच जानेपर वे पिता-पुत्र अब 'कल्पग्राम'में ही रहने लगे। बहुत समय व्यतीत हो जानेपर उस ब्राह्मणके शरीरमें व्याधि उत्पन्न हो गयी, वृद्धावस्था तो थी ही, अतः मरनेका निश्चय कर उस धर्मात्मा ब्राह्मणने अपने सुयोग्य पुत्रको सामने बुलाया और कहा—'वत्स! मुझे गङ्गाके तटपर ले चलो।' पुत्रने उसे गङ्गाके किनारे पहुँचाया और वह भी अपने पिताके प्रति अपार श्रद्धा-भक्तिके कारण वहीं उसके पास रहने लगा।

भद्रे! एक दिनकी बात है, दैववश कान्यकुब्ज-देशके निवासी उस सिद्ध पुरुषके घर वह ब्राह्मणकुमार भोजनके लिये गया। उस सिद्धने ब्राह्मणकुमारका स्वागत-सत्कार किया और न्यायपूर्वक उसकी अर्चना करनेके पश्चात् उसके साथ अपनी कन्याका विवाह भी कर दिया। तबसे वह ब्राह्मणकुमार प्रतिदिन अपने श्वशुरके ही घर जाकर भोजन करने लगा। अपने पिताकी चिन्तनीय स्थिति देखकर उस ब्राह्मणकुमारने एक दिन अपने उस सिद्ध पुरुष श्वशुरसे पूछा—'स्वामिन्! आप मुझे यह बतानेकी कृपा करें कि पिताजीका यह कष्टजर्जित शरीर कब शान्त होगा?' इसपर उस सिद्ध पुरुषने मुस्कुराकर कहा—'द्विजवर! तुम्हारे पिताने अपवित्र अन्न खाया था। इसी आहार-दोषने उन्हें इस दुर्गतिको पहुँचा दिया है। वह अन्न अभी इनके पैरोंमें पड़ा है।

लड़केने किसी दिन यह बात अपने पिताको बतला दी, अतः शरीरकी जर्जरतासे अत्यन्त दुःखी उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने एक दिन गङ्गातटपर पड़े एक पत्थरसे (अन्नदोषयुक्त) अपनी दोनों टाँगें तोड़ दीं, जिससे उसके प्राण निकल गये। उस समय उसका पुत्र अपने श्वशुरके गृह स्नान तथा भोजनादिके लिये गया हुआ था। लौटनेपर उसने जब अपने पिताका शव देखा तो विलाप करने लगा। आपस्तम्ब मुनिने ठीक ही कहा है—'सर्पके काटनेसे, सींग एवं दाँतवाले जानवरोंके मारनेसे तथा सहसा अपने प्राणोंके त्यागनेसे अर्थात् आत्महत्या करनेसे जिसके प्राण जाते हैं, वह मनुष्य पापका भागी होता है।'

अब वह ब्राह्मण-कुमार जब पुनः अपने श्वशुरके घर गया तो उसे देखते ही श्वशुरने कहा—'अरे! तुम्हें तो ब्रह्महत्या लगी है, तुम यहाँसे चले जाओ।' श्वशुरकी बात सुनकर जामाताने कहा—'महानुभाव! मैंने तो कभी किसी ब्राह्मणकी हत्या नहीं की, फिर आप मुझपर ब्रह्महत्याका दोषारोपण कैसे कर रहे हैं?' श्वशुरने उससे कहा—'पुत्रक! तुम अपने पिताकी ही मृत्युके हेतु बने हो, अतः तुम ब्रह्महत्याके भागी हुए हो। ऐसा नियम है कि 'यदि किसी पतितके साथ संनिकटमें एक वर्षतक शयन, भोजन अथवा वार्तालाप किया जाय तो शुद्ध पुरुष भी पतित

हो जाता है। अतएव अब मेरे घरपर तुम्हारे रहनेके लिये कोई स्थान नहीं है।' श्वशुरकी यह बात सुनकर जामाताने कहा—'सुव्रत! जब आपने मेरा त्याग कर ही दिया तो अब मेरे लिये कौन-सा प्रायश्चित्त कर्तव्य है—यह बतानेकी कृपा कीजिये।' इसपर श्वशुर बोला—"अब तुम कल्पग्रामका त्यागकर 'मथुरा' जाओ। मथुराको छोड़कर तुम्हारी शुद्धि कहीं भी सम्भव नहीं है।" अब वह ब्राह्मण उसी क्षण 'कल्पग्राम'से चलकर 'मथुरा' आया और नगरके बाहर ही अपने रहनेका प्रबन्ध किया। उस समय मथुरामें कान्यकुब्जके महाराज कुशिकका नित्य-सत्र चल रहा था, जिस सत्रमें प्रतिदिन दो हजार ब्राह्मण भोजन करते थे। वहाँ ब्राह्मणोंके खाते समय छूटे हुए जूँठे (उच्छिष्ट) अन्नके खानेसे उस ब्राह्मणकुमारका उद्धार हो गया। वह सदा 'चक्रतीर्थ'में जाकर स्नान करता। न किसीके घर वह भिक्षा माँगता और न कहीं अन्यत्र ही जाता था।

वसुंधरे! बहुत दिनोंके बाद उसके श्वशुरके मनमें उसकी चिन्ता हुई। उसने अपने दिव्य ज्ञानसे जामाताकी स्थिति ज्ञात कर ली और अपनी पुत्रीको आदेश दिया—'तुम भोजन लेकर अब मथुरापुरी जाओ; तुम्हारा पति वहीं है।' वह कन्या भी योगसिद्धा एवं दिव्य ज्ञानसे सम्पन्न थी। अतएव अपने स्वामीको भोजन करानेके विचारसे वह प्रतिदिन उसके पास जाने-आने लगी और यह उसका नित्यका एक कार्य-क्रम बन गया। सायंकाल भोजन लेकर वह ब्राह्मणपुत्री उस ब्राह्मणके पास जाती। वह ब्राह्मणकुमार पत्नीका दिया हुआ भोजन कर लेता और रात्रिमें उसी सत्रशालामें ही पड़ा रहता। इस प्रकार वहाँ निवास करते ब्राह्मणके छः महीने और व्यतीत हो गये। कुछ समयके पश्चात् वहाँ रहनेवाले ब्राह्मणोंने उससे पूछा—'आप यहाँ कहाँ निवास करते हैं और प्रतिदिन आपको भोजन कहाँसे प्राप्त होता है?'

अब उस ब्राह्मणने उन लोगोंसे अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त स्पष्ट कह दिया। इसे सुनकर वे सभी ब्राह्मण एकत्रित होकर उससे बोले—'द्विजवर! अब तो आप सर्वथा शुद्ध हो गये हैं। इस 'चक्रतीर्थ'के प्रभावसे आपके सारे पाप दूर हो गये हैं। फिर हम लोगोंके शरीरसे सम्पर्क होनेके कारण आपके बचे-खुचे दूसरे पाप भी समाप्त हो गये हैं।' उन ब्राह्मणोंकी बात सुनकर उस ब्राह्मणका मन प्रसन्नतासे खिल उठा। अब वह स्नानार्थ पुनः 'चक्रतीर्थ' आया। यहाँ उसकी भार्या भोजन लेकर पहलेसे ही उपस्थित थी। उसने हर्षित मनसे अपने पतिसे कहा—'स्वामिन्! मुझे ऐसा दिखायी पड़ता है कि आप अब ब्रह्महत्यासे सर्वथा मुक्त हो गये हैं।' पत्नीकी बात सुनकर उसने कहा—'प्रिये! तुमने जो कहा है, उसे पुनः स्पष्ट करनेकी कृपा करो।' यह सुनकर पत्नीने कहा—"इससे पहले आप बात करनेमें भी अयोग्य हो चुके थे। क्योंकि आप उस समय ब्रह्महत्यासे ग्रस्त थे। द्विजवर! अब आप 'चक्रतीर्थ'के प्रभावसे पापमुक्त हो गये हैं। कान्त! अब आप उठें और परम पवित्र 'कल्पग्राम' को चलें।" तदनन्तर वह श्रेष्ठ ब्राह्मण अपनी भार्याके साथ 'कल्पग्राम' चला गया। वसुंधरे! उस परम पवित्र 'चक्रतीर्थ'में भगवान् 'भद्रेश्वर' विराजते हैं, जिनका दर्शन करनेसे तीर्थका फल प्राप्त होता है। वसुंधरे! 'चक्रतीर्थ'के सेवनसे समग्र 'कल्पग्राम'की अपेक्षा भी सौगुना फल मिलता है। एक दिन-रात वहाँ उपवास करनेपर मनुष्यका ब्रह्महत्यासे भी उद्धार हो जाता है। (अध्याय १६१-६२)

'कपिल-वराह'का माहात्म्य

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! मिथिला-प्रान्तमें जनकजीकी 'जनकपुरी' नामकी एक प्राचीन एवं परम रमणीय पुरी है, जहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चारों वर्णोंके लोग निवास करते एवं तीर्थयात्रा आदिके लिये बाहरसे भी आते-जाते रहते थे। फिर वहाँके समीपवर्ती 'सौकरव-तीर्थ'में स्नानकर वे 'मथुरापुरी'की भी यात्रा करते थे; और वहाँ वे कुछ कालके लिये ठहर जाते। उसी समाजमें एक ऐसा ब्राह्मण

था, जिसके शरीरमें ब्रह्महत्याके चिह्न थे। उसके हाथसे सदा रुधिरकी धारा गिरती रहती थी, जिसे प्रायः सभी लोग देखते थे। वह ब्राह्मण उस हत्यासे मुक्त होनेके लिये सभी तीर्थोंमें भ्रमण-स्नान कर चुका था, फिर भी उसकी ब्रह्महत्या दूर न हुई। किंतु इसके बाद जब उसने 'वैकुण्ठ'तीर्थमें स्नान किया तो वह रुधिरधारा स्वतः बंद हो गयी। अब उसके सभी सहवासी आश्चर्यसे कहने लगे—'यह कैसे हो गया, कैसे हो गया!' उसी समय एक ब्राह्मणका रूप धारण कर दिव्य पुरुष वहाँ आया और उसने उन सभी उपस्थित लोगोंसे पूछा—'यहाँसे ब्रह्महत्या इस ब्राह्मणको छोड़कर कैसे चली गयी?' इसपर उन लोगोंने उसे उस ब्राह्मणके ब्रह्महत्यासे छूटनेके सारे प्रयत्न और अन्तमें 'वैकुण्ठ-तीर्थ'में स्नानद्वारा हत्यामुक्ति-की बात बतला दी, अतः इस तीर्थकी महिमामें किंचित् भी संदेह नहीं करना चाहिये।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इसके बाद भगवान् वराहने पुनः पृथ्वीसे कहा—'देवि! यहाँ अमित पुण्य प्रदान करनेवाला 'असिकुण्ड'-नामक एक दूसरा क्षेत्र है, अब मैं उसे बताता हूँ। उस क्षेत्रमें एक अन्य कुण्ड भी है, जिसे 'गन्धर्वकुण्ड' कहते हैं। वह सभी तीर्थोंमें प्रमुख है। वहाँ अवगाहन करनेवाला गन्धर्वोंके साथ आनन्द भोगता है और जो उस स्थानपर प्राणोंका त्याग करता है, वह मेरे लोकमें चला जाता है।

देवि! मथुरा-मण्डलकी सीमा बीस योजनमें है। और सभीको मुक्ति देनेमें परम समर्थ उस पुरीकी आकृति कमलके समान है। इसकी कर्णिकाके मध्यभागमें क्लेशोंके नाशक भगवान् केशव विराजते हैं। इस स्थानपर जिनके प्राण प्रस्थान करते हैं, वे मुक्तिके भागी होते हैं। यही क्यों? मथुराके भीतर जिनकी कहीं भी मृत्यु होती है, वे सभी मुक्त हो जाते हैं। इस तीर्थके पश्चिम भागमें 'गोवर्धनपर्वत' है, जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण निवास करते हैं। वहाँ उन देवेश्वरके दर्शन प्राप्त कर लेनेपर मनमें संताप नहीं रह जाता।

पृथ्वि! पूर्वकालमें मान्धाता नामके एक राजा थे। उनकी भक्तिपूर्वक स्तुतिसे प्रसन्न होकर मैंने उन्हें यह प्रतिमा सौंपी थी। राजा मान्धाताके मनमें मुक्ति पानेकी अभिलाषा थी, अतः वे नित्य इस प्रतिमाकी अर्चना करने लगे। जिस समय मथुरामें लवणासुरका वध हुआ था, उसी समय वह प्रतिमा इस तीर्थमें स्थापित की गयी थी। यह विग्रह परम दिव्य, पुण्यस्वरूप एवं तेजसे सम्पन्न है।

इसके मथुरा आनेकी कथा विचित्र है। कपिल नामके मुनिने अपार श्रद्धा और मनोयोगपूर्वक मेरी इस वराही प्रतिमाका निर्माण किया था। ये विप्रवर कपिल प्रतिदिन इस प्रतिमाका ध्यान एवं पूजन करते थे। देवि! फिर इन्द्रने उन मुनिवर कपिलसे इसके लिये प्रार्थना की। तब कपिलने प्रसन्न होकर यह दिव्य रूपवाली प्रतिमा उन्हें दे दी। जब इन्द्रको यह प्रतिमा प्राप्त हुई तो उनके हृदयमें हर्ष भर गया और नित्यप्रति भक्तिके साथ मेरा पूजन करने लगे। इसके फलस्वरूप शक्रको सर्वोत्कृष्ट दिव्यज्ञान प्राप्त हो गया। इन्द्रने मेरी इस 'कपिलवराह' नामक प्रतिमाकी बहुत वर्षोंतक पूजा की। इसके बाद रावणनामक दुर्दान्त राक्षस हुआ। वह महान् पराक्रमी निशाचर इन्द्रके लोकमें गया और स्वर्गको जीतनेकी चेष्टा करने लगा और देवराजके साथ युद्ध करने लगा। उसने देवताओंको परास्त कर दिया। परम पराक्रमी इन्द्र भी उससे हार गये और उन्हें बन्दी बनाकर रावण उनके भवनमें घुस गया। जब वह राक्षस रत्नोंसे सुशोभित इन्द्र-भवनमें गया तो उसे इन भगवान् 'कपिलवाराह'के दर्शन हुए। देखते ही उसने अपना मस्तक जमीनपर टेक दिया और दीर्घकालतक इन श्रीहरिकी स्तुति की। इसपर भगवान् विष्णु सौम्यरूप धारणकर पुष्पक विमानपर आरूढ़

होकर उस राक्षसके पास आये। साथ ही उस विग्रहमें उनका प्रवेश हो गया। रावणने प्रतिमा उठानी चाही, किंतु वह उठा न सका। अब उसके आश्चर्यकी सीमा न रही। उसने कहा—'भगवन्! बहुत पहलेकी बात है, मैंने शंकरसहित कैलासपर्वतको भी अपने हाथोंसे उठा लिया था। आपकी आकृति तो बहुत ही छोटी है, फिर भी उठानेमें मेरी शक्ति कुण्ठित हो गयी है। देवेश्वर! आपको नमस्कार है। मुझपर प्रसन्न होनेकी कृपा करें। प्रभो! मेरी हार्दिक इच्छा है कि मैं आपको अपनी सर्वोत्तम पुरी लङ्कामें ले चलूँ।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! उस समय मैंने 'कपिलवराह'के रूपमें रावणसे कहा था—'राक्षस! तुम अवैष्णव व्यक्ति हो। तुम्हें ऐसी भक्ति कहाँसे प्राप्त हो गयी?' तब मुझे 'कपिलवराह'की बात सुनकर रावणने कहा—'महात्मन्! आपके पवित्र दर्शनसे ही मुझे ऐसी अनन्य भक्ति सुलभ हो गयी है। देवेश्वर! आपको मेरा बार-बार प्रणाम है। आप कृपया मेरी पुरीमें पधारें।' पृथ्वि! तब मेरी यह प्रतिमा हल्की हो गयी और रावण तीनों लोकोंमें विख्यात मेरी उस 'कपिलवराह'की प्रतिमाको पुष्पकविमानपर चढ़ाकर लङ्का ले आया और वहाँ उसे प्रतिष्ठित कर दी। तदनन्तर जब भगवान् रामने राक्षसराज रावणको मारकर लङ्काके राजसिंहासनपर विभीषणका अभिषेक किया तो विभीषणने श्रीरामसे प्रार्थना की—'प्रभो! यह सारा राज्य आपका है। आप इसे स्वीकार करें।'

श्रीरामने कहा—'राक्षसराज विभीषण! यह सब कुछ तुम्हारा है, इससे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। पर राक्षसेश्वर! इन्द्रके लोकसे जो रावण द्वारा 'कपिलवराह'की प्रतिमा यहाँ लायी गयी है, केवल उसे मुझे दे दो। उन वराहभगवान्‌की मैं प्रतिदिन पूजा करना चाहता हूँ। दानवेश्वर! मैं उन्हें अयोध्या ले जाऊँगा।' तब विभीषणने उस दिव्य प्रतिमाको श्रीरामको सादर समर्पण कर दिया। श्रीरामने उसे पुष्पक विमानपर रखकर अपनी नगरी अयोध्याके लिये प्रस्थान किया और अयोध्या पहुँचकर उसकी स्थापना की और प्रतिदिन पूजा करनेका नियम बना लिया। इस प्रकार दस वर्ष व्यतीत हो जानेपर श्रीरामने लवणासुरका वध करनेके लिये शत्रुघ्नको आज्ञा दी। उस समय वह राक्षस मथुरामें रहता था। शत्रुघ्नने महात्मा श्रीरामको प्रणाम किया और अपनी चतुरङ्गिणी सेना लेकर मथुराके लिये चल पड़े। लवणासुरका रूप बड़ा भयंकर था। सभी राक्षस उसे अपना नायक मानते थे। फिर भी शत्रुघ्नने उसका वध कर डाला। तत्पश्चात् शत्रुघ्न मथुरा नगरके भीतर गये, और वहाँ उन्होंने अत्यन्त तेजस्वी छब्बीस हजार वेदके पारगामी ब्राह्मणोंको बसाया। जहाँ एक भी निवासी वेद नहीं जानता था, वहाँ चारों वेदोंके ज्ञाता पुरुष निवास करने लगे। अब वह ऐसा स्थान पवित्र बन गया, जहाँ एक भी ब्राह्मणको भोजन कराया जाय तो करोड़ ब्राह्मणोंके भोजन करनेके समान फल होने लगा।

पृथ्वि! फिर लौटनेपर जब शत्रुघ्नने लवणासुरके वधका यथावत् समाचार श्रीरामसे कहा, तब उस असुरकी मृत्युका वृत्तान्त सुनकर भगवान् राघवेन्द्रने प्रसन्न होकर उनसे कहा—'शत्रुघ्न! तुम्हारे मनमें जिस वस्तुकी अभिलाषा हो, वह तुम मुझसे वरके रूपमें माँग लो।' उस समय श्रीरामकी बात सुनकर शत्रुघ्नने कहा—'भगवन्! आप मेरे पूज्य हैं। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं तो मुझे यह भगवान् 'कपिलवराह'की प्रतिमा देनेकी कृपा करें।' तब शत्रुघ्नके वचन सुनकर श्रीरामने कहा—'शत्रुघ्न! तुम इन वराह भगवान्‌की प्रतिमा ले जा सकते हो। तुम्हारे अनुगत मण्डलीको धन्यवाद और संसारमें पवित्र उस मथुरापुरीको धन्यवाद! मथुराका वह जनसमाज

धन्य है, जो सदा 'श्रीकपिलवराह'का दर्शन करेगा। शत्रुघ्न ! जो इन कपिलवराहका दर्शन, स्पर्श एवं ध्यान करता है और इन्हें प्रतिदिन स्नान कराता तथा इनका अनुलेपन करता है, उसके सब पापोंको ये हर लेते हैं। जो इनकी पूजा तथा दर्शन करता है उसके समस्त पापोंका नाश करके ये मोक्षतक दे डालते हैं।'

पृथ्वि ! इस प्रकार कहकर श्रीरामने कपिलवराहकी यह प्रतिमा शत्रुघ्नको दे दी। उसे लेकर शत्रुघ्न मथुरापुरी चले गये। और वहाँ उन्होंने मेरे पास ही उसकी स्थापना कर दी। मध्यभागमें स्थापित करके उनकी विधिवत् पूजा की। 'गया'में तथा ज्येष्ठ मासमें 'पुष्कर'क्षेत्रमें पिण्डदान करनेसे एवं 'सेतुबन्ध-रामेश्वर'के दर्शन करनेसे मनुष्य जो फल पाता है, वह इनका दर्शन करनेसे पा जाता है। वैसा ही फल विश्रान्तिसंज्ञक, गोविन्द, केशव तथा दीर्घविष्णुके प्रति श्रद्धा होनेपर प्राप्त होता है। मेरा तेज प्रातःकाल 'विश्रान्तिसंज्ञक'में, मध्याह्नके अवसरपर 'दीर्घविष्णु'में तथा दिनके चतुर्थ भाग अर्थात् सायंकालमें 'केशव'में प्रतिष्ठित रहता है। देवि ! यह ब्रह्मविद्या (वराहपुराण) परम प्राचीन है। (अध्याय १६३)

अन्नकूट (गोवर्धन)-पर्वतकी परिक्रमाका प्रभाव

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! मथुराके पास ही पश्चिम दिशामें दो योजनके विस्तारमें गोवर्धन नामसे प्रसिद्ध एक क्षेत्र है, जहाँ वृक्षों और लताओंसे मण्डित एक सुन्दर सरोवर भी है। मथुराके पूर्व भागमें 'इन्द्र'तीर्थ, दक्षिणमें 'यम'तीर्थ, पश्चिममें 'वरुण'तीर्थ और उत्तरमें 'कुबेर'तीर्थ—ये चार तीर्थ हैं। भद्रे ! यहाँ 'अन्नकुण्ड' नामका भी एक क्षेत्र है, इसकी परिक्रमा करनेवाले मानवका संसारमें फिर जन्म नहीं होता। फिर 'मानसी-गङ्गा'में स्नान कर गोवर्धनगिरिपर भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करना चाहिये। जो इस गोवर्धन-पर्वतकी प्रदक्षिणा कर लेता है, उसके लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता। सोमवती अमावास्याके दिन जो यहाँ जाकर पितरोंको पिण्ड प्रदान करता है, उसे राजसूय यज्ञका फल प्राप्त हो जाता है। गयातीर्थमें जाकर पिण्डदान करनेवाले मनुष्योंको जो फल मिलता है, वही गोवर्धनपर पिण्डदानसे सुलभ हो जाता है, इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं। गोवर्धन भगवान्की परिक्रमा करनेसे राजसूय और अश्वमेध-यज्ञोंका फल प्राप्त होता है।

गोवर्धनकी परिक्रमाकी विधि यह है कि भाद्रपद मासके शुक्लपक्षकी पुण्यमयी एकादशी तिथिके दिन इस पर्वतके पास उपवास रहकर प्रातःकाल सूर्योदयके समय स्नान कर पर्वतपर स्थित श्रीहरिकी पूजा करनी चाहिये। इसके बाद 'पुण्डरीक'तीर्थपर जाकर वहाँके कुण्डमें स्नान कर देवताओं और पितरोंका सम्यक् प्रकारसे अर्चन करके भगवान् पुण्डरीकका पूजन करे। वहाँ निर्मल जलसे पूर्ण एक 'अप्सराकुण्ड' है। वहाँ स्नान करनेसे सभी पाप धुल जाते हैं। उस कुण्डपर तर्पण करनेसे राज-सूय और अश्वमेध-यज्ञोंका फल निश्चय ही मिल जाता है। मथुरामें 'संकर्षण' नामसे विख्यात एक तीर्थ है, उसके रक्षक बलभद्रजी हैं। वहाँ जाने एवं स्नान करनेसे पहलेसे लगी हुई गोहत्याके पापसे मुक्ति हो जाती है।

पृथ्वि ! गोवर्धनके पासमें ही एक 'शक्रतीर्थ' है। यहाँ श्रीकृष्णने इन्द्रकी पूजाके लिये किये जा रहे यज्ञको नष्ट कर दिया था। उस यज्ञके अवसरपर भोज्य आदि पदार्थोंकी बहुत बड़ी ऊँची ढेरी लग गयी थी। उस समय इन्द्रके साथ श्रीकृष्णका विवाद छिड़ गया।

इन्द्रने घोर वृष्टि की। वह जल व्रजवासियों तथा गौओंके लिये कष्टप्रद होने लगा। श्रीकृष्णने उनकी रक्षा करनेके निमित्त इस श्रेष्ठ पर्वत (गोवर्धन)को हाथपर उठा लिया था। तभीसे यह पर्वत 'अन्नकूट-पर्वत'के नामसे विख्यात हो गया। यहीं आगे एक स्वच्छ जलवाला 'कदम्बखण्ड'नामक कुण्ड है। वहाँ स्नान करके पितरोंका तर्पण करनेसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। इसके बाद सौ शिखरवाले देवगिरिपर जाय, जहाँ स्नान एवं दर्शन करनेसे 'वाजपेय' यज्ञका फल मिलता है।

देवि! जब 'मानसीगङ्गा'के उत्तर तटपर चक्र धारण करनेवाले देवेश्वर श्रीहरिका अरिष्टासुरके साथ घोर युद्ध हुआ था, तब उस असुरने अपना वेष बैलका बना लिया था। उसकी जीवनलीला श्रीकृष्णके ही हाथ समाप्त हुई। उसके क्रोधपूर्वक एड़ीके प्रहारसे पृथ्वीपर एक तीर्थ बन गया। यह वृषभासुरके वधसे निर्मित तीर्थ अत्यन्त अद्भुत है—यह जानने योग्य बात है। उस वृषभरूपी महासुरको मारनेके पश्चात् श्रीकृष्णने उसी तीर्थमें स्नान किया था। यह जानकर श्रीकृष्णके मनमें चिन्ता उत्पन्न हो गयी कि यह पापी अरिष्टासुर बैलके रूपमें था और मेरे हाथ इसकी हत्या हो गयी है। इतनेहीमें भगवती श्रीराधादेवी श्रीकृष्णके समीप पधारीं। उन्होंने अपने नामसे सम्बद्ध उस स्थानको एक तीर्थरूप कुण्ड बना दिया। तबसे समस्त पापोंको हरनेवाले उस शुभ स्थानकी 'राधाकुण्ड'नामसे प्रसिद्धि हुई। प्रसङ्गतया लोग उसे 'अरिष्टकुण्ड' और 'राधाकुण्ड' भी कहते हैं। वहाँ स्नान करनेसे राजसूय और अश्वमेध-यज्ञोंका फल मिलता है। मथुराके पूर्व दिशामें एक तीर्थ 'इन्द्रध्वज'के नामसे विख्यात है, वहाँ स्नान करनेवाले स्वर्गलोकमें जाते हैं। यहाँ परिक्रमा एवं यात्राका पुण्य भगवान्‌को समर्पित कर देना चाहिये। मनुष्यका कर्तव्य है कि प्रारम्भ करते समय 'चक्रतीर्थ'में स्नान करे और यात्रासमाप्तिके अवसरपर 'पञ्चतीर्थ-कुण्ड'में स्नान कर ले। यहाँ रात्रि-जागरणका भी नियम है। इससे मनुष्यके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

भद्रे! 'अन्नकूटपर्वत'की परिक्रमाका विधान मैंने तुमसे बतला दिया। इसी प्रकार इसी क्रमसे आषाढ़में भी प्रदक्षिणा की जाती है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीहरिके इस तीर्थकी प्रदक्षिणाके प्रसङ्गका तथा गोवर्धनके माहात्म्यको सुनता है, उसे गङ्गामें स्नान करनेका फल मिल जाता है।

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि! अब एक इतिहासयुक्त दूसरा प्रसङ्ग सुनो। मथुराके दक्षिण किसी नगरमें सुशील नामक एक धनी वैश्य रहता था। उस वैश्यका प्रायः सारा जीवन क्रय-विक्रयमें ही बीत गया। न कभी उसे किसी प्रकारका सत्सङ्ग प्राप्त हुआ और न उसने कोई दान-धर्म आदि सत्कर्म ही किये। इस प्रकार गृह-कुटुम्बमें आसक्त रहते ही वह वैश्य कालवश होकर इस लोकसे चल बसा और उसे प्रेत योनि मिली और बिना जलवाले तथा छायारहित जङ्गलोंमें भूख-प्याससे व्याकुल होकर वह इधर-उधर भटकने लगा। यों घूमता हुआ वह भयंकर प्रेत मरुस्थलमें पहुँच गया और बहुत दिनोंतक वहाँ एक वृक्षपर निवास करता रहा।

पृथ्वि! इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हो जानेपर दैवयोगसे वहाँ एक खरीद-बिक्री करनेवाला वैश्य आया, जिसे देखकर उस प्रेतको अत्यन्त प्रसन्नता हुई और नाचते हुए वह बोला—'अहो! तुम इस समय मेरा आहार बनकर यहाँ आ गये हो।' अब क्या था, प्रेतकी बात सुनकर वह व्यापारी वैश्य अत्यन्त भयभीत होकर भाग चला। पर प्रेतने दौड़कर उसे पकड़ लिया और कहा—'अब मैं तुम्हें खाऊँगा।' उस प्रेतकी बात सुनकर महाजनने कहा—'राक्षस! मैं अपने परिवारके भरण-पोषणके विचारसे इस घोर वनमें आया हूँ। मेरे घरमें बूढ़े पिता और माता हैं, एक पतिव्रता पत्नी भी है। यदि तुम मुझे खा लोगे तो

उन सबकी मृत्यु हो जायगी।' उस वैश्यकी बात सुनकर प्रेतने पूछा—'महामते ! तुम किस स्थानसे यहाँ कैसे आये हो ? सब सत्य-सत्य बताओ।'

वैश्यने कहा—'प्रेत ! मैं गिरिराज गोवर्धन और महानदी यमुना—इन दोनोंके बीच मथुरापुरीमें रहता हूँ। मैंने पहलेसे जो कुछ सम्पत्ति संचित की थी, वह सब चोर उठा ले गये और मैं सर्वथा निर्धन हो गया, अतः थोड़ा धन लेकर व्यापारके लिये इस मरुस्थलकी ओर आया हूँ। ऐसी स्थितिमें अब तुम्हें जो जँचे, वह करो।

प्रेतने कहा—'वैश्य ! तुमपर मुझे दया आ गयी है, अतः अब मैं तुम्हें खाना नहीं चाहता। यदि तुम मेरे वचनका पालन कर सको तो एक शर्तपर मैं तुम्हें छोड़ दूँगा। तुम मेरा एक कार्य सिद्ध करनेके लिये यहाँसे लौटकर मथुरा जाओ। वहाँ जाकर तुम 'चातुःसामुद्रिक' नाम कूपपर जाकर सविधि स्नान कर मेरे नामका उच्चारण करके अपने घरके धनसे विधिपूर्वक पिण्डदान करो और उन स्नान-दानादि सभी कर्मोंका फल मुझे दे देना। बस, इतना ही काम है, अब तुम सुखपूर्वक जा सकते हो।' प्रेतकी बात सुनकर वैश्यने उत्तर दिया—'प्रेत ! मेरे पास एक मकानको छोड़कर घरपर और कोई धन नहीं है।' इसपर प्रेतने उससे मुसकाकर कहा—'वैश्य ! मैंने जो तुमसे कहा है कि तुम्हारे घरमें धन है, उसका अभिप्राय यह है—तुम्हारे घरमें एक गड्ढा है और उसमें सुवर्णकी बहुत बड़ी संचित राशि गड़ी है। मैं तुम्हें मथुराका मार्ग भी दिखला देता हूँ।'

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! इसपर उस वैश्यने पुनः पूछा—'प्रेत ! इस योनिमें तुम्हें ऐसा दिव्य ज्ञान कैसे प्राप्त है ?

प्रेतने कहा—'वैश्य ! मैं भी पहले जन्ममें मथुराका निवासी था। जहाँ साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण विराजते हैं। एक दिन प्रातःकाल उन भगवान्‌के मन्दिरपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रजनोंका समाज जुटा था। वहाँ एक श्रेष्ठ कथावाचक बैठे थे जो पुराणोंकी पवित्र कथा कह रहे थे। मेरा एक मित्र भी प्रतिदिन वहीं जाया करता था। उस दिन मित्रकी प्रेरणासे मैं भी वहाँ पहुँच गया। अत्यन्त आदरके साथ समाजने बार-बार मुझे संतुष्ट करनेका प्रयत्न किया। उसमें मैंने सुना कि वहाँ एक पवित्र कूप है जो पापोंको धो डालता है। इस कूपमें चारों समुद्र आ करके प्रतिष्ठित होते हैं। इस कूपके माहात्म्यको सुननेसे महान् फल मिलता है। उस समय सभी श्रेष्ठ पुरुषोंने कथा-वाचकजीको धन दिया, किंतु मैं मौन रह गया। तब मित्रने मुझसे पुनः कहा—'प्रियवर ! अपनी शक्तिके अनुसार कुछ अवश्य देना चाहिये।' इसपर मैंने उन कथावाचकको एक 'सुवर्ण' (आठ रत्ती सोनेकी एक मुद्रा प्रदान कर दिया। इसके बाद जब मेरी मृत्यु हुई तो मेरे पूर्वकर्मोंके अनुसार यमराजकी आज्ञासे मुझे यह दुःखद प्रेतयोनि मिली। मैंने पूर्वजन्ममें कभी तीर्थस्नान, दान-हवन अथवा पितरोंके लिये तर्पण नहीं किये थे, इसी कारण मुझे प्रेत बनना पड़ा।' इसपर उस वैश्यने पुनः पूछा—'तुम इस वृक्षकी जड़में रहकर कैसे प्राण धारण करते हो ?'

प्रेत बोला—'पहलेकी बातें मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ। मैंने उन कथावाचकको जो सुवर्णमुद्रा दी थी, उसीके प्रभावसे मैं इस वृक्षपर भी प्रायः तृप्त रहता हूँ, यद्यपि उसे भी मैंने दूसरेकी प्रेरणासे ही दी थी। इसीका परिणाम है कि प्रेतयोनिमें भी मेरा दिव्य ज्ञान बना है।

वसुंधरे ! प्रेतकी बात सुनकर वह वैश्य मथुरापुरी गया और वहाँ पहुँचकर उसने प्रेतके निर्देशानुसार सब कुछ वैसा ही किया। इससे वह प्रेत मुक्त होकर स्वर्ग गया।

देवि ! यह मथुरापुरीका माहात्म्य है। यहाँ 'चतुः-सामुद्रिक' कूपपर पिण्डदान करनेसे परमगति प्राप्त होती

है। मथुराके किसी स्थानपर, चाहे वह देवालय हो या चौराहा—जहाँ-कहीं भी किसीकी मृत्यु हो, वह मुक्त हो जाता है, इसमें संदेह नहीं। दूसरी जगहके किये हुए पाप तीर्थोंमें जानेपर नष्ट हो जाते हैं, पर जो पाप उन तीर्थस्थानोंमें किये जाते हैं, वे तो वज्रलेप हो जाते हैं। पर यह मथुरापुरीकी ही विशेषता है कि यदि (भूलसे) यहाँ पाप बन भी गया तो वह वहीं नष्ट भी हो जाता है, क्योंकि यह पुरी परम पुण्यमयी है और इसमें कहीं पापके लिये स्थान नहीं है*। यदि कोई एक पुरुष हजार युगोंतक एक पैरपर खड़ा होकर तपस्या करे और एक व्यक्ति मथुरामें निवास करे तो मथुरावासीका पुण्य ही अधिक होता है। मथुरामें जो क्रोध रहित मानव देवताओंकी पूजा तथा तीर्थोंमें स्नान करते हैं, वे देवयोनिमें जाते हैं। दूसरी जगह एक हजार महाभाग ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे जो फल मिलता है, वही फल मथुरामें एक ब्राह्मणकी पूजासे प्राप्त होता है; क्योंकि देवताओंका सिद्ध समाज मथुरामें आकर सामान्य प्राणीके रूपमें स्थित है। देवताओं, सिद्धों और भूतोंका जो समुदाय है, वे सभी यहाँ चार भुजावाले विष्णुस्वरूप मथुरावासी प्राणियोंका दर्शन करने आते हैं; अतः मथुरामें जो मनुष्य हैं, वे विष्णुके ही स्वरूप हैं। (अध्याय १६४-६५)

'असिकुण्ड'-तीर्थ तथा विश्रान्तिका माहात्म्य

धरणीने कहा—प्रभो! महादेव! आपके श्रीमुखसे मैं अनेक प्रकारके तीर्थोंका वर्णन सुन चुकी। अब आप मुझे 'असिकुण्ड'के तीर्थका प्रसङ्ग सुनानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! सुमति नामके एक धार्मिक और विख्यात राजा थे, जिनकी किसी तीर्थ-यात्रा प्रसङ्गमें मृत्यु हो गयी। अब उनके पुत्र विमतिने राज्य सँभाला। इसी बीच एक दिन वहाँ नारदजी पधारे। उसने उनका पाद्य एवं अर्घ्य आदिसे स्वागत किया। फिर बातोंके प्रसङ्गमें मुनिने उससे कहा—'राजन्! पिताके ऋणको चुका देनेपर ही पुत्र धर्मका भागी हो सकता है।' यों कहकर नारदमुनि वहीं अन्तर्धान हो गये। मुनिके चले जानेपर राजाने अपने मन्त्रियोंसे नारदजीकी बातका अर्थ पूछा। मन्त्रियोंने कहा—'अपनी तीर्थयात्राका फल आप महाराजको समर्पण कर दें तो पिताका ऋण चुक सकता है, क्योंकि उनकी तीर्थयात्रा अधूरी हो रही थी।' नारदजीके कथनका यही आशय था।

देवि! मन्त्रियोंकी बात सुनकर विमतिने मथुरा पुरीमें निवासकी बात सोची, क्योंकि वहाँ प्रायः सभी तीर्थ स्थित हैं। विमतिके मथुरा आनेपर वहाँके तीर्थोंने आपसमें कहा—'इसका सामना करनेमें तो हम सभी असमर्थ हैं; अतः उचित है कि जहाँ भगवान् वराह विराजते हैं, हमलोग उस 'कल्पग्राम'में चलें।' वसुंधरे! इस प्रकार परामर्श करके सभी तीर्थ 'कल्पग्राम'में चले गये। देवि! वराहका रूप धारण कर वहाँ मैं आनन्दसे निवास करता हूँ। वे सभी मेरे सामने कल्पग्राममें आये और कहने लगे—भगवन्! आप स्वयं श्रीहरि हैं, आप अचिन्त्य, अच्युत एवं जगत्के शास्ता और स्रष्टा हैं। प्रभो! आपकी जय हो, जय हो!

भगवान् वराह कहते हैं—वसुधे! जब तीर्थोंने मेरी इस प्रकार स्तुति की, तब मैंने उनसे कहा—'तीर्थवरो! तुम्हारा कल्याण हो। तुम मुझसे कोई वर माँग लो।'

* अन्यत्र हि कृतं पापं तीर्थमासाद्य गच्छति। तीर्थे तु यत्कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति।
मथुरायां कृतं पापं तत्रैव च विनश्यति। एषा पुरी महापुण्या यस्यां पापं न विद्यते॥
(वराहपुराण १६५। ५७-५८)

तीर्थ बोले—'वराहका रूप धारण करनेवाले देवेश्वर ! यदि आप प्रसन्न हैं तो हमें विपत्तिसे अभय प्रदान करनेकी कृपा कीजिये।'

इसपर मैं चलकर मथुरापुरी आया और अपने दिव्य 'असि' (तलवार)से विमतिका शिरश्छेद कर दिया। तलवारकी नोकसे वहाँ पृथ्वीमें एक गड्ढा हो गया, जो एक दिव्य कुण्डके रूपमें परिवर्तित हो गया और वही 'असिकुण्ड' नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसके प्रभावसे सुमति और विमति भी मुक्त हो गये।

देवि ! दक्षिणसे उत्तरतकके तीर्थोंकी जो संख्या मैं पहले कह चुका हूँ, उनकी गणना इस असिकुण्डसे ही आरम्भ करनी उत्तम है। जो मनुष्य द्वादशीके दिन प्रातःकाल सोनेसे उठते ही असिकुण्डमें स्नान करता है, उसे यहाँ वाराह, नारायण, वामन, और राघव-की सुवर्ण प्रतिमाओंके दिव्य दर्शन होते हैं। इनका दर्शन करनेवाला फिर संसारमें नहीं आता।

भगवान् वराहने कहा—देवि ! अब विश्रान्ति-तीर्थकी महिमा सुनो। पहले उज्जयिनीमें एक दुराचारी ब्राह्मण रहता था। वह न देवताओंकी पूजा करता, न साधु-संतोंको प्रणाम करता और न तीर्थोंमें जाकर कभी स्नान ही करता था। वह मूर्ख प्रातः और सायंकाल इन दोनों संध्याओंमें भी सोया रहता था। ब्रह्माजीने बताया है कि सम्पूर्ण आश्रमोंमें गार्हस्थ्य ही उत्तम है। जैसे सभी जन्तु पृथ्वीके आश्रित हैं और शिशुओंका जीवन मातापर अवलम्बित है। इसी प्रकार सम्पूर्ण प्राणिवर्ग गृहस्थोंपर ही आश्रित है। पर वह अधम ब्राह्मण इस आश्रममें भी रहकर सदा चोरी आदिमें ही लगा रहता।

वसुंधरे ! एक बार जब वह रातमें चोरीके लिये इधर-उधर दौड़ रहा था, उसी समय राजाके सैनिकोंने उसे पकड़नेके लिये ललकारा। इसपर वह तेजीसे भागता हुआ एक कुएँमें जा गिरा, जहाँ उसकी जीवनलीला ही समाप्त हो गयी और इस प्रकार वह अगले जन्ममें एक वनमें ब्रह्मराक्षस हुआ।

उसका रूप बड़ा भयंकर था। एक समयकी बात है कि कार्यवश वहीं एक जनसमाज आ गया। उसीमें एक ऐसा ब्राह्मण भी था, जो रक्षोघ्नमन्त्र पढ़कर सबकी रक्षा करता था। अब वह ब्रह्मराक्षस उस ब्राह्मणसे आकर कहने लगा—'विप्र ! तुम्हारे मनमें जिस वस्तुकी इच्छा हो, वह मैं तुम्हें देनेके लिये तत्पर हूँ। बहुत दिनोंके बाद आज मुझे मनचाहा भोजन प्राप्त हुआ है। विप्र ! तुम उठो और यहाँसे अन्यत्र जाकर कहीं सो जाओ। जिससे मैं इन सबको खाकर तृप्त हो जाऊँ। इसपर ब्राह्मणने कहा—'राक्षस ! मैं इन्हींके साथ यहाँ आया हूँ, ये सभी मेरे परिवार ही हैं। अतः मैं इन्हें छोड़ नहीं सकता। तुम यहाँसे चले जाओ। मेरे मन्त्रमें ऐसी शक्ति है कि उसके प्रभावसे तुम इनपर आँखतक नहीं उठा सकते। अस्तु, अब तुम यह बतलाओ कि तुम्हें यह योनि कैसे मिली ?'

इसपर वह राक्षस कहने लगा—'विप्र ! केवल अनाचारके कारण मेरी यह दुर्गति हुई है।' इस प्रकार उस राक्षसने अपनी सारी बातें यथावत् ब्राह्मणके सामने स्पष्ट कीं। इसपर उस ब्राह्मणने कहा—'राक्षस ! तुम अब मित्रकी श्रेणीमें आ गये हो। बोलो मैं तुम्हें क्या दूँ।'

राक्षस बोला—'विप्र ! यदि मेरे मनमें जो बात बसी है, वह तुम देना चाहते हो तो दे दो। तुमने मथुरा-पुरीमें विश्रान्तितीर्थमें जो स्नान किया है, उसका फल मुझे देनेकी कृपा करो, जिससे मैं मुक्त हो जाऊँ।' अब राक्षसके दुःखसे दुःखी होकर वह कृपालु ब्राह्मण बोला—'राक्षस ! विश्रान्ति नामक तीर्थके विषयमें तुम्हें जानकारी कैसे प्राप्त हुई और उसका ऐसा नाम क्यों हुआ ? इसे बतानेकी कृपा करो।'

राक्षस बोला—'ब्राह्मण ! मैं पहले उज्जयिनीमें निवास करता था। एक समयकी बात है, मैं संयोगवश श्रीविष्णुके मन्दिरमें चला गया। उस मन्दिरके फाटकपर एक कथा कहनेवाले वेदके विद्वान् ब्राह्मण बैठते थे,

जिनका विश्रान्ति तीर्थकी महिमा सुनाना प्रतिदिनका व्रत था। उस माहात्म्यको सुननेसे ही मेरे हृदयमें भक्ति उदित हुई। अनघ ! मुझे वहीं यह सुननेका अवसर मिला कि इस तीर्थका 'विश्रान्ति' नाम कैसे हुआ है ? उन्होंने ही स्पष्ट बतलाया था कि इस स्थानपर संसारके शासक श्रीहरि विश्राम करते हैं। उन विशाल भुजावाले प्रभुको वासुदेव भी कहते हैं। इसीलिये यह तीर्थ 'विश्रान्ति' नामसे विख्यात हुआ है।" राक्षसकी यह बात सुनकर उस ब्राह्मणने कहा—'राक्षस ! उस तीर्थमें एक बार स्नान करनेका पुण्यफल मैंने तुम्हें दे दिया।' प्रिये ! ब्राह्मणके मुखसे यह वचन निकलते ही वह राक्षस उस योनिसे मुक्त हो गया। (अध्याय १६६-६७)

मथुरा तथा उसके अवान्तरके तीर्थोंका माहात्म्य

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! भगवान् शिव इस मथुरापुरीकी निरन्तर रक्षा करते हैं। उनके दर्शनमात्रसे मथुराका पुण्य-फल सुलभ हो जाता है। बहुत पहले रुद्रने पूरे एक हजार वर्षतक मेरी कठिन तपस्या की थी। मैंने संतुष्ट होकर कहा—'हर ! आपके मनमें जो भी हो, वह वर मुझसे माँग लें।

महादेवजी बोले—'देवेश ! आप सर्वत्र विराजमान हैं। आप मुझे मथुरामें रहनेके लिये स्थान देनेकी कृपा करें।' इसपर मैंने कहा—'देव ! आप मथुरामें क्षेत्रपालका स्थान ग्रहण करें—मैं यह चाहता हूँ। जो व्यक्ति यहाँ आकर आपका दर्शन नहीं करेगा, उसे कोई सिद्धि प्राप्त न होगी। जिस प्रकार स्वर्गमें इन्द्रकी अमरावतीपुरी है, वैसी ही जम्बूद्वीपमें यह मथुरापुरी है। यद्यपि मथुरा-मण्डलका विस्तार बीस योजनोंका है, पर वहाँ एक-एक पैर रखनेपर भी अश्वमेध यज्ञोंका फल मिलता है। इस क्षेत्रमें साठ करोड़, छः हजार तीर्थ हैं। गोवर्धन तथा अक्रूरक्षेत्र—ये दो करोड़ तीर्थोंके समान हैं एवं 'प्रस्कन्दन' और 'भाण्डीर'—ये छः कुरुक्षेत्रोंके समान हैं। 'सोमतीर्थ', 'चक्रतीर्थ', 'अविमुक्त', 'यमन', 'तिन्दुक' और 'अक्रूर' नामक तीर्थोंकी 'द्वादशादित्य' संज्ञा है। मथुराके सभी तीर्थ कुरुक्षेत्रसे सौ गुना बढ़कर हैं, इसमें कोई संशय नहीं। जो मथुरापुरीके इस माहात्म्यको समाहित चित्तसे पढ़ता या सुनता है, वह परमपदको प्राप्त होता है और अपने मातृ-पितृ—दोनों पक्षोंके दो सौ बीस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है।

मथुराके सभी स्थानोंमें भगवान् श्रीकृष्णके चरणके चक्रचिह्न सुशोभित हैं। उन्हींके मध्यमें एक ऐसा भी तीर्थ है, जहाँ चक्रका आधा ही चिन्ह दृष्टिगोचर होता है। वहाँके निवासी मुक्ति पानेके अधिकारी हो जाते हैं—इसमें संशय नहीं। श्रीकृष्णकी क्रीडाभूमिके भी दो छोर हैं—एक उत्तर और दूसरा दक्षिण। उन दोनोंके मध्य भाग-में वे विराजते हैं। आकारमें वे द्वितीयाके चन्द्रमाके समान हैं। जो मनुष्य वहाँ स्नान और दान करता है, उसे वे दिव्य तीर्थ मथुराक्षेत्रका फल प्रदान करनेके लिये सदा उद्यत रहते हैं। यहाँ नियमके अनुसार रहकर जो शुद्ध भोजन करनेवाले व्यक्ति स्नान करते हैं, उन्हें अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होती है—इसमें कोई संशय नहीं। 'दक्षिणकोटि'से आरम्भ करके 'उत्तर-कोटि'पर यात्रा समाप्त करनी चाहिये। वहाँ यज्ञोपवीत-के प्रमाणभर भूमिपर जो चलते हैं, उनके द्वारा अनेक कुलोंकी रक्षा हो सकती है।

पृथ्वीने पूछा—प्रभो ! 'यज्ञोपवीत'का क्या माप है, आप यह मुझे स्पष्टतः बतानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह कहते हैं—वरवर्णिनि ! अब मैं यज्ञोपवीतकी विधि बताता हूँ, सुनो। मेरी क्रीडाभूमिके

जो दक्षिणका छोर है, वहाँसे लेकर और उत्तर सिरेतककी जो सीमा है, इसीको 'यज्ञोपवीत'की सीमा कही गयी है। इसी क्रमसे दक्षिणसे आरम्भ करके उत्तरकी सीमापर यात्रा समाप्त करनी चाहिये। घरसे बाहर होनेपर जबतक स्नान न करे, तबतक मौन रहनेका नियम है। वसुंधरे! स्नान करनेके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करना परम आवश्यक है। इसके बाद बोला जा सकता है। देवि! स्नान समाप्त होनेपर क्रमशः देवाधिदेव श्रीकृष्णकी पूजा, यज्ञ, पयस्विनी गौका दान, सुवर्ण एवं धनका वितरण कर ब्राह्मणोंको भोजन कराये। इस प्रकार कर्म करनेवाला व्यक्ति पुनः संसारमें लौटकर नहीं आता, वह मेरे धामको प्राप्त होता है। इस 'अर्द्धचन्द्र' तीर्थमें जिनकी मृत्यु होती है, या और्ध्वदैहिक क्रिया होती है, वे सभी स्वर्गमें जाते हैं। इस तीर्थमें पुरुषकी हड्डियाँ जबतक रहती हैं, तबतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित रहता है। अधिक क्या? यदि यहाँ गदहेका भी शरीर जला दिया जाय तो वह भी विष्णुका रूप प्राप्त कर सकता है।

मथुराके प्राणी मेरे ही रूप हैं, उनके तृप्त होनेसे मैं तृप्त होता हूँ—इसमें संशय नहीं। देवि! इस विषयमें गरुडका एक आख्यान सुनो। एक बार वे श्रीकृष्ण-दर्शनकी अभिलाषासे मथुरा आये और देखा कि यहाँके सभी निवासी कृष्णके रूप थे। अन्तमें वे जैसे-तैसे भगवान्‌के पास पहुँचे और उनकी बड़ी स्तुति की। उनकी स्तुति सुनकर भगवान्‌ने कहा—'गरुड! तुम किस उद्देश्यसे मथुरा आये हो? और किसलिये यह मेरी स्तुति कर रहे हो? सभी बातें स्पष्ट बताओ।'

गरुड बोले—भगवन्! मैं आपके कृष्णरूपके दर्शनकी अभिलाषासे मथुरा आया था। पर यहाँके सभी निवासी मुझे आपके ही स्वरूप दीखे। मेरी दृष्टिमें मथुराकी सारी जनता एक समान प्रतीत होने लगी। सबको एक समान देखकर मैं मोहमें पड़ गया हूँ।' गरुड़की यह बात सुनकर श्रीहरि मुसकाये और मधुर वाणीमें इस प्रकार बोले।

श्रीकृष्णने कहा—'गरुड़! मथुराके निवासियोंका जो रूप है, वह मेरा ही रूप है। पक्षिराज! जिनके भीतर पाप भरे हैं, वे ही मथुरावासियोंको मुझसे भिन्न देखते हैं।' इस प्रकार कहकर भगवान् कृष्ण तत्क्षण वहीं अन्तर्धान हो गये और गरुड़ भी वहाँसे वैकुण्ठ गये। यहाँ मरकर मनुष्य, पशु, पक्षी अथवा तिर्यग्योनिके कीड़े, पतंगेतक भी—सब-के-सब चार भुजावाले विष्णुके रूप बन जाते हैं—यह नितान्त निश्चित है। देवि! यहाँ आकर श्रीकृष्णकी बहन भगवती एकानंशा, उनकी माता यशोदा-देवकी तथा 'महाविद्येश्वरी' देवियोंका अवश्य दर्शन करना चाहिये। यहाँके विश्रान्तितीर्थ, दीर्घविष्णु और केशव-के दर्शन करनेसे सभी देवताओंके दर्शन एवं पूजनका पुण्य-फल प्राप्त होता है। (अध्याय १६८-६९)

गोकर्णतीर्थ और सरस्वतीकी महिमा

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! अब एक दूसरा प्राचीन इतिहास बताता हूँ, उसे सुनो। बहुत पहले मथुरामें वसुकर्ण नामक एक प्रसिद्ध वैश्य रहता था। उसकी स्त्री सुशीला, बड़ी सद्गुणवती थी, पर उसे कोई संतान न थी। देवि! एक दिन जब वह वैश्य-पत्नी 'सरस्वती' नदीके तटपर अनेक पुत्रवती स्त्रियोंको देखकर एकान्तमें खिन्न होकर रो रही थी, तो एक मुनिके हृदयमें बड़ी दया आयी और उन्होंने उससे पूछा—'सुभगे! तुम कौन हो और क्यों रो रही हो?'

इसपर सुशीलाने कहा—'मैं एक पुत्रहीना स्त्री हूँ, पर मेरी सभी सखियाँ पुत्रवती हैं। यही मेरे खेदका कारण है।' इसपर मुनिने कहा—'देवि! भगवान्

गोकर्णकी कृपासे तुम्हें पुत्र मिलेगा। यशस्विनि ! तुम अपने पतिके साथ उनकी आराधना करो और स्नान, दीपदान-उपहार तथा अनेक प्रकारके जप और स्तोत्रोंद्वारा उन्हें प्रसन्न करनेका प्रयत्न करो।'

मुनिके इस उपदेशको सुनकर वह स्त्री उन्हें प्रणाम कर अपने घर गयी और इससे अपने पतिको अवगत कराया। इसपर वसुकर्णने उससे कहा—'देवि ! मुनिने जो बात कही है, यह मुझे भी आशाप्रद और अनुकूल जान पड़ती है।' अब वैश्य-दम्पति प्रतिदिन सरस्वती नदीमें स्नान कर पुष्प-धूप-दीप आदिके द्वारा गोकर्ण-महादेवकी आराधना करने लगे। इस प्रकार दस वर्ष बीत जानेपर भगवान् शंकर उनपर प्रसन्न हुए और उन्हें रूपवान् एवं गुणी पुत्र-प्राप्तिका वर दिया। फिर दसवें महीनेमें सुशीलाके एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। वसुकर्णने पुत्र-जन्मोत्सवके समय हजार गौओं, बहुत-से सुवर्ण तथा वस्त्रोंका दान किया। उसने भगवान् गोकर्णकी कृपासे उत्पन्न होनेके कारण उस बालकका नाम भी 'गोकर्ण' रखा। फिर यथासमय उसके अन्नप्राशन, चूड़ाकरण तथा यज्ञोपवीत आदि संस्कार कराये और वैवाहिक गोदान कराया। अब वसुकर्णका अधिकांश समय भगवान्‌की पूजा-उपासनादिमें बीतने लगा। इधर गोकर्ण भी युवावस्थामें पहुँच गया, पर उसे कोईपुत्र न हुआ, अतः पिताने उसके तीन और विवाह कर दिये। इस प्रकार उसकी चार भार्याएँ हो गयीं, जो सभी परम सुन्दरी—वय, रूप और उत्तम गुणोंसे सम्पन्न थीं। फिर भी किसीको संतान-सुख सुलभ न हो सका, अतः गोकर्णने भी पुत्र-प्राप्तिके लिये धर्मकृत्य आरम्भ किये और अनेक वापी, कूप, तालाब, मन्दिर आदि निर्माण कराये। पानीके लिये पौसले तथा भोजनके लिये सदावर्तकी भी व्यवस्था की। उसने 'गोकर्णशिव'के संनिकट ही पश्चिम दिशामें भगवान् चक्रपाणिका एक बहुत बड़ा पञ्चायतन (मन्दिर) बनवाया और एक विशाल उद्यान लगवाया, जिसमें अनेक प्रकारके वृक्ष एवं पुष्प भी लगवाये। वे चारों स्त्रियाँ मन्दिरमें जाकर भगवान्‌की पूजा-अर्चा करतीं। इस प्रकार धर्मनिष्ठामें प्रवृत्त गोकर्णके जब सारे धन-धान्य धीरे-धीरे समाप्त हो गये, तो उसे चिन्ता हुई। यह सोचकर कि 'अब महान् कष्टका समय उपस्थित हो गया; क्योंकि माता-पिता तथा आश्रित परिवारके भोजनकी व्यवस्था मुझपर निर्भर है और धनके बिना यह कार्य सुकर नहीं' उसने पुनः व्यापार करनेके लिये मनमें निश्चय किया और कुछ सहायकोंको साथ लेकर मथुरामण्डलसे बाहर गया और कुछ क्रय-विक्रयकी सामग्री लेकर वह अपने घर आया।

एक दिन वह थोड़े विश्रामकी इच्छासे पासके एक पर्वतकी चोटीपर गया, जहाँ बहुत-सी सुन्दर कन्दराएँ थीं। वहाँ जब वह इधर-उधर घूम रहा था कि उसकी दृष्टि एक अनुपम स्थानपर पड़ी, जो स्वच्छ जलसे सम्पन्न था। वहाँ फलवाले वृक्षों और सुगन्धित लता-पुष्पोंकी भी भरमार थी। एक जगह दो पहाड़ोंकी सन्धिमें मालाकी तरह गोलाकार रिक्त स्थान पड़ा था। वहीं उसे ऐसा शब्द सुनायी पड़ा, मानो कोई अतिथिके स्वागतके लिये बुला रहा हो। इतनेमें उसकी दृष्टि एक तोतेपर पड़ी, जो एक पिंजड़ेमें बैठा था। जब गोकर्ण उसके सामने पहुँचा तो उस सुग्गेने कहा—'पान्थ ! कृपया आप अपने साथियोंसहित पधारें, इस उत्तम आसनपर बैठें और पाद्य-अर्घ्य, फल-फूल स्वीकार करें। अभी मेरे माता-पिता यहाँ आकर आप सबका विशेषरूपसे स्वागत करेंगे। कारण, जो गृहस्थ आये हुए अतिथिका स्वागत नहीं करता, उसके पितर निश्चय ही नरकमें गिरते हैं। और जो अतिथियोंका सम्मान करते हैं, उन्हें अनन्त कालतक स्वर्गमें आनन्द भोगनेका अवसर मिलता है। जिस गृहस्थके घर अतिथि आकर निराश लौट जाता है,

वह अपना पाप उस गृहस्थको देकर उसका पुण्य लेकर चला जाता है। अतएव गृहाश्रमीको चाहिये कि वह सब प्रकारसे प्रयत्न कर अतिथिका स्वागत करे*। अतिथि समयपर आया हो या असमयमें, वह भगवान् विष्णुके समान ही पूजाका पात्र है।'

इसपर गोकर्णने तोतेसे पूछा—'पुराणके रहस्यको जाननेवाले तुम कौन हो? वह मनुष्य धन्य है, जिसके पास तुम निवास करते हो।' इसपर उस तोतेने अपना पूर्व इतिहास बताना प्रारम्भ किया। वह बोला—"पान्थ! बहुत पहलेकी बात है एक बार सुमेरुगिरिके उत्तर भागमें जहाँ महर्षियोंका निवास है, मुनिवर शुकदेव तपस्या कर रहे थे। वे प्रतिदिन पुराणों एवं इतिहासोंका प्रवचन करते, जिसे सुननेके लिये असित, देवल, मार्कण्डेय, भरद्वाज, यवक्रीत, भृगु, अङ्गिरा, तैत्तिरि, रैभ्य, कण्व, मेधातिथि, क्रत, तन्तु, सुमन्तु, वसुमान्, एकत, द्वित, वामदेव, अश्वशिरा, त्रिशीर्ष तथा गोतमोदर एवं अन्य भी अनेक वेदज्ञ ऋषि-महर्षि सिद्ध देवता, पन्नग और गुह्यक आदि आते तथा धर्मसंहिताके विषयमें शङ्काओं-का निराकरण कराते। उस समय मैं वामदेव मुनिका दुराचारी शिष्य 'शुकोदर' था। मेरा बचपनसे ही ऐसा स्वभाव बन गया था कि जहाँ धर्मकथा या नीतियोंपर विचार होता, वहाँ मैं अश्रद्धालु बनकर आगे पहुँच जाता और बारंबार तर्क-वितर्क कर प्रश्न करता रहता। गुरुजी मुझे अन्यायवादी बताकर सदा रोकते रहते, पर मेरी प्रकृति नहीं गयी। वहाँ भी मैंने एक दिन यही किया, यद्यपि मेरे गुरुजीने तथा बहुत-से प्रधान मुनियोंने मुझे बहुत रोका, किंतु मैंने उनके वचनकी अवहेलना कर दी। तब शुकदेवजीने क्रोधके आवेशमें आकर मुझे शाप दे दिया और कहा कि 'यह बड़ा ही बकवादी है, अतः जैसा इसका नाम है, उसीके अनुसार यह शुक (तोता) पक्षी हो जाय'—बस क्या था, मैं तुरंत तोता बन गया। फिर मुनियोंकी प्रार्थनापर उन्होंने कहा कि—इसका रूप तो पक्षीका होगा, परंतु यह पुराणोंका जानकार होगा और सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थ इसे अवगत होंगे और अन्तमें मथुरामें मरकर यह ब्रह्मलोकको प्राप्त होगा।"

'पान्थ! इसके बाद मैं वहाँसे उड़कर इस हिमालय-पर आकर इस गुहामें रहने लगा और सावधानीसे सदा 'मथुरा'का नाम जपता रहता हूँ। फिर मैं एक बहेलियेके चंगुलमें फँस गया, जिससे इस पिंजड़ेमें रहना पड़ता है।' अब गोकर्ण कहने लगा—'भद्र! मैं पापनाशिनी मथुरापुरीमें ही रहता हूँ और व्यापारसे थककर विश्रामके विचारसे यहाँ आया हूँ। इधर इन दोनोंमें इस प्रकारकी बात हो ही रही थी कि शबरकी स्त्री, जो उस समय सो रही थी, कुछ आहट पाकर नींदसे जग गयी। तोतेने उससे कहा—'माँ! ये अतिथिरूपमें यहाँ पधारे हैं, अतः पूज्य हैं। इसपर वह स्वागतका सामान संग्रह करने लगी, इसी बीच शबर भी आ पहुँचा। तोतेने उसे भी अतिथि-सत्कारकी सलाह दी। उसने गोकर्णको प्रणाम किया और उसकी पूजा कर स्वादिष्ठ फल और सुगन्धपूर्ण पेय पदार्थ समर्पण करके उससे कुछ वार्ता-लाप किया। फिर पूछा—'अतिथिदेव! कहिये, मैं आपकी और क्या सेवा करूँ?'

गोकर्णने कहा—'मित्र! यदि स्वागत-सत्कारके अतिरिक्त तुम मुझे अन्य कुछ भी देना चाहते हो तो मुझे इस तोतेको ही दे दो। मैं इसे मथुरामें ले जाऊँगा और अपने पुत्रके रूपमें रखूँगा। इसपर शबर बोला—'क्या

* अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रव्रजते यदि। आत्मनो दुष्कृतं तस्मै दत्त्वा तत्सुकृतं हरेत्॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पूज्यो वै गृहमेधिना। काले प्राप्तस्त्वकाले वा यथा विष्णुस्तथैव सः॥
(वराहपुराण १७०। ५३-५४ तथा तुलनीय 'विष्णुधर्मसूत्र, ६७। ३३ हितोपदेश १। ६२।, महाभा० १२। १९१ १२; १३। १२५। २९ इत्यादि

इसके बदले हमें तुम यमुना-स्नानका फल दे सकते हो ? इस तोतेने मुझे बताया है कि कोई नीच योनिमें अथवा जन्मसे राक्षस ही क्यों न हो, यदि वह मथुरा-वास, सङ्गम-स्नान एवं द्वादशीव्रत करता है तो उसे अभीष्ट गति प्राप्त हो सकती है । जो सङ्गममें स्नान तथा भगवान् गोकर्णेश्वरका दर्शन करता है, वह यमपुरीमें नहीं जाता । उसे भगवान् श्रीहरिके लोककी ही प्राप्ति होती है।' इसपर गोकर्णने स्वीकृति दे दी । (अध्याय १७०)

सुग्गेका मथुरा जाना और वसुकर्णसे वार्तालाप

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! इस प्रकार गोकर्णने शबरसे (मथुरास्नानके बदले) उस सुग्गेको प्राप्तकर पीछे नगरके लिये प्रस्थान किया और वहाँ पहुँचकर उस तोतेको अपने माता-पिताको सौंप दिया तथा उसका परिचय भी दे दिया । फिर कुछ दिनोंके बाद वह व्यापार करनेके लिये उस तोतेको अपने साथ लेकर अपने सहकर्मियोंके साथ समुद्रमार्गसे चल पड़ा ।

इसी बीच एक दिन प्रतिकूल वायु चलनेसे समुद्रमें सहसा भयंकर तूफान आ गया, जिससे सभी पोतयात्री घबड़ा गये और 'गोकर्ण'को लक्ष्यकर कहने लगे—'कोई निकृष्ट एवं पापी व्यक्ति इस जहाजपर चढ़ गया है, जिसके कारण हमारी यह दुर्दशा हुई और हम सभी मरे जा रहे हैं। गोकर्णने तोतेके सामने अपनी दयनीय स्थिति रखी और कहा कि 'पुत्रहीन व्यक्तिकी बड़ी दुर्गति होती है । यहाँ जहाजमें जितने व्यक्ति हैं, उनके बीच मैं ही सबसे बड़ा पापी हूँ । अब क्या करना उचित है—यह तुम्हीं जानते हो ।'

तोतेने कहा—'पिताजी ! आप खेद न करें, मैं अभी एक उपाय करता हूँ ।' इस प्रकार गोकर्णको आश्वासन देकर वह तोता उड़ा और ध्रुवकी ओर उत्तर दिशामें बढ़ता गया । आगे एक योजनके ऊँचे पर्वतकी एक चोटी पड़ी, जिसे लाँघकर वह भगवान् विष्णुके सुन्दर मन्दिरके पास पहुँचा, जिसके प्रकाशसे सब ओर वहाँ बड़ी शोभा हो रही थी । उसके भीतर प्रवेश कर उसने कहा—'यहाँ यह कौन देवता विराज रहे हैं ? मैं उनसे जानना चाहता हूँ कि अपार कठिनाईको पार करनेवाले पुण्यात्मा पुरुषकी भाँति मेरे पिताजी इस घोर समुद्रको कब पार कर सकेंगे ?'

पृथ्वि ! वह सुग्गा इस चिन्तामें ही था कि वहाँ एक देवी आयी, जिसके हाथमें एक सुवर्णपात्र था । उसने विष्णुकी पूजा की और 'नमो नारायणाय' कहकर एक उत्तम आसनपर बैठ गयी । अभी पलमात्र ही समय बीता होगा कि फिर वहाँ वैसी असंख्य रूपवती देवियाँ आ गयीं और वे सभी नृत्य, गान, वाद्यसे देवार्चन करके वापस चली गयीं । वहीं जटायुके वंशके कुछ पक्षी भी थे । उन्होंने उस सुग्गेसे पूछा—'तुम यहाँ कैसे पहुँचे, क्योंकि अगाध जलसे परिपूर्ण समुद्रको पार करना साधारण काम नहीं है ।' इसपर तोतेने उत्तर दिया—'मेरे पिताजी वायुकी तेज गतिमें समुद्री जहाजपर बड़ी कठिनाईका अनुभव कर रहे हैं । उनकी रक्षाके लिये ही मैं यहाँ आया हूँ । आपलोग कुछ प्रयत्न करें, जिससे वे सुखी हो सकें ।'

पक्षीगण बोले—'जिस मार्गसे हम चलें, तुम उसका अनुसरण करो । हम पादविन्याससे ही समुद्रमें चलकर चोंचोंसे मकर-नक्रादिका संहार कर डालेंगे । इससे तुम्हारे साथ तुम्हारे पिता भी समुद्र तर जायँगे ।' अब वह तोता उन पक्षियोंके पीछे-पीछे चलता हुआ गोकर्णके पास पहुँचा और उनके प्रयाससे गोकर्ण समुद्रसे बाहर निकल गया । वहाँ पहुँचकर वह उसी देवमन्दिरके सामने गया; जहाँ कमलोंसे सुशोभित एक सरोवर था जिसकी

सीढ़ियाँ मणियों और रत्नोंसे बनी थीं। गोकर्णने उस सरोवरमें स्नान कर देवताओं तथा पितरोंका तर्पण किया, फिर मन्दिरमें जाकर भगवान् केशवकी आराधना कर वह प्रभूत रत्नोंद्वारा सम्पन्न उस पञ्चायतनमन्दिरमें तोतेके साथ एक ओर छिप गया। इतनेमें ही वे देवियाँ, जिन्होंने पहले उस मन्दिरमें देवार्चन किया था, वहीं पुनः आ गयीं और देवपूजन करने लगीं। फिर उनमेंसे एक प्रधान देवीने कहा—'सखियो! ब्रह्ममें निष्ठा रखनेवाले गोकर्णके खानेके लिये दिव्य फल और पीनेके लिये उत्तम जल प्रदान करो, जिससे तीन महीनोंतक इसकी तृप्ति बनी रहे और इसके शोक, मोह तथा पाप भी नष्ट हो जायँ।'

इसपर उन देवियोंने सब कुछ वैसा ही कर गोकर्णसे कहा—'तुम निश्चिन्त एवं निर्भय होकर इस स्वर्गके समान सुखदायी स्थानमें तबतक निवास करो, जबतक तुम्हारा काम सिद्ध न हो जाय,' और फिर वे वहाँसे चली गयीं। अब गोकर्ण वहाँ इस प्रकार रहने लगा मानो मथुरापुरीमें ही हो। कुछ समयके पश्चात् उसका जहाज भी संयोगवश किनारे लग गया। अब इधर जहाज-परके उसके साथी उसे न देखकर परस्पर कहने लगे—'ओह, पता नहीं गोकर्ण कहाँ चला गया! वह मर गया, जलमें डूब गया अथवा किसी जीवने उसे खा लिया! हो सकता है, लज्जाके कारण वह समुद्रमें डूब गया हो। अब हमलोगोंका यही कर्तव्य है कि उसके पिताके सामने हम ही—पुत्ररूपमें रहें। उपार्जित रत्नोंमेंसे जितना भाग गोकर्णका हो, वह उसके पिताको हम सौंप दें।'

उधर गोकर्णका मन बड़ा शोकाकुल था। उसने तोतेसे माता-पिताके हितकी बात पूछी। सुग्गेने कहा—'मैं तुच्छ पक्षी आपको वहाँ ले चलूँ—यह मेरी शक्तिसे बाहर है। हाँ, मैं आपकी आज्ञासे आकाशमार्गसे मथुरा जाकर तथा आपकी बात उनके पास तथा उनका संदेश आपके पास पहुँचा सकता हूँ।' गोकर्णने कहा—'पुत्र! ठीक है, यही करो तुम मथुरा जाओ और मेरी अवस्था पिताजीसे बता दो और वहाँसे फिर शीघ्र वापस आ जाओ।'

अब वह सुग्गा मथुरा पहुँचा और गोकर्णकी सारी स्थिति उसके पितासे बता दी। इस विषम परिस्थितिको सुनकर माता-पिताको दारुण दुःख हुआ और बहुत देरतक उनकी आँखोंसे अश्रुधारा गिरती रही। फिर उस सुग्गेके प्रति उनके मनमें बड़ा स्नेह हुआ। उन्होंने कहा—'विहंगम! तुमने धर्मके अनुकूल (नीतिपूर्ण) वृत्तान्त कहकर हमारे जीवन-रक्षाके लिये यह बड़ा उत्तम कार्य किया है।' वसुंधरे! इस प्रकार उस पक्षीने अपनी बुद्धि एवं विद्याके बलसे पुत्र-शोकके कारण अत्यन्त दुःखी गोकर्णके वृद्ध माता-पिताको पूर्ण शान्ति प्रदान की। इधर गोकर्णके बीसों साथी भी वसुकर्णके पास प्रभूत रत्न लेकर आये। उनके पास अतुल रत्न-राशि थी, अतः वसुकर्णके प्रति उन सबने पुत्र-जैसा ही व्यवहार किया और फिर उसकी आज्ञा लेकर वे अपने-अपने घर गये। (अध्याय १७१)

गोकर्णका दिव्य देवियोंसे वार्तालाप तथा मथुरामें जाना

भगवान् वराह कहते हैं—शुभे! गोकर्णने दिव्य देवियोंके आदेशसे उस मन्दिरमें तेरह दिनोंकी आराधना आरम्भ की। इस बीच वे देवियाँ भी यथासमय आकर नृत्य करतीं। इसी बीच एक दिन गोकर्णने उन सभी देवियोंको अत्यन्त म्लान, निस्तेज और दुःखी देखा। वह सोचने लगा कि शास्त्रोंमें ठीक ही कहा गया है कि पुत्रहीन पुरुषकी सद्गति नहीं होती। अहो! मुझ पापात्माके दोषसे ये देवियाँ भी इस स्थितिमें आ गयी हैं, मानो इन्हें बुढ़ापेने घेर लिया है।' फिर साहसकर उसने उनसे उदास होनेका

कारण पूछा । इसपर उन देवियोंने कहा—'महाभाग ! यह बात पूछने योग्य नहीं है । सभी कार्योंमें कालात्मा उस दैवका ही हाथ है । पर गोकर्ण बार-बार आग्रह पूर्वक उन्हें प्रणाम कर इस प्रश्नको पूछता ही रहता और उनके न बतलानेपर उसने समुद्रमें डूबकर अपने प्राणत्याग करनेकी बात भी कही ।

उसके ऐसा कहनेपर उन देवियोंमेंसे ज्येष्ठादेवीने कहा—'दुःख तो उसी व्यक्तिके सामने कहना चाहिये, जो उसे दूर कर सके, फिर भी बताती हूँ । मथुरा नामसे प्रसिद्ध एक दिव्य पुरी है, जिसके प्रभावसे मनुष्य मुक्ति पानेका अधिकारी बन जाता है । इस समय अयोध्या-नरेश चातुर्मास्यव्रत करनेके विचारसे अपनी चतुरङ्गिणी सेना-के साथ वहीं गये हैं । वहाँ विष्णुके पाँच मन्दिर तथा अनेक फुलवारियाँ हैं, पर उनके सेवकोंने उन बगीचोंको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है ।'

इतना कहकर वह तथा सभी देवियाँ एक साथ रोने लगीं । इससे गोकर्ण अत्यन्त दुःखी हो गया । फिर उसने उन्हें प्रणाम कर और हाथ जोड़कर सबको सान्त्वना देते हुए मधुर वाणीमें उनसे कहा—'देवियो ! यदि मैं अयोध्याके राजासे मिला तो यह दुर्व्यवहार अवश्य बन्द करा दूँगा, परंतु इस समय प्रतिकूल प्रारब्धने मुझे सर्वथा वञ्चित कर रखा है ।' गोकर्णके इस प्रकार कहनेपर देवियोंने उस वैश्यसे पूछा—'तुम कौन हो और कहाँसे आये हो ?'

गोकर्णने अपना नाम-पता बताकर फिर उनका परिचय पूछा तो उन्होंने अपनेको 'उद्यानाधिष्ठात्री देवी' बतलाया । इसपर गोकर्णने उनसे पूछा—'देवियो ! संसारमें बगीचा लगानेवालेको क्या फल मिलता है तथा जो कुआँ तथा देवमन्दिरका निर्माण करता है, उसे कौन-सा पुण्यफल प्राप्त होता है ? आप यह सब हमें बतानेकी कृपा करें ।' इसपर वे बोलीं—"आर्य ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन द्विजाति वर्णोंके लिये धर्मका पहला साधन है—'इष्टापूर्त'का पालन करना । 'इष्ट'के प्रभावसे स्वर्ग मिलता है और 'पूर्त'से मोक्ष* । जो पुरुष बिगड़ते हुए वापी, कुआँ, तालाब अथवा देवमन्दिरोंका जीर्णोद्धार कराता है, वह पूर्तके पुण्य-फलका भागी होता है । भूमि-दान और गोदान करनेसे पुरुषोंके लिये जो पुण्य बताया गया है, वैसा ही फल वृक्षोंके लगानेसे मानव प्राप्त कर लेते हैं । एक पीपल अथवा एक पिचुमन्द (नीम्ब), एक बड़, दस फूलवाले वृक्ष, दो अनार, दो नारङ्गी और पाँच आम्रके वृक्षोंका जो आरोपण करता है, वह नरकमें नहीं जाता । जिस प्रकार सुपुत्र कुलका उद्धार कर देता है तथा प्रयत्नपूर्वक नियमसे किया गया 'अति-कृच्छ्र'व्रत उद्धारक होता है, वैसे ही फलों और फूलोंसे सम्पन्न वृक्ष अपने स्वामीका नरकसे उद्धार कर देते हैं ।"

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि ! मालती प्रभृति पुष्प-जाति तथा वृक्षोंकी यज्ञाङ्ग-साधनभूता, फलप्रदता छाया एवं गृहोपयोग आदिसे सम्बद्ध ज्येष्ठादेवीके साथ इस प्रकार वार्तालाप करनेके बाद गोकर्ण कहने लगा—'अहो ! महान् दुःखकी बात है कि मैं अपने माता-पिताको भूल गया ?' और उसे मूर्च्छा आ गयी । फिर उन देवियोंने गोकर्णके मुखपर जल छिड़के, जिससे उसकी चेतना लौटी । फिर देवियोंने उसे आश्वासन दिया और पूछा—'आर्य ! जहाँसे तुम आये हो, वहाँकी बातें बताओ ।'

गोकर्णने कहा—'देवियो ! मेरा निवास मथुरामें है, वहाँ मेरे वृद्ध माता-पिता और मेरी चार पतिव्रता पत्नियाँ भी हैं । वहाँ मेरा एक उद्यान और देवताका मन्दिर भी है ।

* देखिये पृ० १९०की टिप्पणी ।

† अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं न्यग्रोधमेकं दश पुष्पजातीः । द्वे द्वे तथा दाडिममातुलुङ्गे पञ्चाम्ररोपी नरकं न याति ॥ (वराहपुराण १७२ । ३९)का यह श्लोक स्कन्दपुराण चातुर्मा० माहा० २० । ४९, भविष्यपु० पृ० ७९२ (वें० सं०), बृहत्पाराशरस्मृ० १० । ३७९ तथा पाद्मीय माघमाहा० आदिमें भी प्राप्त होता है । वहाँ भी वृक्षारोपणका अतुलित माहात्म्य है ।

इसपर ज्येष्ठादेवीने कहा—'अनघ ! यदि तुम्हें मथुरा जानेकी उत्कट अभिलाषा है तो मैं तुम्हें वहाँ आज ही पहुँचा सकती हूँ। इससे हमें भी मथुरापुरीका दर्शन सुलभ हो जायगा। तुम इस सुन्दर विमानपर अभी बैठो और इन दिव्य रत्न, आभूषण तथा फलोंको भी साथ ले लो।' अब गोकर्ण विमानपर बैठा और भगवान् श्रीहरिको नमस्कार तथा देवियोंका अभिवादन कर मथुराके लिये प्रस्थित हुआ और वहाँ पहुँचकर उसने अयोध्याके राजाको वे रत्न, फल-फूल समर्पण किये। वहाँ गोकर्णको आया देखकर राजाके मनमें अपार आनन्द हुआ। उसने उसे अपने आसनपर ऐसे बैठाया, मानो किसी रत्नदाता धनी व्यक्तिको आसन दे रहा हो और बड़ा प्यार किया। अब गोकर्णने राजासे कहा—'थोड़ी देरके लिये आप इस स्थानसे बाहर चलें। अभी मैं एक आश्चर्यमय दृश्य दिखाऊँगा और आपसे कुछ निवेदन भी करूँगा।' इसका प्रबन्ध हो जानेपर वे सभी देवियाँ भी विमानसे वहाँ आ गयीं। सभी बात ज्ञात होनेपर राजाने अपनी सेना मथुरासे अयोध्या वापस कर और गोकर्णको बारंबार धन्यवाद देकर उसकी प्रशंसा कर उसे इच्छानुसार वर दिया। देवियाँ भी गोकर्णसे—'तुम्हारा कल्याण हो'—यों कहकर दिव्य लोकमें चली गयीं। अयोध्या नरेशने गोकर्णको बहुत-से गाँव, अमूल्य वस्त्र, हाथी, घोड़े तथा अन्य अपार धन भी दिये। 'बाग-बगीचे लगाना परम धर्म है। इससे आश्चर्यमय महान् फलकी प्राप्ति होती है'—यह सुनकर उस नरेशने अन्य उद्यानोंके आरोपणकी भी व्यवस्था कर दी।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! गोकर्ण न्याय-का पालन करते हुए अब मथुरामें निवास करने लगा। उसने घर पहुँचकर अपने माता और पिताके चरणकमलोंमें सिर झुकाकर प्रणाम किया। उस तोतेने भी गोकर्णके माता-पिता और चारों सहधर्मिणियोंका अपने वैभव एवं शक्तिके अनुसार सम्मान करके उनकी पूजा की। मथुरामें निवास करनेवाली प्रजाको बाग लगानेकी प्रेरणा दी। फिर गोकर्णने एक यज्ञ आरम्भ किया और ब्राह्मणोंको उत्तम भोज्य एवं अन्य बहुत-से दान दिये। तोतेको हृदयसे लगाकर भली प्रकार उसने देखा और गद्गद होकर कहने लगा—'यह ऐसा जीव है, जिसकी कृपासे मुझे जीवन, सद्धर्म तथा उत्तम गतिकी प्राप्ति हुई है।'

गोकर्णने मथुरामें एक मन्दिर बनवाया और उसका नाम 'शुकेश्वर' मन्दिर रखा। उसमें 'शुकेश्वर' के नामसे एक प्रतिमा भी स्थापित की और एक अन्न-वितरण करनेकी संस्था भी खोल दी। उसमें दो सौ ब्राह्मणोंको भोजनके लिये प्रतिदिन अन्न बँटने लगा। गोकर्णने उस संस्थाका नाम 'शुकसत्र' रख दिया। उस स्थानपर जिसकी मृत्यु होती है, वह मुक्त हो जाता है। अन्तमें वह सुग्गा भी विचित्र विमानपर चढ़कर स्वर्ग-लोकमें चला गया। जिस शबरकी कृपासे गोकर्णको वह तोता प्राप्त हुआ था, उसका उद्धार होनेके लिये गोकर्णने त्रिवेणी स्नानका फल अर्पण कर दिया। अतः वह शबर अपनी पत्नीसहित स्वर्ग गया। शुकोदरके साथ ही वे सभी दिव्य विमानपर विराजमान होकर स्वर्ग गये।

वसुंधरे ! इस प्रकार मैंने तुमसे मथुराके सरस्वती-सङ्गममें स्नानका, गोकर्णेश्वर शिवके दर्शनका, गोकर्ण नामक वैश्यकी अविनाशी संतानका तथा उसके सुख-सुखोपभोग और मुक्तिलाभका वर्णन कर दिया।

(अध्याय १७२-७३)

ब्राह्मण-प्रेत-संवाद, सङ्गम-महिमा तथा वामन-पूजाकी विधि

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! त्रिवेणी-सङ्गमसे सम्बन्धित एक दूसरा प्रसङ्ग सुनो। पूर्व समयमें यहीं महानाम वनमें उत्तम व्रतका पालन करनेवाला एक 'महानाम' संज्ञक योगाभ्यासी ब्राह्मण भी रहता था। एक बार तीर्थयात्राके विचारसे उसने मथुराकी यात्रा की, मार्गमें उसे पाँच विकराल प्रेत मिले। उनसे ब्राह्मणने पूछा—'अत्यन्त भयंकर रूपवाले आपलोग कौन हैं ? तथा आपलोगोंका ऐसा बीभत्स रूप किस कर्मसे हुआ है ?'

अब प्रथम प्रेत बोला—'हमलोग प्रेत हैं और हमारे नाम क्रमशः 'पर्युषित', 'सूचीमुख', 'शीघ्रग', 'रोधक' और 'लेखक' हैं। इनमेंसे मैं तो स्वयं स्वादिष्ट भोजन करता और बासी अन्न ब्राह्मणको दिया करता था, इसी कारण मेरा नाम 'पर्युषित' पड़ा है। इस दूसरेके पास अन्न पानेकी इच्छासे जो ब्राह्मण आते थे उनको यह मार डालता था, अतः यह 'सूचीमुख' है। इस तीसरेके पास देनेकी शक्ति थी, किंतु जब कोई ब्राह्मण इससे याचना करने आता तो यह कहीं अन्यत्र ही चला जाता, अतः लोग इसे 'शीघ्रग' कहते हैं। चौथा माँगनेके डरसे ही अकेले सदा उद्विग्न होकर घरमें ही बैठा रहता था, अतः इसे 'रोधक' कहा जाता है। जो ब्राह्मणके याचना करनेपर मौन होकर सदा बैठ जाता और पृथ्वीपर रेखा खींचने लगता, वह हम सभीमें अधिक पापी है। उसका अनुगुण नाम 'लेखक' पड़ा है। अभिमान करनेसे 'लेखक' तथा नीचे मुख करनेसे 'रोधक'की यह दशा हुई है। 'शीघ्रग' अब पङ्गुत्वका कष्ट भोगता है। 'सूचीमुख' इस समय उपवास करता है। उसकी गर्दन छोटी, ओठ लम्बे और पेट बहुत बड़ा है। पापसे ही हमारी ऐसी स्थिति है। विप्र ! यदि तुम्हें हमारी इस स्थितिके अतिरिक्त अन्य भी कुछ सुननेकी इच्छा हो या पूछना चाहते हो तो पूछो !

ब्राह्मणने कहा—'प्रेतो ! पृथ्वीके सभी प्राणियोंका जीवन आहारपर ही अवलम्बित है। अतः मैं जानना चाहता हूँ कि तुम लोगोंके आहार क्या हैं ?'

प्रेत बोले—'दयालु ब्राह्मण ! हमारे जो आहार हैं, उन्हें बताता हूँ, सुनो। वे आहार ऐसे हैं, जिन्हें सुनकर तुम्हें अत्यन्त घृणा होगी। जिन घरोंमें सफाई नहीं होती, स्त्रियाँ जहाँ कहीं भी थूक-खखार देती हैं और मल-मूत्र यत्र-तत्र पड़ा रहता है, उन घरोंमें हम निवास एवं भोजन करते हैं। जहाँ पञ्चबलि नहीं होती, मन्त्र नहीं पढ़े जाते, दान धर्म नहीं होता, गुरुजनोंकी पूजा नहीं होती, भाण्ड इधर-उधर बिखरे रहते हैं, जहाँ-कहीं भी जूठा अन्न पड़ा रहता है, प्रतिदिन परस्पर लड़ाई ठनी रहती है, ऐसे घरोंसे हम प्रेत भोजन प्राप्त करते हैं। विप्रवर ! तुम तपस्याके महान् धनी पुरुष हो। हम तुमसे पूछना चाहते हैं, मनुष्यको ऐसा कौन-सा काम करना चाहिये, जिससे उसे प्रेत न होना पड़े, तुम उसे हमें बतानेकी कृपा करो।'

ब्राह्मण बोला—'एकरात्र, त्रिरात्र, चान्द्रायण, कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र आदि व्रत करनेसे पवित्र हुए मनुष्यको प्रेतकी योनि नहीं मिलती। जो श्रद्धापूर्वक मिष्टान्न एवं जल दान करता है, जो संन्यासीका सम्मान करता है, वह प्रेत नहीं होता। पाँच, तीन अथवा एक वृक्षको भी जो नित्य जलसे पोसता है तथा जो सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करता है, वह प्रेत नहीं होता। देवता, अतिथि, गुरु एवं पितरोंकी नित्य पूजा करनेवाला व्यक्ति भी प्रेत नहीं होता। क्रोधपर विजय रखनेवाला, परम उदार, सदा संतुष्ट, आसक्तिशून्य, क्षमाशील और दानी व्यक्ति प्रेत नहीं हो

* पुराणोंमें यह प्रेत-प्रसङ्ग बहुत प्रसिद्ध है और प्रायः इन्हीं नामोंसे 'वायुपुराणके 'माघमाहात्म्य' तथा स्कन्दादि पुराणोंमें भी प्राप्त होता है।

सकता। जो व्यक्ति शुक्ल तथा कृष्णपक्षकी एकादशी-का व्रत करता है तथा सप्तमी एवं चतुर्दशी तिथियोंको उपवास करता है, वह भी प्रेत नहीं होता। गौ, ब्राह्मण, तीर्थ, पर्वत, नदियों तथा देवताओंको जो नित्य नमस्कार करता है, उसे प्रेतकी योनि नहीं मिलती। पर जो मनुष्य सदा पाखण्ड करता, मदिरा पीता है और चरित्रहीन तथा मांसाहारी है, उसे प्रेत होना पड़ता है। जो व्यक्ति दूसरेका धन हड़प लेता है तथा शुल्क (धन) लेकर कन्या बेचता है, वह प्रेत होता है। जो अपने निर्दोष माता-पिता, भाई-बहन, स्त्री अथवा पुत्रका परित्याग कर देता है, वह भी प्रेत होता है। इसी प्रकार गो-ब्राह्मण-हत्यारे, कृतघ्न तथा भूमिदारापहारी पापी व्यक्ति भी प्रेत होते हैं।'

प्रेतोंने पूछा—'जो मूर्खतावश सदा अधर्म तथा विरुद्ध कर्म करते हैं, ऐसे पापी व्यक्तियोंके प्रेतत्वमुक्तिके क्या उपाय हैं, आप यह बतानेकी कृपा करें।'

ब्राह्मणने कहा—'महाभागो! बहुत पहले राजा मान्धाताके इसी प्रकार प्रश्न पूछनेपर वसिष्ठजीने उन्हें इसका उपदेश किया था। यह पुण्यमय प्रसङ्ग प्रेतोंको मुक्त कर उन्हें उत्तम गति प्रदान करता है। भाद्रपद मासके शुक्लपक्षमें श्रवणनक्षत्रसे युक्त द्वादशीमें किये गये दान, हवन और स्नान—ये सभी लाख गुना फल प्रदान करते हैं। उस दिन सरस्वती-सङ्गममें स्नानकर भगवान् वामनकी पूजाकर विधिपूर्वक कमण्डलुका दान करे। इस वामनद्वादशीके व्रतसे मनुष्य प्रेत नहीं होता और मन्वन्तरपर्यन्त स्वर्गमें निवास करता है। तत्पश्चात् वह वेदपारगामी 'जातिस्मर' ब्राह्मण होता है। और फिर निरन्तर ब्रह्मचिन्तन करनेसे वह मुक्त हो जाता है।

"उस दिन भगवान्के षोडशोपचार-पूजनकी विधि है। इसके लिये वह आवाहन करते हुए कहे—'श्रीपते! आप अपने अंशसे सब जगह विराजमान रहते हैं। मुझपर कृपा करके यहाँ पधारिये और इस स्थानको सुशोभित कीजिये'। फिर—'आप श्रवणनक्षत्रके रूपमें साक्षात् भगवान् ही हैं और आज द्वादशीको आकाशमें सुशोभित हैं। अपनी अभिलाषा-सिद्धिके लिये मैं आपको नमस्कार करता हूँ', ऐसा कहकर श्रवणनक्षत्रका भी पूजन-वन्दन करे। फिर—'केशव! आपकी नाभिसे कमल निकला है और यह विश्व आपपर ही अवलम्बित है, आपको मेरा प्रणाम है,'—यह कहकर भगवान् वामनको स्नान कराये। 'नारायण! आप निराकाररूपसे सर्वत्र विराजते हैं। जगद्योने! आप सर्वव्यापी, सर्वमय एवं अच्युत हैं। आपको नमस्कार', यह कहकर चन्दनसे उनकी पूजा करे। 'केशव! श्रवण-नक्षत्र और द्वादशी तिथिसे युक्त इस पुण्यमय अवसरपर मेरी पूजा स्वीकार करनेकी कृपा कीजिये,'—यह कहकर पुष्प चढ़ाये। 'शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण करनेवाले भगवन्! आप देवताओंके भी आराध्य हैं। यह धूप सेवामें समर्पित है,'—यह कहकर धूप दे। दीपक समर्पण करनेके लिये कहे—'अच्युत, अनन्त, गोविन्द तथा वासुदेव आदि नामोंको अलङ्कृत करनेवाले प्रभो! आपके लिये नमस्कार है। आपकी कृपासे इस तेजद्वारा यह विस्तृत अखिल विश्व नष्ट न होकर सदा प्रकाश प्राप्त करता रहे।' नैवेद्य अर्पण करते हुए कहे—'भक्तोंकी याचना पूर्ण करनेवाले भगवन्! आप तेजका रूप धारण करके सर्वत्र व्याप्त हैं। आपके लिये नमस्कार है। प्रभो! आप अदितिके गर्भमें आकर भूमण्डलपर पधार चुके हैं। आपने अपने तीन पगोंसे अखिल लोकको नाप लिया और बलिका शासन समाप्त किया था। आपको मेरा नमस्कार है। 'भगवन्! आप अन्न, सूर्य, चन्द्रमा, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यम और अग्नि आदिका रूप धारण करके सदा विराजते हैं'—यह कहकर कमण्डलु प्रदान करे।

फिर 'इस कपिला गौके अङ्गोंमें चौदह भुवन स्थित हैं। इसके दानसे मेरी मनःकामना पूर्ण हो,'—यह कहकर कपिला दान करे। अन्तमें इस प्रकार कहकर विसर्जन करें—'भगवन्! आपको देवगर्भ कहा जाता है। मैं भलीभाँति आपका पूजन कर चुका। प्रभो! आपको नमस्कार है।' जो विज्ञ मनुष्य श्रद्धासे सम्पन्न होकर जिस-किसी भी भाद्रपद मासमें भगवान् वामनकी इस प्रकार आराधना करेगा, उसे सफलता अवश्य प्राप्त होगी।''

ब्राह्मणने पुनः कहा—''जहाँ यमुना और सरस्वती नदीका सङ्गम हुआ है, उस 'सारस्वत'तीर्थपर जो इस विधिके साथ श्रद्धापूर्वक यह व्रत करता है, उसे सौ गुना फल प्राप्त होता है। मैंने भी श्रद्धाके साथ उस तीर्थका सेवन किया है और क्षेत्रसंन्यासी-के रूपमें वहाँ बहुत दिनोंतक निवास किया है, जिससे तुमलोग मुझे अभिभूत नहीं कर पाये। इस तीर्थकी महिमा तथा इस व्रतके माहात्म्य सुननेसे तुमलोगोंका भी कल्याण होगा।''

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! वह ब्राह्मण इस प्रकार कह ही रहा था कि आकाशमें दुन्दुभियाँ बज उठीं और पुष्प-वृष्टि होने लगी, साथ ही उन प्रेतोंको लेनेके लिये चारों ओर विमान आकर खड़े हो गये। देवदूतने प्रेतोंसे कहा—'इस ब्राह्मणके साथ वार्तालाप करने, पुण्यमय चरित्र सुनने तथा तीर्थकी महिमा सुननेसे अब तुमलोग प्रेतयोनिसे मुक्त हो गये। अतः प्रयत्नपूर्वक संत-पुरुषके साथ सम्भाषण करना चाहिये।'

इस प्रकार देवतीर्थमें अभिषेक करने तथा सरस्वती-सङ्गमके पुण्यसम्पर्कमात्रसे उन दुरात्मा प्रेतोंको अक्षय स्वर्ग प्राप्त हो गया और उस तीर्थकी महिमाके श्रवणमात्रसे वे मुक्तिके भागी हो गये। तबसे यह स्थान 'पिशाच-तीर्थ'के नामसे विख्यात हुआ। उन पाँचों प्रेतोंको मुक्ति देनेवाला यह प्रसङ्ग सम्पूर्ण धर्मोंका तिलक है। जो परम भक्तिके साथ तत्परतापूर्वक इस चरित्रको पढ़ता अथवा सुनता है तथा इसपर श्रद्धा करता है, वह भी प्रेत नहीं होता। (अध्याय १७४)

ब्राह्मण-कुमारीकी मुक्ति

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! अब कृष्ण (मानसी) गङ्गासे* सम्बन्धित एक दूसरा प्रसङ्ग सुनो। एक समय श्रीकृष्णद्वैपायन मुनिने मथुरामें एक दिव्य आश्रम बनाकर बारह वर्षोंतक यमुनाकी धारामें नियमपूर्वक अवगाहनका नियम बनाया। अतः वहाँ चातुर्मास्यके लिये अनेक वेद-तत्त्वज्ञ एवं उत्तम व्रतोंके पालन करनेवाले मुनियोंका आना-जाना बना रहता। वे उनसे श्रौत, स्मार्त्त-पुराणादिकी अनेक शङ्काएँ पूछते और मुनि उनकी शङ्का-का निराकरण करते थे। वहीं 'कालञ्जर' नामसे प्रसिद्ध तीर्थ है, जिसके प्रधान देवता शिव हैं। उनका दर्शन करनेसे ही 'कृष्णगङ्गा'में स्नान करनेका फल होता है।

इसी बीच ध्यानयोगमें सदा संलग्न रहनेवाले मुनिवर व्यास एक बार हिमालय पर्वतपर गये और बद्रिकाश्रममें वे कुछ समयके लिये ठहर गये। उन त्रिकालदर्शी सिद्ध मुनिने अपने ज्ञाननेत्रसे 'कृष्णगङ्गा'के तटका एक बड़ा आश्चर्यजनक दिव्य दृश्य देखा, जो इस प्रकार है। नदीके उस तटपर 'पाञ्चाल'कुलका 'वसु' नामक एक ब्राह्मण रहता था। दुर्भिक्षसे पीड़ित होनेके कारण वह अपनी स्त्रीको साथ लेकर दक्षिणा-पथको गया और शिवानदीके दक्षिणतटवर्ती एक नगरमें ब्राह्मणी-वृत्तिसे रहने लगा। वहाँ उसके पाँच पुत्र और एक कन्या भी उत्पन्न हुई। कन्याका विवाह उसने किसी ब्राह्मणके साथ कर दिया। फिर वह ब्राह्मण

* 'सोमतीर्थ' और 'वैकुण्ठतीर्थ'के बीच 'कृष्ण-गङ्गा' स्थान है।

सपत्नीक कालधर्मको प्राप्त हो गया । उस समय वह 'तिलोत्तमा' कन्या ही माता-पिताकी हड्डियाँ लेकर तीर्थ-यात्रियोंके साथ मथुरा आयी; क्योंकि उसने पुराणोंमें सुना था कि जिसकी हड्डी मथुराके 'अर्द्धचन्द्र'तीर्थमें गिरती है, वह सदा स्वर्गमें निवास करता है ।' यह पुत्री उस ब्राह्मणकी सबसे छोटी संतान थी, जो विवाहके कुछ ही काल बाद विधवा हो गयी थी ।

उन्हीं दिनों 'कान्यकुब्ज' राजाने मथुराके गर्तेश्वर महादेवके लिये एक 'अन्न-सत्र' खोल रखा था, जहाँ निरन्तर भोजन-वितरण होता रहता था । उस नरेशके यहाँ नृत्य-गान भी होता था। यहाँ वेश्याओंके दुश्चक्रमें पड़कर वह कन्या भी उसी कर्ममें लग गयी । और थोड़े ही दिनोंके बाद वह भी उस राजाकी परिजन बन गयी ।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! उस 'वसु' ब्राह्मणके कनिष्ठ पुत्रका नाम पाञ्चाल था, जो बड़ा रूपवान् था । वह कुछ व्यापारियोंके साथ अनेक देशों, राज्यों, पर्वतों और नदियोंको पारकर यात्रा करते हुए मथुरा पहुँचा और वहीं रहने लगा । एक दिन प्रातःकाल कुछ पुरुषोंके साथ स्नान करनेके लिये वहाँके उत्तम 'कालञ्जर' तीर्थमें गया और स्नानकर श्रेष्ठ वस्त्र और अलङ्कारोंसे अलङ्कृत होकर धनके गर्वमें एक यानपर बैठकर देवताका दर्शन करनेके लिये 'त्रिगर्तेश्वर' महादेवके स्थानपर पहुँचा । वहाँ उसकी दृष्टि 'तिलोत्तमा' पर पड़ी, जिसे देखकर वह सर्वथा मुग्ध हो गया । फिर उसने उस कन्याकी धाईके द्वारा उसे कपड़ोंकी गाँठे, सैकड़ों सुवर्णके आभूषण तथा रत्नोंके हार भेंट किये । अब वह आसक्तिके कारण प्रायः उसीके घर रहता और जब आधा पहर दिन चढ़ जाता तब अपनी छावनीपर जाता और समीपके 'कृष्णगङ्गोद्भव'-तीर्थमें स्नान करता, इस प्रकार छः महीने बीत गये । एक बार जब वह सुमन्तुमुनिके आश्रमके पास स्नान कर रहा था तो मुनिकी दृष्टि उसपर पड़ गयी । उसके शरीरमें कीड़े पड़ गये थे, जो रोम-कूपोंसे निकलकर जलमें गिर रहे थे । पर स्नान कर लेनेके बाद वह सर्वथा नीरोग हो गया । जब मुनिने इस प्रकारका दृश्य देखा तो उससे पूछा—'सौम्य ! तुम कौन हो, तुम्हारे पिता कौन हैं ? कहाँके रहनेवाले हो, तुम्हारी कौन-सी जाति है तथा तुम दिन-रात किस काममें व्यस्त रहते हो ? यह सब तुम मुझे बताओ ।'

पाञ्चालने कहा—'मैं एक ब्राह्मणका बालक हूँ और मेरा नाम 'पाञ्चाल' है । इस समय मैं व्यापार-कार्यसे दक्षिण-भारतसे यहाँ आया हूँ और प्रातःकाल यहाँ स्नानकर 'त्रिगर्तेश्वर'महादेवका दर्शन करता हूँ । फिर कालञ्जर-क्षेत्रमें आकर आपके चरणोंका दर्शन करता हूँ । तत्पश्चात् छावनीमें लौट जाता हूँ ।'

मुनिने कहा—'ब्राह्मण ! तुम्हारे शरीरमें मैं प्रति-दिन एक महान् आश्चर्यकी बात देखता हूँ । तुम्हारा शरीर स्नानके पहले कृमिपूर्ण और स्नान कर लेनेपर स्वच्छ एवं प्रकाशमय बन जाता है । तुम किसी पाप-प्रपञ्चमें पड़े हो, जो इस तीर्थमें स्नान करनेके प्रभावसे दूर हो जाता है । अब तुम सोच-विचारकर उसका पता लगाकर मुझे बताओ ।'

इसपर पाञ्चालने उस कन्याके घर जाकर उससे एकान्तमें आदरपूर्वक पूछा—'सुभगे ! तुम किसकी पुत्री हो और तुम्हारा कौन-सा देश है ? और यहाँ कैसे आयी तथा रहती हो ?

उस समय पाञ्चालके अनुरोधपूर्वक पूछनेपर भी उस कन्याने उसका कुछ उत्तर नहीं दिया । कुछ समय बाद पाञ्चालने कहा—'देखो, अब तुम यदि सच्ची बात नहीं कहोगी तो मैं अपने प्राणोंका त्याग कर दूँगा ।' उसके इस निश्चयको देख उस कन्याने अपने—माता-पिता, भाई, देश, जाति और कुल सबका यथावत् परिचय देते हुए बतलाया कि 'मेरे पिताके पाँच पुत्र और मैं ये छः संतानें हुई थीं, जिनमें सबसे छोटी संतान मैं ही हूँ । विवाहके बाद मेरे पतिदेवका

शीघ्र ही देहान्त हो गया। पाँचों भाइयोंमें जो सबसे छोटा था, वह धनकी तृष्णासे बचपनमें ही व्यापारियोंके साथ विदेश चला गया। उसके चले जानेपर मेरे माता-पिता मर गये। अतएव कुछ सहायकोंका साथ पाकर मैं इस तीर्थमें उनके अस्थिप्रवाहके लिये चली आयी। यहाँ कुछ वेश्याओंके कुचक्रमें पड़कर मेरी यह दशा हुई। मैंने कुलटा स्त्रियोंका धर्म अपनाकर अपने कुलको नष्ट कर दिया। यही नहीं, मातृ-पितृ और पति—इन तीनों कुलोंके इक्कीस पीढ़ियोंको घोर नरकमें गिरा दिया।'

इस प्रसङ्गको सुनकर पाञ्चालको तो मूर्च्छा आ गयी और वह भूमिपर गिर पड़ा। वहाँ उपस्थित स्त्रियाँ भी ब्राह्मण-कुमारीको समझा-बुझाकर उसके चारों ओर खड़ी हो गयीं और फिर अनेक प्रकारके उपायोंका प्रयोग कर उन सबोंने उसकी मूर्च्छाको दूर किया। जब उसके शरीरमें चेतना आयी तो उन्होंने उससे बेहोशीका कारण पूछा। इसपर उस ब्राह्मणकुमारने अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया। फिर इस पापसे उसके मनमें घोर चिन्ता व्याप्त हो गयी और वह प्रायश्चित्तकी बात सोचने लगा। उसने कहा—'मुनियोंने विचार करके यह आदेश दिया है कि यदि कोई द्विजाति ब्राह्मणकी हत्या कर दे अथवा मदिरा पी ले तो उसका प्रायश्चित्त शरीरका परित्याग ही है। माता, गुरुकी पत्नी, बहन, पुत्री, और पुत्रवधूसे अवैध सम्बन्ध रखनेवालेको जलती अग्निमें प्रवेश कर जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त उसकी शुद्धिके लिये दूसरा कोई उपाय नहीं है।'

जब पाञ्चालीने अपने बड़े भाईके मुखसे ही मुनिकथित यह प्रायश्चित्त सुना तो उसने भी अपने सौभाग्यके सम्पूर्ण आभूषण, रत्न-वस्त्र, धन और धान्य आदि जो कुछ भी वस्तुएँ संचित कर रखी थीं, वह सब-का-सब ब्राह्मणोंमें बाँट दिया। साथ ही बताया कि 'इस द्रव्यसे कालञ्जरका शृङ्गार तथा एक उद्यानका निर्माण कराया जाय।' फिर उसने सोचा—'अपनी आत्म-शुद्धिके लिये 'कृष्णगङ्गोद्भवतीर्थ'में चलकर विधि-पूर्वक चितारोहण करूँ।'

उधर पाञ्चाल भी सुमन्तुमुनिके पास पहुँच कर उन्हें प्रणामकर मृत्युके उपयोगी कर्मोंका सम्पादन कर मथुराके निवासी ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्हें भलीभाँति दान देकर अपनी शेष सम्पूर्ण धनराशि सत्र खोलनेके लिये दे दी और विधिके अनुसार अपनी और्ध्वदैहिक संस्कारके लिये भी व्यवस्था कर ली। 'कृष्ण-गङ्गा'में स्नान-कर उसने इष्टदेवका दर्शनकर, उन्हें प्रणाम किया और सुमन्तुमुनिके चरणोंको पकड़कर प्रार्थना की—'भगवन्! मैं अगम्या-गमनके दोषसे महान् पापी बन गया हूँ। मुझ कुलनाशकका स्वभगिनीके साथ ही दुर्योगसे अवैध सम्बन्ध हो गया। अब मैं अपने शरीरका त्याग करना चाहता हूँ। आप आज्ञा दें।'

इस प्रकार सुमन्तुमुनिको अपना पाप सुनाकर चितापर घृत छिड़क कर वह अग्निमें प्रवेश करना ही चाहता था कि सहसा आकाश-वाणी हुई—'ऐसा दुःसाहस मत करो; क्योंकि तुम दोनोंके पाप सर्वथा धुल गये हैं। जहाँ स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने सुखपूर्वक लीला की है तथा जो स्थान उनके चरणके चिह्नसे चिह्नित है, वह तो ब्रह्मलोकसे भी श्रेष्ठ है। दूसरी जगहके किये हुए पाप इस तीर्थमें आते ही नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य 'गङ्गा-सागर'में एक बार स्नान करनेसे ब्रह्म-हत्या-जैसे पापसे छूट जाता है। पृथ्वीपर जितने तीर्थ हैं, उन सभी तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो फल मिलता है, वैसा ही फल 'पञ्चतीर्थ'में स्नान करनेसे मिल जाता है—इसमें कोई संशय नहीं। शुक्ल और कृष्णपक्षकी एकादशियोंको विश्रान्ति-तीर्थमें, द्वादशीको 'सौकरव' तीर्थमें, त्रयोदशीको नैमिषारण्यमें, चतुर्दशीको प्रयागमें तथा कार्तिकी एकादशीको पुष्करमें स्नान करना चाहिये। इससे सारे पाप दूर हो जाते हैं।'

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! अब इस प्रकारकी आकाशवाणीको सुनकर पाञ्चालने सुमन्तुसे पूछा—'मुने! आप मुझे बतानेकी कृपा करें कि मैं आगमें प्रवेश करूँ या 'त्रिरात्र', 'कृच्छ्र' या 'चान्द्रायण' व्रत करूँ?

मुनिने आकाशवाणीकी बातोंपर विश्वासकर शुद्ध धर्माचरणका उसे आदेश दिया। देवि! जो मनुष्य श्रद्धासे इस माहात्म्यका श्रवण एवं पठन करेगा, वह कभी भी पापसे लिप्त नहीं हो सकता, साथ ही उसके सात जन्म पहलेके भी किये हुए पाप दूर भाग जाते हैं और वह जरा-मरणसे मुक्त होकर स्वर्गलोकको चला जाता है।

(अध्याय १७५-७६)

साम्बको शाप लगना और उनका सूर्याराधन-व्रत

भगवान् वराह कहते हैं—शुभाङ्गि! अब मैं श्रीकृष्णकी कथाका वह अद्भुत प्रसङ्ग कहता हूँ, जो द्वारकापुरीमें घटित हुआ था। साथ ही साम्बके शापकी बात भी सुनो। एक बार जब भगवान् सानन्द द्वारकामें विराजमान थे तो नारद मुनि वहाँ पधारे। श्रीभगवान्ने उन्हें आसन, अर्घ्य, पाद्य, मधुपर्क एवं गौ समर्पण किये। तदनन्तर मुनिने उन्हें यह सूचना दी—कि 'मैं आपसे एकान्तमें कुछ कहना चाहता हूँ और एकान्तमें कहा, प्रभो! आपका नवयुवक पुत्र साम्ब बड़ा वाग्मी, रूपवान्, परम सुन्दर तथा देवताओंमें भी आदर पानेवाला है। देवेश्वर! आपकी देवतुल्य हजारों स्त्रियाँ भी उसको देखकर क्षुब्ध हो जाती हैं। आप साम्बको और उन देवियोंको यहाँ बुलाकर परीक्षा करें कि वस्तुतः क्षोभ है या नहीं। इसके पश्चात् सभी स्त्रियाँ तथा साम्ब श्रीकृष्णके सामने आये और हाथ जोड़कर बैठ गये। क्षणभरके बाद साम्बने पूछा—'प्रभो! आपकी क्या आज्ञा है?' वस्तुतः साम्बकी सुन्दरताको देखकर श्रीकृष्णके सामने ही उन स्त्रियोंके मनमें क्षोभ उत्पन्न हो गया था।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'देवियो! अब तुम सभी उठो और अपने स्थानको जाओ।' श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर वे देवियाँ अपने-अपने स्थानको चली गयीं। पर साम्ब वहीं बैठे रहे। उनके शरीरमें कँपकँपी बँध रही थी। श्रीकृष्णने कहा—'नारदजी! स्त्रियोंका स्वभाव बड़ा ही विलक्षण है।'

नारदजीने कहा—'प्रभो! इनकी इस प्रवृत्तिसे सत्यलोकमें भी आपकी निन्दा हो रही है, अतः अब साम्बका परित्याग ही उचित है। भगवन्! संसारमें आपकी तुलना करनेवाला दूसरा कौन पुरुष है? आप ही इसे कर सकते हैं।'

वसुंधरे! नारदके इस कथनपर श्रीकृष्णने साम्बको रूपहीन होनेका शाप दे दिया, जिससे साम्बके शरीरमें कुष्ठ-रोग हो गया और उनके शरीरसे दुर्गन्धयुक्त रक्त गिरने लगा। अब उनका शरीर ऐसा दिखायी पड़ने लगा, मानो कोई छिन्न-भिन्न अङ्गवाला पशु हो। फिर नारदजीने ही साम्बको शापसे छूटनेके लिये सूर्यकी आराधनाका उपदेश दिया। साथ ही कहा—'जाम्बवती-नन्दन! तुम्हें वेद और उपनिषदोंमें कहे हुए मन्त्रोंका उच्चारण करके विधिके अनुसार सूर्य-नमस्कार करना चाहिये। इससे वे संतुष्ट हो जायँगे।' फिर सूर्यसे तुम्हारा समुचित संवाद होगा, जिस प्रसङ्गको लेकर 'भविष्यपुराण' निर्मित होगा। उसे मैं ब्रह्माजीके लोकमें जाकर उनके सामने सदा पाठ करूँगा। फिर सुमन्तुमुनि मर्त्यलोकमें मनुके सामने उसका कथन करेंगे। इस प्रकार उसका सभी लोकोंमें प्रचार-प्रसार होगा।'

साम्बने कहा—'प्रभो! मेरी स्थिति तो ऐसी है, मानो मांसका एक पिण्ड हो। फिर उदयाचलपर मैं जा ही कैसे सकता हूँ। यह आपकी ही कृपा है कि मुझे

यह दुःख भोगना पड़ रहा है, नहीं तो तत्त्वतः मैं बिल्कुल दोषरहित था ।'

नारदजी बोले—'साम्ब ! उदयाचलपर जाकर सूर्यकी आराधना करनेसे जैसा फल मिलता है, वैसा ही फल मथुराके 'षट्सूर्य-तीर्थ'पर सुलभ हो जाता है । यहाँ भगवान् सूर्यकी प्रतिमाओंका प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकाल में जो पूजा करता है, वह तुरंत ही साम्राज्य-जैसा फल प्राप्त कर सकता है । प्रातः, मध्याह्न और सायं— इन तीनों पवित्र समयोंमें सूर्यमन्त्रका जप तथा उच्चस्वरसे उनके स्तोत्रपाठसे सारे पाप धुलकर कुष्ठ आदि रोगोंसे भी मुक्ति मिल जाती है ।'

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! मुनिवर नारदके ऐसा कहनेपर महाबाहु साम्बने श्रीकृष्णसे आज्ञा प्राप्त करके भुक्तिमुक्ति फल देनेवाली मथुरामें आकर देवर्षि नारदकी बतायी विधिके अनुसार प्रातः, मध्याह्न, और सायंकालमें उन षट्सूर्योंकी पूजा एवं दिव्य स्तोत्रद्वारा उपासना आरम्भ कर दी । भगवान् सूर्यने भी योगबलकी सहायतासे एक सुन्दर रूप धारण कर साम्बके सामने आकर कहा— 'साम्ब ! तुम्हारा कल्याण हो ! तुम मुझसे कोई वर माँग लो । मेरे कल्याणकारी व्रत एवं उपासनापद्धतिके प्रचारके लिये भी इसे करना परम आवश्यक है । मुनिवर नारदने तुम्हें जो स्तोत्र बताया है और जिसे तुमने मेरे सामने व्यक्त किया है, उस तुम्हारी 'साम्बपञ्चाशिका'-स्तुतिमें वैदिक अक्षरों एवं पदोंसे सम्बद्ध पचास श्लोक हैं । वीर ! नारदजीद्वारा निर्दिष्ट इन श्लोकोंद्वारा तुमने जो मेरी स्तुति की है, इससे मैं तुमपर पूर्ण संतुष्ट हो गया हूँ ।'

वसुधे ! यह कहकर भगवान् सूर्यने साम्बके सम्पूर्ण शरीरका स्पर्श किया । उनके छूते ही साम्बके सारे अङ्ग सहसा रोगमुक्त होकर चमक उठे । फिर तो वे ऐसे विद्योतित होने लगे, मानो दूसरे सूर्य ही हों । उसी समय याज्ञवल्क्य-मुनि माध्यंदिन यज्ञ करना चाहते थे । भगवान् सूर्य साम्बको लेकर उनके यज्ञमें पधारे और वहाँ साम्बको 'माध्यंदिन-संहिता'का अध्ययन कराया । तबसे साम्बका भी एक नाम 'माध्यंदिन' पड़ गया । 'वैकुण्ठक्षेत्र'के पश्चिम भागमें यह यज्ञ सम्पन्न हुआ था । अतएव इस स्थानको 'माध्यंदिनीय'तीर्थ कहते हैं । वहाँ स्नान एवं दर्शन करनेके प्रभावसे मानव समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है । साम्बके प्रश्न करनेपर सूर्यने जो प्रवचन किया, वही प्रसङ्ग 'भविष्यपुराण'के नामसे प्रख्यात पुराण बन गया । यहाँ साम्बने 'कृष्णगङ्गा'के दक्षिण तटपर मध्याह्नके सूर्यकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा की । जो मनुष्य प्रातः, मध्याह्न और अस्त होते समय इन सूर्यका यहाँ दर्शन करता है, वह परम पवित्र होकर ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है ।

इसके अतिरिक्त सूर्यकी एक दूसरी उत्तम प्रातः-कालीन विख्यात प्रतिमा भगवान् 'कालप्रिय' नामसे प्रतिष्ठित हुई । तदनन्तर पश्चिम भागमें 'मूलस्थान'में अस्ताचल-के पास 'मूलस्थान'नामक प्रतिमाकी प्रतिष्ठा हुई । इस प्रकार साम्बने सूर्यकी तीन प्रतिमाएँ स्थापित कर उनकी प्रातः, मध्याह्न एवं संध्या—तीनों कालोंमें उपासनाकी भी व्यवस्था की* । देवि ! साम्बने 'भविष्यपुराण'में निर्दिष्ट विधिके अनुसार भी अपने नामसे प्रसिद्ध एक मूर्तिकी यहाँ स्थापना करायी । मथुराका वह श्रेष्ठ स्थान 'साम्ब-

* 'वराहपुराण'का यह साम्बोपाख्यान या 'सूर्योपासनाध्याय' बड़े महत्त्वका है । इसमें सूर्यभगवान्के अत्यन्त दिव्य स्तोत्र 'साम्ब-पञ्चाशिका'-स्तुति तथा कोणार्क, उज्जयिनी एवं मुल्तानके प्राचीन भव्य सूर्य-मन्दिरोंका भी संकेत है, जिनकी प्रतिनिधिभूत अर्चाएँ मथुरामें प्रतिष्ठित थीं । इस विषयमें अल्बरूनीके "Indica' p. 298 का—'Multān was originally called Kāśyapapurā, then Hamsapur, then Bagpur, then Sāmbapur and then Mulsthān' यह कथन बड़े महत्त्वका है, जिसमें मुल्तान नगरके पूर्वनाम 'काश्यपपुर' या सूर्यपुर, फिर साम्बपुर तथा मूलस्थान आदि निर्दिष्ट हैं । इसीके खण्ड १ पृष्ठ ११६-७ पर अल्बरूनीने इसके मन्दिर तथा प्रतिमाध्वंसकी कथाका—'Jalam Iben shaiban, the userper, broke the idol into pieces and killed its priests.' आदि शब्दोंमें विस्तृत वर्णन किया है ।

पुर'के नामसे प्रसिद्ध है। सूर्यकी आज्ञाके अनुसार वहाँ रथ-यात्राका प्रबन्ध हुआ। माघ मासकी सप्तमी तिथिके दिन जो सम्पूर्ण राग-द्वेषादि द्वन्द्वोंसे मुक्त मानव उस दिव्य स्थानमें रथ-यात्राकी व्यवस्था करते हैं, वे सूर्यमण्डलका भेदन कर परमपद प्राप्त करते हैं। देवि! साम्बके शापका यह प्रसङ्ग मैंने तुम्हें बतलाया। इसके श्रवणसे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

(अध्याय १७७)



शत्रुघ्नका चरित्र, सेवापराध एवं मथुरामाहात्म्य

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! प्राचीन समयकी बात है—मथुरामें लवण नामक एक राक्षस था। ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये महात्मा शत्रुघ्नने उसका वध किया था। उस स्थानकी बड़ी महिमा है। मार्गशीर्षकी द्वादशी तिथिके अवसर-पर वहाँ संयमपूर्वक पवित्र रहकर स्नान करना और शत्रुघ्नके चरित्रका वर्णन करना चाहिये। लवणासुरके वध करनेसे शत्रुघ्नको अपने शरीरमें पापकी आशङ्का हो गयी थी। उसे दूर करनेके लिये उन्होंने सुस्वादु अन्नोंसे ब्राह्मणोंको तृप्त किया था। इस समाचारसे भगवान् श्रीरामको अत्यन्त आनन्द मिला था। अतः अपनी सेनाके साथ अयोध्यासे यहाँ आकर उन्होंने इसके उपलक्ष्यमें महान् उत्सव किया। अगहन मासके शुक्ल पक्षकी दशमी तिथिके दिन भगवान् राम मथुरा पहुँचे थे और वहाँ एकादशी तिथिके पुण्य-अवसरपर उपवास करके 'विश्रान्ति-तीर्थ'में सपरिवार स्नान कर महान् उत्सव मनाया। फिर ब्राह्मणोंको तृप्त करके स्वयं भोजन किया। उस दिन जो वहाँ उत्सव मनाता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर पितरोंके साथ दीर्घकालतक अर्थात् प्रलयपर्यन्त स्वर्गलोकमें निवास करता है।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! मन, वाणी अथवा कर्म किसी प्रकारसे भी पाप-कर्ममें रुचि रखना अपराध है। दन्तधावन न करने, राजान्न खाने, शवस्पर्श करने, सूतकवाले व्यक्तिका जलग्रहण करने एवं उसका स्पर्श तथा मल, मूत्र आदि क्रियाओंसे भी अपराध बन जाते हैं। अवाच्यवाणी बोलना, अभक्ष्य-भक्षण करना, पिण्याक (हींग)को भोजनमें सम्मिलित करना, दूसरेके मलिन वस्त्र, नीले रंगवाला वस्त्र धारण करना, गुरुसे असत्य भाषण, पतित व्यक्तिका अन्न खाना तथा भोजन न देनेका भय उत्पन्न करना ये—सब सेवापराध हैं। उत्तम अन्न स्वयं खा लेना, बत्तक आदिका मांस खाना और देव मन्दिरमें जूता पहनकर जाना भी अपराध हैं। देवताकी आराधनामें जिस फूलको शास्त्रमें निषिद्ध माना गया है, उसे काममें लेना, निर्माल्य-को विग्रह (मूर्ति) परसे हटाये बिना ही अस्त-व्यस्त होकर अँधेरेमें भगवान्‌की पूजा करना भी अपराध है। मदिरा पीना, अन्धकारमें इष्टदेवताको जगाना, भगवान्‌की पूजा एवं प्रणाम न करके सांसारिक काममें प्रवृत्त हो जाना—ये सभी अपराध हैं। वसुधे! इस प्रकारके तैंतीस अपराधोंको मैंने स्पष्ट कर दिया। इन अपराधोंसे युक्त पुरुष परम प्रभु श्रीहरिका दर्शन नहीं पा सकता। यदि वह दूर रहकर भी पूजा एवं नमस्कार करे तो उसका वह कर्म राक्षसी माना जाता है।

क्रमशः इनकी शुद्धिका प्रकार यह है—मैले वस्त्रसे दूषित व्यक्ति एक रात, दो रात अथवा तीन रातोंतक वस्त्र पहने ही स्नान करे और पञ्चगव्य पिये तो उसकी शुद्धि हो जाती है। नीला वस्त्र पहननेके पापसे बचनेके लिये मानव गोमयद्वारा अपने शरीरको भलीभाँति मले और 'प्राजापत्य' व्रत करे तो वह पवित्र हो जाता है। गुरुके प्रति बने हुए पापसे मुक्तिके लिये दो 'चान्द्रायण'व्रत करनेका

विधान है। लोग पतितका अन्न खा लेनेपर 'चान्द्रायण'* और 'पराक'व्रत† करनेसे शुद्ध होते हैं। जूता पहनकर मन्दिरमें जानेवाला मानव 'कृच्छ्रपाद'व्रत और दो दिन उपवास करे। फूल तथा नैवेद्यके अभावमें भी पञ्चामृतसे भगवान्‌का स्नान एवं स्पर्श करके नमस्कार करनेकी विधि है। मदिरा-पानके पापसे शुद्ध होनेके लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको चाहिये कि चार 'चान्द्रायण' व्रत तथा बारह वर्षोंतक तीन 'प्राजापत्य' व्रत करे।

अथवा 'सौकरवक्षेत्र'में जाकर उपवास एवं गङ्गामें स्नान करे। उसके प्रभावसे प्राणी शुद्ध हो सकता है। ऐसे ही मथुरामें भी स्नान-उपवास करनेसे शुद्धि सम्भव है। जो मनुष्य इन दोनों तीर्थोंका उक्त प्रकारसे एक बार भी सेवन करता है, वह अनेक जन्मोंके किये हुए पापोंसे मुक्त हो जाता है। इन तीर्थोंमें स्नान, जलपान तथा भगवान्‌के ध्यान-धारणा, कीर्तन, मनन-श्रवण एवं दर्शन करनेसे भी पातक पलायन कर जाते हैं।

पृथ्वीने पूछा—सुरेश्वर! मथुरा और सूकर—ये दोनों ही तीर्थ आपको अधिक प्रिय हैं। पर यदि इनसे भी बढ़कर कोई अन्य तीर्थ हो तो अब उसे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुधे! छोटी-छोटी नदियोंसे लेकर समुद्रपर्यन्त पृथ्वीपर जितने तीर्थ हैं, उन सबमें 'कुब्जाम्रक' तीर्थ श्रेष्ठ माना जाता है। मेरी श्रद्धासे सम्पन्न सत्पुरुष सदा उसकी प्रशंसा करते हैं। कुब्जाम्रकसे भी कोटिगुना अधिक परम गुह्य 'सौकरव'-तीर्थ है। एक समयकी बात है—मार्गशीर्षके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिको मैं 'सितवैष्णव'तीर्थमें गया। वहाँ पुराणोंमें श्रेष्ठ एक 'गङ्गासागरिक' नामका पुराण देखा है। इसमें मेरे मथुरामण्डलके तीर्थोंकी अत्यन्त गुह्य महिमा वर्णित है। 'सिततीर्थसे' परार्द्धगुणा फल यहाँ सुलभ होता है—इसमें कोई संशय नहीं है। 'कुब्जाम्रक' प्रभृति समस्त तीर्थोंमें भ्रमण करनेके पश्चात् मैं मथुरामें आया और एक स्थानपर बैठ गया। मेरे उस स्थानका नाम 'विश्रान्तितीर्थ' पड़ गया। वह स्थान गोपनीयोंमें भी परम गोपनीय है। वहाँ स्नान करनेसे परम उत्तम फल मिलता है। गतिका अन्वेषण करनेवाले व्यक्तियोंके लिये मथुरा परम गति है। मथुरामें विशेष करके 'कुब्जाम्रक' और 'सौकर' क्षेत्रकी महिमा है। सांख्ययोग और कर्मयोगके अनुष्ठानके बिना भी इन तीर्थोंकी कृपासे मानव मुक्त हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है। योगसे सम्पन्न विद्वान् ब्राह्मणके लिये जो गति निश्चित है, वही गति मथुरामें प्राण-त्याग करनेसे साधारण व्यक्तिको भी प्राप्त हो जाती है। सुव्रते! वस्तुतः मथुरासे उत्तम न कोई दूसरा तीर्थ है और न भगवान् केशवसे श्रेष्ठ कोई देवता है। (अध्याय १७९)

श्राद्धसे अगस्तिका उद्धार, श्राद्ध-विधि तथा 'ध्रुवतीर्थ'की महिमा

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! अब पितरोंसे सम्बद्ध एक दूसरा प्रसङ्ग कहता हूँ, उसे सुनो। मथुरापुरीमें पहले एक धार्मिक एवं शूर-वीर राजा थे, जिनका नाम चन्द्रसेन था। उनकी दो सौ रानियाँ थीं, जिनमें 'चन्द्रप्रभा' सबसे गुणवती थी। उसके सौ दासियाँ थीं, जिनमें एकका नाम 'प्रभावती' था। उस दासीके परिवारके पुरुष सदाचार विहीन थे। सभी

* चान्द्रायण-व्रतके अनेक भेद हैं, जैसे 'पिपीलिका', 'यवमध्य', 'शिशुचान्द्रायण' आदि। शुक्लपक्ष प्रतिपदसे ग्रासवृद्धिपूर्वक अमावास्याको सर्वथा उपवास रहना 'यवमध्य' सर्वोत्तम चान्द्रायण है।

† १२ दिनोंका सर्वथा उपवास 'पराकव्रत' है। यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम्। पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापापनोदनः॥ (मनु० ११। २१५)

मरकर दोषके कारण नरकयातनामें पड़ गये; क्योंकि उनके कुलमें एक वर्णसंकर उत्पन्न हो गया था ।

देवि ! एक समय वे पितर 'ध्रुवतीर्थ'में आये, जिनपर एक त्रिकालदर्शी ऋषिकी दृष्टि पड़ गयी । इनमें कुछ दिव्यरूपवाले पितर आकाश-गमनकी शक्तिसे युक्त श्रेष्ठ वाहनोंपर चढ़कर आये और अपने वंशजोंको आशीर्वाद देकर चले गये । कुछ दूसरे पितृगण जो 'ध्रुवतीर्थ'में आये, उनके श्राद्ध न होनेसे पेटमें झुर्रियाँ पड़ गयी थीं । अतः वे पुत्रोंको शाप देकर चले गये। त्रिकालज्ञ मुनि यह सब दृश्य देख रहे थे । जब पितृगण चले गये और वे मुनि अकेले आश्रममें रह गये तो एक सूक्ष्मशरीरधारी पितरने उनसे कहा— 'मुने ! वर्णसंकरसम्बन्धी दोषके कारण मुझे नरकमें स्थान मिला है। मैं सौ वर्षोंसे आशारूपी रस्सियोंसे बँधा प्रतीक्षा करता रहा; पर अब निराश होकर आपके पास आया हूँ । तीनों तापोंसे अत्यन्त घबराकर और विवश होकर मैं आपकी शरण आया हूँ। जिनके पुत्रोंने पिण्डदान एवं तर्पण किया है, वे पितर हृष्ट-पुष्ट होकर आकाशगमनकी शक्तिसे स्वर्गमें चले गये हैं । किंतु मैं बलहीन व्यक्ति कहीं भी नहीं जा सकता हूँ । जिनकी संतान अपने बाल-बच्चोंके साथ सदा सम्पन्न है, वे उनके द्वारा स्वधासे सुपूजित होकर परम गतिके अधिकारी होते हैं । त्रिकालज्ञ मुनिवर ! आपको दिव्यदृष्टि सुलभ है । उसके प्रभावसे आपने जिन पितरोंको स्वर्गमें जाते हुए देखा है, वे सभी आज राजा चन्द्रसेनके द्वारा सत्कृत हुए हैं ।'

पितरने कहा—'जो पितरोंके लिये श्राद्ध करता है, उसका उत्तम फल निश्चित है, किंतु न करनेसे विपरीत फल सामने आता है और पितर नरकके भागी हो जाते हैं; इसमें कुछ कारण है, वह भी मैं आपको बताता हूँ; सुनें । श्राद्धसम्बन्धी जो द्रव्य उचित देश, काल और पात्रको नहीं दिया गया, विधिकी रक्षा न हुई, साथमें दक्षिणा न दी गयी तो वह प्रत्यवायका कारण हो जाता है । जो श्राद्ध श्रद्धाके साथ सम्पन्न नहीं हुआ, जिसपर दुष्ट प्राणीकी दृष्टि पड़ गयी, जिसमें तिल और कुशाका अभाव रहा एवं मन्त्र भी नहीं पढ़े गये, उस श्राद्धको असुर ग्रहण कर लेते हैं । प्राचीन समयसे ही भगवान् वामनने ऐसे श्राद्धका अधिकारी बलिको बना रखा है । ऐसे ही दशरथ-नन्दन भगवान् रामके द्वारा अपने गणोंके साथ क्रूर रावण जब दिवंगत हो गया तो उन त्रिभुवन-भर्ता श्रीरामने कुछ ऐसे श्राद्धोंका फल त्रिजटाको भी दे दिया था । भगवान् राम जब भगवती सीताके साथ बैठे थे, सीताने उनसे कहा—'त्रिजटा आपमें भक्ति रखती थी ।' सीताजीकी बात सुनकर श्रीराम प्रसन्न हो गये । अतः उन परम प्रभुने उस राक्षसीको यह वर दिया—'त्रिजटे ! जिस श्राद्ध करनेवाले व्यक्तिके घर श्राद्धकी उत्तम हविष् पदार्थ आदि सामग्रियाँ न हों, विधि और पात्र उचित रहनेपर भी यदि श्राद्ध करते समय क्रोध आ गया हो तथा पाक्षिक एवं मासिक श्राद्ध उचित समयपर सम्पन्न न हों एवं दक्षिणा भी न दी जाय तो उसका फल मैं तुम्हें देता हूँ ।'

इसी प्रकार एक बार भगवान् शंकरने नागराज वासुकिकी भक्तिसे प्रसन्न होकर उसे वर देते हुए कहा था—'नागराज ! जिस मनुष्यने वार्षिक श्राद्ध करनेके पूर्व भगवान् श्रीहरिसे आज्ञा प्राप्त नहीं की और श्राद्ध-क्रिया सम्पन्न कर ली, यज्ञके अवसरपर उचित दक्षिणा न दी, देवता एवं ब्राह्मणके सामने देनेकी प्रतिज्ञा करके उसे पूरा नहीं किया, श्राद्धमें बिना मन्त्र पढ़े ही क्रियाएँ कर दीं—ऐसे यज्ञों एवं श्राद्धोंका सम्पूर्ण फल मैं तुम्हें अर्पित करता हूँ ।' मुने ! ये सभी बातें पुराणों एवं इतिहासोंमें वर्णित हैं ।

'मुने ! जिन्हें आपने दयनीय दशामें देखा था, उनके श्राद्ध, अवैध रूपमें ही अनुष्ठित हुए हैं । अतः उसका

उत्तम फल इन पितरोंको प्राप्त नहीं हो सका है। यही कारण है कि ये नंग-धड़ंग कालक्षेप कर रहे हैं। इनके पुत्रोंने जो श्राद्ध-क्रिया की थी, उसमें त्रुटि रह गयी थी। इसीलिये पितृगण गाथा गाते हैं कि 'क्या हमारे कुलमें ऐसा कोई व्यक्ति जन्म लेगा, जो प्रभूत जलवाली नदियोंमें 'तृप्यध्वं०, उदीरतां०, आयन्तु०' इत्यादि मन्त्रोंसे हमारा तर्पण एवं उनके तटपर श्राद्ध करेगा।' महाप्राज्ञ! आपने मुझसे जो पूछा था, संक्षेपमें उसका यही उत्तर है।''

वसुंधरे! यह सब सुनकर वे ऋषि राजा चन्द्रसेनके पास पहुँचे। उन ऋषिको देखकर राजाने सिंहासनसे उठकर पृथ्वीपर खड़े होकर उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर कहा—'मुनिवर! आप मेरे घरपर पधारे, इससे मैं धन्य एवं कृतार्थ हो गया। आपके यहाँ आ जानेसे मेरा जन्म सफल हो गया। मुने! पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क और गौ—ये सभी वस्तुएँ आपकी सेवामें समर्पित हैं। इन्हें आप स्वीकार करें, जिससे मुझे पूर्ण संतोष हो जाय।'

देवि! उस समय राजा चन्द्रसेनके दिये हुए अर्घ्य आदिको स्वीकार करके त्रिकालज्ञ मुनिने तुरंत उन नरेशसे कहा—'राजन्! मेरे आनेका एक विशेष कारण भी है, आप उसे सुनें।' इसपर राजर्षि चन्द्रसेनने उन तपोधन ऋषिसे पूछा—'तपोधन! वह कौन-सा कार्य है? आप बतानेकी कृपा कीजिये। मैं वह समुचित कार्य करनेके लिये उद्यत हूँ, जिससे आपका मनोरथ सिद्ध हो सके।'

मुनिने कहा—'राजन्! आप अपनी पटरानी तथा उनकी दासीको जिसे लोग प्रभावती कहते हैं, यहाँ बुलायें।' इसपर राजाने अपनी रानी तथा दासीको वहाँ बुलवाया। रानी परम साध्वी थीं। वे आकर जमीनपर बैठ गयीं। पर उस समय उनका शरीर भय एवं आशङ्काओंसे काँप रहा था। उन्होंने आते ही विनयपूर्वक ऋषिको प्रणाम किया।

उनके बैठ जानेपर मुनिने कहा—''मैंने 'ध्रुवतीर्थ'में जो आश्चर्यकी एक बात देखी है, उसे आप सभीके सामने व्यक्त करना चाहता हूँ। वह बात यह है कि आज प्राणियोंके पितृगण 'ध्रुवतीर्थ' में उपस्थित हुए थे। श्राद्ध करनेमें कुशल पुत्रोंने जिनका विधिवत् श्राद्ध किया है, वे तो तृप्त होकर स्वर्गको गये; किंतु वहीं मुझे एक अत्यन्त दुःखी पितर मिले हैं। उनका शरीर भूख-प्याससे सूख गया है। उनका मुख शुष्क और आँखें बड़ी छोटी हैं। स्वर्गमें जानेकी आशा तो दूर, वे पुनः अपवित्र नरकमें ही जानेके लिये विवश हैं। उन्हें देखकर मेरे हृदयमें बड़ी दया आयी, अतः मैंने उनसे पूछा—'भाई! तुम कौन हो और क्या चाहते हो? मुझे बतानेकी कृपा करो।' तब उन्होंने अपनी सारी स्थिति बतायी। उस समय उनकी बात सुनते ही करुणासे मैं विवश हो गया हूँ। महारानीजी! बात ऐसी है—आपकी जो यह दासी है, इसकी एक पुत्री है, जो 'विरूपकनिधि' नामसे प्रसिद्ध है। आप उसे भी इस समय यहाँ बुलानेकी कृपा करें।''

वसुंधरे! इस प्रकार मुनिवर त्रिकालज्ञकी बात सुनकर महाराज चन्द्रसेनकी रानीने उसी क्षण उस दासी-पुत्रीको बुलानेकी आज्ञा दी। उस समय वह मद्यपान कर उन्मत्त हो रही थी। किसी प्रकार राजसेवकोंने उसे सँभालकर हाथसे पकड़े हुए वहाँ लाकर उन मुनिके पास उपस्थित किया। मुनि धर्मके पूर्ण ज्ञाता थे। मदके प्रभावसे विक्षिप्त चित्तवाली उस दासीको देखकर उन्होंने उससे पूछा—'अरे! तुमने पितरोंके लिये पिण्डदान तथा जलसे 'स्वधा' कहकर 'तर्पण' किया है अथवा नहीं? ऐसा जान पड़ता है कि तुमने पितरोंको मुक्त करनेवाली पिण्ड एवं तर्पणकी विधियाँ सम्पन्न नहीं की हैं।' वसुधे! इसपर उस दासीने उन मुनिसे कहा—'मैंने ऐसी कोई भी विधि सम्पन्न नहीं की है। मैं तो

यह भी नहीं जानती कि कौन मेरे पितर हैं और उनके लिये कौन-सी क्रिया करनी चाहिये ।'

पृथ्वि ! फिर तो ऐसी बात कहनेवाली उस दासीसे उन त्रिकालज्ञ मुनिने कहा—'आज इस नगरके महाराज, महारानी और यहाँके निवासी—सभी सज्जन पुरुष 'ध्रुवतीर्थ'में पधारें । वहाँ पितरोंके लिये पुत्रोंद्वारा किये गये श्राद्धकी महिमाका फल आपलोगोंके सामने सुस्पष्ट हो जायगा । यह सुनकर सभी नगरनिवासी तथा जिनकी श्राद्ध करनेमें कौतुकवश भी प्रवृत्ति न थी, वे सभी अधिकारी ब्राह्मण भी 'ध्रुवतीर्थ'में गये । वहाँ जानेपर सबकी दृष्टि उस संतानद्वारा असत्कृत एवं अस्त-व्यस्त प्राणीपर पड़ी । विचारेको क्षुद्र मच्छड़-जैसे जीव चारों ओरसे घेरे हुए थे । साथ ही वह भूखसे भी अत्यन्त व्यथित था । उस समय त्रिकालज्ञने कहा—'देखो, ये स्त्रियाँ तुम्हारी संतानोंसे उत्पन्न हैं । तुम परिपुष्ट हो जाओ, एतदर्थ राजाकी कृपासे इनका यहाँ आगमन हुआ है ।'

तब वह पितर बोला—'यह दासी इस 'ध्रुवतीर्थ'में पहले स्नान करे, फिर वेदमें निर्दिष्ट क्रमसे तर्पण करे । तदनन्तर प्राचीन ऋषियोंने जो विधि बतायी है, उसके अनुसार इसे पिण्डदानादि श्राद्ध कर्म करना चाहिये । सभी कर्मपात्र चाँदीके हों । साथमें वस्त्र और चन्दन रहना आवश्यक है । फिर भक्तिपूर्वक पिण्डार्चन करके पितरोंकी पूजा करे । आप सभी सज्जन यहीं रहें और इसका परिणाम तत्काल देख लें—मैं परम सुखसे सम्पन्न हो जाऊँगा । इस विधानसे इस संतानके द्वारा मेरा श्राद्ध कराना आप सभीकी कृपापर निर्भर है ।'

वसुंधरे ! रानी चन्द्रप्रभा अगस्तिकी बात सुनकर दासीके द्वारा उस प्राणीका श्राद्ध करानेमें तत्पर हो गयीं । उस श्राद्धमें बहुत-सी दक्षिणाएँ दी गयीं । रेशमी वस्त्र, धूप, कर्पूर, अगुरु, चन्दन, तिल और अन्न आदि विविध वस्तुएँ पिण्डदान-के अवसरपर काममें लायी गयीं । फलस्वरूप श्राद्ध एवं पिण्डदानका क्रम समाप्त होते ही वह विकृत दशावाला अगस्ति ऐसा बन गया, मानो कोई देवता हो । उसका शरीर परम तेजोमय हो गया । पार्श्ववर्ती जो मशक थे, उनकी आकृतिमें भी वैसा ही परिवर्तन हो गया । अब उनसे घिरा हुआ वह प्राणी ऐसी असीम शोभा पाने लगा, मानो यज्ञमें दीक्षित कोई पुरुष अन्तमें अवभृथ-स्नानसे सम्पन्न हुआ हो । उस समय स्वर्गसे इतने दिव्य विमान आये कि आकाश ढक गया ।

अब अगस्ति आदि सभी बोले—'महानुभावो ! हम लोग भलीभाँति तृप्त हो गये हैं । अतः अब परमधाममें जाते हैं । ध्रुवतीर्थकी यह महिमा मैंने आपके सामने प्रकट कर दी । महामुने ! मेरे कहनेकी बात ही क्या है । आप सबने स्वयं भी इसकी महिमा देख ली । हमारा उद्धार होना नितान्त असम्भव था; किंतु आपकी कृपासे हमने इस दुस्तर पापपुञ्जको पार कर लिया ।'

पृथ्वि ! अब वह अगस्ति नामका प्राणी, मुनिवर त्रिकालज्ञ, राजा चन्द्रसेन, रानी चन्द्रप्रभा, उपस्थित जनता, दासी प्रभावती तथा उसकी पुत्रीको इस प्रकारकी बातें सुनाकर तथा 'आप सभी लोगोंका कल्याण हो'—इस प्रकार कहता हुआ अपने सहचरोंके साथ उत्तम विमानपर चढ़कर स्वर्गके लिये प्रस्थान कर गया ।

भगवान् वराह कहते हैं—भद्रे ! इसके पश्चात् महाराज चन्द्रसेन उस तीर्थकी महिमा देखकर महर्षि त्रिकालज्ञको प्रणामकर अपने परिजन, पुरजन-सहित नगरको लौट गये ।

पृथ्वि ! मथुरा-मण्डलके अन्तर्गत तीर्थोंका माहात्म्य मैंने तुम्हें सुनाया । यह तीर्थ ऐसा शक्तिसम्पन्न है कि जिसका स्मरण करनेसे भी मनुष्यके पूर्व-जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं । जो पुरुष ब्राह्मणोंकी संनिधिमें

बैठकर इस प्रसङ्गको पढ़ता है, उसने मानो गयशिरपर (गयाक्षेत्रमें) जाकर अपने पितरोंको तृप्त कर दिया। महाभागे ! जिसकी व्रतमें आस्था न हो, इस प्रसङ्गको सुननेमें उदासीन हो तथा भगवान् श्रीहरिकी अर्चासे विमुख हो, उसके सामने इसका वर्णन नहीं करना चाहिये। यह प्रसङ्ग तीर्थोंमें परम तीर्थ, धर्मोंमें श्रेष्ठ धर्म, ज्ञानोंमें सर्वोत्कृष्ट ज्ञान एवं लाभोंमें उत्तम लाभ है। महाभागे ! जिनकी भगवान् श्रीहरिमें सदा श्रद्धा रहती है तथा जो पुण्यात्मा पुरुष हैं, उनके सामने ही इसका प्रवचन करना उचित है।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! भगवान् वराहकी यह वाणी सुनकर देवी धरणीका मन अत्यन्त आश्चर्यसे भर गया। अब उन देवीने प्रसन्नतापूर्वक प्रतिमाकी स्थापनाके विषयमें प्रभुसे पुनः प्रश्न करना आरम्भ किया।

(अध्याय १८०)

काष्ठ-पाषाण-प्रतिमाके निर्माण, प्रतिष्ठा एवं पूजाकी विधि

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! भगवती वसुंधराने जब तीर्थोंका महत्त्व सुना तो वे आश्चर्य एवं प्रसन्नतासे भर गयीं और भगवान् वराहसे पुनः बोलीं।

धरणीने पूछा—भगवन् ! आपने मथुरा-क्षेत्रकी महत्ताका जो वर्णन किया, उसे सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई; परंतु मेरे हृदयमें एक जिज्ञासा है। विष्णो ! उसे सविस्तार बतानेकी कृपा कीजिये। मैं यह जानना चाहती हूँ कि काष्ठ, पाषाण एवं मृत्तिकाके विग्रहमें आप किस प्रकार विराजते हैं ? अथवा ताँबा, काँसा, चाँदी और सुवर्ण आदिकी प्रतिमामें आपको कैसे प्रतिष्ठित करना चाहिये, जिससे वे अर्चाएँ आपका स्वरूप बन सकें। माधव ! लोग अपने दक्षिण-भागमें दीवालपर अथवा भूमिपर भी आपके श्रीविग्रहकी रचना करते हैं, मैं उसकी विधि भी जानना चाहती हूँ।

भगवान् वराह बोले—वसुंधरे! जिस वस्तु या द्रव्यादिसे प्रतिमा बनवानी हो, पहले उसका शोधन करके उसे लक्षणोंके अनुसार चिह्नित करना चाहिये। फिर उसकी शुद्धि कर सविधि प्रतिष्ठा करानी चाहिये। देवि ! इसके पश्चात् जन्म-मरणरूपी भयसे मुक्त होनेके लिये उसकी पूजा करनी चाहिये। वसुंधरे ! यदि काष्ठमयी प्रतिमा बनवानी हो तो महुएकी लकड़ी सर्वोत्तम है। प्रतिमा बन जानेपर उसकी सविधि प्रतिष्ठा-पूजा करे। प्रतिष्ठाके समय अर्चनाकी जिन वस्तुओंका मैंने वर्णन किया है, उन गन्ध आदि पदार्थोंको विग्रहपर अर्पित करना चाहिये। कपूर, कुङ्कुम, दालचीनी, अगुरु, रस, इत्र, चन्दन, सिल्हक तथा उशीर आदि सामानोंसे विवेकशील पुरुष उस प्रतिमाका अनुलेपन एवं पूजन करे। स्वस्तिक वृद्धिका सूचक है। अतः प्रतिमापर उसका, श्रीवत्सका तथा कौस्तुभ मणिका चिह्न रहना आवश्यक है। फिर विधिपूर्वक उसका पूजन कर अर्चाको दूधसे सिद्ध हुए खीरका भोग लगाना चाहिये। यह अत्यन्त मङ्गलप्रद है। तिलके तेल या घीका दीपक पूजाके लिये उत्तम है—इसमें कोई संदेह नहीं।

प्राणायाम करके इस मन्त्रको पढ़ना चाहिये—मन्त्रका भाव इस प्रकार है—'भगवन् ! यह सम्पूर्ण विश्व आपका ही स्वरूप है, तथापि आपकी स्पष्ट प्रतीति नहीं होती। प्रभो ! अब आप सुस्पष्ट रूपसे भूमण्डलपर पधारकर इस काष्ठमयी प्रतिमामें प्रतिष्ठित होइये। काठकी बनी हुई प्रतिमाओंमें भगवान्की स्थापनाकी यह विधि है। स्थापनाके बाद भगवत्प्रेमी पुरुषोंके साथ प्रदक्षिणा करनी चाहिये। पूजाके बाद भी दीपक प्रज्वलित रहना चाहिये। मन-ही-मन '**ॐ नमो नारायणाय**' इस

मन्त्रका उच्चारण करे । प्रतिष्ठित मूर्तिकी पूजा नित्य होनी चाहिये । साथ ही इस प्रकार प्रार्थना करे—'भगवन् ! आप मेरे एकमात्र आश्रय हैं । वासुदेव ! मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप इस स्थानका कभी परित्याग न करें ।'

वसुंधरे ! फिर उस समय वहाँ अन्य जितने भी भगवत्प्रेमी लोग उपस्थित हों, वे सभी इसी विधिसे अर्चाविग्रहकी पूजा करें । फिर सबको चन्दन, पुष्प, अनुलेपन एवं नैवेद्यद्वारा सविधि पूजन करना चाहिये । सुन्दरि ! महुएकी लकड़ीसे प्रतिमा बनाने और प्रतिष्ठा करनेका यही विधान है । जो मानव काष्ठकी प्रतिमा स्थापित कर इस विधिके साथ पूजा करता है, वह संसारमें न जाकर मेरे लोकको प्राप्त होता है ।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! अब मैं जिस प्रकार पाषाणकी बनी हुई प्रतिमाओंमें निवास करता हूँ, वह बतलाता हूँ । पाषाणकी अच्छी प्रतिमा बनानेके लिये देखनेमें सुन्दर, शल्यरहित एवं भलीभाँति शुद्ध किसी पत्थरको देखकर उसमें दक्ष कलाकारको नियुक्त करे । सर्वप्रथम उस पत्थरपर एक उजली बातीसे प्रतिमा चिह्नित करके उसकी अक्षत आदिसे पूजा कर, दीपक दिखाये और दही एवं चावलसे बलि देकर प्रदक्षिणा करे । इसके पश्चात्—**'ॐ नमो नारायणाय'** यह मन्त्र पढ़कर कहे—'भगवन् ! आप सम्पूर्ण प्राणियोंमें श्रेष्ठ एवं परम प्रसिद्ध हैं; सूर्य-चन्द्रमा एवं अग्नि आपके ही रूप हैं । आपसे अधिक विज्ञ चराचर विश्वमें अन्य कोई है ही नहीं । भगवान् वासुदेव ! इस मन्त्रके प्रभावसे प्रभावित होकर आप इस प्रतिमामें शनैः-शनैः प्रतिष्ठित होकर मेरी कीर्तिको बढ़ायें तथा स्वयं भी वृद्धिको प्राप्त हों । अच्युत वराह ! आपकी जय हो, जय हो । आप अपनी अभीष्ट प्रतिमा स्वयं निर्मित करायें ।'* फिर ऐसी धारणा करे कि सारा विश्व एक परम प्रभु भगवान् नारायणका ही स्वरूप है । जब मूर्ति बन जाये तो उसे पूर्वाभिमुख रखे । फिर उज्ज्वल वस्त्र धारणकर रातमें उपवास करे । पुनः प्रातः दन्तधावन कर और सफेद यज्ञोपवीत पहनकर हाथमें गन्धादि लेकर कहे—'भगवन् ! जिन्हें सर्वरूप एवं 'मायाशबल' कहा जाता है, वही आप अखिल जगत्के रूपमें विराजते हैं । प्रभो ! इस प्रतिमामें भी आपका वास है । जगत्के कारण जगत्के आकार तथा अर्चावतार धारण करके शोभा पानेवाले लोकनाथ ! इस प्रकार मैंने आपकी आराधना की है । यह विग्रह भी आपसे रिक्त नहीं है । आदि और अन्तसे रहित प्रभो ! इस जगत्की सत्ता स्थिर रहनेमें आप ही निमित्त हैं । आप अपराजेय हैं ।' इस प्रकार भगवद्विग्रहकी पूजा कर—**'ॐ नमो वासुदेवाय'** मन्त्र पढ़कर प्रतिमाके ऊपर जल छिड़कना चाहिये ।

सुन्दरि ! इस प्रकार पाषाणमयी प्रतिमामें मेरी प्राण-प्रतिष्ठाकर पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रमें अन्नादिमें अधिवासन करना चाहिये । मेरी उपासनामें उद्यत रहनेवाला जो व्यक्ति मेरी प्रतिमाकी स्थापना कराता है, वह मुझ भगवान् श्रीहरिके लोकमें जाता है—यह निश्चित है । स्थापनाके दिनोंमें साधक यव अथवा दूधसे बने आहारपर दिन-रात व्यतीत करे । इष्टदेवकी प्रतिमा प्रतिष्ठित हो जानेपर सायंकालकी संध्याके समय चार दीपक प्रज्वलित करे । भगवान्के आसनके नीचे पञ्चगव्य, चन्दन और जलसे परिपूर्ण चार कलश स्थापित करना चाहिये । इस समय सामवेदके गान करनेवाले ब्राह्मण वेदध्वनि करें । देवि !

* यहाँ प्रतिमानिर्माणकी विधि अत्यन्त संक्षिप्त है । इसे विस्तारसे जाननेके लिये 'श्रीविष्णुधर्मोत्तरमहापुराण' खण्ड ३, अध्याय ४५से १२० 'काश्यपशिल्पम्' पृष्ठ ४९से ८० तक तथा 'Elements of Hindu Ichonography'—(T. N. Gopinath Rao.) आदि पुस्तकें देखनी चाहिये ।

जो ब्राह्मण वेदके हजारों मन्त्रोंको पढ़ते हैं, उनके मुखसे निकलते हुए इस शुभप्रद सामके स्वरको सुनकर मैं वहाँ आ जाता हूँ। क्योंकि वेद-मन्त्रका पाठ मुझे परम प्रिय है। किंतु वहाँ अनर्गल प्रलाप नहीं होना चाहिये।

पुण्यव्रती व्यक्ति पूजाके समय इस अर्थवाले मन्त्रको पढ़कर आवाहन करे—'भगवन्! छः प्रकारके कर्मोंमें आपकी प्रधानता है। आप पाँचों इन्द्रियोंसे सम्पन्न होकर यहाँ पधारनेकी कृपा कीजिये। जगत्प्रभो! आपमें सभी वेदमन्त्र स्थान पाये हुए हैं। समस्त प्राणियोंकी स्थिति भी आपहीमें है। यह अर्चा आपके रहनेका सुरक्षित स्थान है।' इसी अर्थके मन्त्रका उच्चारण करते हुए तिल, घृत, समिधा और मधुसे एक सौ आठ आहुतियाँ भी देनी चाहिये। देवि! मैं इस विधिके द्वारा प्रतिमामें प्रतिष्ठित हो जाता हूँ*। फिर प्रातःकाल स्वच्छ जलमें स्नान करे और मन्त्र पढ़कर पञ्चगव्यका पान करे। अनेक प्रकारके गन्ध, पुष्प और लाजा आदिका प्रयोग कर फिर माङ्गलिक गीत-वाद्यके साथ प्रतिमाको मध्यभागमें एक ऊँचे स्थानपर स्थापित करे। सब प्रकारके सुगन्धोंको लेकर फिर प्रार्थना करें—'भगवन्! जिन्हें लक्षणोंसे लक्षित, देवी लक्ष्मीसे सुशोभित तथा सनातन श्रीहरि कहते हैं, वे आप ही तो हैं। प्रभो! हमारी प्रार्थना है कि परम प्रकाशसे सुशोभित होकर आप यहाँ विराजिये। आपको मेरा बारंबार नमस्कार है।'

इस प्रकार भगवान्‌की शैलार्चाकी स्थापना कर उसका अनुलेपन (उबटन) करना चाहिये। चन्दन-कुङ्कुमादिसे मिला हुआ 'यक्षकर्दम'का उद्वर्तन (उबटन) श्रेष्ठ है। इस प्रकार उद्वर्तन अर्पण करके इस अर्थ-का मन्त्र पढ़ना चाहिये—'प्रभो! आप सम्पूर्ण संसारमें प्रधान हैं तथा ब्रह्मा और बृहस्पतिने आपकी भलीभाँति पूजा की है। आप अखिल लोकके कारण एवं मन्त्रयुक्त हैं। भगवन्! मैं आपका इस मन्त्रके द्वारा स्वागत करता हूँ। आप यहाँ विराजनेकी कृपा कीजिये।' इस विधिसे भलीभाँति स्थापना करके गन्ध एवं फूलोंसे पूजा करनी चाहिये। मेरे विग्रहपर पहले श्वेत वस्त्र चढ़ाना चाहिये। वस्त्र अर्पण करते समय इस अर्थ-का मन्त्र पढ़े—'देवेश! भक्तिपूर्वक वस्त्र आपके लिये अर्पित करता हूँ। विश्वमूर्ते! इन वस्त्रोंको आप ग्रहण करके मुझपर प्रसन्न होइये। आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है।'

तत्पश्चात् कुङ्कुम और अगुरुसे मिला हुआ धूप देना चाहिये। धूप देते समय इस अर्थका मन्त्र पढ़ना चाहिये—'देवेश! जो आदिरहित, पुराणपुरुष तथा सम्पूर्ण संसारमें सर्वोपरि शोभा पाते हैं, वे भगवान् नारायण! आप चन्दन, मालाएँ, धूप और दीप स्वीकार करनेकी कृपा कीजिये। आपको मेरा निरन्तर नमस्कार है।'

इस प्रकार पूजा करनेके पश्चात् भगवत्प्रतिमाके सामने नैवेद्य अर्पण करना चाहिये। प्रापण-अर्पण करनेका मन्त्र पूर्वमें बतला दिया गया है, उसीका उच्चारण करके विज्ञ पुरुष उसे अर्पित करें। शरीरकी शुद्धिके लिये नैवेद्यके बाद आचमन देना आवश्यक है। शान्ति-पाठ करे। क्योंकि शान्तिका पाठ करनेसे सम्पूर्ण कार्योंमें सिद्धि सुलभ हो जाती है। मन्त्रका भाव यह है—'जगत्प्रभो! ओंकार आपका स्वरूप है। आप ऐसी कृपा करें कि राजा, राष्ट्र, ब्राह्मण, बालक, वृद्ध, गौएँ, कन्याएँ तथा पतिव्रताओंमें

* यह प्रतिमा-प्रतिष्ठाकी अत्यन्त संक्षिप्त विधि है। विशेष जानकारीके लिये—'शारदातिलक', 'प्रतिष्ठामयूख' (भगवन्तभास्कर), 'प्रतिष्ठा-महोदधि', 'कल्याण'-अग्निपुराणाङ्क-अध्याय ९२ से १०३ तक देखना चाहिये। प्रतिमा-निर्माणके बाद कर्मकुटी, जलाधिवासन, ग्रामादिप्रदक्षिणा, हवन-प्रतिष्ठा, न्यासादि कर्म भी आवश्यक होते हैं।

भलीभाँति शान्ति रहे। रोग नष्ट हो जायँ, किसानोंके यहाँ सदा अच्छी फसल उत्पन्न हो। दुर्भिक्ष न रहे। समयपर अच्छी वृष्टि हो और विश्वमें शान्ति बनी रहे।*

वसुंधरे ! व्रती पुरुष इस प्रकारकी विधिका पालन करते हुए शास्त्रमें निर्दिष्ट विधिके द्वारा देवेश्वर भगवान्‌की भली प्रकारसे आराधना करे। इसके पश्चात् ब्राह्मणोंको निरहंकार-भावसे भोजन कराये। यदि अपनेमें शक्ति हो तो गरीबों एवं अनाथोंको भी तृप्त करनेका प्रयत्न करे। इस विधिसे मेरी अर्चाकी स्थापना करनी चाहिये। इसके परिणामस्वरूप पुरुष मेरे लोकमें प्रतिष्ठा पाता है। फिर तो मेरे अङ्गोंपर जलकी जितनी बूँदें गिरती हैं, उतने हजार वर्षोंतक वह विष्णुलोकमें रहनेका अधिकारी होता है। भूमे ! अहंकारसे रहित जो व्यक्ति मेरी स्थापना करता है, वह मानो अपने उनचास पीढ़ीके पुरुषोंका उद्धार कर देता है। (अध्याय १८१-८२)

मृन्मयी एवं ताम्रप्रतिमाओंकी प्रतिष्ठाविधि

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! अब मृत्तिकासे बनी अपनी प्रतिमाका स्थापन-विधान कहता हूँ, सुनो। मृन्मयी मूर्ति सुन्दर, स्पष्ट और अखण्डित होनी चाहिये। यदि काष्ठ न मिल सके तो मिट्टीका अथवा पाषाणका विग्रह बनानेका विधान है। कल्याणकी कामनावाले विद्वान् पुरुष ताँबा, काँसा, चाँदी, सोना अथवा शीशा—इन वस्तुओंसे भी मेरी सुन्दर प्रतिमाका निर्माण कराते हैं। यदि कर्मकाण्डके संकोचकी इच्छा हो तो वेदीपर ही मेरी पूजा की जा सकती है। कुछ लोग जगत्‌में यश फैलनेकी कामनासे भी मेरी प्रतिमाओंकी स्थापना करते हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो अपना अभीष्ट पूरा होनेके लिये प्रतिमाएँ स्थापित करते हैं, कुछ लोग उत्तम तीर्थको देखकर वहीं मेरा पूजन कर लेते हैं, अथवा मेरे तेजसे प्रकट हुए सूर्यमण्डलमें ही मेरी आराधना करते हैं।

देवि ! तुम्हें ऐसा समझना चाहिये कि मैं विभिन्न व्यक्तियोंकी भावनाके अनुसार वहीं उपस्थित हो जाता हूँ, और पूजा प्राप्त कर मैं उपासकको सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे पूर्ण कर देता हूँ, इसमें कोई संशय नहीं। मनुष्य जिस-जिस फलका उद्देश्य रखकर मन्त्रोंका उच्चारण अथवा विधिपूर्वक कर्मोंके सम्पादन-द्वारा मेरी आराधनामें लगा रहता है, उसे वह अभिलषित फल प्राप्त हो जाते हैं। यही नहीं, मेरी कृपासे उसे सर्वोत्तम गति भी प्राप्त हो जाती है। मेरा भक्त प्रतिदिनके नियमित कार्योंमें सदा व्यस्त रहते हुए मनसे भी मेरी आराधना कर सकता है। मेरे लिये यदि किसीने श्रद्धापूर्वक एक अञ्जलि जल भी अर्पण कर दिया तो मैं उसकी उस भक्तिसे संतुष्ट हो जाता हूँ। उसके लिये बहुतसे फूलों, जपों एवं नियमकी क्या आवश्यकता है, जो अपने अन्तःकरणको स्वच्छ रखकर नित्य मेरा चिन्तन करता है। मैं उसकी भी सम्पूर्ण कामनाएँ पूरी कर देता हूँ और उसे दिव्य एवं मनोरम भोग तथा ज्ञान एवं मोक्ष भी सुलभ हो जाते हैं।

वसुंधरे ! ये सभी बातें अत्यन्त गोपनीय हैं, मेरे कर्मोंमें श्रद्धा रखनेवाला व्यक्ति मृन्मयी प्रतिमाका निर्माण कर श्रवणनक्षत्रमें उसके स्थापन एवं प्रतिष्ठाकी तैयारी करे। इसमें भी पूर्वोक्त मन्त्रोंका उच्चारणकर उसी विधिसे स्थापना करनी चाहिये। जलके साथ पञ्चगव्य और चन्दनको मिलाकर उससे मेरी प्रतिमाको स्नान कराये। उस समय कहे—'अच्युत ! जो विश्वकी रचना करते हैं तथा जिनकी कृपासे जगत्‌की सत्ता सुरक्षित है,

*तुलनीय यजुर्वेद—'आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्यो ······ योगक्षेमो नः कल्पताम् ।' (शु० यजुर्वेदसं० २२।२२)

वे आप ही हैं। भगवन्! मुझपर कृपा करके आप इस मृन्मयी प्रतिमामें प्रतिष्ठित होइये। प्रभो! आप कारणके भी कारण, प्रचण्ड तेजस्वी, परम प्रकाशमान तथा महापुरुष हैं। आपको मेरा निरन्तर नमस्कार है।' ऐसा कहकर उस प्रतिमाकी मन्दिरमें स्थापना करे। यहाँ भी पहलेकी ही तरह चार कलशोंका स्थापन करना चाहिये। उन चारों कलशोंको लेकर इस भावका मन्त्र पढ़ना चाहिये—'भगवन्! आप ओंकारस्वरूप हैं। समुद्र आपका ही रूप है, जो वरुणकी कृपा प्राप्त करके सम्यक् प्रकारसे पूजा पाता है तथा उसके हृदयमें जलराशि एवं प्रसन्नता भरी रहती है। इस विचारको सामने करके मैं आपको उत्तम अभिषेक अर्पित करता हूँ। जिसकी विशाल भुजाएँ हैं; अग्नि, पृथ्वी एवं रस—ये सभी जिनसे सत्तावान् बने हैं, ऐसे आपको मैं प्रणाम करता हूँ।'

अर्चाविग्रहका इस प्रकार स्नान कराकर पूर्वकथित नियमोंके अनुसार चन्दन, पुष्प, माला, अगुरु, धूप, कपूर एवं कुङ्कुमयुक्त धूपसे—'**ॐ नमो नारायणाय**'—इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए पूजनकर न्यायके अनुसार पितृ-तर्पण करे। फिर वस्त्र-अर्पण करते समय भी '**ॐ नमो नारायणाय**' कहकर मन्त्र पढ़े। तत्पश्चात् नैवेद्य अर्पित करे और पूर्वोक्त मन्त्रसे पुनः आचमन देकर शान्तिपाठ करे। मन्त्रका भाव यह है—'देवताओं, ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्योंको शान्ति सुलभ हो। वृद्ध और बालवृन्द उत्तम शान्ति प्राप्त करें। भगवान् पर्जन्य जलकी वृष्टि करें और पृथ्वी धान्योंसे परिपूर्ण हो जाय।' इस अर्थवाले मन्त्रसे विधिपूर्वक शान्तिपाठ करना चाहिये। तत्पश्चात् श्रीहरिमें श्रद्धा रखनेवाले ब्राह्मणोंका पूजन कर उनकी वन्दना करे और पूजाकी त्रुटियोंके लिये क्षमा-प्रार्थना कर विसर्जन करे। विसर्जनके बाद वहाँ जितने लोग हों, उनका उचित सत्कार करना चाहिये। यदि किसीको मेरा सायुज्य प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो वह गुरुकी भी विधिपूर्वक पूजा करे। जो व्यक्ति शास्त्र-विहित कर्मको सम्पन्न कर भक्तिके साथ गुरुकी पूजा करता है, वह मानो निरन्तर मेरी ही पूजा करता है। यदि कोई राजा किसीपर प्रसन्न होता है तो बड़ी कठिनतासे उसे कहीं एक गाँव दे पाता है, किंतु गुरु यदि किसी प्रकार प्रसन्न हो गये तो उनकी कृपासे ब्रह्माण्डपर्यन्त पृथ्वी सुलभ हो जाती है। शुभे! मैंने जो बात कही है, यह सभी शास्त्रोंका निश्च्योत है। कल्याणि! सम्पूर्ण शास्त्रोंमें गुरुदेवके पूजनकी समुचित व्यवस्था दी गयी है। जो मनुष्य इस विधिसे मेरी प्रतिष्ठा करता है, उसके इस प्रयाससे दोनों कुलोंकी इक्कीस पीढ़ियाँ तर जाती हैं। पूजा करते समय मेरे विग्रहपर जितनी जलविन्दुएँ गिरती हैं, उतने हजार वर्षोंतक वह व्यक्ति मेरे लोकोंमें आनन्द भोगता है। भूमे! मैं तुमसे मृत्तिकासे बनी हुई मूर्तिकी प्रतिष्ठाका वर्णन कर चुका। अब जो सम्पूर्ण भागवत पुरुषोंके लिये प्रिय है, वह दूसरा प्रसङ्ग तुम्हें सुनाऊँगा।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! मेरी ताम्रकी सुन्दर एवं चमकीली अर्चाका निर्माण कराकर समुचित उपचारपूर्वक मन्दिरमें ले आये और उत्तराभिमुख रखे। फिर चित्रा नक्षत्रमें उसका अन्नाधिवासनकर अनेक प्रकारके गन्धों एवं पञ्चगव्यसे मिश्रित जलसे मेरी प्रतिमाको स्नान कराये। स्नान करानेके मन्त्रका भाव यह है—'भगवन्! जो जगत्के एकमात्र तत्त्व तथा उसके आश्रय हैं, वे आप ही हैं। आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करके यहाँ पधारिये और पाँच भूतोंके साथ इस तामे (ताम्र)की प्रतिमामें प्रतिष्ठित होकर मुझे दर्शन दीजिये।' यशस्विनि! इस प्रकार प्रार्थनापूर्वक प्रतिमा स्थापित कर पूर्वोक्त विधिके क्रमसे अधिवासनसमापक पूजा सम्पन्न करे। दूसरे दिन सूर्योदय होनेपर वेदकी ऋचासे शुद्धि करके

मन्त्रपूर्वक मूर्तिको स्नान कराये। उपस्थित ब्राह्मणमण्डली वेदध्वनि करे और माङ्गलिक वस्तुएँ मण्डपमें रखी जायँ। पूजा करनेवाला व्यक्ति सुगन्धित द्रव्यसे युक्त जल लेकर इस भावके मन्त्रको पढ़ता हुआ मेरी प्रतिमाको स्नान कराये। भाव यह है—'ॐकारस्वरूप प्रभो! जो सर्वोपरि विराजमान हैं, सर्वसमर्थ हैं, जिनकी शक्ति पाकर माया बलवती हुई है तथा जो यौगिक शक्तिके शिरोमणि हैं, वे पुरुष आप ही तो हैं। प्रभो! मेरे कल्याणके लिये यथाशीघ्र यहाँ पधारिये और इस ताम्रमयी प्रतिमामें विराजनेकी कृपा कीजिये। ॐकारस्वरूप भगवन्! आप परम पुरुष हैं। सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, श्वास एवं प्रश्वास—ये सब स्वयं आप ही तो हैं।' इसी प्रकार गन्ध, पुष्प एवं दीपकसे अर्चना करनी चाहिये। स्थापनाके मन्त्रका भाव यह है—तीनों लोकोंके प्रतिपालक पुरुषोत्तम! 'आप प्रकाशके भी प्रकाशक, विज्ञानमय, आनन्दमय एवं संसारके प्रकाशक हैं। भगवन्! यहाँ आइये और इस प्रतिमामें सदाके लिये विराजिये और कृपाकर मेरी रक्षा कीजिये।' वैष्णव-शास्त्रोंमें जो नियम बतलाये गये हैं, उसके अनुसार इस मन्त्रको पढ़कर स्थापना करनी चाहिये। फिर हाथमें निर्मल श्वेत वस्त्र लेकर कहे—'सम्पूर्ण विश्वपर शासन करनेवाले प्रभो! आप ॐकार-स्वरूप, परम पुरुष परमात्मा, जगत्‌में एकमात्र तत्त्व एवं शुद्धस्वरूप हैं। ऐसे आप पुरुषोत्तमको मेरा नमस्कार है। मैं आपको ये सुन्दर वस्त्र अर्पित करता हूँ, आप इन्हें स्वीकार करनेकी कृपा कीजिये।

पृथ्वि! मेरे कर्ममें परायण रहनेवाला मानव प्रतिमाको वस्त्रोंसे आच्छादितकर फिर विधिपूर्वक मेरी अर्चा करे। गन्ध एवं धूप आदिसे पूजा करनेके उपरान्त नैवेद्य अर्पण करे। तत्पश्चात् शान्ति-पाठ कराया जाय। शान्ति-मन्त्रका भाव है—'देवताओं और ब्राह्मणोंके लिये उत्तम शान्ति सुलभ हो। राजा, राष्ट्र, वैश्य, बालक, धान्य, व्यापार एवं गर्भिणी स्त्रियाँ—सबमें सदा शान्ति बनी रहे। देवेश! आपकी कृपासे मैं कभी अशान्त न होऊँ।'

शान्ति-पाठके पश्चात् ब्राह्मणोंकी पूजाकर भोजन, वस्त्र एवं अलंकारोंके द्वारा गुरुकी पूजा करनी चाहिये। जिसने गुरुकी पूजा की, उसने मेरी ही पूजा की। जिसके व्यवहारसे गुरु संतुष्ट न हुए, उससे मैं भी बहुत दूर रहता हूँ। जो मनुष्य इस विधानसे मेरी स्थापना करता है, उसके इस कार्यसे छत्तीस पीढ़ी तर जाती है। भद्रे! ताम्बेकी प्रतिमामें मेरे स्थापनकी यह विधि है, जिसे तुम्हें बतला दिया। इसी भाँति सभी प्रतिमाओंकी पूजाका प्रकार मैं तुम्हें बता दूँगा। पृथ्वि! मुझे स्नान कराते समय जलकी जितनी बूँदें मूर्तिके ऊपर गिरती हैं, प्रतिष्ठा करनेवाला व्यक्ति उतने वर्षोंतक मेरे लोकमें निवास पाता है।

(अध्याय १८३-८४)

कांस्य-प्रतिमा-स्थापनकी विधि

भगवान् वराह कहते हैं—सुन्दरि! कांस्य-धातुसे स्वच्छ सुन्दर सभी अङ्ग-सम्पन्न प्रतिमा बनवाकर ज्येष्ठा नक्षत्रमें मूर्तिको घरपर लाकर माङ्गलिक ध्वनिके साथ उसकी भी प्रतिष्ठा करनी चाहिये। मेरी प्रतिमाके प्रवेशकालमें विधिके अनुकूल अर्घ्य लेकर मन्त्र पढ़ना चाहिये। उसका भाव यह है—'जगत्प्रभो! जो सम्पूर्ण यज्ञोंमें पूजा प्राप्त करते हैं, योगिजन जिनका ध्यान करते हैं, जो सदा सबकी रक्षा करते हैं, जिनकी इच्छापर विश्वकी सृष्टि, पालन आदि निर्भर है तथा जो महान् आत्मा एवं सदा प्रसन्न रहते हैं, वे आप ही हैं। भगवन्! आप भली प्रकारसे मेरी यह पूजा स्वीकार कर प्रसन्नतापूर्वक इस विग्रहमें विराजिये। फिर अर्घ्य देकर शास्त्रीय विधिका पालन करते हुए मूर्तिके मुखको उत्तरकी ओर करके रखे। प्रतिष्ठाके समय पञ्चगव्य, सभी प्रकारके चन्दन, लाजा एवं मधुसे सम्पन्न चार कलशोंको स्थापित

करनेकी विधि है। पवित्रात्मा पुरुषको चाहिये कि सूर्यास्त हो जानेपर मेरी वह प्रतिमा पूजा करनेके विचारसे वहीं रख दे। साथ ही भगवन्निमित्त उन शुद्ध कलशोंको उठाकर विग्रहके पास—'**ॐ नमो नारायणाय**' कहकर रखना चाहिये। तत्पश्चात् आगेका मन्त्र पढ़ना चाहिये। मन्त्रका भाव यह है—'भगवन्! ब्रह्माण्ड एवं युगका आदि और अन्त आपके ही रूप हैं। आपके अतिरिक्त विश्वमें कहीं कुछ भी नहीं है। लोकनाथ! अब आप यहाँ आ गये हैं, अतः सदाके लिये विराजिये। प्रभो! आप संसाररूपसे विकार, परमात्मरूपसे निराकार, निर्गुण होनेसे आकारशून्य तथा मूर्तिमान् होनेसे साकार भी हैं। आपको मेरा प्रणाम है।'

पृथ्वि! दूसरे दिन प्रातः सूर्य उदय होनेपर अश्विनी, मूल अथवा तीनों उत्तरा नक्षत्रसे युक्त मुहूर्तमें पूर्वोक्त विधानके अनुसार मुझे मन्दिरके द्वारदेशपर स्थापित करे। सब प्रकारसे शान्ति करनेके लिये जल, गन्ध और फलके साथ—'**ॐ नमो नारायणाय**' इसका उच्चारण कर प्रतिमाको भीतर ले जाय। कलशोंमें चन्दनयुक्त जल भरकर उसे अभिमन्त्रित करे। फिर उसी जलसे स्नान कराये। सम्पूर्ण अङ्गोंको शुद्ध करनेके लिये मन्त्र-पूर्वक जलका आवाहन करे। मन्त्रका भाव यह है—'पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है। भगवन्! ऐसी कृपा करें कि समस्त सागर, सरिताएँ, सरोवर तथा पुष्कर आदि जितने तीर्थ हैं, वे सभी यहाँ आयें, जिनसे मेरे अङ्ग शुद्ध हो जायँ।'

तत्पश्चात् उपासक भक्तिपूर्वक प्रतिमाको स्नान कराकर सविधि अर्चन कर, गन्ध-धूप-दीप आदिसे पूजा कर वस्त्र अर्पित करे। साथ ही यह मन्त्र पढ़े—'ॐकार-स्वरूप देवेश! ये सूक्ष्म, सुन्दर एवं सुखदायी वस्त्र आपकी सेवामें उपस्थित हैं। आप इन्हें स्वीकार करें। आपको मेरा नमस्कार है। वेद, उपवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—ये सभी आपके रूप हैं और सभी आपकी आराधना करते हैं।' पृथ्वि! मन्त्रके विशेषज्ञ व्यक्ति विधिके साथ पूजा करके मुझे अलंकृत करनेके बाद नैवेद्य अर्पित कर आचमन करायें। फिर शान्तिपाठ करें। शान्तिपाठके मन्त्रका भाव यह है—'विद्या, वेद, ब्राह्मण, सम्पूर्ण ग्रह, नदियाँ, समुद्र, इन्द्र, अग्नि, वरुण, आठों लोकपाल आदि देवता—ये सभी विश्वमें शान्ति प्रदान करें। भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले भगवन्! आप सर्वत्र व्याप्त, मनोहर और यम अर्थात् अहिंसा, सत्य वचन एवं ब्रह्मचर्यस्वरूप हैं। ऐसे ॐकारमय आप परम पुरुषके लिये मेरा नमस्कार है।' फिर मेरी प्रदक्षिणा, स्तुति तथा अभिवादन करे। इसके पश्चात् भगवान् श्रीहरिमें श्रद्धा रखनेवाले ब्राह्मणोंकी पूजाकर उन्हें भी तृप्त करे। कमलनयने! विप्रवर्ग शान्ति-कलशका जल लेकर प्रतिमापर सिंचन करें। साधकको ब्राह्मणों, मेरे भक्तों एवं गुरुजनोंकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। प्रतिष्ठाके समय मेरे अङ्गोंपर जलकी जितनी बूँदें गिरती हैं, उतने हजार वर्षोंतक वह व्यक्ति विष्णुलोकमें रहनेका अधिकारी हो जाता है। जो मनुष्य इस विधिसे मेरी स्थापना करेगा, उसने मानो अपने मातृपक्ष एवं पितृपक्ष—दोनों कुलके पितरोंका उद्धार कर दिया। भद्रे! कांस्यधातुसे निर्मित मेरी प्रतिमाकी जैसे प्रतिष्ठा करनी चाहिये, वह बात मैं तुम्हें बता चुका। अब ऐसे ही चाँदीसे बनी मूर्तिकी भी स्थापना होती है, वह आगे बताऊँगा।

(अध्याय १८५)

रजत-स्वर्णप्रतिमाके स्थापन तथा शालग्राम और शिवलिङ्गकी पूजाका विधान

भगवान् वराहने कहा—वसुंधरे! इसी प्रकार मेरी चाँदी तथा स्वर्णसे भी प्रतिमा बनाने एवं उसकी प्रतिष्ठा करनेका विधान है। मूर्ति-निर्माण एवं प्रतिष्ठा उसी प्रकार की जानी चाहिये, जैसी ताम्र या काँसेकी

विधि है। वसुंधरे ! इसमें भी पूजा-अर्चा, कलश-स्थापन एवं शान्तिपाठका भी पूर्वोक्त विधान ही अनुष्ठित होना चाहिये।

पृथ्वी बोली—माधव ! आपने सुवर्ण आदिसे बनी हुई जिन प्रतिमाओंकी बात बतायी है, प्रायः उन सभीमें आपका निवास है। पर शालग्रामशिलामें आप स्वभावतया सदा निवास करते हैं। प्रभो! मैं यह जानना चाहती हूँ कि गृह आदिमें साधारण रूपसे किनकी पूजा करनी चाहिये अथवा विशेषरूपसे कौन देवता पूज्य हैं? आप मुझे इसका रहस्य बतानेकी कृपा करें। साथ ही मुझे यह भी स्पष्ट करा दीजिये कि शिवपरिवारके पूजनमें कितनी संख्याएँ होनी आवश्यक हैं ?

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! गृहस्थके घरमें दो शिवलिङ्ग, तीन शालग्रामकी मूर्तियाँ, दो गोमती-चक्र, दो सूर्यकी प्रतिमाएँ, तीन गणेश तथा तीन दुर्गाकी प्रतिमाओंका पूजन करना निषिद्ध है। विषम संख्यायुक्त शालग्रामकी पूजा नहीं करनी चाहिये। युग्ममें भी दोकी संख्या नहीं होनी चाहिये। विषमसंख्यक शालग्रामकी पूजा निषिद्ध है, पर विषममें भी एक शालग्रामका पूजन विहित है। इसमें विषमताका दोष नहीं है*। अग्निसे जली हुई तथा टूटी-फूटी प्रतिमाकी पूजा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि घरमें ऐसी मूर्तियोंकी पूजा करनेसे गृह-स्वामीके मनमें उद्वेग या अनिष्ट होता है। शालग्रामकी मूर्ति यदि चक्रके चिह्नसे युक्त हो तो खण्डित होनेपर भी उसकी पूजा करनी चाहिये, क्योंकि वह टूटा-फूटा दीखनेपर भी शुभप्रद माना जाता है। देवि ! जिसने शालग्रामकी बारह मूर्तिका विधिवत् पूजन कर लिया, अब मैं तुम्हें उसका पुण्य बताता हूँ। यदि बारह करोड़ शिवके लिङ्गोंका सोनेके कमलपुष्प चढ़ाकर बारह कल्पोंतक पूजन किया जाय, उससे जितना पुण्य प्राप्त होता है, उतना पुण्य केवल एक दिन बारह शालग्रामकी पूजासे होता है। श्रद्धाके साथ सौ शालग्रामका अर्चन करनेवाला जो फल पाता है, उसका वर्णन मेरे लिये सौ वर्षोंमें भी सम्भव नहीं है। अन्य देवताओंकी तथा मणि आदिसे बने हुए शिवलङ्गोंकी पूजा सर्वसाधारण व्यक्ति कर सकते हैं, पर शालग्रामकी पूजा स्त्री एवं हीन अपवित्र व्यक्तियोंको नहीं करनी चाहिये। शालग्रामके चरणामृत लेनेसे सम्पूर्ण पाप भस्म हो जाते हैं। शिवजीपर चढ़े हुए फल, फूल, नैवेद्य, पत्र एवं जल ग्रहण करना निषिद्ध है। हाँ, यदि शालग्रामकी शिलासे उसका स्पर्श हो जाय तो वह सदा पवित्र माना जा सकता है। देवि ! जो व्यक्ति स्वर्णके साथ किसी भगवद्भक्त पुरुषको शालग्रामकी मूर्तिका दान करता है, उसका पुण्य कहता हूँ, सुनो। वसुंधरे ! उसे वन एवं पर्वतसहित समुद्रपर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वी सत्पात्र ब्राह्मणको देनेका पुण्य प्राप्त होता है। यदि शालग्रामकी मूर्तिके मूल्यका निश्चय करके कभी कोई उसे बेचता और खरीदता है तो वे दोनों निश्चय ही नरकमें जाते हैं। वस्तुतः शालग्रामके पूजनके फलका वर्णन तो कोई सौ वर्षमें भी नहीं कर सकता। (अध्याय १८६)

---

* गृहे लिङ्गद्वयं नार्च्यं शालग्रामत्रयं तथा। द्वे चक्रे द्वारकायास्तु नार्च्यं सूर्यद्वयं तथा॥
गणेशत्रितयं नार्च्यं शक्तित्रितयमेव च। शालग्रामसमाः पूज्याः समेषु द्वितयं नहि।
विषमा नैव पूज्याः स्युर्विषमे त्वेक एव हि। (वराहपुराण १८६। ४०—४२)

सृष्टि और श्राद्धकी उत्पत्ति-कथा एवं पितृयज्ञका वर्णन

पृथ्वी बोली—भगवन्! मैं आपके वराह तथा मथुरा-क्षेत्रकी महिमा सुन चुकी। प्रभो! मैं अब पितृयज्ञके सम्बन्धमें जानना चाहती हूँ कि यह क्या है और इसे किस प्रकार आरम्भ करना चाहिये? सर्वप्रथम किसने इस यज्ञका शुभारम्भ किया तथा इसका प्रयोजन एवं स्वरूप क्या है?

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! सर्वप्रथम मैंने स्वर्गलोककी रचना की, जो देवताओंका पहले आवास बना। जगत् प्रकाशशून्य था और सर्वत्र अन्धकार व्याप्त था। उस समय मेरे मनमें ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि चर और अचर प्राणियोंसे सम्पन्न तीनों लोकोंका सृजन करूँ। उस समय मैं संसारकी सृष्टिसे विमुख शेषनागकी शय्यापर शयन कर रहा था। ऐसा मेरा अनन्त शयन हुआ करता है। मायास्वरूपिणी निद्रा मेरी सहचरी है। इसका सृजन मेरी इच्छापर निर्भर है। इसीसे मैं सोता और जागता हूँ। सृष्टिके प्रारम्भमें सर्वत्र जल-ही-जल था। कहीं कुछ भी पता नहीं चलता था। उस जलमें एक वट-वृक्षके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं था। वह वट भी बीजजनित नहीं था, बल्कि मुझ विष्णुद्वारा ही उत्पन्न था*। मायाका आश्रय लेकर एक बालकके रूपमें मैं उसपर निवास करता था। मेरी आज्ञा पाकर मायाने चर और अचरसे परिपूर्ण तीनों लोकोंको सजाया है। ये सभी मेरी आँखोंके सामने हैं। शुभे! मैं ही इस विविध वैचित्र्योपेत चराचर विश्वका आधार हूँ। समयानुसार मैं ही बडवामुख नामक अग्नि बन जाता हूँ। माया मेरा ही आश्रय पाकर काम करती है, जिससे सभी जल बडवानलसे निकलकर मुझमें लीन हो जाते हैं। प्रलयकी अवधि पूरी हो जानेपर लोकपितामह ब्रह्माने मुझसे पूछा कि मैं क्या करूँ?' तब मैंने उनसे यह वचन कहा—'ब्रह्मन्! तुम यथाशीघ्र सुर-असुर एवं मानवोंकी सृष्टि करो।'

देवि! इस प्रकार मेरे कहनेपर ब्रह्माने हाथसे कमण्डलु उठाया और उसके जलसे आचमन कर देवताओंकी सृष्टिका कार्य आरम्भ कर दिया। पितामहने बारह आदित्य, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, दो अश्विनीकुमार, उनचास मरुद्गण एवं सबका उद्धार करनेके लिये ब्राह्मण तथा सुरसमुदायकी सृष्टि की। उनकी भुजाओंसे क्षत्रियोंकी, ऊरुओंसे वैश्योंकी तथा चरणोंसे शूद्रोंकी उत्पत्ति हुई। देवि! उन्हींसे देवता और असुर सब-के-सब धराधामपर विराजने लगे। देवता और दानवोंमें तप तथा बलकी अधिकता हुई। अदिति देवीसे आदित्य, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण, अश्विनीकुमार आदि तैंतीस करोड़ देवता उत्पन्न हुए। दिति देवीसे देवताओंके विरोधी दानवोंकी उत्पत्ति हुई। उसी समय प्रजापतिने तपोधन ऋषियोंको उत्पन्न किया। वे सभी तीव्र तेजके कारण सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे थे। उन्हें सभी शास्त्रोंका पूर्ण ज्ञान था। अब उनके पुत्रों तथा पौत्रोंकी संख्या सीमित न रही। उन्हींमें एक निमि हुए†। उन निमिको भी एक पुत्र हुआ, जो आत्रेय नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह जन्मसे ही सुन्दर, संयतचित्त एवं उदार स्वभावका था। वह मनको एकाग्र कर अविचल भावसे सावधान होकर तपस्या करता। वसुंधरे! पञ्चाग्नि तापना, वायु पीकर रहना, भुजा ऊपर उठाकर एक पैरसे खड़े रहना, सूखे पत्ते एवं जल ग्रहण करना, शीतकालमें जलशयन करना, फलोंके आहारपर रहना तथा चान्द्रायणव्रतका पालन करना—ये उसकी तपस्याके

* प्रायः लोग प्रश्न करते हैं कि बीज पहले या वट पहले। यह उसीका उत्तर है, जिसमें विष्णुको ही वटका तथा विश्ववृक्षका बीज बतलाया गया है।

† ये 'निमि' मिथिला-नरेश—'मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल॥' (रामचरित० १।२२९।२) से भिन्न कोई ब्राह्मण हैं।

अङ्ग थे। इन सभी नियमोंका पालन करते हुए वह दस हजार वर्षोंतक तपस्यामें लीन रहा। इतनेमें कालवश उसका देहान्त हो गया। ऐसे सुयोग्य पुत्रकी मृत्युसे निमिका हृदय शोकपूर्ण हो गया। इस प्रकार पुत्रशोकके कारण ये निमि दिन-रात चिन्तित रहने लगे।

माधवि! उस समय निमिने तीन राततक शोक मनाया। उनकी बुद्धि बहुत विस्तृत थी। अतः इस शोकसे मुक्त होनेका विचार किया कि माघमासकी द्वादशीका दिन उपयुक्त है। और फिर उस दिन पुत्रके लिये श्राद्धकी व्यवस्था की। उस बालक (आत्रेय)को खाने एवं पीनेके लिये जितने भोजनके पदार्थ अन्न, फल, मूल तथा रस थे, उन्हें एकत्र कर फिर स्वयं पवित्र होकर सावधानीके साथ ब्राह्मणको आमन्त्रित किया और अपसव्य-विधानसे सभी श्राद्ध-कार्य सम्पन्न किये। सुन्दरि! इसके बाद सात दिनोंका कृत्य एक साथ सम्पन्न किया। शाक, फल और मूल—इन वस्तुओंसे पिण्डदान किया। सात ब्राह्मणोंकी विधिवत् पूजा की। कुशोंको दक्षिणकी ओर अग्रभाग करके रखकर नाम और गोत्रका उच्चारण करके मुनिवर निमिने धार्मिक भावनासे अपने पुत्रके नाम पिण्ड अर्पण किया। भद्रे! इस प्रकार विधान पूरा करते रहे, दिन समाप्त हो गया और भगवान् सूर्य अस्ताचलको चले गये। यह परम दिव्य उत्तम कर्म श्रेष्ठभावसे सम्पन्न हुआ। उन्होंने मन और इन्द्रियोंको वशमें करके आशाएँ त्याग दीं और अकेले ही शुद्ध भूमिमें पहले कुश, तब मृगचर्म और इसके बाद वस्त्र बिछाकर बैठ गये। उनका वह आसन न बहुत ऊँचा था न अति नीचा। चित्त और इन्द्रियोंकी क्रियाओं-को वशमें करके एकाग्र हो अपने अन्तःकरणको शुद्ध करनेके लिये उन्होंने योगासन लगाया और अपने शरीर तथा सिरको समान रखकर अचल कर लिया। उनकी दृष्टि नासिकाके अग्रभागपर जमी थी। चित्तमें किसी प्रकारका क्षोभ भी न था। फिर निर्भीक एवं ब्रह्मचर्यसे रहकर श्रद्धाके साथ एकनिष्ठ होकर उन्होंने मुझमें अपने चित्तको लगाया। इस प्रकार सायंकालकी संध्या समाप्त हुई। पर रात्रिमें पुनः चिन्ता और शोकके कारण उनका मन सहसा क्षुब्ध हो उठा और इस प्रकार पिण्डदानकी क्रिया करनेसे उनके मनमें महान् पश्चात्ताप हुआ। वे सोचने लगे—'अहो, मैंने जो श्राद्ध-तर्पणकी क्रियाएँ की हैं, इन्हें आजतक किन्हीं मुनियोंने तो नहीं किया है। जन्म और मृत्यु पूर्वकर्मके फलसे सम्बद्ध हैं। पुत्रकी मृत्युके बाद मैंने जो तर्पण किया, यह अपवित्र कार्य है। अहो! स्नेह एवं मोहके कारण मेरी बुद्धि नष्ट हो गयी थी। इसीसे मैंने यह कर्म किया। पितृ-पदपर स्थित जो देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, उरग और राक्षस आदि हैं, वे अब मुझे क्या कहेंगे।'

वसुंधरे! इस प्रकार निमि सारी रात चिन्तामें व्यग्र रहे। फिर रात्रि बीती, सूर्य उदित हुए। फिर निमिने प्रातःसंध्या कर, जैसे-तैसे अग्निहोत्र किया। पर वे चिन्ता-दुःखसे पुनः संतप्त हो उठे और अकेले बैठकर प्रलाप करने लगे। उन्होंने कहा—'ओह! मेरे कर्म, बल एवं जीवनको धिक्कार है। पुत्रसे सभी सुख सुलभ होते हैं। पर आज मैं उस सुपुत्रको देखनेमें असमर्थ हूँ। विवेकी पुरुषोंका कथन है कि 'पूतिका' नामका नरक घोर क्लेशदायक है, पर पुत्र इससे रक्षा करता है। अतः सभी मनुष्य इस लोक तथा परलोकके लिये ही पुत्रकी इच्छा करते हैं। अनेक देवताओंकी पूजा, विविध प्रकारके दान तथा विधिवत् अग्निहोत्र करनेके फलस्वरूप मनुष्य स्वर्गमें जानेका अधिकारी होता है, पर वही स्वर्ग पिताको पुत्रद्वारा सहज ही सुलभ हो जाता है। यही नहीं, पौत्रसे पितामह तथा

प्रपौत्रसे प्रपितामह भी आनन्द पाते हैं। अतः अब अपने पुत्रके बिना मैं जीवित नहीं रहना चाहता हूँ।'

देवि ! इस प्रकार वे चिन्तासे अत्यन्त दुःखी हो रहे थे कि देवर्षि नारद सहसा उन निमिके आश्रममें पहुँच गये। उस अलौकिक आश्रममें सभी ऋतुएँ अनुकूल थीं। अनेक प्रकारके फल-फूल एवं जल उपलब्ध थे। स्वयंप्रकाशसे प्रकाशमान नारदजी निमिके आश्रमके भीतर गये। धर्मज्ञ निमिने उन्हें आया देखकर उनका स्वागत और पूजन किया। देवि ! उस समय निमिके द्वारा आसन, पाद्य एवं अर्घ्य आदि दिये गये। नारदजीने उन्हें ग्रहण कर फिर उनसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

नारद बोले—'निमे ! तुम्हारे जैसे ज्ञानी पुरुषको इस प्रकार शोक नहीं करना चाहिये। जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिये तथा जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके लिये पण्डितजन शोक नहीं करते। यदि कोई मर जाय, नष्ट हो जाय अथवा कहीं चला जाय, इनके लिये जो व्यक्ति शोक करता है, उसके शत्रु हर्षित होते हैं। जो मर गया, नष्ट हो गया, वह पुनः लौट आये, यह सम्भव नहीं है। चर और अचर प्राणियोंसे सम्पन्न इन तीनों लोकोंमें मैं किसीको अमर नहीं देखता। देवता, दानव, गन्धर्व-मनुष्य, मृग—ये सभी कालके ही अधीन हैं। तुम्हारा पुत्र 'श्रीमान्' निश्चय ही एक महान् आत्मा था। उसने पूरे दस हजार वर्षोंतक अत्यन्त कठिन तपस्या कर परम दिव्य गति प्राप्त की है। इन सब बातोंको जानकर तुम्हें सोच नहीं करना चाहिये।'

नारदजीके इस प्रकार कहनेपर निमिने उनके चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम किया। किंतु फिर भी उनका मन पूरा शान्त न हुआ। वे बारंबार दीर्घ साँस ले रहे थे और उनका हृदय करुणासे व्याप्त था। वे लज्जित होकर कुछ डरते हुए-से गद्गदवाणीमें बोले—'मुनिवर ! आप अवश्य ही महान् धर्मज्ञानी पुरुष हैं। आपने अपनी मधुर वाणीद्वारा मेरे हृदयको शान्त कर दिया। फिर भी प्रणय, सौहार्द अथवा स्नेहके कारण मैं कुछ कहना चाहता हूँ, आप उसे सुननेकी कृपा कीजिये। मेरा चित्त एवं हृदय इस पुत्रशोकसे व्याकुल है। अतएव मैं उसके लिये संकल्प करके अपसव्य होकर श्राद्ध, तर्पण आदि क्रियाएँ कर चुका हूँ। साथ ही सात ब्राह्मणोंको अन्न एवं फल आदिसे तृप्त किया है तथा जमीनपर कुशा बिछाकर पिण्ड अर्पण किये हैं। द्विजवर ! पर अनार्य पुरुष ही ऐसा कर्म करता है इससे स्वर्ग अथवा कीर्ति उपलब्ध नहीं हो सकती। मेरी बुद्धि मारी गयी थी। मैं कौन हूँ—यह मुझे स्मरण न था। अज्ञानसे मोहित होनेके कारण यह काम मैं कर बैठा। पहलेके किसी भी देवता-ऋषियोंने ऐसा काम नहीं किया है। प्रभो ! मैं ऊहापोहमें पड़ा हूँ कि कहीं मुझे कोई प्रत्यवाय या शाप न लग जाय।'

नारदजी बोले—'द्विजश्रेष्ठ ! तुम्हें भय नहीं करना चाहिये। मेरे देखनेमें यह अधर्म नहीं, किंतु परम धर्म है। इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये। अब तुम अपने पिताकी शरणमें जाओ।'

नारदजीके इस प्रकार कहनेपर निमिने अपने पिताका मन, वाणी और कर्मसे ध्यानपूर्वक शरण ग्रहण किया और उनके पिता भी उसी समय उनके सामने उपस्थित हो गये। उन्होंने निमिको पुत्र-शोकसे संतप्त देखकर उन्हें कभी व्यर्थ न होनेवाले अभीष्ट वचनोंद्वारा आश्वासन देना आरम्भ किया—'निमे ! तुम्हारे द्वारा जो संकल्पित कार्य हुआ है, तपोधन ! यह 'पितृयज्ञ' है। स्वयं ब्रह्माने इसका नाम 'पितृ-यज्ञ' रखा है। तभीसे यह धर्म 'व्रत' एवं 'क्रतु' नामसे अभिहित होता आया है। बहुत पहले स्वयंभू ब्रह्माने भी इसका आचरण किया था। उस समय विधिके उत्तम जानकार ब्रह्माने जो यज्ञ किया था

उसमें श्राद्धकर्मकी विधि और प्रेत-कर्मका विधान है। उसे उन्होंने नारदको भी सुनाया था।

भगवान् वराह कहते हैं—सुन्दरि ! अब मैं ब्रह्माद्वारा उपदिष्ट उस श्राद्धविधिका भलीभाँति प्रतिपादन करता हूँ, सुनो। इससे ज्ञात हो जायगा कि पुत्र पिताके लिये किस प्रकार श्राद्ध करता है। जितने प्राणी उत्पन्न होते हैं, उन सबकी समयानुसार मृत्यु हो जाती है। चींटी आदिसे लेकर जितने भी जन्तु हैं, उनमें किसीको मैं अमर नहीं देखता; क्योंकि जिसका जन्म होता है, उसकी मृत्यु और जो मरता है, उसका जन्म निश्चित है। हाँ, कोई विशेष कर्म अथवा प्रायश्चित्तका सहयोग प्राप्त होनेसे मोक्ष होना भी निश्चित है।* सत्त्व, रज और तम—ये तीनों शरीरके गुण कहे जाते हैं। कुछ दिनोंके पश्चात् युगके अन्तमें मनुष्य अल्पायु हो जायँगे। तमोगुणकी प्रधानतावाले मानव कर्म-दोषके प्रभावसे सात्त्विक विषयपर ध्यान नहीं देते, अतः उस कर्मके प्रभावसे उन्हें नरकमें जाना पड़ता है। फिर अगले जन्मोंमें उन्हें पशु, पक्षी अथवा राक्षसकी योनि मिलती है। वेदको जाननेवाले सात्त्विक ज्ञानी लोग धर्म, ज्ञान और वैराग्यके सहारे मुक्ति-मार्गकी ओर अग्रसर होते हैं। क्रूर, भयभीत, हिंसक, निर्लज्ज, अज्ञानी, श्रद्धाहीन मनुष्यको और पिशाचके समान व्यवहार करनेवालेको तमोगुणी जानना चाहिये। उसे कोई अच्छी बात बतायी जाय तो वह समझता नहीं है। इसी प्रकार पराक्रमी, अपने वचनके पालन करनेवाले, स्थिर-बुद्धि, सदा संयमशील, शूरवीर तथा प्रसिद्ध व्यक्तिको राजस पुरुष मानना चाहिये। जो क्षमाशील, इन्द्रिय-विजयी, परमपवित्र, उत्तम ज्ञानवान्, श्रद्धालु तथा तप एवं स्वाध्यायमें सदा संलग्न रहते हैं, वे सात्त्विक पुरुष हैं।

ब्रह्माजीने निमिसे कहा था—पुत्र ! इस प्रकार सोच-विचारकर तुम्हें शोक करना अनुचित है; क्योंकि शोक सबका संहारक है। वह लोगोंके शरीरको जला देता है, उसके प्रभावसे मनुष्यकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। लज्जा, धृति, धर्म, श्री, कीर्ति, नीति तथा सम्पूर्ण शोकाकुल मनुष्यका परित्याग कर देते हैं।† अतएव पुत्र ! तुम शोकका त्याग करके परम सुखी बननेका प्रयत्न करो। मूर्ख मनुष्य मोहवश हिंसा तथा मिथ्या-भाषण करनेमें तत्पर हो जाता है। ऐसे मनुष्यको अपने दोषोंके कारण घोर नरकमें निवास करना पड़ता है, अतः अब मैं धार्मिक जगत्‌का कल्याण होनेके लिये सच्ची बात बताता हूँ—तुम उसे सुनो—सम्पूर्ण संसारसे आसक्ति हटाकर धर्ममें बुद्धिको लगाना चाहिये—यह सार वस्तु है। स्वायम्भुव मनुने जो कहा है तथा तुमने जो श्राद्ध किया है, इसपर विचार करके मैं चारों वर्णोंके लिये विधान बतलाता हूँ, उसे सुनो।

जिस समय प्राण कण्ठस्थानपर पहुँच जाता है, उस समय मनुष्य भय और भ्रान्तिवश अत्यन्त घबड़ा जाता है और वह सभी दिशाओंमें दृष्टि डालनेमें असमर्थ हो जाता है। किसी क्षणमें स्मृति भी आ जाती है। माधवि ! जीवकी जबतक आँख नहीं खुलती, तबतक भूमिके देवता ब्राह्मणगण स्नेहपूर्वक सामने सत्-शास्त्र पढ़ें और यथायोग्य दान आदि धर्म कराना समुचित है। दूसरे लोकमें उस प्राणीका कल्याण हो—इसलिये गोदान करना

* जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च । मोक्षः कर्मविशेषेण प्रायश्चित्तेन निश्चितम् ॥
(वराहपुराण १८७ । ८७)

† शोको दहति गात्राणि बुद्धिः शोकेन नश्यति । लज्जा धृतिश्च धर्मश्च श्रीः कीर्तिश्च स्मृतिर्वयः ।
त्यजन्ति सर्वधर्माश्च शोकेनोपहतं नरम् ॥ (वराहपुराण १८७ । ९७८, तुलनीय-वाल्मी० रामा० २ । ६२ । १५—१६ आदि)

चाहिये। इसकी विशेष महिमा है, धरातलपर विचरना और अमृत-तुल्य दुग्ध प्रदान करना गौका स्वाभाविक गुण है। इसके दानसे मनुष्य यथाशीघ्र तापसे छूट जाता है। इसके बाद मरणासन्न प्राणीके कानमें श्रुति-कथित दिव्यमन्त्र सुनाना चाहिये। जब प्राणी अत्यन्त विवश हो जाय तो मनुष्य उसे देखकर मन्त्र पढ़कर मरणकालोचित कर्म विधिपूर्वक सम्पन्न करे। इस मन्त्रमें सम्पूर्ण संसारसे प्राणीको मुक्त करनेकी शक्ति है। फिर तत्काल मधुपर्क हाथमें लेकर कहे—'ओंकार-स्वरूप भगवन्! आप मेरा अर्पण किया हुआ मधुपर्क स्वीकार करनेकी कृपा करें। यह परम स्वच्छ संसारमें आने-जानेका नाशक, अमृतके समान भगवत्प्रेमी व्यक्तियों-के लिये नारायणरचित, दाह मिटानेवाला तथा देवलोकमें परम पूजनीय है। यह कहकर उसे मरणासन्न प्राणीके मुखमें डाल दे। इसके फलस्वरूप व्यक्ति परलोकमें सुख पाता है। इस प्रकारकी विधि सम्पन्न होनेपर यदि प्राण निकलते हैं तो वह प्राणी फिर संसारमें जन्म नहीं पाता। मृत प्राणीकी सद्गतिके उद्देश्यसे उसे वृक्षके नीचे ले जाकर अनेक प्रकारके गन्धों तथा घृत, तैलके द्वारा उस प्राणीके शरीरका शोधन करे। साथ ही तैजस एवं अविनाशी सभी कार्य उसके लिये करना उचित है। जलके संनिकट दक्षिणकी ओर पैर करके लेटा देना चाहिये। तीर्थ आदिका आवाहन करके उसे स्नान करानेका विधान है। गया आदि जितने तीर्थ, ऊँचे, विशाल एवं पुण्यमय पर्वत, कुरुक्षेत्र, गङ्गा, यमुना, कैशिकी, पयोष्णी, गण्डकी, भद्रा, सरयू, बलदा, अनेक वन, वराहतीर्थ, पिण्डारक्षेत्र, पृथ्वीके सम्पूर्ण तीर्थ तथा चारों समुद्र—इन सभीका मनमें ध्यान करके मृत प्राणीको उस जलसे स्नान कराना चाहिये। फिर विधिके अनुसार उसे चितापर रखना चाहिये। उसके पैर दक्षिणकी दिशामें हों। प्रधान दिव्य अग्नियोंका ध्यान करके हाथमें अग्नि उठा ले। उसे प्रज्वलित करके विधिवत् यह मन्त्र पढ़ना चाहिये। मन्त्रका भाव है—'अग्निदेव! यह मानव जाने अथवा अनजाने जो कुछ भी कठिन काम कर चुका है, किंतु अब मृत्युकालके अधीन होकर यह इस लोकसे चल बसा। धर्म, अधर्म, लोभ और मोहसे यह सदा सम्पन्न रहा है। फिर भी आप इसके गात्रोंको भस्म कर दें और यह स्वर्गलोकमें चला जाय।' इस प्रकार कहकर प्रदक्षिणा कर जलती हुई अग्नि उसके सिरके स्थानमें प्रज्वलित कर दे। फिर तर्पणकर मृत व्यक्तिका नाम लेकर पृथ्वीपर उसके लिये पिण्ड दे। पुत्र! चारों वर्णोंमें इसी प्रकारका संस्कार होता है। फिर शरीर और वस्त्रोंको धोकर वहाँसे लौटना चाहिये। उसी समयसे दस दिनपर्यन्त सभी सगोत्रके लोग अशौचके भागी बन जाते हैं और उन्हें देवकर्मोंमें अधिकार नहीं रह जाता है।

(अध्याय १८७)

अशौच, पिण्डकल्प और श्राद्धकी उत्पत्तिका प्रकरण

धरणीने कहा—माधव! प्रभो! अब मैं आपसे 'अशौच'-सम्बन्धी कर्मको विधिवत् सुनना चाहती हूँ, आप उसे बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह कहते हैं—कल्याणि! जिस प्रकार अशौचसे मनुष्योंकी शुद्धि होती है, वह सुनो। क्षयाहके तीसरे दिन श्राद्धकर्ता नदीके जलसे स्नान कर चूर्णसे निर्मित तीन पिण्ड एवं तीन अञ्जलि जल दे। चौथे, पाँचवें और छठे दिन, सातवें दिन भी ऐसे ही एक-एक पिण्ड तथा जल देनेका विधान है। पिण्डकी जगह पृथक्-पृथक् हो। दस दिनपर्यन्त

क्रमशः इस प्रकारकी विधिका पालन करना आवश्यक है। दसवें दिन क्षौर-कर्म कराकर दूसरा पवित्र वस्त्र धारण करना चाहिये। गोत्रके सभी स्वजन तिल, आँवला और तेल लगाकर स्नान करें। दसवें दिन बाल बनवाकर विधिपूर्वक स्नान करनेके पश्चात् भाई-बन्धुओंके साथ अपने घर जाना चाहिये। ग्यारहवें दिन समुचित विधिसे एकोद्दिष्ट श्राद्ध करनेका नियम है। स्नान करके शुद्ध होनेके बाद अपने उस प्रेतको अन्य पितरोंमें सम्मिलित करनेके लिये पिण्ड दे। माधवि ! चारों वर्णोंके मनुष्योंके लिये एकोद्दिष्टका विधान एक समान है। तेरहवें दिन ब्राह्मणोंको श्रद्धापूर्वक पक्वान्न भोजन कराना चाहिये। इसमें जिस दिवंगत व्यक्तिके लिये श्राद्ध किया जाता हो, उसका नाम लेकर संकल्प करना आवश्यक है। इसके लिये पहले ब्राह्मणके घरपर जाकर स्वस्थ चित्तसे नम्रतापूर्वक निमन्त्रण देना चाहिये। देवि ! उस समय मन-ही-मन यह मन्त्र पढ़ना चाहिये, जिसका भाव है—'प्रियवर ! तुम इस समय यमराजके आदेशानुसार दिव्य लोकमें पहुँच गये हो, अब वायुका रूप धारण करके मानसिक प्रयत्नद्वारा इस ब्राह्मणके शरीरमें स्थित होनेकी कृपा करो।' फिर उस श्रेष्ठ ब्राह्मणको नमस्कार करके पाद्यार्पण करना चाहिये।

सुन्दरि ! उस समय ब्राह्मणके शरीरमें प्रेतके विग्रहकी कल्पना कर उसका हित करनेके विचारसे पाद-संवाहन (पैर दबाना) आदि कार्य परम उपयोगी है। भूमे ! मनुष्यका कर्तव्य है कि अशौचके दिनोंमें मेरे गात्रका स्पर्श न करे। रात बीत जानेपर प्रातः-काल सूर्योदयके पश्चात् श्राद्धकर्ताको विधिपूर्वक बाल बनवाकर तैल आदि लगाकर स्नान करना चाहिये। फिर पृथ्वीको स्वच्छ करके वहाँ वेदी बनाये। इसका उपयुक्त देश नदीतट अथवा श्राद्धकर्मके लिये निश्चित भूमि है। ऐसे स्थानपर पिण्डदान करना उत्तम है। चौंसठ पिण्ड देनेसे यथार्थ सुकृत सुलभ होता है। सुन्दरि ! दक्षिण और पूर्वकी ओर मुख करके ये सभी पितृभाग सम्पन्न होते हैं। नदीके तटपर वृक्षके नीचे अथवा कुंजर* (पीपल) वृक्षकी छायामें भी इस कार्यको करनेका विधान है। उस स्थानपर हीन प्राणियोंकी दृष्टि न पड़े। जिस स्थानमें प्रेत-सम्बन्धी कार्य किये जायँ, वहाँ मुर्गा, कुत्ता, सूकर प्रभृति पशु-पक्षियोंका प्रवेश या नेत्र-दृष्टि निषिद्ध हैं। उनके शब्द भी वहाँ नहीं होने चाहिये। वसुंधरे ! मुर्गेकी पाँख-सम्बन्धी वायुसे तथा चण्डालकी दृष्टिसे युक्त स्थानमें श्राद्ध करनेसे पितरोंको बन्धन प्राप्त होता है।

सुन्दरि ! इसलिये विवेकी मनुष्यका परम कर्तव्य है कि वे प्रेतकार्यमें इनका उपयोग न करें। देवता, दानव, गन्धर्व, उरग, नाग, यक्ष-राक्षस, पिशाच, तथा स्थावर और जङ्गम आदि जितने प्राणी हैं, वे सभी तुम्हारे पृष्ठ-भागपर प्रतिष्ठित हो स्नान आदि क्रियाएँ यथावसर करते रहते हैं। यह सारा जगत् भगवान् विष्णुकी मायाका क्षेत्र है। चण्डालसे लेकर ब्राह्मणपर्यन्त सभी वर्णके मनुष्य शुभ अथवा अशुभ कार्य करनेके लिये स्वतन्त्र हैं। भूमे ! इसलिये आवश्यकता यह है कि प्रेत-कार्य करनेके समय पहले स्नानपूर्वक स्थानकी शुद्धि करे। भूमिको बिना पवित्र किये श्राद्ध करना अनुपयुक्त होता है। भद्रे ! जगत् तुमपर आधारित है और तुम स्वभावतः शुद्ध हो। पर अपवित्र कार्योंके द्वारा तुम्हें दूषित बना दिया जाता है। इसलिये कभी बिना पवित्र किये स्थानपर श्राद्ध नहीं करना चाहिये; क्योंकि उसे देवता और पितर स्वीकार नहीं करते। यहाँ-तक कि उस उच्छिष्ट स्थानके प्रभावसे उन्हें घोर नरकमें गिरना पड़ता है। अतएव स्थानकी शुद्धि करके ही प्रेत-को पिण्ड देना चाहिये। माधवि ! नाम और गोत्रके

* संस्कृतके कोशोंमें 'कुञ्जर' शब्दके अनेक अर्थ हैं, जिनमें यह पीपल वृक्ष भी एक है, किंतु इस अर्थमें इसका प्रयोग प्रायः नहीं मिलता, जो यहाँ हुआ है।

साथ संकल्प करके पिण्ड अर्पण करनेकी विधि है । यह सभी कार्य पूरा हो जानेपर अपने गोत्र एवं कुल-सम्बन्धी सभी सज्जन एक स्थानपर बैठकर भोजन करें । चारों वर्णोंके लिये प्रेत-निमित्त कार्योंमें यही नियम है ।

देवि ! इस प्रकार पिण्डदान करनेसे प्रेतलोकमें गये हुए प्राणी पूर्णतः तृप्त हो जाते हैं । जो असपिण्ड मनुष्य पिण्ड दान नहीं करता, किंतु अशौचग्रस्त व्यक्तियोंके भोजनमें सम्मिलित रहता है, उसकी भी शुद्धि आवश्यक है । वह किसी नदीपर जाकर वस्त्रसहित उसमें स्नान करे । यदि वह वहाँ जानेमें असमर्थ हो तो मानसिक तीर्थयात्रा करके मन्त्रमार्जन-पूर्वक जलके छींटे दे । माधवि ! उस समय पूर्ण स्वस्थ पुरुषको चाहिये कि ब्राह्मणके लिये अर्घ्य एवं पाद्य अर्पण करे । सर्वप्रथम मन्त्र पढ़कर विधिपूर्वक आसन देनेका नियम है । आसनके मन्त्रका भाव यह है—'द्विजवर ! आपकी सेवामें यह आसन प्रस्तुत है । आप इसपर विश्राम करें । विप्रवर ! साथ ही परम प्रसन्न होकर मुझे कृतार्थ करना आपकी कृपापर ही निर्भर है ।' जब ब्राह्मण आसनपर बैठ जायँ, तब संकल्पपूर्वक छातेका दान करना चाहिये । आकाशमें बहुत-से देवता, गन्धर्व, यक्ष,राक्षस एवं सिद्धोंका समुदाय तथा पितरोंका समाज उपस्थित रहता है, जो अत्यन्त तेजस्वी होते हैं । अतः उनसे तथा आतपवर्षादिसे बचनेके लिये छत्र धारण करना आवश्यक है। वसुंधरे ! प्रेतका हित हो, इस विचारसे भी छत्र-दान अनिवार्य है । पहले प्रसन्नतापूर्वक प्रेतभाग देना चाहिये । प्रेत किसी आवरणके नीचे रहे, इसलिये भी उसके निमित्त ब्राह्मणको छत्र-दान करना परम उपयोगी है । देवता-दानव, सिद्ध-गन्धर्व तथा मांस-भक्षी राक्षस आकाशमें रहकर नीचे देखते रहते हैं । उन सबकी दृष्टि पड़नेपर प्रेत विशेष लज्जाका अनुभव करता है । जब प्रेत लज्जित हो जाता है तो उसे देखकर असुर एवं राक्षस उसका उपहास करते हैं । इसलिये बहुत पहलेसे ही भगवान् आदित्यने इसके निवारणके निमित्त छत्रकी व्यवस्था कर रखी है ।

देवि ! पूर्वकालकी बात है एकबार अनेक देवता एवं ऋषि प्रेतलोकमें पहुँचे, पर वहाँ उनपर अग्नि, पत्थर, जलते हुए जल तथा भस्मकी दिन-रात वर्षा होने लगी । उसी उपद्रवको शान्त करनेके लिये भगवान् आदित्यको छत्रकी व्यवस्था करनी पड़ी थी, अतः प्रेत-कार्यमें ब्राह्मणको छत्र-दान अवश्य करना चाहिये ।

शुभे ! इसके पश्चात् उपानह् (जूता) दान करनेका भी विधान है । इसे धारण करनेसे पैरोंको आराम पहुँचता है । इसके दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह भी बताता हूँ । यमराजकी पुरीमें जाते समय उपानह्-दान करनेसे प्रेतके पैर नहीं तपते । यममार्ग अत्यन्त अन्धकारसे व्याप्त, महान् कठिन एवं देखनेमें भयावह है । उसी मार्गसे यमके लोकमें प्राणी अकेले ही जाता है । वहाँ यमराजके दूत पीछे-पीछे दण्ड लेकर शासन करनेमें सदा तत्पर रहते हैं । माधवि ! दिन-रात दूतकी चेष्टा प्रेतको यमपुरीमें ले जानेके लिये बनी रहती है । अतः पैर सुखपूर्वक काम करते रहें—इस निमित्त ब्राह्मणको उपानह्का दान करना अत्यन्त आवश्यक है । यमपुरीके मार्गकी भूमिपर तपती हुई बालुकाएँ बिछी रहती हैं । कण्टक भी बिखरे रहते हैं । ऐसी स्थितिमें वह उस दिये गये उपानह्की सहायतासे कठिन मार्गको पार कर पाता है ।

भूमे ! इसके पश्चात् मन्त्र पढ़कर धूप और दीप देनेका विधान है । प्रेतके साथ पृथक्-पृथक् इनकी योजना उपयुक्त है । नाम और गोत्रके उच्चारणसे प्रेत उन्हें प्राप्त करता है । इसके बाद भूमिपर कुश बिछाकर प्रेतका आवाहन करना चाहिये । आवाहनके मन्त्रका भाव यह है—'प्रेत ! तुम इस लोकको

परित्याग कर परमगतिको प्राप्त कर चुके हो। मैंने भक्ति-पूर्वक तुम्हारे लिये यह गन्ध उपस्थित किया है, तुम प्रसन्न होकर इसे स्वीकार करो।' साथ ही विप्रके प्रति कहे—'विप्रवर ! मेरे प्रयाससे ये सब प्रकारके गन्ध, पुष्प, धूप एवं दीप प्रेतकी सेवार्थ समर्पित हैं। आप इन्हें स्वीकार करके प्रेतका उद्धार करनेकी कृपा करें।'

वसुंधरे ! इसी प्रकार प्रेतके निमित्त सिद्ध अन्न, वस्त्र एवं आभूषण भी ब्राह्मणको दान करना चाहिये। माधवि ! प्रेतके उपभोगके योग्य अनेक द्रव्य-दान करनेके पश्चात् तीन बार अपने पैरकी शुद्धि भी समुचित है। चारों वर्णोंको ऐसी ही विधिका पालन करना चाहिये। ग्रहीता ब्राह्मण भी मन्त्रका उच्चारण करके ही दातव्य वस्तु ग्रहण करे। प्रेतश्राद्धमें भोजन करनेवाले ब्राह्मणको ज्ञानी एवं शुद्ध-स्वरूप होना अनिवार्य है। सर्वप्रथम प्रेतके लिये अन्न देना चाहिये। उस समय एक दूसरेका स्पर्श होना निषिद्ध है। उन सभी व्यञ्जनोंकी कल्पना प्रेतके निमित्त ही हो—ऐसा नियम है। सुव्रते ! प्रेतके लिये पिण्डदान करते समय देवता और ब्राह्मण भी भाग पानेके अधिकारी हैं। बुद्धिमान् पुरुषको इस बातपर सदा ध्यान रखना चाहिये कि ऐसे अवसरोंपर मानवोचित व्यवहार भी बना रहे। विधिके साथ मन्त्र पढ़कर पितृतीर्थसे* पिण्ड अर्पण करना चाहिये। इस प्रकारके कार्य प्रेतों और ब्राह्मणोंके लिये स्वल्पान्तरके समयसे होना उचित है। प्रेतकार्यसे निवृत्त होकर हाथ-पैर धोना तथा विधिवत् आचमन करना चाहिये। फिर मन्त्रपूर्वक भक्षण करनेके योग्य सिद्ध अन्न हाथमें उठाये। जो ब्राह्मण प्रेतकार्यमें सदासे भोजन करता हो, अपनी जाति, बन्धु एवं गोत्रों-में जो भोजनका अधिकारी हो तथा जिसके लिये जैसा उचित हो, उसको समुचित रूपसे वैसा ही भाग देना चाहिये। ब्राह्मणको जब कुछ दिया जा रहा हो, उस समय किसीको मना नहीं करना चाहिये। यदि कोई दूसरा दान करता हो और कोई दूसरा उसे रोकता है तो गुरुकी हत्या-जैसे बुरे फलका भागी होता है। यही नहीं, ऐसे व्यक्तिके दिये हुए पदार्थको देवता, अग्नि और पितर भी ग्रहण नहीं करते और प्रेतको भी प्रसन्नता नहीं प्राप्त होती है। अतएव मनुष्यको ऐसा कार्य करना चाहिये कि जिससे दान-धर्मका लोप न हो सके। जातिवाले तथा सम्बन्धियोंके बीच प्रसन्नमनसे जो ब्राह्मणको विशेषरूपसे प्रेतभाग भोजनके लिये प्रदान करता है, उसकी अचल प्रतिष्ठा होती है, केवल देखनेमात्रसे कोई तृप्त नहीं होता। इस प्रकार प्रेतकी भावना करके भोजन आदि पदार्थ अर्पण करनेके प्रभाव-से प्राणी यथाशीघ्र पापसे मुक्त हो जाता है।

शान्तिके लिये जलसे विधिवत् स्नानकर सिर झुकाकर प्रणाम करना चाहिये। तत्पश्चात् पितरोंके लिये दान देनेके स्थानपर आ जाय। देवि ! तुम्हारी भक्तिमें निष्ठा रखते हुए मानवको इन मन्त्रोंको पढ़कर स्तुति करनेकी विधि है। मन्त्रका भाव यह है—'वसुधे ! आप जगत्‌की माता हैं तथा मेदिनी, उर्वी, महाशैलशिलाधारा—आदि नामोंसे विभूषित हैं। आप जगत्‌की जननी तथा उसे आश्रयप्रदान करनेवाली हैं। जगत् आपपर आधारित है। आपको मेरा निरन्तर नमस्कार है।' सुन्दरि ! इस विधिसे जब भक्त पिण्डदान करता है तो उसे महान् पुण्य प्राप्त होता है। फिर प्रेतके नाम और गोत्रका उच्चारण करके तिलोदक देना चाहिये। साथ ही दोनों घुटनोंको जमीन-पर टेककर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको नमस्कार करे। मन्त्रपूर्वक अपने हाथसे ब्राह्मणका हाथ पकड़कर उठाये और उन्हें शय्यापर बैठाकर अञ्जन आदि वस्तुओंको अर्पित करे। कुछ क्षणतक वहाँ विश्राम करके निवाप (श्राद्ध)-स्थानपर आ जाय और गौकी पूँछ पकड़कर ब्राह्मणके हाथमें उसका दान करना चाहिये। गूलरकी लकड़ीसे बने हुए पात्रमें काला तिल और जल लेकर द्विजाति-

* अँगूठे तथा तर्जनी अँगुलीके बीचका स्थान 'पितृतीर्थ' कहलाता है—'कायमङ्गुलिमूलेऽग्रे दैवं पित्र्यं तयोरधः।' (मनु० २। ५९ तथा द्रष्टव्य भविष्यपुराण १. १३. ६१–९५; बौधायनधर्मसूत्र ५। १४–१८, याज्ञवल्क्यस्मृ० १। १९ आदिकी व्याख्याएँ।

गण 'सौरभेय्यः सर्वहिताः'—'इन मन्त्रोंका उच्चारण करे। मन्त्रसे जब जलकी शुद्धि हो जाती है तो उसके उपयोगसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। इसके बाद प्रेतका विसर्जन करके ब्राह्मणको दान देना उचित है। अन्तमें अपसव्य रूपसे काकबलि देनी चाहिये। इसके बाद प्रेतके लिये बने हुए पदार्थसे चींटी आदि प्राणियोंके लिये भी सम्यक् प्रकारसे बलि देकर तर्पण करनेकी विधि है। माधवि! सब लोग भोजन कर लें, इसके बाद अनाथों और गरीबोंको भी संतुष्ट करना चाहिये। इससे वे यमपुरीमें जाकर मृत प्राणीकी सहायता करते हैं। सुन्दरि! अनाथोंको दिया हुआ सम्पूर्ण अन्न अक्षय हो जाता है। अतः प्रेतका संस्कार अवश्य करना चाहिये।

इस प्रकार चारों वर्णोंके लिये निमि प्रभृति आदर्श ऋषियों तथा स्वायम्भुव आदि मनुओंने सब प्रकारसे शुद्ध होनेके नियम प्रदर्शित किये हैं। अतः इससे पुरुष शुद्ध होता है, इसमें कोई संदेह नहीं। प्रेतसम्बन्धी कार्यमें धर्मपूर्वक संकल्प करनेकी विशेष आवश्यकता है। आत्रेयने भी कहा था—'पुत्र! तुमने जो प्रेतकार्य किया है और इसके विषयमें भयका अनुभव करते हो, यह कार्य अनुचित है। यह प्रसङ्ग मैं नारदके सामने विस्तारसे व्यक्त कर चुका हूँ। पुत्र! तुम्हारे लिये मैं एक यज्ञकी प्रतिष्ठा कर देता हूँ। आजसे लेकर यह यज्ञ अखिल जगत्में पितृयज्ञके नामसे प्रसिद्ध होगा। वत्स! अब तुम जा सकते हो। शोक करना तुम्हारे लिये अशोभनीय है। ब्रह्मा, विष्णु और शिवके लोकमें रहनेका तुम्हें सुअवसर मिलेगा। इसमें कोई संशय नहीं।'

इस प्रकार पितृसम्बन्धी कर्मका वर्णन करके आत्रेय मुनिने निमिको आश्वासन दिया। अतएव तीसरे, सातवें, नवें, ग्यारहवें मासोंमें सांवत्सरिक क्रियाका नियम चल पड़ा। इन मासोंमें पिण्डदानकी विधि बन गयी है। प्रेतका यह कार्य पूरे एक वर्षमें पूर्ण होता है। कितने प्राणी इस लोकसे जाते हैं और जाकर बहुतोंको अन्य लोकमें भी पहुँचना पड़ता है। पिता-पितामह, पुत्रवधू, स्त्री, जातिवाले, सम्बन्धीजन और बन्धु एवं बान्धव—इन बहुसंख्यक प्राणियोंसे सम्बन्ध रखनेवाला यह संसार स्वप्नके समान मिथ्या और सारहीन है। किसीकी मृत्यु हो गयी तो उसका स्वजन कुछ समय रोता है और फिर मुँह पीछे करके लौट जाता है। स्नेहरूपी बन्धनसे प्राणी जकड़ा हुआ है। फिर आधे क्षणमें वह स्नेह-बन्धन कट भी जाता है। किसकी कौन माता, किसका कौन पिता, किसकी कौन स्त्री और किसके कौन पुत्र हैं! प्रत्येक युगमें इनके सम्बन्ध होते-टूटते रहते हैं। अतः इनपर कोई आस्था नहीं रखनी चाहिये। संसार मोहकी रस्सीमें बँधा है। मृतक व्यक्तिके लिये संस्कारकी विधि श्रद्धा एवं स्नेहपूर्वक की जाती है, इसीलिये उसे 'श्राद्ध' कहते हैं।

माता, पिता, पुत्र और स्त्री प्रभृति संसारमें आते हैं तथा चले भी जाते हैं। अतः वे किसके हैं और हमारा किससे सम्बन्ध है? मृत प्राणीके प्रेत-संस्कार सम्पन्न हो जानेपर वह पितरोंकी श्रेणीमें सम्मिलित हो जाता है। फिर प्रत्येक मासकी अमावास्या तिथिके दिन उसके लिये तर्पण करना चाहिये। ब्राह्मणके मुखमें हवन करनेसे अर्थात् ब्राह्मणको भोजन करानेसे पितामह एवं प्रपितामह सदाके लिये तृप्त हो जाते हैं। पितृयज्ञके प्रतिनिधि आत्रेयमुनिने इस प्रकारकी निश्चयात्मक बात बताकर कुछ समयतक भगवान् श्रीहरिका ध्यान किया और वहीं अन्तर्धान हो गये।

नारदजी कहते हैं—मुने! हमने आत्रेयके लिये जो संस्कार-सम्बन्धी बात बतायी है और तुमने उसका श्रवण भी किया है, वह प्रायः चारों वर्णोंसे सम्बन्ध रखता है, अतः उसे विधिपूर्वक करना चाहिये। तभीसे तपके परम धनी ऋषियोंके द्वारा प्रत्येक मासकी अमावास्याके दिन न्यायके अनुसार यह पितृयज्ञ होता आ रहा है। निमिद्वारा निर्दिष्ट यह यज्ञ द्विजातियों-

को मन्त्रसहित और शूद्रवर्गको विना मन्त्र पढ़े करना चाहिये—यह विधि है। तबसे इसका नाम 'नेमिश्राद्ध' पड़ गया और द्विजातिवर्णके प्राणी सदा इसे करते आ रहे हैं। महाभाग! तुम मुनिगणोंमें परम प्रतिष्ठित हो। तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं जाना चाहता हूँ। माधवि! इस प्रकार कहकर नारदमुनि अमरावतीके लिये प्रस्थान कर गये।

(अध्याय १८८)

श्राद्धके दोष और उसकी रक्षाकी विधि

धरणीने कहा—भगवन्! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चारों वर्णोंको जिस विधिसे श्राद्ध करना चाहिये, इन्हें जैसे अशौच लगता है और जैसे शुद्ध होते हैं तथा जिस विधिसे प्रेतकी सद्गतिके लिये भोजन आदि करानेका विधान है—यह प्रसङ्ग मैं सुन चुकी। प्रभो! ऐसा वर्णन मिलता है कि चारों वर्णोंके सभी व्यक्तियोंका कर्तव्य है कि उत्तम ब्राह्मणको ही दान दें। मेरे हृदयमें यह शङ्का है कि दान किसे देना उचित है? प्रेतश्राद्धका दान ग्रहण करना निन्दित एवं गर्हित कार्य है, अतः पुरुषोत्तम! आपसे मैं यह भी जानना चाहती हूँ कि विप्रसमाजमें जिस ब्राह्मणने प्रेतभाग स्वीकार कर लिया, वह क्या कर्म करे, जिससे उसके पाप दूर हो जायँ और दाताका भी श्रेय हो।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! जब पृथ्वीदेवीने इस प्रकार परम प्रभुसे प्रश्न किया तो शङ्ख एवं दुन्दुभियोंकी ध्वनि होने लगी। उस समय वराहरूपधारी भगवान् नारायणने भगवती वसुंधरासे कहा।

भगवान् वराह बोले—देवि! ब्राह्मण जिस प्रकार दाताका उद्धार कर सकते हैं, वह मैं तुम्हें बताता हूँ। जो ब्राह्मण अज्ञानमें प्रेतके निमित्त दिया हुआ अन्न ग्रहण कर लेता है, उसे शरीरकी शुद्धिके लिये एक दिन और रात निराहार रहकर प्रायश्चित्त करना चाहिये। ऐसा करनेसे वह ब्राह्मण शुद्ध हो जाता है। उसे पूर्वकी ओर बहनेवाली नदीमें विधिके अनुसार स्नान कर प्रातः-संध्या करनेके बाद तर्पण, अग्निमें तिलका हवन, शान्तिपाठ एवं मङ्गलपाठ करना चाहिये। फिर पञ्चगव्य-पान और मधुपर्कका सेवन परम शुद्धिका साधन है। तदनन्तर गूलरकी लकड़ीसे बने हुए पात्रमें शान्तिका जल लेकर वह ब्राह्मण अपने घरका मार्जन करे। पापोंको भस्म करनेके लिये देवताओंका मुख अग्निका काम करता है, अतः समस्त देवताओंका क्रमशः तर्पण, भूतोंके लिये बलि तथा इसके बाद ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। गौके दान करनेसे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं, अतः गोदान भी करे। ऐसी विधिका पालन करनेसे परमगति होती है। जिसके पेटमें प्रेतनिमित्तक अन्न हो और काल-धर्मके अनुसार उसके प्राण प्रयाण कर जायँ तो वह ब्राह्मण कल्प-पर्यन्त भयंकर नरकमें निवास करता है और उसे कठिन दुःख भोगने पड़ते हैं। बादमें उसे राक्षसकी योनि मिलती है। इसलिये दाता और भोक्ता—दोनोंको स्वकल्याणार्थ प्रायश्चित्त करना नितान्त आवश्यक है। माधवि! गौ, हाथी, घोड़ा तथा समुद्रपर्यन्त सम्पूर्ण सम्पत्तियाँ दानमें लेनेवाला ब्राह्मण भी यदि मन्त्रपूर्वक प्रायश्चित्तका कार्य सम्पन्न कर ले तो निश्चय ही उसमें दाताके उद्धार करनेकी शक्ति आ जाती है।

जो ज्ञानसे सम्पन्न तथा वेदका अभ्यास करनेमें सदा संलग्न रहता है, वह ब्राह्मण स्वयं अपनेको एवं दाताको तारनेमें पूर्ण समर्थ है—इसमें कोई संशय नहीं। वसुंधरे! तीनों वर्णोंका परम कर्तव्य है कि वे कभी भी ब्राह्मणका अनादर न करें। देवकार्यके अवसरपर,

जन्मनक्षत्रके दिन, श्राद्धकी तिथिमें, किसी पर्वकालपर अथवा प्रेत-सम्बन्धी कार्यमें प्रवीण ब्राह्मणको सम्मिलित करे। जो वैदिक विद्या जानता हो, जिसकी व्रतमें निष्ठा हो, जो सदा धर्मका पालन करता हो, शीलवान्, परम संतोषी, धर्मज्ञानी, सत्यवादी, क्षमासे सम्पन्न, शास्त्रका पारगामी तथा अहिंसाव्रती हो, ऐसे ब्राह्मणको पाकर उसे तुरंत दान देना चाहिये। वही ब्राह्मण दाताका उद्धार करनेमें समर्थ है। 'कुण्ड' अथवा 'गोलक' ब्राह्मणको दिया हुआ दान निष्फल हो जाता है।* वह दाताको नरकमें पहुँचा देता है। पितृसम्बन्धी या देवकार्यमें कदाचित् एक भी कुण्ड या गोलक ब्राह्मण उपस्थित हो जाय तो उसे देखकर पितर निराश होकर लौट जाते हैं।

यशस्विनि! अपात्रको भी कभी दान न दे। इस सम्बन्धमें एक प्राचीन प्रसङ्ग कहता हूँ, तुम उसे सुनो। अवन्तीपुरीमें पहले एक मनुके वंशमें उत्पन्न परम धार्मिक राजा रहते थे, जिनका नाम मेधातिथि था। उनके अत्रिगोत्रकुलोद्भव पुरोहितका नाम चन्द्रशर्मा था, जो सदा वेद-पाठमें संलग्न रहते थे। राजा मेधातिथि अत्यन्त दानी थे। वे प्रतिदिन ब्राह्मणोंको गौएँ दान दिया करते थे। विधिके साथ सौ गौएँ रोज दान करनेके पश्चात् ही उनका अन्न ग्रहण करनेका नियम था। वैशाख मासमें उन महाराजने अपने पिताके श्राद्ध-दिवसपर अनेक ब्राह्मणोंको आमन्त्रित किया। फिर उन ब्राह्मणों एवं गुरु (राजपुरोहित)के आनेपर उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और विधिके साथ श्राद्धकार्य प्रारम्भ हुआ। पिण्ड-प्रदानके बाद अन्नदानका संकल्प करके उसे ब्राह्मणोंमें वितरित किया गया, पर उसी विप्रसमाजमें एक गोलक ब्राह्मण भी था। राजाने श्राद्धमें संकल्पित अन्न उस ब्राह्मणको भी दिया जिससे श्राद्धमें एक महान् दोष उत्पन्न हो गया। इसी कारणसे राजा मेधातिथिके पितर स्वर्गसे नीचे उतर आये और उन्हें काँटोंसे भरे हुए जंगलमें रहना पड़ा और रात-दिन भूख-प्यासकी पीड़ा उन्हें सताने लगी। एक समयकी बात है—स्वयं राजा मेधातिथि संयोगवश दो-तीन परिजनोंके साथ मृगयाके लिये उसी जंगलमें पहुँच गये। राजाने वहाँ उन पितरोंको देखकर पूछा—'महानुभाव! आपलोग कौन हैं? और आप लोगोंकी ऐसी दशा कैसे हुई? आप सभी किस कर्मके कारण यह दारुण दुःख भोग रहे हैं?—यह मुझे बतानेकी कृपा करें।'

पितरोंने कहा—हमारे वंशकी निरन्तर वृद्धि करनेवाला एक शक्तिसम्पन्न पुरुष है। लोग उसे मेधातिथि कहते हैं। हम सभी उसीके पितर हैं; किंतु इस समय नरकमें पड़े हैं। देवि! उस समय पितरोंकी यह बात सुनकर राजा मेधातिथिके हृदयमें अवर्णनीय दुःख हुआ। उन्होंने पितरोंको सान्त्वना दी। साथ ही कहा—'पितृगण! मेधातिथि तो मैं ही हूँ। आपलोग मेरे ही पितर हैं। मैं जानना चाहता हूँ कि किस कर्मके दोषसे आपको नरकमें जाना पड़ा है।'

पितर बोले—पुत्र! तुमने जो हमलोगोंके लिये श्राद्धमें अन्न संकल्प किये, दैववश वह अन्न एक गोलक ब्राह्मणके पास पहुँच गया। अतः श्राद्ध-कर्म दूषित हो गया, उसीके फलस्वरूप हमें नरकमें जाना पड़ा और उसी समयसे हम दुःख भोग रहे हैं। हमारे मनमें इच्छा है कि हमको किसी प्रकार पुनः स्वर्ग सुलभ हो। पुत्र! तुम तो सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें सदा संलग्न रहते हो। दान करना तुम्हारा स्वाभाविक गुण है। तुम्हारे द्वारा अनगिनत गौएँ दानमें दी जा चुकी हैं। दक्षिणाएँ भी

* पिताके रहते हुए जार पुरुषसे जिसकी उत्पत्ति होती है, वह बालक 'कुण्ड' कहलाता है और जिसे पतिकी मृत्युके पश्चात् स्त्री अन्य पुरुषसे जन्म देती है, उसे 'गोलक' संतान कहते हैं।

तुमने पर्याप्त दी हैं। उसी पुण्यके प्रभावसे हम स्वर्ग पाना चाहते हैं। पर तुम्हें पुनः एक बार श्राद्ध करना चाहिये, जिससे हम सभी पितरोंका उद्धार हो सके।

वसुंधरे! पितरोंकी बात सुनकर राजा मेधातिथि घर वापस गये और उन्होंने अपने पुरोहित चन्द्रशर्माको बुलाया और उनसे उपर्युक्त वृत्तान्त कहा तथा पुनः श्राद्ध करनेकी इच्छा व्यक्त की और निवेदन किया कि इस श्राद्धमें 'कुण्ड-गोलक' ब्राह्मण सर्वथा न बुलाये जायँ।

देवि! राजा मेधातिथिके आदेशसे पुरोहित चन्द्रशर्माने ब्राह्मणोंको पुनः बुलाकर पिण्डदान एवं श्राद्ध सम्पन्न कराया और ब्राह्मणोंको भोजन कराया फिर दक्षिणाएँ देकर उनकी पूजा की। इसके बाद सबको विदा करके उसने स्वयं प्रसाद ग्रहण किया। तत्पश्चात् राजा पुनः वनमें गये और वहाँ उन्होंने अपने उन पितरोंको हृष्ट-पुष्ट तथा परम पराक्रमी-रूपमें देखा। अब उन नरेशके हर्षकी सीमा न रही। उस अवसरपर पितरोंमें श्रद्धा रखनेवाले राजा मेधातिथिको देखकर पितरोंके मुखमण्डलपर भी प्रसन्नता छा गयी और उन्होंने कहा—'तुम्हारा कल्याण हो। तुमने हमारा हित कर महान् कार्य सम्पन्न किया है। अब हम स्वर्गको जाते हैं।'

देवि! श्राद्धमें संकल्पित अन्नपात्र ब्राह्मणके अभावमें गौको दे, अथवा गौके अभावमें भी यत्नपूर्वक उसे नदीमें छोड़ दे, पर किसी प्रकार भी अपात्र, नास्तिक, गुरुद्रोही, गोलक अथवा कुण्डको वह अन्न न दे।

भामिनि! इस प्रकार अपना उद्गार प्रकट करके सभी पितर स्वर्ग चले गये और राजा मेधातिथि ब्राह्मणोंके साथ अपनी पुरीको लौटे। उन्होंने पितरोंकी आज्ञाका यथाविधि पालन किया। देवि! यह इसीलिये मैंने तुम्हें बताया है कि एक भी उत्तम ब्राह्मण मिल जाय तो वही पर्याप्त है। उसीकी कृपासे यज्ञकर्ता कठिनाइयोंसे तर सकता है—इसमें कोई संशय नहीं। वह एक ही विप्र दाताको इस प्रकार पार करनेमें समर्थ है, जैसे अगाध जलको पार करनेके लिये एक नाव। वसुंधरे! अतएव सुपात्र ब्राह्मणको ही दान देना चाहिये। देवता, दानव, मानव, राक्षस, गन्धर्व और उरग—इन सभीके लिये यह विधान है। (अध्याय १८९)

श्राद्ध और पितृयज्ञकी विधि तथा दानका प्रकरण

पृथ्वी बोली—भगवन्! देवता, मनुष्य, पशु, एवं पक्षी-प्रभृति सभी प्राणी कालवश प्रेत होते हैं, वे कभी नरकोंमें जाते हैं और पुनः संसारमें भी आते हैं। अब मैं यह जानना चाहती हूँ कि पितर कौन-से हैं, जिन्हें विधिपूर्वक अर्पण करनेसे श्राद्ध-सम्बन्धी पदार्थ भोजनके लिये उपलब्ध होता है? प्रत्येक मासमें संकल्पपूर्वक दिया गया पिण्ड किस प्रकार पितरोंके पास पहुँचता है? पितृक्रियासे सम्बन्ध रखनेवाले श्राद्धमें कौन पितर भोजन पानेके अधिकारी हैं? इस विषयमें मुझे महान् कौतूहल हो रहा है, कृपया निर्णयपूर्वक बतलायें।

भगवान् वराह बोले—देवि! तुम मुझसे जो पूछती हो, उसे मैं बताता हूँ। माधवि! पितृसम्बन्धी यज्ञोंमें भाग पानेके जो अधिकारी हैं, उन्हें सुनो—पिता, पितामह तथा प्रपितामह—इन पितरोंके लिये पिण्डका संकल्प करना चाहिये। पितृपक्ष आनेपर नक्षत्र और तिथिकी जानकारी प्राप्त करके पितरके लिये उन्हें पुण्यपर्व मान ले। उन्हीं अवसरोंपर पिण्डदान करनेसे विशेष फल प्राप्त होता है। शुभलोचने! जिन ज्ञानवान् पुरुषोंको जिस प्रकार श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करनेका विधान है, वह सभी मैं तुम्हें बताता हूँ,

तुम सावधान होकर सुनो। ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ और मनुष्ययज्ञ—ये अनेक प्रकारके यज्ञ हैं। कुछ द्विजाति ब्रह्मयज्ञ, कुछ गृहस्थाश्रममें रहकर भूतयज्ञ तथा मनुष्ययज्ञ करके इष्टदेवकी उपासना करते हैं। अब मैं पितृयज्ञका वर्णन करता हूँ, उसे सुनो। वरारोहे ! जो लोग सौ यज्ञ करते हैं, उन सभीके द्वारा प्रायः मेरी ही आराधना होती है। तुम्हें मैं यह बिल्कुल सत्य बात बताता हूँ। माधवि ! हव्य एवं कव्य ग्रहण करनेके लिये देवताओंका मुख अग्नि है। यज्ञोंमें आवसथ्य (उत्तराग्नि), दक्षिणाग्नि और आहवनीयाग्नि प्रयुक्त होती हैं। इन सभी अग्नियोंमें मैं ही व्याप्त हूँ एवं समस्त कार्यो तथा देवयज्ञोंमें भी पावनरूपसे मैं ही व्यवस्थित हूँ। देवतीर्थोंमें भिक्षुक, वानप्रस्थी और संन्यासी—इनका सत्कार करना उचित है; किंतु श्राद्धमें इन्हें भोजन नहीं कराना चाहिये; क्योंकि देवताओंके निमित्त ही इनकी पूजा करनेका विधान है। अब जो व्रती ब्राह्मण श्राद्धमें निमन्त्रित करनेके लिये योग्य हैं, उनका निर्देश करता हूँ। जो अपने घरपर सदा संतुष्ट रहता है तथा क्षमाशील, संयमी, इन्द्रिय-विजयी, उदासीन, सत्यवादी, श्रोत्रिय एवं धर्मका प्रचारक है—ऐसे ब्राह्मणोंको श्राद्धके लिये ग्राह्य मानना चाहिये। माधवि ! जो वेद-विद्याके पारगामी तथा स्वच्छ एवं मधुर अन्न खानेके स्वभाववाले हों, ऐसे ब्राह्मणोंको पितृयज्ञसम्बन्धी श्राद्धमें भोजन कराना हितकर है। सुन्दरि ! श्राद्धमें सर्वप्रथम देवतीर्थोंमें अवगाहन करनेकी आवश्यकता है। पहले अग्निमें हवन कर बादमें विधिका पालन करते हुए पितरके निमित्त ब्राह्मणोंके मुखमें हवन करना उचित है।

देवि ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र—ये चारों वर्ण श्राद्ध करनेके अधिकारी हैं। श्राद्धके पदार्थको कुत्ते, मुर्गे, सूअर तथा अपवित्र व्यक्ति न देख सकें। जो अपनी श्रेणीसे च्युत हो गये हैं, जिनका संस्कार नहीं हुआ है, जो सब प्रकारके अकार्य कर्म करते रहते हैं तथा जो सर्वभक्षी हैं, ऐसे ब्राह्मणको पितृयज्ञसे सम्बन्धित श्राद्धको नहीं देखना चाहिये। यदि कदाचित् ऐसे ब्राह्मणोंकी दृष्टि श्राद्धपर पड़ गयी तो उसे 'आसुरी श्राद्ध' कहते हैं। बहुत पहले जब मैंने इन्द्रका कार्य सिद्ध करनेके लिये वामनका अवतार ग्रहण किया था तो ऐसे श्राद्धोंको मैं बलिको दे चुका हूँ। इसलिये विद्वान् पुरुषको चाहिये कि पितृयज्ञोंमें ऐसे ब्राह्मणोंको सम्मिलित न करे, जहाँ सर्व-साधारणकी दृष्टि न पड़े, ऐसे स्थानमें पवित्र होकर तर्पण-पूर्वक ब्राह्मणको श्राद्धमें भोजन कराये। भूमे ! मन्त्र पढ़कर पितरोंका आवाहनकर तीन पिण्ड देने चाहिये। इन पिण्डोंके अधिकारी पिता, पितामह तथा प्रपितामह हैं। प्रतिमासमें अपसव्य होकर इनके लिये तिलोदक तथा पिण्डदान करना चाहिये। फिर वैष्णवी, काश्यपी और अजया—इन नामोंका उच्चारण कर सिर झुकाकर तुम्हें भी प्रणाम करना चाहिये।

देवि ! इस प्रकार पिण्ड-दान करनेसे पितर प्रसन्न हो जाते हैं—इसमें कोई संशय नहीं है। सृष्टिके प्रारम्भमें तीन पुरुष पितरोंके रूपमें प्रकट हुए थे। पिण्ड ही उनका आहार है। देवता, असुर, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व एवं पन्नग—ये सब-के-सब वायुका रूप धारण करके पितृयज्ञ करनेवाले पुरुषकी श्राद्धक्रियाके छिद्रपर दृष्टि लगाये रहते हैं—यह निश्चित है। जो विवेकी व्यक्ति पितृयज्ञ करते हैं, उन्हें पितरोंकी कृपासे आयु, कीर्ति, बल, तेज, धन, पुत्र, पशु, स्त्री तथा आरोग्य सदाके लिये सुलभ हो जाते हैं—इसमें कोई संशय नहीं। यही नहीं—अपने इस उत्तम कर्मके प्रभावसे वे मनुष्य परम पवित्र लोकोंके अधिकारी हो जाते हैं और वे प्रेत एवं पशु-पक्षीकी योनिमें नहीं पड़ते हैं। ऐसा पुरुष नरकमें गये हुए अपने पितरोंका उद्धार करनेमें पूर्ण समर्थ बन जाता है। देवताओं तथा

पितरोंकी उपासना करनेवाला मनुष्य गृहस्थाश्रममें रहता हुआ भी पूरी विधिके साथ द्विजाति वर्गके पितरोंको तृप्त कर सकता है। श्राद्धमें तृप्त हुए पितर उस प्राप्त वस्तुको अविनाशी मानते हैं। जिनकी पितरोंके प्रति श्रद्धा हैं, उनकी भी परमगति होती है। इस प्रकारके ज्ञानीजन मृत्युके पश्चात् सत्त्वगुणसे सम्पन्न शुक्लमार्गसे प्रयाण करते हैं।

देवि! जिनके मनपर अज्ञानका आवरण है, जो कृतघ्न एवं प्रचण्ड मूर्ख हैं, ऐसे मनुष्य स्नेहमयी सैकड़ों रस्सियोंसे बँधकर भयंकर नरकमें गिरते हैं। पर जो मानव कल्पपर्यन्तके लिये नरकमें पड़े हैं, उनके भी पुत्र अथवा पौत्र यदि कहीं श्राद्ध-क्रिया कर दें तो उसके प्रभावसे उन प्राणियोंकी सद्गति हो जाती है। अमावास्याको जो जलाशयमें जाकर पितरोंके निमित्त बिन्दुमात्र भी जल गिराते हैं, उससे उनके नरकस्थित पितरोंको भी तृप्ति प्राप्त हो जाती है। जो द्विजातिवर्गके पुरुष पितरोंके लिये भक्तिपूर्वक तर्पण, तिलाञ्जलि एवं पिण्डपातप्रभृति श्राद्ध कार्य करते हैं, उनके पितरोंकी नरकसे मुक्ति मिल जाती है और वे सदाके लिये तृप्त हो जाते हैं। श्राद्धमें गूलरकी लकड़ीके पात्रसे तिल और जलद्वारा तर्पणकी बड़ी महिमा है। पितरोंका उद्धार करनेके लिये ब्राह्मणोंके वचनपर श्रद्धा रखना और अपने वैभवके अनुसार उन्हें दक्षिणा देना परम आवश्यक है। नीले साँड़ छोड़नेसे जो पुण्य भूमण्डलपर होता है, उसके प्रभावसे पुरुषके पितर छाछठ हजार वर्षोंतक चन्द्रमाके लोकोंमें आनन्दपूर्वक निवास करते हैं। उन्हें भूख-प्यास नहीं लगती।

श्राद्ध-तर्पण गृहस्थोंके लिये महान् धर्म है। चींटी आदि जङ्गम प्राणी एवं आकाशमें विचरनेवाले जीव गृहस्थोंके आश्रयपर ही जीवन धारण करते हैं, इसमें कोई संशय नहीं। गृहस्थाश्रम ही सभी धर्मोंका मूल है। सारे वर्ण एवं आश्रम इसीपर आश्रित हैं। इस आश्रममें रहकर जो व्यक्ति प्रति मास-में पर्व तथा प्रत्येक निर्दिष्ट तिथिपर श्राद्ध करते हैं, उनके द्वारा पितरोंका निश्चय ही उद्धार हो जाता है। गृहस्थके घरमें धर्मपूर्वक श्राद्ध करनेसे जैसा फल प्राप्त होता है, वैसा फल यज्ञ, दान, अध्ययन, उपवास, तीर्थस्नान, अग्निहोत्र तथा विधिपूर्वक अनेक प्रकारके दानोंसे भी प्राप्य नहीं है। ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रके शरीरमें प्रविष्ट पितृगण पिता, पितामह एवं प्रपितामहके रूपसे प्रकट होकर विराजते हैं। कश्यप उनके जनक हैं। पहले कभी अग्निमें हवन न करके ब्राह्मणके मुखमें हवन किया गया अर्थात् ब्राह्मणको भोजन कराया गया। भूमिपर कुश बिछाकर पिण्ड संकल्प करके उनपर रख दिये गये। उस पिण्डसे पितृदेवोंको अजीर्ण हो गया और उन्हें महान् पीड़ा होने लगी। उन्होंने भोजन करना छोड़ दिया और दुःखसे अत्यन्त संतप्त होकर वे सोमदेवके पास गये। सुश्रोणि! अजीर्णसे दुःखी उन पितरोंपर चन्द्रमाकी दृष्टि पड़ी तो उन्होंने मधुर वाक्योंसे उनका स्वागत किया।

सोमने पूछा—'पितरो! तुम्हारे इस दुःखका क्या कारण है?' इसपर पितरोंने कहा—'सोमदेव! आप हमारी बातें सुननेकी कृपा करें। ब्रह्मा, विष्णु और शंकरके शरीरसे उत्पन्न हुए हम तीनों पितृदेवता हैं। हमलोगोंकी नियुक्ति श्राद्धमें हुई थी। पुत्र आदि द्वारा दिये गये पिण्डोंसे हम अत्यन्त तृप्त हो गये। यहाँतक कि हमें अजीर्ण हो गया। इसीसे हम दुःख पा रहे हैं।'

सोमने कहा—'पितृगण! मैं तुमलोगोंका मित्र बन जाता हूँ। अब तुम तीन ही नहीं रहे। एक चौथा पितर मैं भी बन गया। अब हम सभी ऐसी जगह चलें, जहाँ हमारे कल्याण होनेकी सम्भावना हो। वसुंधरे! सोमके इस प्रकार कहनेपर वे पितर उनके साथ सुमेरुपर्वतके शिखरपर गये, जहाँ पितामह ब्रह्माजी ब्रह्मर्षियोंद्वारा सेवित एवं सुशोभित हो रहे थे। सभीने उन्हें प्रणाम

किया। फिर सोमने उनसे कहा—'भगवन्! ये पितर अजीर्णसे पीड़ित होकर आपकी शरण आये हैं, आप इनके क्लेश नाशका उपाय करें।

इसपर श्रीब्रह्माजी एक मुहूर्ततक परम योगीश्वर भगवान् श्रीहरिके ध्यानमें लीन रहे। फिर भगवान् श्रीहरिने प्रकट होकर उनसे कहा—'ब्रह्मन्! यह मेरी वैष्णवी मायाका ही प्रभाव है कि पहले जो देवता थे, वे अब पितरके रूपमें प्रकट हैं। मेरे अङ्गसे निकले हुए पिता ब्रह्माके रूप, पितामह विष्णुके रूप तथा प्रपितामह रुद्रके रूप माने जाते हैं। मर्त्यलोकमें श्राद्धके अवसरपर इन्हें पितृ-देवताके रूपमें नियोजित किया गया है। ब्राह्मणोंके हितार्थ विष्णुमायाकी आज्ञासे प्रजा इन्हें पितृयज्ञोंसे तृप्त करती है। अब मैं इनके अजीर्ण दूर होनेका उपाय बतला रहा हूँ। धूम्रकेतु और विभावसु* नामके शाण्डिल्य मुनिके दो तेजस्वी पुत्र हैं। मानवमात्रके लिये यह कर्तव्य है कि वे श्राद्ध करते समय पहले अग्निको भाग देकर शेष पिण्ड उन तेजस्वी विभावसुके साथ ही पितरोंको अर्पित करें।'

परम प्रभुके इस कथनपर ब्रह्माजीने मन-ही-मन हव्यवाहन अग्निका आवाहन किया। उनके स्मरण करते ही सर्वभक्षी अग्निदेव उनके पास आये। अग्निका शरीर प्रचण्ड तेजसे उद्दीप्त हो रहा था। मेरी प्रेरणासे ब्रह्माजीने उन्हें पाँच प्रकारके यज्ञोंमें भाग पानेका अधिकारी बनाया और अग्निसे कहा—'हुताशन! तुम ब्रह्मस्वरूप हो। पितरोंके निमित्त श्राद्धमें दिये गये पिण्डके भागमें—'**ॐ अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा**'—इस मन्त्रद्वारा सर्वप्रथम तुम्हें ही भाग पानेका अधिकार दिया जाता है। तुम्हारे बाद मरुद्गणसहित देवता भाग प्राप्त करनेके अधिकारी होंगे। तुम सभीके ग्रहण कर लेनेपर साथका अन्न पितरोंके लिये पथ्यस्वरूप हो जायगा और सोमसहित पितर उसके अधिकारी होंगे।

वसुंधरे! ब्रह्माकी इस व्यवस्थासे अग्नि, देवता एवं पितर श्राद्धके भागी बने। तबसे अग्नि एवं सोमके साथ पितृयज्ञमें सभीका पितरोंके साथ भोजन करनेका सदाके लिये नियम बन गया। जगत्‌को प्रश्रय देनेवाली पृथ्वी देवि! इस नियमका अनुसरण कर पितरोंके निमित्त श्राद्ध करते समय सर्वप्रथम पिण्ड अग्निको देकर पश्चात् पितरोंको तृप्त करना चाहिये। वसुंधरे! इस प्रकार जो मनुष्य मन्त्रोंका उच्चारण कर विधिके साथ पितरोंके लिये श्राद्ध करते हैं, वे तृप्त हुए पितरोंकी कृपासे निरन्तर सुख-समृद्धिके भागी होते हैं।

देवि! अब श्राद्धकी श्रेणीमें जो निन्द्य हैं, उन ब्राह्मणोंका विवेचन करता हूँ। नपुंसक, चित्रकार, पशुपाल, कुमार्गी, काले दाँतवाला, एक नेत्रसे रहित, लम्बोदर, नाच करनेवाला, गायक, कपड़ा रँगकर जीविका चलानेवाला, वेदविक्रयी, सभी वर्णोंसे यज्ञ करानेवाला, राजाका सेवक, व्यापारके निमित्त खरीदने एवं बेचनेवाले, ब्रह्मयोनिमें उत्पन्न, निन्दक, पतित, संस्काररहित, गणक, गाँवमें घूमकर याचना करनेवाला, दीक्षित, काण्डपृष्ठ, (शस्त्र-लेकर घूमनेवाला), सूदखोर, रसविक्रेता, वैश्यकी वृत्तिसे जीविका चलानेवाला, चोर, लेखकार, याजक, शौण्डिक (शराब बनानेवाला), गैरिक (गेरुआ कपड़ा पहननेवाला) दम्भी, सभी वर्णसे सम्बन्धित कार्यमें रत तथा सब कुछ बेचनेमें तत्पर—ये सभी ब्राह्मण श्राद्ध-कर्मके लिये निन्द्य माने जाते हैं। इन्हें पितरोंके निमित्त श्राद्धमें भोजन नहीं कराना चाहिये। पण्डितसमाजका कथन है कि जो जीविकाके निमित्त दूर चले जाते हैं, रस बेचते हैं तथा धूर्त एवं तिलविक्रयी हैं, ऐसे ब्राह्मणोंके श्राद्धमें सम्मिलित हो जानेसे वह श्राद्ध राजस हो जाता है। देवि! इनके अतिरिक्त मैंने जिन निन्दित

* ये अग्निके भी नामान्तर हैं।

ब्राह्मणोंको बताया है, वे सभी ब्राह्मण राजस हैं । माधवि ! श्राद्धसम्बन्धी कर्मोंमें पितरोंके लिये पिण्डदान करते समय ऐसे पङ्क्तिदूषित ब्राह्मणोंका दर्शनतक नहीं करना चाहिये । यदि ऐसे ब्राह्मण श्राद्धमें भोजन करते हों और उनपर श्राद्धकर्ता-की दृष्टि पड़ गयी तो उसके पितर छः महीनोंतक दारुण दुःख उठाते हैं । वसुधे ! यदि कहीं ऐसी त्रुटि हो जाय तो श्राद्धकर्ता और भोक्ता दोनोंके लिये आवश्यक है कि वे यथाशीघ्र प्रायश्चित्त करें । प्रायश्चित्त-का स्वरूप है—प्रज्वलित अग्निमें घृतका हवन, सूर्यका दर्शन, सिरका मुण्डन, पिता-पितामह आदिके लिये पुनः गन्ध-पुष्प-धूप आदिसे पूजन, अर्घ्य तथा तिलोदक-का दान एवं विधिके साथ पवित्र होकर ब्राह्मण-भोजन आदि कराये ।

सुन्दरि ! अब पुनः एक अन्य बात बताता हूँ, उसे सुनो । ज्ञानद्वारा जिसका अन्तःकरण पवित्र हो गया है, वह ब्राह्मण विधिके अनुसार मन्त्रशुद्धि करे । माधवि ! जो कभी भी मृतक सम्बन्धित अन्नका भक्षण नहीं करते हैं, ऐसे ब्राह्मणको वैश्वदेवनिमित्तक भाग देना चाहिये, उन्हें श्राद्धोंमें भोजन कराना अनुचित है । जो ब्राह्मण श्राद्धमें प्रेतान्न खाते हैं, अब उनका दोष बताता हूँ । प्रेतान्न खानेके प्रभावसे ऐसे दम्भी मनुष्यको नरकमें जाना पड़ता है । अब उसकी शुद्धिका उपाय बतलाता हूँ । ऐसे द्विजातिपुरुषका कर्तव्य है कि माघमासके द्वादशी तिथिको पुष्यनक्षत्रमें मधु और फलसे पितरोंको तृप्त करके घृतयुक्त खीरका प्राशन करे । 'मुझे पवित्रता प्राप्त हो जाय'—इस संकल्पसे वह कपिला गौका दान करे तथा अपने कल्याणकी अभिलाषासे पितृ-श्राद्ध सम्पन्न कर, युग्म ब्राह्मणको भोजन कराकर विसर्जन करना चाहिये ।

विशालाक्षि ! अमावास्या तिथिको दन्तधावन करना प्रायः सभीके लिये निषिद्ध है । जो बुद्धिहीन व्यक्ति अमावास्याको दातुन करता है, उसके इस कर्मसे चन्द्रमा, देवता तथा पितर कष्ट पाते हैं । रात बीत जानेपर जब प्रातःकाल हो जाय और सूर्यकी किरणें प्रकाशित होने लगें तो दिनका कार्य आरम्भ करे । यह काम ब्राह्मणको सविधि सम्पन्न करना चाहिये । पितरोंके प्रति श्रद्धा रखनेवाला मानव बाल बनवाने, नाखून कटवाने और तेल लगाकर स्नान करनेके पश्चात् पवित्र पक्वान्न तैयार करे । पाक बन जानेपर दिनके मध्यकालमें श्राद्ध करनेकी विधि है । फिर तीर्थके शुद्ध जलके द्वारा ब्राह्मणको पाद्य देकर मण्डपके भीतर प्रवेश कराकर विधिके साथ अर्घ्यपूर्वक चन्दन, माला, धूप-दीप, वस्त्र और तिल एवं जलसे उसकी पूजा करनी चाहिये । फिर भोजनके लिये सामने पात्र रखे और भस्मसे मण्डलकी रचना करे । पृथक्-पृथक् मण्डल होनेसे पङ्क्तिका दोष नहीं लगता । फिर अग्निसम्बन्धी कार्य सम्पन्न करके अन्नपरिवेषण करे। सपात्रक*श्राद्धमें पितरोंको लक्ष्य करके संकल्प नहीं करना पड़ता । इसमें केवल ब्राह्मणसे प्रार्थना करे—'द्विजदेव ! अब आपको सुखपूर्वक भोजन करना चाहिये । विद्वान् पुरुष भोजन करते समय 'रक्षोघ्न-मन्त्र'का भी पाठ करें । ब्राह्मणके तृप्त हो जानेपर अन्न-विकरण करनेका विधान है । इसके पश्चात् दूसरा आसन देकर पिण्ड देना चाहिये । भूमिपर कुश बिछाकर दक्षिणकी ओर मुख करके पिता, पितामह और प्रपितामह—इन पितरोंके लिये पिण्ड अर्पण करे । फिर अपनी संतानमें वृद्धि होनेके उद्देश्यसे विधिपूर्वक उनकी पूजा करे । पूजाके अन्तमें ब्राह्मणके हाथमें अक्षयोदक देना चाहिये । जब ब्राह्मण संतुष्ट हो जायँ तो स्वस्ति-वाचनपूर्वक

* किसी देशमें सपात्रक श्राद्ध भी होता है । वहाँ अन्न-परिवेषणमें स्वयं ब्राह्मण भोजन करते हैं ।

विसर्जन करे। वसुधे ! जबतक तीनों पिण्ड पृथ्वीपर रहते हैं, तबतक पितरोंको सुख मिलता रहता है।

फिर श्राद्धकर्ता आचमन करके पवित्र हो शान्ति-निमित्तक जल दे। फिर जहाँ पिण्डपात हुआ है, उस भूमिको वैष्णवी, काश्यपी और अक्षया—इन नामोंका उच्चारण कर सिर झुकाकर प्रणाम करे। पहला पिण्ड स्वयं ग्रहण करे, दूसरा पत्नीको दे और तीसरा पिण्ड पानीमें डाल दे, फिर प्रणाम करके पितरों एवं देवताओं-का विसर्जन करे। इस प्रकार पिण्डदान करनेसे पितृदेव प्रसन्न हो जाते हैं—इसमें कोई संशय नहीं। उन पितरोंकी कृपासे लम्बी आयु, पुत्र-पौत्र तथा सम्पत्ति सुलभ हो जाती है। श्राद्धके अवसरपर उत्तम ज्ञानी ब्राह्मणोंको तथा योगियोंको भी श्राद्धसम्बन्धी वस्तुएँ समर्पण करे। अन्यथा वह श्राद्ध फल प्रदान करनेमें असमर्थ हो जाता है—इसमें कोई संशय नहीं।

(अध्याय १९०)

‘मधुपर्क’की विधि और शान्तिपाठकी महिमा

पृथ्वी बोली—भगवन् ! यद्यपि आपसे मैं बहुत कुछ सुन चुकी, किंतु अभी तृप्ति नहीं हुई। अब मुझपर दयाकर आप यह बतानेकी कृपा कीजिये कि ‘मधुपर्क’में कौन पदार्थ किस मात्रामें हो तथा उसके अर्पणकी क्या-क्या विधि तथा पुण्य है ?

भगवान् वराहने कहा—देवि ! मैं ‘मधुपर्क’की उत्पत्ति और दानका प्रसङ्ग बताता हूँ, सुनो। इससे सारे अनिष्ट दूर हो जाते हैं। जब संसारकी सृष्टि हुई, तब मेरे दक्षिण अङ्गसे एक पुरुषका प्रादुर्भाव हुआ, जो बड़ा द्युतिमान् एवं कीर्तिमान् था। उसे देख ब्रह्माजीने पूछा—‘प्रभो ! यह कौन है ?’ तब मैंने उनसे कहा—‘यह तो मधुपर्क है, जो मेरे ही शरीरसे उत्पन्न है तथा मेरे भक्तोंको संसारसे मुक्त करनेवाला है। जो व्यक्ति मेरी आराधनाके समय इस मधुपर्कको अर्पण करता है, उसे वह सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त होता है, जहाँ जानेपर प्राणीको शोक नहीं होता।’ अब इसके निर्माण और दानकी विधि भी बताता हूँ, जिसे करनेपर मानव मेरे दिव्य धाममें पहुँच जाते हैं। यदि सर्वश्रेष्ठ सिद्धि पानेकी अभिलाषा हो तो मधु, दही और घृतको समान भागमें लेकर मन्त्र पढ़नेके साथ ही विधिपूर्वक मिलाना चाहिये। जो इस विधिका पालन करते हैं, वे मेरे परम प्रिय हो जाते हैं। फिर मधुपर्क हाथमें लेकर यह कहना चाहिये—‘ॐकारस्वरूप भगवन् ! यह मधुपर्क आपको समर्पित है, आप इसे स्वीकार करनेकी कृपा करें। प्रभो ! यह आपके ही श्रीविग्रहसे प्रकट हुआ है। संसारसे मुक्त होनेके लिये यह परम साधन है। भक्तिपूर्वक मैंने इसे सेवामें समर्पण किया है। देवेश ! आपको मेरा बार-बार नमस्कार है।’

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! मधुपर्ककी उत्पत्ति, उसके दानका पुण्य-फल तथा ग्रहणकी आवश्यकता सुनकर उत्तम व्रतका पालन करनेवाली पृथ्वीदेवीको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने भगवान् श्रीहरिके चरण स्पर्श कर पूछा—‘भगवन् ! आपका प्रिय पदार्थ मधुपर्क शान्तिपाठसहित आपके श्रद्धालु भक्त किस प्रकार अर्पण करें ? कृपया इस महान् कर्मकी विधि बतायें।

भगवान् वराह कहते हैं—महाभागे ! मैं सभी प्रसङ्ग बताता हूँ। इसके प्रभावसे मानव दुःखरूपी संसारसे मुक्त हो जाते हैं। तुमने पहले जिस बातकी चर्चा की है, उसे मेरी भक्तिमें रहनेवाले व्यक्ति सम्पन्न करके शान्ति-पाठ करें।

शान्तिका पाठ करनेके पश्चात् मेरी भक्तिमें लगे पुरुष मुझे जलाञ्जलि प्रदान करके पुनः इस पाठका मन्त्र

पढ़ें। मन्त्रका भाव यह है—'भगवन्! जिनके द्वारा जगत्‌की सृष्टि होती है, देवसम्बन्धी यज्ञोंमें कर्मके जो साक्षी हैं, वे प्रभु स्वयं आप ही हैं। वासुदेव! मुझे शान्ति प्रदान करनेके साथ ही संसारके आवागमन-से मुक्त कर दें।'

पृथ्वि! यह सिद्धि, कीर्ति, बलोंमें महान् बल, लाभोंमें परम लाभ और गतियोंमें परम गति है। ऐसे शान्तिपाठका विचारपूर्वक जो पठन करता है, वह मुझमें लीन हो जाता है। संसारमें पुनः उसे आना नहीं पड़ता, इस प्रकार शान्तिपाठ करके मुझे मधुपर्क निवेदन करना चाहिये। **'ॐ नमो नारायणाय'** कहकर मन्त्र पढ़नेकी विधि है। **मन्त्रका** भाव यह है—'भगवन्! आप सर्वश्रेष्ठ देवताओंके भी स्रष्टा हैं। मधुपर्क आपके नामसे सम्बन्ध रखता है। जो सभी जगह सुपूजित होते हैं, वे प्रभु आप ही हैं। आप संसार-सागरसे मेरा उद्धार करनेके लिये यहाँ पधारें और इन पात्रोंमें विराजमान हों।'

सुश्रोणि! गूलरकी लकड़ीसे बने हुए पात्रमें घी, दही और मधुको समानरूपसे रखकर मधुपर्क बनाना चाहिये। यदि शहद न मिल सके तो गुड़ भी मिलाया जा सकता है। घृतके अभावमें उसकी जगह धानके लावेसे भी काम चल सकता है। दही न मिले तो दूध ही मिला दे। इस प्रकार दही, शहद और घृत समान मात्रामें मिलाकर मधुपर्क बना ले*। फिर उसे इस प्रकार अर्पित करें—'देवेश! रुद्र भी आपके ही रूप हैं। मैं दधि, घृत, मधुसे बना हुआ यह मधुपर्क आपको अर्पित करता हूँ।' यदि सभी वस्तुओंका अभाव हो तो श्रद्धालु भक्त केवल जल ही हाथमें लेकर यह मन्त्र पढ़े—'जिन प्रभुकी नाभिसे निकले हुए कमलपर संसारकी सृष्टि अवलम्बित है तथा यज्ञों, मन्त्रों और रहस्ययुक्त जपोंसे जिनकी अर्चना होती है, वे भगवान् आप ही हैं। भगवन्! यह मधुपर्क आपसे सम्बद्ध है। इस दिव्य पदार्थको आप स्वीकार करनेकी कृपा करें।'

भगवति! इस मधुपर्कको जो मुझे अर्पित करता है, उसे यज्ञसम्बन्धित सभी फल प्राप्त हो जाते हैं और वह मेरे लोकमें चला जाता है।

पृथ्वि! अब दूसरी बात सुनो—मेरे कर्ममें लगे रहनेवाले व्यक्तिके प्राण त्यागनेके समय यह प्रयोग करना चाहिये। उसकी प्राण-यात्राके समय विधिपूर्वक मन्त्र पढ़कर इस संसारमें ही मधुपर्क देनेका विधान है। प्राण-प्रयाणके समयमें ही अनेक कर्मोंका करना आवश्यक है। मेरा भक्त मरणासन्न (मृत्युको प्राप्त हो रहे) व्यक्तिको सम्पूर्ण संसारसे मुक्त करनेवाला मधुपर्क अवश्य दे। जब देखे कि यह व्यक्ति आतुर हो गया है तो हाथमें उत्तम मधुपर्क लेकर इस भावका मन्त्र पढ़े—'देवलोकके स्वामी भगवन्! जो सारे संसारमें प्रधान हैं तथा सबके शरीरमें जिनकी सत्ता शोभा पाती है, वह भगवान् नारायण आप ही हैं। प्रभो मैंने! मधुपर्क आपकी सेवामें भक्तिपूर्वक समर्पित किया है। इसे आप स्वीकार करें। मृत्युके समय इसी मन्त्रके साथ मधुपर्क दे। पृथ्वि! मधुपर्कके इस सामर्थ्यको कोई नहीं जानता है, अतः सिद्धिके अभिलाषीको ऐसा मधुपर्क अवश्य देना चाहिये। उस समय सर्वप्रथम संसार-सागरसे मुक्त करनेवाले भगवान् श्रीहरिका अर्चन भी आवश्यक है। जो 'मधुपर्क' देता है, उसको परमगति मिलती है। यह प्रसङ्ग पवित्र, स्वच्छ, सम्पूर्ण कामनाओं-

* अन्यत्र दधि, मधु, जल, गुड़ और घी—इन पाँचके योगसे 'मधुपर्क' निर्माणका विधान है। द्रष्टव्य—मनु० ३। ३, ११९-२०, आपस्तम्बधर्मसूत्र २। ८। ५-९, 'गृह्य०' १। १०। १-२, गौतम० ५। २७-३०, बृहस्पति ११। १वें तथा याज्ञवल्क्य० १। १०९ पर आदिकी व्याख्याएँ।

को देनेवाला है। जो दीक्षित हों, गुरुमें भक्ति रखनेवाला शिष्य हो, उसके सामने इसका प्रसङ्ग सुनाना चाहिये। मधुपर्कका यह आख्यान पापोंको नष्ट करनेवाला है। जो इसे सुनता है, वह मेरी कृपासे परम दिव्य सिद्धिको प्राप्त होता है।

भद्रे! 'मधुपर्क'के परिचयका यह प्रसङ्ग मैंने तुम्हें सुना दिया। राजदरबारमें, श्मशानभूमिपर अथवा भय एवं दुःखकी परिस्थिति सामने आनेपर जो लोग इस शान्तिदायक प्रसङ्गका अध्ययन करेंगे, उन्हें कार्यमें शीघ्र सफलता मिलेगी। इसके प्रभावसे पुत्रहीनोंको पुत्र, भार्याहीनोंको भार्या, पतिहीना स्त्रीको सुन्दर पति मिलता है। मानवके बन्धन कटते हैं। भूमे! सुख देनेवाला महान् शान्तिदायक यह प्रसङ्ग तुम्हें सुना चुका। यह विषय जगत्से उद्धारक परम रहस्यपूर्ण है। जो व्यक्ति विधिसहित इसका प्रयोग करता है, वह संसारकी आसक्तियोंको त्याग कर मेरे लोकको प्राप्त होता है। (अध्याय १९१-९२)

नचिकेताद्वारा यमपुरीकी यात्रा

लोमहर्षणजी कहते हैं—एक बार व्यासजीके शिष्य वेद-वेदाङ्गके पारगामी वैशम्पायन राजा जनमेजयके दरबारमें गये। पर उस समय राजाके अश्वमेधयज्ञमें दीक्षित होनेके कारण उन्हें फाटकपर रुकना पड़ा। जब यज्ञ समाप्त होनेपर वे हस्तिनापुर लौटे तो उन्हें ज्ञात हुआ कि परम ज्ञानी वैशम्पायन ऋषि वहाँ पधारे हैं और गङ्गाके तटपर उन्होंने अपने रहनेका स्थान बना रखा है। 'ऋषि मुझसे मिलने आये थे, मेरे न मिल पानेसे एक प्रकारसे यह उनका अपमान ही हुआ।' इससे जनमेजय चिन्तासे व्याकुल हो गये। उनकी आँखें अकुला उठीं। राजा जनमेजयका जन्म कुरुवंशकी अन्तिम पीढ़ीमें हुआ था, अतः वे शीघ्र ही वैशम्पायन ऋषिके पास गये और उनका स्वागत करनेके बाद कहा—'भगवन्! मेरा चित्त चिन्तासे व्याकुल है। मैं जानना चाहता हूँ कि यमराजकी पुरी कैसी और कितनी दूरमें विस्तृत है? मैंने सुना है कि प्रेतपुरीके अध्यक्ष धर्मराज बड़े धीर हैं और सम्पूर्ण जगत्पर उनका शासन है। प्रभो! कैसे कर्म किये जायँ कि वहाँ जाना न पड़े।'

वैशम्पायनजी बोले—राजन्! इस विषयमें एक पुराना इतिहास सुनाता हूँ, सुनो। जिसे सुनते ही मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है। प्राचीन समयमें उद्दालक नामक एक वैदिक महर्षि थे। उनका नचिकेता नामका एक तेजस्वी योगाभ्यासी पुत्र था। संयोगवश उसके पिता उद्दालकने एक दिन रोषमें आकर अपने इस परम-धार्मिक पुत्रको शाप दे दिया—'दुर्मते! तुम यमराजकी पुरीमें चले जाओ।' इसपर नचिकेताने कुछ क्षण विचार कर फिर बड़ी नम्रतासे पिता उद्दालकसे कहा—'पिताजी! आप धार्मिक पुरुष हैं। आपकी बात कभी मिथ्या नहीं हुई है। अतः मैं इसी समय आपकी आज्ञासे बुद्धिमान् धर्मराजकी सुरम्य नगरीमें जाता हूँ।'

अब उद्दालक पश्चात्ताप करते हुए कहने लगे—तुम मेरे एक ही पुत्र हो। तुम्हारा दूसरा कोई भाई भी नहीं है। मैंने क्रोध किया, इससे मुझे अधर्म, निन्दा अथवा मिथ्यावादी कहलानेका दोष भले ही लग जाय, परंतु वत्स! अब तुम्हारा व्यवहार ऐसा होना चाहिये, जिससे मेरा उद्धार हो जाय। मैंने तुम-जैसे सदा धर्मका आचरण करनेवाले पुत्रको जो शाप दिया, वह ठीक नहीं किया। तुम्हें यमपुरी जाना उचित नहीं है। उस पुरीके राजा वैवस्वत देव हैं।

यदि तुम स्वेच्छासे भी वहाँ चले जाओगे तो वे महान् यशस्वी राजा रोषके कारण कभी भी तुम्हें आने नहीं देंगे। पुत्र ! तुम्हें देखना चाहिये कि अपने कुलके भविष्यका संहार करनेवाला मैं प्रायः नष्ट हो रहा हूँ। नरकका एक नाम (पुत्) है। उससे त्राण देनेके कारण लड़केको 'पुत्र' कहते हैं। अतएव लोग इस लोक तथा परलोकके लिये पुत्रकी कामना करते हैं। संतानहीन व्यक्तिका किया हुआ हवन, दिया हुआ दान, तप की हुई तपस्या तथा पितरोंका तर्पण—प्रायः यह सब-का-सब व्यर्थ हो जाता है।

'पुत्र ! मैंने सुना है कि सेवा-परायण शूद्र, खेतीसे जीविका चलानेवाला वैश्य, धनकी रक्षा करनेवाला राजसमूह, उपासना-कर्ममें निरत ब्राह्मण, महान् तप करनेवाला तपस्वी अथवा उत्तम दान करनेवाला कोई दानी व्यक्ति भी यदि संतानहीन है तो वह स्वर्ग प्राप्त नहीं कर सकता। पुत्रसे पिताको, पौत्रसे पितामहको और प्रपौत्रसे प्रपितामहको परम आनन्द प्राप्त होता है। अतएव मैं अपने वंशकी वृद्धि करनेवाले तुम-जैसे पुत्रका त्याग नहीं करूँगा। मैं इसके लिये याचना करता हूँ, तुम यमपुरी न जाओ।'

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! मुनिवर उद्दालककी बात सुनकर नचिकेताने कहा—'पिताजी ! आप विषाद न करें। मैं पुनः यहाँ लौटकर वापस आऊँगा और आप मुझे निश्चितरूपसे पुनः देख सकेंगे। सारा संसार जिनको नमस्कार करता है, उन दिव्य पुरुष धर्मराजका दर्शन करके मैं पुनः यहाँ निश्चय ही लौट आऊँगा। मुझे मृत्युसे बिल्कुल भय नहीं है। पिताजी ! सत्यमें बड़ी शक्ति है, वह सत्य स्वर्गकी सीढ़ी है। सूर्य भी सत्यके बलपर ही तपते हैं। अग्निको सत्यसे ही दाहकता-शक्ति प्राप्त हुई है। सत्यपर ही पृथ्वी टिकी है। सत्यका पालन करनेके लिये ही समुद्र अपनी मर्यादाका अतिक्रमण नहीं करता है। जगत्‌का हित करनेके लिये ही सामवेद सत्यमन्त्रोंका गान करता है। सत्यपर ही सबकी प्रतिष्ठा है। स्वर्ग और धर्म—ये सभी सत्यके रूप हैं। सत्यके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं है। पिताजी ! मैंने तो ऐसा सुना है कि सत्यसे सब कुछ मिल सकता है और यदि उसका परित्याग कर दिया गया तो कोई भी उत्तम वस्तु हाथ नहीं लग सकती।

'ब्रह्माजीने भी सृष्टिके आरम्भमें यत्नपूर्वक सत्यकी दीक्षा ली थी। सत्यका आश्रय लेकर ही और्वमुनिने अग्निको बड़वामुखमें फेंक दिया था। पिताजी ! प्राचीन समयमें सर्वशक्तिसम्पन्न संवर्तने देवताओंपर कृपा करनेके लिये सम्पूर्ण लोकोंको आश्रय दिया था। पातालमें निवास करनेवाले बलिने भी सत्यके रक्षार्थ ही बन्धन स्वीकार किया था। सैकड़ों शिखरोंसे शोभा पानेवाला महान् विन्ध्यपर्वत बढ़ता जा रहा था। सत्यका पालन करनेके लिये बढ़नेसे रुक गया। सम्पूर्ण चर और अचरसे सम्पन्न यह जगत् सत्यसे ही शोभा पाता है। गृहस्थ, वानप्रस्थी एवं योगियोंके जितने उत्तम दृश्यमान (पालनीय) धर्म हैं तथा हजार अश्वमेध यज्ञोंका जो धर्म है, उसकी यदि सत्यसे तुलना की जाय तो सत्य ही सबसे बढ़कर सिद्ध हो सकता है। सत्यसे धर्मकी रक्षा होती है और रक्षित धर्म प्राणियों-की रक्षा करता है। अतएव आप इस समय सत्यकी रक्षा कीजिये।'

सुव्रत ! इस प्रकार कहकर ऋषि-पुत्र नचिकेता यमराजकी उत्तम पुरीको चल पड़ा। तप एवं योगके प्रभावसे शीघ्र ही यमपुरी पहुँच गया। पहुँचनेपर यमराजने उसका यथोचित स्वागत-सत्कार किया और कुछ ही दिनों बाद उसे वहाँसे वापस होनेकी सम्मति दे दी और फिर वह ऋषिकुमार घर आ गया। वापस आये हुए पुत्रको देखकर उद्दालकमुनिने उसे दोनों बाँहोंमें भरकर छातीसे लगा लिया। उसका सिर सूँघा। उस समय अपार हर्षके कारण पृथ्वी और आकाशमें भी हर्षध्वनि होने लगी।

फिर उद्दालकने उससे पूछा—'वत्स ! यमपुरीमें तुम्हें कोई यातना तो नहीं पहुँचायी गयी ? उस समय यमपुरीसे लौटे नचिकेताको देखनेके लिये वहाँ ऋषि, मुनि और बहुत-से देवता भी पधारे। उन ऋषियोंमें बहुत-से नंगे थे। अनेक ऐसे थे, जिनका दाँतोंसे कूटकर अन्न खानेका स्वभाव था। बहुत-से ऋषि पत्थरसे कूटकर अन्न भक्षण करते थे। बहुतोंने मौनव्रत धारण कर रखा था। कुछ ऋषि वायु पीकर रह जाते थे। अनेक ऋषियोंका नियम अग्निसेवन था, उस व्रतके व्रती ऋषि धुआँ पीकर ही रह जाते थे। समस्त समुदाय उस ऋषिकुमारके चारों ओर खड़े हो उसे देखने लगा। कुछ ऋषि बैठे थे और कुछ खड़े थे। वे सभी शान्त, शिष्ट, अनुशासित एवं शालीन थे। उन सभी ऋषियोंने वेदान्तका साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया था। जब प्रथम बार यमलोकसे आये हुए नचिकेतापर उनकी दृष्टि पड़ी, तो उनमेंसे कुछ भयके कारण घबड़ा-से गये। तथा कुछ महान् कौतूहलसे ग्रस्त थे। साथ ही उनके हृदयोंमें हर्ष भी भरा था। कुछ ऋषियोंके मनमें बेचैनी उत्पन्न हो गयी तथा कुछ लोग संदेहास्पद बातें करनेमें संलग्न थे। फिर उन ऋषियोंने तपके महान् धनी ऋषिकुमार नचिकेतासे एक साथ ही प्रश्न पूछना आरम्भ कर दिया।

ऋषियोंने उसे बार-बार सम्बोधित करके पूछा—'वत्स ! तुम बड़े विज्ञ और गुरुके परम सेवक तथा अपने धर्मपर अडिग रहनेवाले हो। नचिकेतः ! तुम सच्ची बात बताओ कि यमपुरीकी तुमने कौन-सी विशेषताएँ देखी और सुनी है ? उपस्थित सभी ऋषियोंके मनमें इसे सुननेकी इच्छा है। तुम्हारे पिता तो इस विषयको विशेषरूपसे सुनना चाहते हैं। तात ! हमारे पूछनेपर यदि कोई गुप्त बात हो तो भी विशिष्ट मानकर उसे स्पष्ट कर ही देना चाहिये। क्योंकि उस पुरीसे सभी भयभीत रहते हैं—इस बातको प्रायः सभी जानते हैं। इस मायाराज्यमें स्थित सम्पूर्ण जगत् लोभ एवं मोहजनित अन्धकारसे व्याप्त है। चिन्तन तथा अन्वेषणकी क्रियाएँ तो होती रहती हैं; किंतु जो हितकी बात है, वह चित्तपर नहीं चढ़ती। यमपुरीमें चित्रगुप्तकी कार्य-शैली कैसी है ? पुनः उनके कथनका क्या रूप है ? मुने ! धर्मराज और कालका कैसा स्वरूप है ? वहाँ किस रूपसे व्याधियाँ दृष्टिगोचर होती हैं ? कर्मविपाकका स्वरूप भी हम जानना चाहते हैं। और यह भी जानना चहते हैं कि किस कर्मसे उससे छुटकारा हो सकता है ?

विप्रवर ! वहाँका जैसा दृश्य तुम्हें दिखायी पड़ा हो अथवा श्रवणगोचर हुआ हो तथा तुमने जिसे निश्चित रूपसे जाना हो, वह सब-का-सब विस्तारपूर्वक यथावत् वर्णन करनेकी कृपा करो।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! नचिकेता महान् मनस्वी मुनि थे। महाराज ! जब ऋषियोंने उनसे इस प्रकार पूछा और उन श्रेष्ठ मुनिपुत्रने जो उत्तर दिया—अब मैं वह बताता हूँ, सुनो। (अध्याय १९३-९४)



यमपुरीका वर्णन

नचिकेताने कहा—'सदा तपमें तत्पर रहनेवाले द्विजवरो ! आपलोगोंको मैं यमपुरीका प्रसङ्ग बताता हूँ। जो असत्य बोलते हैं, स्त्री एवं बालक आदि प्राणियोंका वध करते हैं, जो ब्राह्मणकी हत्यामें तत्पर रहनेवाले एवं विश्वास-घाती हैं, जिनमें शठता, कृतघ्नता तथा लोलुपता भरी है, तथा जो दूसरोंकी स्त्रीका अपहरण करते और सदा पापमें रत रहते हैं, वे यमपुरीको जाते हैं। जो वेदोंकी निन्दा करते, वैदिकमार्गपर आघात पहुँचाते, मदिरा

पीते, ब्राह्मणका वध करते, ब्याज उगाहते, कपट करते, माता-पिता और पतिव्रता स्त्रीका त्याग करते हैं, वे नरकमें जाते हैं। जो गुरुसे द्वेष करते, बुरे आचरणका पालन करते, कपटभरी बातें बोलते, दूतका काम करते, गृह-ग्रामकी सीमा ध्वंस करते तथा व्यर्थ ही फल-फूल तोड़ते रहते हैं, जो पतिव्रतापर दया नहीं करते तथा पापी, हिंसक, व्रत-भञ्जक, सोमविक्रयी, स्त्रीके ही अधीन रहते हैं, जिन्हें झूठ बोलनेकी आदत है तथा जो द्विज होकर वेद बेचते हैं, जो घर-घर नक्षत्रकी सूचना देते हैं, वे नरकमें जाते हैं और वहाँ अपने बुरे कर्मोंका फल भोगते हैं।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—'राजन्! जब उन परम तपस्वी मुनियोंने नचिकेताके मुखसे इस प्रकारकी बातें सुनीं, तब उनके आश्चर्यकी सीमा न रही। अतः वे उससे पुनः पूछने लगे।

ऋषियोंने कहा—'मुने! तुम बड़े ज्ञानी पुरुष हो। तुमने यमपुरीमें जो कुछ देखा है, वह सभी हमें बतानेकी कृपा करो। विद्वानोंका कहना है कि सूक्ष्म-शरीर यमयातनाके अनेक क्लेश भोगने, आगसे जलाने तथा अस्त्रोंसे काटनेपर भी नष्ट नहीं होता। विप्र! वैतरणी नदीका क्या रूप है? तथा उसमें कैसा जल बहता है? रौरव नरककी कैसी स्थिति है? अथवा कूटशाल्मलिका क्या रूप है? यमराजके दूत कैसे हैं? उनका क्या कार्य है? और उनमें कैसा पराक्रम है? वहाँके दूत किस प्रकार कार्यमें उद्यत रहते हैं? और उनका कैसा आचार है? उनके अपूर्व तेजसे आच्छन्न हो जानेके कारण प्राणी प्रायः अचेत-सा हो जाता है। प्राणीके द्वारा समय-समयपर दोष होते रहते हैं। वह रज-तमसे भरा रहता है, अतः धैर्य भी उसका साथ नहीं देता। यह किसकी माया है, जिसके प्रभावसे प्राणी परम प्रभुको भूलकर संसारके चकाचौंधमें विह्वल रहते हैं? बहुत-से व्यक्ति मूर्खताके कारण पाप करते हैं और उसके फल-स्वरूप उन्हें कष्ट भोगने पड़ते हैं। वत्स! तुमने यमपुरीमें जाकर सभी बातें स्वयं देखी हैं, अतः इसे बतानेकी कृपा करो।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—'राजन्! उन सभी ऋषियोंका अन्तःकरण अत्यन्त पवित्र था। उनकी बात सुननेके पश्चात् बोलनेमें परम कुशल नचिकेताने सभी बातोंका स्पष्टीकरण करते हुए कहा—'द्विजवरो! धर्मराजकी वह पुरी दो परिखाओंसे घिरी और सोनेसे बनी एक हजार योजनमें फैली हुई है तथा अट्टालिकाओं और दिव्य भवनोंसे सुशोभित है। उसमें कहीं तो भीषण युद्ध और कहीं संघर्ष चलता है और कहीं प्राणी विवश होकर बँधे पड़े हैं। वहाँ पुष्पोदका नामकी एक नदी है, जिसके तटपर अनेक प्रकारके वृक्ष हैं। उसकी सीढ़ियाँ सोनेकी तथा बालुकाएँ सुवर्ण-जैसे रंगवाली हैं।

'वहाँ वैवस्वती नामकी एक प्रसिद्ध बहुत बड़ी नदी है। यह नदी वहाँकी सभी नदियोंमें पवित्र तथा श्रेष्ठ मानी जाती है। वह परम रमणीय सरिता पुरीके मध्यमें इस प्रकार विचरती है, मानो माता अपने पुत्रकी रक्षामें तत्पर हो। उसका जल सबके लिये सुखदायी तथा मनको मुग्ध करनेवाला है। वह नदी सदा दिव्य जलसे भरी रहती है। कुन्द एवं चन्द्रमाके समान सफेद रंगवाले हंस आनन्दके उमंगमें उसके तटोंपर निरन्तर घूमते रहते हैं। जिनका आकार तथा रंग बड़ा आकर्षक है तथा जिनकी कर्णिकाएँ तपाये हुए सुवर्णके समान चमकती हैं, ऐसे रमणीय कमलोंसे युक्त वह नदी बड़ी ही मनोहर दिखायी पड़ती है। सुवर्णनिर्मित सीढ़ियोंके कारण उसकी सुन्दरता और भी बढ़ गयी है। उसके निर्मल जल स्वादिष्ट, सुगन्धपूर्ण तथा अमृतकी तुलना करते

हैं। उसके तटवर्ती वृक्षोंपर फूलों एवं फलोंका कभी भी अभाव नहीं होता। भूलोकमें जो मनुष्योंके द्वारा पितरोंके लिये जल दिये जाते हैं, उन्हींसे उस नदीका यह सुन्दर रूप बन गया है। उस नदीके तीरपर अनेक ऊँचे भवनोंकी पङ्क्तियाँ हैं, जिनकी आभासे उसकी रमणीयता बहुत अधिक बढ़ गयी है।

'यह पुरी अनेक प्रकारके यन्त्रों, प्रकाशके साधनों तथा अन्य आवश्यक उपकरणोंसे भी परिपूर्ण है। देवताओं, ऋषियों और धर्मपर दृष्टि रखनेवाले मनुष्योंके लिये यहाँ पृथक्-पृथक् निवास बने हैं। यहाँके गोपुर ऐसे प्रकाशमान हैं, मानो वे शरद् ऋतुके मेघ ही हों। यहाँ पुण्यात्मा मनुष्योंका इन्हीं दरवाजोंसे प्रवेश होता है। अग्नि एवं धूपके यहाँ सभी दोष शान्त हो जाते हैं, पर इस पुरीके दक्षिणका द्वार अत्यन्त भयंकर एवं लौहमय है, जो आतपादिसे सदा संतप्त रहता है। जो पापमें रत हैं, दूसरोंसे शत्रुता रखते हैं, मांस खाते हैं तथा दूषित स्वभाववाले हैं, उन महान् पापियोंके लिये 'औदुम्बर', 'अवीचिमान्' तथा 'उच्चावच'नामकी खाइयाँ बनी हैं। यमपुरीके पश्चिम फाटकके पास तो आगकी लपटें निरन्तर उठती रहती हैं। पापी जीवोंका इसी मार्गसे प्रवेश होता है।

'उस परम रमणीय पुरीमें एक ओर सर्वोत्कृष्ट सभाभवनका भी निर्माण हुआ है, जिसमें सब प्रकारके रत्नोंका उपयोग हुआ है। धार्मिक और सत्यवादी व्यक्तियोंसे उसके सभी स्थान भर गये हैं। जिन्होंने क्रोध और लोभपर विजय प्राप्त कर ली है तथा जो वीतराग एवं तपस्वी हैं—वह सभा ऐसे धर्मात्मा-महात्माओंसे भरी रहती है। इस सभामें—प्रजापति-मनु, मुनिवर व्यास, अत्रि, औद्दालकि, असीम पराक्रमी महर्षि आपस्तम्ब, बृहस्पति, शुक्राचार्य, गौतम, महातपा शङ्ख, लिखित, अङ्गिरा मुनि, भृगु, पुलस्त्य तथा पुलह-जैसे ऋषि-मुनि-महाराज भी विराजते हैं। इनके अतिरिक्त भी धर्मके प्रपाठकोंका समुदाय वहाँ विचार करता है।

'द्विजवरो! यमराजके पार्श्ववर्ती अनेक ऐसे ऋषि हैं, जो छन्दःशास्त्र, शिक्षा, सामवेदका पाठ करते रहते हैं तथा धातुवाद, वेदवाद और निरुक्तवाद करनेवालोंकी भी कमी नहीं है। विप्रो! धर्मराजके भवनपर उत्तम कथाओंका प्रवचन करनेवाले बहुत-से ऋषियों और पितरोंको भी मैंने देखा है।

'ऋषियो! वहाँ एक कल्याणमयी देवीका भी मुझे दर्शन हुआ है जो मानो सभी तेजोंकी एकत्र राशि-सी है। स्वयं यमराज दिव्य गन्धों और अनुलेपनोंसे उसकी पूजा करते हैं। समस्त संसारका उद्भव-पालन-संहार उसीके हाथोंमें है। विश्वकी गतियोंमें उसे ही सर्वोत्तम गति कहते हैं। विज्ञ पुरुषोंका कथन है कि किसी भी कर्तव्य साधनमें इतनी शक्ति नहीं है, जो उसका सामना कर सके। जिससे समस्त प्राणी त्रस्त हो जाते हैं, वह काल भी वहाँ मूर्त-रूपमें विराजमान है। यह काल प्रकृतिका सहयोग पाकर अत्यन्त भयंकर, क्रोधी तथा दुर्विनीत बन जाता है। उसमें अथाह बल एवं तेज है। वह न कभी बूढ़ा होता है और न उसकी सत्ता ही समाप्त होती है। उसका कोई तिरस्कार नहीं कर सकता। मैंने देखा है कि दिव्य चन्दन तथा अनुलेपन उसकी भी शोभा बढ़ा रहे थे। उसके सहवासियोंमें कुछ व्यक्ति ऐसे थे, जो गीत गाते, हँसते और सम्पूर्ण प्राणियोंको उत्साहित करनेमें उद्यत थे। उन्हें कालका रहस्य ज्ञात था और उसकी सम्मतिके वे समर्थक थे।

'धर्मराजकी पुरीमें कूष्माण्ड, यातुधान तथा मांस-भक्षी राक्षसोंके भी अनेक समूह हैं। किसीके एक पैर, किसीके दो पैर, किसीके तीन पैर तथा किसीके अनेक पैर हैं। वहाँ एक बाहु, दो बाहु, तीन बाहु एवं छोटे-बड़े कान, हाथ-पैरवाले भी हैं। हाथी, घोड़े, बैल, शरभ, हंस, मोर, सारस और चक्रवाक-प्रभृति पशु-पक्षियों—इन सभीसे यमराजकी पुरी परम शोभा पा रही है।

(अध्याय १९५—९७)

यम-यातनाका स्वरूप

नचिकेताने कहा—'द्विजवरो ! जब मैं यमपुरीमें पहुँचा तो उस प्रेतपुरीके अध्यक्ष यमराजने मुझे एक मुनि मानकर आसन, पाद्य एवं अर्घ्य अर्पणपूर्वक मेरा सम्मान किया और कहा—'मुने ! यह सुवर्णमय आसन है, आप इसपर विराजिये ।' वे मुझे देखते ही परम सौम्य बन गये थे ।

फिर मैंने उनकी स्तुति करते हुए कहा—'महाभाग ! आप ही श्राद्धमें धाता और विधाताके रूपसे दिखायी देते हैं । पितृसमूहमें आप प्रधान देवता हैं । वृषभस्वरूप होनेसे आपको चतुष्पाद कहा जाता है । आप कालज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी एवं दृढव्रती हैं । प्रेतोंपर शासन करनेवाले धर्मराज ! आपको निरन्तर नमस्कार है । प्रभो ! आप कर्मके प्रेरक, भूत, भविष्य एवं वर्तमानमें विराजमान हैं । श्रीमन् ! आपसे ऐसा प्रकाश फैल रहा है, मानो दूसरे सूर्य ही हों । आपको नमस्कार है । प्रभविष्णो ! हव्य और कव्य पानेके अधिकारी आप ही हैं । आपकी आज्ञासे व्यक्ति कठोर तपस्या, सिद्धि एवं व्रतमें सदा तत्पर होकर पापोंसे छुटकारा पा जाता है । आप धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ, कृतज्ञ, सत्यवादी तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके हितैषी हैं ।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! ऋषिपुत्र नचिकेताके मुखसे ऐसी स्तुति सुनकर धर्मराज अत्यन्त संतुष्ट हो गये और ऋषिकुमारसे उन्होंने अपना अभिप्राय स्पष्ट करना आरम्भ किया ।

यमराजने कहा—अनघ ! तुम्हारी वाणी यथार्थ एवं परम मधुर है । मैं इससे अतिशय संतुष्ट हूँ । अब तुम्हें दीर्घायुष्य, नीरोगता अथवा—अन्य जो कुछ भी अभीष्ट हो, वह मुझसे माँग लो ।

ऋषिकुमार नचिकेताने कहा—'प्रभो ! आप यहाँके अधिष्ठाता हैं । महाभाग ! मैं जीना-मरना—कुछ नहीं चाहता । आप सदा सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें संलग्न रहते हैं । भगवन् ! यदि आप मुझे वर देना ही चाहते हैं तो मेरी इच्छा है कि आपके देशको मैं भलीभाँति देख सकूँ । पापात्माओं और पुण्यात्माओंकी जो गति है—प्रायः वह सभी यहाँ दृष्टिगोचर हो रही है । राजन् ! आप यदि मेरे लिये वरदाता बनना चाहते हैं, तो मुझे ये सभी दिखानेकी कृपा करें । आपके कार्यकी व्यवस्था करनेमें कुशल एवं शुभचिन्तक जो चित्रगुप्त हैं, उन्हें भी दिखाना आपकी कृपापर निर्भर है ।'

इस प्रकार मेरे कहनेपर महान् तेजस्वी यमराजने द्वारपालको आज्ञा दी—'तुम इस ब्राह्मणको समुचित रूपसे चित्रगुप्तके पास ले जाओ । उन महाबाहुसे कहना कि इस ऋषिकुमारसे वे मृदुताका व्यवहार करें । समयोचित अन्य सभी बातें भी उनसे बता देना ।'

द्विजवरो ! जब यमराजने दूतको आज्ञा दी, तो उसने तुरंत मुझे चित्रगुप्तके पास पहुँचाया । मुझे देखकर चित्रगुप्त अपने आसनसे उठ गये । वस्तुस्थितिका विचार करके उन्होंने कहा—'मुनिवर ! आपका स्वागत है । आप इच्छानुसार यहाँ पधारिये ।' और फिर उन्होंने अपने दूतोंसे कहा—'दूतो ! तुम लोग सदा मेरे मनके अनुसार आचरण करते हो । तुम इन्हें यमपुरी इस प्रकार दिखलाओ कि कोई जान भी न सके । इन्हें सर्दी, गर्मी, भूख अथवा प्याससे भी क्लेश न हो ।'

ऋषिकुमार नचिकेता कहते हैं—द्विजवरो ! चित्रगुप्तकी आज्ञासे दूतोंके साथ जब मैं वहाँ पहुँचा तो देखा कि अनेक दूत बड़ी उतावलीके साथ इधर-उधर दौड़ रहे थे । वे किसीको पकड़ते तथा किन्हींपर प्रहार करते, पापियोंको बाँधते, आगमें जलाते तथा डंडोंसे बार-बार पीटते थे । कितनोंके सिर फूट गये थे और कई भयंकर चीत्कार कर रहे थे, पर वहाँ

उनका कोई रक्षक न था । ऐसे ही बहुत-से प्राणी अन्धकारपूर्ण अगाध नरकमें पच रहे थे । कुछ प्राणी नरकोंमें पकाये जाते थे, जिनसे अग्निके लिये ईंधनका काम लिया जा रहा था । जो अधिक पापकर्मी थे, वे प्राणी खौलते हुए घृत, तेल एवं क्षार वस्तुवाले नरकमें गिरे थे । उनकी देह खौलते हुए घृत, तेल एवं क्षार पदार्थोंसे जलायी जा रही थी । भयंकर ज्वालाओंसे उनकी देह जल रही थी । अपने कर्मोंके अनुसार यत्र-तत्र विवश होकर वे रो रहे थे । कितने प्राणी तो तिलकी भाँति कोल्हूमें डालकर पेरे जा रहे थे । उन पापात्मा प्राणियोंके रुधिर, मेदादिसे एक दुस्तर वैतरणी नदी प्रकट हो गयी थी । उस भयंकर नदीमें फेनमिश्रित रुधिर भँवरें उठने लगीं । हजारों दूत ऐसे दृष्टिगोचर हुए, जो पापियोंको शूलकी नोकपर चढ़ाते और स्वयं वृक्षोंपर चढ़कर उन जीवोंको अत्यन्त भयंकर वैतरणी नदीमें फेंक देते थे । वह नदी अत्यन्त उष्ण रुधिरों तथा फेनोंसे भरी थी । उसमें अनेक सर्प थे, जो वहाँ पड़े हुए प्राणियोंको डँसा करते थे । उस नदीसे बाहर होना किसीके वशकी बात न थी । वे उस रुधिरमय जलमें डूबते और उतराते थे । उनके मुखसे वमन हो रहा था । उन्हें उनका कोई रक्षक नहीं मिलता ।

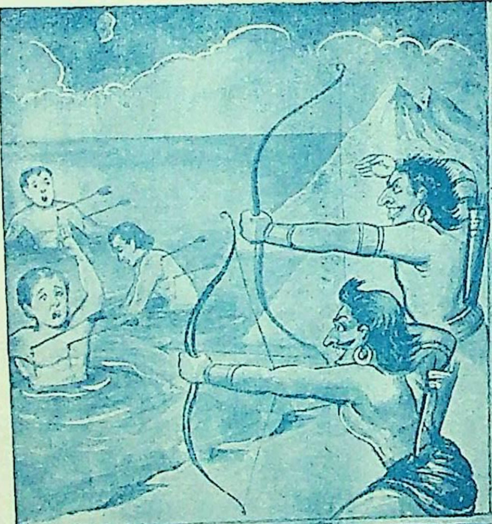
वहाँ बहुत-से ऐसे प्राणी भी थे, जिन्हें दूतोंने 'कूट-शाल्मलि' नामके वृक्षपर लटका दिया था । उस वृक्षमें लोहेके असंख्य काँटे थे । दूतोंद्वारा तलवारों और शक्तियोंसे बार-बार उनपर प्रहार हो रहा था । उस वृक्षकी शाखाएँ रोमाञ्चकारी थीं । उनपर लटके हुए हजारों पापी जीवोंको मैंने देखा है । कूष्माण्ड और यातुधान—ये यमराजके अनुचर हैं । इनकी आकृति बड़ी लम्बी है । इन्हें देखते ही प्राणी डर जाते हैं । तीखे काँटोंसे भरे हुए शाल्मलिवृक्षकी शाखाओंपर ये बड़ी शीघ्रतासे चढ़ते और निःशङ्क होकर पापी प्राणियोंके सुन्दर अङ्गोंपर प्रहार करने लगते थे । वे कूष्माण्ड प्रभृति प्राणियोंको मारकर उनके मांस खानेमें तत्पर हो जाते । कारण, उनकी जाति भयंकर राक्षसकी है । पापियोंके मांस वे इस प्रकार खाने लगते थे, मानो बंदर वृक्षोंपर फल खा रहे हों । जैसे मनुष्य वनमें आम्रके पके फल खाता है, ठीक वैसे ही लंबे मुखवाले एवं दुर्धर्ष वे कूष्माण्ड आदि राक्षस मुखमें लेकर उन प्राणियोंको अपने उदरमें पहुँचा देते थे । वे वृक्षपर ही उन पापी प्राणियोंको चूस लेते और जब केवल हड्डियाँ बच जाती थीं, तब उन जीवोंको जमीनपर फेंक देते थे । पृथ्वीपर पड़नेके पश्चात् वनवासी जानवर झट वहाँ आते और जो बचा-खुचा मज्जा-मांस रहता, उसे पुनः वे चूसने लगते थे । फिर भी अवशिष्ट कर्मोंका क्रम यथाशीघ्र चलता रहता था । वहाँ कभी पत्थरों और धूलोंकी वर्षा होती है, जिससे घबड़ाकर कितने पापात्मा प्राणी वृक्षके नीचे जाते हैं, पर वहाँ भी उनके शरीरमें आग लग जाती है । कोई जीव जोरसे भागनेका प्रयास करते हैं, किंतु दूत उन्हें सावधानीके साथ पकड़कर बाँध लेते हैं । भयंकर स्थानोंमें वे आगके द्वारा पचाये जाते हैं । वे दुःखी प्राणियोंसे कहते हैं—तुम सभी कृतघ्न, लोभी थे और परायी स्त्रियोंसे प्रेम करते थे । तुम्हारे मनमें सदा पाप बसा रहता था । तुमने कोई भी सुकृत नहीं किये । तुम सदा दूसरोंकी निन्दा किया करते थे । इस यातना-भोगके बाद भी जब तुम्हारा जगत्‌में जन्म होगा तो वहाँ भी दुर्गति ही होगी, क्योंकि पाप-कर्म करनेवाले प्राणी पुनः अत्यन्त दरिद्रकुलोंमें जन्म पाते हैं । जो सदाचारी हैं तथा सत्य भाषण करते, प्राणियोंपर दया रखते हैं, वे ही उत्तम कुलमें जन्म पाते हैं । उनके मनमें किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं रहती । वे इन्द्रियोंको वशमें रखकर श्रेष्ठ साधना करते हुए अन्तमें परमगतिको प्राप्त हो जाते हैं ।

नरकोंके दृश्य और उनके नाम

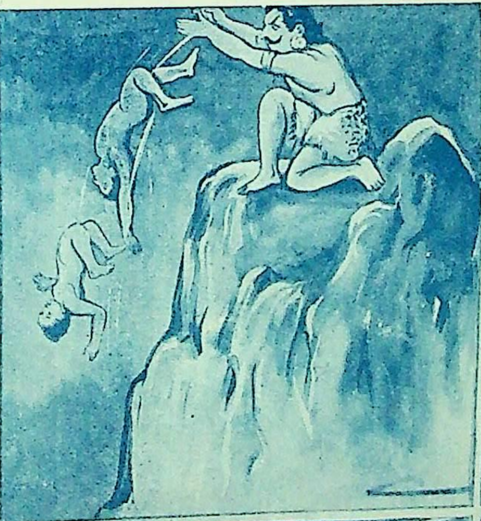


नरकोंके दृश्य और उनके नाम

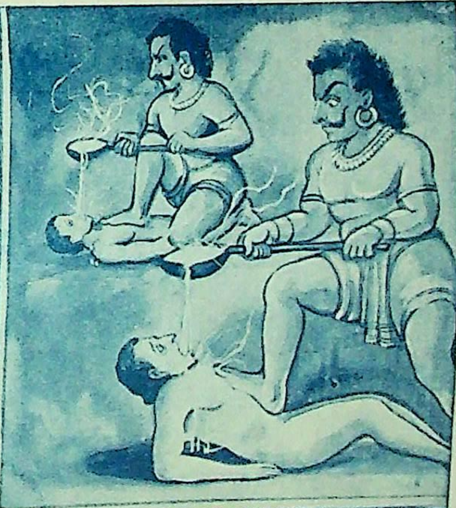
प्राणरोध



अवीचिमान

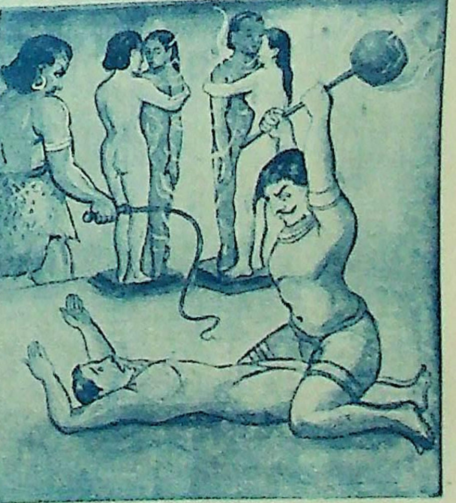


अयःपान









सूर्मि

नचिकेताने कहा—द्विजवरो ! यमपुरीमें एक ऐसा भी स्थान है, जहाँ लोहेके काँटे बिछे हैं और सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार फैला रहता है। उसकी स्थिति बड़ी विषम है। वहाँ कुछ पापाचारी प्राणी पड़े हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे हैं, जिनके पैर कट गये हैं। अधिकतर बिना हाथ और सिरके हैं। उसी यमपुरीमें लोहेकी बनी हुई एक स्त्री है, जिसका शरीर अग्निके समान जलता है। उसकी आकृति बड़ी भयंकर है। जब वह किसी पापी पुरुषके अङ्गसे अपना अङ्ग सटाती है तो जलनेके कारण वह भागने लगता है। तब वह भी उसके पीछे दौड़ती और कहती है—'अरे पापी ! मैं तेरी बहन थी। ऐसे ही अन्य स्त्रियाँ भी हैं, जो कहती हैं—मैं तेरी पुत्रवधू थी। अरे मूर्ख ! मैं तेरी मौसी थी, मामी थी, फुआ थी, गुरुपत्नी थी, मित्रकी भार्या थी, भाई तथा राजाकी स्त्री थी। श्रोत्रिय ब्राह्मणोंकी पत्नी होनेका मुझे सौभाग्य मिला था। उस समय तूने हमसे बलात्कार किया था। अब तू इस क्लेशसे बच नहीं सकता। अरे निर्लज्ज ! अब विपत्तियोंसे घबड़ाकर भागता क्यों है ? दुष्ट ! मैं तुझे अवश्य मार डालूँगी। तूने जैसा काम किया है, उसका अब फल भोग।'

द्विजवरो ! फिर बाघ, सिंह, सियार, गदहा, राक्षस, हिंसक जन्तु, कुत्ते और कौवे उन पापियोंको अपना ग्रास बनानेमें तत्पर हो जाते हैं और यमराजके दूत उन्हें 'असिपत्र-वन' और 'तालवन'संज्ञक नरकोंमें फेंक देते हैं। वहाँ धुआँ और ज्वालाओंसे परिपूर्ण दावानलकी भाँति धायँ-धायँ अग्नि जलती रहती है। जब पापात्मा प्राणियोंको अग्निकी ज्वालाएँ असह्य हो जाती हैं, तब वे वृक्षोंके नीचे विश्राम करनेके लिये चले जाते हैं। वहाँ तलवारके समान पत्रोंसे उनका शरीर छिद उठता है। फिर तो छिन्न-भिन्न होने, जलाये जाने तथा बुरी तरह मार खानेके कारण वे कराहते रहते हैं। पीड़ासे मर्माहत होकर वे चिल्लाने लगते हैं। असिपत्र और तालवन नामवाले नरकोंके फाटकपर महारथी वीर पहरा करते हैं। उनके रूपकी भयंकरता अवर्णनीय है।

विप्रो ! मैंने यमपुरीमें यह भी देखा कि वहाँ अनेक पक्षी अग्निकी ज्वालाके समान जलानेकी शक्ति रखते हैं। उनके शब्द अत्यन्त तीक्ष्ण एवं कर्कश होते हैं। उनका स्पर्श होते ही प्राणी जलने लगते हैं। उनके चोंच ऐसे हैं, मानो लोहेके बने हों, कहीं अत्यन्त भयंकर बाघोंका झुंड है। कहीं मांसभक्षी क्रूर कुत्तोंकी टोली है तथा अनेक हिंसक जानवर क्रोधमें भरकर पापी प्राणियोंको खा रहे हैं। एक जगह 'असितालवन' भालुओं और हाथियोंसे खचाखच भरा है। यमपुर में मेघ हड्डियों, पाषाणों, रुधिरों और अश्मखण्डोंकी भी वर्षा करते हैं। उस समय पापी प्राणी उनसे आहत होकर उछलते-दौड़ते हैं और भागते हैं। अत्यन्त आहत हो जानेके कारण उनके मुँहसे दारुण शब्द निकलते रहते हैं। प्रत्येक प्राणी कहता है—हा ! अब मैं मारा गया। उनके करुण क्रन्दनसे सभी दिशाएँ व्याप्त हो जाती हैं। कहीं कोई रोता है, कहीं कोई बुरी तरहसे छिदा है, कहीं कोई मोटे पत्थरोंसे दबा है तथा कहीं कोई उठनेका प्रयास करता है। सर्वत्र हाहाकारपूर्ण अत्यन्त करुण पुकार सुनायी पड़ता है।

ऋषिकुमार नचिकेता कहते हैं—द्विजवरो ! तप्त, महातप्त, रौरव, महारौरव, सप्तताल, कालसूत्र, अन्धकार, करीषगर्त, कुम्भीपाक तथा अन्धकाररव—ये दस प्रसिद्ध भयंकर नरक हैं, जिनमें उत्तरोत्तर दुगुना, तिगुना और दसगुना क्लेश है; यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। प्रेत यहाँसे दिन-रात मार्गपर चलते रहनेपर यमपुरी पहुँचते हैं। दुखियोंका दुःख क्रमशः बढ़ता ही जाता है। मार्गमें तथा वहाँ केवल दुःख-ही-दुःख रहता है, सुख सामने आता ही

नहीं है। दुःख-ही-दुःख आ घेरता है। कोई उपाय नहीं जिससे थोड़ा भी सुख मिले। परिवारसे सम्बन्ध छूट जाता है। पाँचों भूत अलग हो जाते हैं। उसकी मृतक या प्रेत संज्ञा हो जाती है। इस दुःखका कहीं-अन्त मिल जाय—यह असम्भव-सी बात है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये सुखके साधन हैं। किंतु इनके रहनेपर भी वहाँ उस जीवको कुछ भी सुख नहीं मिल सकता। दुःखकी अन्तिम सीमापर पहुँचे हुए व्यक्तिको शरीर एवं मनःसम्बन्धी अनेक क्लेश-कष्ट देते रहते हैं। कहीं लोहेके बने हुए तीखे काँटों तथा अत्यन्त तपती हुई बालुकाओंसे भरी पृथ्वीपर उसे पैर रखना पड़ता है। धधकती आगकी भाँति जीभवाले अनेक पक्षी आकाशमें भरे रहते हैं। अतः उसे वहाँ भी कष्टका सामना करना पड़ता है। भूख और प्यासकी मात्रा चरम सीमापर पहुँच जाती है। ऐसी स्थितिमें यदि कहीं पानी मिलता है तो वह भी अत्यन्त गरम। कहीं ठंडा मिला तो उसकी शीतलता भी मात्रासे अति अधिक। जब पापात्मा प्राणी पानी पीनेकी इच्छा करता है तो राक्षस उसे तालाबपर ले जाते हैं। हंस एवं सारससे भरे हुए उस तालाबकी कमल और कुमुद शोभा बढ़ाते रहते हैं। प्राणीको जल पीनेकी उत्कट इच्छा रहती है। अतः दौड़कर वहाँ चले जाते हैं, पर वहाँका जल अत्यन्त संतप्त रहता है। उसमें जाते ही उनके मांस पक जाते हैं और राक्षसोंकी उदरपूर्तिका वह साधन बन जाता है। फिर जब पापी व्यक्ति क्षार जलवाले महान् ह्रदमें गिराया जाता है, तब उसमें रहनेवाले अनेक मगर-मच्छ उसे खाने लगते हैं। कुछ समय यों व्यतीत होनेके बाद प्राणी किसी प्रकार वहाँसे भाग जाते हैं। इसी प्रकार 'शृङ्गाटकवन'नामक नरकमें नारकी सियारोंका जत्था घूमता रहता है। अत्यन्त जलती हुई बालुओंसे वहाँकी भूमि भरी है। अतः पापकर्मके परिणामस्वरूप वे प्राणी उन नरकोंमें जलते, छिदते, कटते, मरते, गिरते तथा पिटते रहते हैं। इतना ही नहीं, वहाँ सर्पों एवं बिच्छुओंके समान दुःख-दायी बहुत-से कुत्ते भी उन्हें काँटते रहते हैं। उन दुर्धर्ष कुत्तोंकी आकृति काले और साँवले रंगकी है, जो सदा क्रोधके आवेशमें रहते हैं। यहीं 'कूटशाल्मलि' नामक एक दूसरा नरक भी है, जो काटोंसे परिपूर्ण है। यमराजके दूत उसमें नारकी जीवको घसीटते रहते हैं। जब केवल उसकी हड्डी शेष रह जाती है, तब उसे अन्यत्र भेजते हैं। वहाँ करम्भवालुका नामकी एक नदी है, जिसकी चौड़ाई सौ योजन है। वैतरणी नदीका विस्तार पचास योजन है और वह पाँच योजन गहरी है। इसमें त्वचा, मांस और हड्डीको छिन्न-भिन्न करनेवाले बहुत-से हिंसक केकड़े निवास करते हैं, जिनकी दन्तावली वज्रकी तुलना करती है। वहाँ धनुषके समान आकारवाले उल्लुओंका समाज विचरता रहता है। उनकी वज्राकार जिह्वाएँ हड्डियोंको खण्ड-खण्ड कर देती हैं। वे बड़े विषैले, महान् क्रोधी, अत्यन्त भयंकर तथा सबके लिये अति असह्य हैं। बड़ी कठिनाईके साथ उस नदीको पार करनेके पश्चात् एक योजन कीचड़का मार्ग तय करना पड़ता है। तब कुछ प्राणी समतल जमीनपर पहुँचते हैं, पर वहाँ भी उन्हें ठहरनेका न कोई मकान मिलता है और न कोई आश्रम।

वैतरणीसे दूर कुछ दक्षिण दिशामें तीन योजन ऊँचा एक वटका वृक्ष है। उससे संध्या-कालीन बादलकी तरह सदा ही प्रकाश फैलता रहता है। उसके आगे यमचुल्ली नामकी नदी है, जिसकी गहराई तीन योजन है।

उसके आगे सौ योजनकी दूरीमें फैला हुआ 'शूलत्रह' नामक नरक है, जिसका आकार पर्वतका है। वहाँ पौधोंके लिये कोई स्थान नहीं है। वहाँ सर्वत्र केवल पत्थर-ही-पत्थर हैं। यहीं 'शृङ्गाटकवन'में तरह-तरहकी बासें हैं।

काटनेवाली नीले रंगकी मक्खियाँ उस विशाल वनके प्रत्येक भागमें विचरती रहती हैं। उस समय पापी प्राणीका आकार कीड़े-जैसा रहता है। हिंसक मक्खियाँ उसपर आक्रमण करके काटने लगती हैं। यहाँ वह देखता है कि उसके माता, पिता, पुत्र तथा स्त्री आदि सभी जन चारों ओर बन्धनमें पड़े हैं और उनकी आँखोंसे आँसूकी धारा गिर रही है। अचेत पड़े हैं। होश आनेपर कहते हैं—'पुत्र! रक्षा करो, रक्षा करो।' फिर रोने लगते हैं। ऐसी स्थितिमें यमराजके दूत लाठियों, मुद्गरों, डंडों, घुटनों, वेणुओं, मुक्कों, कोड़ों और सर्पाकार रस्सियोंके द्वारा उसे पीटते हैं, जिससे वह प्राणी सर्वथा मूर्च्छित-सा हो जाता है। (अध्याय १९८—२००)

राक्षस-यमदूत-संघर्ष तथा नरकके क्लेश

ऋषिपुत्र नचिकेता कहते हैं—विप्रो! एक बार जब सभी दूत थककर कामसे ऊबकर बैठ गये और हाथ जोड़कर चित्रगुप्तसे कहा कि हमारी सारी शक्ति समाप्त हो चुकी है, आप किन्हीं अन्य दूतोंको इस कार्यके लिये नियुक्त करें तो चित्रगुप्तकी भौंहें चढ़ गयीं और उन्होंने 'मन्देह' राक्षसोंको प्रकट किया। वे सभी राक्षस अनेक प्रकारके रूप धारण किये हुए थे। उन राक्षसोंने उनसे कहा—'प्रभो! हमें यथाशीघ्र आज्ञा देनेकी कृपा करें।'

चित्रगुप्त बोले—'तुम इन प्रतिकूल दूतोंको पकड़ो और तुरन्त बन्धनमें डाल दो।'

राक्षस बोले—'जो थके हों, जिन्हें भूख सता रही हो, जो दुःखी अथवा तपस्वी हों, ऐसे दयनीय व्यक्तियोंको सेवक अथवा आत्मीयजन समझकर उनपर कृपा करनी चाहिये। आप महात्मा पुरुष हैं, अतः आप ऐसी आज्ञा न दें।' पर चित्रगुप्त न माने। अन्तमें दूतों एवं राक्षसोंमें भयंकर संग्राम होने लगा। दूत घोर पराक्रमी वीर थे। राक्षसोंकी सेना तितर-बितर हो गयी। एक ओर शोर मच गया—'मुझे जीवन दान करो, प्राण-दान करो।' तो दूसरी ओर 'ठहरो, पकड़ो, और काट डालो'की आवाज उठने लगी। जिनके अङ्ग छिन्न-भिन्न हो चुके थे, वे पिशाच युद्धभूमिसे विमुख होकर भागने लगे। ऐसी स्थितिमें दूत सैनिक क्रोधसे आँखें लाल करके उन्हें ऊँचे स्वरसे पुकारने लगे—'ठहरो, कहाँ भागे जा रहे हो। धैर्य रखो! अब हम तुमपर आक्रमण करना नहीं चाहते हैं।

इसी समय सहसा धर्मराज वहाँ पधार गये और उनकी आज्ञासे वह युद्ध समाप्त हो गया। फिर उन्होंने दूतोंकी चित्रगुप्तके साथ संधि भी करा दी।

धर्मराजका वहाँ यह आदेश था कि 'जो झूठी गवाही देता है और चुगलखोरी करता है, उस मानवके दोनों कानोंमें जलती हुई कीलें ठोंक दो। झूठ बोलनेवालेको भी यही दण्ड देना चाहिये। जो गाँवोंमें भ्रमण करके यज्ञ कराता है, किसी एक सिद्धान्तपर नहीं रहता, दम्भ करता है तथा जिसके मनमें मूर्खता भरी है, ऐसे ब्राह्मणको रस्सी-से बाँधकर किसी भयंकर नरकमें डाल दो। जिसकी जीभसे सदा बुरी वाणी निकलती है, उस पापीकी जीभ तुरंत काट डालो। जिसने सुवर्णकी चोरी की है, जो दूसरेके किये हुए उपकारको भूल गया है, जिसने पिताकी हत्या कर डाली है, वह क्रूर एवं पापी मानव है। उसे ब्रह्मघातियोंकी श्रेणीमें बैठाओ। बहुत शीघ्र उसकी हड्डियोंको काटकर धधकती हुई आगमें जला दो।

ऋषियो! चित्रगुप्तके अनुसार असत्यके चार भेद हैं—निन्दा, कटुवचन, हिंसाप्रद एवं सर्वथा असत्य। ऐसे असत्यभाषी निष्ठुर, शठ, निर्दयी, निर्लज्ज, मूर्ख तथा मर्मभेदी वाणी बोलनेवाले जो दूसरे व्यक्तियोंके

प्रशंसनीय उत्तम गुणोंको सहनेमें असमर्थ हैं, कुत्सित एवं कठोर बातें कहते हैं तथा मनमें मूर्खता भरी रहती है, वे अधम मनुष्य बन्धन एवं नरकमें पड़ते हैं। इसके बाद पशु-योनि तथा कीड़े एवं पक्षी आदिकी अनेक योनियोंमें जन्म पानेके वे अधिकारी हैं।

इनके अतिरिक्त जगत्‌में जो दोषपूर्ण कार्य करते हैं तथा सभी प्राणियोंसे द्वेष करना जिनका स्वभाव बन गया है, वे पापकर्मा प्राणी बहुत दिनोंतक भयंकर नरकमें पड़े रहते हैं। जब नरककी अवधि पूरी हो जाती है तो वे फिर मनुष्यकी योनि प्राप्त करते हैं। उसमें भी किन्हींका शरीर क्षीण, कोई विकृत पेट आदिसे युक्त होते हैं। किन्हींके सिर और अङ्गोंमें व्रण, कोई अङ्ग-हीन अथवा वातके रोगी होते हैं, किन्हींकी आँखोंसे सदा आँसू गिरता रहता है तथा किन्हींको स्त्रीका अभाव, अथवा पत्नी होनेपर भी संतानका अभाव रहता है, या अपने समान सुन्दर लक्षणवाली संतान न मिलकर नटखट, कुरूप, विकारवान् पुत्रादि मिलते हैं तथा वे आँखोंसे भी हीन होते हैं।

यमराज कहते हैं—'दूतो! जो चोरी करनेमें तत्पर रहते हैं, वे पशुओं अथवा मनुष्योंके शरीर प्राप्त करें और सदा व्यग्र रहें। जो धर्म-शीलादिसे सम्पन्न एवं शुभ लक्षणवाले व्यक्तिकी अवहेलना करते हैं, उन्हें हजारों वर्षोंतक नरकयातनामें डाल दो।' फिर नरक-यन्त्रणाके बाद भी ये व्यक्ति निर्लज्ज, चितकबरे अङ्गवाले, दुर्बलगात्र, स्त्रीके अधीन, स्त्रीके समान वेषवाले, स्त्रीमें सदा आसक्त, स्त्रियोंकी प्रभुतासे बड़े बननेवाले, स्त्रीके लिये ही प्राप्त पदार्थपर अवलम्बित, केवल स्त्रीको देवता माननेमें उद्यत, स्त्रीके नियम एवं वेषके अनुसार स्वयं बन जानेवाले अथवा उन्हींकी भावना लेकर संसारमें उत्पन्न होते—जन्म पाते हैं। (अध्याय २०१—३)

कर्मविपाक-निरूपण

ऋषिपुत्र नचिकेता कहते हैं—विप्रो! अब मैं धर्मराज और चित्रगुप्त-संवादका एक दूसरा प्रसङ्ग कहता हूँ, आप उसे सुनें। चित्रगुप्त धर्मराजसे कह रहे थे—'यह मनुष्य स्वर्गमें जाय, यह प्राणी वृक्षकी योनिमें जन्म ले, यह पशुकी योनिमें जाय और इस प्राणीको मुक्त कर दिया जाय। इस व्यक्तिको उत्तम गति प्राप्त होनी चाहिये। इसे अपने पिता-पितामहप्रभृति पूर्वजोंसे मिलना चाहिये। फिर वे दूसरे दूतोंसे कहने लगे—'महान् पराक्रमी वीरो! यह व्यक्ति सदा धर्मसे विमुख रहा है। इसने साध्वी स्त्रीका परित्याग किया है। इसके पास पुत्र-पौत्र भी नहीं हैं, अतः इसे रौरव नरकमें फेंक दो।'

'ये सभी बड़े धर्मात्मा व्यक्ति हैं। ऐसे मानव न हुए हैं और न होंगे ही। इनमें पापका लेशमात्र भी नहीं है। अतः बहुत शीघ्र इन्हें यहाँसे जानेके लिये कह दो। इन व्यक्तियोंने जीवनभर किसीकी निन्दा नहीं की है। सम्पत्ति अथवा विपत्ति—किसी भी स्थितिमें इन्होंने सम्पूर्ण धर्मोंका पालन किया है, अतः ये स्वर्गमें जाकर अनेक कल्पोंतक वहाँ निवास करें। यह व्यक्ति पूर्वकालमें परम धार्मिक पुरुष रहा है, पर यह स्त्रीमें अधिक आसक्त रहा, अतः कलियुगमें मनुष्यकी योनि प्राप्त करे। इसके बाद स्वर्गमें वास करनेकी सुविधा मिलेगी। यह व्यक्ति युद्धभूमिमें शत्रुको मारकर पीछे स्वयं मरा है। ब्राह्मण, गौ अथवा राष्ट्रके लिये लड़ाई छिड़ी थी। उसमें इसने प्राण-विसर्जन किये हैं। अतः तुम्हें विनयके साथ इससे निवेदन करना चाहिये कि यह व्यक्ति विमानपर चढ़कर इन्द्रकी अमरावती पुरीमें जाय और वहाँ एक कल्पतक निवास करे। उसीके समान यह भी एक धर्मात्मा पुरुष है। इस परम भाग्यशाली प्राणीने निरन्तर धर्मका पालन

किया है। इसके सभी क्षण दान करनेमें ही व्यतीत हुए हैं। यह समस्त प्राणियोंपर दया करता था। इसका गन्धों और मालाओंसे यथाशीघ्र सम्मान करो। इस महात्मा व्यक्तिके लिये तुमलोगोंसे मेरा यह आदेश है कि इसके ऊपर चँवर झले जायँ और इसकी भली प्रकारसे पूजा होनी चाहिये।'

(किसी अन्य धर्मात्माको लक्ष्य कर) 'यह भी एक यशस्वी पुरुष है। इससे सभी प्राणी सुख पाते रहे हैं। इसका कल्याण होना चाहिये। इसे सैकड़ों गुणोंसे शोभा पानेवाले इन्द्रकी अमरावतीमें भेजा जाय। यह धर्मात्मा प्राणी स्वर्गमें तबतक रहेगा, जबतक वहाँ इन्द्र रहेंगे। जितने समयतक इसका धर्म साथ देता रहेगा, उतने कालतक स्वर्गमें आनन्द भोगनेका इसे सुअवसर मिले। वहाँसे समयानुसार इसे उतरना पड़े तो मनुष्यकी योनिमें जन्म पाकर सुख भोगे। इसने रत्नोंकी बाँसुरी बनवाकर दान किये हैं तथा सम्पूर्ण धर्मोंका विधिपूर्वक पालन किया है। इसको अश्विनीकुमारके लोकमें ले जाओ। क्योंकि उस लोकमें सब प्रकारकी सुख-सामग्री सुलभ रहती है।'

(किसी अन्यके प्रति दृष्टि डालकर) 'यह महान् भाग्यशाली पुरुष है। यह देवाधिदेव सनातन श्रीहरिके पास पधारे। इसकी त्यागवृत्ति असीम थी। यह सुखसे दूध देनेवाली गौएँ दान करता था। अपनी सभी शक्तियोंका उपयोग कर यह ब्राह्मणोंको गो-दान देनेमें उत्सुक रहता था। विशेषता यह थी कि इसने परम पवित्र ब्राह्मणोंको बहुत-सा अन्न भी दिया है। रुद्रधेनुकी तुलना करनेवाली वे मनोहारिणी गौएँ कल्पपर्यन्त इसका साथ देंगी। यह पुरुष एक कल्पतक रुद्रके लोकमें रहेगा—इसमें कोई संशय नहीं। इसने अनेक मधुर पदार्थ, सुगन्धित वस्तुएँ तथा रस दूधसे परिपूर्ण सवत्सा गौ ब्राह्मणोंको दी थीं, जिनके सभी अङ्ग सुवर्णसे सुशोभित थे। इस महान् दानी पुरुषसे सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तिका मैंने देखी है। उसमें लिखा है, तीन करोड़ वर्षोंतक यह स्वर्गमें निवास करेगा। तत्पश्चात् ऋषियोंके कुलमें इसका जन्म होगा।'

(किसी अन्य प्राणीके विषयमें) 'इसने सुवर्णका दान किया है। इसको देवताओंके पास भेज देना चाहिये। उनसे आज्ञा पाकर उमापति भगवान् रुद्रके लोकमें यह जाय। यह निश्चय ही महान् तेजस्वी जान पड़ता है। वहाँ जाकर अपनी इच्छाके अनुसार कामनाएँ पूर्ण करे।' (किन्हीं अन्य प्राणियोंको देखकर) 'इन व्यक्तियोंने दान करनेका नियम बना लिया था। अनेक प्रकारके प्राणी इनका अभिवादन करते थे। अतः ये स्वर्गमें जायँ।' (किसी औरके प्रति) 'यह परम कुशल पुरुष है। इससे जनताकी आवश्यकता पूरी होती थी। सबके हित-साधनमें यह संलग्न रहता था। सभी कामनाओंको पूरा करनेवाला यह प्राणी सबके लिये आदरका पात्र था। इसने ब्राह्मणोंको पृथ्वी दान की है।' अतः स्वर्गमें जाय और वहीं बहुत दिनोंतक रहे। इसके बाद अपने अनुयायियोंके साथ ब्रह्माजीके लोकमें स्थान पावे। इस श्रेष्ठ मानवकी अनेक प्रकारके इच्छित भोगोंसे सेवा होनी चाहिये। इसका स्थान अक्षय और अजर होगा। महर्षिगण इसका आदर करेंगे।'

(किसी अन्य पुरुषको देखकर) 'यह प्राणी सभीके लिये अतिथिके रूपमें यहाँ आया है। सब इन्द्रियाँ इसके अधीन हैं। यह सम्पूर्ण प्राणियोंपर कृपा करता था। प्रायः सभीको समानरूपसे अन्नदान करनेमें इसकी प्रवृत्ति थी। परिवारमें सब भोजन कर लेते थे, तब यह अन्न ग्रहण करता था। मेरे प्रिय भृत्यो! तुम्हें इसको यहाँसे अभी विदा कर देना चाहिये। धर्मराजने ऐसा निर्णय कर दिया है।'

'इस प्राणीने कई कन्याओंका दान किया तथा यज्ञ सम्पन्न किये हैं। अतः इसे दस हजार वर्षोंतक

स्वर्गमें सुख भोगनेका सुअवर प्रदान करो। इसके पश्चात् यह मर्त्यलोक-निवासी किसी उत्तम कुलमें सर्वप्रथम जन्म पायगा । यह दयालु पुरुष दस हजार वर्षोंतक देवताओंके समान सुखपूर्वक स्वर्गमें विराजमान रहे, इसके बाद यह मनुष्यकी योनिमें जन्म पाये और सभी इसका सम्मान करें ।' (किसी अन्यके विषयमें) 'यह वही व्यक्ति है, जिसने छाता, जूता और कमण्डलु बार-बार दान किये हैं, इसकी तुमलोग पूजा करो । जिस देशमें हजारों सभा-मण्डप हैं, उस देशमें विद्याधर बनकर यह चार महापद्म वर्षोंतक निरन्तर निवास करे ।'

नचिकेताने कहा—विप्रो ! चित्रगुप्तद्वारा कथित एक अन्य महत्त्वकी बात बतलाता हूँ, उसे सुनें । वे कहते थे—'गौएँ दिव्य प्राणी हैं ।' इनके सम्पूर्ण अङ्गोंमें सभी देवताओंका निवास है । अपने शरीरमें अमृत धारण करना और धरातलपर उसको बाँट देना इनका स्वाभाविक गुण है । ये तीर्थोंमें परम तीर्थ, पवित्र करनेवाले पदार्थोंमें परम पवित्रकर तथा पुष्टिकारकोंमें परम पुष्टिप्रद हैं । इनसे प्राणी शुद्ध हो जाता है । अतएव प्राचीन समयसे 'गौओंके दानकी परम्परा चली आ रही है । इनके दहीसे समस्त देवता, दूधसे भगवान् शंकर, घृतसे अग्निदेव तथा खीरसे पितामह ब्रह्मा तृप्तिका अनुभव करते हैं । इनके पञ्चगव्यके प्राशन-से अश्वमेधयज्ञका पुण्य प्राप्त होता है । गौके दाँतोंमें मरुद्गण, जिह्वामें सरस्वती, खुरके मध्यमें गन्धर्व, खुरोंके अग्रभागमें नागगण, सभी संधियोंमें साध्यगण, आँखोंमें चन्द्रमा एवं सूर्य, ककुद (मौर)में सभी नक्षत्र, पूँछमें धर्म, अपानमें अखिल तीर्थ, योनिमें गङ्गा नदी तथा अनेक द्वीपोंसे सम्पन्न चारों समुद्र, रोमकूपोंमें ऋषि-समुदाय, गोमयमें पद्मा लक्ष्मी, रोयेंमें समस्त देवतागण तथा इनके चर्म और केशोंमें उत्तर एवं दक्षिण—दोनों अयन निवास करते हैं । इतना ही नहीं, धृति-कान्ति, पुष्टि-तुष्टि-वृद्धि, स्मृति-मेधा-लज्जा, वपु, कीर्ति, विद्या, शान्ति, मति और संतति—ये सब गौओंके पीछे चलती हैं, इसमें कोई संशय नहीं । जहाँ गौओंका निवास है, वहीं सारा जगत्, प्रधान देवता, श्री-लक्ष्मी तथा ज्ञान एवं धर्म—ये सभी निवास करते हैं ।* (अध्याय २०५–२०६)

दान-धर्मका महत्त्व

ऋषिपुत्र नचिकेता कहते हैं—विप्रो ! नारदजी यद्यपि परम सात्त्विक पुरुष हैं, किंतु उनके मनमें कलह देखनेकी भी रुचि रहती है । इसी प्रकार वे एक बार कौतूहलवश घूमते हुए धर्मराजकी सभामें पधारे, जहाँ उनका राजाने बड़ा स्वागत किया । फिर उन्होंने नारदजीसे कहा—'द्विजवर ! आप यहाँ मेरे बड़े सौभाग्यसे पधारे हैं । महामुने !

* दन्तेषु मरुतो देवा जिह्वायां तु सरस्वती । खुरमध्ये तु गन्धर्वाः खुराग्रेषु तु पन्नगाः ॥
सर्वसंधिषु साध्याश्च चन्द्रादित्यौ तु लोचने । ककुदे तु नक्षत्राणि लाङ्गूले धर्म आश्रितः ॥
अपाने सर्वतीर्थानि प्रस्रावे जाह्नवी नदी । नानाद्वीपसमाकीर्णाश्चत्वारः सागरास्तथा ॥
ऋषयो रोमकूपेषु गोमये पद्मधारिणी । रोमे वसन्ति देवाश्च त्वक्केशेष्वयनद्वयम् ॥
स्थैर्यं धृतिश्च कान्तिश्च पुष्टिर्वृद्धिस्तथैव च । स्मृतिर्मेधा तथा लज्जा वपुः कीर्तिस्तथैव च ॥
विद्या शान्तिर्मतिश्चैव संततिः परमा तथा । गच्छन्तमनुगच्छन्ति ह्येता गावो न संशयः ॥
यत्र गावो जगत्तत्र देवदेवपुरोगमाः । यत्र गावस्तत्र लक्ष्मीः सांख्यधर्मश्च शाश्वतः ॥
(श्रीवराहपु० २०६ । २९–३५)

वराहपुराणका यह वर्णन बड़े महत्त्वका है । ऐसा वर्णन अथर्ववेद ९ । ४ । १–२६, ब्रह्माण्डपुराण, महाभारत १४ । १०३ । ४९–५६, स्कन्दपु० ५ । २ । ८३ । १०४–१२, पद्मपुरा० १ । ४८, भविष्यपुरा० ६ । १५६ । १६–२० आदिमें भी है । विशेष जानकारीके लिये 'कल्याण'का 'गो-अङ्क' पृ० ४८–५५ देखना चाहिये ।

आप सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सम्पूर्ण धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ तथा गन्धर्व-विद्या एवं इतिहासके पूर्ण ज्ञाता हैं। विभो! आप यहाँ पधारे और हमें दर्शन मिल गया, इससे हम सभी पवित्र हो गये। हमारा अन्तःकरण परम शुद्ध हो गया। मुनिवर! यही नहीं, यह देश भी सब ओरसे पुनीत हो गया। भगवन्! अब आप अपने मनोरथकी बात कहें।'

विप्रो! नारदजी धर्मके पूरे मर्मज्ञ हैं। धर्मराजकी उक्त बात सुनकर प्रश्नके रूपमें जो उन्होंने कहा, वह भी एक महान् गूढ़ विषय है। वही मैं तुमसे कहूँगा।

नारदजी बोले—भगवन्! आपका शासन धर्मके अनुसार होता है। आप सत्य, तप, शान्ति और धैर्यसे सम्पन्न हैं। सुव्रत! मेरे मनमें एक महान् संदेह उत्पन्न हो गया है, उसे आप बतानेकी कृपा करें। सुरोत्तम! मेरे संशयका विषय यह है कि 'प्राणी किस व्रत, नियम, दान, धर्म और तपस्या करनेके प्रभावसे अमरत्व प्राप्त करता है तथा उसकी क्या विधि है? बहुतसे महात्मा तो संसारमें अतुलनीय श्री, कीर्ति, महान् फल तथा परम दुर्लभ सनातन पद तक प्राप्त कर लेते हैं। इसके विपरीत कुछ लोग जीवनभर क्लेश भोगकर मरनेपर नरकमें आ जाते हैं? आप तत्त्वपूर्वक हमसे सभी विषय स्पष्ट करनेकी कृपा कीजिये।'

धर्मराजने कहा—तपोधन! मैं विस्तारके साथ वे सभी बातें बता रहा हूँ; आप उन्हें सुनें। अधर्मियोंके लिये नरकका निर्माण हुआ है। यहाँ पापी मानव ही आते हैं। जो अग्निहोत्र नहीं करता; संतानहीन है और भूमिदानसे रहित है, ऐसा मनुष्य मरकर नरकमें आता है। जो वेदोंके पारगामी विद्वान् तथा शूरवीर पुरुष हैं, उनकी आयु सौ वर्षोंकी हो जाती है। जो मानव स्वामीकी आज्ञाका नियमसे पालन करते तथा सदा सत्य भाषण करते हैं, वे कभी नरकमें नहीं आते। जिन्होंने इन्द्रियोंको वशमें कर लिया है, स्वामीमें श्रद्धा रखते हैं, हिंसा नहीं करते, यत्नसे ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, जो इन्द्रियनिग्रही एवं ब्राह्मणभक्त हैं, वे नरकमें नहीं आते। जो स्त्रियाँ पतिव्रता हैं तथा जो पुरुष एक पत्नीव्रतका पालन करनेवाले, शान्तस्वभाव, परायी स्त्रीसे विमुख, सम्पूर्ण प्राणियोंको अपने समान माननेवाले तथा समस्त जीवोंपर कृपा करनेमें उद्यत रहते हैं, ऐसे मनुष्य अन्धकारसे आवृत एवं पापियोंसे भरे हुए इस नरकसंज्ञक देशमें नहीं आते हैं।

इसी प्रकार जो द्विज ज्ञानी हैं, जिन्होंने साङ्गोपाङ्ग विद्याका अध्ययन कर लिया है, जो जगत्से उदासीन रहते हैं तथा जिन व्यक्तियोंने स्वामीके लिये अपने प्राणोंको होम दिया है, जो संसारमें सदा दान करते एवं सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें संलग्न रहते हैं तथा जो माता-पिताकी भली प्रकार सेवा करते हैं, वे नरकमें नहीं जाते। जो प्रचुर मात्रामें तिल, गौ और पृथ्वीका दान करते हैं, वे नरकमें नहीं जाते, यह निश्चित है। जो शास्त्रोक्त विधिसे यज्ञ करते-कराते और चातुर्मास्य एवं आहिताग्नि-व्रतका नियम पालन तथा मौनव्रतका आचरण करते हैं, जो सदा स्वाध्याय करते हैं तथा शान्त स्वभाववाले एवं सभ्य हैं, ऐसे द्विज यमपुरीमें आकर मेरा दर्शन नहीं करते। जो जितेन्द्रिय व्यक्ति पर्वसे भिन्न समयमें केवल अपनी ही स्त्रीके पास जाते हैं, वे भी नरकमें नहीं जाते। ऐसे ब्राह्मण तो साक्षात् देवता बन जाते हैं—इसमें कोई संशय नहीं है। जिनकी सम्पूर्ण कामनाएँ निवृत्त हो चुकी हैं, जो किसीसे कुछ आशा नहीं रखते और अपनी इन्द्रियोंको सदा वशमें रखते हैं, वे इस घोर स्थानपर कभी नहीं आते।

नारदजीने पूछा—सुव्रत! कौन-सा दान श्रेष्ठ है और कैसे पात्रको दान देनेसे उत्तम फलकी प्राप्ति होती है अथवा कौन-सा ऐसा श्रेष्ठ कर्म है, जिसका सम्पादन करनेपर प्राणी स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठा पाता है?

किस दानकी ऐसी महिमा है, जिसके परिणामस्वरूप प्राणी सुन्दर रूप, धन, धान्य, आयु तथा उत्तम कुल प्राप्त कर सकता है? यह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

धर्मराज बोले—देवर्षे! दानकी विधियाँ तथा उनकी गतियाँ अगणित हैं, जिसे कोई सौ वर्षोंमें भी बता पानेमें असमर्थ है। फिर भी मनुष्य जिसके प्रभावसे उत्कृष्ट फल प्राप्त करते हैं, उसे संक्षेपमें बताता हूँ। तपस्या करनेसे स्वर्ग सुलभ होता है, तपस्यासे दीर्घ आयु और भोगकी वस्तुएँ मिलती हैं। ज्ञान-विज्ञान, आरोग्य, रूप, सौभाग्य, सम्पत्ति—ये सभी तपस्यासे प्राप्त होते हैं। केवल मनमें संकल्प कर लेनेमात्रसे कोई भी सुख-भोग प्राप्त नहीं हो जाता। मौनव्रत पालन करनेसे अव्याहत आज्ञा-शक्ति प्राप्त होती है। दान करनेसे उपभोगकी सामग्रियाँ तथा ब्रह्मचर्यके पालनसे दीर्घ जीवन प्राप्त होता है। अहिंसाके फलस्वरूप सुन्दर रूप तथा दीक्षा ग्रहण करनेसे उत्तम कुलमें जन्म मिलता है। फल और मूल खाकर निर्वाह करनेवाले प्राणी राज्य एवं केवल पत्तेके आहारपर अवलम्बित व्यक्ति स्वर्ग प्राप्त करते हैं। पयोव्रत करनेसे स्वर्ग तथा गुरुकी सेवामें रत रहनेसे प्रचुर लक्ष्मी प्राप्त होती है। श्राद्ध, दान करनेके प्रभावसे पुरुष पुत्रवान् होते हैं। जो उचित विधिसे दीक्षा लेते अथवा तृण आदिकी शय्यापर शयन करके तप करते हैं, उन्हें गौ आदि सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं। जो प्रातः, मध्याह्न और सायंकालमें त्रिकाल स्नानका अभ्यासी है, वह ब्रह्मको प्राप्त करता है। केवल जल पीकर तपस्या करनेवाला अपना अभीष्ट प्राप्त कर लेता है*। सुव्रत! यज्ञशाली पुरुष स्वर्ग तथा उपहार पानेका अधिकारी है। जो दस वर्षोंतक विशेष रूपसे जल पीकर ही तपस्यामें तत्पर रहते हैं तथा लवण आदि रासायनिक पदार्थोंका सेवन नहीं करते, उन्हें सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। मांस-त्यागी व्यक्तिकी संतान दीर्घायु होती है। चन्दन और मालासे रहित तपस्वी मानव सुन्दर स्वरूप-वाला होता है। अन्नका दान करनेसे मानव बुद्धि और स्मरणशक्तिसे सम्पन्न होता है। छाता दान करनेसे उत्तम गृह, जूतादानसे रथ तथा वस्त्र-दान करनेसे सुन्दर रूप, प्रचुर धन एवं पुत्रोंसे प्राणी सम्पन्न होते हैं। प्राणियोंको जल पिलानेसे पुरुष सदा तृप्त रहता है। अन्न और जल—दोनोंका दान करनेके प्रभावसे प्राणियोंकी सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। जो सुगन्धित फूलों एवं फलोंसे लदे हुए वृक्ष ब्राह्मणको दान करता है, वह सब प्रकारकी उपयोगी वस्तुओंसे भरा गृह प्राप्त करता है। सुन्दरी स्त्रियाँ और अमूल्य रत्न उस गृहमें परिपूर्ण रहते हैं। अन्न, वस्त्र, जल और रस प्रदान करनेसे व्यक्तिको दूसरे जन्ममें वे सभी सुलभ होते हैं। जो ब्राह्मणोंको धूप और चन्दन दान करता है, वह अगले जन्ममें सुन्दर तथा नीरोग होता है। जो व्यक्ति किसी ब्राह्मणको अन्न तथा सभी उपकरणोंसे युक्त गृह दान करता है, उसे जन्मान्तरमें बहुतसे हाथी, घोड़े और स्त्री-धन आदिसे परिपूर्ण उत्तम महल निवास करनेके लिये प्राप्त होते हैं। धूप प्रदान करनेसे मानवको गोलोकमें तथा वसुओंके लोकमें रहनेका

* ज्ञानविज्ञानमारोग्यं रूपसौभाग्यसम्पदः। तपसा प्राप्यते भोगो मनसा नोपदिश्यते॥
एवं प्राप्नोति पुण्येन मौनेनाज्ञां महामुने। उपभोगांस्तु दानेन ब्रह्मचर्येण जीवितम्॥
अहिंसया परं रूपं दीक्षया कुलजन्म च। फलमूलाशिनो राज्यं स्वर्गः पर्णाशिनां भवेत्॥
पयोभक्ष्या दिवं यान्ति जायते द्रविणाढ्यता। गुरुशुश्रूषया नित्यं श्राद्धदानेन संततिः॥
गवाद्याः कालदीक्षाभिर्ये तु वा तृणशायिनः। स्वयं त्रिषवणाद् ब्रह्म त्वपः पीत्वेष्टलोकभाक्॥
(श्रीवराहपु० २०७। ३८–४२)

कर्मविपाकका इसी प्रकारका परम सुन्दर वर्णन ब्रह्मपुराण अध्याय २१७में भी प्राप्त होता है।

सुअवसर सुलभ होता है। हाथी तथा हृष्ट-पुष्ट बैलके दान करनेसे प्राणी स्वर्गमें जाता है और वहाँ उसे कभी समाप्त न होनेवाला दिव्य सुख-भोग प्राप्त होता है। घृतका दान करनेसे तेज एवं सुकुमारता तथा तैलदानसे प्राणमें स्फूर्ति और शरीरमें कोमलता उपलब्ध होती है। शहद दान करनेसे प्राणी दूसरे जन्ममें अनेक प्रकारके रसोंसे सदा तृप्त रहता है। दीपक दान करनेसे अन्धकारका कष्ट नहीं होता तथा खीरके दान करनेवाले व्यक्तिका शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है। खींचड़ी दान करनेसे कोमलता और सौभाग्य प्राप्त होता है। फल दान करनेवाला व्यक्ति पुत्रवान् तथा भाग्यशाली होता है। रथ दान करनेसे दिव्य विमान तथा दर्पणोंका दान करनेसे प्राणी उत्तम भाग्य प्राप्त करता है, इसमें कोई संशय नहीं। डरे हुए प्राणीको अभय प्रदान करनेसे मनुष्यकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। (अध्याय २०७)

पतिव्रतोपाख्यान

ऋषिपुत्र नचिकेता कहते हैं—विप्रो ! इसी बीच यायावर,* शिलोञ्छ-जीवी स्वाध्यायव्रती तपस्वी ब्राह्मणोंको अपने ऊपरसे जाते देखकर यमराज अत्यन्त उदास हो गये। ब्राह्मणो ! इतनेमें ही वहाँ विमानपर सवार होकर अपने पतिदेवके साथ एक परम तेजस्विनी पतिव्रता स्त्री आ गयी। उसके साथमें बहुत-से अनुचर, तथा परिकर-परिच्छद भी विराजमान थे। उस प्रियदर्शना देवीके आगमनकालमें नरसिंगे आदि वाद्योंकी विपुल ध्वनि होने लगी। जीवमात्रपर अनुग्रह रखनेवाली उस देवीको धर्मकी पूर्ण जानकारी थी। उसके सारे प्रयासमें धर्मराजका हित भरा था। इस प्रकार साधन-सम्पन्न वह शुभाङ्गना विमानपर बैठे-बैठे ही धर्मराजको तपस्वियोंसे ईर्ष्या न करने तथा उनके प्रति सद्भाव रखनेका परामर्श देकर एवं उनसे पूजित हो आकाशमें अदृश्य हो गयी—जैसे बिजली बादलमें समा जाती है। इस अवसरपर धर्मराजके द्वारा सुपूजित उस स्त्रीको देखकर नारदजीने पूछा—'राजन् ! जो आपके द्वारा अर्चित होनेके बाद हितका बात कहकर पुनः यहाँसे प्रस्थित हो गयी, वह स्त्रियोंमें सर्वोत्तम देवी कौन है ? यह तो परम भाग्यशालिनी जान पड़ती है। इसका रूप बड़ा दिव्य है। अनुपम भाग्योंसे शोभा पानेवाले राजन् ! मैं इस रहस्यको जानना चाहता हूँ। क्योंकि इससे मेरे मनमें महान् आश्चर्य हो रहा है। अतः इसे संक्षेपमें बतानेकी कृपा करें।'

धर्मराजने कहा—देवर्षे ! मैंने जिस देवीकी पूजा की है, उसकी कथा परम सुखद है। उसे मैं आपके सामने विस्तारसे स्पष्ट करता हूँ। तात ! पूर्व कल्पके सत्ययुगकी बात है—निमि नामसे प्रसिद्ध एक महान् तेजस्वी, सत्यवादी एवं प्रजापालक राजा थे। उनके पुत्र मिथि हुए। केवल पितासे जन्म होनेके कारण जनताने उनका नाम जनक रख दिया। उनकी पत्नीका नाम 'रूपवती' था। वह निरन्तर अपने पतिके हितमें तत्पर रहती थी। पतिकी आज्ञाका पालन करना, उनमें अपार श्रद्धा-भक्ति रखना तथा शुभ कर्मोंमें लगे रहना उसका स्वाभाविक गुण था। स्वामीके वचनानुसार अत्यन्त प्रसन्नताके साथ वह कार्यमें तत्पर रहती थी। महाराज मिथि भी महान् तपस्वी, सत्यके समर्थक तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें ही अपने सारे समयका उपयोग करते थे। वे श्रम एवं धर्मपूर्वक सम्पूर्ण भूमण्डलका पालन करते थे। उनके

* 'वृत्त्या वरया यातीति यायावरत्वम्' (बौधायनधर्म-सूत्र ३।१।४, श्रौतसूत्र २४।३१) आदि वचनानुसार शिल आदि श्रेष्ठ वृत्तिसे जीवन-यापन करनेवाले ब्राह्मण 'यायावर' हैं। इस वराह तथा अन्यपुराणोंमें एवं पाणिनि ३।२।१७६, 'काव्यमीमांसा', 'बालरामायण' १।१३, 'भट्टिकाव्य' २।२० आदिमें यह शब्द इसी अर्थमें प्रयुक्त है। पाणि० ३।१।३के अनुसार इन्हें ही 'शालीन' भी कहते हैं। 'Most probaly it reffred to those householders, who like Janaka lived in their home, although following the ascetic dicipline—'यायावरा ह वै नामर्षय आसंस्तेऽध्वन्य श्राम्यं समस्तमजुहवुः।' (श्रौ० सू०) (Agrawala. Pāṇini P. 387)।

शासनकालमें रोग, बुढ़ापा और मृत्युकी शक्ति कुण्ठित हो गयी थी। उन परम तेजस्वी नरेशके राष्ट्रमें देवता समयानुसार सदा जल बरसाते थे। उनके राज्यमें कोई भी ऐसा व्यक्ति दृष्टिगोचर नहीं होता था, जो दुःखी, मरणासन्न या व्याधियोंसे ग्रस्त अथवा दरिद्रतासे पीड़ित हो।

विप्रवर! बहुत समय व्यतीत हो जानेके पश्चात् एक दिन उनकी रानीने उनसे नम्रतासे भरी हुई वाणीमें कहा—'राजन्! हमारी सारी सम्पत्ति भृत्यों, ब्राह्मणों और परिजनोंके प्रबन्धमें शनैः-शनैः समाप्त हो गयी। अब आपके कोषमें कुछ भी अवशेष नहीं है। अधिक क्या? इस समय अपने भोजनकी भी कोई व्यवस्था नहीं है। हमारे पास अब कोई गो-धन, कपड़े-लत्ते या बर्तन भी नहीं बचे हैं। राजन्! इस समय मेरे लिये जो उचित कर्तव्य हो, वह बतानेकी कृपा कीजिये। मैं आपकी आज्ञाकारिणी दासी हूँ।'

राजा मिथिने कहा—'भामिनि*! तुम्हारी भावनाके विरुद्ध मैं कभी कुछ कहना नहीं चाहता, फिर भी सुनो। सौ वर्ष तो हम लोगोंको हविष्य भोजनपर ही रहते हो गये हैं। प्रिये! अब हमलोग कुदाल और काष्ठकी सहायतासे खेतीका काम करें। इस प्रकार काम करने तथा जीवन-निर्वाह करनेसे हमें शुद्ध धर्मकी प्राप्ति हो सकती है, इसमें कोई संशय नहीं। ऐसा करनेसे हमें भक्ष्य एवं भोज्यकी आवश्यक वस्तुएँ भी उपलब्ध हो जायँगी और हमारा जीवन भी सुखमय बन जायगा।'

राजा मिथिके इस प्रकार कहने पर रानी रूपवतीने कहा—'राजन्! आप महान् यशस्वी पुरुष हैं। आपके महलपर सेवकों, शूरवीरों, हाथियों, घोड़ों, ऊँटों, भैंसों और गदहोंकी संख्या कई हजार है। राजन्! क्या आपकी इच्छाके अनुसार ये सभी लोग कृषि आदि कार्य नहीं कर सकते हैं?'

राजा मिथि बोले—वरानने! मेरे पास जितने सेवक हैं, वे सभी राष्ट्र-रक्षाके अपने-अपने काममें नियुक्त हैं और सभी अपने काममें संलग्न भी हैं। देवि! अपने पासके सभी पशु-हृष्ट-पुष्ट बैल, खच्चर, घोड़ा, हाथी और ऊँट भी राज्यके काममें ही नियुक्त हैं। अनिन्दिते! इसी प्रकार लोहे, राँगे, ताँबे, सोने और चाँदीसे बने हुए उपकरण भी राष्ट्रमें काम दे रहे हैं। देवि! इस समय अब अपने लिये कहीं चलकर कोई उपयुक्त भूमि तथा लोहा आदि द्रव्यकी खोज करनी चाहिये, जिससे मैं तथा उपयुक्त भूमि एक कुदाल बनवा सकूँ तथा सुगमतासे कृषि कर सकूँ।

रानीने उत्तर दिया—'राजन्! आप अपनी इच्छाके अनुसार चलें। मैं भी आपके पीछे-पीछे चलूँगी।' इस प्रकार बात-चीत होनेके पश्चात् महाराज मिथि अपनी सहधर्मिणीके साथ वहाँसे चल पड़े। स्थान-क्षेत्र आदिकी तलाश करते जब वे दोनों पर्याप्त मार्ग पार कर चुके, तब राजाने एक स्थानको लक्ष्यकर कहा—'वरवर्णिनि! यह क्षेत्र कल्याण-प्रद प्रतीत होता है। अब तुम यहाँ रुको। भद्रे! जबतक मैं इन घासों और काँटोंको काटता हूँ, तबतक तुम भी यहाँ कुछ ठीक-ठाककर तृणपत्रोंको दूर करो।'

तपोधन! राजा मिथिके इस प्रकार कहनेपर रानी हँसती हुई मधुर वाणीमें कहने लगी—'प्रभो! यहाँ केवल वृक्ष और सुनहरे रङ्गवाली लताएँ तो दिखायी पड़ती हैं, किंतु पासमें किंचिन्मात्र भी जलका दर्शन नहीं होता। यहाँ खेतीके काम करनेपर तो हृदयमें चिन्ता ही बनी रहेगी, फिर खेतीका काम हमलोग कैसे कर सकेंगे? यहाँ यह वेगवती नदी भी बहती है, यह वृक्ष है तथा यहाँकी भूमि भी कंकड़वाली है। ऐसे स्थानमें खेतीका काम करनेपर हमलोगोंको कैसे सफलता मिल सकेगी?'

* 'भाम' शब्दका मुख्य अर्थ प्रकाश है। यह स्त्री आरम्भसे ही अनुगुण रूप, शील, आचार नामवती है। छान्दोग्योप० ४।१५।४के—'एष उ भामनीरेष हि सर्वेषु लोकेषु भाति' (भाति—दीप्यते—शां. भा.) एवं 'सत्यभामा' (कृष्णपत्नी) आदिमें भी यही भाव है।

रानीकी बात सुनकर राजा मिथिने मधुर वचनोंमें कहा—'प्रिये ! पहलेके ही समान यहाँ भी सम्पत्तिका संग्रह हो सकता है । सुन्दरि ! बहुत संनिकट, पासमें ही पानीकी व्यवस्था हो सकती है । और चार मनुष्योंके आ जानेपर यहाँ किंचिन्मात्र भी असुविधा नहीं रहेगी । महादेवि ! देखो, यह घर है । यहाँ किसी प्रकारकी बाधा नहीं आ सकती है ।' इतना कहनेके उपरान्त राजा अपनी पत्नीके साथ उस क्षेत्रका शोधन करने लगे । इधर सूर्य जब आकाशके मध्यभागमें चले गये और उनका उग्र ताप फैल गया, तब रानी सहसा प्यास-से व्याकुल हो गयीं । उस तपस्विनीको भूख भी सताने लगी। उसके पैरके कोमल तलवे ताँबेके समान लाल हो गये । तापके कारण वे संतप्त हो उठे । अब उस देवीने अत्यन्त व्यथित होकर पतिदेवसे कहा—'महाराज ! मैं ग्रीष्मसे पीड़ित होकर प्याससे व्याकुल हो गयी हूँ । राजन् ! कृपापूर्वक मुझे शीघ्र जल देनेकी व्यवस्था करें ।' उस समय देवी रूपवती दुःखसे अत्यन्त संतप्त होनेके कारण अपनी सुध-बुध खो चुकी थी । अतः वह पृथ्वीपर पड़ गयी । उसी अवस्थामें उसके नेत्र सूर्यपर पड़ गये । गिरते समय उसके मनमें क्रोधका भाव भी आ गया था और उसकी दृष्टि स्वतः सूर्यपर पड़ गयी थी । फिर तो आकाशमें रहते हुए भी भगवान् भास्कर भयसे काँप उठे । उन महान् तेजस्वी देवको आकाश छोड़कर धरातलपर आ जानेके लिये विवश हो जाना पड़ा । इस प्रकृतिविरुद्ध बातको देखकर राजा जनकने कहा—'तेजस्विन् ! आप आकाशमण्डलका त्याग करके यहाँ कैसे पधारे हैं ? आप परम तेजस्वी देवता हैं । सभी व्यक्तियोंके द्वारा आपका अभिवादन होता है । मैं आपका क्या स्वागत करूँ ?'

राजा मिथिसे सूर्यने विनयपूर्वक कहा—'राजन् ! यह पतिव्रता मुझपर अत्यन्त क्रुद्ध हो गयी थी, अतएव मैं आकाश-से आपकी आज्ञाके पालनार्थ यहाँ आया हूँ । इस समय भूमण्डलमें, स्वर्गमें, अथवा तीनों लोकोंमें इसके समान कोई भी ऐसी पतिव्रता स्त्री दृष्टिगोचर नहीं होती है । इसमें असीम शक्ति है । इसके तप, धैर्य, निष्ठा एवं पराक्रम एक-से-एक आश्चर्यकर हैं । इसके अन्य गुण भी प्रशंसनीय हैं । महाभाग ! इसका चित्त भी आपके चित्तका सदा अनुसरण करता है । सुपात्र व्यक्तिका सुपात्रसे सम्बन्ध हो जाय—इसमें उसके पुण्यका महान् फल समझना चाहिये । आप दोनों शची एवं इन्द्रके समान सर्वथा एक दूसरेके अनुरूप हैं । राजन् ! आपकी अभिलाषा किसी प्रकार भी व्यर्थ नहीं होनी चाहिये । महाराज ! यदि भोजनके उचित प्रबन्धके लिये आपके मनमें खेतीका कार्य उत्तम प्रतीत होता है तो इसे अवश्य करें । इस विचारका व्यक्ति आपके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है । आपका यह प्रयास सफल, यश देनेवाला तथा अभिलाषा पूर्ण करनेवाला होगा ।'

ऐसा कहकर भगवान् सूर्यने उनके लिये जलसे भरे हुए एक पात्रका निर्माण किया । फिर वह पात्र, एक जोड़ा जूता तथा दिव्य अलङ्कारोंसे अलङ्कृत एक छाता—ये सभी वस्तुएँ उन्होंने उन राजा मिथिको दीं । भगवान् भास्करने यह भी बतला दिया कि यह इस स्त्रीके ही पुण्यकर्मका फल है । रानी रूपवती जल पाकर तृप्त हुई । वे अब सचेत और अभय हो गयीं । फिर वे इस आश्चर्यको देखकर राजासे बोलीं—'राजन् ! किसने यह स्वच्छ एवं शीतल जल दिया है और ये दिव्य छत्र और उपानह् किसने दिये हैं ? तपोधन ! आप बतानेकी कृपा करें ।'

राजा जनक बोले—महादेवि ! ये विश्वके प्रधान देवता भगवान् विवस्वान् हैं, जो तुमपर कृपा करनेके लिये गगन-मण्डलसे यहाँ आये हैं, इन्होंने ही ये सब पदार्थ दिये हैं ।

राजा मिथिसे यह वचन सुनकर रानी रूपवतीने कहा—'प्राणनाथ ! इन सूर्यदेवकी प्रसन्नताके लिये मैं क्या करूँ ? आप इनकी अभिलाषा जाननेका प्रयत्न करें।' राजा जनक महान् तेजस्वी पुरुष थे। रानीके यह कहनेपर उन्होंने भगवान् सूर्यके सामने दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा—'भगवन् ! आपका मैं कौन-सा प्रिय कार्य करूँ ?' राजाकी प्रार्थनापर भगवान् भास्करने कहा—'मानद ! मेरी हार्दिक इच्छा यह है कि स्त्रियोंसे मुझे कभी कोई भय न हो।'

राजा मिथि सबका सम्मान करनेमें कुशल व्यक्ति थे। रानी रूपवती उनके हृदयको सदा आह्लादित रखती थीं। भुवनभास्करकी बात सुननेके उपरान्त राजाने अपनी स्त्रीसे सारा प्रसङ्ग सुना दिया। उनके वचन सुनकर मनको प्रसन्न करनेमें परम कुशल रानी आनन्दसे भर उठी। अतः उस देवीने अपना उद्गार प्रकट किया—'देव ! अपनी तीव्र किरणोंसे रक्षाके लिये आपने छातेका दान किया, साथ ही एक दिव्य जलपात्र दिया। ये दोनों उपानह् (जूते) पैरोंको सकुशल रखनेके लिये दान दिये हैं। ये सभी परम आवश्यक वस्तुएँ हैं। अतः महाभाग ! आपने जैसा वर माँगा है, वैसा ही होगा। आपको स्त्रियोंसे किसी प्रकारका भय नहीं करना चाहिये। अपनी इच्छाके अनुसार कार्य करनेमें आप स्वतन्त्र हैं।'

यमराजने कहा—'विप्र ! यही इस स्त्रीकी कथा है, और तबसे इस प्रकारकी पतिव्रताओंका मैं पूजन तथा नमन करता हूँ।'

(अध्याय २०८)

पतिव्रताके माहात्म्यका वर्णन

नारदजी बोले—धर्मराज ! मैं जानना चाहता हूँ कि तपोधना स्त्रियाँ किस कर्म अथवा तपसे सर्वोत्तम गति पानेकी अधिकारिणी बन सकती हैं ? आप मुझे यह बतानेकी कृपा करें।

यमराजने उत्तर दिया—उत्तम सुव्रत द्विजवर ! वैसी स्थिति प्राप्त करनेके लिये नियम और तप कोई भी उपयोगी साधन नहीं है। महामुने ! उपवास, दान अथवा देवार्चन भी यथेष्ट गति प्रदान करनेमें असमर्थ हैं। यह स्थिति जिस प्रकारसे सुलभ हो सकती है, वह संक्षेपसे बताता हूँ, सुनें। जो स्त्री अपने पतिके सो जानेपर सोती और उसके जगनेके पूर्व ही स्वयं निद्रा त्याग देती है तथा पतिके भोजन कर लेनेपर भोजन करती है, उसकी मृत्युपर विजय हो जाती है—यह सत्य है। द्विजवर ! जो स्त्री पतिके मौन होनेपर मौन रहती और उसके आसन ग्रहण कर लेनेपर स्वयं भी बैठ जाती है, वह मृत्युको परास्त कर सकती है। तपोधन ! जिसकी दृष्टि एकमात्र पतिपर ही पड़ती है, जिसका मन सदा पतिमें ही लगा रहता है तथा जो स्वामीकी आज्ञाका निरन्तर पालन करनेमें तत्पर रहती है, उस पतिव्रतासे हम सब लोग एवं अन्य सभी भय मानते हैं। जो स्वामीके वचनोंपर श्रद्धा रखती है और कभी भी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करती, उस साध्वीकी संसारमें परम शोभा होती है। देवतालोग भी उसका सम्मान करते हैं। द्विजवर ! जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्षमें भी किसी अन्य पुरुषका ध्यान नहीं करती, उसे 'पतिव्रता' कहते हैं। ऐसी स्त्रीको मृत्युका भय नहीं रहता। जो सदा स्वामीके हित-साधनमें संलग्न रहती है, वह अभय रहती है। ब्रह्मनन्दन ! जो पतिव्रता पतिकी आज्ञाका सदा अनुसरण करती है, वह मृत्युके द्वारा जीती नहीं जा सकती।

यमराजने कहा—द्विजवर ! जो स्त्री पतिके विषयमें यह विचार करती है कि यही मेरे लिये माता, पिता, भाई

एवं परम देवता हैं, सदा पतिकी शुश्रूषामें संलग्न रहती है, उसपर मेरा कोई शासन सफल नहीं होता। स्वामीके ध्यान और उनके अनुसरण-अनुगमनके अतिरिक्त जिसका एक क्षण भी व्यर्थचिन्तनमें नष्ट नहीं होता है, वह परम साध्वी है। मैं उसके सामने हाथ जोड़ता हूँ। जो स्वामीके विचारके बाद अपना अनुकूल विचार प्रकट करती है, उस पतिव्रताको मृत्युका आभास नहीं देखना पड़ता। नृत्य, गीत और वाद्य—ये प्रायः सभी देखने एवं सुननेके विषय हैं, किंतु जिस स्त्रीके नेत्र तथा कान इनपर नहीं जाते हैं, बल्कि पतिकी सेवामें ही निरन्तर लगे रहते हैं, वह मृत्युके दरवाजेको नहीं देखती। जो स्नान करने, स्वच्छन्द बैठने अथवा केश सँवारनेके समय मनसे भी किसी दूसरे व्यक्तिपर दृष्टि नहीं डालती, उसे मृत्युका दरवाजा नहीं देखना पड़ता। द्विजवर! पति देवताकी आराधना कर रहा हो अथवा भोजनमें संलग्न हो, उस समय भी जो चित्तसे सदा उसीका चिन्तन करती रहती है, उसे मृत्युका द्वार नहीं देखना पड़ता। तपोधन! जो स्त्री सूर्योदयके पूर्व ही नित्य उठकर घरको बुहारने—साफ करनेमें उद्यत रहती है, उसकी दृष्टि मृत्युके फाटकपर नहीं पड़ती। जिसके नेत्र, शरीर और भाव सदा सुसंयत रहते हैं तथा जो अपने शुद्ध आचार एवं विचारसे सदा संयुक्त रहती है, उस साध्वी स्त्रीको मृत्युका दरवाजा नहीं देखना पड़ता। जो स्वामीके मुखको देखने, उसके चित्तका अनुसरण करने अथवा उसके हितमें अपना समय सार्थक करनेमें तत्पर रहती है, उसके सामने मृत्युका भय नहीं आता।

'द्विजवर! संसारमें यशस्वी मनुष्योंकी ऐसी अनेक स्त्रियाँ हैं, जो स्वर्गमें निवास करती हैं और जिनका देवतालोग भी दर्शन करते हैं। वही पतिव्रता मेरे सामने विराजमान थी। भगवान् सूर्यके द्वारा पतिव्रताकी यह महिमा सुननेका मुझे अवसर मिला था। विप्रवर! उन्हींकी कृपासे ये सभी गोपनीय रहस्यभरी बातें यथावत् मेरे कर्णगोचर हो गयीं। तभीसे मैं पतिव्रताओंको देखकर उनकी भक्तिभावसे पूजा करता हूँ। (अध्याय २०१)

कर्मविपाक एवं पापमुक्तिके उपाय

नारदजी कहते हैं—'यशस्विन्! आपने भगवान् सूर्यके मतानुसार पतिव्रता स्त्रियोंके उत्तम धर्मोंका रहस्यात्मक उपाख्यान कहा, जिसे मैंने बड़े ध्यानसे सुना। किंतु सभी प्राणियोंसे सम्बद्ध कर्मफलों (सुख-दुःखों)के विषयमें जाननेकी मुझे बड़ी उत्कण्ठा है। महातपा! मैं उसे सुनना चाहता हूँ, कृपया उसे कहें। जो मनुष्य दुःख और तापसे संतप्त होकर सुखके लिये कठोर तपस्या तो करते हैं, पर उनके मनोरथ पूर्ण होते नहीं दीखते। वे सब प्रकारके सांसारिक प्रिय तथा अप्रियको त्यागकर सुखके लिये अनेक व्रत एवं उपायका आचरण करते हैं, फिर भी सफल नहीं होते हैं, किसी-न-किसी प्रकार विफल कर दिये जाते हैं। लोकमें यह श्रुति प्रसिद्ध है कि धर्मके आचरणसे कल्याण होता है, पर देखा यह जाता है कि भलीभाँति कठोर तप करनेवाले भी क्लेशके भागी बन जाते हैं। यह क्यों? कौन इस (उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज) चार प्रकारके भूतग्रामवाले जगत्का संचालन करता है? धर्मात्मन्! कौन किस हेतुके कारण मनुष्यकी बुद्धिको पापकी ओर प्रेरित कर देता है? वह कौन है, जो इस लोकमें सुख तथा अत्यन्त कठोर दुःख भी उत्पन्न करता है?'

नारदजीके इस प्रकार कहनेपर महामना धर्मराज-ने कहा—'आपने जो यह पुण्यमय प्रश्न पूछा

है, मैं उसका उत्तर देता हूँ, आप उसे ध्यान देकर सुनें। मुनिवर ! इस संसारमें न कोई कर्ता दीखता है और न करनेकी प्रेरणा देनेवाला ही दृष्टिगोचर होता है। जिसमें कर्म प्रतिष्ठित है—जिसके अधीन कर्म है, जिसके नामका कीर्तन होता है, जिससे जगत् आदेशित होता है—प्रेरणा पाता है तथा जो कार्यका सम्पादन करता है, उसके विषयमें कहता हूँ, सुनिये। ब्रह्मन् ! एक समय इस दिव्य सभामें बहुतसे ब्रह्मर्षि विराजमान थे। वहाँ जो (विचार-विमर्श हुआ और) मैंने जैसा देखा-सुना, उसे ही कहता हूँ। तात ! मानव जिसे अपनी शक्तिसे स्वयं करता है, वही उसका स्वकर्म प्रारब्ध बनकर (परिणामरूपमें) भोगनेके लिये उसके सामने आ जाता है, चाहे वह सुकृत हो या दुष्कृत–सुख देनेवाला हो या दुःख देनेवाला। जो संसारके थपेड़ों (दुःखादि द्वन्द्वोंसे) पीड़ित हों, उन्हें चाहिये कि अपनेसे अपना उद्धार करें, क्योंकि मनुष्य अपने-आप ही अपना शत्रु और बन्धु[1] है। जीव अपने-आपका पहलेका किया हुआ कर्म ही निश्चित रूपसे इस संसारमें सैकड़ों योनियोंमें जन्म लेकर भोगता है। यह संसार सर्वथा सत्य है—ऐसी धारणा बन जानेके कारण वह आवागमनमें सर्वत्र भटकता है। प्राणी जो कुछ कर्म करता जाता है, वह उसके लिये संचित हो जाता है। फिर पुरुषका पाप-कर्म जैसे-जैसे क्षीण होता जाता है, वैसे-वैसे ही उसे शुभ बुद्धि प्राप्त होती जाती है। दोषयुक्त व्यक्ति शरीरधारी होकर संसारमें जन्म पाता है। जगत्में गिरे हुए प्राणियोंके बुरे कर्मका अन्त हो जानेपर शुद्ध बुद्धि या ज्ञानका प्रादुर्भाव होता है। प्राणीको पूर्वशरीरसे सम्बन्ध रखनेवाली शुभ अथवा अशुभ बुद्धि प्राप्त होती है। पुरुषके स्वयं उपार्जित किये हुए दुष्कृत एवं सुकृत दूसरे जन्ममें अनुरूप सहायक बनते हैं। पापका अन्त होते ही क्लेश शान्त हो जाता है। फलस्वरूप प्राणी शुभ कर्ममें लग जाता है।

इस प्रकार मनुष्य जब सत्कर्मका फल शुभ और दुष्कर्मका अशुभ फल भोग लेता है, तब उसके विस्तृत कर्ममें निर्मलता आ जाती है और सत्समाजमें उसकी प्रतिष्ठा होने लगती है। शुभ कर्मोंके फलस्वरूप उसे स्वर्ग मिलता तथा अशुभ कर्मोंसे वह नरकमें जाता है। वस्तुतः न तो दूसरा कोई किसी दूसरेको कुछ देता है और न कोई किसीका कुछ छीनता ही है।

नारदजीने पूछा—यदि ऐसा ही नियम है कि अपना ही किया हुआ शुभ अथवा अशुभ कर्म सामने आता है और शुभसे अभ्युदय तथा अशुभसे ह्रास होता है तो प्राणी मन, वाणी, कर्म या तपस्या—इनमेंसे किसकी सहायता ले, जिससे वह इस संसाररूपी क्लेशसे बच सके, आप उसे बतानेकी कृपा कीजिये।

यमराजने कहा—मुनिवर ! यह प्रसङ्ग अशुभोंको भी शुभ बनानेवाला, परम पवित्र, पुण्यस्वरूप तथा पाप एवं दोषका सदा संहारक है। अब मैं उन जगत्स्रष्टा जगदीश्वरको, जिनकी इच्छासे संसार चलता है, प्रणाम कर आपके सामने इसका सम्यक् प्रकारसे वर्णन करता हूँ। चर और अचर संपूर्ण प्राणियोंसे सम्पन्न इस त्रिलोकका जिन्होंने सृजन किया है, वे आदि, मध्य एवं अन्तसे रहित हैं। देवता और दानव—किन्हींमें यह शक्ति नहीं है कि उन्हें जान सकें। जो समस्त प्राणियोंमें समान दृष्टि रखता है, वह वेद-तत्त्वको जाननेवाला सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। जिसकी आत्मा वशमें है, जिसके मनमें सदा शान्ति विराजती है तथा जो ज्ञानी एवं सर्वज्ञ है, वह पापोंसे मुक्त हो जाता है। धर्मका सार अर्थ एवं प्रकृति तथा पुरुषके

१. तुलनीय गीता—६। ५।

विषयमें जिसकी पूर्ण जानकारी है अथवा जान लेनेपर जो पुनः प्रमाद नहीं कर बैठता, उसीको सनातनपद सुलभ होता है । गुण, अवगुण, क्षय एवं अक्षयको जो भलीभाँति जानता है तथा ध्यानके प्रभावसे जिसका अज्ञान नष्ट हो गया है, वह पापोंसे मुक्त हो जाता है । जो संसारके सभी आकर्षणों एवं प्रलोभनोंकी ओरसे निराश होकर शुद्ध जीवन व्यतीत करता है तथा इष्ट वस्तुओंमें जिसका मन नहीं लुभाता एवं आत्माको संयममें रखकर प्राणोंका त्याग करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है । अपने इष्टदेवमें जिसकी श्रद्धा है, जिसने क्रोधपर विजय प्राप्त कर ली है, जो दूसरेकी सम्पत्ति नहीं लेना चाहता एवं किसीसे द्वेष नहीं करता, वह मनुष्य सभी पापोंसे छूट जाता है । जो गुरुकी सेवामें सदा संलग्न रहता है, जो कभी किसी प्राणीकी हिंसा नहीं करता है तथा जो नीच वृत्तिका आचरण नहीं करता, वह मनुष्य सभी पापोंसे छूट जाता है । जो प्रशस्त धर्म-कर्मोंका आचरण करता है और निन्दित कर्मोंसे दूर रहता है, वह सभी पापोंसे छूट जाता है । जो अपने अन्तःकरणको परम शुद्ध करके तीर्थोंमें भ्रमण करता है तथा दुराचरणसे सदा दूर रहता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है । जो मनुष्य ब्राह्मणको देखकर भक्तिभावसे भर उठता और समीप जाकर प्रणाम करता है, वह भी सब पापोंसे छूट जाता है ।

नारदजी बोले—परंतप ! जो सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये कल्याणप्रद, हितकर एवं परम उपयोगी है, उसका वर्णन आपके द्वारा भलीभाँति सम्पन्न हो गया । प्रभो ! तत्त्वार्थदर्शी व्यक्तियोंको सम्यक् प्रकारसे इसका पालन अवश्य करना चाहिये । आपकी कृपासे मेरा संदेह दूर हो गया । महाभाग अब आप योगकी अपेक्षा कोई छोटा उपाय जो पापको दूर कर सके, उसे मुझे बतानेकी कृपा कीजिये; क्योंकि आप योगधर्मसे सम्बद्ध साधन पहले कह चुके हैं । पापको दूर करना महान् कठिन कार्य है । अतः कोई दूसरा ऐसा साधन बतायें जिससे जगत्में सुखप्राप्तिका लक्ष्य सिद्ध करनेके लिये विशेष प्रयास करना पड़े । इस लोक अथवा परलोकमें भी जो आत्मजयी व्यक्ति हैं तथा अनेक प्रकारके गुणोंकी जिनमें अधिकता है, वे सज्जन नित्य जिस साधनको काममें लेते हैं, मैं उसे जानना चाहता हूँ । महान् तपस्वी प्रभो ! अनेक योनियोंमें प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है और उनसे अशुभ कर्म बने रहते हैं । अतः उनको दूर करनेके लिये कोई सरल सुगम उपाय हो तो बतायें ।

यमराजने कहा—मुने ! स्वयम्भू ब्रह्माजी प्रजाजनके स्रष्टा हैं । इस धर्मके विषयमें उन्होंने जिस प्रकारका वर्णन किया है, वही मैं उन्हें प्रणाम करके व्यक्त करता हूँ । प्राणियोंका कल्याण तथा पापोंका विनाश ही इसका प्रधान उद्देश्य है । हाँ, क्रिया करना परम आवश्यक है, उसे कहता हूँ, सुनें । कैवल्यके प्रति श्रद्धालु बननेपर मनुष्यको ज्ञान होता है । जो व्यक्ति अपने अन्तःकरणको परमशुद्ध करके धर्मसे ओतप्रोत यह प्रसङ्ग सुनता है, उसकी सभी अभिलषित कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं तथा पापोंसे छूटकर वह इच्छानुसार सुख प्राप्त कर सकता है ।

(ब्रह्माजीके कहे हुए उपदेशप्रद वचन ये हैं—) शिशुमारचक्र उनका ही स्वरूप है । जो मनुष्य उनके इस रूपकी प्रतिमा बनाकर अपने शरीरमें भावना करके प्रयत्नपूर्वक उसका अर्चन एवं अभिवादन करता है, उसके पाप नष्ट हो जाते हैं और उस व्यक्तिका उद्धार हो जाता है । अपने उदरमें स्थित उसके स्वरूपका दर्शन करनेसे मन, वाणी तथा कर्मसे जो कुछ भी पाप बन गया है, वह दूर हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है । जब उस चक्रमें स्थित सोम एवं गुरु आदि सभी ग्रहोंकी वह मानसिक प्रदक्षिणा तथा ध्यान करता है तो मानव अनेक पापोंसे मुक्त हो जाता है ।

शुक्र, बुध, शनैश्चर तथा मङ्गल—ये सभी बलवान् ग्रह हैं। चन्द्रमाका सौम्य रूप है। हृदयमें इन ग्रहोंकी भावना करके जब मनुष्य प्रदक्षिणा एवं ध्यान करता है, तब उसके पापका सदाके लिये शोधन हो जाता है। उस समय पुरुषको ऐसी शुद्धता प्राप्त हो जाती है, मानो शरद् ऋतुका चन्द्रमा हो। सौ बार प्राणायाम करनेसे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्ति मिल जाती है। मुने! मनुष्यको चाहिये कि यत्नपूर्वक शुद्ध होकर जवन-स्थानमें स्थित चन्द्रमाका दर्शन तथा नमन करे। इसके फलस्वरूप समस्त पापोंसे वह मुक्त हो सकता है। 'शिशुमारचक्र' एक सौ आठ अक्षरोंसे सम्पन्न है। इसे जलमें भिगोकर स्वयं भी आर्द्र हो ध्यान करना चाहिये। चन्द्रमा और सूर्य—ये दोनों स्वयं स्वच्छ देवता हैं। अपने तेजसे प्रकाशमान ये दोनों जब परस्पर एक दूसरेको देखते हों, उस समय हृदयमें इनका ध्यान करना चाहिये। इससे सदाके लिये पाप शमन हो जाता है। महामुने! मानव इस प्रकारकी कल्पना करे कि ये श्रीहरि ही शिशुमारचक्रमय वामनरूपमें अवतीर्ण हुए तथा इन्होंने ही वराहका रूप धारण कर जलपर दर्शन दिया था और इन्हींकी दाढ़पर पृथ्वी शोभा पा रही थी तथा ये ही नृसिंहके रूपमें अवतीर्ण हुए थे। जल या दुग्धके आहारपर रहकर उनकी आराधना करे। इससे उसका सम्पूर्ण पापोंसे उद्धार हो जाता है। जो विधिपूर्वक उन्हें प्रणाम करता है, वह भी सभी पापोंसे छूट जाता है। (अध्याय २१०)

पाप-नाशके उपायका वर्णन

ऋषिपुत्र नचिकेता कहते हैं—विप्रो! धर्मराजकी इस प्रकारकी शुभ वाणी सुनकर नारदजीने भक्ति एवं भावसे पूर्ण पुनः उनसे यह वचन कहा।

नारदजी बोले—महाबाहो! धर्मराज! आप मेरे पिताके समान शक्तिशाली हैं तथा स्थावर एवं जङ्गम—सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति समान व्यवहार करते हैं। आपने अबतक द्विजातियोंके हितके लिये मुझसे सरल उपाय बताया है, अब कृपया औरोंके लिये भी उपाय बतायें।

यमराजने कहा—गौओंकी बड़ी महिमा है। वे परम पवित्र, मङ्गलमयी एवं देवताओंकी भी देवता हैं। उनकी सेवा करनेवाला पापोंसे मुक्त हो जाता है। शुभ मुहूर्तमें उनके पञ्चगव्यके पानसे मनुष्य तत्क्षण पापोंसे मुक्त हो जाता है। उनकी पूँछसे गिरते जलको जो सिरपर चढ़ाता है, वह धन्य हो जाता है। उनको प्रणाम करनेवाला भी सभी तीर्थोंका फल प्राप्तकर सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। इसलिये सर्वसाधारणको गौकी सेवा अवश्य करनी चाहिये। उदयकालीन सूर्य, अरुंधती, बुध तथा सभी सप्तर्षियोंकी वैदिक विधिके अनुसार पूजा करनी चाहिये। वैसे ही दहीसे मिला हुआ अक्षत उन्हें भी अर्पित करनेका विधान है। साथ ही मनको एकाग्र करके हाथ जोड़े हुए जो मानव उन्हें प्रणाम करता है, उसके सम्पूर्ण पाप उसी क्षण अवश्य नष्ट हो जाते हैं। जो शूद्र व्यक्ति ब्राह्मणकी सेवा करता, उन्हें तृप्त करता तथा भक्तिके साथ यत्नपूर्वक प्रणाम करता है, वह पापोंसे शीघ्र मुक्त हो जाता है। विषुवयोगमें अर्थात् जिस दिन रात और दिनका मान बराबर हो उस दिन जो पवित्र होकर दूधका दान करता है, उसका जन्मभरका किया हुआ पाप उसी क्षण नष्ट हो जाता है। जो मनुष्य पूर्वाग्र कुशा बिछाकर उसपर वृषभको खड़ा करके दान देता है और ब्राह्मणोंको साथ लेकर उसे प्रणाम करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है। पूर्वकी ओर बहनेवाली नदीमें सव्य होकर प्रदक्षिणक्रमसे विधिवत् अभिषेक करनेपर मनुष्य पापमुक्त हो जाता है। जो ब्राह्मण पवित्र होकर प्रसन्नतापूर्वक दक्षिणावर्त शङ्खसे हाथमें जल लेकर उसे सिरपर धारण करता है, उसके जन्मभरके किये पाप उसी समय नष्ट हो जाते हैं*।

* दक्षिणावर्त शङ्खके विषयमें पाठकोंकी शङ्काएँ प्रायः आती हैं। इस विषयमें शास्त्रोंमें कदाचित् उल्लेख ही हैं। प्रायः ये वराहपुराणके ही वचन निबन्धोंमें उद्धृत हैं।

ब्रह्मचारी मनुष्यका कर्तव्य है कि पूर्वकी ओर धारा बहानेवाली नदीमें जाय और नाभिमात्र जलमें खड़ा होकर स्नान करे। फिर काले तिलसे मिश्रित सात अञ्जलि जलसे तर्पण करे। साथ ही तीन बार प्राणायाम करना चाहिये। फलस्वरूप इसके जीवनपर्यन्तके पाप उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य कमलके छिद्ररहित पत्तेमें जल रखकर सम्पूर्ण रत्नोंके सहित उससे तीन बार स्नान करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है*।

मुने! मैं आपसे एक दूसरे अत्यन्त गोपनीय उपायका वणन करता हूँ। कार्तिक मासके शुक्लपक्षकी प्रबोधिनी एकादशी तिथिके व्रतसे भुक्ति और मुक्ति—ये दोनों सुलभ हो जाती हैं। मुनिवर! वह भगवान् विष्णुके व्यक्त और अव्यक्त रूपकी मूर्ति है, जो मर्त्यलोकमें आयी है। इसकी उपासना करनेवालेके करोड़ों जन्मोंके अशुभ नष्ट हो जाते हैं। प्राचीन समयकी बात है—भगवान् श्रीहरि वराहके रूपमें पधारे थे। ऐसे अवसरपर सम्पूर्ण संसारके कल्याणके विचारसे पृथ्वीदेवीने एकादशीको ही हृदयमें रखकर पूछा था।

धरणीने कहा—प्रभो! यह कलियुग प्रायः सभीके लिये भयानक है। इसमें मनुष्य सदा पापमें ही संलग्न रहते हैं। गुरु, ब्राह्मणका धन हड़प लेना और उनका वधतक लोगोंके लिये साधारण-सी बात हो जाती है। भगवन्! कलियुगके लोग गुरु, मित्र और स्वामीके प्रति वैर रखनेमें तत्पर रहते हैं। परायी स्त्रीसे अनुचित सम्बन्ध करनेमें भी वे लोक-परलोकका भय नहीं करते। सुरेश्वर! दूसरेकी सम्पत्तिपर अधिकार जमाना, अभक्ष्य-भक्षण कर लेना तथा देवता एवं ब्राह्मणकी निन्दा करना उनका स्वभाव बन जाता है। प्रायः कलियुगके लोग दाम्भिक एवं मर्यादाहीन होते हैं। कुछ लोग तो अनीश्वरवादी तक बन जाते हैं। इसमें मनुष्य निन्दित दान लेने और अगम्यागमनमें रुचि रखनेवाले होते हैं। विभो! वे ये तथा इनके अतिरिक्त भी अनेक पाप करते हैं, उनका श्रेय कैसे हो?

---

* गावः पवित्रा मङ्गल्या देवानामपि देवताः। यस्ताः शुश्रूषते भक्त्या स पापेभ्यः प्रमुच्यते॥
सौम्ये मुहूर्ते संयुक्ते पञ्चगव्यं तु यः पिबेत्। यावज्जीवं कृतात् पापात् तत्क्षणादेव मुच्यते॥
लाङ्गूलेनोद्धृतं तोयं मूर्ध्ना गृह्णाति यो नरः। सर्वतीर्थफलं प्राप्य स पापेभ्यः प्रमुच्यते॥
ब्राह्मणस्तु सदा स्नातो भक्त्या परमया युतः। नमस्येत् प्रयतो भूत्वा स पापेभ्यः प्रमुच्यते॥
उदयान्निःसृतं सूर्यं भक्त्या परमया युतः। नमस्येत् प्रयतो भूत्वा स पापेभ्यः प्रमुच्यते॥
दध्यक्षताञ्जलीभिस्तु त्रिभिः पूजयते शुचिः। तस्य भानुः स संदह्य दूरीकुर्यात् सदा द्विज॥
यावकं दधिमिश्रं तु पात्रे औदुम्बरे स्थितम्। सोमाय पौर्णमास्यां हि दत्त्वा पापैः प्रमुच्यते॥
अरुंधतीं बुधं चैव तथा सर्वान् महामुनीन्। अभ्यर्च्य वेदविधिना तेभ्यो दत्त्वा च यावकम्॥
द्विजं शुश्रूषते यस्तु तर्पयित्वातिभक्तितः। नमस्येत् प्रयतो भूत्वा स पापेभ्यः प्रमुच्यते॥
विषुवेषु च योगेषु शुचिर्दत्त्वा पयो नरः। तस्य जन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥
दक्षिणावर्त्तसव्येन कृत्वा प्राक्स्रोतसं नदीम्। कृत्वाऽभिषेकं विधिवत् ततः पापात् प्रमुच्यते॥
दक्षिणावर्त्तशङ्खेन कृत्वा चैव करे जलम्। शिरसा तद् गृहीत्वा तु विप्रो हृष्टमनाः शुचिः॥
तस्य जन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति। प्राक्स्रोतसं नदीं गत्वा नाभिमात्रजले स्थितः॥
स्नात्वा कृष्णतिलैर्मिश्रा दद्यात् सप्ताञ्जलीर्नरः। प्राणायामत्रयं कृत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः॥
यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति। अच्छिद्रपद्मपत्रेण सर्वरत्नोदकेन तु॥
त्रिधा यस्तु नरः स्नायात् सर्वपापैः प्रमुच्यते।

(वराहपु० २११। ८—११, १३, १८)

भगवान् वराहने उत्तर दिया—'भगवान् विष्णुकी सर्वोत्कृष्ट शक्तिने कलियुगके नाना प्रकारके घोर पापोंमें रत मनुष्योंके कल्याणके लिये ही एकादशीका रूप धारण किया था। इसलिये सभी मासोंके दोनों पक्षोंकी एकादशीको व्रत करना चाहिये। इससे मुक्ति सुलभ होती है। एकादशीके दिन अन्न नहीं खाना चाहिये। पूर्णरूपसे उपवास कर व्रत रहना चाहिये। यदि विशेष कारणसे पूर्ण उपवास सम्भव न हो तो नक्तव्रत* करे। मनुष्यको प्रबोधिनी एकादशीका व्रत तो अवश्य ही करना चाहिये। सोम-मङ्गलवार तथा पूर्व एवं उत्तर-भाद्रपद नक्षत्रोंके योगमें इस एकादशीका महत्त्व करोड़ गुणा बढ़ जाता है। उस दिन स्वर्णकी प्रतिमा बनवाकर भगवान् विष्णुकी तथा उनके दस अवतारोंकी भी विधिवत् पूजा करनेका विधान है। प्रबोधिनीकी महिमा हजारों मुखसे नहीं कही जा सकती। हजारों जन्मकी शिवोपासनासे प्राप्त होनेवाली वैष्णवता विश्वमें सर्वाधिक दुर्लभ वस्तु है, अतएव विद्वान् पुरुष प्रयत्न-पूर्वक विष्णुभक्त बननेकी चेष्टा करे†। इसके पाठसे दुःस्वप्न एवं सभी भय नष्ट हो जाते हैं।

यमराज कहते हैं—'मुने! उत्तम व्रतके पालनमें सदा तत्पर रहनेवाली महाभागा धरणीने जब भगवान् वराहकी यह बात सुनी तो वे जगत्प्रभुकी विधिवत् आराधना करके उनमें लीन हो गयीं।

नारदजी कहते हैं—'धर्मराज! आप सम्पूर्ण धर्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं। आपने जो यह दिव्य कथा कही है, यह धर्मसे ओतप्रोत है। अतः मैं भी आपद्वारा निर्दिष्ट धर्ममार्गकी व्याख्यासे संतुष्ट हो गया। अब मैं यथाशीघ्र उन लोकोंमें जाना चाहता हूँ, जहाँ मेरे मनमें आनन्दकी अनुभूति होती है। महाराज! आपका कल्याण हो।'

नचिकेता कहते हैं—"विप्रो! इस प्रकार कहकर मुनिवर नारदने यमलोकसे प्रस्थान किया। वे मुनिवर अपनी इच्छाके अनुसार सर्वत्र विचरनेमें समर्थ हैं। जाते समय आकाश उनके तेजसे प्रकाशित हो गया, मानो वे दूसरे सूर्य हों। धर्मराज धर्मपर विशेष आस्था रखते हैं। मुनिके जानेके बाद उन्होंने फिर बड़ी प्रसन्नतासे मुझे प्रणाम किया और आदर-सत्कारपूर्वक यह प्रिय वचन कहा—'सुव्रत! अब आप भी यहाँसे पधार सकते हैं।' उस समय शक्तिशाली धर्मराजकी अन्तरात्मा प्रसन्नतासे भर चुकी थी। विप्रो! मैंने भी उन धर्मराजकी उत्तम पुरीमें देखी-सुनी अपनी जानकारीकी सभी बातें आपलोगोंको सुना दी।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! वे सभी ब्राह्मण तपको अपना धन मानते थे। नचिकेताकी इन बातोंको सुनकर उनके मनमें प्रसन्नता छा गयी और उनकी आँखें आश्चर्यसे भर गयी थीं। उनमें कुछ मुनि तथा विप्र ऐसे थे, जिनकी देशान्तर-भ्रमणमें विशेष रुचि थी। ऐसे ही अन्य ब्राह्मण वनमें निवास करनेके विचारसे आये थे। कुछ ब्राह्मण शालीन (यायावर) एवं कपोती वृत्तिके समर्थक थे। कितने ऐसे ब्राह्मण थे, जिनके मुखसे यह शुभ वाणी निकलती रहती थी कि सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करना कल्याणकर है। वे सभी बार-बार नचिकेताको धन्यवाद दे रहे थे। उनमेंसे कुछ ब्राह्मण शिल एवं उञ्छ‡ वृत्तिवाले थे, कुछ महान् तेजस्वी ब्राह्मणोंने काष्ठवृत्तिको अपनाया था। सबकी विधियाँ भिन्न-भिन्न थीं। कुछ लोग सदा आत्म-चिन्तनमें व्यस्त रहते थे। कितने विप्रोंने मौन-व्रत तथा जलशयन-व्रतको धारण कर लिया था। कुछ लोग ऊपर मुख करके सोते थे तथा कुछ ब्राह्मणोंका मृगके समान इधर-उधर स्वच्छन्द विचरण करनेका नियम था। कितने ब्राह्मण पञ्चाग्नि-व्रती तथा कुछ ब्राह्मण केवल पत्तेके आहारपर रहते थे। कुछ ब्राह्मणोंकी जीवन-यात्रा केवल जल अथवा कितनोंकी

* पृष्ठ ११९ की टिप्पणी देखिये।

† दुर्लभं वैष्णवत्वं हि त्रिषु लोकेषु सुन्दरि। जन्मान्तरसहस्रेषु समाराध्य वृषध्वजम्॥
वैष्णवत्वं लभेत् कश्चित् सर्वपापक्षये सति। (वराहपुराण २११। ८७-८८)

‡ फसल कटनेके बाद पृथ्वीपरसे अन्न चुनकर जीविका चलाना 'शिल' एवं 'उञ्छ' वृत्ति है।

वायुपर अवलम्बित थी। कुछ लोग शाक खाकर रहते थे। इनके अतिरिक्त कुछ लोग घोर तपस्वी एवं ज्ञानयोगी थे। उनका यह कथन था कि जन्म लेने और मरनेके अतिरिक्त संसारमें अन्य कुछ बात नहीं है—वे ही बार-बार इसे दुहराते थे। उनके मनमें संसारसे सदा भय बना रहता था। अतः सावधान होकर उक्त नियमोंका सदा पालन करते थे। उद्दालक-कुमार नचिकेतामें भी धर्मकी प्रबलता थी। इन तपस्वी व्यक्तियोंको देखकर उनके मनमें अपार हर्ष हुआ और फिर उनके द्वारा सदा धर्मका चिन्तन होने लगा। मनका विषय अमित वेदार्थ, शुद्धस्वरूप श्रीहरि तथा चिन्मय भगवद्विग्रह रह गया। फिर तो धर्मात्मा नचिकेता सावधान होकर शुद्ध तपस्याके मार्गपर ही आरूढ़ हो गये।

राजन्! इस उत्तम उपाख्यानके प्रभावसे भगवान्में श्रद्धा उत्पन्न होती है। इसे जो सुनेगा अथवा सुनायेगा, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जायँगी।

(अध्याय २११-१२)

गोकर्णेश्वरका माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! प्राचीन समयकी बात है, जब 'तारकामय' नामक घोर देवासुर-संग्राम हुआ था। उस उग्र युद्धमें देवता और दानव—दोनोंकी सेनामें एक-से-एक शूरवीर थे। युद्धके अन्तमें देवताओंने दानवोंकी सेनाको परास्त कर दिया था और इन्द्र फिरसे स्वर्गके सिंहासनपर प्रतिष्ठित हो गये। तीनों लोकोंके चर-अचर प्राणियोंमें सुख-शान्ति व्याप्त हो गयी। उन्हीं दिनों पर्वतराज मेरुके एक सुवर्णमय शिखरपर जिसकी विविध रत्न सब ओरसे शोभा बढ़ा रहे थे और कहीं-कहीं विद्रुममणिकी खान भी थी, एक विशाल कमल दिव्य आसनके रूपमें आस्तृत था। उस आसनपर ब्रह्माजी चित्तको एकाग्र करके सुखपूर्वक बैठे थे। एक दिन सनत्कुमारजी वहाँ आये और आते ही उन्होंने पितामहको प्रणाम किया और 'गोकर्ण'के सम्बन्धमें इस प्रकार पूछा।

सनत्कुमारजीने पूछा—भगवन्! तत्त्वके जाननेवाले पुरुषोंमें आप शिरोमणि हैं। महाभाग! मैं आपके श्रीमुखसे ऋषियोंद्वारा कथित पुराण सुनना चाहता हूँ। विभो! उत्तर-गोकर्ण, दक्षिण-गोकर्ण* और शृङ्गेश्वर—ये तीन शिवलिङ्ग परम उत्तम बताये जाते हैं। इनकी कैसे और क्यों प्रतिष्ठा हुई है? भगवान् शंकर मृगका रूप धारण करके वहाँ क्यों विराजते हैं? प्रमुख देवता लोग वहाँ कैसे निवास करते हैं? शंकरके मृगरूप होनेका क्या कारण है? तथा उनके विग्रहकी प्रतिष्ठा किस समय हुई है?

ब्रह्माजी बोले—वत्स! यह पुराण एक रहस्यपूर्ण विषय है। मैंने जैसा सुना है, उसके अनुसार यथार्थ तुम्हें सुनाता हूँ, सुनो। गिरिराज मन्दराचलके परम पवित्र उत्तर भागमें 'मुञ्जवान्' नामसे प्रसिद्ध एक शिखर है, जिसकी शोभाको नन्दन नामक उपवन बढ़ाता रहता है। वहाँके साधारण पत्थर भी हीरा एवं स्फटिकमणिके समान हैं और कुछ (मूँगे)के सदृश लाल बालुकाओंसे सुशोभित हैं, कुछ अन्य शिलाखण्ड नीले और कुछ स्वच्छ भी हैं। वहाँ स्थान-स्थानपर श्रेष्ठ गुफाएँ तथा पानीके झरने हैं। उस पर्वतराजके सभी शिखर विचित्र फूलोंसे भरे हैं। विविध फूल-फलोंसे लदे उस शिखरकी शोभा अत्यन्त मनमोहक है। वहाँ देवतागण अपनी स्त्रियोंके साथ विहार करते रहते हैं। डालियोंपर कूजनेवाले मतवाले पक्षी उस पर्वत-प्रवरको मुखरित एवं सुशोभित करते रहते हैं। वहाँ उपवनोंमें कहीं कचनार फूले हैं, कहीं हंस और सारस घूम

* द्रष्टव्य 'तीर्थाङ्क'—पृ० १०९ तथा पृ० ३११। उत्तर-गोकर्ण भी दो हैः—नेपालके पशुपतिनाथ तथा 'गोला-गोकर्णनाथ', पर यहाँ 'पशुपतिनाथ' ही अभीष्ट है।

रहे हैं। कहीं विकसित कमलोंवाले तालाब, जिनमें निर्मल जल भरा है, उसकी शोभा बढ़ाते रहते हैं। पशु-पक्षी-नदियोंसे सनाथ और अत्यन्त शोभाशाली उद्यान-वाला वह स्थान तपस्याके लिये सर्वथा उपयुक्त है। उसे 'धर्मारण्य' कहते हैं। वहीं भगवान् 'स्थाणु महेश्वर'का स्थान है। वे प्रभु सम्पूर्ण सुरगणोंके गुरु हैं। भक्तोंपर सदा कृपा करनेवाले उन शक्तिशाली प्रभुके साथ गिरिराज-कन्या गौरी निरन्तर विराजती हैं। अपने पार्षदों और स्वामी कार्तिकेयके साथ उनका उस श्रेष्ठ पर्वतपर आसन लगा रहता है। वे देवेश्वर अजन्मा, अविनाशी और परम पूज्य हैं। उनकी सेवा करनेके विचारसे बहुत-से देवता विमानपर चढ़कर वहाँ आते हैं।

त्रेतायुगकी बात है। नन्दी नामसे विख्यात एक महान् मुनि भगवान् शंकरकी आराधना करनेकी अभिलाषासे वहाँ आकर तीव्र एवं कठिन तपस्या करने लगे। वे गर्मीके दिनोंमें पञ्चाग्नि तापते और जाड़ेकी ऋतुमें पानीमें खड़ा रहकर तप करते थे। वे बिना किसी अवलम्बके खड़े होकर ऊपर हाथ उठाये तपस्या करते थे। जल, अग्नि और वायु केवल ये ही उनके सहारे थे। अनेक प्रकारके व्रतों और तपोंके नियमको वे पूर्ण करते थे। ब्राह्मणोंमें नन्दीकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। वे समय-समयपर जल, फल एवं अन्य उचित उपहारोंसे उन प्रभुकी अर्चना करते रहते थे। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले उन द्विजवरने उग्र तपस्यासे अपनेपर विजय प्राप्त कर ली थी। अन्ततः भगवान् शंकर उनपर परम प्रसन्न हुए और उन्होंने मुनिवर नन्दीको साक्षात् दर्शन दिया और कहा—'मुने! मैं तुम्हें दिव्य नेत्र प्रदान करता हूँ। वत्स! अबतक तो तुम्हारे लिये मेरा रूप अदृश्य था, किंतु मैं प्रसन्न हो गया हूँ; अतः मेरा यह रूप देखो। संसारमें विद्वान् पुरुष ही मेरे इस अप्रतिम एवं ओजस्वी रूपको देख सकते हैं।'

राजन्! उस समय शंकरजीके श्रीविग्रहसे हजारों किरणोंवाले सूर्यके समान प्रकाश फैल रहा था। वे प्रभाके पुञ्ज प्रतीत हो रहे थे। जटाएँ उनके सिरकी छबि बढ़ा रही थीं और चन्द्रमा ललाटको सुशोभित कर रहे थे। भगवान् शंकरके दो नेत्र परम प्रकाशमान थे तथा तीसरा नेत्र अग्निके समान धधक रहा था। कमलकी माला उनके पवित्र अङ्गपर विराजमान थी। हाथमें कमण्डलु लिये हुए थे। शरीरपर बाघाम्बर था। सर्पका यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे। ऐसे भगवान् महादेवका दर्शन पाते ही महान् तपस्वी नन्दीको रोमाञ्च हो आया।

राजन्! वे प्रभु सनातन परब्रह्म परमात्माके ही रूपान्तर थे। उनका दर्शन प्राप्त होनेपर मुनिवर नन्दीने अञ्जलि बाँध ली और प्रभुकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—'जो स्वयं प्रकट होकर जगत्‌का धारण एवं पोषण करते हैं तथा वर देना जिनका स्वभाव है, उन प्रभुके लिये मेरा नमस्कार है। जो 'त्रिनेत्र', 'शिव-शंकर' एवं 'भव' नामसे विख्यात हैं, संसारका संहार एवं पालन भी जिनके ऊपर निर्भर है तथा जो चर्ममय वस्त्र धारण करनेवाले एवं मुनिरूप हैं, उन प्रभुके लिये नमस्कार है। जो नीलकण्ठ, भीम, भूत, भव्य, भव, प्रलम्बभुज, कराल, हरिनेत्र, कपर्दी, विशाल, मुञ्जकेश, धीमान्, शूल, पशुपति, विभु, स्थाणु, गणोंके पति, स्रष्टा, संक्षेप्ता, भीषण, सौम्य, सौम्यतर, त्र्यम्बक, श्मशाननिवास, वरद, कपालमाली एवं 'हरितश्मश्रुधर' अभिनामोंसे सम्बोधित होते हैं, उन भगवान् रुद्रके लिये नमस्कार है। जो भक्तोंको सदा प्रिय हैं, उन परमात्मा शंकरको हमारा बार-बार नमस्कार है।'

इस प्रकार विप्रवर नन्दीने भगवान् रुद्रकी स्तुति की और उनकी सम्यक् प्रकारसे आराधना कर सिर झुकाकर बार-बार नमस्कार किया तथा पुष्पाञ्जलि अर्पित की। भगवान् शंकर ब्राह्मणश्रेष्ठ नन्दीपर संतुष्ट हो गये और उन वरद

प्रभुने स्वयं ऋषिसे यह वचन कहा—'विप्रवर ! वर माँगो । महामुने ! तुम्हारे मनमें जो भी अभिलषित हो, वह सभी मैं देनेके लिये उद्यत हूँ । अतः तुम्हारी जो अभिलाषा हो, वह मुझसे कहो ।'

राजन् ! जब भगवान् शंकरने उन मुनिवर नन्दीसे इस प्रकार कहा, तब उनका अन्तःकरण प्रसन्नतासे भर गया और उन्होंने भगवान् शंकरसे कहा—'प्रभो ! मुझे प्रभुत्व, देवत्व, इन्द्रत्व, ब्रह्मत्व, लोकपालत्व, अपवर्ग, अणिमादि आठों सिद्धियाँ, ऐश्वर्य, या गाणपत्य—इनमेंसे एक भी पदार्थ नहीं चाहिये। देवेश्वर! आप कल्याण-स्वरूप हैं और अपने भक्तोंके कल्याण करनेमें सदा संलग्न रहते हैं, अतः यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो सुरेश्वर! आप कृपापूर्वक मुझे अपनी भक्ति प्रदान करें। महेश्वर ! आपके अतिरिक्त अन्य किसी देवतामें मेरी भक्ति न हो और सम्पूर्ण प्राणियोंको आश्रय देनेवाले आप प्रभुमें ही भक्ति सदा स्थिर रहे—यही मेरी सच्ची हार्दिक अभिलाषा है, जिसके फलस्वरूप मैं आपके लिये सदा तपमें संलग्न रह सकूँ और मेरे इस कार्यमें विघ्न न उपस्थित हो । मैं रात-दिन आपका ही नाम जपता रहूँ, मैं यही चाहता हूँ ।'

राजन् ! विप्रवर नन्दीकी यह बात सुनकर भगवान् शंकरके मुखपर हँसी छा गयी । वे प्रसन्न होकर मधुर वाणीमें नन्दीसे कहने लगे—'विप्रर्षे ! उठो । सुव्रत ! तुम्हारी इस तपस्यासे मैं परम प्रसन्न हो गया हूँ । महाभाग ! तुमने बड़े शुद्ध-चित्तसे भक्तिपूर्वक मेरी आराधना की है । तपोधन ! तुम्हारी तपश्चर्यासे मुझे परम संतोष हुआ है । वत्स ! तुम मेरी आराधनामें दत्तचित्तसे निरन्तर लगे रहे । रुद्रोंके समक्ष तुमने मेरे लिये तीन करोड़ जप किये हैं। महामुने ! पूरे एक हजार वर्षोंतक तुमने तीव्र तपस्या की है । ऐसी तपस्या आजसे पहले किसी भी देवता, दानव अथवा ऋषिने नहीं की है । तुम्हारा किया हुआ यह अत्यन्त कठिन तप महान् आश्चर्यजनक है । इसके प्रभावसे चर और अचर प्राणियोंसे व्याप्त ये तीनों लोक अत्यन्त क्षुब्ध हो उठे हैं । तुम्हें देखनेके लिये इन्द्रके साथ सभी देवता अभी यहाँ आनेवाले हैं । सुरों और असुरोंके लिये तुम अक्षय, अव्यय तथा अतर्क्य हो । तुम्हारे शरीरसे दिव्य तेज निकल रहा है । अलौकिक आभूषणोंसे अलंकृत होकर तुम परम सुशोभित हो रहे हो। तुममें मुझ-जैसी ही शक्ति आ गयी है । देवता और दानव—ये सभी तुमको अद्वितीय पुरुष मानते हैं । अब तुम मेरे समान रूप धारण करोगे और तुम्हें मुझ-जैसा ही तेज प्राप्त होगा, तुम्हारे तीन नेत्र होंगे। सभी गुणोंकी तुममें प्रधानता रहेगी और देवता तथा दानव तुम्हारी आराधना करेंगे—इसमें कोई संदेह नहीं है । तुम इसी शरीरसे सदा अमर रहोगे । बुढ़ापा और मृत्यु तुम्हारे पास न आ सकेगी । इसको गाणेश्वरीगति कहते हैं । देवताओं-के द्वारा भी यह सदाके लिये अलभ्य है । द्विजोत्तम ! मेरे पार्षदोंमें तुम्हारा प्रधान स्थान होगा । तुम्हें जनता 'नन्दीश्वर' कहेगी, इसमें कोई संशय नहीं है ।

'तपोधन ! तुम्हें सात्त्विक ऐश्वर्य या आठों सिद्धियाँ प्राप्त होंगी और तुम मेरे ही एक दूसरे स्वरूप समझे जाओगे। देवता लोग तुम्हें नमस्कार करेंगे । मुनीश्वर ! मेरी कृपासे संसारमें तुम स्वामीका पद प्राप्त करोगे । आजसे देवकार्योंमें तुम्हारी सर्वत्र प्रथम पूजा होगी और तुम मेरे पार्षदोंमें प्रधान होगे । मुझसे प्रसन्नता प्राप्त करनेवाले सभी मानव भलीभाँति तुम्हारी ही अर्चना करेंगे । तुम मेरे गण बनो, मेरे द्वारपालपदपर प्रतिष्ठित हो जाओ और विषम समयमें मेरे शरीरकी रक्षा करते रहो । तीनों लोकोंमें वज्र, दण्ड, चक्र अथवा अग्नि—इनमेंसे किसीसे भी तुम्हें कोई बाधा न होगी; देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, पन्नग, राक्षस तथा जो मेरे भक्त पुरुष हैं, वे सभी तुम्हारा आश्रय ग्रहण करेंगे । अब तुम्हारे संतुष्ट होनेपर मैं संतुष्ट हो जाऊँगा और तुम्हारे कुपित होनेपर मेरे मनमें भी क्रोधका आविर्भाव हो जायगा । द्विजवर ! अधिक क्या, तुमसे बढ़कर विश्वमें मेरा दूसरा कोई प्रिय है ही नहीं ।'

इस प्रकार द्विजवर नन्दीको वर देकर उमापति भगवान् शंकरने प्रसन्नतापूर्वक स्वयं आकाशको गुँजानेवाली मधुर वाणीमें स्पष्टरूपसे कहा—'विप्रवर ! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम कृतकृत्य हो गये। मरुद्गणोंके साथ समस्त देवता तुम्हारा दर्शन करनेके लिये यहाँ आ रहे हैं—ऐसा जान लो । वत्स ! यह सभी सुरसमुदाय यहाँ आकर जबतक मुझे देख नहीं लेता, इसके पूर्व ही मैं यहाँसे अन्यत्र चला जाना चाहता हूँ ।'

बस, इतनी बात कहकर भगवान् शंकर वहीं अन्तर्हित हो गये। (अध्याय २१३)



गोकर्णमाहात्म्य और नन्दिकेश्वरको वर-प्रदान

ब्रह्माजी कहते हैं—सनत्कुमार ! जब इस प्रकार कहकर भूतभावन भगवान् शंकर वहाँ अन्तर्धान हो गये तो उसी क्षण गणोंके अध्यक्ष नन्दीका शरीर परम दिव्य हो गया। वे चार भुजाओं और तीन नेत्रोंसे सम्पन्न होकर एक दिव्य स्थानपर बैठ गये । उनके विग्रहका वर्ण भी दिव्य हो गया और उससे दिव्य अगुरुकी सुगन्ध फैलने लगी । त्रिशूल, परिघ, दण्ड और पिनाक उनके हाथोंमें सुशोभित होने लगे और मूँजकी मेखला कमरकी शोभा बढ़ाने लगी। अपने तेजसे वे ऐसे प्रतीत होने लगे, मानो दूसरे शंकर ही विराजमान हों। फिर भगवान् वामनकी भाँति उद्यत होकर उन्होंने अपना पैर ऐसे आगे बढ़ाया, मानो वे द्विजवर तीन डगोंसे पृथ्वीको नापनेका विचार कर रहे हों । उन्हें देखकर आकाशमें विचरनेवाले सम्पूर्ण देवताओंका मन आशङ्कित हो गया । उनके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। अतः इन्द्रको इसकी सूचना देनेके लिये वे स्वर्गकी ओर चल पड़े । देवताओंके द्वारा यह वृत्तान्त सुनकर इन्द्र तथा अन्य उपस्थित लोकपालोंको बड़ा विषाद हुआ। उनके मनमें चिन्ता व्याप्त हो गयी। उन सभीने सोचा, यह कोई ऐसा व्यक्ति है, जिसने उमाकान्त भगवान् शंकरसे वर प्राप्त कर लिया है । अतः इसमें अपार शक्ति आ गयी है । अब यह श्रीमान् पुरुष तीनों लोकोंपर अवश्य ही विजय प्राप्त कर लेगा । इसमें जैसा उत्साह, तेज और बल प्रतीत होता है, इससे सिद्ध होता है कि यह अवश्य कोई महान् पराक्रमी पुरुष ही है । यह तो देवताओंके मुख्य स्थानको भी छीन सकता है, अतः अपने तेजके प्रभावसे जबतक यह स्वर्गलोकमें नहीं आ जाता है, इसके पूर्व ही हमलोग वर देनेमें कुशल भगवान् महेश्वरको प्रसन्न करनेमें संलग्न हो जायँ ।

मुने ! इस प्रकार परस्पर वार्तालाप करके वे सभी श्रेष्ठ देवता मेरे साथ 'मुञ्जवान्‌पर्वत'के शिखरपर आ गये । वहाँ जगत्‌के आश्रयदाता, अपार शक्तिवाले भगवान् श्रीहरिने अपने लिये स्थान बना रखा था । जब श्रीहरिको ज्ञात हुआ कि सुरसमुदाय आ रहा है तो वे दौड़कर आगे आ गये । कारण, सबके हृदयकी बात उन्हें विदित थी । अब उनकी कृपासे देवताओं और मुनियोंकी सभी बातें स्पष्ट हो गयीं । तब स्वयं भगवान् विष्णु, देवताओंके साथ मेरी तुलना करनेवाले नन्दीके पास पहुँच गये ।

नन्दीने कहा—'ओह ! आज मेरा जीवन सफल हो गया। मैंने जितना परिश्रम किया है, वह आज सब सफल हो गया; क्योंकि देवताओंके अध्यक्ष इन्द्र तथा सम्पूर्ण संसारके शासक श्रीहरिके दर्शनका आज मुझे परम श्रेष्ठ सौभाग्य प्राप्त हो गया है। आज मेरे जीवनकी साध पूरी हो गयी और मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो गये । पापोंका संहार करनेवाले भगवान् शिव शान्तस्वरूप हैं । उनकी प्रसन्नता तो मुझे प्राप्त

हो ही चुकी है। उन्होंने वर देकर मुझे अपना पार्षद बना ही लिया है। मुझपर उनकी असीम कृपा है। निश्चय ही अब मेरे सारे कल्मष दूर हो गये। भगवान् शंकर बड़े महात्मा पुरुष हैं। उन्होंने देवताओंके विषयमें मेरे सामने जो बात कही है, वह परम हितकर एवं सत्य सिद्ध हो गयी। उसमें कुछ भी अन्यथा नहीं रहा। उन्होंने मुझसे स्पष्ट कहा था कि 'प्रिय नन्दिन्! देवर्षिलोग तुमपर प्रसन्न होकर तुम्हें देखने यहाँ पधार रहे हैं। आज परमेष्ठीद्वारा भी मैं आदर प्राप्त कर चुका। इससे मेरे हृदयमें अपार आनन्द भर गया है।'

देवताओंने कहा—'विप्रवर! नन्दिन्! हमलोग भी उन वरदायी भगवान् शंकरका दर्शन करना चाहते हैं। तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट होकर जिन प्रभुने तुम्हें साक्षात् दर्शन दिया है, उन्हींका अवलोकन हमें भी अभीष्ट है।' इतनी बात कहनेके पश्चात् देवताओंने द्विजवर नन्दीसे पुनः पूछा—'कपाल धारण करनेवाले महाभाग महेश्वरका दर्शन हमलोग किस स्थानपर प्राप्त कर सकेंगे?'

नन्दीने कहा—'वे प्रभु तो मुझपर कृपा करके वहीं अन्तर्धान हो गये। अब मैं नहीं जानता हूँ कि वे कहा विराज रहे हैं। अतः वे जहाँ हों, आप सभी देवता स्वयं ही अन्वेषण कर लें।'

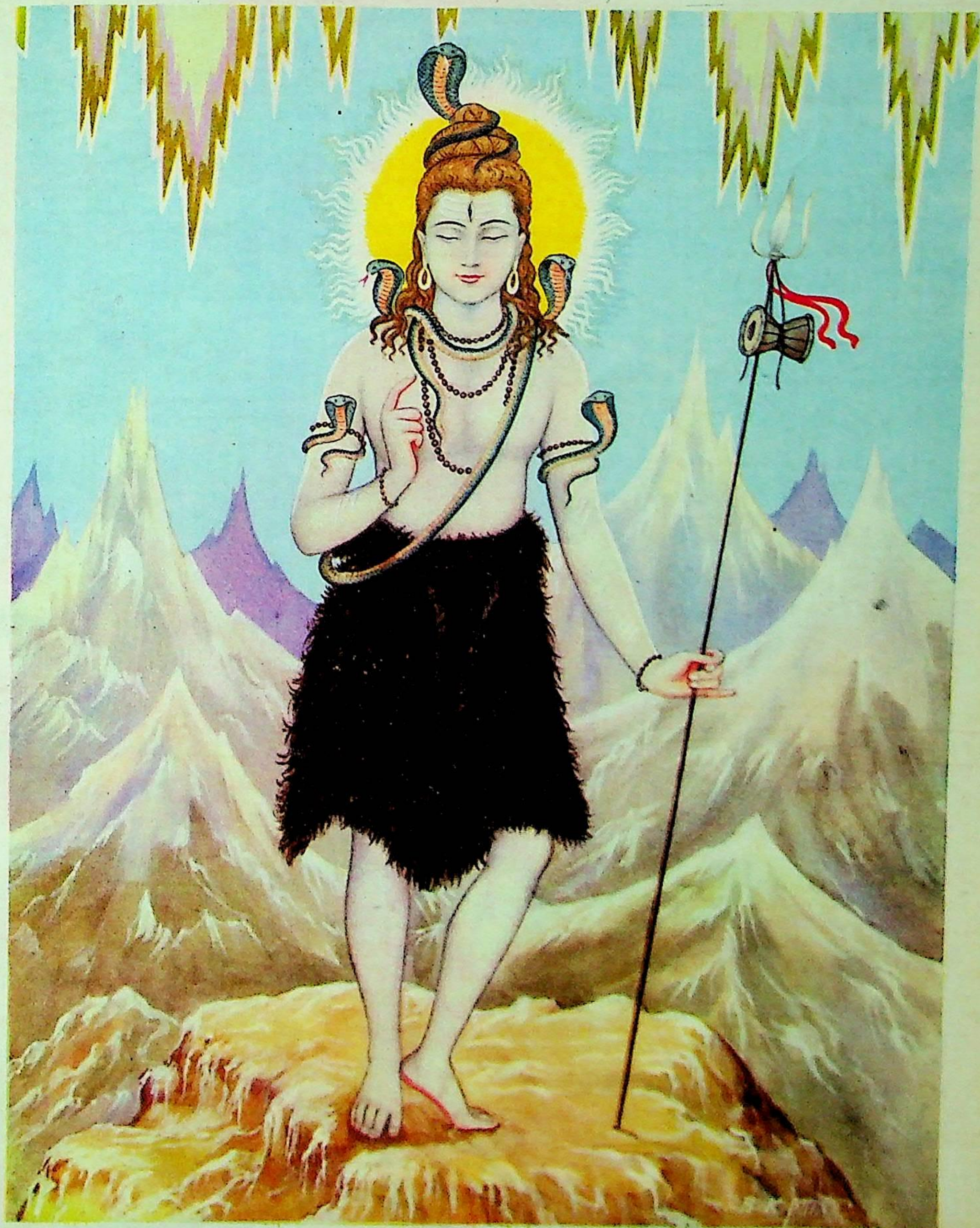
सनत्कुमारजीने पूछा—'भगवन्! महाभाग शंकरने नन्दीसे क्या कहा था, जिससे उन्होंने उनका पता नहीं बताया? देवेश! आप यह बात मुझे बतानेकी कृपा करें। प्रभो! भगवान् शंकरकी तो कोई भी बात गोपनीय नहीं है?'

ब्रह्माजी कहते हैं—'वत्स! शंकरने जो बातें कही हैं, उन्हें देवताओंके सामने स्पष्ट करना मेरे लिये भी उचित नहीं है। पर उन्होंने नन्दीसे जो बात कही थी, वह मैं तुम्हें बताता हूँ, सुनो। भगवान् शंकरजीने कहा था—'विप्रवर! हिमालयके उस पार पृथ्वीपर संकटगिरि नामसे विख्यात एक सिद्ध स्थान है, जिसकी अनेक वन, उपवन शोभा बढ़ाते हैं। वहाँ 'श्लेष्मातका' नामका एक श्रेष्ठ सर्प निवास करता है। उसने तीव्र तपस्या की है, जिससे उसके सभी पाप भस्म हो गये हैं। इस समय उसपर अनुग्रह करना मेरे लिये अत्यन्त आवश्यक है। वहाँ एक बहुत सुन्दर आश्रम है। वहीं निर्जन स्थानमें वह रहता है। उस दिव्य स्थानमें रहते हुए उसके बहुत-से वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। पवित्र पर्वतके ऊँचे शिखरपर वह स्थान है। श्लेष्मातक सर्पके निवास होनेके कारण उसीके नामसे 'श्लेष्मातक-वन' उसकी संज्ञा हो गयी है। एक समयकी बात है—मैं मृगका रूप धारणकर वहां विचर रहा था। मैंने देखा, देवतालोग मुझे पकड़नेके लिये प्रयास कर रहे हैं। मैं झट वहीं छिप गया। वे मुझे खोजनेमें व्यस्त हो गये। वत्स! तुम्हें यह प्रसङ्ग उन देवताओं और अप्सराओंको भी नहीं बताना चाहिये। मैंने उसे अनेक वर दिये, फिर मैं वहीं अन्तर्धान हो गया।'

(सनत्कुमारके प्रति ब्रह्माजीका कथन है—) जिस समय नन्दीको वर देकर भगवान् शंकर अन्तर्धान हो गये, उस समय उनके तेजसे सभी दिशाएँ जगमगा उठी थीं। उनके पास अनेक देवता आ गये थे। उनका दिव्य शरीर द्वितीयाके चन्द्रमाकी भाँति पूजनीय बन गया। मरुद्गणोंको साथ लेकर इन्द्र मनोगामी (इच्छानुसार चलनेवाले) रथपर बैठे और वहाँ आ गये। उनके वहाँ पहुँचते ही पर्वत-भाग तेजसे चमचमाने लगे। विविध जलचर जीवोंके स्वामी वरुण वर देनेके विचारसे अपने गणोंको साथ लेकर वहाँ आये। उनका अत्यन्त तेजस्वी विमान वज्र एवं स्फटिकमणिके समान चमक रहा था। उस पर्वतके शिखरपर धनके स्वामी कुबेरका भी आगमन हो गया। उनका विचित्र रथ तपाये हुए सुवर्णके द्वारा निर्मित था। धनाध्यक्षके साथ बहुत-से यक्ष एवं राक्षस भी आये

थे। सूर्यके समान प्रकाशमान करोड़ों विमानोंसे वे आये थे। उन विमानोंकी शोभा अलौकिक थी। अपने उत्तम पुण्योंसे सुशोभित कुबेर ऐसे जान पड़ते थे, मानो दूसरे सूर्य हों। सूर्य-चन्द्रमा तथा समस्त ग्रहमण्डल एवं नक्षत्रसमूह अग्निके समान तेजस्वी विमानोंपर चढ़कर आकाशसे धरातल-पर उतर आये। ग्यारह रुद्रों और बारह सूर्योंका भी वहाँ आगमन हो गया। दोनों अश्विनीकुमार उस महान् मुञ्जवान् पर्वतपर पधारे। विश्वेदेव, साध्यगण और तपस्वी बृहस्पति भी आये। विशाख नामसे विख्यात स्वामी कार्तिकेय तथा भगवान् विघ्नविनायक भी उस श्रेष्ठ पर्वतपर पधारे। वहाँ सैकड़ों मोर बोल रहे थे। नारद, तुम्बुरु, विश्वावसु, परावसु, हाहा-हूहू तथा अन्य भी अनेक प्रसिद्ध गन्धर्व इन्द्रकी आज्ञाके अनुसार विविध प्रकारके विमानोंद्वारा वहाँ आ गये। पवन-अग्नि धर्म-सत्य, ध्रुव तथा देवर्षि, सिद्ध, यक्ष, विद्याधर एवं गुह्यकोंका समुदाय भी वहाँ पहुँच गया। कई महान् आदरणीय ऋषि भी आये। गन्धकाली, घृताची, बुद्धा, गौरी, तिलोत्तमा, उर्वशी, मेनका, रम्भा, पुञ्जिकस्थला तथा ऐसी अन्य भी बहुत-सी अप्सराएँ उस मुञ्जवान् पर्वतपर आयीं। पुलस्त्य, अत्रि, मरीचि, वसिष्ठ, भृगु, कश्यप, पुलह, विश्वामित्र, गौतम, भारद्वाज, अग्निवेश्य, वृद्ध पराशर, मार्कण्डेय, अङ्गिरा, गर्ग, संवर्त, क्रतु, जमदग्नि, भार्गव और च्यवन—ये सभी महर्षि विष्णुकी तथा स्वर्गाध्यक्ष शक्रकी आज्ञासे वहाँ सामूहिक रूपसे आये थे।

स्त्री-पुरुषका रूप धारण करके सिन्धु, महानदी सरयू, ताम्रारुणा, चारुभागा, वितस्ता, कौशिकी, पुण्या, सरस्वती, कोका, नर्मदा, बाहुदा, शतद्रु, विपाशा, गण्डकी, सरिद्वरा, गोदावरी, वेणी, तापी, करतोया, सीना, चीरवती, नन्दा, चन्दना, चर्मण्वती, पर्णाशा, देविका, प्रभास, सोम, लौहित्य तथा गङ्गासागर एवं अन्य भी जितने अनेक पुण्य तीर्थ थे, वे सब भी इस समय वहाँ पृथ्वीपर पधारे। इन्द्रकी आज्ञासे मुञ्जवान् नामक उस उत्तम पर्वतपर सबका आगमन हो गया। पर्वतोंमें उत्तम महामेरु, कैलास, गन्धमादन, हिमवान्, हेमकूट, निषध, पर्वतप्रवर विन्ध्याचल, महेन्द्र, सह्य, मलयागिरि, दर्दुर, माल्यवान्, चित्रकूट, अत्यन्त ऊँचा द्रोणाचल, श्रीपर्वत, लताओंसे परिपूर्ण पर्वतराज पारियात्र—ये सभी पर्वतोंमें उत्तम माने जाते हैं। इन सबका तथा अनेक अरण्योंका भी वहाँ आगमन हो गया। सम्पूर्ण यज्ञ, समस्त विद्याएँ, चारों वेद, धर्म, सत्य, दम, स्वर्ग, महान् ऋषि कपिल, महाभाग वासुकि, सर्पराज, अमृताशी, हजारों फणोंसे प्रकाशमान अनन्त शेषनाग, धृतराष्ट्र, सर्पोंके राजा किर्मीर, श्रीमान् अम्भोचर, महान् तेजस्वी नागराज तथा सर्पोंके अध्यक्ष, अरबों एवं खरबों सर्प वहाँ आये। विद्युज्जिह्व, द्विजिह्वेन्द्र, शङ्खवर्मा, महाद्युति, तीनों लोकोंमें विख्यात धीमान् अनिमिषेश्वर, विरोचनकुमार सत्य, स्फोटमणि, सनैचीत, पर्वतकी भाँति अचल रहनेवाले तथा सैकड़ों फणोंसे युक्त शृंग, अरिमेजयके साथ सर्पराज प्रज्ञावान् नागराज विनत, भूरि, कम्बल और अश्वतर, सर्पोंके राजा पराक्रमी एकापत्र, नागोंके अध्यक्ष कर्कोटक एवं धनंजय—इस प्रकारके महान् पराक्रमी अनेकों भुजगेन्द्र मुञ्जवान् पर्वत-पर आये। दिन-रात, पक्ष-मास, संवत्सर, आकाश, पृथ्वी, दिशाएँ और विदिशाएँ वहाँ आयीं। उस समय आये हुए देवताओं, यक्षों और सिद्धोंसे उस मुञ्जवान् पर्वतका शिखर इस प्रकार भर गया, जैसे प्रलयकालमें समुद्रका किनारा जलसे परिपूर्ण हो जाता है। जब उस पर्वतराज मुञ्जवान्‌के सुरम्य शिखरपर देवताओंका समाज जुट गया तो वायुसे प्रेरित होकर वृक्षोंने उनपर फूलोंकी वृष्टि आरम्भ कर दी। उस समय दिव्य गन्धर्वोंने उत्तम संगीत, अप्सराओंने प्रशंसनीय नृत्य और पक्षियोंने प्रसन्न होकर मधुर स्वरसे सुन्दर शब्द करना प्रारम्भ कर दिया। पवन पुण्य गन्धोंको लेकर प्रवाहित होने लगे। उसके स्पर्शसे सबका मन मुग्ध हो जाता था। इस



रुद्रावतार भगवान् शिव

[पृष्ठ सं० १६७]

प्रकार भगवान् विष्णुको आगे कर सभी देवता वहाँ उपस्थित हुए और देखा कि नन्दी सामने विराजमान हैं तथा दिव्य आभासे उनकी मूर्ति विद्योतित हो रही है। अब वहाँ आये हुए गन्धर्वों और अप्सराओंके गणोंपर नन्दीकी भी दृष्टि पड़ी। उन्होंने देखा कि अन्य सभी देवता तथा देवराज इन्द्र भी एक साथ ही वहाँ पधारे हैं। फिर तो नन्दी सावधान हो गये और उन्होंने हाथ जोड़ तथा मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। सहसा एक साथ सभी देवताओंका आगमन देखकर उन्हें महान् आश्चर्य हुआ। फिर वे सबके स्वागत करनेमें संलग्न हो गये। उपस्थित सभी देवताओंको क्रमशः नमस्कार करनेके पश्चात् उन्होंने उनके लिये यथाशीघ्र आसन, पाद्य एवं अर्घ्य आदिके लिये अपने अनुयायियोंको आदेश दिया। नन्दीके स्वागतको स्वीकारकर आदित्य, वसु, रुद्र, मरुत्, अश्विनीकुमार, साध्य, विश्वेदेव, गन्धर्व, और गुह्यक आदि देवताओं तथा गण-देवताओंने नन्दीकी प्रशंसा की। विश्वावसु, हाहा-हूहू, नारद, तुम्बुरु, चित्रसेन और अन्य गन्धर्वोंने नन्दीकी भी पूजा की। वासुकिप्रभृति नाग सर्पोंके राजा कहे जाते हैं। उनमें असीम शक्ति है। सौम्य-मूर्ति नन्दीश्वरको देखकर उन सबोंने भी उनकी अर्चना की। सिद्ध, चारण, विद्याधर और अप्सराओंका उपस्थित समाज देवेश्वर इन्द्रसे सम्मानित नन्दीश्वरकी पूजा करने लगा। यक्ष, विद्याधर, ग्रह, समुद्र, पर्वत, सिद्ध, ब्रह्मर्षि-गण, गङ्गा आदि नदियाँ—इन सभीमें अपार हर्ष उत्पन्न हो गया था, अतः सभीने नन्दीश्वरको आशीर्वाद देना आरम्भ किया।'

देवता बोले—'मुने! पशुपति भगवान् शंकर तुमपर सदा प्रसन्न रहें। अनघ! तुम्हारी सर्वत्र अबाध गति हो जाय अथवा द्विजवर! तुम्हें ऐसी शक्ति सुलभ हो जाय कि कोई भी देवता तुमसे श्रेष्ठ न हो सके। विभो! रोग-व्याधि तुम्हारे पास न आ सके। तुम अमर होकर विचरण कर सकोगे। अच्युत! भगवान् शंकरके साथ सातों लोकोंमें सुखसे रहनेका तुम्हें सौभाग्य प्राप्त हो।' देवताओंके इस प्रकार कहनेपर नन्दीश्वरने पुनः उनसे अपना विचार इस प्रकार व्यक्त करना आरम्भ किया।

नन्दिकेश्वर बोले—'आप सभी प्रधान देवता हैं और मुझपर आप सभीका अगाध स्नेह है। आप महानुभावोंने जो प्रिय बात कहकर मुझे आशीर्वाद दिया है, उसके लिये मैं आपलोगोंका अत्यन्त आभारी हूँ। अब आपलोगोंके लिये मुझे क्या करना चाहिये? इसके लिये आप आज्ञा देनेकी कृपा करें। देवताओ! मैं आपका आज्ञाकारी हूँ।' नन्दीश्वरकी यह बात सुनकर इन्द्रने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया।

शक्र बोले—'भद्र! तुम यह बतलाओ कि भगवान् शंकर कहाँ गये? और इस समय वे कहाँ विराज रहे हैं? विप्रवर! देवताओंके अध्यक्ष उन शक्तिशाली शिवको हम सभी लोग देखना चाहते हैं। मुने! जिन्हें स्थाणु, उग्र, शिव, शर्व एवं महादेव कहते हैं। उन भगवान् शंकरको यदि तुम जानते हो कि वे इस समय कहाँ हैं। महर्षे! वह स्थान यथाशीघ्र मुझे बतानेकी कृपा करो।' वज्रपाणि इन्द्रकी यह बात बुद्धिमत्तापूर्ण थी। उसे सुनकर नन्दीने भगवान् शंकरका स्मरण किया। साथ ही वे इन्द्रको उत्तर देनेके लिये भी उद्यत हो गये।

नन्दिकेश्वरने कहा—'देवेन्द्र! आप स्वर्गके स्वामी हैं। इसके विषयमें यथार्थ बात सुनानेकी आप कृपा करें। इसी मुञ्जवान् पर्वतपर मैंने भगवान् शंकरकी पूजा की थी। वे परम शक्तिशाली पुरुष हैं। उन्होंने मुझपर प्रसन्न होकर अनेक दिव्य वर प्रदान किये। फिर वे प्रभु परम प्रसन्न होकर यहाँसे कहीं अन्यत्र चले गये। अब उनकी जानकारी करनेमें मैं भी समर्थ नहीं हूँ। वासव! मैं आपका आज्ञाकारी हूँ। यदि आप उनके विषयमें मुझे आज्ञा देते हैं तो अब हम सभी प्रयत्नपूर्वक उन प्रभुका अन्वेषण करनेका प्रयास करें।'

(अध्याय २१४)

गोकर्णेश्वर तथा जलेश्वरके माहात्म्यका वर्णन

ब्रह्माजी कहते हैं—इसके बाद सम्पूर्ण देवताओंके साथ परामर्श कर इन्द्रने भगवान् शंकरके पास जानेका विचार किया। सभी देवता उस ऊँचे शिखरसे उठे और नन्दीके साथ आकाशमार्गसे उन्होंने प्रस्थान कर दिया। भगवान् रुद्रके अन्वेषण करनेमें तत्पर होकर अखिल देवताओंने स्वर्गलोक, ब्रह्मलोक और नागलोक सर्वत्र छान डाला तथा वे उन्हें ढूँढते-ढूँढते थक गये, पर उनका पता न चला। अब उनके मनमें निराशा छा गयी। रुद्रका पता न देख उन्होंने चारों समुद्रोंपर्यन्त सात द्वीपोंवाली पृथ्वीपर भी ढूँढना आरम्भ किया। फिर वे वनोंसे युक्त महान् पर्वतोंकी कन्दराओं और उनके ऊँचे शिखरोंपर भी गये तथा उन्हें गहन निकुञ्जों और क्रीडा-स्थलोंमें भी सब ओर खोजते रहे। उनके इस ढूँढनेके प्रयाससे इस पृथ्वीके तृणोंके भी टुकड़े-टुकड़े हो गये; पर इतना प्रयत्न करनेपर भी भगवान् शंकरको प्राप्त करनेमें देवताओंको सफलता न मिली और भगवान् शंकरका दर्शन उन्हें न मिल सका। अतः देवतालोग अत्यन्त उदास हो गये।

आगेके कर्तव्यके सम्बन्धमें परस्पर विचार-विमर्श और वार्तालाप करनेके पश्चात् वे सभी देवता मेरी (ब्रह्माकी) शरणमें आये। तब मैंने मनको सावधान करके संसारको कल्याण प्रदान करनेवाले उन शंकरका समाहित मनसे ध्यान किया। उनके वेश और अलंकारोंके ध्यान करनेसे मुझे एक उपाय सूझ गया। फिर मैंने देवताओंसे कहा—'हमलोगोंने निरन्तर अन्वेषण करते हुए सारी त्रिलोकी छान डाली है, किंतु भूमण्डलपर 'श्लेष्मातक'वन नामक स्थानपर नहीं गये। अतएव प्रधान देवताओ! हम सभी लोग यहाँसे उस देशमें चलें।' इस प्रकार कहकर उन सम्पूर्ण देवताओंके साथ हमलोग उस दिशाकी ओर प्रस्थित हो गये और शीघ्रगामी विमानोंपर चढ़कर तत्क्षण 'श्लेष्मातक'वनमें* पहुँच गये। वह पुण्यमय स्थान सिद्ध और चारणोंसे सेवित था। वहाँ पर्वतोंकी बहुत-सी कन्दराएँ तथा अनेक प्रकारके पवित्र एवं परम रमणीय स्थान ध्यान करनेके उपयुक्त थे। उनमें सभी गुणोंकी अधिकता थी। अनेक सुन्दर आश्रम, उद्यान और स्वच्छ जलवाली नदियाँ शोभा बढ़ा रही थीं। उस वनमें श्रेष्ठ सिंह, भैंसे, नीलगाय, भालू-बंदर, हाथी और मृगोंके झुंड शब्द कर रहे थे। सिद्ध आदि पुरुषोंसे वह स्थान भरा था।

देवताओंने इन्द्रको आगे करके उसमें प्रवेश किया। वहाँ वे रथ आदि सवारियोंको छोड़कर पैदल ही गये। फिर हम सभी कन्दराओं, झाड़ियों एवं वृक्षोंसे भरे हुए सघन वनोंमें सम्पूर्ण देवताओंके स्वरूप भगवान् रुद्रको खोजनेमें संलग्न हो गये। आगे जानेपर हमें एक अत्यन्त सुन्दर वन मिला, जो सभी वनोंका अलंकार था। वहाँ बहुत-सी पर्वतीय नदियाँ और फूले हुए अनेक वृक्ष उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। सभी देवताओंने उसमें प्रवेश किया। नदियोंके तटपर कुन्द तथा चन्द्रमाके समान स्वच्छ वर्णवाले हंस विचर रहे थे। फूलोंसे अच्छी गंध निकल रही थी, जिसके कारण वह वन सुवासित हो रहा था। वहाँ बिखरी हुई बालुकाएँ ऐसी प्रतीत होती थीं, मानो मोतियोंके चूर्ण हैं। उसी स्थानपर कोई क्रीडा करती हुई मनको मुग्ध करनेवाली एक कन्या दिखायी पड़ी। सभी देवताओंने उसे देखकर मुझे सूचित किया; क्योंकि सम्पूर्ण देवताओंका मैं अग्रणी

---

* यह 'श्लेष्मातक'-वन उत्तर-गोकर्णका ही नामान्तर है, जो पशुपतिनाथ (नेपाल)से केवल दो मीलकी दूरीपर है—Sleshmâtaka Vana is Uttar (North) Gokarṇa, two miles to the north east of Paśupatinâtha in Nepal, on the Bagmati river. (Śivapurâṇa 3. 215, Varâhapurâṇa 13. 16, Wright's History of Nepal P. 82 10, Nandolal, Dey's Geographical Dictionary. P. 188)

था। मैं सोचने लगा यह क्या बात है? फिर मैं एक मुहूर्ततक ध्यानस्थ हो गया। तभी मुझे उस कन्याके विषयमें सहसा ज्ञान हुआ। मैंने सोचा, संसारके शासक शंकरकी मूल शक्ति, जिन्हें गिरिराज हिमालयकी पुत्री होनेका गौरव मिल चुका है, निश्चय ही ये वही भगवती 'उमादेवी' ही हैं। इसके बाद सभी प्रधान देवता उस पर्वत-शिखरके ऊपर चढ़ गये और वहाँसे नीचेकी ओर देखने लगे। तब उन सभीको सुरसत्तम शंकरका दर्शन प्राप्त हुआ। उस समय वे प्रभु मृग-समूहके बीचमें उनके रक्षककी भाँति विराजमान थे। उनके सिरपर एक सींग और एक पैर था। वे तपाये हुए सोनेकी भाँति चमक रहे थे। उनका प्रत्येक अङ्ग गठित, उनके मुख, नेत्र सुडौल और सुंदर थे तथा उनके दाँत बड़े सुन्दर थे।

उस समय ऐसे मृगरूपधारी भगवान् रुद्रको देखकर सभी देवता शिखरसे उतरकर उनकी ओर दौड़े। उन मृगेन्द्रको पकड़नेके लिये उनके मनमें तीव्र अभिलाषा जग गयी थी। अतः बड़े वेगसे वे सब प्रकारके उद्यममें तत्पर हो गये। फिर तो इन्द्रने सींगके अगले भागको पकड़ लिया, मैं भी वहीं था। मैंने बड़ी श्रद्धाभक्तिसे उनके सींगके मध्यभागमें अपना हाथ लगाया। यही नहीं, उन महात्माके सींगके मूलभागको श्रीहरिने भी पकड़ लिया। फिर इस प्रकार तीनोंके पकड़ लेनेपर वह सींग तीन भागोंमें विभक्त हो गया। इन्द्रके हाथमें अगला भाग, मेरे हाथमें बीचका भाग और विष्णुके हाथमें मूलभाग शोभा पाने लगा। इस भाँति उसके तीन रूप हो गये। इस प्रकार हम लोगोंने जब सींगके तीनों भागोंको अपना लिया, तब वे प्रधान मृगरूपधारी शंकर सींग-रहित होकर वहाँ ही अन्तर्धान हो गये। फिर हमलोगोंके लिये वे अदृश्य हो गये और आकाशमें चले गये तथा उपालम्भ देते हुए कहने लगे—'देवताओ! मैंने तुम्हें ठग लिया। तुमलोग स्वयं हमें प्राप्त नहीं कर सकोगे। मैं शरीरी होकर तुम्हारे हाथ लग गया था; किंतु छुड़ाकर यहाँ आ गया। अब तुमलोग केवल मेरे सींगसे ही संतोष करो। तुमलोग मेरे वास्तविक रूपसे वञ्चित हो गये। मैं अपने पूरे शरीरसे रह सकूँ तो धर्म भी अपने चारों पैरोंसे रहने लगे। यह मेरा सिद्धान्त है।

'देवताओ! यह 'श्लेष्मातक' वन है। यहीं मेरे शृङ्गोंको विधिपूर्वक स्थापित कर देना चाहिये। इस कार्यसे जगत्का कल्याण होगा। यह वन अत्यन्त महान् पुण्यक्षेत्र होगा। मेरे प्रभावसे प्रभावित इस स्थानपर महान् यज्ञ सम्भाव्य है। भू-मण्डलपर जितने तीर्थ, समुद्र तथा नदियाँ हैं, मेरे लिये वे सब यहाँ आयँगे। हिमवान् पर्वतोंके राजा हैं। उनके एक शुभ प्रदेशका नाम नेपाल है। मैं वहाँ पृथ्वीसे स्वयम्भू-रूपमें स्वतः प्रकट होऊँगा। मेरे उस विग्रहमें चार मुख होंगे और मेरा सिर प्रचण्ड तेजसे प्रकाशित होगा। फिर तीनों लोकोंमें सब जगह शरीरेश (पशुपतिनाथ)*के नामसे मेरी ख्याति होगी। वहीं नागह्रद नामसे प्रसिद्ध एक विशाल ह्रद होगा। सम्पूर्ण प्राणियोंका हित करनेके विचारसे मैं उसके जलमें तीस हजार वर्षोंतक निवास करूँगा। जिस समय वृष्णिकुलमें भगवान् श्रीकृष्णका अवतार होगा और वे इन्द्रकी प्रार्थनासे अपने चक्रद्वारा पर्वतोंको उखाड़कर दानवोंका संहार करेंगे, उस समय वह म्लेच्छोंसे भरा प्रदेश शुद्ध होगा, बहुत-से सूर्यवंशी क्षत्री उत्पन्न होंगे और उनके प्रयाससे म्लेच्छोंकी सत्ता समाप्त हो जायगी। साथ ही क्षत्रियगण उस देशमें ब्राह्मणोंको बसायँगे और उन ब्राह्मणोंकी सहायतासे प्रचलित धर्मोंकी स्थापना करेंगे। उन्हें अविनाशी एवं अचल राज्यकी उपलब्धि हो जायगी। पहले कुछ दिनोंतक वह प्रान्त शून्य रहेगा। पश्चात् क्षत्रियवंशमें उत्पन्न वे राजा लोग मुझे उस शून्य स्थानमें प्राप्तकर मेरे अर्चा-

* यह सारा वर्णन स्पष्ट ही नेपालके 'पशुपतिनाथ'का ही है।

विग्रहकी प्रतिष्ठा करेंगे। इसके बाद वह स्थान प्रसिद्ध ब्राह्मणों तथा सम्पूर्ण वर्णाश्रमोंसे सम्पन्न होकर एक महान् जनपद बन जायगा। उस जनपदके विस्तृत भागमें राजाओंका सम्यक् प्रकारसे निवास होगा और सामान्य जनता वहाँ सुखपूर्वक निवास करने लगेगी। सभी प्राणी प्रत्येक समयमें वहाँ मेरी आराधना करेंगे। जो सज्जन एक बार भी विधिके साथ मेरी वन्दना एवं दर्शन करेंगे, उनके सम्पूर्ण पाप भस्म हो जायँगे। साथ ही वे शिवपुरीमें जायँगे और वहाँ उन्हें मेरा दर्शन प्राप्त हो जायगा। मेरा यह स्थान गङ्गासे उत्तर और अश्विनी-मुखसे दक्षिणमें चौदह योजन दूरीके विस्तारमें होगा, ऐसा समझना चाहिये। वाग्मती नामकी नदी हिमालय-के ऊँचे शिखरसे निकलकर उसकी शोभा बढ़ायगी। उस वाग्मती नदीका शुद्ध जल भागीरथी गङ्गासे भी सौगुना अधिक पवित्र कहा गया है। उसमें स्नान करनेके प्रभावसे मानव विष्णु और इन्द्रके लोकोंका स्पर्श करके शरीर त्यागनेके पश्चात् सीधे मेरे लोकमें पहुँच जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं। इस क्षेत्रमें निवास करनेवाले घोर पापकर्मा ही क्यों न हों, उन्हें भी यह गति सुलभ हो जाती है। इन्द्रकी नगरीमें जो नियमपूर्वक निवास करनेवाले देवता, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, उरग, मुनि, अप्सरा तथा यक्षप्रभृति हैं, वे सभी मेरी मायासे मोहित होनेके कारण मेरे उस गुह्य स्थानको जाननेमें असफल हैं।

'सुरोत्तमो! तपस्वियोंके लिये यह तपोभूमि एवं सिद्धक्षेत्र कहा गया है। विद्वान् पुरुष प्रभास, प्रयाग, नैमिषारण्य, पुष्कर और कुरुक्षेत्रसे भी बढ़कर उस क्षेत्रकी महिमा बताते हैं। वहाँ मेरे श्वशुर पर्वतराज हिमवान् स्वयं विराजते हैं। गङ्गा, जो नदियोंमें उत्तम मानी जाती हैं। उनका तथा अन्य कई श्रेष्ठ नदियोंका वहींसे उद्गम होता है। वह उत्तम क्षेत्र परम पुण्यमय है। सभी श्रेष्ठ नद-नदियाँ तथा तीर्थ वहाँसे प्रकट होते हैं। वहाँके सभी पर्वत पुण्यस्वरूप हैं। वही मेरा आश्रम होगा। सिद्ध और चारण उस आश्रमकी सेवा करेंगे। वहाँ मेरा विग्रह शैलेश्वर नामसे विख्यात होगा। धारारूपसे बहनेवाली नदियोंमें श्रेष्ठ एवं पुण्यमयी वाग्मती नामकी नदी भी वहाँसे बढ़कर हिमालय आयगी। भागीरथी और वेगवती नामकी नदियाँ परम पवित्र हैं। इनका कीर्तन करनेसे भी मनुष्योंका पाप भस्म हो जाता है और दर्शन करनेसे तो प्राणी सम्पूर्ण ऐश्वर्योंको प्राप्त कर लेता है। इन श्रेष्ठ नदियोंका जल पीने तथा अवगाहन करनेसे पुरुष अपने सात कुलोंको तार देता है। उस तीर्थकी महिमाको स्वयं लोकपाल भी गाते हैं। वहाँ जो स्नान करते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं और जिनकी वहाँ मृत्यु होती है, उन्हें पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता। जो लोग बार-बार वहाँ नित्य स्नान और मेरी पूजा करते हैं, उनपर परम प्रसन्न होकर मैं संसार-सागरसे उनका उद्धार कर देता हूँ। जो उसके जलसे भरा हुआ एक घड़ा लाकर मनको पवित्र करके श्रद्धापूर्वक उससे मुझे स्नान कराता है, वह वेद एवं वेदाङ्गके ज्ञाता श्रोत्रिय ब्राह्मणकी सहायतासे मेरा अभिषेक करता है, उसे अग्निहोत्रका फल सुलभ हो जाता है। उसके तटपर जलका भेदन करके मृगशृङ्गोदक नामसे प्रसिद्ध मेरी एक प्रतिमा प्रकट हुई है, जो मुनिजनोंको अत्यन्त प्रिय है। वहाँ सावधान होकर सिरपर जल फेंकते हुए स्नान या अभिषेक करना चाहिये, इससे जीवनभरके किये हुए सभी पाप उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं। वहीं 'पञ्चनद' नामका भी एक पवित्र तीर्थ है, जहाँ ब्रह्मर्षिगण निवास करते हैं। वहाँ केवल स्नान करनेमात्रसे प्राणी 'अग्निष्टोम' यज्ञका फल प्राप्त कर लेता है। वाग्मती नदी यहाँ साठ हजार दिव्य गौवोंकी रक्षा करती है, अतः उसे कृतघ्न अथवा पापी मानव प्राप्त करनेमें असमर्थ हैं। जो सदा पवित्र रहते हैं, इष्टदेवतापर जिनकी श्रद्धा रहती है तथा जो सत्यका पालन करते हैं,

ऐसे मानवोंको ही बाग्मतीमें स्नान करनेका सौभाग्य प्राप्त होता है और वे उत्तम गतिको प्राप्त कर लेते हैं। जो दुःखी, भयभीत एवं संतप्त मनुष्य हैं अथवा जो व्याधियोंसे सतत कष्ट पाते रहते हैं, ऐसे व्यक्ति भी यदि इसमें स्नानकर मुझ 'पशुपतिनाथ'का दर्शन यहाँ करते हैं तो वे परम पवित्र हो जाते हैं और उन्हें शाश्वत शान्ति प्राप्त हो जाती है, इसमें कोई संशय नहीं है। उसमें स्नान करनेवाले पुरुषके सम्पूर्ण पाप मेरी कृपासे नष्ट हो जाते हैं, इतना ही नहीं, ईति* आदि सभी उग्र उपद्रव भी सर्वथा शान्त हो जाते हैं। बाग्मती सम्पूर्ण नदियोंमें प्रधान है। उसके जलमें जो स्नानकर मेरा दर्शन करते हैं, उनके अन्तःकरण शुद्ध एवं पवित्र हो जाते हैं। इस 'बाग्मती'के जलमें मानव जहाँ-जहाँ स्नान करता है, वहाँ-वहाँ उसे राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। यह क्षेत्र एक योजनके भीतर चारों ओर फैला हुआ है।

जिस स्थानपर मैं स्वयं नागेश्वर रुद्ररूपमें विराजमान रहता हूँ, उसको मूल क्षेत्र जानना चाहिये। उसके पूर्व और दक्षिणके भागमें नागराज वासुकिका एक स्थान है। ये हजार अन्य नागोंके साथ मेरे दरवाजेपर सदा स्थित रहते हैं। जो लोग मेरे क्षेत्रमें प्रवेश करना चाहते हैं, वासुकिका काम उनके सामने विघ्न उपस्थित करना है। पर जो पहले उन्हें नमस्कार करके फिर मुझे प्रणाम करने आनेका कार्यक्रम बनाते हैं, उन प्रवेश करनेवाले पुरुषोंके सामने किसी प्रकारका भी विघ्न उपस्थित नहीं हो पाता। उस क्षेत्रमें जाकर जो मनुष्य परम भक्तिके साथ सदा मेरी वन्दना करता है, उसे पृथ्वीपर राजा होनेका सुयोग मिलता है और सभी प्राणी उसका अभिवादन करते हैं। जो मनुष्य गन्धों और मालाओंके द्वारा मेरी मूर्तिका अभ्यर्चन करता है, वह 'तुषित'संज्ञक देवताओंकी योनिमें पैदा होता है, इसमें कोई संशय नहीं। जो व्यक्ति मेरे उस पर्वतपर श्रद्धापूर्वक प्रज्वलित दीप प्रदान करता है, उसकी उत्पत्ति 'सूर्यप्रभ' नामक देवताओंकी योनिमें होती है। जो लोग संगीत-वाद्य, नृत्य-स्तुति अथवा जागरण करके मेरी सेवा, उपासना करते हैं, वे मेरे लोकमें निवासके अधिकारी हो जाते हैं। जो प्राणी दही, दूध, मधु, घृत अथवा जलसे मुझे स्नान कराते हैं, उनपर, बुढ़ापा रोग और मृत्युका वश नहीं चलता। जो मानव श्राद्धके अवसरपर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको इस स्थानमें भोजन कराता है, उसे स्वर्गमें अमृत पान करनेका अवसर मिलता है और देवतालोग उसका आदर करते हैं। जो ब्राह्मण इस क्षेत्रमें अनेक प्रकारके व्रत-उपवास, भाँति-भाँतिके हवन, स्वादिष्ठ नैवेद्य आदि उपचारोंके द्वारा समुचित श्रद्धासे सम्पन्न होकर मेरी आराधना करते हैं, उन्हें साठ हजार वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करनेका अवसर मिलता है। इसके पश्चात् उन्हें पुनः मृत्युलोकमें आना पड़ता है और उन्हें सभी ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं।

यहींके एक स्थान का नाम 'शैलेश्वर' भी है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा स्त्री ही क्यों न हो, यदि वहाँ जाकर भक्तिके साथ मेरी उपासना करते हैं, उन्हें मेरे पार्षद होनेकी सुविधा मिलती है और वे सदा मेरे गणों तथा देवताओंके साथ आनन्दका उपभोग करते हैं। यह 'शैलेश्वर'

* अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभा मूषकाः शुकाः। प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः॥ (कामान्दक-नीतिसार)
अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी, चूहे, पक्षी, और बगलके राजा—इन छहोंको 'ईति' कहते हैं।

† यह वासुकिनाथका वर्णन है। यह देवघर वैद्यनाथ-धामसे २८ मीलपर दुमका जानेवाली सड़कपर है। यहाँ नागेश्वर-ज्योतिर्लिङ्ग है। द्रष्टव्य 'कल्याण'का 'तीर्थाङ्क'-पृष्ठ-१७५।

परम गुह्य स्थान है। इस भूमण्डलमें उससे श्रेष्ठ कहीं भी कोई दूसरा क्षेत्र नहीं है। ब्राह्मण, गुरु अथवा गौका जिसके द्वारा हनन हो गया है अथवा जो सम्पूर्ण पापोंसे लिप्त है, ऐसा मानव भी इस क्षेत्रमें आकर पापोंसे मुक्त हो जाता है। यहाँपर अनेक प्रकारके तीर्थ तथा बहुत-से पवित्र देवता निवास करते हैं। इस तीर्थका जल उनसे सम्बद्ध है। अतः जो मानव उन जलोंका स्पर्श करता है, वह अखिल अघोंसे छुटकारा पा जाता है।

उसके दो कोसकी दूरीपर 'कोशोदक' नामसे प्रसिद्ध एक पवित्र तीर्थ है, जो देवताओंद्वारा निर्मित है। यह मुनियोंको बहुत प्रिय है। यहाँ स्नान करनेसे मनुष्य पवित्र हो जाता है तथा उसका मन वशमें हो जाता है तथा उसकी सत्यमें रुचि होती है। साथ ही वह पुरुष सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर सभी प्रकारके उत्तम फलका भागी बन जाता है। महात्मा शैलेश्वरके दक्षिण भागमें वह अविनाशी तीर्थ है। जो पुरुष वहाँ जाता है, उसे उत्तम गति प्राप्त होती है। वहीं 'भृगुप्रपतन' नामका स्थान है। उसके प्रभावसे मानव काम और क्रोधसे रहित होकर विमानके द्वारा स्वर्गमें सिधार जाता है। अप्सराओंके समुदायसे उसे सहायता मिलती रहती है। 'भृगुप्रपतन'के आगे एक ब्रह्मोद्भेद नामसे विख्यात तीर्थ है। इसके निर्माता स्वयं ब्रह्माजी हैं। उसका जो फल है, वह भी मैं कहता हूँ; सुनो! जो पुरुष संयमशील बनकर एक वर्षतक वहाँ स्नान करता है, वह ब्रह्माजीके 'विरज'संज्ञक लोकमें जाता है, इसमें कोई संशय नहीं। वहीं 'गो-रक्ष' नामका एक तीर्थ है। उस स्थानपर गायों और बैलोंके अनेक पद-चिह्न हैं। उनका दर्शन करनेसे पुरुषको हजार गोदानका फल मिलता है। वहाँ 'गौरीशिखर' (गौरीशंकर) नामक भगवती गौरीका एक शिखर (चोटी) है, जहाँ सिद्ध पुरुष निवास करते हैं। शिखरोंसे प्रेम रखनेवाली 'पार्वती देवी' वहाँ सदा विराजमान रहती हैं। वहाँ भी जाना चाहिये। संसारकी रक्षा करनेमें उद्यत जगन्माता भगवती उमा वहाँ विराजती हैं। उनके दर्शन, चरणोंके स्पर्श तथा अभिवादन करनेसे मानव उनके लोकमें जानेका अधिकारी हो जाता है। उनके स्थानसे नीचे बाग्मती नदी प्रवाहित होती है। उसके तटपर जो अपना प्राण त्यागता है, उसके सामने आकाशगामी विमान आता है और उसपर चढ़कर वह तुरंत ही भगवती उमाके लोकमें चला जाता है। वहीं देवी उमासे सम्बन्धित एक स्तनकुण्ड है। जो मानव उसमें स्नान करता है, वह अग्निके समान प्रकाशमान होकर स्वामिकार्तिकेयके लोकमें चला जाता है। यहीं पञ्चनद नामका एक पुण्य तीर्थ है। ब्रह्मर्षिगण वहाँ निवास करते हैं। वहाँ जाकर केवल स्नान करनेसे प्राणीको अग्निहोत्र यज्ञका फल मिल जाता है।

एक बार एक नकुलके मनमें सद्बुद्धि उत्पन्न हुई। अतः उसने सावधान होकर वहाँ स्नान किया। इससे उसका मन परम पवित्र बन गया और उसे पूर्वजन्मकी बात याद आ गयी। उसके उत्तर भागमें सिद्धपुरुषोंसे सेवित एक श्रेष्ठ तीर्थ है। उस गुह्यतीर्थका नाम 'प्रान्तकपानीय' है, जिसकी गुह्यकगण निरन्तर रक्षा करते हैं। जो मनुष्य वहाँ पूरे वर्षभर सदा स्नान करता है, उसे उत्तम बुद्धि प्राप्त होती है और वह गुह्यकका शरीर प्राप्त कर भगवान् रुद्रका अनुचर बन जाता है। इस शिखरपर निवास करने-वाली भगवती उमाके पूर्व, उत्तर और दक्षिण भागोंमें बाग्मतीकी धारा प्रवाहित होती है। यह पुण्य नदी हिमालयकी कन्दरासे निकली है। वहाँ ब्रह्मोद्भेद नामका एक दूसरा पवित्र तीर्थ भी है। वहाँ जाकर मानवको जलसे आचमन एवं स्नान करना चाहिये। इसके फलस्वरूप उसे मृत्युलोकका दर्शन नहीं होता। उसे किसी प्रकारकी बाधा कष्ट नहीं पहुँचा सकती। वहीं सुन्दरिका तीर्थ है। बहुत पहले ब्रह्माजीने उसका निर्माण किया

है। उसके जलमें स्नान करनेसे पुरुष सुन्दर रूपवाला और तेजस्वी हो जाता है। मनुष्यको चाहिये कि तीनों संध्याओंके समयमें वहाँ जाकर संध्योपासन करे। इससे वह पापसे मुक्त हो जाता है। बाग्मती और मणिवती—ये दोनों पवित्र नदियाँ हिमालयका भेदन करके निकली हैं। इन दोनोंमें पापनाश करनेकी पूरी शक्ति है। जो वेदका पूर्ण विद्वान् द्विज पवित्र होकर दिन-रात वहाँ निवास करता और रुद्रका जप करता है, वह अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त करता है। राजा उसका सम्मान करते हैं। उसके इस कर्मके प्रभावसे उसका सारा कुल तर जाता है। किसी प्रकारका व्यक्ति वहाँ स्नान करके तिल और जलसे तर्पण करता है तो उसके पितर तर जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है। जहाँ-जहाँ बाग्मती नदी प्रवाहित हुई है, वहाँ-वहाँ श्रेष्ठ पुरुषको स्नान करना चाहिये। इसके फलस्वरूप वह मानव तिर्यग्योनिमें जन्म पानेसे मुक्त हो जाता है। किसी समृद्ध कुलमें उसका जन्म होता है। बाग्मती और मणिवती इन दोनों नदियोंमें थोड़ा भेद है। ऋषिलोग यहाँ निवास करते हैं। बुद्धिमान् पुरुषका कर्तव्य है कि वह काम और क्रोधसे रहित होकर विधानपूर्वक गङ्गाद्वारमें स्नान करे। वहाँ स्नान करनेका जो महान् पुण्यफल बताया गया है, उससे कहीं दसगुना अधिक फल उक्त नदियोंमें स्नान करनेसे प्राप्त होता है, इसमें कोई संदेह नहीं। इस क्षेत्रमें विद्याधर, सिद्ध, गन्धर्व, मुनि, देवता और यक्ष इनका समुदाय आकर स्नान करता और उपासनामें सदा संलग्न रहता है। यहाँपर यदि ब्राह्मणोंको थोड़ा भी धन दानमें दिया जाय तो उस दानका पुण्य-फल अक्षय हो जाता है। अतएव देवताओ! सब प्रकारसे प्रयत्न करके यहाँ धर्म-कार्यका सम्पादन करना चाहिये। यह 'श्लेष्मातक'वन परमपुण्य क्षेत्र है। इसमें देवता निवास करते हैं। इससे बढ़कर दूसरा कोई उत्तम क्षेत्र है ही नहीं। प्रिय देववृन्द! मैंने मृगका रूप धारण करके जहाँ-जहाँ विचरण किया अथवा बैठा और सोया करता था, वहाँ-वहाँकी समूची, सब ओरकी भूमि सम्यक् प्रकारसे पुण्यक्षेत्र बन गयी है। सुरगणो! मेरे शृङ्गके ही ये तीन रूप बन गये थे, इसे भली प्रकार हृदयमें धारण कर लो। यह मेरा क्षेत्र पृथ्वीमें 'गोकर्णेश्वर'के नामसे प्रसिद्ध होगा।

इस प्रकार सनातन भगवान् रुद्रने देवताओंको आदेश देकर अपना रूप संवरण कर लिया। अब देवता उन्हें देखनेमें असमर्थ हो गये और वे उत्तर दिशाकी ओर चल पड़े। (अध्याय २१५)

'गोकर्णेश्वर' और 'शृङ्गेश्वर' आदिका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! मृगका रूप धारण करनेवाले भगवान् शंकर जब वहाँसे अन्यत्र चले गये तो मुझ सहित उपस्थित सभी प्रधान देवताओंने पुनः परस्पर विचार करना प्रारम्भ किया। उस समयतक भगवान् शंकरका शृङ्ग तीन भागोंमें बँट चुका था। देवसमुदायने यत्नकर वैदिक कर्मके अनुसार भलीभाँति पृथक्-पृथक् उनकी स्थापनाका प्रबन्ध किया। (भगवान् वराहका धरणीके प्रति कथन है—) देवि! वज्रपाणि इन्द्रके हाथमें सींगका अग्रभाग था। शक्तिशाली शंकरके शृङ्गका बिचला भाग (ब्रह्माजी कहते हैं—) मैंने ले रखा था। फिर देवराजने तथा मैंने उन भागोंको वहीं विधिपूर्वक स्थापित कर दिया। तब देवताओं, सिद्धों, देवर्षियों और ब्रह्मर्षियोंके प्रयाससे वह इस परम विशिष्ट मूर्तिकी 'गोकर्ण' नामसे प्रतिष्ठा हो गयी। श्रीहरिके हाथमें शृङ्गका मूलभाग पड़ा था। उन्होंने देवतीर्थसे उसकी स्थापना कर दी। वह विशाल विग्रह 'शृङ्गेश्वर'के नामसे वहीं सुशोभित हुआ। शृङ्गमें तीन

रूप धारण करके भगवान् शिव विराजते थे। वे ही उन सभी स्थानोंमें प्रतिष्ठित हो गये। वस्तुतः वे एक ही अनेक रूपोंमें अभिव्यक्त हैं। उन्होंने उस मृगके शरीरमें अपने सौ भागोंको स्थान दिया था। फिर उस शृङ्गमें तीन प्रकारसे विभक्त भागोंको स्थापित कर सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न भगवान् शंकर उस मृगरूपी शरीरसे पृथक् होकर हिमालय पर्वतके शिखरपर पधार गये। पर्वतोंके राजा हिमालयपर सर्वसमर्थ शिवकी सैकड़ों मूर्तियाँ सुप्रतिष्ठित हैं। ये तीन प्रकारके विग्रह प्रभुके एक सींगमें ही सर्वप्रथम सुशोभित थे।

भगवान् शंकर समस्त संसारके शासक हैं। देवता और दानव सभी उन्हें अपना गुरु मानते हैं। उस समय उन सभीने अत्यन्त कठिन तपस्याके द्वारा भगवान् शिवकी आराधना की और अनेक प्रकारके वर प्राप्त किये। 'श्लेष्मातक'वनका समस्त भूभाग चारों ओरसे देवताओं, दानवों, गन्धर्वों, यक्षों और महोरगोंके द्वारा भरा रहता था। तीर्थयात्राके विचारसे वे वहाँ आते और प्रदक्षिणा करनेमें संलग्न हो जाते थे। तीर्थोंके दर्शनसे फल प्राप्त होता है—यह भावना उनके मनमें भरी रहती थी तथा इस क्षेत्रका महान् फल भी उन्हें विदित था। प्रायः सभी सुरगण जहाँ-जहाँ तीर्थ हैं, वहाँ जाते और उस स्थानसे पुनः इस 'श्लेष्मातक'-तीर्थमें पधारते थे। एक दिन पुलस्त्य ऋषिका पौत्र रावण भी वहाँ आया। उसके साथ उसके दोनों भाई भी वहाँ आये थे। उसने अत्यन्त उग्र तपस्या करके भगवान् शंकरकी आराधना की। वहाँ सनातन श्रीशिवजी 'गोकर्णेश्वर' नामसे प्रतिष्ठित थे। जब रावणने उनकी असीम शुश्रूषा की, तब वे वर देनेमें कुशल प्रभु स्वयं उसपर संतुष्ट हो गये। ऐसी स्थितिमें रावणने तीनों लोकोंपर विजय पानेके लिये उनसे वर माँग लिया। अन्तमें भगवान् शंकरकी कृपासे उसकी सारी मनःकामनाएँ पूरी हो गयीं। उन परम प्रभुने रावणकी बार-बार सहायता की। फिर उसी क्षण त्रिलोकीपर विजय प्राप्त करनेके विचारसे उसने अपने नगरसे प्रस्थान कर दिया। तीनों लोकोंको जीतकर उसने इन्द्रपर भी अपना अधिकार जमा लिया। इन्द्रजित् नामका उसका पुत्र उसे सहयोग दे रहा था। उस समय बहुत पहले इन्द्रने जो भगवान् शम्भुके सींगका अग्रभाग लेकर अपने यहाँ स्थापित किया था, उसे अपने पुत्रसहित रावणने उखाड़ लिया। पर जब वह राक्षस उसे लेकर अपनी पुरीको जा रहा था और सिन्धुके तटपर पहुँचा तो उस मूर्तिको जमीनपर रखकर मुहूर्तभर संध्या करने लगा। फिर संध्या समाप्त होनेपर जब उसने उसे बलपूर्वक उठानेकी चेष्टा की तो वह उसे उठा न सका और वह मूर्ति वज्रके समान कठोर बन गयी। तब रावणने उसे वहीं छोड़ दिया और लङ्काकी यात्रा की। (भगवान् वराह पृथ्वीसे कहते हैं—) महामते! तुम्हें इसी मूर्तिको 'दक्षिणगोकर्णेश्वर' समझना चाहिये। भूतपति भगवान् शंकर वहाँ स्वयं प्रतिष्ठित हुए हैं।'

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! मैंने तुम्हें विस्तारके साथ ये सभी बातें कह सुनायीं। इसी तरह महात्मा गोकर्णकी उत्तर दिशामें भी प्रतिष्ठा हुई है। विप्रर्षे! जैसे दक्षिणमें भगवान् 'शृंङ्गेश्वर'की प्रतिष्ठा हुई है, उसी क्रमसे उत्तरमें भगवान् 'शैलेश्वर' विराजते हैं। वत्स! मैं तुमसे इस क्षेत्रके तीर्थोंकी महान् उत्पत्तिका प्रसङ्ग कह चुका। अब तुम मुझसे दूसरा कौन-सा प्रसङ्ग सुनना चाहते हो।

(अध्याय २१६)

वराहपुराणकी फल-श्रुति

सनत्कुमारजी कहते हैं—भगवन्! आपने यथावत् मेरी सभी शङ्काओंका निराकरण कर सारी बातें स्पष्ट कर दीं। मैं संशयकी बातें पूछता रहा और आप उन्हें भलीभाँति स्पष्ट करते रहे हैं। विश्वस्वरूप 'स्थाणु' जगदीश्वर भगवान् शंकर अप्रतिम तेजस्वी हैं। वे जंगलमें आनन्दपूर्वक विचर रहे थे। वह जंगल पुण्यक्षेत्र

था। महाभाग! जगत्का कल्याण करनेके लिये उनका विग्रह एवं श्रृङ्ग जिस प्रकार प्रतिष्ठित हुआ तथा जैसे वे स्थान तीर्थ बन गये, मैं उसे सुनना चाहता हूँ। जगत्प्रभो! आप यथार्थरूपसे उसका वर्णन करनेकी कृपा कीजिये।

ब्रह्माजीने कहा—महामुने! इन सभी तीर्थोंके फलका जो निश्चित रूप बतलाया गया है, उसका शेष भाग तुमसे पुलस्त्यजी कहेंगे*। तुम इस समय मुनियोंके अग्रणी बनकर इस वनमें विराजो। तात! तुम मेरे समान ही वेद और वेदाङ्गके तत्त्वको भलीभाँति जाननेवाले पुत्र हो। जो पुरुष इस प्रसङ्गको सुनेगा, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट जायगा। यही नहीं, वह यशस्वी, कीर्तिमान् होकर इस लोकमें और पर-लोकमें भी पूज्य होगा। चारों वर्णोंके व्यक्तियोंका कर्तव्य है कि वे मन और इन्द्रियोंको सावधान करके निरन्तर इस प्रसङ्गका श्रवण करें। यह कथानक परम मङ्गलस्वरूप, कल्याणमय, धर्म, अर्थ और कामका साधक, समस्त मनोरथोंका प्रदान करनेवाला, परम पवित्र, आयुवर्धक और विजय देनेमें सक्षम है। यह धन और यश देनेवाला, पापका नाशक, कल्याणकारी और शान्तिकारक है। इस पुराणको सुननेसे मनुष्यकी लोक-परलोकमें दुर्गति नहीं होती। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इसका श्रवण-कीर्तन करता है, वह स्वर्गमें प्रतिष्ठित होता है।

सूतजी कहते हैं—विप्रवरो! परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्माजीने सनत्कुमारजीसे ये सब बातें कहकर विराम लिया। उन सभी वार्तोंका मैंने भी आप लोगोंसे तत्त्वपूर्वक वर्णन किया। ऋषिवरो! भगवान् वराह और पृथ्वीदेवीके संवादका यह सारभाग है। जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक सदा इसका पठन, श्रवण अथवा मनन करेगा, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर परमगति प्राप्त करेगा। प्रभासक्षेत्र, नैमिषारण्य, हरिद्वार, पुष्कर, प्रयाग, ब्रह्मतीर्थ और अमरकण्टकमें जानेसे जो पुण्यफल प्राप्त होता है, उससे कोटि-गुणा अधिक फल इस पुराणके श्रवण एवं पठनसे होता है। श्रेष्ठ ब्राह्मणको कपिला दान करनेपर जो फल मिलता है, उतना फल इस वराहपुराणके एक अध्यायका श्रवण करनेसे हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। पवित्र होकर सावधानीके साथ इस पुराणके दस अध्यायोंका श्रवण करनेपर मनुष्य 'अग्निष्टोम' एवं 'अतिरात्र' यज्ञोंके फलका भागी हो जाता है। जो बुद्धिमान् व्यक्ति उत्तम भक्तिके साथ निरन्तर इसका श्रवण करता रहता है, उसे भगवान् वराहके वचनानुसार यज्ञों, सभी दानों तथा अखिल तीर्थोंके अभिषेकका फल प्राप्त हो जाता है, इसमें कोई संदेहकी बात नहीं। पुत्रहीन व्यक्ति इसके श्रवणसे पुत्रको और पुत्रवान् सुन्दर पौत्रको प्राप्त करता है। जिसके घरमें यह वराहपुराण लिखित रूपमें रहता है और उसकी पूजा होती है, उसपर भगवान् नारायण पूर्ण संतुष्ट हो जाते हैं।

वसुंधरे! इस पुराणका श्रवण करके सनातन भगवान् विष्णुकी भाँति चन्दन, पुष्प और वस्त्रोंसे पूजा करनी चाहिये और ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। यदि राजा हो तो उसे अपनी शक्तिके अनुसार ग्राम आदिका दान करना चाहिये। जो मानव पवित्र होकर संयत-चित्तसे इस पुराणका श्रवण करके इसकी पूजा करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर श्रीहरिका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। (अध्याय २१७)

* श्रीवराहपुराण समाप्त *

* यह वराहपुराणका अंश खिलरूप है, जिसपर आगेके लेखोंमें पर्याप्त विचार प्राप्त होगा।

वराहपुराणके ग्रन्थ-परिमाणकी समस्या

(लेखक—श्रीआनन्दस्वरूपजी गुप्त, एम्० ए०, शास्त्री)

प्राक्कथन

अठारह महापुराणोंकी सूची प्रायः सभी महापुराणोंमें दी हुई है। जो लगभग समान है, केवल क्रममें कुछ भेद है। ११वीं शताब्दीमें महमूद गजनवीके भारत-आक्रमणके समय अरबदेशीय विद्वान् अल्बेरूनीने, जो उस समय (१०३०ई०में) भारत आया था, पुराणोंकी दो सूचियाँ दी हैं। इनमें एक तो विष्णुपुराणकी सूची है, परंतु दूसरी सूची जो उसने दी है, उसमें 'पद्म,' 'भागवत,' 'नारदीय,' 'ब्रह्मवैवर्त,' 'अग्नि' तथा 'लिङ्गपुराण'के स्थानमें 'आदिपुराण,' 'नृसिंहपुराण,' 'नन्द*पुराण,' 'आदित्य-पुराण,' 'सोमपुराण' तथा 'साम्बपुराण'के नाम हैं। इनमेंसे चार पुराणों ('नरसिंह,' 'नन्दी†पुराण,' 'साम्ब' तथा 'पद्मपुराण')को 'मत्स्यपुराण' (५३। ६०-६३)में 'आदित्य-पुराण'तथा 'भविष्यपुराण'का उपभेद माना है। परंतु 'वराह-पुराण'का नाम महापुराणोंकी सभी सूचियोंमें संनिविष्ट है। अधिकतर सूचियोंमें उसे १२वाँ महापुराण माना है। 'पद्मपुराण' (आनन्दाश्रम-संस्करण, ६ । २६३ । ८१–८५) तथा 'मत्स्यपुराण'में वराहपुराणकी गणना सात्त्विक महापुराणोंमें की गयी है, क्योंकि उसमें भगवान् श्रीहरिका माहात्म्य विशेष है—

'सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः'

(मत्स्यपु० ५३ । ६८)

'मत्स्य'(अ० ५३), 'नारदीय' (१ । ९२–१०९), 'भागवत' (१२ । १३ । ४–८), 'देवीभागवत' (१ । ३ । ३–१२), 'ब्रह्मवैवर्त'(४ । १३३ । ११–२१), 'वायु' (१ । २२ । ३–१०), 'स्कन्द' (७ । २ । २८–७७) तथा 'अग्निपुराण' (२७२ । १–२३)में प्रत्येक महापुराणके ग्रन्थ-परिमाणका भी उल्लेख है। 'भविष्यपुराणके' अनुसार पहले प्रत्येक महापुराणका ग्रन्थ-परिमाण १२ हजार श्लोक ही था, जो बढ़ते-बढ़ते अनेक आख्यान-उपाख्यानोंसे युक्त होकर बहुत बड़े आकारको प्राप्त हो गया।

सर्वाण्येव पुराणानि संज्ञेयानि नरर्षभ।
द्वादशैव सहस्राणि प्रोक्तानीह मनीषिभिः॥
पुनर्वृद्धिं गतानीह आख्यानैर्विविधैर्नृप।

(भविष्यपुराण १ । १ । १०३-४)

इस प्रकार 'पुराण-वाङ्मय' बढ़ते-बढ़ते चार लाख श्लोकतक पहुँच गया—

'एवं पुराणसंदोहश्चतुर्लक्षमुदाहृतः।'

(श्रीमद्भागवत १२ । १३ । ९)

पुराण 'सर्वशास्त्रमय' हैं तथा ये मानवोपयोगी ज्ञानके एक 'विश्वकोश'-से हैं। उसमें समय-समयपर देश, कालके अनुसार यथोचित परिवर्धन तथा परिवर्तन भी होता रहा है, जो दूषण नहीं, भूषण ही है। यह पुराण-वाङ्मय प्रत्येक देश-कालमें धर्मके सम्बन्धमें परम प्रमाण माना गया है (भविष्यपुराण १ । १ । ६५)।

वराहपुराणका ग्रन्थ-परिमाण

१. पुराणोंमें उल्लिखित वराहपुराणका ग्रन्थ-परिमाण

इस समय जो मुख्य प्रश्न हमारे सामने है, वह वराहपुराणके ग्रन्थ-परिमाणके सम्बन्धमें है। पुराणोंमें १८ महापुराणोंकी जो सूचियाँ संनिविष्ट हैं, उनमेंसे उपर्युक्त मत्स्य, 'नारदीय' आदिमें 'वराहपुराण'का ग्रन्थ-परिमाण २४ हजार श्लोक दिया हुआ है। केवल अग्नि-पुराणमें यह परिमाण १४ हजार है। परंतु इस समय 'वराहपुराण'का एशियाटिक-सोसायटी तथा 'वेंकटेश्वरप्रेस'-के जो देवनागरी अक्षरोंमें मुद्रित संस्करण उपलब्ध हैं, उनमें भी ग्रन्थपरिमाण केवल १० सहस्रके ही लगभग हैं। 'बंगवासी' प्रेसके द्वारा बंगाक्षरोंमें मुद्रित संस्करणमें भी इतने

* तहकीकी हिंद—पृ० ६३, Sechau's—'Alberuni's India, P. 130, सं० ८ पर नन्दीकी जगह 'नन्द' शब्द ही है। 'हाजरा'के अनुसार 'हेमाद्रि'में तो 'नान्दपुराण' भी प्रयुक्त है।

† इस दूसरे स्थानपर यह नाम शुद्ध है।

ही श्लोक हैं और उत्तर भारतके सभी देवनागरी हस्त-लेखोंमें भी 'वराहपुराण'का लगभग इतना ही ग्रन्थ-परिमाण उपलब्ध है। शेष १४ सहस्र श्लोकोंका क्या हुआ यह प्रश्न अब विचारणीय है। सम्भव है, ये श्लोक वराहपुराण-में कभी रहे हों और बादमें कुछ नष्ट हो गये हों तथा कुछ भिन्न-भिन्न माहात्म्योंके रूपमें इधर-उधर बिखर गये हों। परंतु 'वराहपुराण'के अनेक श्लोक धर्मशास्त्रीय निबन्धग्रन्थोंमें तथा 'रामानुज' सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें उद्धृत हैं। उनमेंसे बहुत-से श्लोक इस समय मुद्रित 'वराह-पुराण'में तथा हस्तलेखोंमें उपलब्ध नहीं हैं। यह स्थिति लगभग सभी पुराणोंके साथ है।

२. उपलब्ध वराहपुराणका ग्रन्थ-परिमाण

इस समय उपलब्ध दशसहस्रात्मक 'वराहपुराण' अपूर्ण है। यह बात 'नारदीय' पुराणमें दी हुई विषय-सूची-से स्पष्ट है। 'नारदीय' पुराणमें 'वराहपुराण'के पूर्वभागकी जो विषय-सूची दी हुई है, केवल वही 'वराहपुराण'की मुद्रित तथा हस्तलिखित पुस्तकोंमें मिलती है।

'नारदीय'पुराणमें 'वराहपुराण'के उत्तरभागकी जो विषय-सूची दी हुई है, उसमें कथित विषय उपलब्ध 'वराह'-पुराणमें नहीं मिलते। 'नारदीय'-पुराणके अनुसार 'वराहपुराण'के उत्तरभागमें पुलस्त्य तथा कुरुराजके संवाद-के रूपमें सभी तीर्थोंका विस्तृत माहात्म्य, सम्पूर्ण धर्मोंका विवेचन तथा पौष्कर पुण्यपर्वका वर्णन है—

उत्तरे प्रविभागे तु पुलस्त्यकुरुराजयोः।
संवादे सर्वतीर्थानां माहात्म्यं विस्तरात् पृथक्॥
अशेषधर्माश्चाख्याताः पौष्करं पुण्यपर्व च।
इत्येवं तव वाराहं प्रोक्तं पापविनाशनम्॥
(नारदपु० १। १०३। १३-१४)

पर उपलब्ध 'वराहपुराण'में पूर्वभाग तथा उत्तरभाग-जैसा कोई विभाग प्राप्त नहीं होता। उसमें सीधे कुल २१७ अध्याय मात्र हैं। परंतु कुछ मुद्रित संस्करणोंमें और काशीके दो हस्तलेखोंमें अनुक्रमणिका नामका एक (२१८वाँ) अध्याय और जोड़ दिया गया है, जो अधिकतर हस्तलेखोंमें नहीं मिलता। परंतु २१७ अध्यायके आरम्भके श्लोकोंमें ऐसा निर्देश मिलता है कि २१७ अध्यायके पश्चात् वराहपुराणमें उत्तरभाग भी रहा होगा; यथा—

पुलस्त्यो वक्ष्यते शेषं यदतोऽन्यन्महामुने।
सर्वेषामेव तीर्थानामेषां फलविनिश्चयम्।
कुरुराजं पुरस्कृत्य मुनीनां पुरतो वने॥
(वराहपु० २१७। ४-५)

अतएव यही कहा जा सकता है कि वर्तमान समयमें उपलब्ध वराहपुराण पूर्ण नहीं है। इसका उत्तरभाग जो 'नारदीय'-पुराणके समयतक मिलता था, वह अब अप्राप्य है।

'बंगवासी'-प्रेसके बंगाली संस्करणमें भी यह अनु-क्रमणिका ज्यों-की-त्यों दी हुई है। 'श्रीवेंकटेश्वर' प्रेसके संस्करणमें इस अनुक्रमणिकाके अन्तमें लिखा हुआ है—

'इति श्रीगौडलनिवासिकालिदासतनूजनुषा जीवनरामशर्मणा विनिर्मिता श्रीवराहपुराणस्य विषयानुक्रमणिका सम्पूर्णा।'

इससे सिद्ध होता है कि यह अनुक्रमणिका वराहपुराण-ग्रन्थके अन्तर्गत नहीं आ सकती। अतएव मुद्रित संस्करणों तथा अधिकतर देवनागरी हस्तलेखोंके अनुसार उपलब्ध 'वराहपुराण'का ग्रन्थ-परिमाण २१७ अध्याय या १० सहस्र श्लोक ही है।

३. वराहपुराणसे सम्बद्ध स्वतन्त्र माहात्म्य-ग्रन्थ

इस ग्रन्थ-परिमाणके अतिरिक्त अनेक माहात्म्य-ग्रन्थ पृथक् हस्तलेखोंके रूपमें ऐसे भी प्राप्त होते हैं, जिनको वराहपुराणके अन्तर्गत (वराहपुराणे) माना गया है। थियोडोर ऑफरेख्ट (Theodor Aufrecht)के 'कैटैलागस कैटैलॉगरम' (Catalogus Catalogrum) में 'वराहपुराण'के अन्तर्गत निर्दिष्ट लगभग १५ माहात्म्य तथा स्तोत्र-सम्बन्धी हस्तलेखोंका निर्देश किया गया है; जिनमेंसे कुछ

तो उपलब्ध 'वराहपुराण'में प्राप्त हैं, परंतु कुछ ऐसे भी हैं, जो वराहपुराणके मेरे द्वारा संवादित किसी भी हस्तलेख या मुद्रित संस्करणमें प्राप्य नहीं हैं। इनमें 'विमान-माहात्म्य', 'भगवद्गीता-माहात्म्य', 'वेङ्कटगिरि-माहात्म्य', 'वेङ्कटेश-माहात्म्य', 'वेङ्कटेशकवच' इत्यादि मुख्य हैं, जिनके अनेक हस्तलेखोंका उल्लेख ऑफरैक्ट (Aufracht) ने किया है। 'दुर्गासप्तशती'की अनेक मुद्रित प्रतियोंमें (जैसे निर्णयसागरप्रेसकी प्रतिमें) 'देवीकवच'को भी वराहपुराणके अन्तर्गत माना है, जो उपलब्ध 'वराहपुराण'में नहीं मिलता। ऑफरैक्टने एक ऐसी 'वराहसंहिता'के भी अनेक हस्तलेखोंका निर्देश किया है, जिसमें श्रीकृष्णकी वृन्दावन-लीलाओंका सविस्तर वर्णन है और **'वराहसंहितायां वृन्दावनरहस्यम्'**, **'वराहसंहितायां वृन्दावननिर्णयः'** इत्यादि हस्तलेखोंका भी निर्देश किया है। सम्भव है, यह 'वराहसंहिता' 'वराहपुराण'से कोई पृथक् ग्रन्थ रहा हो या वराहपुराणका ही दूसरा नाम हो। उपलब्ध वराहपुराणमें 'वराहपुराण'-को 'वराह-संहिता' भी कहा गया है (११२-६८)।

गवर्नमेन्ट ओरियन्टल मैनुस्क्रिप्ट्स् लाइब्रेरी, मद्रासमें भी 'वराहपुराण'का दक्षिणकी ग्रन्थलिपिमें लिखा हुआ एक ऐसा हस्तलेख (डी. २२६२) है, जो वर्तमान 'वराहपुराण'-से सर्वथा भिन्न है, पर वह ७३वें अध्यायके पश्चात् खण्डित है। यह "भद्राश्व' तथा 'अगस्त्य'के संवाद"के रूपमें है और इसे आरम्भके श्लोकोंमें 'षट्सहस्रात्मिकासंहिता' कहा गया है। यह भूमि और वराहके संवादके रूपमें आरम्भ होती है। इसकी पुष्पिकाओंमें **'इति श्रीवराहे क्षेत्रकाण्डे'** इत्यादि लिखा हुआ है। सम्भवतः प्राचीन वराहपुराणमें 'क्षेत्रकाण्ड' नामका अनेक अध्यायोंका कोई अंश भी रहा हो, जिसके अन्तर्गत भिन्न-भिन्न क्षेत्रोंके माहात्म्य तथा अनेक तान्त्रिक और दार्शनिक विषय रहे हों अथवा यह भी सम्भव है कि 'वाराहे क्षेत्रकाण्ड' नामका यह ग्रन्थ दक्षिणमें प्रचलित कोई स्थल-पुराण ही रहा हो। परंतु एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ताके 'व्यङ्कटगिरि-माहात्म्य'-नामक हस्तलेखकी (जो देवनागरी लिपिमें हैं तथा जिसमें ४६ पत्र और २ हजार श्लोक हैं) अन्तिम पुष्पिकामें भी—**'इति श्रीचतुर्विंशतिसहस्रात्मिकायां संहितायां श्रीवराहपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीव्यङ्कटगिरिमाहात्म्ये द्विषष्टितमोऽध्यायः'**—ऐसा लिखा हुआ है। और यह हस्तलेख शाके १५४४का है एवं काशीमें ही लिखा गया है। इससे प्रतीत होता है कि 'वराहपुराण'के ही अन्तर्गत 'क्षेत्रकाण्ड' नामका एक प्रकरण था, जिसमें 'वेङ्कटगिरि-माहात्म्य' भी था। 'वेङ्कटगिरि'का उल्लेख मद्राससे प्राप्त उपर्युक्त 'वराह-संहितान्तर्गत क्षेत्रकाण्ड' ग्रन्थमें भी मिलता है—

वनाद्रे वेङ्कटगिरेर्वैकुण्ठाच्च पयोम्बुधेः।
तस्मिन्नित्यं रघुवरे वृषभाद्रौ प्रतिष्ठिते॥

(अ० ७३, पत्र २५६)

'मत्स्यपुराण'में 'वराहपुराण'के लक्षणमें—

—**'मानवस्य प्रसङ्गेन कल्पस्य मुनिसत्तमाः'** इत्यादि निर्देश प्राप्त होता है। 'नारदीयपुराण'में भी—**'मानवस्य तु कल्पस्य प्रसङ्गे मत्कृतं पुरा। निबबन्ध पुराणेऽस्मिन्'** लिखा है, परंतु प्रचलित वराहपुराणमें 'मानव-कल्प'का निर्देश नहीं मिलता। बल्कि इसके विपरीत मद्राससे प्राप्त उपर्युक्त 'वराहसंहितान्तर्गत क्षेत्र-काण्ड' सम्बन्धी ग्रन्थके हस्तलेखमें 'पौरुषकल्प'का उल्लेख प्राप्त होता है। एशियाटिक सोसाइटीसे प्राप्त 'वराहपुराण'के बंगाली हस्तलेखके अन्तमें फलश्रुतिके अन्तर्गत ऐसा उल्लेख भी मिलता है कि पौराणिक सूतने वराहपुराणकी तीन संहिताएँ कही थीं, उनमेंसे यह पुराण-संहिता एकादश सहस्रात्मिका है—

त्रीणि वै संहिताश्चास्याः सूतः पौराणिकोऽपठत्।
एषैकादशसाहस्र्या पुराणसंहिता द्विज॥

अतएव यद्यपि वर्तमान उपलब्ध वराहपुराणमें लगभग दस सहस्र श्लोक ही उपलब्ध होते हैं, परंतु इसके अतिरिक्त इसी पुराणके अन्तर्गत अथवा इससे सम्बद्ध विभिन्न संहिताओं, माहात्म्यों तथा स्तोत्रोंके रूपमें वराहपुराणका और भी अंश रहा होगा, इसका सुस्पष्ट प्रमाण मिल जाता है।

४. वराहपुराणके बंगाला हस्तलेखोंमें उपलब्ध ग्रन्थ-परिमाण

वराहपुराणका दस सहस्रसे भी कम ग्रन्थ-परिमाण बंगला लिपिके हस्तलेखोंमें मिलता है। तीनों बंगला लिपिवाले हस्तलेखोंमें, जिनका पाठ-संवाद (Collation) हमने अबतक किया है, 'वेङ्कटेश्वर'-संस्करणके २०२ अध्याय **'कर्मविपाको नाम'**के ६२ श्लोकके पश्चात् फलश्रुति देकर वराहपुराणकी समाप्ति कर दी गयी है।

५. दक्षिणके हस्तलेखोंमें वराहपुराणका ग्रन्थ-परिमाण

'सरस्वती-महल' तंजौर (दक्षिणभारत) से प्राप्त देवनागरी-लिपिके एक हस्तलेख (डी० १०१३०) में 'वराहपुराण'का ग्रन्थ-परिमाण केवल १०० अध्यायमात्र ही है। इसमें 'श्रीवेङ्कटेश्वर'-संस्करणके प्रथम ९९ अध्याय तथा ११२ अध्याय के ५६ श्लोकके पश्चात्‌के फलश्रुति तथा गुरुशिष्य-पाठपरम्पराके अन्तके कुछ श्लोक हैं। इस प्रकार तंजौरवाले उपर्युक्त हस्तलेखमें 'श्वेतोपाख्यान'के पश्चात् ही 'वराहपुराण' समाप्त कर दिया गया है। इस हस्तलेखमें 'श्रीवेङ्कटेश्वर'-संस्करणके १०० अध्यायसे लेकर ११२ अ० के ५६ श्लोकतकका पाठ, जिसमें विविध धेनुदानोंका वर्णन है, नहीं है। उपर्युक्त तीनों बंगला हस्तलेखोंमें भी यह धेनुदानवाला अंश नहीं है। इण्डिया आफिस, लंदनसे प्राप्त ग्रन्थ-लिपिवाला एक हस्तलेख (के० ६८०७) भी इस १०० अध्यायवाले तंजौर-हस्तलेखसे पूर्णतया मिलता है। अतएव तंजौरवाला देवनागरी लिपिका उपर्युक्त हस्तलेख दक्षिण भारतवाले ग्रन्थ-लिपिमें लिखित १०० अध्यायोंके 'वराहपुराण'की परम्पराके अन्तर्गत ही है। त्रिवेन्द्रम् (केरल) से प्राप्त मलयालम्-हस्तलेखमें भी देवनागरी लिपिवाले ग्रन्थ 'वराहपुराण'के समान ही १०० अध्याय हैं। अतएव इन तीनों हस्तलेखोंमें दक्षिणभारतीय १०० अध्यायवाले वराहपुराणकी परम्परा सुरक्षित है।

नारदीयपुराणोक्त वराहपुराणकी विषय-सूचीमें इतने (अर्थात् श्वेतोपाख्यानपर्यन्त) ग्रन्थको **'प्रथमोद्देशः'** नाम दिया गया है—

पर्वाध्यायस्ततः श्वेतोपाख्यानं गोप्रदानिकम्।
इत्यादि कृतवृत्तान्तं प्रथमोद्देशनामकम्*॥

(नारदपुराण १। १०३। ८)

'भंडारकर शोध-संस्थान' पूना तथा 'ब्रिटिश म्यूजियम लंदनवाले' इन दो हस्तलेखोंमें 'श्वेतोपाख्यान'के पश्चात्— **'प्रथमोद्देशः समाप्तः'**—ऐसा पाठ भी है। बंगला-हस्तलेखोंमें यहाँ **'नारायणांशः समाप्तः'**—ऐसा लिखा है।

६. वराहपुराणका कौशिक-माहात्म्य

यहाँ इस संदर्भमें एक बात और विचारणीय है। दक्षिण भारतमें कन्नड तथा आन्ध्र लिपियोंमें लिखा हुआ 'वराहपुराण'का 'कौशिकमाहात्म्य' नामक ग्रन्थ (वेङ्कटेश्वरप्रेस-संस्करणमें १३९वें अध्यायका अंश) अलग हस्तलेखोंके रूपमें मिलता है। इन दाक्षिणात्य ग्रन्थ-लिपियोंके हस्तलेखमें इस 'कौशिक-माहात्म्य'को वराहपुराणका ४०वाँ अध्याय माना गया है तथा कन्नड और आन्ध्र (तेलुगु) हस्तलेखोंमें इसे वराहपुराणका २४वाँ अध्याय माना गया है। सम्भव है किसी समय दक्षिणभारतमें प्रचलित वराहपुराणमें ग्रन्थलिपिमें लिखित मत्स्यपुराणके समान ही पूर्वभाग तथा उत्तरभाग—ये दो भाग रहे हों और 'कौशिक-माहात्म्य' उत्तरभागमें आया हो। बादमें इस प्रकारके कुछ माहात्म्य अलग हो गये हों और घटते-घटते वह

* यहाँ 'श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस'की प्रतिमें 'प्रथमो दर्शितं मया' यह पाठ है।

वराहपुराण केवल १०० अध्यायोंका ही रह गया हो ।

७. रामानुजाचार्यके गीताभाष्यमें उद्धृत वराहपुराण

रामानुजाचार्यके गीताभाष्यमें वराहपुराणके कुछ ऐसे श्लोक भी उद्धृत हैं, जो इस समय वराहपुराणकी मुद्रित तथा प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकोंमें उनके ११५ तथा १४२ अध्यायोंमें मिलते हैं । इससे भी उपर्युक्त अनुमानकी ही पुष्टि होती है । अर्थात् सम्भव है किसी समय दक्षिणभारतके ग्रन्थलिपि इत्यादिमें लिखित वराहपुराणमें भी १००से अधिक अध्याय रहे हों । परंतु इस समय वराहपुराणके कन्नड ग्रन्थलिपिके तथा मलयालम्लिपिके हस्तलेखोंमें 'वराहपुराण' आरम्भके १०० अध्यायोंके पश्चात् समाप्त हो जाता है ।

८. प्राचीन 'वराहपुराणका' सम्भावित ग्रन्थ-परिमाण

वर्तमान 'वराहपुराण'की मुद्रित पुस्तकोंमें ११२वें अध्यायके अन्तमें जो फलश्रुति तथा गुरुशिष्य-परम्परा दी हुई है, उससे यही अनुमान होता है कि प्राचीन वराहपुराण यहींपर समाप्त होता था; क्योंकि ११३वें अध्यायका आरम्भ नवीन मङ्गलाचरणसे तथा 'सनत्कुमार-भूमिसंवाद'से किया गया है । अतः सम्भव है कि ११२वें अध्यायके बादका ग्रन्थ प्राचीन 'वराहपुराण'में शनैः-शनैः जुड़ता रहा हो और बढ़ते-बढ़ते यह कभी २४ हजार श्लोकोंतक भी पहुँच गया हो । इसी प्रकार प्रायः सभी पुराणोंमें वृद्धि हुई है, जो नारदीय पुराणके इस निर्देश समयतक चरम सीमापर पहुँच गयी थी । उस समय भिन्न-भिन्न पुराणोंका इस प्रकार जो उपबृंहित ग्रन्थ-परिमाण उपलब्ध था, वही नारदीय पुराण तथा अन्य मत्स्य आदि पुराणोंमें संगृहीत कर लिया गया । बादमें कालचक्रके प्रभावसे अनेक पुराणोंका बहुत-सा अंश सदाके लिये नष्ट हो गया ।

स्वर्गीय पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्रने अपने 'अष्टादश पुराणदर्पण' नामक ग्रन्थमें दक्षिणभारतमें प्रचलित एक किसी अन्य ऐसे 'वराहपुराण'का भी उल्लेख किया है, जिसका पाठ तथा अध्याय-क्रम 'नारदीय'-पुराणमें निर्दिष्ट 'वराहपुराण'से कुछ भिन्न है ।

उपसंहार

इस प्रकार यद्यपि सभी पुराणोंमें 'वराहपुराण'का ग्रन्थ-परिमाण २४ हजार श्लोक दिया है, परंतु २४ हजार श्लोकवाला वह 'वराहपुराण' मुद्रित अथवा हस्तलिखितरूपमें अब कहीं भी प्राप्य नहीं है । इस समय 'वराहपुराण'का ग्रन्थ-परिमाण अधिक-से-अधिक १० हजार श्लोकमें ही उपलब्ध है । नारदीय पुराणोक्त इसका उत्तरभाग अब अनुपलब्ध है । देश-कालके अनुसार अन्य पुराणोंके समान ही 'वराहपुराण'के ग्रन्थ-परिमाणमें भी भेद होता गया । सुतरां ! मूल 'वराहपुराण'का वास्तविक ग्रन्थ-परिमाण क्या रहा होगा, यह समस्या एक प्रकारसे अब भी बनी ही हुई है ।

भगवान् वराहकी जय

वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना । शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना ।
केशव धृतशूकररूप जय जगदीश हरे ॥

(महाकवि 'श्रीजयदेव'कृत—गीतगोविन्द १ । २ । ३)

विश्वेश्वर प्रभो ! आपने जब वराहरूप धारण किया था तो आपकी दाढ़के अग्रभागमें संलग्न होकर पृथ्वी इस प्रकार सुशोभित हो रही थी, मानो बालचन्द्रमाके अन्तर्वर्ती शशाङ्क-चिह्नकी कला निमग्न हो । केशव ! आपके इस प्रकारके लीलाविग्रह-स्वरूपकी जय हो ।

वराहपुराण—एक संक्षिप्त परिचय

(ले०—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

समुद्रकाञ्ची सरिदुत्तरीया वसुंधरा मेरुकिरीटभारा।
दंष्ट्राग्रतो येन समुद्धृता भूस्तमादिकोलं शरणं प्रपद्ये*॥

(शारदातिलक १७। १५७ चौखं० सं०)

कल्याणकामी प्राणी अज्ञानोत्पन्न काम-क्रोध-शोक-मोह, मात्सर्यादि विविधानर्थ-परिप्लुत भवाटवीसे मुक्त होकर विशुद्ध परमात्मपदपर प्रतिष्ठित हो जायँ, एतदर्थ ही नारायणावतार, कृपालु भगवान् वेदव्यासने वेदोंका विभाजन एवं तदर्थोपबृंहित अष्टादश पुराणोपपुराण, वेदान्तदर्शन (ब्रह्मसूत्र), महाभारत एवं वेदव्यास-स्मृति आदि विविध धर्मशास्त्रोंका निर्माण किया—

कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम्।
को ह्यन्यो भुवि मैत्रेय महाभारतकृद् भवेत्॥

(विष्णुपुराण ३। ४। ५, पद्म० १। १। ४५)

वस्तुतः सभी शास्त्रों, मन्त्रों, जप-तप, ध्यान-समाधि एवं अन्य धर्म-कर्मोंका भी एकमात्र यही उद्देश्य है कि साधक सभी दुःखोंसे मुक्त होकर कैवल्यका लाभ करे।† पर वेद-वेदान्तादि शास्त्र दुरूह हैं, अतः तदुपबृंहण-स्वरूप पुराणोंका निर्माण हुआ, जिनमें भागवतादि सात्त्विक पुराणोंका प्रचार-प्रसार पर्याप्त है। पद्मपुराण (आ० सं०) उत्तरखण्ड २६३। ८३में श्री'वराह'पुराणको भी सात्त्विक बतलाया गया है—

वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम्।
गारुडं च तथा पाद्मं वराहं शुभदर्शने।
सात्त्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि वै।

(श्रीवेङ्कटेश्वरप्रेस तथा मोरके संस्करणोंमें ये ६। २३६के १८,२० श्लोक हैं), क्योंकि इनमें भगवान् श्रीहरिकी महिमा निरूपित है—

सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः॥

प्रायः सभी पुराणोंके अनुसार यह वराह या वाराहपुराण बारहवीं संख्यापर ही परिगणित है‡। किंतु इसकी श्लोक-संख्या उन पुराणोंमें भिन्न-भिन्न निर्दिष्ट है। कहीं इसे २५ हजार श्लोकोंका तो कहीं १४ हजार श्लोकोंका बतलाया गया है। श्रीमद्भागवत आदिमें इसे २५ हजार श्लोकोंका, किंतु अग्निपुराणमें इसे १४ हजार श्लोकोंका ही बतलाया गया है—

चतुर्दशसहस्राणि वराहं विष्णुनेरितम्।
भूमौ वराहचरितं मानवाय प्रवर्तितम्।

(२७२। १६)

पर अभीतककी भारतकी सभी उपलब्ध प्रतियोंमें श्रेष्ठ श्रीवेङ्कटेश्वरप्रेसके संस्करणमें भी प्रायः १० हजार श्लोक ही उपलब्ध है। अतः अनुमान होता है कि 'गीतामाहात्म्य' 'दुर्गाकवचादि' इसके खिल-भागके अंश भी २५ हजार-की संख्यामें वहाँसे वैसे ही जोड़ लिये गये हैं—जैसे मार्कण्डेयपुराणमें अर्गला, कीलक एवं प्राधानिक-रहस्यादि।

वराहपुराणका निर्देश तथा शोधकार्य

इस वराहपुराणका स्पष्टरूपसे उल्लेख भविष्योत्तर-पुराणके १९४वें अध्यायमें—'धरणि-वराह-संवाद'के

---

* समुद्र जिसकी करधनी—मेखला, नदियाँ उत्तरीय—दुपट्टा-स्वरूप हैं तथा सुमेरु-गिरि जिसका स्वर्णमुकुट है, ऐसी सम्पूर्ण पृथ्वीको जिन्होंने केवल एक दाढ़के सहारे ऊपर उठा लिया—उद्धृतकर धारण कर रखा था, मैं उन भगवान् आदिवराहकी शरण लेता हूँ।

† (क) विमुञ्चति यदा कामान् मानवो मनसि स्थितान्। तर्ह्येव पुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते॥

(भागवत ७। १०। ९)

(ख) यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥

(कठोपनि० २। ३। १४, बृहदार० ४। ४। ७)

(ग) षड्वर्गसंयमैकान्ताः सर्वा नियमचोदनाः। तदन्ता यदि नो योगानावहेयुः श्रमावहाः॥

(भागवत ७। १५। २८)

‡ इसी प्रकार इसमें बारह वाराहक्षेत्रों तथा द्वादश द्वादशीव्रतोंका उल्लेख भी बड़ा आश्चर्यप्रद है। भविष्यपुराण (प्रतिसर्ग ३। १८। १३)में इसे मार्कण्डेय ऋषिद्वारा रचित कहा गया है—'मार्कण्डेयं च वाराहं मार्कण्डेयेन निर्मितम्।' पर अनुमान होता है कि वह इस वराहपुराणसे भिन्न था; क्योंकि यह स्वयं भगवान् वराह या व्यासद्वारा कथित है।

रूपमें हुआ है । नरसिंहपुराण १ । १४ आदिमें इसका बार-बार उल्लेख है, साथ ही इसी वराहपुराणके २४से३० अध्यायोंको ७वीं या ८वीं शतीके भारतीय विद्वान् जीमूतवाहनने नामोल्लेखपूर्वक अपने 'कालविवेक'में उद्धृत किया है। इसी समयके विद्वान् नारायणभट्टने 'हितोपदेश'-में भी 'वराहपुराण'के १७० । ५२–५४ आदि श्लोकों-को ग्रहण किया है*। इसी प्रकार १०वीं शतीके 'अपरा-दित्य'ने 'याज्ञवल्क्यस्मृति'की अपनी टीकामें वराहपुराणके ७०-७१ अध्यायोंके श्लोकोंको, इसी समयके कान्यकुब्ज-नरेश गोविन्दचन्द्रके आश्रित विद्वान् पं० लक्ष्मीधरने अपने 'कृत्यकल्पतरु'के विभिन्न चौदह काण्डोंमें इसके २३से१८० तकके जिन-किन्हीं अध्यायोंको एवं 'अनिरुद्धभट्ट'ने अपनी 'पितृदयिता' एवं 'हारलता'में, अध्याय १८७ को तथा ११ वीं शतीके आचार्य श्रीरामानुज तथा श्रीमध्वने अपने-अपने गीताभाष्योंमें वराहपुराणके श्लोकोंको और इसी समयके विद्वान् श्रीवल्लालसेनने अपने 'दानसागर'में अ० २०५ से २०७ तकके अध्यायोंको उद्धृत किया है†। १३वीं शतीके विद्वान् 'देवण्णभट्ट'ने अपनी 'स्मृति-चन्द्रिका'में‡ भी इसी वराहपुराणके अध्याय १९०के श्लोकोंको तथा हेमाद्रिने अपने 'चतुर्वर्गचिन्तामणि'के विविधखण्डोंमें अध्याय १३से २११ तकके अधिकांश अध्यायोंको उद्धृत किया है । इसी प्रकार श्रीदत्त उपाध्यायने ११६, २१० एवं २११ अध्यायोंको, श्रीमाधव विद्यारण्यने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पराशरमाधव'में, १९०-२०२ अध्यायोंके श्लोकोंको, १४वीं शतीके विद्वान् चण्डेश्वर ठाकुरने अपने 'कृत्य-रत्नाकर'में ३९-४१, ५८, १३६ तथा २११ वें अध्यायोंके श्लोकोंको वराहपुराणके नामोल्लेखपूर्वक उद्धृत किया है । यों ही १५ वीं

* 'अन्यस्माद् ग्रन्थादाकृष्य लिख्यते'की प्रतिज्ञासे 'हितोपदेश' १ । ६२के 'अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते' आदि श्लोक वराहपुराणसे गृहीत दीखता है ।

(अ) द्रष्टव्य—'अपरार्क' भाग १ (आ० सं०) पृ० ३०१–२०९ पर वराहपुराणके ११२ । ३१–४० श्लोक, पृ० ३०३ पर वराहपुराण अ० १०२, पृ० ४२६–२४ पर वराहपुराण १३ । ३३–३६, पृ० ४३६ पर वराहपु० १३० । १०३–४, पृ० ५२५–२६ पर वराहपुराण १८८ । १२–३२ तथा 'अपरार्क' खण्ड २ पृ० १०५२पर वराहपुराण अध्याय ७० के २२–३९ तकके श्लोकोंको अपरादित्यने उद्धृत किया है । जिसमें—'कुहकानीन्द्राजालानि विरुद्धाचरणानि च' आदि १ श्लोक, अधिक है, जो वराहपुराण ७०।३७–३८के बीचमें होना चाहिये । इन्हीं ३६ से ३० तकके श्लोकोंको प्रकारान्तरसे आनन्दतीर्थने अपने गीताभाष्य २ । ७२ (पृ० १५२ । जिल्द १ गुजराती प्रेस) पर उद्धृत किया है ।

† पं० लक्ष्मीधरके 'कृत्यकल्पतरु'में १४ बड़े-बड़े काण्ड हैं । अकेले 'तीर्थविवेचन' नामक ८वें काण्डमें पृ० १६३ से २२८ तक उन्होंने 'वराहपुराण'के प्रायः ८०० श्लोक उद्धृत किये हैं । पृ० १६३ पर 'विशालामाहात्म्य', पृष्ठ १८६ पर वराहपुराण मथुरामाहा०के १५२वें अध्यायके, पृ० २०६ पर वराहपुराणके १२६ वें अध्यायके, 'कुब्जाम्रक-माहात्म्य'को, पृ० २०९ पर 'कोकामुख'मा० (व० पु० अ० १३७), पृ० २१५ पर बदरीमाहा० (वराहपुराण अ० १४१), पृ० २१७ पर मन्दार-माहात्म्य (वराहपुराण १४३), पृ० २१९ पर 'शालग्राम'माहा० (व० पु० १४४), पृ० २२२ पर 'स्तुतस्वामी'माहा०, २२५ पर द्वारकामा० तथा २२८ पर 'लोहार्गल'माहा० (व० पु० अ० १५१)को उद्धृत किया है । इसी प्रकार अन्य—दान, गृहस्थ, नियतकाल तथा श्राद्धादिकाण्डोंमें भी इन्होंने ढेर-के-ढेर श्लोक उद्धृत किये हैं, जिन्हें विस्तारभयके कारण यहाँ उद्धृत नहीं किया जाता ।

‡ (क) 'अनिरुद्ध-भट्ट'ने अपनी 'हारलता' (ए० सो०)पृ० १२८ से १३१ तकमें वराहपुराण अ० १८७ (वेंकटे० संस्क०) में श्लो० १०१ से १२० तक (ए० सोसा० के सं० में ये श्लो० सं० ८८ से १०९ हैं) उद्धृत किये हैं और 'पितृदयिता' के पृ० ७५–७७ पर भी इन्हीं श्लोकोंको उद्धृत किया है ।

(ख) 'दान-सागर'के चारों भागोंमें प्रायः वे ही श्लोक पुनरावृत्त हैं ।

(ग) द्र० 'स्मृतिचन्द्रिका' भाग ४—श्राद्धकाण्ड पृ० १८९—यहाँ 'वस्त्रशौचादिकर्तव्यं' आदि वराहपुराण पृ०१९०के श्लोक ११३–४ आदि उद्धृत हैं । (एशियाटिक सो०के 'वराहपुराण'के संस्करणमें यह श्लोक सं० १०३–४ है, मैसूर गवर्नमेण्ट ओरयण्टल लाइब्रेरीके—टिकट Bibilothica Sanskrita No 52 पर प्रकाशित) ।

इसी प्रकार अन्य प्राचीन विद्वानोंने भी इसके श्लोक उद्धृत किये हैं । विस्तारभयसे यहाँ उनकी संख्याएँ नहीं लिखी जातीं ।

शतीके मूर्द्धन्य विद्वान् 'शूलपाणि,' गोविन्दानन्दकविङ्कणाचार्य, विद्याधर वाजपेयी आदिने अपने 'दान-क्रिया-कौमुदी' आदि ग्रन्थोंमें तथा १६वीं शतीके गोपालभट्ट, सनातन गोस्वामी आदिने अपने-अपने 'हरिभक्ति-विलास'में तथा १७वीं शतीके पं०नीलकण्ठभट्टने 'दानमयूख'में वराहपुराणके ९७ से ११२ तकके अध्यायोंको (द्रष्टव्य—पृ० १९१ से २१४ गुजराती प्रेसका सं०) तथा अन्य मयूखोंमें अन्य अध्यायोंको तथा श्रीभास्करराय भारतीने 'त्रिशक्ति-माहात्म्य' आदिके श्लोकोंको 'सेतुबंध'में जहाँ-तहाँ तथा 'सौभाग्यभास्करभाष्य'में तो प्रायः प्रतिपृष्ठ-पग-पगपर वराहपुराणके नामोल्लेखपूर्वक उद्धृत किया है।

वराहपुराणके वर्ण्य विषय

'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्'—(पद्म०१।२।५१,वायु०१।२०१)से पुराणोंका एक प्रमुख कार्य वेदोपबृंहण है। इस 'वराहपुराण'में भी वेदोक्त 'देव-शुनी' सरमाका सुन्दर आख्यान उपबृंहित हुआ है। इसी प्रकार इसमें कठोपनिषद्के नचिकेताके चरित्रका अध्याय १९३ से २१० तकमें उपबृंहण हुआ है। अथर्व० ८। २८ के पृथुदोहनकी भी चर्चा है। पवित्र 'गजेन्द्रमोक्ष' भी अध्याय १४०, श्लोक ३४ से ५० तकमें वर्णित है, जो वामनपुराण एवं भागवतसे थोड़ा भिन्न है। 'पद्मपुराणकी' प्रारम्भिक सृष्टि 'विष्णुपुराण'-का श्राद्धप्रकरण तथा महाभारतकी धर्मव्याधकी कथा भी इसमें विशेष रूपसे चित्रित है। इसमें गीताके श्लोक तो बहुतेरे हैं। अकेले १८७वें अध्यायमें ही गीताके छठे तथा दूसरे अध्यायके बहुतसे श्लोक प्राप्त हैं। विचार करनेपर यह ग्रन्थ विशेष प्राचीन लगता है। कुछ लोग—

अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः।
भारताख्यानमखिलं चक्रे तदुपबृंहितम्॥

इस देवीभागवत(१। ३। १७)के वचनसे 'महाभारत' की अपेक्षा भी पुराणोंको प्राचीन मानते हैं। जो हो, इसमें 'महाभारत' और 'हरिवंश'के ही समान तुलसी, (राधा) आदिका वर्णन प्रायः नहीं प्राप्त होता है; न मालाके रूपमें, न पत्तेके रूपमें। एक जगह (अध्याय १२३ श्लोक ३६—७)। 'गन्धपत्र'से उसका जैसे-तैसे भाव व्यक्त किया गया है। श्रीराधाजीका उल्लेख भी केवल १६४। ३५—३७ श्लोकोंमें एक ही जगह 'राधाकुण्ड' निर्देशमें हुआ है। इसमें पुरुषोत्तम (मल) मासका भी उल्लेख नहीं है।* अतः यह पुराण मूलतः महाभारतसे भी प्राचीन है। यह विषय शोधकर्ताओंके लिये विशेष अन्वेष्टव्य है।

इसके अधिकांश भागमें विष्णुचरित है, अतः यह वैष्णवपुराण है। तथापि इसके २१-२२ एवं ९०—९६के अध्यायोंमें 'त्रिशक्ति-माहात्म्य', 'शक्ति-महिमा', २३वें अध्यायमें 'गणपति-चरित्र', २५वें और ७१ वें अध्यायमें 'कार्तिकेय-चरित्र' और बीच-बीचमें सूर्य-शिव† एवं ब्रह्माजीके भी चरित्र निरूपित हैं। इसके

* यद्यपि कुछ लोगोंका मत है कि वेदोंमें मलमास-सम्पातका उल्लेख है—'In the yajurveda and Brāhmaṇas occur the expressions of Nakśatra—darśa and Gaṇaka, and the adjustmet of the lunar to the solar year by the insertion of a thirteenth or intercalary month (malmāsa, adhimāsa) is probably alluded to in an ancient hymn (Rigveda 1. 25. 8) and frequently in other (Vajasaneyi. 22. 30) & Atharveda Saṃhitā (V. 6. 4 fi.). (Indian Wisdom p. 184) पर दूसरे अन्वेषक इसे और बादकी वस्तु मानते हैं। 'वराहपुराण'के ३९से ४९तकके अध्यायोंमें द्वादशद्वादशी व्रतोंका ही उल्लेख है, जो मार्गशीर्षसे आरम्भकर कार्तिकमें समाप्त हो जाते हैं, पुरुषोत्तममासकी द्वादशियोंका उल्लेख नहीं है, जब कि एकादशी माहात्म्योंमें सर्वत्र ही उसका उल्लेख है। इस दृष्टिसे नारदपुराणके 'मोहिनी-आख्यान'के सहयोगसे विचार करनेपर—

'प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम्। अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः॥'के अनुसार इस शास्त्रकी परम प्राचीनता ही सिद्ध होती है।

† इसमें भगवान् शंकरका सर्वाधिक आकर्षक एवं महत्त्वका चरित्र पुराणके अन्तमें 'गोकर्ण' वर्णनमें हुआ है।

२०से ५०तकके अध्यायोंमें विविध व्रतोंका उल्लेख है* तथा ९९से ११२तकमें विविध दानोंका, ११५से १२५तकके अध्यायोंमें विष्णुपूजाकी सात्त्विक विधि निरूपित है। ६६वें अध्यायमें 'पञ्चरात्र'चर्चा तथा ७३से ९१तक 'भुवनकोष'का निरूपण है।

इसमें वैष्णव तीर्थोंके माहात्म्य भी पर्याप्त हैं। इसके १२२ एवं १४०में 'कोकामुखमाहात्म्य', १२५-२६में 'हरिद्वार-ऋषिकेश'माहात्म्य, अ० १५२से १८८में 'मथुरा-माहात्म्य' तथा अर्चावतार-महिमा, १३६से ३८में 'वराहक्षेत्र'की महिमा तथा १४४-४५में मुक्तिनाथकी महिमा है। १४१ अध्यायमें बदरीनाथकी महिमा है और १५१में 'लोहार्गल'का। ध्यान देनेपर इसमें कोकमुख, लोहार्गल आदि द्वादश वराहक्षेत्रोंकी महिमा निरूपित दीखती है (द्रष्टव्य 'कृत्यकल्पतरु', तीर्थविवेककाण्ड) अध्याय १२३ आदिमें मार्गशीर्ष, माघ, वैशाख आदि मासोंका भी माहात्म्य दीखता है। अन्य पुराणोंमें जहाँ 'विशाल' नाम शिवपुरी उज्जयनीकी महिमा है, वहाँ इसमें 'विशाला-वैष्णवस्थली' बदरीनाथकी महिमा है। २१३–१६ अध्यायोंमें अनेक रुद्रक्षेत्रोंकी भी महिमा है—इनमें स्नान एवं प्राणत्यागकी महिमा है, पर 'प्राणत्याग'का तात्पर्य सर्वत्र केवल स्वाभाविक मरणसे ही है, आत्मघातसे कदापि नहीं।

भौगोलिक स्थानोंका परिचय

'वराहपुराण'पर 'कृत्यकल्पतरु'की भूमिकामें वी० राघवन् तथा 'Geographical Dictionary of Ancient and Mediaevel India'के 'वाग्मती', 'कुमारी' नदी, 'कुब्जाम्रक', 'कोकामुख', गण्डकी', 'गोवर्धन', त्रिवेणी, 'देविका', 'नेपाल', 'मथुरा', 'मायापुरी', 'शालग्राम', 'चित्रोपला', 'श्लेष्मातकवन तथा पारियात्रादि' पर्वतों एवं तीर्थोंके नामों और 'सप्तसागर', 'सूकरक्षेत्र', 'सोनपुर', 'हरिहरक्षेत्र' आदि शब्दोंपर नन्दलाल देने विस्तारसे विचार किया है, जिनपर यहीं आगे यथास्थान नदी नामोंसे संबद्ध विवरणमें कुछ संक्षिप्त विचार किया जा रहा है।

वराहपुराणोक्त भारतकी प्रमुख नदियाँ

भारतीय संस्कृतिमें सुधास्यंदिनी भगवती गङ्गा, यमुना, सरयू, नर्मदा, गोदावरी, सिन्धु, सरस्वती तथा कावेरी आदि नदियोंकी असीम महिमा है। इनके स्मरण-कीर्तन, अवगाहन, दर्शन, जलपान तथा इनके तटपर किये गये संध्यातर्पण, दान-श्राद्ध, यज्ञादिसे त्रिवर्गके साथ 'मोक्ष' तककी प्राप्ति हो जाती है—**'जगत्पापहराः स्मृताः'**। इनमें ताप्ती, गोदावरी आदि कई नदियोंके तो 'स्थलपुराण'तक (प्रकाशित) प्राप्त होते हैं। प्रस्तुत वराहपुराणके अध्याय अङ्क ८५, पृष्ठ १५२-५३ पर भी इन नदियोंका सुन्दर परिचय है। मूलग्रन्थमें यह वर्णन गद्यके रूपमें आता है। यद्यपि यह वर्णन 'मार्कण्डेयपुराण' अ०५७। ६। १६–३०, 'मत्स्य-पुराण' ११४। २०–३३, 'ब्रह्मपुराण' १९।१०–१४, 'ब्रह्माण्डपुराण' १। १६।२४–३९ तथा ७२, 'वायुपुराण' ४५।६३–१०८, 'विष्णुपुराण' २। ३ १, 'भागवत' ५। १९। १७-१८, 'वामनपुराण' १३, २३–३३†' 'गरुड़-पुराण' पूर्वखण्ड ५५ तथा महाभारत भीष्मपर्व, अध्याय ९, श्लोक १४–३६, हरिवंश० २। १०८। २२-३४, 'श्रीशिवतत्त्वरत्नाकर' भाग—१, पृ० १९८ 'बृहत्संहिता' एवं 'नागरसंवृत्त' आदिमें पद्यरूपमें तथा Alberuni के 'Indica' भाग १, पृष्ठ २५५ पर स्तोत्रादिके साथ प्राप्त होता है, तथापि कई दृष्टियोंसे इस वराहपुराण‡का पाठ विशेष महत्त्वका है। जो इस प्रकार है—

* वराहपुराणके ये व्रताध्याय प्रायः 'व्रतराज', 'जयसिंह कल्पद्रुम', 'रणवीरसिंह व्र०रत्नाकर' सभी निबन्ध ग्रन्थोंमें उद्धृत हैं।

† वामनपुराण १३।२३–३३में केवल ५ पर्वतोंसे उद्भूत नदियोंका ही वर्णन हुआ है। कुछ पर्वतोंके नाम गलत भी हैं। गङ्गाका नाम भी छूट गया है। द्रष्टव्य—Purāṇa Volume IX, 1, pages 148, 191

‡ वराहपुराण १८७। ११५-१६ तथा २१४। ४५–६० आदिमें भी इन तथा कुछ अन्य नदियोंके नाम हैं, जो नन्दीके अभिनन्दनके लिये आये थे।

गङ्गा सिंधुः सरस्वती शतद्रुर्वितस्ता विपाशा चन्द्रभागा सरयूर्यमुना इरावती देविका कुहूर्गोमती धूतपापा बाहुदा दृषद्वती कौशिकी निश्चीरा गण्डकी इक्षुमती लोहिता इत्येता हिमवत्पादनिर्गताः ॥ ६ ॥ वेदस्मृतिर्वेदवती सिन्धुः पर्णाशा चन्दना नर्मदा कावेरी रोहिपारा चर्मण्वती विदिशा वेत्रवती अवन्ती इत्येता पारियात्रोद्भवाः ॥ ७ ॥ शोणो ज्योतीरथा नर्मदा सुरसा मन्दाकिनी दशार्णा चित्रकूटा तमसा पिप्पला करतोया पिशाचिका चित्रोत्पला विमला विशाला वञ्जुका वालुवाहिनी शुक्तिमती विरजा पङ्क्तिनी रात्री इत्येताः ऋक्षप्रसूताः ॥ ८ ॥ मणिजाला शुभा तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या वेणा पाशा वैतरणी वैदिपाला कुमुद्वती तोया दुर्गा अन्तःशिलागिरा एता विन्ध्यपादोद्भवाः ॥ ९ ॥ गोदावरी भीमरथी कृष्णावेणी वञ्जुला तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा वाह्यकावेरी इत्येताः सह्यपादोद्भवाः ॥ १० ॥ कृतमाला ताम्रपर्णी पुष्पावती उत्पलावती इत्येता मलयजाः ॥ ११ ॥ त्रिसामा ऋषिकुल्या इक्षुला त्रिदिवा च लाङ्गूलिनी वंशधरा महेन्द्रतनयाः ॥ १२ ॥ ऋषिका कुमारी च मन्दगामिनी कृपा पलाशिनी इत्येताः शुक्तिमत्प्रभवाः ॥ १३ ॥ [इनका अर्थ तथा 'पारियात्र' आदि पर्वतोंका परिचय पृ० १५२-५३ पर देखें ।] गण्डकी आदि नदियोंकी नामव्युत्पत्ति भी केवल इसी पुराणमें मिलती है ।

इन परम पवित्र विश्वसंतापहारिणी, लोकमाता नदियोंको क्रमसे हिमालय, पारियात्र, ऋक्षमान्, विन्ध्याचल, सह्याद्रि, मलयगिरि, महेन्द्रगिरि और शुक्तिमान्—इन आठ श्रेष्ठ कुल-पर्वतोंसे उद्भूत बतलाया गया है—

सर्वाः पुण्याः सरस्वत्यः सर्वा गङ्गाः समुद्रगाः ।
विश्वस्य मातरः सर्वा जगत्पापहराः स्मृताः ॥

(वायु० ४५ । १०८ आदि पूर्वोक्त स्थल)

इनके स्थानोंका निर्देश तथा अन्य नामोंके साथ विशेष स्पष्टीकरण 'कल्याण'के 'तीर्थाङ्क,' गीताप्रेससे प्रकाशित 'महाभारतकी (संक्षिप्त परिचयसहित) नामानुक्रमणिका', देके 'प्राचीन भूगोल' बी० सी० लाके ऐतिहासिक भूगोल एवं एस० जी० कण्टवाल, शिवदास चौधरी तथा दिनेशचन्द्र सरकारके 'The Text of the Purāṇic list of rivers' (Indian Historical Quarterly XXVII 3, PP 22—28) इत्यादि निबन्धोंमें प्राप्त होता है, साथ ही इस अङ्कमें भी यत्र-तत्र निर्दिष्ट है ।)*

इन सबोंका वर्णन सभी पुराणोंमें परस्पर प्रायः सर्वथा मिलता-जुलता है । यहाँ वराहपुराणके अनुसार संक्षेपमें (अकारादिक्रमसे) इनका परिचय इस प्रकार प्राप्त होता है—†

वराहपुराण अ० ८५ की गद्य-संख्या विशेष विवरण

१—अन्तःशिला— ९ M. Williamsके संस्कृत-अंग्रेजी कोश'के अनुसार इसका नाम 'अन्त्रशिला', ब्रह्माण्ड पु० १ । १६ । ६३में 'अन्त्रशिला' तथा महाभारत ५ ।

* F. E. Pargiterने प्रायः सभी पुराणोंकी सैकड़ों हस्तलिखित एवं प्रकाशित प्रतियाँ एकत्रकर 'The Purāṇa Text of the Dynasties of the kings of Kali Age' (कलियुगी राजाओंकी वंशनामानुक्रमणिकाका मूल पौराणिक पाठ) तैयार कर डाला । इसी प्रकार उनका मार्कण्डेयपुराणके अंग्रेजी अनुवादमें पर्वत, नदियोंके नामानुसंधानका श्रम भी श्लाघ्य है । वस्तुतः पाश्चात्त्योंके विद्याव्यसन, लगन एवं श्रमको देखकर सर्वथा आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है । पर तथापि खेद है, अभीतक इस नदियोंके नाम-परिचयपर कोई पूर्ण संतोषप्रद हल नहीं निकल सका है ।

† 'कल्याण' पत्रके पुराणानुवादकी शृङ्खलामें सबसे अन्तमें 'नरसिंहपुराण' प्रकाशित हुआ है । इसके १ । १४-१५, ३१ । ११०-१२ आदिमें 'वराहपुराण'से 'नरसिंहपुराण'के सम्बद्ध तथा प्रभावित होनेकी बात है । इसमें वराहपुराणकी महिमा भी है । पर वराहपुराणका श्रीवेंकटेश्वरसंस्करण अन्योंसे उत्तम होनेपर भी पर्याप्त प्रमादग्रस्त है । वायु, मत्स्यादि सभी पुराणों तथा 'सरकार' एवं मोनियर विलियम्द्वारा निर्धारित पाठके आधारपर यहाँ नदियोंके नामोंका यत्र-तत्र संशोधन किया गया है । इसके गद्य ६ में की सूचित नदियाँ हिमालयसे ७में की निर्दिष्ट नदियाँ पारियात्र-पर्वतसे, ८की ऋक्षमान्से, ९की विन्ध्याचलसे, १०की सह्यगिरिसे, ११की मलयाचलसे, १२की महेन्द्र पर्वतसे तथा १३की निर्दिष्ट नदियाँ 'शुक्तिमान् पर्वत' (विन्ध्यका मध्यदक्षिणपूर्व भाग) से निकली हैं । यहाँ गङ्गादि अत्यन्त प्रसिद्ध नदियोंके परिचयमें विशेष विवरण नहीं दिया जा रहा है ।

९ । ३० के अनुसार 'चित्रशिला' भी है। यह विन्ध्याचलकी कोई छोटी नदी है।

२-इक्षुमती— ६ पाणिनि अष्टा० २.२.८७, ४.२.८६ 'मध्वादि'गणमें परिगणित कुमायुँ, रुहेलखण्ड, कन्नौज आदिमें बहनेवाली इखान या 'काली' नामकी गङ्गाकी सहायक नदी। वाल्मीकीय रामायण २।६८। ('India, as known to Pāṇini', P-43-44)

३-इक्षुला— १२ (महाभारत भीष्म० ९ । १७) उड़ीसा एवं मद्रासकी सीमापर बहनेवाली नदी, (कूर्मपु० २ । ३)

४-इरावती— ६ (पंजाबकी रावी नदीका शुद्ध नाम) यह हिमालयसे निकलकर कुरुक्षेत्रमें बहती है। तक्षक एवं अश्वसेननाग इसीमें रहते थे (महाभारत १ । ३ । १४१)

५-उत्पलावती-११ इस नामकी कई नदियाँ हैं। एक नैमिषारण्यके पास बहती है, पर यह पश्चिमीघाटके पासकी नदी है।

६-ऋषिका— १३ पलामू जिलेकी कोइल नदी।

७-ऋषिकुल्या १२ कलिङ्ग (गंजम) नगर इसीपर (रासिकोइल) बसा है (ब्रह्माण्डपुरा० १ । ४८)। पर Thorntn's. Gazeteer तथा अन्योंके मतसे यह जपलाके पास शोणमें मिलनेवाली कुइल नदी है। (दे ६ । १६)

८-कावेरी— ९ बड़ी कावेरी नदी कूर्मपुराण २ । ३७ के अनुसार 'चन्द्रतीर्थसे' प्रकट होती है, जो कूर्ग (मैसूर)में 'ब्रह्मगिरि'के पास है। पश्चिम समुद्रमें गिरती है और दक्षिण भारतकी प्रसिद्ध नदी है। पर यहाँकी निर्दिष्ट नदी छोटी-कावेरी है, जो विन्ध्याचलसे प्रकट होकर 'ओंकारेश्वर मान्धाता'के पास नर्मदामें मिलती है। (नंदलाल दे)

९-करतोया— ८ इस नामकी कई नदियाँ हैं। बंगालकी करतोया नदी विशेष प्रसिद्ध हैं। पर यह मध्यभारतकी नदी है।

१०-कुमारी— १३ 'कौरहारी नदी' जो शुक्तिमान् पर्वतसे निकलकर राजगिरि (बिहार) के पास बहती है। विष्णुपुरा० २ । ३ में भी इसका उल्लेख है। [नन्दलाल देका भूगोल, पृष्ठ १०७।]

११-कुह्रू— ६ नन्दलाल देके अनुसार यह काबुल नदी है। वेदोंमें (ऋग्वेदसंहिता ५।५३।९) यह कुभा नदी है। राल्फके भूगोलमें इसका नाम (कोआ) है। लैसेन (Lassen) इसे पश्चिमभारतकी नदी मानते हैं।

१२-कृतमाला—११ पहले मत्स्य भगवान् सत्यव्रतराजाकी अञ्जलीमें, पुनः उनके कलशमें यहीं आये थे। भागवत ५ । १९ । १८, १० । ८९ । १९ तथा ८ । २४ । १२, *, वामनपुराण १३ ।

* एकदा कृतमालायां कुर्वतो जलतर्पणम्। तस्याञ्जल्युदके काचिच्छफर्येकाभ्यपद्यत ॥
... ... । कलशाप्सु निधायैनां दयालुर्निन्य आश्रमम् ॥
(श्रीमद्भागवत ८ । २४ । १२, १६ आदि)
प्रायः जहाँ-जहाँ मत्स्यावतारकी कथा है, वहाँ इस नदीका भी उल्लेख है।

३२, विष्णुपु० ३।२, चैतन्यचरितामृत ९आदिमें इसका उल्लेख है। यह दक्षिण भारतमें मदुराके पास बहनेवाली 'वेगई' नदी है। (Indian Historical quarterly XVIII.4. P. 314, XX)

१३–कृपा— १३ शुक्तिमान् पर्वत (विहार)से निकली उड़ीसाके उत्तरमें बहनेवाली एक नदी।

१४–कृष्णावेणी— १० 'कृष्णकर्णामृत'के रचयिता बिल्वमङ्गल इसीके तटपर रहते थे। यह मछलीपट्टम्से कुछ दूर दक्षिण 'बंगालसागर'में गिरती है।

१५–कौशिकी—६ विहारकी कोसी नदी। इसका वर्णन 'वराहपुराण'के 'कोकामुख' क्षेत्रके वर्णनमें भी आया है।

१६–क्षिप्रा— ७ इसका शुद्ध पाठ 'शिप्रा' मानते हैं। कुछ लोग इन नामोंकी दो भिन्न-भिन्न नदियाँ भी मानते हैं।

१७–गङ्गा— ६ इसपर 'कल्याण'के 'तीर्थाङ्क', पृष्ठ ६६४-६७ तथा वर्ष ४७के ५ से ७ तकके सामान्य अङ्कोंमें भी धारावाहिक लेख प्रकाशित होते रहे हैं।

१८–गण्डकी— ६ धवलागिरिसे 'सप्तगङ्गा' या 'सप्तगण्डक' स्थानसे प्रकट होनेवाली उत्तर भारतकी प्रसिद्ध नारायणी नदी, जो आगे चलकर गण्डक नामसे प्रसिद्ध होती है। वराहपुराण, अध्याय १४४ श्लोक १२२-२३के अनुसार भगवान् विष्णुके (गण्ड—गाल) मुँहसे प्रकट होनेके कारण ही इसका नाम गण्डकी हुआ है—**गण्डस्वेदोद्भवा यत्र गण्डकी सरितां वरा। भविष्यति न संदेहो यस्य गर्भे भविष्यति।** महाभारत १२। १। ९। ५। ९। २५में इसका नामान्तर 'हिरण्वती' भी बतलाया गया है।

१९–गिरा— ६.यह हिमालयसे निकली 'वाग्मती'-नदी*का ही नामान्तर है। इसका वर्णन वराहपुराणके २१५–१६ अध्यायोंमें विस्तारसे हुआ है।

२०–गोमती— ६.लखनऊके पाससे होकर बहती हुई काशीके पूर्व मार्कण्डेयेश्वरके पास मिलनेवाली उत्तर प्रदेशकी प्रसिद्ध नदी। मानस २।१८७।४; ३२१। ५में भी इसका उल्लेख है।

२१–गोदावरी— १०.नासिकसे २० मीलपर ब्रह्मगिरिसे निकलकर पूर्व सागरमें मिलनेवाली यह गौतमी या 'आदिगङ्गा' नामकी दक्षिण भारतकी सबसे बड़ी नदी है (वाल्मी० रामा० ३-४)। यहाँ भी १२ वर्षपर (नासिकमें) कुम्भमेला लगता है। वराहपुराण अ० ७१में भी इसका वर्णन है।

२२–चक्षुमती— ६.यूनानी भूगोल-लेखकोंकी 'आक्सस' नदी या आमू-दरिया। 'भास्कराचार्य'ने 'सिद्धान्तशिरोमणि'केभुवनकोश ३७-३८में इसे केतुमालवर्षकी नदी माना है।

२३–चन्दनाभा या चन्दना— ६. 'दे'के अनुसार साबरमती-आश्रमके पासकी 'साभ्रमती' नदी भी चन्दना कहलाती है। वाल्मीकिरामायण किष्किन्धाकाण्ड ४०। २०के अनुसार यह संथाल परगनाकी चन्दना है, जो गङ्गामें मिल जाती है। अधिकांश स्थलमें यह 'नन्दना' या चन्दना (महा० ६।९।१८) नदी है।

२४–चन्द्रभागा—६. पंजाबकी चनाब नदी, 'कालिका-पुराण'में इसका विस्तृत वर्णन एवं बहुधा उल्लेख है। वैसे भारतमें

* हिमाद्रेस्तुङ्गशिखरात् प्रोद्भूता वाग्मती नदी। भागीरथ्याः शतगुणं पवित्रं तज्जलं स्मृतम्। (वराहपुराण २१५। ५०)

'चन्द्रभागा' नामकी छोटी-बड़ी कई नदियाँ हैं ।

२५-चित्रकूटा— ८. चित्रकूटकी पयस्विनी नदी ।

२६-चित्रोत्पला—८. उड़ीसाकी प्रसिद्ध महानदी, ब्रह्मपुराण ४६, (Asiatic Researches, XV.)

२७-ज्योतीरथा—८. इसका विवरण लेखके अन्तमें देखिये ।

२८-तमसा— ८. इस नामकी कई नदियाँ हैं, पर यह गङ्गाके दक्षिण ओरकी नदी है । इसीके तटपर महर्षि वाल्मीकिका आश्रम था और रामायणकी रचना हुई । (द्रष्टव्य वाल्मीकिरामायणकी भूमिका गीताप्रेस, तथा बालकाण्ड अध्याय २, श्लोक ३-४ आदि) ।

२९-तापी— ९. दक्षिण भारतकी प्रसिद्ध नदी ।

३०-ताम्रपर्णी—१३. ,, निकेवेलीके पास प्रवाहित होनेवाली तिस्ता नदी ।

३१-तुङ्गभद्रा— १०. दक्षिण भारतकी प्रसिद्ध नदी।

३२-त्रिसामा— १२. उड़ीसाकी प्रसिद्ध नदी ।

३३-त्रिदिवा— १२. उड़ीसाकी ही एक नदी ।

३४-दशार्णा— ८. द्रष्टव्य पाणिनि अष्टाध्यायी ४।८९ पर कात्यायनका वार्तिक, बुन्देलखण्डमें भोपाल जिलेकी 'धसान' नदी जो बेतवामें मिलती है । (Oxf. Hist. P. 12, Geog Dict. N. L. Dey)

३५-दुर्गा*— ९. साबरमतीकी एक सहायक नदी —A Tributary of Sabarmati, in Gujarat, N.L. Dey.

३६-दृषद्वती— ९. ऋग्वेद ३ । २३ । ४–, मनुस्मृति २।१७, महाभा० ३।५।२,८३। ४, २०४ यह कुरुक्षेत्रमें बहनेवाली 'कग्गर,' घग्गर, चित्रांग या रक्षी नदी है ।

३७-देविका— ६. इसका वर्णन लेखके अन्तमें देखें।

३८-धूतपापा†— ६. काशीके पास गङ्गाकी एक सहायक नदी तथा 'नैमिषारण्य' का 'धोपाप' तीर्थ एवं एक नदी है।

३९-नर्मदा— ८. मध्यभारतकी 'रेवा' नामकी अत्यन्त प्रसिद्ध नदी, स्कन्दपुराणका रेवाखण्ड तथा 'कल्याण'का 'तीर्थाङ्क' देखें ।

४०-निर्विन्ध्या— ८. मध्यप्रदेशकी कालीसिन्धं-नदी (मेघदूत) ।

४१-निश्चीरा— ६. 'हिमालय'से निकली एक नदी (महाभारत ६ । ९ । २३ में यह कुशचीरा नदी है ।)

४२-पङ्क्तिनी— ८. 'ऋक्षमान्' पर्वतसे निकली नदी।

* 'दुर्गा' नदीका माहात्म्य 'पद्मपुराण' उत्तरखण्डके ६०वें अध्यायमें प्राप्त होता है । 'ब्रह्माण्डपुराण'के ४९वें अध्यायमें भी इसका उल्लेख है ।

† वराहपुराण १४८।१९में भी इसका उल्लेख है । पं० लक्ष्मीधरके मतानुसार यह नैमिषारण्यमें गोमतीके पास है । स्तुतस्वामी (वराहपुराण अ० १४८ । ९–३०) भी यहीं हैं । यहीं धौतपापतीर्थ है । 'कृत्यकल्पतरु'के निर्माता लक्ष्मीधरके आश्रयदाता गहड़वाल राजे भगवान् वराहके ही उपासक थे । अतः 'कल्पतरु'के 'तीर्थकाण्ड'में उनके तीर्थोंकी विशेष चर्चा है— 'And Stutasvâmi, (page 222—24), which must have been in the present U. P., as it is said, to be only three miles from Dhutapâpa, ie. Dhopâpa, in Oudh. The family-deity of the Gâhdawâlas was Varâha (Viṣṇu), Introduction to the Tirtha-Kâṇḍa of KṛtyaKalpataru (Page 88,). 'कल्याण,' 'तीर्थाङ्क' पृ० १११ पर भी 'धौतपाप'का वर्णन है ।

४३–पयोष्णी*—८. दक्षिण भारतकी पैनगङ्गा नदी।

४४–पर्णाशा—८. बनास नदी, इस नामकी दो नदियाँ हैं, एक राजस्थानमें, दूसरी आरा जिलेमें (वर्तमान रोहतास) सासारामके पश्चिम।

४५–पलाशिनी—१३. 'गिरिनार'के 'रुद्रदामन' शिलालेखके अनुसार काठियावाड़में 'गिरिनार'के पास बहनेवाली नदीका यह नाम है। पर वस्तुतः यह उड़ीसामें 'कलिङ्गपट्टम्'के पासकी 'पद्दैर' नदी है। (दे, पृ० १४४) (महाभारत ६। ९। २२)में यहाँ 'पाशाशिनी' तथा 'मत्स्य'-पुराण १४४। ३२ आदिमें 'पाशिनी' पाठ है।

४६–पारा—७. कौशिकी या कोसी नदीकी एक शाखा नदी (म० भा० १।७१।३२)।

४७–पिप्पला—८. नन्दलाल देके अनुसार यह मालवाकी 'पार्वती' नदी है। 'मालती-माधव' ९, ब्रह्माण्ड-पुराण १। ४९।२०, देका भूगोल पृ० १४९।

४८–पिशाचिका—८. गोण्डवानाके पासकी एक नदी।

४९–पुष्पावती—११. मलयगिरिसे निकली रामेश्वरम्‌के पासकी एक नदी (महा० वन० ८५।१२), नामान्तर 'पुष्पवती' 'पुष्करावती' तथा 'पुष्कलावती' पाणिनि ४।२।९५, ६।१।२१९, ६।३।११९—'काशिका'।

५०–वालुवाहिनी—८. गोण्डवानाके पासकी एक नदी।

५१–बाहुदा—६. गोरखपुरके दक्षिण बहनेवाली राप्तीके ऊपरले भागकी एक सहायक नदी।

५२–भीमरथी—१०. यह महाराष्ट्रकी प्रसिद्ध भीमा नदी है, जो कृष्णामें मिलती है (गरुडपु० १।५५)। पण्ढरपुर इसीके तटपर है। 'दे'का भू० पृ० ३३।

५३–मणिजाला—९. मध्यप्रदेशकी एक नदी (भीष्म-पर्व ११। ३२)

५४–मन्दगा—१३. दक्षिण विहारकी एक नदी।

५५–मन्दगामिनी—१३. यह भी शुक्तिमान् पर्वतसे प्रसूत दक्षिण विहारकी ही एक नदी है।

५६–मन्दाकिनी—८. यह चित्रकूटकी प्रसिद्ध नदी है।

नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रिप्रिया निज तप बल आनी॥
सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि॥
(द्रष्टव्य मानस २। १३१। ३, १३७। ३ आदि भी)

५७–यमुना—६. उत्तर भारतकी प्रसिद्ध नदी। इसके तटपर मथुरा है। वराहपुराणमें मथुरा-माहात्म्यके ३० अध्यायोंमें इसका बहुधा उल्लेख है।

५८–रात्रि—८. गोण्डवाना जिलेकी एक नदी।

५९–लाङ्गूलिनी—१२. यह आधुनिक लांगूलीया है जो मद्रासके 'श्रीकाकुलम्'के उत्तरमें बहती है।†

६०–लोहिता—६. आसामकी प्रसिद्ध ब्रह्मपुत्र नदी।

६१–वञ्जुका—८. गोण्डवानाकी प्रसिद्ध नदी। (महा० भीष्मप० ९। ३४)

६२–वञ्जुला—१०. पश्चिमघाट-पर्वतमालासे निकली 'मंजीरा' नदी, जो गोदावरीमें मिलती है। महाभा० ६। ९। ५ में इसका नाम मञ्जुला है।

६३–वपन्ती—८. ऋक्षमान् पर्वतसे निकली मध्य-प्रदेशकी एक नदी।

६४–वंशधरा—१३. कलिङ्गपट्टम्‌के दक्षिण चिकाकुलके पास बहनेवाली उड़ीसाकी एक प्रसिद्ध नदी।

६५–वितस्ता—६. पंजाबकी व्यास नामक प्रसिद्ध नदी

६६–विदिशा—६. भेलसाके पासकी नदी। (महा० सभाप० ९। १८, भीष्मपर्व ९। २८)

६७–विमला—१२. दक्षिणभारतकी एक नदी। (हरि० १०९। ३३)

६८–विशाला—८. सरस्वतीकी एक शाखा नदी। (महाभा०, शल्यपर्व ३८। २०)

६९–विरजा—८. उड़ीसामें जगन्नाथपुरीके पास बहनेवाली प्रसिद्ध नदी।

* पयोष्णी नदीका उल्लेख श्रीमद्भागवत ५। १९। १७, पद्मपुराण ६। ४१, मत्स्यपुराण २२। २३में भी है। महाभारत, वनपर्व अ० ६१, ८५। ४०, ८८। ४—६, १२०। १३-३२, १२१। ३ आदिमें इसकी बड़ी महिमा है।

† Langulini is the modern Languliya, running past Chicacole (Sri Kakulam) in th Madras. (Indian Historical Quarterly. xxvii. 3. p. 227)

७०-वेत्रवती— ७. वेतवा नदी ।

७१-वेदवती या वेदश्रुति— ६. (महाभा० ६ । ९ । १७) यह आजकी विसुई नदी है, (वाल्मी० रा० २ । ४९ । १०)

७२-वेदस्मृति— ६. ,, गोमती एवं तमसाके बीच बहती है ।

७३-वैतरणी— ९. उड़ीसाकी प्रसिद्ध नदी ।

७४-वैदीपाला— ९. विंध्याचलसे निकलकर मध्य-प्रदेशमें बहनेवाली नदी ।

७५-शतद्रु— ६. पंजाबकी प्रसिद्ध सतलज नदी ।

७६-शिप्रा— ७. किसी-किसीमें क्षिप्रा-शिप्रा दो अलग नदियाँ हैं । किसीमें यह उज्जैनकी शिप्रा है ।

७७-शुचिष्मती—८. गोण्डवाना जिलेकी एक नदी ।

७८-शुभा— १२. केरल प्रदेशकी एक नदी ।

७९-शोण— ८. विहारमें पटनाके पास गङ्गामें मिलनेवाला प्रसिद्ध सोन नद ।

८०-सदानीरा— ८. यह 'करतोया'का ही नामान्तर है । (अमरकोश)

८१-सरयू— ६. पाणिनि ६।४।१७४, महाभा० १।१६९।२०, ३।८४।७०-७१, २२।२२२; १३।१५५। २३-२४ तथा वाल्मी० रामायण, अयोध्याके उत्तरमें बहनेवाली रामायणकी प्रसिद्ध नदी ।

८२-सरस्वती— ६. भारतमें इस नामकी* १३ नदियाँ हैं। (विविधपुराण) कुरुक्षेत्रकी विशेष प्रसिद्ध है ।

८३-सिन्धु— ६. पाणिनि अ० ४।३।९३ आदिमें निर्दिष्ट पंजाबकी सिन्ध नदी† ।

८४- ,,— ७. मध्य भारतकी काली सिन्ध ।

८५-सुरसा— ८. उड़ीसाकी एक छोटी नदी ।

८६-सुप्रयोगा—१०. केरल प्रदेशकी एक नदी ।

स्थल-निर्देश (Location) की समस्या

यद्यपि गङ्गा आदि नदियाँ बड़ी प्रसिद्ध हैं, तथापि कुछ नदियोंके स्थल-निर्देश (Location) की समस्या अभी पर्याप्त जटिल है, जैसे देविका नदीकी । इसकी वराहपुराणमें बड़ी ही महिमा है । इसकी प्रार्थनासे अद्भुत कार्य हो जाते हैं । सत्यतपाकी प्रार्थनापर यह महर्षि दुर्वासाकी कुटियातक चेतनरूपमें मुड़ जाती है (अध्याय ३८ । २४–३०) । इसके तटपर श्राद्धके लिये आकाशसे एक दिव्य थालीका गिरना, वृक्षोंमेंसे दिव्य पुरुषोंको निकलकर भिक्षा देना, सब आश्चर्यकर ही हैं । इसके तटपर साधना-भजन-तप एवं श्राद्धादि करनेकी अपार महिमा है ।

श्रीनन्दलाल देके अनुसार भारतमें 'देविका' नामकी चार नदियाँ हैं, एक तो यह तथा दूसरी अवधकी सरयू, तीसरी सरयूका दक्षिण भाग, चौथी गोमती-सरयूके बीचकी कोई नदी (कालिकापुराण २३) और पाँचवीं 'मुक्तिनाथ'-पर्वतकी । पर अधिकांश पुराणोंमें देविकाके साथ सरयूका नाम भी परिगणित है, अतः द्विरुक्ति ठीक नहीं । पाणिनि ७ । ३ । १ पर महाभाष्यकारने पतञ्जलिके देविका-तटवर्ती चावलकी बड़ी प्रशंसा की है । अतः पार्जिटर, डॉ० अग्रवाल आदि विद्वान् इसे पंजाबकी 'देग' नदी मानते हैं, जो जम्मूसे निकलकर स्यालकोट, शेखपुरा जिलोंके बीचसे बहती हुई रावीमें गिरती है (वामनपुराण ८४) ।

* यह कैलासपर्वतसे निकलकर ८०० मीलतक पर्वतपर बहती हुई दरद, काश्मीरसे होती हुई, गान्धार, ओहिन्द (उद्भाण्ड), लाहौर (शालातुर पाणिनिकी जन्मभूमि) आदिके पार्श्वसे प्रवाहित होती हुई अरबसागरमें गिरती है ।

अन्योंने भी 'देग'को ही देविका माना है, जो ठीक लगता है।* पर वराहपुराण अ० १४४-४५की 'देविका' तो स्पष्ट ही 'मुक्तिनाथपर्वत'की एक छोटी नदी है, जो आगे जाकर त्रिवेणीमें मिलती है। श्रीविष्णु-धर्मोत्तरमहापुराण १। १६७। १७ का भी यही मत है।

२७—ज्योतीरथा (या ज्योतिरथा)—गद्य ७ में इस नदीका उल्लेख है। इसका उल्लेख महाभारत ३। ८५। ८, ६।९।२६, हरिवंश २।१०९।२६, मार्कण्डेयपुराण ५७ (पार्जिटर पृष्ठ २९४) आदिमें भी है। नन्दगीर्कर डॉ० अग्रवाल एवं रेवाप्रसाद द्विवेदीके अनुसार पहलेके रघुवंशके सभी संस्करणोंमें (७। ३६ के मूलपाठ एवं संस्कृत व्याख्याओंके अनुसार भी) 'ज्योतिरथा' पाठ ही था। 'भागीरथी' पाठसे यहाँ कोई भी अर्थ या हल नहीं निकलता; क्योंकि ज्योतीरथा शोणकी सहायक नदी है और गङ्गासे १७५ मील दूर दक्षिणमें निर्दिष्ट है। कुछ विद्वानोंका विश्वास है कि अज-युद्धके बहाने कालिदासने यहाँ चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके दिग्विजय या 'कृत्स्नापृथ्वीजय'का वर्णन किया है। इसी प्रसङ्गमें उक्त राजाने उदयगिरि-गुफामें भगवान् महावराहकी भी एक प्रतिमा अङ्कित करायी थी, जिसके चारों ओर समुद्र प्रदिष्ट हैं। इसका व्याज-निर्देश रघुवंश ७। ५६के **'निवारयामास महावराहः कल्पक्षयोद्वृत्तमिवार्णवाम्भः'** इन शब्दोंमें भी मिलता है। कहते हैं—इसी 'कृत्स्ना पृथ्वीविजय'का उल्लेख उदयगिरिके शिलालेखमें भी—

कृत्स्नपृथ्वीजयार्थेन राज्ञैव च सहागतः।
भक्त्या भगवतः शम्भोर्गुहामेतामकारयत्॥

इस प्रकार हुआ है। प्रसिद्ध है कि उसने अपनी कन्या प्रभावती गुप्ताका विवाह भी वाकाटकनरेशके साथ इसी यात्राक्रममें सम्पन्न कर, इस प्रकार साम-दानादिसे सौराष्ट्र, गुजरात, मालवा एवं समग्र दक्षिण भारतको भी क्रमसे अपने पूरे वशमें किया था। अतः 'वराहपुराण'का यह पाठ बड़े महत्त्वका है। यहाँ श्राद्ध करनेकी बड़ी ही महिमा है—

शोणस्य ज्योतिरथ्याश्च सङ्गमे निवसञ् शुचिः।
तर्पयेद्यः पितॄन् देवानग्निष्टोमफलं लभेत्॥
(महाभारत, वनपर्व ८५। ८)

पार्जिटर तथा नन्दलाल देके अनुसार आज इसका नाम 'जोतिका' है। सागरसे सोहागपुर और विलासपुरकी ओर जानेवाली रेल सिंहवाड़ाके पास 'ज्योतीरथा'को पार करती है। यह प्रायः मध्यप्रदेशके मानचित्रोंमें अक्षांश २३। ५ और देशान्त० ८१के पास दिखायी पड़ती है।

इसके अतिरिक्त वराहपुराणके २१४ वें अध्यायमें 'अजिरवती' या 'अचिरवती'का उल्लेख है, जो गोरखपुरकी 'राप्ती'नदी है। ('देका भूगोल' पृ० १) वराहपुराणके २१५–१६वें नेपालकी बाग्मतीकी भी विस्तृत महिमा है, जो उपर्युक्त अनुक्रमणीमें 'गिरा' नामसे परिगणित हुई है।

वराहपुराणपर समीक्षात्मक पाश्चात्त्य दृष्टिकोण तथा उसका समुचित समाधान

यद्यपि 'अचल'-दान, रत्न-'तिल'-'गुड'-'धेनु'आदि दान, विविध व्रतोंके अनुष्ठान एवं दान 'मत्स्य,' 'पद्म,' भविष्यादि सभी अन्य पुराणों तथा महाभारत अनुशासनपर्वके भी विषय हैं, पर हाजरा आदि आधुनिक विद्वानोंने 'वराहपुराण'के इस

* Pāṇini mentions the river Devikā and what grew on its banks (VII. 3. 1), which Patañjali describes to be śāli rice—'दाविकाकूलाः शाल्यः'. Pargiter rightly identified it with river Deg (Mark. Purāṇa, P. 292). According to the Viṣṇu Dharmottara Purāṇa (1. 167. 17), the Devikā flowed through the Madra Country and joint the river Rāvi. According to Vāman Purāṇa chapter 84 rising in Jammu Hills, the Deg flows through the Shyalkot and Sheikhpura districts and joint the Rāvi. In each rainy season it deposits on its banks layers of alluvium soil, which produce rice of fine quality that are famous all over the Punjab and exported from Murdke and Komeke towns (identification of Devika, Journal of U. P. Historical society, 1944 page 70 to 79,— 'India as known to Pāṇini' P. 46).

दृष्टिकोणकी आलोचना की है । और कुछने इन्हें प्रक्षिप्त माना है । उन्होंने लिखा है—'The methods of making the artificial cows, hillocks etc. in the ceremonial gifts testify to their highly expensive nature.......One of the intentions underlying the above story is to raise the position of the Brāhmaṇas in the public eye.' (Hazra, Purāṇic Records on Hindu Rights & customes P. 247—257)

किंतु ये विद्वान् सत्ययुग, त्रेतादिके भारतीय वैभवोंको भूल जाते हैं ।

महाभारतका भी कहना है कि रत्नदानका पुण्य अत्यन्त महान् है—

रत्नदानं च सुमहत्पुण्यमुक्तं जनाधिप ।

(अनुशासन०दान० ६८ । २९)

भारतवर्षमें पहले रत्नों तथा धन-धान्यका कैसा बाहुल्य था, यह 'मत्स्यपुराणादि'के रत्नाचलवर्णनसे ही स्पष्ट होता है । वहाँ कहा गया है कि हजार मोतियोंका एक जगह ढेर करे । इसके पूर्वमें वज्र और गोमेदका ढेर रक्खे, इनमें प्रत्येककी संख्या २५० होनी चाहिये । इतनी ही संख्याकी इन्द्रनील और पद्मराग मणियोंको दक्षिण दिशाकी ओर रखकर गन्धमादनकी कल्पना करे । पश्चिममें वैदूर्य और प्रवाल (विद्रुम या मूँगों) का विमलाचल बनाये एवं उत्तरमें पद्मराग और सोनेके ढेर रक्खे । धान्यके पर्वत भी सर्वत्र बनाये एवं जगह-जगहपर सोनेके वृक्ष एवं देवताओंकी रचना करे, फिर इनकी पुष्प-गन्धादिसे पूजा करे एवं **'यदा देवगणाः सर्वे'** इत्यादि मन्त्रोंको पढ़कर इस रत्नाचलको विधिपूर्वक ऋत्विजों या आचार्य आदिको दान कर दे—

मुक्ताफलसहस्रेण पर्वतः स्यादनुत्तमः ।
चतुर्थांशेन विष्कम्भपर्वताः स्युः समन्ततः॥
पूर्वेण वज्रगोमेदैर्दक्षिणेनेन्द्रनीलकैः ।
पद्मरागयुतः कार्यो विद्वद्भिर्गन्धमादनः ॥
वैदूर्यविद्रुमैः पश्चात्सम्मिश्रो विमलाचलः ।
पद्मरागैः ससौवर्णैरुत्तरेण च विन्यसेत् ॥
धान्यपर्वतवत्सर्वमत्रापि परिकल्पयेत् ।
तद्वदावाहनं कुर्याद् वृक्षान् देवांश्च काञ्चनान् ॥
पूजयेत्पुष्पगन्धाद्यैः प्रभाते च विमत्सरः ।
पूर्ववद् गुरुऋत्विग्भ्य इमान् मन्त्रानुदीरयेत् ॥
अनेन विधिना दद्याद् रत्नाचलमनुत्तमम् ।

(मत्स्यपुराण ९० । १—९)

महाभारतका कहना है कि जो इन रत्नोंको बेचकर सौम्य प्रकारके यज्ञ करता है या प्रतिग्रह लेकर इन्हें किसी अन्यको दान कर देता है, उन दोनोंको ही अक्षय पुण्य होता है ।

यत्तान् विक्रीय यजते ब्राह्मणो ह्यभयङ्करम् ।
यद्वै ददाति विप्रेभ्यो ब्राह्मणः प्रतिगृह्य वै ॥
उभयोः स्यात्तदक्षय्यं दातुरादातुरेव च ।

(महा० अनु०६८ । २९-३०)

'गरुडपुराण', 'युक्तिकल्पतरु', 'शैवरत्नाकर' आदिमें धर्माचरण तथा देवानुग्रहको दिव्य रत्नोंकी प्राप्तिका कारण माना है ।

महर्षि वाल्मीकिने अयोध्यापुरीका वर्णन करते हुए लिखा है कि वह सब प्रकारके रत्नोंसे भरी-पूरी और विमानाकार गृहोंसे सुशोभित थी—

गीतावलीमें गोस्वामीजीने भी इसका खूब चित्रण किया है—

कोसलपुरी सुहावनी सरि सरजूके तीर ।
भूपावली-मुकुटमनि नृपति जहाँ रघुबीर ॥

× × ×

गृह गृह रचे हिंडोलना, महि गच काँच सुढार ।
चित्र बिचित्र चहूँ दिसि परदा फटिक-पगार ॥
सरल बिसाल बिराजहीं बिद्रुम-खंभ सुजोर ।
चारु पाटि पटी पुरटकी झरकत मरकत भौंर ॥
मरकत भँवर डाँड़ी कनक मनि-जटित दुति जगमगि रही ।
पटुली मनहु बिधि निपुनता निज प्रगट करि राखी सही ॥
बहुरंग लसत बितान मुकुतादाम-सहित मनोहरा ।
नव-सुमन-माल-सुगंध लोभे मंजु गुंजत मधुकरा ॥

(उत्तर० १९ । १, ३)

जनकपुरीकी शोभा भी आपने ऐसे ही वर्णित की है। मण्डप-रचनाकी शोभामें तो आपने अपने अनूठे रत्नविज्ञानका ज्ञान प्रदर्शित किया है—

हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल।
रचना देखि बिचित्र अति मनु बिरंचि कर भूल॥
बेनु हरित मनिमय सब कीन्हे।
कनक कलित अहिबेलि बनाई।
बिच बिच मुकता दाम सुहाए॥
मानिक मरकत कुलिस पिरोजा।
चीरि कोरि पचि रचे सरोजा॥

—आदिका वर्णन तत्कालीन भारतीय वैभवका सूचक है, कोरा काव्य नहीं। वाल्मीकिका लङ्का-वर्णन भी ऐसा ही है।—

सचमुच भारतकी अन्तिम अलौकिक विभूतिकी बात पढ़-सुनकर आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है। अतः उस समय इस प्रकार दान देनेकी बात साधारण थी। उस समय देनेवाले बहुतेरे थे, पर लेनेवाले बहुत कम थे। इस सम्बन्धमें 'मनुस्मृति' आदिके (१२।१) तथा इन्हीं वराहादि पुराणोंमें 'दानग्रहण' एवं 'श्राद्ध-भोजन' की निन्दाके प्रकरण द्रष्टव्य हैं, जिनमें कहा गया है कि काम चलनेसे अधिक धन लेनेपर ब्राह्मण नरकमें जाता है और ब्राह्मणत्वसे भी च्युत हो जाता है—

'प्रतिग्रहरुचिर्न स्यात्', 'प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसङ्गं तत्र वर्जयेत्।' प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति।'

(मनु० ४।१९६), आदि तथा

धनलोभे प्रसक्तस्तु ब्राह्मणो यात्यधोगतिम्।
स्थित्यर्थादधिकं गृह्णन् ब्राह्मण्यादेव हीयते॥

(पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड ५७।४२)।

वराहपुराणके मार्मिक उपदेश

'वराहपुराण'में भगवद्भक्ति तथा आत्मज्ञानकी प्रशंसा प्रायः सर्वत्र है। तीर्थ, श्राद्ध एवं क्षमा, दान, दया आदिकी महिमा भी बहुत जगहोंपर है। इस सम्बन्धमें कथाएँ तथा उदाहरण भी प्रचुर हैं। वृक्षारोपणकी महिमा भी अनन्त है। एक स्थानपर कहा गया है—

अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं न्यग्रोध-
मेकं दश पुष्पजातीः।
द्वे द्वे तथा दाडिममातुलुङ्गे
पञ्चाम्ररोपी नरकं न याति॥

(वराहपु० १७२।३९)

अर्थात्—एक पीपल, एक नीम, एक बड़, दस मालती या अन्य फूलदार लतावृक्ष, दो अनार, दो नारंगी तथा पाँच आम्रवृक्षोंको रोपनेवाला मनुष्य कभी नरकमें नहीं जाता।

इसमें धर्मकार्यकी प्रशंसामें कहा गया है—

क्रियातः स्वर्गवासोऽस्ति नरकस्तद्विपर्ययात्।
पुण्यरूपं तु यत्कर्म दिशो भूमिं च संस्पृशेत्॥
यावत् स शब्दो भवति तावत् पुरुष उच्यते।
पुरुषश्चाविनाशी च कथ्यते शाश्वतोऽव्ययः॥

(वराहपु० १७७।९-१०)

अर्थात्—धर्मक्रियासे स्वर्ग और पापसे नरक मिलता है। पुरुषके पुण्य-कर्म पृथ्वीसे स्वर्गतक व्याप्त हो जाते हैं। जबतक पुरुषकी प्रशंसा है, तबतक वह पुरुष है और उसकी निन्दा उसके नरकका रूप है। अध्याय १६-१७ तथा १८०-८१की श्राद्धतर्पणविधि अत्यन्त प्रशंसनीय है। इसमें विधिहीन श्राद्धतर्पणकी बलि त्रिजटा आदिको प्राप्त होनेकी बात निर्दिष्ट है। (१८०। ६५-८०) २०७वें अध्यायमें आधि-दैविक एवं आध्यात्मिक कर्मोंके श्रेष्ठ फल हैं। यहाँ कहा गया है कि तपस्याद्वारा स्वर्ग, यश, आयु, भोग, ज्ञान, विज्ञान, रूप, सौभाग्य सब कुछ मिलता है। अहिंसासे सौन्दर्य एवं दीक्षासे श्रेष्ठ कुलमें जन्म, गुरु-सेवासे विद्या और श्राद्धसे संततिकी प्राप्ति होती है—(२०७। ३६-४१)

अहिंसया परं रूपं दीक्षया कुलजन्म च।
गुरुशुश्रूषया विद्या श्राद्धदानेन संततिः॥

इसके उपदेश अन्य पुराणोंकी अपेक्षा भी कहीं-कहीं मार्मिक, हृदयस्पर्शी एवं विशेष महत्त्वके हैं। इस प्रकार यह पुराण धर्म-ज्ञान, श्रद्धाभक्तिवर्धक, त्रिवर्गदायक तथा मोक्ष-प्राप्तिमें परम सहायक है।

श्रीवराहावतार-संदेह-निराकरण

(लेखक—पण्डित श्रीदीनानाथजी शर्मा सारस्वत, शास्त्री, विद्यावागीश, विद्यावाचस्पति)

यह कलियुगका समय बड़ा अद्भुत है। इसमें लोग वेद-पुराणादिपर भी अनेक आशङ्काएँ करते हैं। कहा जाता है कि वराहभगवान्‌की मूर्तिको पेड़ा, बर्फी आदिका भोग लगाना उचित नहीं; क्योंकि उनका वह भोजन नहीं है। इसपर हम 'कल्याण'के पाठकोंके समक्ष इसका वास्तविक रहस्य बतानेका प्रयत्न कर रहे हैं। पाठक ध्यान देंगे। अवतारोंके लिये यह एक पद्य प्रसिद्ध है—

वनजौ वनजौ खर्वो रामौ रामः कृपोऽकृपः।
अवतारा दशैते स्युः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्॥*

दो अवतार वनज—वन्य हैं। वन जलको भी कहते हैं, जंगलको भी। अतः जलीय अवतार तो मत्स्य और कूर्म हैं, अन्य वनज-अवतार वन्य होते हैं। उनमें एक वन्य-अवतार वराह, दूसरा नृसिंह है—ये चार अवतार हुए। **खर्वः**—वामनको कहते हैं। इसे लेकर पाँच अवतार हुए। फिर तीन हैं—राम—परशुराम, रामचन्द्र और बलराम—ये इस प्रकार कुल आठ हुए। **'कृपः'**—कृपाका अवतार बुद्ध नौवाँ हुआ। **अकृपः**—म्लेच्छोंके लिये कृपारहित दसवाँ अवतार कल्किका है।

जिस वराहको लक्ष्य कर इस प्रकारकी बात कही जाती है, वह वन्य नहीं होता, किंतु ग्राम्य होता है। वनोंमें तो कन्दमूल-फल ही होते हैं। इसलिये प्राचीनतम ग्रन्थ 'निरुक्त'में उसको वर-आहार अर्थात् अच्छे भोजनवाला कहा गया है। पुराणोंमें इन्हें 'आदिवराह' कहा गया है। अर्थात् ये सृष्टिके आदिमें हुए थे। ये आदिवराह ही पृथ्वीके उद्धारकर्ता हैं। आदिवराहने पृथ्वीको दंष्ट्रापर रखा था। वह सूँड़-जैसी दंष्ट्रा वन्य-सूकरमें ही होती है, ग्राम्यमें नहीं। इस आदिवराहने अपनी उसी दंष्ट्रासे हिरण्याक्ष-दैत्यको भी विदीर्ण कर दिया था। अन्य बात यह है कि प्रलयमें तो केवल जल-ही-जल रहता है। साथ ही उस समय पृथिवी उसके ऊपर नहीं होती, बल्कि वह उस प्रलय-जलके भीतर डूबी रहती है। जलको कम करनेवाला होता है ताप, जो सूर्यसे उत्पन्न होता है, पर सूर्य भी उस समय नहीं रहते। तब यज्ञाग्निरूप 'यज्ञ-वराह'की आवश्यकता पड़ती है। वेदोंमें कहा गया है—

'वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय विजिहीते मृगाय'
(अथर्ववेदसं० १२। १। ४८ पृथिवीसूक्त)

यहाँ वराहद्वारा पृथिवीकी प्राप्ति कही गयी है। फिर उसे 'मृग' अर्थात् सूकर—जंगली पशु भी कहा गया है।

पहले बताया जा चुका है कि वन्य-सूकरको आदिवराह कहा जाता है। पुराणोंमें उसके ब्राह्मणको दान देनेकी विधि भी निर्दिष्ट है—

आदिवराहदानं ते कथयामि युधिष्ठिर।
धरण्यै तत् पुरा प्रोक्तं वराहवपुषा मया॥
(भविष्यपुराण अ० १९४)

अतः उस 'आदिवराह'का तात्पर्य—भगवान् विष्णुके 'वराहावतार'से ही है।' यह अवतार सृष्टिके आदिमें—प्रलय-जलमें निमग्न पृथ्वीके उद्धारार्थ—पृथ्वीदेवीको जलके ऊपर कर देनेके लिये हुआ था। उस समय मानुषी सृष्टि हुई ही नहीं थी। तब यहाँ मानुषी-मलभक्षणकी आशङ्काके लिये स्थान नहीं। यह वराह तो महाकवि कालिदासकी—**'विस्रब्धं क्रियतां वराहपतिभिर्मुस्ताक्षतिः पल्वले'** (अभिज्ञानशाकु० २। ६)—इस उक्तिके अनुसार मुस्ता 'नागरमोथा' आदिकी जड़ें खाता है।

* गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने भी एक दोहेमें कहा है—

दुइ बनचर दुइ बारिचर चारि बिप्र दो राउ। तुलसी दस जस गाइके भवसागर तरि जाउ॥

इसलिये निरुक्तकार श्रीयास्कने भी 'वराह'—के निर्वचनमें उसे **'वराहारः'** (५ । १ । ४) कहकर उसका अच्छा आहार ही माना है। श्रीयास्कने—**'बृहति मूलानि वरं वरं मूलं बृंहति'** (५ । १ । ४) कहकर वराहका आहार—अच्छी जड़ें खाना माना है*।

यद्यपि यहाँ तो अवतार खानेके उद्देश्यसे हुआ नहीं था, वह तो पृथिवीके उद्धारके उद्देश्यसे ही हुआ था। दिव्य होनेसे उसे लौकिक भोजनकी आवश्यकता भी क्या थी ? इसी प्रकारकी दूसरी शङ्का है—पुराणमें वराहका ब्रह्माजीकी छींकसे आविर्भूत होनेकी, जिससे उनकी अयोनिज उत्पत्ति भी सिद्ध होती है। पर अयोनिज-शरीरकी सिद्धि तो श्रीकणादमुनिकृत 'वैशेषिक-दर्शन' (४ । २ । ५–११) तथा 'प्रशस्तपाद-भाष्य' (द्रष्टव्य—पृथिवी आदि निरूपण)में भी देखी जा सकती है। इस अयोनिज-उत्पत्तिमें असम्भावना भी क्या है ?—'निरुक्त'में तो **'नासत्यौ नासिकाप्रभवौ बभूवतुः'** (६ । १३)—अश्विनीकुमारोंकी नाकसे स्पष्ट ही अयोनिज उत्पत्ति मानी गयी है।

हम पहले लिख चुके हैं—**'वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय'** (अथर्ववे० १२ । १ । ४८)। इस मन्त्रमें वराहको स्पष्ट करनेवाला 'सूकर' शब्द भी साथ पड़ा है। और फिर सूकरका विशेषण पशुवाचक 'मृग' शब्द भी साथ पड़ा है, अतः इसमें वेदमें 'वराहावतार'का सुस्पष्ट संकेत है।

'सृष्टिके आदिमें वेदमें पीछेके वराहावतारका संकेत कैसे आया', यहाँ यह शङ्का भी नहीं करनी चाहिये। वराहावतारने प्रलयके बाद सृष्टिसे पूर्व जलके भीतर पड़ी हुई पृथिवीको जलके ऊपर कर दिया था। अतः वेदमें पृथिवी जल-सूर्य आदि सृष्टिके पदार्थोंका वर्णन आनेसे सृष्टिकी पूर्व-अवस्थामें आविर्भूत वराहावतारका संकेत क्यों न आये ? वस्तुतः इस वेदमन्त्रमें वेद एवं पुराणका समन्वय होनेसे उक्त 'पृथिवीसूक्त'का मन्त्र पृथिवीके आदि उद्धारक 'वराहावतार'का ही मूल है—यह स्पष्ट हो रहा है।

वेदमें लिखा है—**'येत् (या इत्) आसीद् भूमिः पूर्वा यामद्धातय इद् विदुः। यो वै तां विद्यान्नामथा स मन्येत पुराणवित्'** (अथर्ववेद ११ । ८ । ७) 'जो अबसे पूर्व पृथिवी थी, जिसे पुराने विद्वान् भलीभाँति नाम-रूपसे जानते हैं—उसका वर्णन करनेवाले विद्वान्‌को वेदानुसार 'पुराणवित्' माना जाता है। अतः वेदके इस संकेतसे तथा पूर्वके लिखे 'वराहावतार' (अथर्व० १२ । १ । २८)के मन्त्रसे वेदों तथा पुराणोंमें पृथिवीकी पूर्वावस्था सूकरावतारसे उद्धृत होनेसे वेद-पुराणकी एकवाक्यता भी सिद्ध हो गयी।

'प्रोन्नीयमानावनिमग्रदंष्ट्रया ...... जहास चाहो वनगोचरो मृगः' (श्रीमद्भा० ३ । १८ । २)। इत्यादि वेद-पुराणादिके उद्धरणसे भी यह 'वन्य वराहावतार'का ही वर्णन सिद्ध होता है, ग्राम्यका नहीं। वन्य सूकरकी ही बाहर बढ़ी हुई दंष्ट्रा होती है, जिसपर वराहने पृथिवीको धारण रखा था, ग्राम्य-को वह नहीं होती। तभी तो 'दुर्गासप्तशती'में भी कहा है—

तुण्डप्रहारविध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः।
वाराहमूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः॥
(८ । ३६)

अतः प्रतिपक्षका कथन ग्राम्य-सूकरमें ही सम्भव है, वन्य सूकरमें नहीं। पर यह वराहावतार तो (जंगली) वन्यसूअर भी नहीं, किंतु 'दिव्य वराह' है। यहाँ तो वराहकी आकृतिमात्र ही थी, वस्तुतः वे तो साक्षात् विष्णुभगवान् थे। तब इसमें प्रतिपक्षके सभी आक्षेप धराशायी हो जाते हैं।

विष्णुका भोजन पेड़ा-बर्फी होता ही है। 'यज्ञवराह' होनेसे **'यज्ञो वै देवानां मन्नम्'** (शतपथ २ । ४ । २ । १) यज्ञहवि—पायस भी भोजन हो सकता है। शेष है 'वराहभगवान्'को प्रतिपक्षका भोग लगाना कहना; इसपर यह स्मरण रखना चाहिये कि—मनुष्यका जो

* 'निरुक्त' (मोर सं०)के भाग १, पृष्ठ ८३ तथा भाग ३, पृष्ठ ४८१-८६ तक ७ पृष्ठोंमें 'वराह' शब्दपर बड़ा सुन्दर विवेचन है।

उत्तम भोजन होता है, भगवान्‌को भी वह वही अर्पण करता है। जैसे कि वाल्मीकि-रामायणमें कहा है—

इदं भुङ्क्ष्व महाराज प्रीतो यदशना वयम्।
यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः॥
(२।१०३।३०)

यह साक्षात् मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामका कथन है—'पुरुष जिस उत्तम अन्नका प्रयोग करता है, देवताओंके लिये भी वह वही समर्पण करता है।' तब प्रतिपक्षकी अपवित्र शङ्का निरस्त हो गयी।

'यजुर्वेद-काठक' संहितामें भी देखिये—

'आद्यो वा इदमासम् सलिलमेव। स प्रजापतिर्वराहो भूत्वा उपन्यमज्जत्। तस्य यावन्मुखमासीत्, तावतीं पृथिवीमुदहरत्। सा इयम् (पृथिवी) अभवत्। यद् वराहविहतं भवति, वराहोऽस्यामन्नं पश्यति। तस्मै इयं विजिहीते, तदेव अन्नमभवत्, यत् तद् अत्ति, तद् अदितिः। यद् प्रथते, तत् पृथिवी। यद् अभवत्, तद् भूमिः।
(८।२।४)

यही बात अन्य मन्त्रभागोंद्वारा भी सूचित होती है।

प्रलयके समय अग्नितत्त्वके नष्ट हो जानेसे सम्पूर्ण पृथिवी जलमग्न हो गयी थी। जल भी बर्फ-रूपमें था, उसके उद्धारार्थ यज्ञाग्निरूप वराहने अवतार धारण किया (वराहपुराण ६। १५-२७)। उस दिव्याग्निरूप वराहने जलका शोषण कर पृथिवीको प्रलयके जलसे बाहर निकाला (ब्रह्मपुराण ३६। १९-२१)। प्रजापतिने वराहरूप धारणकर अपनी दिव्याग्निमें अपार जलराशिद्वारा दिव्ययज्ञ सम्पादित किया। उसने इस प्रकार पृथिवीपरसे लुप्त अग्नितत्त्वको पुनः प्रतिभासित किया। इसीकी स्मृतिके लिये मन्दिरोंमें उस वराहमूर्तिकी स्थापना होती है।

उसी वराहमूर्तिका दान पूर्वके पुराणपद्यमें बतलाया गया है। वेदोंमें भी आया है—

शतं महिषान् क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुषम्— (ऋग्वे० ८।७७।१०) **'वराहो वेद वीरुधं'** (ऋग्वेद)। यहाँ सूअरका एक जड़ी-बूटीको जानना कहा है—जिससे वैद्यलोग लाभ उठा सकते हैं। विशेष जानकारीके लिये 'सनातनधर्मालोक' भाग ९ देखना चाहिये।

वेदोंमें भगवान् श्रीवराह

(लेखक—डॉ० श्रीशिवशंकरजी अवस्थी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

ओंकाराकारदंष्ट्राय क्रीडते श्रुतिपल्वले।
स्थिरां धारयते शक्तिं नमः प्रथमपोत्रिणे[1]॥
पातु वो मेदिनीदोला बालेन्दुद्युतितस्करी।
दंष्ट्रा महावराहस्य पातालगृहदीपिका[2]॥

जयति धरण्युद्धरणे घन-
घोणाघातघूर्णितमहीध्रः।
देवो वराहमूर्तिस्त्रैलोक्य-
महागृहस्तम्भः[3]॥

१. (शक-संवत् १३०५का ताम्रलेख-एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द ३) ओंकाररूपी दंष्ट्रासे सम्पन्न, वेदात्मक तलैयामें क्रीड़ा करनेवाले, स्थिर भूतधात्री शक्तिको धारण किये हुए आदिवराहको नमस्कार है।

२. (सुभाषितावलि ३०, 'मातङ्ग-दिवाकर')—

पृथ्वीके लिये झूला-सी बनी हुई, बालचन्द्रमाकी द्युतिको हरण करनेवाली, पातालरूपी घरकी दीपिका, भगवान् महावराहकी दंष्ट्रा (दाढ़) आपलोगोंकी रक्षा करे।

३. धरणीके उद्धारके समय कठोर नथुनेके आघातसे पर्वतोंको चक्रवत् नचानेवाले त्रैलोक्यरूपी महागृहके स्तम्भस्वरूप देवाधिदेव भगवान् वराहकी जय हो।

ऋग्वेद, प्रथम मण्डलके ११४वें सूक्तके पाँचवें मन्त्रमें रुद्रवाचक 'वराह' शब्द मिलता है। मन्त्र इस प्रकार है—

दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं
त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे।
हस्ते बिभ्रद् भेषजा वार्याणि
शर्म वर्म च्छर्दिरस्मभ्यं यंसत्॥
(ऋक्० १।११४।५)

मन्त्रका अर्थ इस प्रकार है—

वराह—'(वराहार) श्रेष्ठ आहारसे सम्पन्न अथवा वराहके सदृश दृढ़ अङ्गोंवाले, सूर्यके सदृश प्रकाशमान, जटाओंसे युक्त तेजस्वी रूपवाले रुद्रको हवि देकर अथवा नमनद्वारा हम द्युलोकसे यहाँ आनेके लिये उनका आह्वान करते हैं। वे अपने हाथमें वरणीय ओषधियोंको लिये हुए हमारे लिये आरोग्य-रूप, सुख, रक्षा, कवच और आवास प्रदान करें।'

'वराह' शब्द ऋग्वेदमें 'मेघ', अङ्गिरस (अग्निपुत्र) और तन्नामक असुरके अर्थमें भी पाया जाता है।

वराहो मेघो भवति वराहारः।
वरमाहारमाहार्षीरिति च ब्राह्मणम्[1]॥
(निरुक्त, नैगमकाण्ड ५।१।४)

यहाँ 'निरुक्त'के नैगमकाण्डमें वर अर्थात् जलका आहरण करनेवाले—मेघको ही 'वराह' कहा गया है। (दुर्गाचार्य)।

विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता।
(ऋ० ६१।७)

'वज्रके क्षेपण करनेवाले इन्द्रने मेघपर प्रहार किया' 'ऋग्वेद' १०।६७में अङ्गिराके पुत्र भी 'वराह' कहे गये हैं—

'अङ्गिरसोऽपि वराहा उच्यन्ते।'
(निरुक्त, नैगमकाण्ड ५।१।४)

ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैः।
(ऋग्वेद १०।६७।७)

'वर्षा करनेवाले अङ्गिरसोंके साथ बृहस्पतिने मेघका विदारण किया। 'असुर' अर्थमें यह निम्नाङ्कित मन्त्रमें प्रयुक्त हुआ है—

'वराहमिन्द्र एमुषम्।' (ऋग्वेद ८।७७।१०)

'समस्त असुरोंके मध्यमें 'एमुष'—'मोहस्थानीय' वराहाकार असुरको इन्द्रने नष्ट किया। सर्वप्रथम वराहावतारसे सम्बद्ध विवरण 'शतपथ-ब्राह्मण' १४।१।२।११ में उपलब्ध होता है—

'इयती ह वा इयमग्रे पृथिव्यास प्रादेशमात्री, तामेमूष इति वराह उज्जघान।'

सायणाचार्य इसका अर्थ करते हुए जो लिखते हैं, उसका भाव यह है—

"सृष्टिसे पहले सम्पूर्ण पृथ्वी जलके बीच निमग्न थी। प्रजापतिने वराह बनकर उसका दाँतोंसे उद्धार किया। उस स्थितिमें यह दृश्यमान समस्त पृथ्वी वराहके दाँतके अग्रभागमें समाविष्ट प्रादेशमात्र (वितस्तिमात्र) परिमित थी। 'ओ, पृथिवी! तुम चौरादिके समान क्यों छिप रही हो'—ऐसा कहते हुए इसके पतिरूप महीवराहने उसे जलके बीचसे ऊपर उठाया।"

'तैत्तिरीयसंहिता', काण्ड ७, प्रपाठक १, अनुवाक ५में वराह भगवान्‌के सम्बन्धमें कहा गया है—

'आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्। तस्मिन् प्रजापतिर्वायुर्भूत्वाऽचरत्, स इमामपश्यत्। तां वराहो भूत्वाऽहरत्। तां विश्वकर्मा भूत्वा व्यमार्ट। साऽप्रथत सा पृथिव्यभवत्। तत् पृथिव्यै पृथिवीत्वम्।'

---

१. लोकप्रसिद्ध वराह (शूकर)को इसीलिये 'वराह' कहते हैं; कि वह वर—श्रेष्ठ मुस्तादि 'नागर-मोथा' आदि तृणविशेषके मूल—जड़का आहार करता है, अथवा कसेरू आदि मूलोंको खोदकर निकालता है—

'वरं श्रेष्ठं मूलाख्यं मुस्तादरीनामाहारमाहरत्येव। वरं वरं मूलं वृहति—उद्यच्छति (धातुपाठ २८।५७) इति वराहः।' ('निरुक्त' ५।१।४ की व्याख्यामें आचार्य दुर्ग)

पृथ्वीको खोदकर मुस्ता (नागरमोथा) नामक जड़ खानेका वराहका स्वभाव होता है। यथा—

'विस्रब्धं क्रियतां वराहततिभि (पतिभिः) र्मुस्ताक्षतिः पल्वले।'

—कालिदासके 'अभिज्ञान-शाकुन्तल', अङ्क २, श्लोक ६में निर्दिष्ट है।

सृष्टिसे पूर्व यह सब जलरूप था। प्रजापति ब्रह्मा वायुरूप धारण करके उसमें विचरण कर रहे थे। उन्होंने उसमें पृथ्वीको देखा। वे वराह बनकर उसे ऊपर ले आये। तदनन्तर विश्वकर्मा या देवशिल्पी होकर उन्होंने उसे स्वच्छ किया। अब वह विस्तृत होकर पृथिवी बन गयी। प्रथन (विस्तार) ही पृथिवीका पृथिवीत्व है।

इसी प्रकार तैत्तिरीयब्राह्मण (१ । १ । ३)-में वराहभगवान्‌के अवतरणकी निम्नाङ्कित कथा प्राप्त होती है। सृष्टिके पहले चारों ओर केवल जल था। फिर प्रजापतिने सृष्टि करनेका विचार किया। उसी समय उन्होंने लम्बे नालपर विद्यमान एक पुष्करपर्णको देखा। उसे देखकर प्रजापतिने सोचा कि इस पुष्करपर्णका कोई आधार होना चाहिये। उसकी खोजके लिये उन्होंने वराहका रूप धारणकर कमलनालके निकट ही जलमें डुबकी लगायी। नीचे जानेपर उन्हें पृथ्वी मिली। उसकी गीली मिट्टीको अपने दाँतसे उद्धृत करके वे ऊपर आये और उसे पुष्करपर्णपर फैला दिया। फैलानेके कारण ही वह पृथ्वी कहलायी। पश्चात् प्रजापतिने कहा कि यह चराचर प्राणियोंका आधार हो जाय। ऐसा कहनेके कारण वह '**भवनाद्—भूमिः**' कहलायी।

वाल्मीकीय रामायण (अयोध्याकाण्ड)में महर्षि वसिष्ठने रामचन्द्रजीसे कहा है कि ब्रह्माजीने वराहका रूप धारण करके पृथ्वीका उद्धार किया था—

सर्वं सलिलमेवासीत् पृथिवी तत्र निर्मिता।
ततः समभवद् ब्रह्मा स्वयम्भूर्दैवतैः सह॥
स वराहस्ततो भूत्वा प्रोज्जहार वसुंधराम्।
असृजच्च जगत्सर्वं सह पुत्रैः कृतात्मभिः॥

(श्रीवाल्मी० रामा० २ । ११० । ३–४)

विष्णुपुराण, अंश १, अध्याय ४ में कहा गया है कि नारायणरूपी ब्रह्माने वेद-यज्ञमय वाराहरूप धारण करके पृथ्वीका उद्धार किया था।

उत्तिष्ठतस्तस्य जलार्द्रकुक्षे-
र्महावराहस्य महीं विगृह्य।
विधुन्वतो वेदमयं शरीरं
रोमान्तरस्था मुनयः स्तुवन्ति॥

जलसे भीगी हुई कुक्षिवाले वे महावराह जिस समय अपने वेदमय शरीरको कँपाते हुए महीको लेकर बाहर निकले, उस समय उनकी रोमावलीमें स्थित मुनिजन स्तुति करने लगे।

महाभारत (वनपर्व), वायुपुराण (अध्याय ६), मत्स्यपुराण (अध्याय २४८), श्रीमद्भागवत (प्रथम स्कन्ध), लिङ्गपुराण (पूर्वखण्ड), अग्निपुराण (अ० ४), गरुडपुराण (पूर्वखण्ड, अ० १४२), पद्मपुराण (उत्तरखण्ड, अ० २६४) और वराहपुराणमें वराहका विशेषण 'यज्ञ' उपलब्ध होता है—'**भूत्वा यज्ञवराहो वै अपः स प्राविशत् प्रभुः।**'

वैदिक साहित्यमें (१) एमूष[1] या एमूषवराह। पौराणिक साहित्यमें (२) यज्ञवराह, आगम-साहित्यमें आदिवराह[2], नृवराह[3], भूवराह[4], प्रलयवराह[5] और यज्ञवराह[6]-की मूर्तियोंकी चर्चा मिलती है।

१. आ+इम+उप (वस निवासे) इसका पृथ्वीको चारों ओरसे घेरनेवाला—ऐसा कुछ लोग अर्थ करते हैं।
२. आदिवराहं चतुर्भुजं शङ्खचक्रधरं शस्यश्यामनिभम्। (वैखानसागम, पटल ५६)
३. नृवराहं प्रवक्ष्यामि शूकरास्येन शोभितम्। (शिल्परत्न, पटल २५)
४. नारङ्गो वाथ कर्तव्यो भूवराहो गदादिभृत्। (अग्निपुराण, अ० ५०, श्रीवेंकटेश्वर-संस्करण)
५. वक्ष्ये प्रलयवराहं वामपादं समाकुञ्च्य दक्षिणं प्रसार्य सिंहासने समासीनम्। ('भारतीय-अनुशीलन' नामक ग्रन्थसे उद्धृत)
६. अथ यज्ञवराहं श्वेताभं चतुर्भुजं शङ्खचक्रगदाधरम्। (वही)

श्वेतवराह, कृष्णवराह और कपिलवराह—ये नाम उनके वर्णको लेकर प्रयुक्त हुए हैं। यह कल्प 'श्वेतवराह'के नामसे प्रसिद्ध है।

रसातलादादिभवेन पुंसा
भुवः प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः[1]।
—रघुवंश, सर्ग १३, श्लोक ८

कालिदासके इस श्लोककी व्याख्यामें 'मल्लिनाथ'ने तैत्तिरीयारण्यक १०।१।३०से एक पद्य उद्धृत किया है, जिसमें कृष्णवराहका उल्लेख है। यथा—**तदुक्तम्—उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।** 'वराह-पुराण'के मथुरामाहात्म्यमें भी 'कपिलवराह'की विस्तृत महिमा वर्णित है।

मार्कण्डेयपुराणके 'देवीमाहात्म्य'में भी एक श्लोक प्राप्त होता है—

यज्ञवाराहमतुलं रूपं या बिभ्रतो हरेः।
शक्तिः साप्याययौ तत्र वाराहीं बिभ्रतीं तनुम्।१८।

यज्ञके अङ्गोंसे कल्पित वराहाकार रूप धारण करनेवाले श्रीहरिनारायणकी शक्ति भी वाराहीतनुको धारण किये हुए उपस्थित हुई। प्रायः सर्वत्र वराहको 'यज्ञ-वराह' अथवा वेदमय वराह कहा गया है। इस रूपमें वराहत्व और यज्ञत्व दोनों होना चाहिये। 'शतपथब्राह्मण' (५।४।३।१९)में भी कहा गया है।

'अग्नौ ह वै देवा घृतकुम्भं प्रवेशयांचक्रुः। ततो वराहः सम्बभूव, तस्माद्वराहो मेदुरो घृताद्धि सम्भूतः तस्माद्वराहे गावः संजानते स्वमेवैतत्समभि संजानते।'

प्राचीन कालमें देवताओंने घृतकुम्भको अग्निमें डाला था। उससे वराह उत्पन्न हुआ। घृतसे उत्पन्न होनेके कारण यह अधिक मेदासे युक्त होता है; इसमें किरणें विद्यमान रहती हैं। अथवा स्वकीय रसभूत घृतसे उत्पन्न होनेके कारण इसकी तुलना गायोंसे की जा सकती है। अथर्ववेद (१२।१।४८) में स्पष्ट किया गया है कि पृथिवी वराहसे स्नेह करती है। अतः शूकररूप पशुके समक्ष वह अपनेको पूर्णरूपसे प्रकट कर देती है—**'वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय।'** इसके अतिरिक्त पशुओंका क्रोध ही वराहरूपमें प्रकट है, ऐसा भी कहा गया है—

पशूनां एष मन्युर्यद्वराहः।
(तैत्तिरीय-ब्राह्मण १।७।९।४)

यज्ञके सम्बन्धमें कहा गया है कि—

पुरुषसम्मितो वै यज्ञः। यज्ञो वै विष्णुः॥

व्यष्टिपुरुषकी रचनामें जितनी सामग्री अपेक्षित है, उतनी ही बाह्य यज्ञमें भी देखी जाती है; इसीलिये यज्ञको पुरुषसम्मित कहा जाता है। लोक या समष्टि-पुरुष ब्रह्मा भी नारायणात्मक यज्ञ हैं। वे ही सम्पूर्ण सृष्टिमें व्याप्त होनेके कारण विष्णु (**वेवेष्टि इति**) हैं। देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान ही यज्ञत्व है। वराहत्व और यज्ञत्वको स्वीकार करनेके कारण पृथिवीके उद्धारक आदिवराहको 'यज्ञ पुमान्' या पुरुष कहा जाता है—

पादेषु वेदास्तव यूपदंष्ट्र
दन्तेषु यज्ञाश्चितयश्च वक्त्रे।
हुताशजिह्वोऽसि तनूरुहाणि
दर्भाः प्रभो यज्ञपुमांस्त्वमेव॥
(विष्णुपुराण १।४।३२)

यूप (यज्ञस्तम्भ) रूपी दाढ़ोंवाले हे प्रभो! आपके चरणोंमें चारों वेद हैं, दाँतोंमें यज्ञ हैं, मुखमें चितियाँ हैं, यज्ञाग्नि आपकी जिह्वा है और आपकी रोमराजि कुश हैं; इस प्रकार आप ही यज्ञपुरुष हैं।

---

१. जिस समय आदिवराह भगवान् रसातलसे पृथ्वीका उद्धार कर रहे थे, उस समय प्रलय-दशामें बढ़ा हुआ समुद्र-का निर्मल जल क्षणभरके लिये उन्हें पृथ्वीके घूँघट-सा जान पड़ा।

वराहपुराणमें भक्तियोग

(लेखक—श्रीरतनलालजी गुप्त)

महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यासकी ऋषिचेतनाके समक्ष जो पुराण-वाङ्मय प्रतिभासित होकर लोकसमाजमें प्रचारित हुआ, उसमें वराहपुराणका स्थान अन्यतम है। भगवान् आदिवराह और उनकी परम प्रियतमा भगवती भूदेवीके संवादरूप इस महापुराणमें स्वयं भगवान्के श्रीमुखसे अपने ऐश्वर्य एवं माधुर्यका प्रकाश हुआ है, उनके अवतारोंका तथा उनके अंशरूप देवताओंकी ललित कथाओंके साथ इसमें क्रियायोगका भी विशद वर्णन हुआ है। यद्यपि पुराणोंकी परम्पराके अनुसार सृष्टिरचना, सृष्टिविस्तार, सृष्टिकी आदि वंश-परम्परा, मन्वन्तर एवं राजवंशोंका वर्णन भी इसमें विस्तारपूर्वक किया गया है, किंतु रोचक कथाओंसे अलंकृत इस पुराणकी सरस एवं सुबोध शैली अन्य पुराणोंकी अपेक्षा इसको एक पृथक् वैशिष्ट्य एवं वैचित्र्य प्रदान करती है। नारदपुराणके अनुसार यह प्रधानतः विष्णुके माहात्म्य-वर्णनसे सम्बन्धित है—

शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि वराहं वै पुराणकम्।
भागद्वययुतं शश्वद् विष्णुमाहात्म्यसूचकम्॥
मानवस्य तु कल्पस्य प्रसङ्गं मत्कृतं पुरा।
निबबन्ध पुराणेऽस्मिंश्चतुर्विंशसहस्रके॥

(४। १९)

वत्स! अब मैं वराहपुराणके विषयमें बतलाता हूँ। यह सनातन ग्रन्थ भगवान् विष्णुके माहात्म्यका वर्णन करनेवाला है। मानवकल्पका जो प्रसङ्ग पूर्वकालमें मेरे द्वारा उपदिष्ट हुआ था, वही प्रसङ्ग व्यासदेवने इस पुराणमें चौबीस हजार श्लोकोंमें ग्रथित किया है। परंतु इस चौबीस हजार श्लोकवाले वराहपुराणके उपलब्ध न होनेसे वर्तमान संस्करणको मनीषीजन इसका पूर्वभाग मात्र मानते हैं; किंतु प्रस्तुत निबन्धके लघु कलेवरमें इस विषयकी आलोचना युक्तिसङ्गत नहीं होगी। अस्तु!

इस पुराणकी समन्वयात्मक शैलीके कारण स्कन्द-पुराण केदारखण्डके प्रथम अध्यायमें इसको शैव पुराण मानकर वर्णित किया गया है, किंतु सूक्ष्मतासे विचार करनेपर यह वैष्णव पुराणोंकी ही श्रेणीमें मानने योग्य प्रतीत होता है। क्योंकि इसमें वराहदेवने सभी देवताओंमें भगवान् नारायणकी सर्वोत्कृष्ट सत्ताको स्पष्टरूपसे उद्घोषित किया है—

नारायणात्परो देवो न भूतो न भविष्यति।
एतद्रहस्यं वेदानां पुराणानां च सत्तम॥

(व० पु० ५२)

'नरश्रेष्ठ! भगवान् नारायणसे उत्तम कोई देवता न हुआ है, न होगा। वेदों एवं पुराणोंका सारभूत रहस्य यही है।' भगवान् नारायणके निर्गुण-निराकार रूपकी सर्वव्यापकता एवं वैष्णव अवतारोंके रूपमें उनकी सगुण-साकार अभिव्यक्तिका इसमें चित्रण हुआ है—

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्किश्च ते दश॥
इत्येताः कथितास्तस्य मूर्तयो भूतधारिणि।
दर्शनं प्राप्तुमिच्छूनां सोपानानि च शोभने॥
यत्तस्य परमं रूपं तन्न पश्यन्ति देवताः।
अस्मदादिस्वरूपेण पूरयन्ति ततो धृतिम्॥

(व० पु० ४। २–४)

'भूतधात्रि! मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, श्रीराम, परशुराम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि—भगवान् नारायणकी ये दस मूर्तियाँ कही गयी हैं। शोभने! जो लोग इनका दर्शन प्राप्त करना चाहते हैं, उनके लिये ये सोपानरूप हैं; क्योंकि जो उनका निर्गुण-निराकार परमोत्तम रूप है, उसे देवता भी नहीं देख सकते। इसीलिये मेरे एवं अन्य अवतारोंके स्वरूप-का दर्शन करके ही वे अपनी उत्कण्ठाको शान्त करते हैं।' इसके अतिरिक्त मुनिवर गौरमुखपर प्रसन्न

होकर भगवान् विष्णु अपने जिस रूपका उनको दर्शन कराते हैं, वह महाभारत-युद्धमें अर्जुनके समक्ष प्रदर्शित विश्वरूपसे सर्वथा अभिन्न है, यहाँतक कि उस रूपके वर्णनमें प्रयुक्त शब्दावली भी श्रीमद्भगवद्गीताकी भाषासे एकाकार हो उठी है—

तदा शङ्खगदापाणिः पीतवासा जनार्दनः।
गरुडस्थोऽपि तेजस्वी द्वादशादित्यसुप्रभः॥
दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाःसदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः॥
तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा।
ददर्श स मुनिर्देवि विस्मयोत्फुल्ललोचनः॥

(वराहपु० १९। २४--२६)

'पृथ्वीदेवि! उस समय भगवान् नारायण शङ्ख-गदा आदि आयुधोंसे सुशोभित हो रहे थे, उनके श्रीअङ्गोंमें पीताम्बर फहरा रहा था, वे गरुड़की पीठपर विराजमान थे। वे महातेजस्वी बारह सूर्योंसे भी अधिक प्रकाशित हो रहे थे। और तो क्या, यदि आकाशमें हजारों सूर्य एक साथ उदित हो जायँ तो भी शायद उनका सम्मिलित प्रकाश उन परमात्माकी प्रभाके समान हो जाय! मुनिवर गौरमुखने उन परमेश्वरके उस विराट् विग्रहमें सम्पूर्ण जगत्को अनेक रूपोंमें विभक्त होते हुए भी एक स्थानपर स्थित देखा। इससे उनके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे।'

इस प्रकार विष्णुपरक होते हुए भी यह पुराण विष्णु और शिवमें, लक्ष्मी और गौरीमें अभेददर्शनका उपदेश करता है। स्थान-स्थानपर ऐसे प्रकरण आये हैं, जिनमें विष्णु-शिवको अभिन्न सिद्ध किया गया है।

या श्रीःसा गिरिजा प्रोक्ता यो हरिःस त्रिलोचनः।
एवं सर्वेषु शास्त्रेषु पुराणेषु च गद्यते॥

(व० पु० ५७। ३-४)

अहं यत्र शिवस्तत्र शिवो यत्र वसुंधरे।
तत्राहमपि तिष्ठामि आवयोर्नान्तरं क्वचित्॥

'जो लक्ष्मी हैं, वही हैमवती उमा हैं, जो विष्णु हैं, वे ही त्र्यम्बक महेश्वर हैं, ऐसा सभी शास्त्रों और पुराणोंमें कहा गया है। पृथ्वि! जहाँ मैं हूँ, वहीं शिव हैं और जहाँ शिव हैं, वहाँ मैं भी विराजमान हूँ, हम दोनोंमें किंचिन्मात्र भी भेद नहीं है।' अस्तु!

वराहपुराणमें भगवद्भक्तिके सभी अङ्ग-उपाङ्गोंका विस्तृत वर्णन हुआ है। निम्नाङ्कित उदाहरणोंसे इसको स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया जायगा।

श्रवणात्मिका भक्ति

गायन् मम यशो नित्यं भक्त्या परमया युतः।
मत्प्रसादात् स शुद्धात्मा मम लोकाय गच्छति॥

(व० पु० १३९। २८)

गीयमानस्य गीतस्य यावदक्षरपङ्क्तयः।
तावद् वर्षसहस्राणि इन्द्रलोके महीयते॥

(व० पु० १३९। २४)

'उत्तम भक्तिसे युक्त होकर नित्य-निरन्तर मेरे यशका गान करता हुआ मेरा भक्त शुद्ध अन्तःकरणवाला होकर मेरे कृपाप्रसादसे मेरे लोकको प्राप्त होता है। उसके द्वारा गाये हुए गीतके जितने अक्षर-समूह होते हैं, उतने ही हजार वर्षोंतक वह इन्द्रलोकमें सम्मानित होता है।'

एतत्ते कथितं देवि गायनस्य फलं महत्।
यस्य गीतस्य शब्देन तरेत् संसारसागरम्॥
वादित्रस्य प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे।
प्राप्तवान् मानवो येन देवेभ्यः समतां स्वयम्।
नववर्षसहस्राणि नववर्षशतानि च॥
कुबेरभवनं गत्वा मोदते वै यदृच्छया।
कुबेरभवनाद् भ्रष्टः स्वच्छन्दगमनालयः॥
सम्पादितालसम्पातैर्मम लोकं स गच्छति।
नृत्यमानस्य वक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे।
मानवो येन गच्छेत्तु छित्त्वा संसारबन्धनम्॥
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि त्रिंशद्वर्षशतानि च।
पुष्करद्वीपमासाद्य स्वच्छन्दगमनालयः।
फलं प्राप्नोति सुश्रोणि मम कर्मपरायणः॥

रूपवान् गुणवाञ्छूरः शीलवान् सत्पथे स्थितः।
मद्भक्तश्चैव जायेत संसारपरिमोचितः॥
(व० पु० १३९। १०५-११२)

'पृथ्वीदेवि ! मैंने तुमको मेरे यशोगानसे होनेवाले महान् पुण्यके विषयमें बतला दिया, जिसके उच्चारणमात्रसे मनुष्य संसार-सागरको तर जाता है। गानकी अब मैं वाद्ययुक्त महिमा बतलाता हूँ, इससे मनुष्य देवताओंके समान हो जाता है। कुबेरके भवनमें जाकर वह नौ हजार नौ सौ वर्षतक इच्छानुसार आनन्दका उपभोग करता है। तदनन्तर कुबेरभवनके भोग शेष हो जानेपर उसको सभी लोकोंमें स्वच्छन्द गमनकी शक्ति प्राप्त हो जाती है और मेरी प्रतिमाके सम्मुख झाँप-ताल आदि वाद्योंके वादनके फलस्वरूप वह मेरे लोकको प्राप्त होता है। वसुंधरे ! मेरी प्रतिमाके सम्मुख नृत्य करनेवालेके पुण्यके विषयमें बतलाता हूँ, तुम ध्यान देकर सुनो। इसके प्रभावसे मनुष्य संसार-बन्धनसे मुक्त होकर उत्तम लोकोंको प्राप्त होता है। सुश्रोणि ! मेरी प्रसन्नताके लिये इस नृत्यकर्ममें परायण भक्त तैंतीस हजार वर्षोंतक पुष्करद्वीपमें विहार करके सभी लोकोंमें स्वच्छन्द गतिसे युक्त होकर उत्तम फलकी प्राप्ति करता है। मेरा भक्त रूप, गुण, शौर्य और शीलसे सम्पन्न होकर जन्म ग्रहण करता है और उस जन्ममें भी वह सत्पुरुषोंके मार्गपर चलकर संसारसे मुक्त हो जाता है।'

पेयं पेयं श्रवणपुटके रामनामाभिधानं
ध्येयं ध्येयं मनसि सततं तारकब्रह्मरूपम्।
जल्पञ् जल्पन् प्रकृतिविकृतौ प्राणिनां कर्णमूले
वीथ्यां वीथ्यामटति जटिलो कोऽपि काशीनिवासी॥

"कर्णकुहरोंमें रामनामरूप अमृतका पान करना चाहिये। मनमें निरन्तर तारक ब्रह्मरूप रामनामका ध्यान करना चाहिये।' मृत्युकालमें सभी प्राणियोंके कर्णमूलमें ऐसा बोलता हुआ कोई जटाजूटधारी काशीवासी (शिव) गली-गलीमें घूमता रहता है।"

संकीर्तनात्मिका भक्ति

भगवन्नाम-संकीर्तनसे पाप-क्षयकी उद्घोषणा करते हुए भगवान् वराह कहते हैं—

अभक्ष्यभक्षणात् पापमगम्यागमनाच्च यत्।
नश्यते नात्र संदेहो गोविन्दस्य च कीर्तनात्॥
स्वर्णस्तेयं सुरापानं गुरुदाराभिमर्शनम्।
गोविन्दकीर्तनात् सद्यः पापो याति महामुने॥
तावत्तिष्ठति देहेऽस्मिन् कलिकल्मषसम्भवः।
गोविन्दकीर्तनं यावत् कुरुते मानवो नहि॥

'महामुने ! अभक्ष्य-भक्षण और अगम्यागमनसे जो पाप होता है, वह 'गोविन्द' नामके संकीर्तनसे नष्ट हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। सोनेकी चोरी, सुरापान, गुरुतल्पगमन आदि पातक 'गोविन्द'-नामके कीर्तनसे तत्काल क्षीण हो जाते हैं। इस शरीरमें कलियुगजनित पापपुञ्ज तभीतक टिकता है, जबतक मानव 'गोविन्द' नामका कीर्तन नहीं करता।'

किंतु स्मृत्युक्त प्रायश्चित्तोंके समान नाम-संकीर्तन पापक्षयमात्र ही नहीं करता, अपितु तत्काल मुक्ति प्रदान करके अपनी विशिष्टता प्रमाणित करता है।

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥

जिसने 'हरि'—इन दो अक्षरोंका एक बार भी उच्चारण कर लिया, उसने तो मानो मोक्षधाममें जानेके लिये सीढ़ी ही बाँध ली।

स्मरणात्मिका भक्ति

दद्याज्जलाञ्जलिं मह्यं तेन मे प्रीतिरुत्तमा।
तस्य किं सुमनोभिश्च जाप्येन नियमेन किम्॥
मह्यं चिन्तयतो नित्यं निभृतेनान्तरात्मना।
तस्य कामान् प्रयच्छामि दिव्यान् भोगान्मनोरमान्॥
(व० पु० १८३। १२-१३)

'जो भक्त अनन्यचित्त होकर अपने सम्पूर्ण अन्तः-करणसे सदा-सर्वदा मेरा चिन्तन करता रहता है, वह मुझे जलाञ्जलि भी प्रदान करे, तो मुझे बड़ा संतोष

होता है । मेरे ऐसे भक्तको पुष्पोंसे, जपसे या व्रत-नियमोंके पालनसे क्या लेना-देना है ? उस भक्तको तो प्रसन्न होकर मैं स्वयं ही मनोरम दिव्य भोग और यथाभिलषित द्रव्य-सामग्री प्रदान करता हूँ ।

जाग्रतः स्वपतो वापि शृण्वतः पश्यतोऽपि वा ।
यो मां चित्ते चिन्तयति मच्चिन्तस्य च किं भयम् ॥
रात्रिं दिवं मुहूर्तं वा क्षणं वा यदि वा कला ।
निमेषं वा त्रुटिं वापि देवि चित्तं समं कुरु ॥
मच्चित्तः सततं यो मां भजेत नियतव्रतः ।
मत्पार्श्वं प्राप्य परमं मद्भावायोपपद्यते ॥
(व० पु० अ० १४२)

देवि ! सोते-जागते, देखते-सुनते—सभी समय जो चित्तमें मेरा चिन्तन करता है, उस मेरे चिन्तनमें लगे हुए भक्तको क्या भय है ? रात-दिन, घड़ी, क्षण, कला, निमेष या क्षणभर चित्तको साम्यभावमें स्थित करके मुझमें लगाओ। जो दृढ़व्रती भक्त निरन्तर चित्तको मुझमें लगाकर मेरा भजन करता है, वह मेरे समीप वैकुण्ठलोकमें पहुँचकर मुझमें ही लीन हो जाता है ।

पादसेवनात्मिका भक्ति

पादसेवनका अर्थ है भगवत्परिचर्या, श्रीभगवान्को चँवर डुलाना, उनके निमित्त पर्व-महोत्सव इत्यादि मनाना आदि इसके अनेक रूप हैं। वराहपुराणमें इस पर्व-महोत्सवादिरूप पादसेवन भक्तिका अत्यन्त विस्तारसे उल्लेख है । 'कुमुदद्वादशी'के प्रसङ्गमें श्रीभगवान्के प्रबोधनोत्सवका यह मन्त्र देखिये—

ब्रह्मणा रुद्रेण च स्तूयमानो
भवानृषिवन्दितो वन्दनीय
प्राप्ता द्वादशीयं ते प्रबुध्यस्व
जागस्व मेघा गताः
पूर्णश्चन्द्रः शारदानि पुष्पाणि
लोकनाथ तुभ्यमहं ददामि ।

सर्वलोकवन्दनीय जगन्नाथ ! ब्रह्मा एवं रुद्र आपकी स्तुति करते रहते हैं, ऋषिजन आपका अभिनन्दन करते हैं, यह आपकी द्वादशी तिथि आकर प्राप्त हो गयी है । आप प्रबोधको प्राप्त होइये, जागिये । इस समय आकाश मेघोंसे मुक्त होकर पूर्णचन्द्रकी किरणोंसे आलोकित हो रहा है । मैं आपको शरत्कालमें विकसित होनेवाले पुष्प समर्पित करता हूँ ।

अर्चनात्मिका भक्ति

स्वनाममन्त्रेण सुगन्धपुष्पै-
र्धूपादि नैवेद्यफलैर्विचित्रैः ।
अभ्यर्च्य देवं कलशं तदग्रे
संस्थाप्य मालासितवस्त्रयुक्तम् ॥
समन्दरं कूर्मरूपेण कृत्वा
संस्थाप्य ताम्रे घृतपूर्णपात्रे ।
पूर्णं घटस्योपरि संनिवेश्य
तद् ब्राह्मणं पूज्य तथैव दद्यात् ॥
एवं कृते विप्र समस्तपापं
विनश्यते नात्र कुर्याद् विचारः ।
संसारचक्रं स विहाय शुद्धं
प्राप्नोति लोकं च हरेः पुराणम् ॥

अपने इष्टदेवके नाम-मन्त्रसे श्रीभगवान्की चित्र-विचित्र गन्ध, पुष्प, धूप, नैवेद्य और फलोंसे अर्चना करके उनके सम्मुख कलशकी स्थापना करे । कलशको माला और श्वेत वस्त्रसे आवृत करके मन्दरपर्वत एवं कूर्मकी आकृतिका निर्माण करके ताम्र-पात्रको घृतसे पूरित करके उस पूर्ण कलशपर रक्खे । तदनन्तर ब्राह्मणकी पूजा करके वैसे-का-वैसा दे दे । भूदेव ! ऐसा करनेसे सारे पापोंका नाश हो जाता है, इसमें किसी प्रकारका सोच-विचार न करे । वह पूजक जन्म-मृत्युके चक्रसे छूटकर श्रीहरिके परम निर्मल सनातन धामको प्राप्त हो जाता है ।

वन्दनात्मिका भक्ति

पूजयेद् देवदेवेशं ज्ञानी भागवतः शुचिः ।
निपतेद् दण्डवद्भूमौ सर्वकर्मसमन्वितः ॥
कायं निपतितं कृत्वा प्रसीदेति जनार्दनम् ।
शिरसा चाञ्जलिं कृत्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत् ॥

मन्त्रैर्लब्ध्वा संज्ञां त्वयि नाथ प्रसन्ने
त्वदिच्छातो ह्यपि योगिनां चैव मुक्तिः ।
यतस्त्वदीयः कर्मकरोऽहमस्मि
त्वयोक्तं यत्तेन देवः प्रसीदतु ।
इति मन्त्रविधिं कृत्वा मम भक्तिव्यवस्थितः ।
पृष्ठतोऽनुपदं गत्वा शीघ्रं यावन्न हीयते ॥
(व० पु० अ० ११८)

'ज्ञानी भगवद्भक्त भगवान्‌से सम्बन्धित सब कर्मोंको करता हुआ पवित्र होकर देवाधिदेव श्रीहरिका पूजन करे। उनके सम्मुख भूमिपर दण्डवत् लेट जाय। शरीरको भूमिष्ठ करके 'भगवान् जनार्दन प्रसन्न हों' ऐसा कहता हुआ सिरपर अञ्जलि बाँधकर इस मन्त्रका उच्चारण करे—

"लोकनाथ ! मन्त्रोंके अनुष्ठानसे आपके प्रसन्न होनेपर योगिजन चैतन्य-लाभ करके आपके कृपा-प्रसादसे ही मुक्ति प्राप्त करते हैं। मैं आपका कर्मकर दास हूँ, अतएव आप अपने वचनके अनुसार प्रसन्न हों।' इस प्रकार मन्त्रपूर्वक प्रणामविधिको सम्पूर्ण करके मेरी भक्तिमें लगा हुआ मनुष्य पीछेकी तरफ एक-एक कदम उठाता हुआ वहाँतक चले, जहाँसे मेरी प्रतिमाका दर्शन न होता हो।'

दास्यभक्ति

दास्यका अर्थ है क्रियाद्वैत अर्थात् जिस प्रकार लोकमें दासकी समस्त क्रियाएँ स्वामीके लिये होती हैं, अपने लिये नहीं, उसी प्रकार दास्यभक्तिका उपासक केवल भगवदर्थ ही कर्म करता है। भगवान् वराह ऐसे भक्तके लिये कहते हैं—

कर्मणा मनसा वाचा मच्चित्तो यो नरो भवेत् ।
तस्य व्रतानि वक्ष्येऽहं विविधानि निबोध मे ॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं प्रकीर्तितम् ।
एतानि मानसान्याहुर्व्रतानि तु धराधरे ॥
एकभुक्तं तथा नक्तमुपवासादिकं च यत् ।
तत्सर्वं कायिकं पुंसां व्रतं भवति नान्यथा ॥
वेदस्याध्ययनं विष्णोः कीर्तनं सत्यभाषणम् ।
अपैशुन्यं हितं धर्मं वाचिकं व्रतमुत्तमम् ॥

धरे ! मन-कर्म और वाणीसे जो मनुष्य मेरे परायण हो जाता है, उसके लिये मैं विविध व्रतोंको बतलाता हूँ, सुनो। अहिंसा, सत्य, अस्तेय एवं ब्रह्मचर्य—ये मानस व्रत कहे गये हैं। 'एकभुक्त', 'नक्तभुक्त' तथा उपवास आदि—ये सभी कायिक व्रत कहे गये हैं। ये कभी व्यर्थ नहीं जाते। वेदोंका स्वाध्याय, श्रीहरिका संकीर्तन, सत्यभाषण, किसीकी चुगली न करना, परोपकार—ये वाणीके व्रत हैं।

सख्य-भक्ति

कृष्णक्रीडासेतुबन्धं महापातकनाशनम् ।
बालानां क्रीडनार्थं च कृत्वा देवो गदाधरः ॥
गोपकैः सहितस्तत्र क्षणमेकं दिने दिने ।
तत्रैव रमणार्थं हि नित्यकाले च गच्छति ॥
बलिह्रदं च तत्रैव जलक्रीडाकृतं शुभम् ।
यस्य सन्दर्शनादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
(व० पु० १६० । ३२—३४)

भगवान् गदाधरने अपने साथी ग्वालबालोंके लिये जो कृष्णक्रीडा-सेतुबन्धकी रचना की थी, जहाँ वे गोपोंके साथ प्रतिदिन मुहूर्तभर खेला करते थे और जहाँ वे रमणके लिये अब भी नित्य जाते हैं, वह स्थान महापातकोंको भी नाश करनेवाला है। वहींपर 'बलिह्रद' नामक सुन्दर सरोवर है, जहाँ भगवान् श्रीकृष्णने जल-क्रीडा की थी, उसके दर्शनमात्रसे ही मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

आत्मनिवेदनात्मिका भक्ति

आत्मा अर्थात् अपना शरीर, उसका भगवान्‌के प्रति समर्पण एवं चारों वर्णोंकी विष्णुदीक्षाके प्रसङ्गमें आत्म-निवेदनका उपदेश देते हुए वराहदेव कहते हैं—

एवं क्षत्रियस्य दीक्षायां सर्वं सम्पाद्य यत्नतः ।
चरणौ मम संगृह्य इमं मन्त्रमुदाहरेत् ।

त्यक्तानि विष्णो शस्त्राणि त्यक्तं
मया क्षत्रियकर्म सर्वम्।
त्यक्त्वा देवं विष्णुं प्रपन्नोऽथ
संसाराद्वै जन्मनां तारयस्व।
(व० पु० अ० १२८)

इस प्रकार क्षत्रिय दीक्षाके समय अन्य सारी विधिका यत्नपूर्वक सम्पादन करके मेरे चरण पकड़कर इस मन्त्रको उच्चारण करे—'भगवन् विष्णो! मैंने समस्त अस्त्र-शस्त्रोंका परित्याग कर दिया है, यही नहीं, मैंने क्षत्रियके लिये विहित सभी कर्मोंका त्याग कर दिया है। मैं सब कुछ त्याग करके आप भगवान् श्रीहरिके शरणागत हो रहा हूँ। मेरा इस जन्म-मरणरूप संसारसे उद्धार कीजिये।'

अतएव सभी लोग येन-केन-प्रकारेण भक्तिके किसी भी मार्गका अवलम्बन करके मनको भगवान् नारायणमें निवेश करके मानव-जीवनकी धन्यता सम्पादन करें, यही वराहपुराणका तात्पर्यार्थ है।

उज्जयिनीकी वराह-प्रतिमाएँ

(लेखक—डॉ० श्रीसुरेन्द्रकुमारजी आर्य)

श्रीमन्नारायणके श्रीवराह-अवतारकी अवधारणा अति प्राचीन है। 'ऋग्वेद'के १। ६१। ७में भगवान् विष्णुके वराहरूपका उल्लेख है—**'विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता'**। 'तैत्तिरीय-आरण्यक'का कथन है कि जलमें डूबी हुई पृथ्वीको सौ भुजाओंवाले सूकरने निकाला **'उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना'** (तैति० आ० १०। १। ३० अपरनारा; याज्ञिक्युपनिषद् १। ३०) वाल्मीकिरामायण ६। ११७। १३ में पृथ्वीको उठानेवाला एक शृङ्गके वराहरूपका वर्णन है। महाभारतमें कहा गया है कि संसारका हित करनेके लिये विष्णुने वराहरूप धारणकर हिरण्याक्षका वध किया—

वराहरूपमास्थाय हिरण्याक्षो निपातितः।
(महा० वन०)

रसातलमें प्रविष्ट पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये वे वराहरूपमें अवतरित हुए। 'श्रीमद्भागवत'में वर्णन आता है कि प्रलयकालमें जलमें डूबी हुई पृथ्वीको निकालनेकी चिन्तामें लगे हुए ब्रह्माजीके नासा-छिद्रसे अँगूठेके बराबर एक वराहशिशु निकल पड़ा, जो देखते-ही-देखते आकारमें हाथी-सदृश हो गया। इस वराहरूपको देखकर सभी मरीचि, सनकादि ऋषिगण चकित हो गये। वे यह न समझ पाये कि वह उत्पन्न होकर तत्क्षण इतना विशाल कैसे हो गया। वराहके भीषण गर्जनसे सभी लोक स्तुति करने लगे। रसातलमें धँसी पृथ्वीको अपनी दाढ़ोंपर उठा लिया—

खुरैः क्षुरप्रैर्दरयंस्तदाऽऽप उत्पारपारं त्रिपरू रसायाम्।
ददर्श गां तत्र सुषुप्सुरग्रे यां जीवधानीं स्वयमभ्यधत्त॥

स्वदंष्ट्रयोद्धृत्य महीं निमग्नां
स उत्थितः संरुरुचे रसायाः॥
(श्रीमद्भा० ३। १३। ३०-३१)

'विष्णुपुराण'में वराहको शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण करनेवाला, कमलके समान नेत्रवाला, कमल-दलके समान श्याम तथा नीलाचलके सदृश विशालकाय और खुरोंवाला कहा गया है। 'विष्णुधर्मोत्तर'में वराहकी प्रतिमाको अनेक रूपोंमें बनानेका आदेश दिया गया है, जिनमें 'नृ-वराह', 'भू-वराह', 'यज्ञ-वराह' एवं 'प्रलय-वराह' प्रमुख हैं।

उज्जयिनीका प्राचीन इतिहास अति गौरवमय है। महाकालकी नगरीके रूपमें यह सर्वधर्मसमन्वयकी स्थली थी और पुराणोंमें इसे 'द्वारावती', 'कुमुद्वती', 'अवन्तिका', 'अमरावती', 'अलका'-पुरी और 'विशाला' भी कहा गया

है। इसकी प्रधान सप्तपुरियोंमें परिगणना थी। यहाँकी पुरातात्त्विक सम्पदाएँ असंख्य देव-देवियोंकी प्रस्तरनिर्मित प्रतिमाएँ लिये हैं, जो ईसाके दो सहस्र वर्ष पूर्वसे बारहवीं ईस्वी शताब्दीतक निर्मित होती रहीं। यहाँ विक्रम आदिके समयमें शैव एवं वैष्णवधर्म समानरूपसे प्रसरित थे।* यहाँ 'महाकालवन', 'कालकौरव', 'ओखलेश्वर', 'कालियदह', 'अंकपात', 'हरसिद्धि', 'गढ़कालिका', 'मङ्गलनाथ', 'भर्तृहरिगुहा', 'मत्स्येन्द्रनाथ-समाधि' आदि ऐसे स्थान हैं, जहाँपर प्राचीन मूर्तियाँ सुरक्षित रूपमें रखी गयी हैं। १९५०में 'विक्रम विश्वविद्यालय'की स्थापना हुई और तबसे इस विश्वविद्यालयमें पुरातत्त्वसंग्रहालय निर्मित हुआ, उसमें लगभग १७५३ प्रतिमाएँ अवस्थित हैं, जो प्रस्तरकी हैं। शेष मृन्पात्र, आभूषण, सिक्के, मणि, ताम्रपात्र, प्रस्तर उपकरण आदि भी लगभग ५० हजारकी संख्यामें हैं। यहाँपर उज्जैनके विभिन्न स्थानोंमें वराह-प्रतिमाओंके कलात्मक सौन्दर्यको ही लिया गया है।

सन् १९७४ ई० में ही शिप्रासे प्राप्त यहाँकी एक वराह-प्रतिमा अपने लक्षणोंमें 'पशुवराह'रूपमें है। यह प्रतिमा ३ फीट ९ इंच लम्बी एवं एक फुट ४ इंच चौड़ी तथा एक फुट ६ इंच ऊँची है। प्रतिमाका पादस्थल भग्न है। पशुवराहके शरीरपर १३ वीं आवृत्तिमें मुनि, देवता एवं दिक्पाल अङ्कित हैं। यह वही रूप है, जिसका विधान 'विष्णुधर्मोत्तरमहापुराण'के ३।४।२९में किया गया है। प्रतिमा भग्न होते हुए भी अत्यन्त विशाल है। शरीरके पुनीत अंकनमें कलात्मक कार्य है। वर्तमानमें यह महाकाल-मन्दिर-प्राङ्गणमें सुरक्षित है।

'विक्रमविश्वविद्यालय'के मूर्तिसंग्रहालयकी 'वैष्णव-दीर्घा'-में एक पशुवराहकी सुन्दर प्रतिमा है। इस प्रतिमाका अङ्कन वैष्णव पुराणोंके नियमके अनुसार है। पशुवराहके नीचे शेषशायी विष्णु और लक्ष्मी हैं और दोनोंपर सप्तमुखी सर्पकी छाया है। 'वराह'के शरीरमें गति है एवं पुष्ट शरीरपर मुनिगण एवं देवताओंका अङ्कन है। 'वराह'के चारों चरणोंको थामे चार आयुध-पुरुष हैं, जिनके पैरोंपर क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म अङ्कित हैं। यह मूर्ति आकारमें ३ फीट ३ इंच लम्बी, एक फुट २ इंच चौड़ी तथा २ फीट २ इंच ऊँची है और यह समीपके १४ कि० मी० दूर ग्राम कायथा (वराहमिहिरकी जन्मस्थली 'कपित्थपुर')से प्राप्त हुई है। इसका आनुमानिक निर्माणकाल ९वीं शताब्दी है।

तीसरी 'वराह'-प्रतिमा 'नृवराह'की है, जो भग्न है। इसका केवल शीर्षभाग बचा है। इस प्रतिमाके दन्ताग्रपर पृथ्वी सहारा लिये अङ्कित है। आकार १ फुट २ इंच × १ फुट ४ इंच। यह निकटके सौढंग ग्रामसे आयी है। मूर्ति क्रमाङ्क १७३में पशुवराह है और आकार भी प्रथम प्रतिमाकी भाँति है।

'परमारकाल'में निर्मित पशुवराहकी एक सर्वाङ्गसुन्दर प्रतिमा उज्जैनके 'ओखलेश्वर' स्थानपर स्थित है। इसमें देवताओं तथा मुनिगणका शरीरपर स्पष्ट अङ्कन है। ये पशुवराह अपने दन्ताग्रपर लक्ष्मीको उठाये हुए हैं। पृथ्वी नारीरूपा है और उसकी मुखाकृति यह सूचना देती है कि वह वराहके इस रक्षाकारी कार्यके प्रति आभारी है। कलाकृति भावात्मक है तथा एक विशिष्ट शिल्प-कलाको प्रकट करती है।

इसके अतिरिक्त उज्जैनके 'रामघाट', 'कालियदह', 'हरसिद्धि' तथा 'अङ्कपात' स्थानोंपर १७ वराह-प्रतिमाएँ और हैं, जो प्रायः ऊपरके वर्णनके अनुसार ही हैं। विष्णुके दशावतारमें वराह-अवतारके अङ्कनकी लगभग ३२ प्रतिमाएँ उज्जैनमें सुरक्षित हैं। उज्जयिनीकी उपर्युक्त वराह-प्रतिमाएँ मूर्तिशिल्पके आधारपर लगभग ८वींसे १४वीं शताब्दीके मध्यके समयमें निर्मित हुई जान पड़ती हैं।

* यहाँके 'महाकाल' आदि शैवक्षेत्रोंमें वराह-प्रतिमाएँ शैव-ग्रन्थों तथा सांदीपनी-आश्रम आदि वैष्णव-क्षेत्रोंमें विष्णुधर्म आदिके अनुसार निर्मित हैं।

वराहपुराणकी रूपरेखा

(लेखक—डॉ० श्रीरामदरशजी त्रिपाठी)

भारतकी वराह-प्रतिमाओंके तथा अनेक प्राचीन शिलालेखोंके इतिहास (Epigraphica Indica) के सर्वेक्षणासे पता चलता है कि कन्नौजके गहड़वाल नरेश तथा गुप्तराजा गण 'भूमि-वराह'के विशेष उपासक थे। उन्होंने कई वराहतीर्थोंकी स्थापना कर भगवान् वराहकी प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित कीं और 'वराहपुराण'का भी विशेषरूपसे प्रचार किया। (History of the Gahaḍwala Dynasty—Roa Niyogi, R. C. Magumdar, History of Indian people and Culture तीर्थ-विवेचनकाण्ड 'कल्पतरु', Introduction—K. V. Rangaswami Aiyangar) वी०ए० स्मिथ,रायचौधरी, मजुमदार,हाजरा आदि अधिकांश आधुनिक ऐतिहासिक तथा रैप्सन आदि पौराणिक विद्वानोंके अनुसार गुप्तवंशी राजाओं-में चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्यने, जिसकी राजधानी उज्जैन थी—'पुराणों'पर अनेक टीकाएँ, निबन्धादि ग्रन्थ लिखवाये तथा शिव, विष्णु वराह आदि की प्रतिमाएँ भी प्रतिष्ठित कीं। सम्भव है, उन दिनों 'वराहपुराण'पर भी कुछ संस्कृतकी टीकाएँ भी रही हों तथा यह ग्रन्थ भी पूरे २० हजार श्लोकोंमें एकत्र प्राप्त रहा हो, जिनके आधारपर गोविन्दचन्द्रके आश्रित विद्वान् पं० लक्ष्मीधरके 'तीर्थविवेचन' काण्डकी रचना की हो;क्योंकि इस काण्डमें 'वराहपुराण'का ही अंश अनुपाततः सर्वाधिक है। यद्यपि यह एक विस्तृत एवं गम्भीर ऐतिहासिक विवेचन तथा गवेषणाका विषय है, तथापि निष्कर्ष यही है। साथ ही मार्कण्डेयपुराणके 'कोलाविध्वंसी' भूपोंसे भी क्या इनका कोई संकेत प्राप्त होता है—यह भी एक शोधका विषय है।

विषय-विश्लेषण

अस्तु ! प्रस्तुत वराहपुराण आदिपर 'हाजरा' आदिके शोध बड़े गौरवपूर्ण हैं, पर वे प्रायः आजसे ४० वर्ष पूर्वके हैं। अतः इसपर विशेष श्रम अब भी अपेक्षित है। श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेससे प्रकाशित 'वराह पुराण'के आरम्भमें सर्वप्रथम सृष्टिका वर्णन है। इसके पश्चात् दुर्जनके चरित्रकी व्याख्या है, फिर सर्ग-प्रतिसर्ग वृत्तान्त तथा 'श्राद्धकल्पका' प्रसङ्ग है, जो कर्मकाण्डके लिये परम उपयोगी है, और प्रायः इसी रूपमें 'विष्णुपुराणमें भी उपलब्ध होता है। आदि-वृतान्तमें सरमाकी वैदिक कथा आयी है। इसके बाद महातपाकी तथा अग्निकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग है। तत्पश्चात अश्विनीकुमारों, गौरी, विनायक, नागों, स्कन्द, सूर्य, कामादिकों तथा देवीकी उत्पत्ति एवं कुबेरकी उत्पत्तिका वर्णन है, जिनका स्पष्ट तात्पर्य ज्योतिशोक्त तिथियोंके कर्तव्य निर्देशसे है। इसके बाद धर्म, रुद्र तथा सोमकी उत्पत्तिका वर्णन किया गया है, यह सब भी तिथियों-के स्वरूप कार्यविधि आदि ज्योतिष विधिसे ही प्रभावित है पर और अपरके निर्णयका विषय है। पृथ्वीकी उत्पत्तिका रहस्य संक्षेपसे कहकर महातपाके प्राचीन उपाख्यानका पुनः उल्लेख हुआ है। इसके पश्चात् सत्यतपाकी कथा है। फिर मत्स्य-द्वादशी, कूर्मद्वादशी, वराहद्वादशी, नृसिंहद्वादशी, वामनद्वादशी, भार्गवद्वादशी, श्रीरामद्वादशी, श्रीकृष्णद्वादशी, बुद्धद्वादशी, कल्किद्वादशी तथा पद्मनाभद्वादशी आदि व्रतोंका वर्णन किया गया है। तदनन्तर 'धरणीव्रत' और 'अगस्त्यगीता'की कथा है। फिर पशुपालका उपाख्यान एवं भर्तृप्राप्तिव्रतका वर्णन है। इसके अनुसार पुनःशुभव्रत, धान्य-व्रत, कान्तिव्रत, सौभाग्यव्रत, अविघ्नव्रत, शान्तिव्रत, कामव्रत, आरोग्यव्रत, पुत्र-प्राप्तिव्रत, शौर्यव्रत और सार्व-भौमव्रतोंका कथन है। तत्पश्चात् भगवान् नारायणद्वारा रुद्रगीताका विवेचन होकर पुरुष एवं प्रकृतिका निर्णय किया गया है। फिर 'भुवनकोश'के वर्णनके अनन्तर जम्बूद्वीपकी मर्यादाका वर्णन तथा भारत आदि वर्षोंका उद्देश्य, सृष्टि-विभाग तथा नारदका महिषासुरके साथ संवाद वर्णित है। बादमें त्रिशक्तिके माहात्म्य-का कथन, महिषासुरका वध, रुद्रमाहात्म्यका वर्णन तथा

पर्वाध्यायका प्रसङ्ग है, जो बड़ा ही भव्य एवं आकर्षक है। बादमें तिलधेनु, जलधेनु, रसधेनु, गुडधेनु, शर्कराधेनु, मधुधेनु, दधिधेनु, लवणधेनु, कार्पासधेनु तथा धान्यधेनु-के दानकी विधिका वर्णन किया गया है, जो मत्स्यपद्मादि, अन्य पुराणोंमें भी वर्णित है। फिर भगवच्छास्त्रके लक्षणका कथनकी महिमा बताकर वहाँके तीर्थोंकी महिमा एवं लौहार्गलतीर्थकी महिमाका वर्णन है। तदनन्तर 'मथुरा-तीर्थ'का माहात्म्य तथा उसका प्रादुर्भाव एवं यमुनातीर्थका माहात्म्य कहकर 'अक्रूरतीर्थ'का प्रसङ्ग वर्णित है। बादमें देवारण्य, गोवर्द्धनकी महिमा बताकर विश्रान्तिका परिचय बताया गया है। फिर गोकर्णक्षेत्र और सरस्वतीका माहात्म्य है। फिर यमुनोद्भेदकी महिमा, कालञ्जरकी उत्पत्ति, गङ्गोद्भेदकी महिमा तथा साम्बके शापके उपाख्यानद्वारा इस प्रकरण-का उपसंहार किया गया है। बादमें प्रतिमा-निर्माण तथा प्रतिमा-प्रतिष्ठा-विधिपर श्रेष्ठ प्रकाश है।

गुप्तकालीन 'प्रतिमाकला'के विषयमें डॉ० हैवेल, बनर्जी तथा मजुमदार आदिने लिखा है कि यह मूलतः भारतीय पुराणोंपर आधृत थी। इसमें ऋषि-मुनियोंकी पवित्रतम भावना, विश्वहितका सर्वोत्तम आदर्श, सूक्ष्म सौन्दर्यकी चरम सीमातक विकसित हुई प्रतिमा कला-योगियोंके ध्यान एवं लययोगकी साधना—इन सबका एकत्र सम्मिश्रण सुस्पष्ट है। इसपर विदेशी संस्कृतिका लेशमात्र भी प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। यह यहींकी मौलिक कला थी, जो विश्वके लिये एक अद्भुत देन है। (क्योंकि अरब तथा यूरोपके लोग प्रतिमा-विरोधी थे)। उस समय भारत विश्वका—विशेषकर एशियाका शिक्षक गुरु—'जगद्गुरु' था—'India was not then in a state of pupilage, but the teacher of whole Asia and she did not borrow any western sniggetion to mould her way of thinking.' (Havel, Majunmdar &ce.)। श्रीविष्णुधर्मोत्तरमें यह प्रतिमा कला सर्वाधिक विस्तारसे निरूपित है। प्रस्तुत 'वराहपुराण'के भी १८१-८६ तकके अध्यायोंमें अत्यन्त सरल रूपमें महुएके काष्ठसे बनी हुई प्रतिमाकी प्रतिष्ठा-विधि निरूपणके बाद पाषाण और मिट्टीसे निर्मित विग्रहकी प्रतिष्ठाका विधान दर्शाया गया है। ताँबा, काँसा, चाँदी और सुवर्णकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठाके प्रकारका भी यहाँ सुन्दर वर्णन हुआ है। 'शिल्परत्नम्', 'मानसार', श्रीशिवतत्त्वरत्नाकर आदिमें यह कला तथा एतत्सम्बन्धी अन्य विवरण बड़े सुन्दर ढंगसे निरुपित हुए हैं।

वराहपुराणमें प्रतिमा-विधि निरूपणके बाद श्राद्धकी उत्पत्तिका कथन तथा पिण्डसंकल्प करनेका विधान है। पिण्डकी उत्पत्तिका विवेचन करके पितृयज्ञका निर्णय किया गया है। तत्पश्चात् मधुपर्कके दानका फल वर्णन करके संसार-चक्रका कथन तथा 'कर्मविपाक'का सुन्दर वर्णन किया गया है। इसके बाद यमराजके दूतका कथन, उनके किंकरों और नरकोंका वर्णन किया गया है। तदनन्तर जिसने जैसा कर्म किया है, उसे वैसा ही फल इस लोकमें भी भोगना पड़ता है—यह स्पष्ट किया गया है। फिर अशुभकी शान्तिका कथन तथा शुभकर्म-फलके उदयका मार्ग प्रदर्शित किया गया है। इसके बाद 'पतिव्रता'की कथामें महाराज निमिका अद्भुत आख्यान आया है। तत्पश्चात् पाप-नाशकी दिव्य कथा, गोकर्णेश्वरका प्रादुर्भाव, नन्दीको वरदान, जलेश्वर, शैलेश्वर और शृङ्गेश्वरकी महिमा है। इस प्रकार यह पुराण प्राचीन भारतीय चिन्तन एवं विचारधाराकी अमूल्य थाती है, जो हमारी प्राचीन संस्कृति-आचार-विचारके साथ वर्तमान कर्तव्यका भी समुचित दिशा निर्देश करती है। वस्तुतः इसके द्वारा निर्दिष्ट मार्गपर चलकर हम आजभी अपना तथा विश्वका परम श्रेयःसम्पादन कर सकते हैं।

पुराणोंकी उपयोगिता तथा वराह-पुराणकी कतिपय विशेषताएँ

(लेखक—आचार्य पं० श्रीकालीप्रसादजी मिश्र, 'विद्यावाचस्पति')

पुराणोंकी प्रामाणिकता भारतीय परम्परामें अत्यन्त प्राचीन कालसे प्रतिष्ठित है। ये भी प्रायः वेदोंके समान ही मान्य हैं। इतिहास और पुराण वेदोंके ही उपबृंहण हैं। अतः यह निर्विवाद है कि जो रहस्य वेदोंमें निहित हैं, वे ही सरल-तरल, विस्तृत एवं परिष्कृत होकर इतिहास-पुराणोंके रूपमें प्रकट हुए हैं। पुराणोंकी प्रतिपादन-पद्धति बड़ी सुन्दर है। इनमें प्रतिपाद्य विषयके अनुरूप भाषा तथा परम्परागत शैलियोंकी विभिन्न प्रकारकी योजनाएँ हैं।

इनकी अव्याहत प्रामाणिकताको लक्ष्यकर श्रद्धालु स्मृतिकारोंने तर्कद्वारा इनके खण्डनको दोषजनक माना है—

पुराणं* मानवो धर्मः साङ्गो वेदश्चिकित्सितम्।
आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः॥

(वृद्धगौतमस्मृ० ३।६० महाभारत १४।१०९।६० स्मृतिचन्द्रिका १। पृ० ४)

अर्थात् पुराण, मनुनिर्दिष्ट धर्म, षडङ्गोंके सहित (चारों) वेद और आयुर्वेद—ये चारों ही स्वतः-प्रमाण सिद्ध या ईश्वराज्ञासे मान्य हैं, अतः इनका 'क्यों और कैसे' इत्यादि कुतर्कोंद्वारा अनादर या खण्डन नहीं करना चाहिये।

इसीलिये चातुर्वर्ण्य और चातुराश्रमको माननेवाले पुराणोंमें प्रतिपादित सिद्धान्तों, आचारों और विविध व्यवहारोपयोगी उपदेशों, निर्देशों किंवा शिक्षाओंका असंदिग्ध रूपसे श्रद्धापूर्वक पालन करते चले आ रहे हैं और करते रहेंगे। आवश्यकता इस बातकी है कि उनमें निहित तत्त्वों और रहस्योंकी छान-बीन श्रद्धा-भक्तिसे की जाय और आवश्यक ज्ञातव्य तथा आचरणीय विषयोंको यथार्थरूपमें प्रकाशित कर अधिकाधिक लोक-कल्याण किया जाय।

पुराण हमारी मूल सृष्टिको बताकर हमारी संस्कृति-का सजीव इतिहास प्रस्तुत करते हैं। पुराणोंसे हम यह जानते हैं कि यह दृश्य जगत् सृष्टि-क्रममें कैसे उत्पन्न हुआ, ब्रह्माने किस प्रकार भूतसर्ग और प्राणियोंको उत्पन्न किया। अष्टविधसृष्टिका ज्ञान हमें इन पुराणोंसे ही प्राप्त होता है। देव-यक्ष, किंनर-सिद्ध इत्यादिका परिचय भी हमें इन्हींसे मिलता है। हम अपने पूर्वजोंका परिचय पुराणोंसे ही पाते हैं। वे हमें बतलाते हैं कि ब्रह्माके मानसपुत्र कश्यप, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, वामदेवकी हम संतान हैं और हमारा उद्देश्य पुरुषार्थ-चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम- और मोक्ष)की प्राप्ति करना है। वे यह भी सिखलाते हैं कि विश्व-प्रेम ही नहीं, 'भूतात्मवाद' भी हमारा सिद्धान्त है। हमारा आचरण—'**आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्**' पर आधृत है। (श्रीविष्णुधर्मोत्तर) संस्कृतिको उज्जीवित रखनेवाले ये पुराण हमें उन चक्रवर्ती राजाओंका इतिवृत्त बतलाते हैं, जिनके प्रजावात्सल्य, स्व-धर्मानुराग, उदात्त त्याग और गौरवान्वित आदर्श अनुकरणीय एवं विश्वविख्यात हैं। हमें अर्जुनकी वीरता, कर्णकी दान-शीलता, भीमकी बलवत्ता, भीष्मपितामहकी पितृ-भक्ति, व्यासकी विशाल प्रतिभा, वाल्मीकिकी तपश्चर्या तथा परशुरामकी दृढ़-प्रतिज्ञता कौन बतलाते हैं? यज्ञ-याग, सत्र, इष्टपूर्तका विधान, देवतायतन-निर्माण, उनके पूजन-प्रकार, तीर्थोंका माहात्म्य, व्रतोंका विधि-विधान, तपश्चर्याके प्रकार—ये सब पुराणोंसे ही ज्ञात होते हैं।

पुराण भारतीय संस्कृतिके इतिहास एवं व्याख्यान हैं। वे ज्ञान-विज्ञानके भण्डार हैं। उनमें रहस्यात्मक तात्त्विक विषयोंकी उपाख्यानों एवं आख्यायिकाओंके माध्यमसे समीचीन विवेचनाएँ हैं। कहीं-कहीं भागवतादि पुराणोंमें

* पाठान्तर—भारतम् (महाभा० १४। १०९। ६०)।

'पुरञ्जनोपाख्यान', 'भवाटवी' आदिका वर्णन लाक्षणिक—रूपकमय (allcorogical) भी हैं, पर भ्रान्ति न हो, अतः इन्हें वहीं तुरंत स्पष्ट भी कर दिया गया है। सुतरां इनके प्रचारके लिये पूरी चेष्टा होनी चाहिये । प्रसन्नता-की बात है कि 'कल्याण' मासिक पत्रने अपने कतिपय विशेषाङ्कोंके रूपमें इन पुराणोंका प्रकाशन कर विश्वका—विशेषकर भारतीय संस्कृतिका पर्याप्त उपकार किया है। इसी शृङ्खलामें इस वर्ष 'कल्याण'का विशेषाङ्क संक्षिप्त 'श्रीवराहपुराण' प्रकाशित हो रहा है, जो अत्यन्त उपयोगी एवं उपादेय होगा ।

वराहपुराणकी यह विशेषता है कि इसके वक्ता स्वयं भगवान् वराह हैं और श्रोत्री भगवती पृथ्वी । पृथ्वीने मातृरूपसे अपने आश्रित मनुष्य संतानों-के कल्याणके लिये अनेक साधनों—त्याग, तपस्या, तीर्थ, व्रत, पर्व और अर्चन-पूजनके विषयमें रहस्यात्मक प्रश्न कर भगवान् वराहके श्रीमुखसे उनका समुचित समा-धान कराया है । निश्चय ही जीवनकी सिद्धि प्राप्त करनेके इच्छुक श्रद्धालु पाठकोंके लिये यह पुराण विश्वकोश है । पुराणोंकी प्रकृतिगणनामें इस पुराणकी गणना सात्त्विक पुराणोंमें की गयी है । ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रकी अभिन्नताका जैसा कथात्मक रोचक वर्णन इसमें प्राप्त होता है, वैसा अन्यत्र नहीं ।

वराहपुराणान्तर्गत व्रजमण्डल

(लेखक—श्रीशंकरलालजी गौड़, साहित्य-व्याकरण-शास्त्री)

वराहपुराणके मतानुसार व्रजमण्डलकी सीमा बीस योजन है । जैसा कि स्पष्ट है—

विंशति योजनानां च माथुरं मम मण्डलम् ।
यत्र तत्र नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥

(वराहपु० मथुरा० मा०)

अर्थात् मेरा मथुरामण्डल बीस योजनमें है, जहाँके किसी तीर्थमें शुद्ध भावसे स्नान करनेसे प्राणी सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । अब विचारणीय है कि व्रजके चौरासी कोस-यात्राकी परिपाटी जो चली आ रही है, वह कैसे बनी तथा व्रजमण्डलकी सीमा कहाँतक थी । 'व्रज'शब्दका अर्थ है समूह—'**समूहो निवहो व्यूहः संदोहविसर-व्रजाः ।**' (२) '**गोष्ठाध्वनिवहा व्रजाः**'—गोशाला, मार्ग या समूह ।

अतः स्पष्ट है कि जो गोशाला, गोमार्ग या गोसमूहोंका निवासस्थान है, वही स्थान व्रज है । बहुधा लोग भ्रमवशात् व्रज, बृज, बृज इत्यादि भी बोलते एवं लिखते हैं । खेद है कि 'व्रज-साहित्यमण्डल' मथुरासे प्रकाशित शोधपूर्ण किन्हीं लब्धप्रतिष्ठ पत्रिकाओंके मुखपृष्ठपर भी 'व्रज-भारती' आदिके स्थानपर कभी-कभी 'ब्रजभारती' आदि लिखा रहता है । पुराणवेत्ता कथावाचक आदि भी व्रजके स्थानपर ब्रिज ही बोलते हैं । भक्तलोग व्रजका महत्त्व इस प्रकार जानते हैं—

'व्रजन्ति अस्मिन् जनाः श्रीकृष्णप्राप्त्यर्थमिति व्रजः'

अर्थात् इस व्रज-मण्डलमें प्राणी श्रीकृष्णपरमात्मासे योग करनेके लिये जाते हैं, अतः यह 'व्रज' कहलाता है । व्रजमें १२ वन, १२ अधिवन, १२ प्रतिवन, १२ उपवन—इस प्रकार कुल ४८ वन हैं, परंतु यात्रामें भक्त लोग २४ वनोंकी ही यात्रा करते हैं । कभी एक बार मैंने एक विद्वान् डाक्टर 'पद्मश्री'के 'अमर उजाला'में प्रकाशित 'व्रजमण्डल और व्रजभाषा' लेखपर समीक्षा प्रस्तुत की, जिसकी मूल लेखकने भूरि-भूरि प्रशंसा कर फिर उसे 'व्रजभारती'में प्रकाशनार्थ भेज दिया था । बादमें मैंने उन लेखक महोदयको पत्रद्वारा अपने निवासस्थान 'शंकर-सदन'पर बुलाया और व्रजमण्डल व्रजभाषापर दो घंटोंतक उनसे विचार-विनिमय किया, जिसमें उन्होंने बताया कि मथुरासे बीस-बीस योजनतक व्रजमण्डल

है; क्योंकि एटा—इटावाकी सारी जनता व्रजवासिनी ही थी। वहाँकी भाषा 'व्रजभाषा'से मिलती है। आगरा, भरतपुर, धौलपुर, मुरेना भी व्रजमें ही थे। आगराको ही लोग उस समय 'अग्रवन' कहकर पुकारते थे। अग्र शब्दका अर्थ है—प्रमुख—प्रधान वन। यथा—'पराध्यग्रिप्राहरप्राग्र्याग्र्याग्रीयमग्रियम्' (अमर-कोश, विशेष निघ्नवर्ग ५८)

'रेणुका-क्षेत्र' (रुनकुता) जो इस समय आगरामें है, वह भी पहले मथुरामें ही था। क्योंकि संकल्पमें वहाँ अब भी पढ़ा जाता है—'मथुरामण्डलान्तर्गत-रेणुकासमीपक्षेत्रे' इत्यादि। प्राचीन युगमें वनोंमें भील जाति रहती थी। इस भील जातिका कथन 'रामचरित-मानस'में इस प्रकार है—

कोल किरात भिल्ल बनचारी।

(रामच० मान० २। ३२०। १)

यह भील जाति भाण्डीरवनमें, किरात जाति 'किरात-वन'में रहती है, जो अग्रवनके समीप अधिवन था, और अब आगरा मण्डलान्तर्गत किरातावली प्राकृत व्रजभाषामें 'किरावली' पुकारी जाती है। कोल अलीगढ़के पास है, वहाँ कोलजाति रहती है। कोलकाल-का अर्थ साहित्यमें इस प्रकार भी है—

'कोलं कुवल-फेनिले। सौवीरं बदरं घोण्टा'

इस प्रकार बेरके फलका नाम कोल है तथा कोल सूअरका भी नाम है—

'वराहः सूकरो घृष्टिः कोलः पोत्री किरिः किटिः'

भाव स्पष्ट है कि अलीगढ़के पास कोल-ग्राममें जहाँ कोल वन था, कोल भील जाति, बेर-वनमें जहाँ जंगली सूअर घूमते थे, वहाँ रहती थी। 'किरातवन'के निकट सटा हुआ 'दुरध्व-वन' था। 'दुरध्व'का अर्थ—

'व्यध्वो दुरध्वो विपथः कदध्वा कापथः समः'

—कण्टकाकीर्ण—खराब मार्ग है, जिससे इस वनको 'दुरध्ववन' पुकारते थे। वनमें महर्षि दुर्वासाका निवास था (मथुरामाहात्म्य १६४)। क्योंकि उन्होंने अपनी राशिके अनुसार ही वनका चयन किया था तभी तो—कहा गया है—

'बन दुरध्व मुनि करहिं निवासा। जग बिख्यात नाम दुर्बासा॥'

दुरध्वका अपभ्रंश प्राकृत व्रजभाषाका शब्द दूरा है। मुरैनाको उस काल (द्वापरयुग)में 'मयूरवन' पुकारते थे। इस वनमें मोरमुकुटधारी विपिनविहारी अपना शृङ्गार करते थे। व्रजमण्डलकी सीमाका प्रत्यक्ष प्रमाण 'गोहद' उपनगर है। यहाँतक भगवान् गोपगणोंके साथ गाय चराने आते थे। इस व्रजमण्डलकी सीमा किंवदन्तियोंके आधारसे इस प्रकार है। यथा—

कभी कभी भगवान से हो गई ऐसी भूल।
काबुलमें मेवा करी व्रजमें बोय बबूल॥

इसका—'काबुलमें मेवा करी व्रजमें कियो करील' ऐसा भी पाठान्तर है। जहाँतक बबूल-करील पाये जायँ, वहाँतक व्रजमण्डल है। एक किंवदन्ती भी मथुरा-मण्डलकी सीमा स्पष्ट करती है—

इत बरहद उत सोनहद, उत सूरसेनको ग्राम।
व्रज चौरासीकोसमें मथुरामण्डल श्याम॥

भाव है कि बरहद अलीगढ़के पास और सोनहद (सोननदी) किरावली (आगरा)के पास है, जो तहसीलके नक्शेमें भी देखी जा सकती है। उधर शूरसेनके ग्राम 'बटेश्वर'तक मथुरामण्डल था। इसीलिये वराहपुराणके अनुसार भी माथुर-मण्डल-चतुरशीति कोशात्मक व्रजमण्डल ही था।

वराहपुराणोक्त मथुरामण्डलके प्रमुख तीर्थ

(लेखक—श्रीश्यामसुन्दरजी श्रोत्रिय, 'अशान्त')

मथुराके विषयमें लोकमें यह उक्ति अति प्रसिद्ध है—

'तीन लोक ते मथुरा न्यारी।'

पुराणोंके अनुसार यह भूमि सृष्टि और प्रलयकी व्यवस्था (विधान)से परे दिव्य गोलोकभूमि है। 'गो-गोप-गोपीगण परिवेष्टित, कंदर्पकोटि कमनीय, निखिल रसामृतसिन्धु, अनन्तकोटि ब्रह्माण्डपति, सर्वलोक-महेश्वर, अचिन्त्यसौन्दर्य-माधुर्यनिधि, मुरलीवादननिरत गोलोक-विहारी, श्यामसुन्दर श्रीकृष्णकी जो और जैसी लीलाएँ गोलोकधाममें होती हैं वे और वैसी ही लीलाएँ इस मथुरा-(व्रज-) मण्डलमें होती हैं'—ऐसा ब्रह्म-वैवर्त्तपुराण, गर्गसंहिता इत्यादि ग्रन्थोंमें उल्लेख है। मथुराकी महत्ताके विषयमें किसी एक भक्त शिरोमणि महात्माने तो अपना अनुभवजन्य अटपटा अभिमत, सहज निःसृत भावमय हृदयोद्गार इस प्रकार व्यक्त किया है—

मथुरेति त्रिवर्णीयं त्र्यतीतोऽपि गरीयसी।
सा धावति परं ब्रह्म ब्रह्म तामनुधावति॥

'म-थु-रा' ये तीन वर्ण वेदत्रयीसे भी बढ़कर (श्रेष्ठ) हैं; क्योंकि वेदत्रयी तो ब्रह्मके पीछे दौड़ती और ब्रह्म मथुराके पीछे दौड़ता है।'

पद्मपुराण पातालखण्डमें उल्लेख है—

मकारे च उकारे च अकारे चान्तसंस्थिते।
माथुरः शब्दनिष्पन्नः ॐकारस्य ततः समः॥

अर्थात्—'मथुरा' शब्दमें मकार, उकार, अकार स्थित हैं। इन्हीं (अ उ म)से 'मथुरा' शब्द निष्पन्न हुआ है। इससे यह 'ओंकार' (ॐ) शब्दके सम प्राप्य है। मकारमें महारुद्र, उकार ब्रह्मसंज्ञक तथा अकारमें विष्णुस्वरूप निहित है। अतएव देवत्रय रूपिणी मथुरा अपने श्रेष्ठ स्वरूपमें नित्य-निरन्तर स्थित है।*

'वराहपुराण'में भगवान्के वचन हैं—

न विद्यते च पाताले नान्तरिक्षे न मानुषे।
समानं मथुराया हि प्रियं मम वसुंधरे॥
सा रम्या च सुशस्ता च जन्मभूमिस्तथा मम।
(१५२।८।९)

'वसुंधरे! पाताल, अन्तरिक्ष (भूमिसे ऊपर स्वर्गादिलोक) तथा भूलोकमें मुझे मथुराके समान कोई भी प्रिय (तीर्थ) नहीं है। यह अत्यन्त रम्य प्रशस्त मेरी जन्मभूमि है।'

भारतवर्षमें अनेक तीर्थस्थान हैं, सबका माहात्म्य है और भगवान्के अनेक जन्मस्थान भी हैं, तथापि 'मथुरा'की बात ही निराली है, यहाँका आनन्द ही अनोखा है तथा महत्त्व ही कुछ और है। यहाँ नगर-ग्राम, मठ-मन्दिर, वन-उपवन, लता-कुञ्ज, सर-सरोवर, नदी, (यमुना) पर्वत आदिकी अनुपम शोभा भिन्न-भिन्न ऋतुओंमें भिन्न-भिन्न प्रकारसे (नित्य मनोहारी) देखनेको मिलती है। अपनी जन्मभूमिसे सभीको प्रेम होता है, चाहे वह कैसी ही हो—उजाड़ खण्डहर, शून्य-वन्य प्रान्त या सुरम्य स्थान। वह जन्मस्थान है, यह विचार ही उसके प्रति प्रगाढ़ प्रेम होनेके लिये पर्याप्त है। इसीलिये भगवान्का भी इससे प्रेम (एकात्मभाव।) होना स्वाभाविक है। श्रीमद्भागवत(१०।१।२८)में आया है—**'मथुरा भगवान् यत्र नित्यं संनिहितो हरिः।'** भगवान्के इस नित्य संनिधानका वर्णन 'वराहपुराण'में इस प्रकार मिलता है—

* महारुद्रो मकारः स्यादुकारो ब्रह्मसंज्ञकः। अकारो ब्रह्मरूपः स्यात् त्रिशब्दं माथुरं भवेत्॥
तथा वरः श्रेष्ठ उक्तः सत्य एवाभवत्ततः। सा त्रिदेवमयी मूर्त्ति माधुरी तिष्ठते सदा॥
(पद्मपुराण, पातालखण्ड)

मथुरायाः परं क्षेत्रं त्रैलोक्ये नहि विद्यते।
यस्यां वसाम्यहं देवि मथुरायां तु सर्वदा॥
(१६९ । ११)

भगवान् श्रीहरिका नित्य सांनिध्य मथुराको ही प्राप्त है। इसीलिये इसकी उपमा तीन लोकमें कहीं है ही नहीं। (इसीसे यह पुरी तीन लोकसे न्यारी है) इस भूमिका साक्षात् भगवान्से नित्य सङ्ग होनेसे ही इसका माहात्म्य विशेष है। यहाँ सर्वसाधारण तथा सामान्य प्राणियोंकी तो बात ही क्या; इस पुरीका वास बड़े-बड़े पुण्यात्माओंको भी दुर्लभ है। इस दिव्य भूमिका सेवन कोई विरले भाग्यवान् भगवद्भक्त, भगवान्के विशेष कृपापात्रजन ही कर सकते हैं—

न तत्पुण्यैर्न तद्दानैर्न तपोभिर्न तज्जपैः।
न लभ्यं विविधैर्यज्ञैर्लभ्यं मदनुभावतः॥
(वराहपुराण)

'इस मथुरामण्डलका आवास न पुण्योंसे, न दानोंसे, न जपतप और न विविध यज्ञोंसे ही लभ्य है, वह तो केवल मेरे अनुग्रहसे ही प्राप्तव्य है।'

अहो मधुपुरी धन्या वैकुण्ठाच्च गरीयसी।
विना कृष्णप्रसादेन क्षणमेकं न तिष्ठति॥*

'यह मधुपुरी धन्य है और वैकुण्ठसे भी श्रेष्ठ है; क्योंकि वैकुण्ठमें तो मनुष्य अपने पुरुषार्थसे पहुँच सकता है, पर यहाँ श्रीकृष्णकी कृपाके बिना एक क्षण भी उसकी स्थिति नहीं रह सकती।' इसीकी पुष्टि वराहपुराणमें इस प्रकार की गयी है।—

श्रीविष्णोः कृपया नूनं तत्र वासो भविष्यति।
विना कृष्णप्रसादेन क्षणमेकं न तिष्ठति॥

'भगवान् श्रीविष्णु (श्रीकृष्ण) की कृपासे ही वहाँ (मथुरामें) निश्चय ही वास मिलता है, किंतु कोई मनुष्य श्रीकृष्णकी कृपाके बिना एक पल भी वहाँ नहीं ठहर सकता।'

आज यदि उस पुण्य-भूमिकी रही-सही नैसर्गिक छटाके दर्शनके लिये—उस छटाके लिये, जिसकी एक झाँकी, उस महनीय पवित्रयुगका, उस जगद्गुरु (**कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्**)का उसकी लौकिक रूपमें की गयी अलौकिक लीलाओंका अद्भुत प्रकारसे स्मरण कराती है, अनुभवका आनन्द देती तथा मलिन मन-मन्दिरको सर्वथा स्वच्छ करनेमें सदा सहायता प्रदान करती है—भावुक भक्त निरंतर तरसते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? यदि यहाँ कोई नैसर्गिक शोभा भी न होती, प्राचीन लीलाचिह्न भी न मिलते तो भी केवल साक्षात् परब्रह्मकी जन्मभूमि होनेके नाते ही यह स्थान हमारे लिये महान् तीर्थ ही है। यहाँकी भूमि जन-जनके लिये वन्दनीय है। यहाँकी पावन रजको ब्रह्मज्ञ उद्धवने अपने मस्तकपर धारण किया था। वे व्रजवासी भी दर्शनीय तथा पूजनीय हैं, जिनके पूर्वजोंके बीचमें साक्षात् भगवान् अवतरित हुए थे। उनके भाग्यकी सराहनाका मार्मिक विश्लेषण भक्तप्रवर सूरदासजीके शब्दोंमें देखिये—

व्रजवासी पटतर कोउ नाहिं।
ब्रह्म-सनक-सिव ध्यान न आवै इनकी जूँठन लै लै खाहिं॥
हलधर कहत छाक जेवत सँग, मीठो लगत सराहत जाइ।
'सूरदास' प्रभु विश्वम्भर हरि, सो ग्वालन के कौर अघाइ॥
(सूरसागर १०८७)

जो तत्त्व बड़े-बड़े देवताओं, ऋषि-मुनियों (ब्रह्मा, शिव, सनकादि)का ध्येय और सेव्य (विषय) होकर भी उनकी ध्यान-समाधिद्वारा ग्राह्य (आकृष्ट) नहीं होता, वही (परात्पर परब्रह्म) जब व्रजमें (सगुण-साकार रूपमें) गोपबालकोंके मध्य बैठकर (प्रेम-पराधीन हो) उनका उच्छिष्ट खाने (भोग

* यह श्लोक भी सम्भवतः वराहपुराणका ही हो। वराहपुराणके उपर्युक्त श्लोकसे इसका प्रायः साम्य है। अन्तिम पाद तो समान है ही, अर्थ और भावकी दृष्टिसे भी समता है। दोनोंमें पाठ-भेदसे अन्तर प्रतीत होता है।

लगाने) लगता है तो उस कालमें समस्त जीव जगत्का पालक वह (विश्वम्भर प्रभु) व्रज-गोपकुमारोंके हाथोंसे (भोज्य पदार्थोंके) उन ग्रासोंको ग्रहण करके अपनी पूर्ण परितृप्ति ही नहीं मानता; अपितु अपनेको धन्य भी मानता है। साथ ही उसके माधुर्य और स्वादका गुणगान करते हुए ही वह नहीं थकता। ऐसे व्रजवासियोंके इस देवदुर्लभ, अनन्त सौभाग्यपर भला किसे ईर्ष्या न होगी ! यदि ब्रह्मादि देवताओंको उनसे स्पृहा हो तो फिर इसमें आश्चर्य क्या है !

'व्रज' शब्दसे साधारणतया अभिप्राय मथुरा जिला और उसके आस-पासके भू-भागसे समझा जाता है। वर्तमान मथुरा तथा उसके आस-पासका प्रदेश प्राचीन कालमें 'शूरसेन'-जनपदके नामसे प्रसिद्ध था। इसकी राजधानी मथुरा या मथुरानगरी थी। शूरसेन* जनपदकी सीमाएँ समय-समयपर बदलती रहीं। कालान्तरमें वह जनपद मथुरा नामसे ही विख्यात हुआ। नन्दके 'व्रज'का प्रयोग 'श्रीमद्भागवत'में बार-बार हुआ है, परंतु वैदिक-साहित्यमें भी इसका प्रयोग प्रायः पशुओंके समूह, उनके चरनेके स्थान (गोचरभूमि) उनके रहनेकी जगह (गोष्ठ या बाड़े) इत्यादिके अर्थमें मिलता है। सारांश-जिस स्थानमें पशु अधिक हों उसे 'व्रज' कहते हैं। अथवा

'व्रजन्ति अस्मिन् जनाः श्रीकृष्णप्राप्त्यर्थमिति व्रजः'

अर्थात् जिस प्रदेशमें भगवान् श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये जीव आते हैं वह व्रज है। व्रजके सम्बन्धमें सबसे अधिक वर्णन पुराणोंमें मिलते हैं। जिन पुराणोंमें व्रजके उल्लेख अधिक मिलते हैं उनमें हरिवंश, विष्णु, मत्स्य, श्रीमद्भागवत, पद्म, वराह तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण प्रमुख हैं। वराहपुराणमें तो मथुराखण्ड नामसे ही लगभग तीस अध्यायोंमें मथुरामण्डल और उसके माहात्म्यका विस्तृत वर्णन मिलता है।

यह व्रजभूमि मथुरा और वृन्दावनके आस-पास चौरासी कोसोंमें फैली हुई है। 'वराहपुराण'में इसका विस्तार बीस योजन (अस्सी कोस) माना गया है। जैसे कि—

विंशतियोजनानां हि माथुरं मम मण्डलम्।
पदे पदेऽश्वमेधानां फलं नात्र विचारणम् †॥
(१६८ । १०)

अर्थात् 'मेरा मथुरा-मण्डल बीस योजन है। जहाँ पद-पदपर अश्वमेध यज्ञोंके फलकी प्राप्ति होती है। इसमें कोई संशय (विचार) नहीं है।'

उपर्युक्त बीस योजन (अस्सी कोस)में मथुरापुरीके चार कोस मिला देनेसे चौरासी कोस होते हैं। सूरदासजीने भी चौरासी कोसवाले व्रज-मण्डलका ही उल्लेख किया है—

'चौरासी व्रजकोस निरंतर खेलत हैं बलमोहन।' आदि।

मथुरामण्डलकी भौगोलिक स्थिति तथा परिसीमन

मथुरा व्रजके केन्द्रमें है। यह महान् मथुरापुरी उस महान् विभुका जन्म-स्थान होनेके कारण धन्य हो गयी। मथुरा ही नहीं, समस्त शूरसेन जनपद या व्रज-मण्डल, आनन्दकन्द, व्रजचन्द्र, लीलाविहारी श्रीकृष्णचन्द्र-की मनोहर लीला-भूमि होनेके कारण ही गौरवान्वित है

* हरिवंश, विष्णु आदि पुराणोंमें तथा परवर्ती संस्कृत साहित्यमें वसुदेवजी तथा श्रीकृष्ण आदिके लिये 'शौरि' विशेषण प्राप्त होता है, क्योंकि श्रीकृष्णके पितामहका नाम 'शूर' था। इसीलिये यह जनपद 'शूरसेन' कहलाया। ऐसा उल्लेख भी प्राचीन ग्रन्थोंमें देखनेमें आता है।

† पदे पदेऽश्वमेधानां फलं प्राप्नोत्यसंशयः। (वराहपु०)
तथा—
यत्र तत्र नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वपातकैः। (वराहपु०)
विभिन्न प्रतियोंमें ऐसा पाठभेद भी मिलता है।

और न जाने आगे भी कितने (अनन्त) समयतक महिमामण्डित रहेगा ।

वर्तमान मथुरा जिलेके उत्तरमें गुड़गाँव और अलीगढ़ जिलेके भाग हैं । पूर्वमें अलीगढ़* और एटा, दक्षिणमें आगरा तथा पश्चिममें भरतपुर तथा गुड़गाँवका कुछ भाग है । एक 'व्रज-भाषा'के कविके अनुसार—

इत बरहद† उत सोनहद, उत सूरसेन को गाम ।
व्रज चौरासी कोसमें मथुरा मंडल धाम ॥

वराहपुराण (अध्याय १६५ । २१)से ज्ञात होता है कि किसी समय मथुरापुरी गोवर्धन पर्वत और यमुना नदीके बीच बसी हुई थी और इनके बीचकी दूरी अधिक नहीं थी । हरिवंशपुराणमें भी कुछ इसी प्रकारका संकेत प्राप्त होता है—

'गिरिर्गोवर्धनो नाम मथुरायास्त्वदूरतः ।'

(हरिवंश० १ । ५५ । ३६)

वर्तमान स्थिति ऐसी नहीं है, क्योंकि अब गोवर्धन यमुनासे पर्याप्त दूर है । ऐसा प्रतीत होता है कि किसी समय गोवर्धन और यमुनाके बीच इतनी दूरी न रही होगी, जितनी कि आज है ।

मथुरा अति प्राचीन नगर है । इसका नाम मधुरा या मधुवन भी है, जो मधु दैत्यके नामसे पड़ा हुआ प्रतीत होता है ।‡ भगवान् श्रीकृष्णने तो यहाँ द्वापरके अन्तमें अवतार लिया था; किंतु यह क्षेत्र तो आदिकालसे परम पावन रहा है—**'पुण्यं मधुवनं यत्र सांनिध्यं नित्यदा हरेः ।'** इस परम पवित्र मधुवनमें श्रीहरि नित्य निवास करते हैं ।

ध्रुवने यहाँ तपस्या करके भगवद्दर्शन प्राप्त किया था । ऐसा प्रतीत होता है कि कालान्तरमें मधुराका परिवर्तित नाम 'मथुरा' प्रचलित हो गया ।

मथुरा-मण्डल (व्रजप्रदेश) अपनी प्राकृतिक छटा और वनोंके लिये प्रसिद्ध है । प्राचीन कालमें यहाँ अनेक बड़े वन थे, जिनके नाम प्राचीन साहित्यमें मिलते हैं । इन उल्लेखोंके अनुसार व्रजमें बारह वन और अनेक उपवन हैं । जो इस प्रकार हैं—

वन-उपवन

महावन—१–मधुवन, २–तालवन, ३–कुमुदवन, ४–बहुलावन, ५–काम्यवन, ६–खदिरवन, ७–भद्रवन, ८–भाण्डीरवन, ९–बेलवन, १०–वृन्दावन, ११–लोह-वन (लौंहजङ्घवन) और १२–महावन ।

उपवन—१–गोकुल, २–गोवर्धन, ३–नन्दगाँव, ४–बरसाना, ५–बच्छवन, ६–कोकिलावन, ७–रावल आदिबद्री आदि अनेक उपवन हैं ।

वर्तमान समयमें बड़े वन तो नहीं रहे; किंतु उनकी स्मृतिके रूपमें अब भी महावन, काम्यवन, बेलवन, वृन्दावन, भाण्डीरवन आदि विद्यमान हैं । प्राचीन व्रजमें कदम्ब, अशोक, चम्पा, नागकेशर आदिके वृक्ष बहुत होते थे । इसका प्रमाण व्रजके विभिन्न स्थानोंसे प्राप्त हुए उन कलावशेषोंसे मिलता है, जिनपर इन वृक्षोंके चित्र उत्कीर्ण हैं । वर्तमान व्रजमें कदम्ब, करील, पीलू, शीशम, ढाक आदि वृक्ष अधिकतासे मिलते हैं । इसके अतिरिक्त इमली, नीम, जामुन, खिरनी, पीपल, बरगद, छौंकर बेल और बबूल आदिके वृक्ष भी विभिन्न स्थानोंमें उपलब्ध हैं । सुखद विषय है कि इधर शासन तथा जनताका ध्यान व्रजकी प्राचीन वनस्पतियोंके पुनरुद्धारकी ओर गया है । उल्लेखनीय है कि इस समय न केवल पुराने वृक्षोंकी रक्षा की जा रही है, अपितु नये-नये वृक्ष लगाकर व्रजप्रदेशकी सौन्दर्य-वृद्धि भी की जा रही है । ऐसा करनेपर ही पश्चिम (राजस्थान)की

* अलीगढ़ जिलेका बरहदगाँवसे तात्पर्य है ।

† गुड़गाँव जिलेके सोन-नदीके किनारेतकका प्रदेश । विशेष द्रष्टव्य—'व्रजका इतिहास' पृष्ठ-संख्या २-४

‡ हरिवंशपुराणमें उल्लेख है कि मधु नामक राक्षस गिरिवर या गिरिव्रजको अपनी राजधानी बनाकर राज्य करता था ।

ओरसे बढ़ते हुए सम्भावित रेगिस्तानके वेगको रोककर व्रज-प्रदेशकी सुरक्षा की जा सकती है ।

सर-सरिताएँ

व्रजमण्डलमें पहले कई सरिताएँ थीं । अब यहाँकी प्रधान नदी यमुना है । धार्मिक दृष्टिसे समस्त मथुरा-मण्डल तथा उसके सुदूरवर्त्ती प्रदेशोंमें भी यमुनाका अत्यधिक महत्त्व है *। यमुनाके सहित यहाँ कृष्ण-गङ्गा, चरणगङ्गा और मानसीगङ्गा—ये चार नदियाँ ही प्रकट हैं । सरस्वती प्रकट नहीं हैं । मथुरामें जहाँ पहले सरस्वती बहती थीं †, वहाँ अब सरस्वती-नाला और जहाँ सरस्वती यमुनाजीमें मिलती थीं, वहाँ 'सरस्वती-सङ्गम'तीर्थ अब भी प्रसिद्ध है ।

यहाँ सरोवर पाँच हैं—मानसरोवर, पानसरोवर, चन्द्र-सरोवर, हंससरोवर और प्रेमसरोवर । इनके अतिरिक्त अनेक कुण्ड और जलाशय (तालाब) हैं, जिनको भगवान् (श्रीकृष्ण) की व्रज-लीलाओंसे सम्बन्ध होनेके कारण विशेष धार्मिक महत्त्व प्राप्त है ।

पर्वत

यहाँ मुख्य पर्वत चार हैं—(१) गोवर्धन, (२) बरसानु, (३) नन्दीश्वर, (४) चरणपहाड़ी । व्रजमें पहाड़ोंकी संख्या ब्रह्मा, विष्णु, रुद्ररूपमें तीन ही मानी जाती हैं । गोवर्धन विष्णुस्वरूप, बरसानु (बरसाना) ब्रह्मारूप तथा नन्दीश्वर (नन्दिग्राम) शिव (स्वरूप) का प्रतीक है । चरण-पहाड़ीकी गणना साधारणतया पर्वतोंमें नहीं की जाती । व्रजमें प्राचीन वस्तुएँ तीन ही हैं—पर्वत, नदी और भूमि । अन्य प्राचीन वस्तुएँ या तो नष्ट हो गयीं या नष्ट कर दी गयीं और उनके स्थानपर नयी बन गयीं अथवा पुरानीका जीर्णोद्धार हो गया ।

मार्ग तथा गमनागमनके साधन—

मथुराके चारों ओर व्रजके तीर्थ हैं । इन तीर्थोंमें जानेके लिये (व्रजमण्डलके केन्द्रमें अवस्थित होनेके कारण) प्रायः मथुरा होकर ही जाना पड़ता है । अब व्रजके सभी मुख्य तीर्थोंमें अधिकांशतः सड़कें हो गयी हैं और वहाँ मोटर-बसों तथा अन्य सवारियोंद्वारा जाया जा सकता है । मथुरा पक्के तथा प्रशस्त राजपथ (सड़कों) और रेलमार्गोंद्वारा, कई प्रमुख नगरों दिल्ली, आगरा, हाथरस, अलीगढ़, जलेसर, भरतपुर आदिसे भी संयुक्त है । मथुरा-जंक्शन तथा मथुरा-छावनी—ये दो मथुराके मुख्य स्टेशन हैं ।

मथुरा-जंक्शन—

यह पूर्वोत्तर, मध्य तथा पश्चिम तीन रेलमार्गोंका प्रधान केन्द्र है । दिल्लीसे मथुरा-आगरा होकर (मध्य रेलवे

* प्राचीन साहित्यमें 'कलिन्दजा' सूर्यतनया' 'त्रियामा' आदि अनेक नामोंसे यमुनाका उल्लेख मिलता है । द्रष्टव्य—ऋग्वेद १०, ७५; अथर्व० ४, ९, १०; शतपथब्राह्मण १३, ५, ४, ११; ऐतरेय ब्राह्मण १३; रामायण, महाभारत, परवर्ती संस्कृत एवं प्राकृत-साहित्य तथा पुराण-साहित्यमें 'यमुना' की महिमाका वर्णन बहुत मिलता है । उदाहरणार्थ—

गङ्गा शतगुणा प्रोक्ता माथुरे मम मण्डले । यमुना विश्रुता देवि नात्र कार्या विचारणा ॥
(वराहपु० १५२ । ३०)

तत्र स्नात्वा च पीत्वा च यमुनायां युधिष्ठिर । कीर्त्तनाल्लभते पुण्यं दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति ॥
(मत्स्यपु० युधिष्ठिर-मार्कण्डेयसंवाद)

यमुनाजलकल्लोले क्रीडते देवकीसुतः । तत्र स्नात्वा महादेवि सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥
अहो ! अभाग्यं लोकस्य न पीतं यमुनाजलम् । गो-गोपगोपिकासङ्गे यत्र क्रीडति कंसहा ॥
(पद्मपु० पाता० हरगौरीसंवादे)

† कुछ विद्वानोंका अनुमान है कि यमुना पहले सरस्वती नदीमें मिलती थी । प्रागैतिहासिक कालमें सरस्वतीके सूख जानेपर यमुना गङ्गामें मिली (देखें—जर्नल आफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, १८९३ पृष्ठ ४९ और आगे)

द्वारा) बम्बई जाने और आनेके लिये यहाँसे मार्ग है। इसी प्रकार दिल्लीसे नागदा, रतलाम होते हुए भी (पश्चिमरेलवेद्वारा) बम्बई जानेका यह सीधा माध्यम है।

मथुरा छावनी (कैण्ट)—

यह स्टेशन पूर्वोत्तररेलवेकी छोटी लाइनपर है। यह लाइन अछनेरासे आरम्भ होकर, मथुरा-छावनी, हाथरस, कासगंज, फरुखाबाद होते हुए कानपुरतक गयी है। मथुरा जंक्शनसे इसी लाइनकी एक शाखा वृन्दावनतक गयी है। मथुरा-छावनी मथुरा नगरके समीप है। मथुरा जंक्शनसे मथुरा डेढ़ मील है। दोनों स्टेशनोंपर नगरतक जानेके लिये सवारी (रिक्शे, तांगे आदि)का प्रबन्ध है।

कलकत्ताकी ओरसे उत्तर रेलवेद्वारा मथुरा आनेवाले यात्रियोंको टूँडला या हाथरसमें गाड़ी बदलनी पड़ती है। टूँडलासे आगरा होते हुए तथा हाथरससे पूर्वोत्तर रेलवेकी छोटी लाइन होकर मथुरा आना पड़ता है।

मथुरा-दर्शन—

इसमें कोई संदेह नहीं कि मथुरा बड़ा ही स्वच्छ, सुन्दर तथा रमणीक नगर है। अयोध्या और काशीकी तरह यहाँ अनेक मन्दिर तथा पक्के घाट हैं। भव्य भवनों, सुरम्य घाटों तथा उच्च शिखरोंवाले विशाल और आकर्षक देवमन्दिरोंसे युक्त मथुराकी शोभा देखते ही बनती है। श्रीयमुना यहाँ अर्धचन्द्राकार (रूप)में बह रही हैं*, जिनके किनारे अनेक सुन्दर, पक्के तथा प्रशस्त घाट हैं। इन घाटोंका (क्रमबद्ध) सिलसिला बराबर एक दूसरेसे लगा है। जिससे यमुनासहित यहाँके घाटोंका दृश्य, बड़ा ही नयनाभिराम दृष्टिगोचर होता है। यहाँके अधिकांश घाट (तीर्थ) यमुनाजीके दाहिने किनारे-पर ही हैं, जिनमें २४ घाट मुख्य माने जाते हैं। विश्रान्तिघाट या विश्रामघाट यहाँका सुप्रसिद्ध प्रमुख घाट है, जो सबके मध्यमें है। विश्रामघाटसे (गणना करनेपर) दक्षिणमें १२ तथा उत्तरमें १२ घाट अवस्थित हैं। उनके नाम हैं—(१) विश्रामघाट, (२) प्रयागघाट, (३) कनखलघाट, (४) विन्दुघाट, (५) बंगालीघाट, (६) सूर्यघाट, (७) चिन्तामणिघाट, (८) ध्रुवघाट, (९) ऋषिघाट, (१०) मोक्षघाट, (११) कोटिघाट और (१२) बुद्धघाट—ये दक्षिणावर्ती हैं। उत्तरके घाट हैं—(१३) गणेशघाट, (१४) मानसघाट, (१५) दशाश्वमेधघाट, (१६) चक्रतीर्थघाट, (१७) कृष्णगङ्गाघाट, (१८) सोमतीर्थ-घाट, (१९) ब्रह्मलोकघाट, (२०) घण्टाभरणघाट, (२१) धारापतनघाट, (२३) सङ्गमतीर्थघाट, (संयमन या वासुदेवघाट), (२३) नवतीर्थघाट और (२४) असिकुण्डाघाट।

पद्मपुराणके पातालखण्डमें हरगौरीसंवादमें वर्णन है कि 'यमुनाका तट परम पवित्र तथा श्रीकृष्णकी क्रीड़ा-स्थली है। जहाँ समस्त पापनाशिनी, परमपवित्र मथुरा (मधु) पुरी विद्यमान है'—

कृष्णक्रीडाकरं स्थानं यमुनायास्तटं शुचि।
पुण्या मधुपुरी यत्र सर्वपापप्रणाशिनी॥
यथा तृणसमूहंतु ज्वलयन्ति स्फुलिङ्गकाः।
तथा महान्ति पापानि दहते मथुरापुरी॥
(पद्म० पा०)

'जिस प्रकार अग्निकण (तृणराशि) तिनकोंके समूहको जलाकर नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार मथुरापुरी

* प्राचीन पौराणिक वर्णनोंसे भी इसकी पुष्टि होती है कि मथुरा नगरी यमुना नदीके तटपर बसी हुई थी और उसका रूप—'अर्धचन्द्राकार' (अष्टमीके चन्द्रमा-जैसा) था। देखें—हरिवंश-पुराण (पर्व१ अ० ५४। ५७ से ६१) मथुरावर्णन। यथा—
'अर्धचन्द्रप्रतीकाशा यमुनातीर शोभिता।' (हरिवंश १। ५४। ६०)

घोर पापोंको जलाकर भस्म कर देती है।' 'वराहपुराण'में भगवान् वराह पृथ्वीसे कहते हैं—

सर्वेषां देवतीर्थानां माथुरं परमं महत्।
कृष्णेन क्रीडितं यत्र तच्च शुद्धं पदे पदे॥

इस प्रकार शास्त्रों तथा पुराणोंसे सिद्ध हो जाता है कि भगवान् श्रीकृष्णकी जन्मभूमि-मथुरापुरी सभी तीर्थोंमें अद्वितीय है। यह पद-पदपर परम पवित्र है। मथुरा आदि-वराह-भूतेश्वर-क्षेत्र कहलाती है। भूतेश्वर महादेव मथुराक्षेत्रके क्षेत्रपाल (रक्षक) रूपमें विराजमान हैं।*

मथुराके मन्दिर तथा देवस्थान—

मथुराके चारों ओर चार शिवमन्दिर हैं—पश्चिममें भूतेश्वर, पूर्वमें पिप्पलेश्वर, दक्षिणमें रङ्गेश्वर और उत्तरमें गोकर्णेश्वर। चारों दिशाओंमें स्थित होनेके कारण भगवान् शंकरको मथुराका 'क्षेत्रपाल' या कोतवाल कहा जाता है।

असिकुण्डाघाटके ठीक सामनेकी गली मानिक-चौक मुहल्लेमें 'आदिवराह'के मन्दिरमें नीलवराह, तथा उसके निकट अलग मन्दिरमें श्वेतवराहकी प्राचीन दर्शनीय मूर्तियाँ हैं। व्रजमें (मथुरामण्डलमें) भगवान् वराहके पाँच विग्रह अलग-अलग स्थानोंमें पाये जाते हैं। (१) आदिवराह या नीलवराह, (२) श्वेतवराह (मानिकचौक), (३) वराहदेव (भूतेश्वर), (४) गोपीवराहदेव (वराहघाट, रमणरेती, वृन्दावन) और (५) वराहजी (गोकुल)में हैं। लेकिन इनमें सबसे प्राचीन, शास्त्रों तथा पुराणोंद्वारा आदिवराहदेव माने गये हैं, किंतु वराहपुराणके १६३वें अध्यायके 'कपिल-वराह'-माहात्म्यमें (आदिवराहके पासवाले) श्वेतवराह-देवका वर्णन है। यह प्राचीन प्रतिमा भी (मानिक-चौकमें) इस समय आदिवराह-मन्दिरके पास ही स्थित है। 'वराहपुराण'में कहा गया है कि यह प्रतिमा महर्षि कपिलद्वारा सेवित तथा पूजित रही है। वे ही इसके आदि-प्रतिष्ठापक थे। कालान्तरमें यह इन्द्र, रावण तथा भगवान् रामद्वारा पूजित होकर, भगवान् रामकी कृपासे लवणासुरवधके पश्चात् श्रीशत्रुघ्नजीको प्राप्त हुई और उन्होंने ही इस वराही प्रतिमाको मथुरामें स्थापित किया था।†

आदिवराहदेवका स्वरूप—

श्यामवर्ण और शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्मसे सुशोभित चतुर्भुजरूप है। दोनों पैरोंके नीचे दैत्य हिरण्याक्ष पड़ा हुआ है, भगवान् वराहकी दाढ़पर पृथ्वी और पृथ्वीपर छत्रवत् शेषनाग हैं।

श्वेतवराहका स्वरूप—

गौरवर्ण, चारभुजा—शङ्ख, चक्र, गदा तथा एक हाथमें हिरण्याक्ष दैत्यकी चोटी है एवं चरण उसके वक्षपर स्थित हैं। दाढ़ोंपर पृथ्वी धारण किये हुए हैं।

(शेष पृष्ठ ४५४ पर)

* मथुरायां च देवत्वं क्षेत्रपालो भविष्यसि। त्वयि दृष्टे महादेव! मम क्षेत्रफलं लभेत्॥(वराहपुराण)

† इन्द्रेणाराधितो देवि कपिलो मुनिसत्तमः। तस्य प्रीतो ददौ देवं वराहं दिव्यरूपिणम्॥
ततः कालेन महता रावणो नाम राक्षसः। इन्द्रलोकं गतः सोऽथ स्वर्गं जेतुं महाबलः॥
दृष्ट्वा कपिलवाराहं शिरसा धरणीं गतः॥ तेन सम्मोहितो देवि रावणो लोकरावणः।
अनेन नास्ति मे कार्यं तव रक्षो विभीषण। देवो मे दीयतां रक्षः शक्रलोकाद्य आगतः॥
अयोध्यायां स्थापयित्वा पूजयामास तं तदा॥ राघवस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्नो वाक्यमब्रवीत्।
यदि तुष्टोऽसि मे देव वराहो यदि वाप्यहम्। दीयतां मम देवोऽयं यदि मे वरदो भवान्॥
शत्रुघ्नस्य वचः श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत्। नय शत्रुघ्न देवं त्वं दिव्यं वाराहरूपिणम्॥
देवमादाय शत्रुघ्नो जगाम मथुरां पुरीम्। ब्रह्माणं स्थापयित्वा तु आगच्छन् मम संनिधौ॥
(वराह० १६३। २७, ३०, ३२-३३ ४८, ५१, ५८, ५९, ६०—६४)

वराहपुराण-संकेतित वराहक्षेत्र—स्थिति और महत्त्व

(लेखक—प्रो० श्रीदेवेन्द्रजी व्यास)

वैदिक कालसे लेकर अबतककी सम्पूर्ण भारतीय आस्तिक विचारपरम्पराने एक मतसे स्वीकार किया है कि परमेश्वर धर्म-स्थापनार्थ और सत्पुरुषोंकी रक्षा तथा विश्वको पाप-ताप एवं अनाचारसे मुक्त करनेके लिये समय-समयपर लीला-विग्रह धारण करते हैं। ईश्वरके इस लीला-शरीरको अवतारकी संज्ञा दी जाती है और इस तरहके तीसरे अवतार हैं—सूकर या वराह—'**तृतीयः स तु वाराहः**।' (वायुपु० ९७। ७४) सूकर या वराहावतारके पूर्ण चरितको लेकर 'वराहपुराण'-जैसा बृहत् पुराण ग्रन्थ लिखा गया।

ईश्वरने विभिन्न समयों और अनेकानेक प्रयोजनोंसे सूकर आदि अवतार धारण किये। ये सभी रूप लीला-वपु हैं। वराहके रूपमें ईश्वरने अनेक बार इस पृथ्वीकी रक्षा की और पुनः स्थापना की। ईश्वरने 'महावराह', 'श्वेत-वराह', 'यज्ञ-वराह' और 'नर-वराह'के रूप धारण किये। कृष्ण-यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिताके ७। १। ५ अनुवाक्में 'महावराह'के विषयमें कहा गया है—

आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्
तस्मिन् प्रजापतिर्वायुर्भूत्वाऽचरत्।
स इमामपश्यत् तां वराहो
भूत्वाऽहरत् ।

'वायुपुराण'के आठवें अध्यायमें भी इन्हीं महावराहका कथन है कि आदिविष्णु (आदिवाराह) सूकररूप धारणकर परमाणुरूप पृथ्वीकी खोज करने लगे और अनुमानतः भूमिके स्थानका संकेत पाकर उसके उद्धारमें संनद्ध हो गये। ऐसे महावाराहकी विशाल दंष्ट्रापर सम्पूर्ण पृथ्वी स्थित हुई है। पृथ्वीपर बड़े वेगसे १ मिनटमें ६ हजार उल्काएँ गिरती हैं, जिन्हें १०० मील ऊपर ही भगवान् वराहकी 'वाराही शक्ति' रोककर उन्हें चूर्ण कर देती है।

श्वेतवाराहकी कथा शिवपुराणकी रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डके सप्तम अध्यायमें भी है, जहाँ शिवलिङ्गके परिमाणके ज्ञानहेतु ब्रह्माजीसे विवादमें पड़कर विष्णुने 'श्वेतवाराह'-का रूप धारण किया। उनके इस रूपकी प्रतिमा आज भी 'सूकरक्षेत्र'में प्रतिष्ठित और सुपूजित है। तीसरे 'यज्ञ'-वाराहका उल्लेख श्रीमद्भागवत महापुराण, तृतीय स्कन्धके त्रयोदश और चतुर्दश अध्यायोंमें है। इनका सम्बन्ध भी सूकरक्षेत्रसे है; क्योंकि धरित्रीके उद्धारके पश्चात् इन्होंने सूकरक्षेत्रमें ही स्वरूपका विसर्जन किया था।

चौथे 'नर-वाराह' आज सर्वाधिक सुपूजित हैं। नारायणके द्वारपाल जय-विजय जब सनकादिके शापवश प्रथम राक्षसयोनिमें हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपुके रूपमें उत्पन्न हुए और जब दुर्धर्ष दैत्य हिरण्याक्षने पृथ्वीको जलमें अनिश्चित स्थानपर छिपा दिया, तब भगवान् विष्णुने वाराहरूप धारणकर इस दैत्यका वध किया और पृथ्वीको मुक्तकर पुनः स्थापित किया। दैत्यवधसे उत्पन्न खिन्नता और श्रमकी थकानको दूर करनेके लिये नर-वाराहने भागीरथीके तटपर मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी-को जिसे मोक्षदा एकादशी कहते हैं, व्रत किया और भागीरथी-तटपर ही अवस्थित सूकरक्षेत्रमें दूसरे दिन द्वादशीको आत्मविसर्जन किया। जिस स्थानपर प्रभुने स्व दिव्य विग्रहको अन्तर्हित किया, वह स्थान 'हरिपदी'के नामसे 'सूकरक्षेत्र'में अबतक विद्यमान है। पर अब देखना यह है कि वह 'सूकरक्षेत्र' है कौन-सा !

भगवान् वाराहने पृथ्वीसे अपने विश्रामस्थल और निर्वाणस्थानकी स्थितिको बताते हुए निम्न श्लोक कहा है—

यत्र भागीरथी गङ्गा मम सौकरवे स्थिता।
यत्र संस्था च मे देवि ह्युद्धृतासि रसातलात्॥
(वराहपुराण १३७। ७)

इस श्लोकसे सूकरक्षेत्रकी स्थितिका किंचित् संकेत मिलता है। यहाँ सूकरक्षेत्र शब्दके स्थानपर 'सौकरव' शब्दका व्यवहार किया गया है। स्पष्ट बात यह है कि तबका 'सौकरव' अबके क्षेत्रसे किसी अन्य रूपमें ही रहा होगा, पर 'सौकरव' से सम्बन्धित अवश्य होगा। अतः आजके सूकरक्षेत्रको खोजनेके लिये गङ्गातटावस्थित सौकरवसम्बन्धित स्थानको खोजना होगा। इस श्लोकके आधारपर सौकरवक्षेत्रका निम्न रूप होना चाहिये।

१—वह गङ्गातटपर अवस्थित हो।

२—वाराहक्षेत्रके रूपमें प्रसिद्ध हो, यदि मन्दिर हो तो और अधिक प्रामाण्य है।

३—उस स्थानका अभिधान 'सौकरव' शब्दसे ही सम्बन्धित या विकसित हो।

इस समय भारतभूमिपर प्रसिद्ध दो-तीन सूकरक्षेत्र या वराहक्षेत्र हैं, पर इनमेंसे यदि किसीकी स्थिति गङ्गातटपर है तो वहाँ भगवान् वराहका मन्दिर नहीं है, या सौकरवसे कोई सम्बन्ध नहीं है और यदि किसी स्थलपर वराह-मन्दिर है तो उसका 'सौकरव' से कोई सम्बन्ध नहीं और वहाँ गङ्गातट नहीं। इन तीनों ही बातोंकी पूर्ति करनेवाला कोई वास्तविक सूकर-क्षेत्र है तो वह उत्तरप्रदेश राज्यमें जिला एटाका 'सोरों' नगर है। यह एक प्रसिद्ध सूकरक्षेत्र नामक तीर्थ है, जिसका उल्लेख 'कल्याण'के तीर्थाङ्कमें भी दिया गया है।

पुराणकथित तीनों शर्तें यहाँ पूरी हो जाती हैं। यहाँ 'श्वेत-वाराह' और 'श्याम-वाराह' इन दोनोंके ही विशाल और भव्य मन्दिर हैं और वराह यहाँके सुपूजित क्षेत्राधीश हैं। गङ्गातटपर अवस्थित इस नगरके अभिधान 'सोरों'से सौकरवका सम्बन्ध है। 'सौकरव'से सोरों शब्दका विकास चान्द्र-प्राकृत-व्याकरणानुसार इस सूत्रसे प्रमाणित है— **'क, ग, च, ज, त, द, प, य, वा प्रायो लुक् इति'।** इसके अतिरिक्त सूकरसे सम्बन्धित होनेके कारण इस शब्दकी अन्य व्युत्पत्ति भी है, जो इसे सौकरव ही सिद्ध करती है। सौकरव अर्थात् सूकरसम्बन्धी। सूकरको अरबी और फ़ारसीमें सूअर कहा जाता है। उसका बहुवचन हिंदीमें बना सुअरों और इससे विकसित हुआ सोरों।

इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाण भी इसे ही 'सूकर-क्षेत्र' सिद्ध करते हैं। सोरोंका गङ्गा-तटपर अवस्थित होना, वाराह-मन्दिरका होना और सौकरवसे सम्बन्धित होना आदि प्रमाण ऐसे हैं जो पुराणानुमोदित हैं। सोरोंकी तुलनामें कोई भी अन्य तथाकथित 'सूकरक्षेत्र' इतना प्रसिद्ध नहीं है। सूकरक्षेत्र श्रीवराहका निर्वाणस्थल है, अतः यह सांसारिक मनुष्योंके अवसानोत्तर कर्मका भी क्षेत्र है। यही कारण है कि भारतके—तीन पिण्डोदकार्थ तीर्थोंमें—प्रयाग-राज और गयाजीके साथ तीसरा नाम इस सोरोंका ही है। यहाँ पिण्डोदक-कर्मद्वारा मुक्ति-प्राप्ति होनेका कारण श्रीवाराह-निर्वाण-क्षेत्र अथच सूकरक्षेत्रका होना ही है। जिस 'हरिपदी'-कुण्डमें भगवान्ने देहत्याग किया, भागीरथी-से जुड़े उस कुण्डका अब भी यह चामत्कारिक वैशिष्ट्य है कि यहाँ विसर्जित अस्थि तीसरे दिन जलरूपमें परिणत हो जाती है।

यह सोरों सूकरक्षेत्र ही है जो गुजरात, मालवा, राजस्थान, सिंध, कच्छ, काठियावाड़ आदि सुदूरवर्ती प्रान्तोंमें 'गङ्गा-घाट'के नामसे प्रसिद्ध है और वहाँके लोग पिण्डदान-कर्मके लिये नित्य सैकड़ोंकी संख्यामें यहाँ आते रहते हैं।

भगवान् वाराहका मन्दिर, जिसमें 'श्वेत-वाराह'की प्रतिमा है, इसी स्थानपर है। केवल भारत ही नहीं अपितु इसके उत्तरवर्ती राष्ट्र नेपालसे भी इस मन्दिरका सम्बन्ध है। नेपालके राजवंशीय उत्तरा-धिकारियों और मन्दिरके महामण्डलेश्वर स्वामी कैलासा-नन्द गिरिजीका भव्य चित्र इस मन्दिरमें लगा है, जो इस बातका प्रमाण है। उसकी 'मुगलिया' कला-शैली उसे मध्यकालका सिद्ध करती है। प्रतिमाके ठीक

सामनेवाली कला-शैलीमें निर्मित एक अष्टधातुका विशाल घण्ट, जिसपर इसका स्पष्ट उल्लेख है कि यह घण्टा नेपाल राज्यके महामन्त्रीने अपने पुत्र-जन्मके उपलक्ष्यमें १६वीं शतीमें भेंट किया था। इन विविध प्रमाणोंसे सर्वतोविधि यह सिद्ध होता है कि पुराण-संकेतित सूकरक्षेत्र(सौकरव) सोरों ही है, अन्य नहीं।

अब थोड़ा-सा इसके महत्त्वपर भी विचार कर लिया जाय। यद्यपि इसकी अन्ताराष्ट्रिय ख्याति और स्थिति, अस्थियोंका जलरूपमें परिणत होना आदि अपने आपमें इसकी महत्ता प्रकट करते ही हैं, पर एक तीर्थ होनेके नाते पुराणसाहित्यने भी इसके महत्त्वको प्रकट किया है। 'वायुपुराणमें' उल्लेख है—

षष्टिवर्षसहस्राणि योऽन्यत्र कुरुते तपः।
तत्फलं लभते देवि प्रहरार्द्धेन सूकरे॥

'वराहपुराण'में इसके महत्त्वको बताते हुए स्वयं भगवान् वराहने कहा है कि "मेरा 'सौकरव' स्थान सर्वोच्च और सर्वोपरि है और मोक्ष प्रदान करनेकी दृष्टिसे तो सबसे अधिक महत्त्वका है"—

परं कोकामुखं स्थानं तथा कुब्जाम्रकं परम्।
परं सौकरवं स्थानं सर्वसंस्थानमोक्षणम्॥
(वराहपुराण, अ० १४५)

आये कर गर्जना वराह भगवान् हैं

(रचयिता—पं० श्रीउमादत्तजी सारस्वत, 'दत्त', कविरत्न)

चारों वेद जिनके हैं, चारों पद पूजनीय,
जिनके कराल दन्त कालके समान हैं।
प्रकट हुए जो चतुराननकी नासिकासे,
लघु-वपु-धारी, पर शौर्यमें महान् हैं।
देखते-ही-देखते वे हुए गिरि-राज तुल्य,
तुण्ड है भयानक और विशाल दोनों कान हैं।
पृथ्वीको उबारने व लानेको रसातलसे,
आये कर गर्जना वराह भगवान् हैं।

× × × ×

ऊँची कर पूँछ, ग्रीव-बालोंको झटकके वे,
चोटसे खुरोंकी सिन्धु-वेग हरने लगे।
चारों ओर सूँघ-सूँघ पहुँचे, जहाँ थी 'भूमि'
'घुर-घुर' शब्दसे दिशाएँ भरने लगे।
दाढ़ों पै उठा 'वसुधा'को अति उछले शीघ्र,
गजराजके समान वे खेल करने लगे।
छातीके प्रहारसे 'हिरण्यनेत्र'-दानवका,
अन्त किया, 'प्रभु'ने, प्रसून झरने लगे।

वराह-महापुराणमें नेपाल

(लेखक—पं० श्रीसोमनाथजी शर्मा, घिमिरे, 'व्यास', साहित्याचार्य)

पृथ्वीके पार्थिव-शरीरकी व्याख्या करते हुए भगवान् वराह या बादरायणने नेपाल अथवा पर्वतराज हिमालयको पृथ्वीका शिरोभाग बताया है—

पौण्ड्रवर्धननेपाले पीठे नयनयोर्युगे ।

(वराहपु०)

जितनी भी ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, सब सिरमें ही होती हैं। देखना-सूँघना, सुनना-बोलना, विचार करना शिरःस्थित इन्द्रियोंका ही कार्य है। हस्त-पादोदरादि इन्द्रियोंके विकृत हो जानेसे अथवा कट जानेसे भी मनुष्य यथाकथंचित् निर्वाह कर लेता है, पर सिर कटनेसे वह जीवित नहीं रह सकता । वैसे ही हिमालय पृथ्वीका सर्वोत्तम परमावश्यक 'शिरोदेश' है।

हिमालयसे निकलनेवाली 'सुवर्णकौशिकी,' 'ताम्रकौशिकी,' 'कृष्णा', 'गण्डकी' आदि नदियोंके आसपासमें रहनेवाले ग्रामीण स्त्री-बाल-बच्चे नदीकी रेतीसे बालुओंको चालकर सुवर्णके परमाणु एकत्र करते हैं। इस प्रकार सुवर्णको गर्भमें धारण करनेवाला यह पर्वतराज हिमालय एक प्रकारसे द्वितीय **'हिरण्यगर्भ'** ही है, जो प्रसिद्ध वैदिक मन्त्रके अनुसार (**भूतस्य**) समस्त भूत-प्राणियोंका (**एकः पतिः**) एकमात्र पितास्वरूप, मालिकस्वरूप, संरक्षकस्वरूप (**आसीत्**) बन गया था । (**स पृथ्वीं दाधार**) उस हिमालय पर्वतने पृथ्वीसे लेकर स्वर्गलोकतकको, जिसे 'त्रिविष्टप' भी कहते हैं, धारण किया है। (**कस्मै देवाय**) पृथिवीका शिरोभाग मुकुटमणि देवतात्मा हिमालय नामक किसी देवताको,* हम (**हविषा**) हविहवनीय पूजनीय समस्त पदार्थसे (**विधेम**) विधिपूर्वक पूजा करते हैं, हवन करते हैं। 'वराहपुराण'में कहा है—

'शिखरं वै महादेव्या गौर्यास्त्रैलोक्यविश्रुतम् ।'

(अ० २१५)

महादेवी गौरी (गौरीशंकर या पार्वतीपर्वत)की स्वर्ग-मर्त्य-पाताल तीनों लोकमें ख्याति है। इससे पूर्ववर्ती सर्वोच्च पर्वतशिखरको नेपाली भाषामें 'अभिसारमा' कहते हैं। इसी पर्वतको संस्कृतमें 'शंकरपर्वत' कहते हैं । दोनों पर्वतोंका एक साथ समष्टि नाम 'गौरी-शंकर' पर्वत है । इसी पर्वतके नीचे समतल भूभागमें (स्तनकुण्ड†) दुग्धकुण्ड है। उसी दूधकुण्डसे उद्गम लेकर 'दूधसी' नदी प्रवाहित होती है । उस कुण्डमें जाकर श्राद्ध करे। इससे पितरोंका उद्धार तथा पुत्र-पौत्रोंका सुधार हो जाता है। यह 'दूधपोखरी' नामकी 'पुष्करिणी' 'नामचे'से कुछ ही दूरपर है।

मनु महाराजने पाश्चात्योंके लिये कहा था—

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः ।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणानामदर्शनात् ॥

(मनु० १० । ४३)

दैव-वशात् इन्हें कालान्तरमें जब पूर्व-पूर्वज उपभुक्त शुद्ध जलवायुका स्मरण आता है और वह जब विज्ञानके उपकरणोंसे भी उपलब्ध नहीं होता है तब विश्वकी तथा पाश्चात्य मानवजाति पुनः हिमालयमें आना प्रारम्भ करती है, कहा भी है—

कौशिकान् प्रतिपद्यन्ते देशान् क्षुद्भयपीडिताः ।

(लिङ्गपु० ४० । ३७)

कलियुगमें जब अन्यत्र निस्तार न होगा तो क्षुधा-तृषासे व्याकुल मनुष्य कौशिकीयुक्त प्रदेश हिमालयमें पुनः जाना आरम्भ करेंगे।

* अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः । इत्यादि कु० सं०

† स्तनकुण्डे उमायास्तु यः स्नायात् खलु मानवः । इत्यादि (वराह २१५ । १००)

वराहपुराणमें कहा गया है—

गौर्यास्तु शिखरं पुण्यं गच्छेत् सिद्धनिषेवितम् ।
तस्य सालोक्यमायाति दृष्ट्वा स्पृष्ट्वाऽभिवाद्य च ॥

काष्ठमण्डप* (काठमाण्डू) नेपालकी राजधानी है। राजधानीसे पूर्व ३ नम्बरमें 'ओखलडुंगा' जिला है। उसी क्षेत्रमें 'नामचे बाजार' है। इसी क्षेत्रमें २९१४० फीट ऊँचे पर्वतसे 'दूधकोसी' (दुग्धकौशिकी अथवा 'पयस्विनी') नदी निकलती है। इसके पश्चिम भागमें रामचाप (रामेछाप) पूने जिला पड़ता है। वर्तमान समयमें उस क्षेत्रका जनकपुर अंचल नामकरण हो गया है। इसी हिमालयके उत्तरी भागका उच्चतम पर्वत-शिखर वराहपुराणमें गौरीपर्वत (गौरा पार्वता) नामसे प्रसिद्ध है।

१८५७ सन्में जार्ज एवरेस्टने सर्वप्रथम इस पर्वतका सर्वेक्षण किया था। उसके बाद जार्ज एवरेस्टने उस पवित्र शंकर पर्वतका नाम बदलकर अपने नामपर 'Mount Everest' रख दिया।

जनकपुरधामसे ५० मील उत्तर 'ठोसे मेगजेन' नामका बाजार है। वहाँ १९ मील लम्बा 'लौहमय' पर्वत है, जहाँ सर्वत्र लोह-पाषाण आदि धातुओंकी खानें भरी पड़ी हैं। आस-पासके ग्रामीण उसी फौलादसे कृषि-उपयोगी औजार (कुदाल, फाल, हर-हसिया-खुकुरी) बनाते हैं। उसी पर्वत-शृङ्खला-उच्चस्थलमें 'जटापोखरी' नामक षट्‌कोणाकार डेढ़ मील लम्बी एक पुष्करिणी है। तालाबके मध्यभागमें भूतभावन भगवान् नीलकण्ठ श्रीमहादेवके स्फटिक-जैसे शुक्लवर्ण विशालरूपका दर्शन होता है। मूर्तिके सिरमें लम्बी-लम्बी जटाएँ हैं। यहाँका जल अत्यन्त स्वच्छ और अथाह है। कहते हैं 'कालकूट-विषपान करके विषमत्त होकर शंकरजीने यहाँ विश्राम किया था। श्रावणी पूर्णिमाको यहाँ प्रतिवर्ष मेला लगता है।

वराहपुराणमें वर्णित 'श्वेतगङ्गा', 'गोकुलगङ्गा,' 'हिमगङ्गा' अब क्रमशः 'खिम्तिखोलो', 'चरगे खोलो', 'लिखु खोलो' नामसे प्रसिद्ध हैं। ये सब नदियाँ उसी पर्वतसे निकलती हैं।

पूर्वी नेपालमें विराटनगर धरानके पास 'सुवर्ण-कौशिकी' या कोकानदीके संगमपर 'वराहक्षेत्र' नामका तीर्थस्थल है। इसमें प्रसिद्ध 'आदि-वराह', 'भू-वराह' आदि वराहकी चार मूर्तियाँ विद्यमान हैं। लोग इन सभी मूर्तियोंको प्राचीन वैदिक युगमें स्थापित बताते हैं। उसके पास एक पर्वत-शृङ्खला पत्थरोंका भृगु-(भीर)-शिखर है। उसमें अपने-आप बनी एक कोकपक्षीकी मूर्ति है, उससे कुछ दूरपर वराहकी मूर्ति है। यहाँ पृथ्वी वराहके दाँतमें नहीं है, किंतु वह वराहके कन्धा कुहरपर उठी दीखती है।

नेपालकी राजधानीके पास 'धूम्रवराह' नामक एक मुहल्ला है। उसमें 'धूम्रवराह'की मूर्ति है। मन्दिर छोटा-सा है। उसमें एक प्राचीन शिलापत्र है, जिसपर—
'विष्णोर्बाहुलताकफोणिशिखरेणोद्धारिता मेदिनी'—
लिखा है। वराहपुराण एक प्रकारसे हिमालय-पर्वतका ही इतिहास है। हिमालय-पर्वतका अनुसंधान करना तथा उसका सच्चा इतिहास लिखना समाजमें उसका महत्त्व बोध कराना अब भी शेष है।†

---

* 'स्वयम्भू-पुराण' तथा 'Wright' के 'History of Nepal' में काठमाण्डूका 'काष्ठमण्डप' नाम आता है। राजा 'गुण-कामदेव'ने इस नगरकी ७२३ ई०में स्थापना की थी।

† 'हिमालय पर्वत', 'नेपाल' तथा वराहपुराण १४५, २१५ अध्यायोंसे सम्बन्धित तीर्थोंके विषयमें विशद वर्णन 'स्वयम्भू-पुराण', राइट (Wright)के 'History of Nepal' के अतिरिक्त बौद्ध-ग्रन्थोंमें भी प्राप्त होता है। इनका एकत्र संग्रह Hodgson के 'Literature and Religioun of Buddhist', तथा Monier Williams 'Rhys Dayvids के 'Buddhism' में भी प्राप्त होता है। इनमें 'विष्णुमती', 'वाग्मती' आदि नदियों तथा इनके तटवर्ती प्रसिद्ध तीर्थोंका भी उल्लेख है। 'वराहपुराण'में 'वाग्मती'की तुलनामें गङ्गाकी उपमा दी गयी है और कहा गया है—

हिमाद्रेस्तुङ्गशिखरात्प्रोद्भूता वाग्म(ग्म)ती नदी। भागीरथ्याः शतगुणं पवित्रं तज्जलं स्मृतम् ॥
(वराहपुराण २१५। ५०–५१)

मध्यकालीन कवियोंकी दृष्टिमें भगवान् वराह

(लेखक—पं० श्रीललिताप्रसादजी शास्त्री)

महाकवि कालिदासने अपने परमप्रसिद्ध 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' नाटक २ । ६ के '**विश्रब्धः क्रियतां वराह-ततिभिर्मुस्ताक्षतिः पल्वले**'में 'वराह' शब्दका प्रयोग वन्य वराहके ही लिये किया है; पर वह मम्मट (काव्यप्रकाश वामनी, पूना, पृष्ठ ३७३ *), 'भोजराज'(सरस्वती कण्ठा-भरण, पृष्ठ ५१), 'व्यक्ति-विवेक' 'साहित्यदर्पण' आदिके निर्माताओं तथा अलंकार-विवेचक-शेखरोंके लिये शिवजीका 'पिनाक' धनुष बन गया, जिसपर इन लोगोंने अपने-अपने ग्रन्थोंमें विभिन्न दृष्टिकोणोंसे विशद विवेचन किया है। इसी प्रकार उन्होंने 'रघुवंश' ७ । ५६में—

'निवारयामास महावराहः
कल्पक्षयोद्वृत्तमिवार्णवाम्भः ।'

'महावराह'का प्रयोग आदिवराह यज्ञ-पुरुष भगवान् नारायणके लिये किया है । पर यहाँ ऐतिहासिकोंके लिये मानो ऊपरसे आकाश टूट पड़ा है । इसमें लोगोंने गुप्त-साम्राज्यकी विजयपताका आदिकी अनेक कल्पनाएँ की हैं । (देखिये प्रस्तुत अङ्क, पृष्ठ ४०५) ।

रघुवंश १३ । ८में स्वयं भगवान् श्रीराम 'वराह-अवतार'के सम्बन्धमें अपना भाव इन शब्दोंमें व्यक्त करते हैं—

रसातलादादिभवेन पुंसा भुवः प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः ।
अस्याच्छमम्भः प्रलयप्रवृद्धं मुहूर्तवक्त्राभरणं बभूव ॥

'श्रीनन्दर्गीकर'के अनुसार रघुवंशके सर्वाधिक प्राचीन टीकाकार हेमाद्रि इस श्लोककी टीकामें लिखते हैं—

'अस्य अब्धेः अच्छं-प्रलयप्रवृद्धम् अम्भः, मुहूर्तं वक्त्राभरणं बभूव । त्रिष्वगाधात् प्रसन्नोऽच्छः' (अमरकोश) । आदिभवेन-वराहरूपेण विष्णुना रसातलात् प्रयुक्ता उद्वहनक्रिया यस्याः तस्याः ।'

'रघुवंश' के प्रसिद्ध व्याख्याता आचार्य मल्लिनाथका यहाँ कथन है—

—अत्र विवाहक्रिया च व्यज्यते। वक्त्राभरणं—लज्जा-रक्षणार्थं मुखावगुण्ठनं बभूव । तदुक्तम्—उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।' (तैत्तिरीयारण्य० १०।३०।१)

अर्थात् आदिवराहने पृथ्वीका जब उद्धार कर उससे परिणय किया तो समुद्रका बढ़ा हुआ जल क्षण-भरके लिये पृथ्वीका अवगुण्ठन बन गया । यहाँ 'वराहावतार' की सर्वप्रथमताके संकेतके साथ ही कालि-दासकी थोड़ी शृङ्गारिक भावना भी अभिव्यक्त हुई है ।

इसी प्रकार महाकवि 'जयदेव'ने अपने गीत-गोविन्दके—'**वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना । शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना ॥** (१ । २ । ३)में जो वराहको लक्ष्यकर स्तुति की, ठीक उसीके आधारपर कविवर 'भारतेन्दु'ने—

'कै वाराह विशाल-वदन कै दाढ़ माहि इक ।
वक्रदन्त द्युतिमन्त अन्तकारक तम दश दिक ॥' आदि

की कल्पना कर डाली ।

सूरदासजीने भी—

हिरण्याक्ष तब पृथीकौं, लै राख्यो पाताल ।
ब्रह्मा बिनती करि कह्यौ, दीनबंधु गोपाल ॥
तुम बिनु द्वितीया और कौन, जो असुर संहारै ।
तुम बिनु करुनासिंधु और को पृथी उधारै ॥

---

* (क) आचार्य 'मम्मट' इसमें कारक-दोष दिखलाकर—

'विश्रब्धाः रचयन्तु सूकरवरा मुस्ताक्षतिम्' ऐसा पाठ चाहते हैं तो इनके ही नागेश-भट्ट आदि टीकाकार—"सूकरपदस्य ग्राम्यत्वाद्बन्धशैथिल्याच्च—'विश्रब्धाः कुरुतां वराहनिवहो मुस्ताक्षतिम्' इत्यादि पाठ चाहते हैं (द्रष्टव्य—काव्य-प्रकाश ७ । २५०की उद्योत एवं बालबोधिनी व्याख्याएँ)

(ख) द्रष्टव्य—'सरस्वती-कण्ठाभरण', जैनप्रभाकर प्रेस, पृष्ठ ५२ ।

तब हरि धरि वाराह बपु ल्याए पृथी उठाई।
हिरण्याक्ष लेकर गदा तुरतहिं पहुँचे जाई॥
असुर क्रुद्ध ह्वै कह्यौ, बहुत तुम असुर संहारे।
अब लैहों वह दाऊँ, छाड़िहौं नहिं बिनु मारे॥
यह कहिकै मारि गदा, हरिजू ताहि सँभारि।
गदा-युद्ध तासौं कियो असुर न मानै हारि॥
तब ब्रह्मा करि विनय, कह्यौ हरि, याहि सँहारो।
तुम तो लीला करन, सुरनि-मन पर्‍यौ खँभारो॥
मार्‍यौ ताहि प्रचारि हरि सुर मन भयौ हुलास।
सूरदासके प्रभु बहुरि गए बैकुण्ठ निवास॥
(सूरसागर ३। ३९२)

इन शब्दोंमें वराहावतार एवं हिरण्याक्ष-वधका बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने अपनी 'विनयपत्रिका'में 'निगमागम-सारभूत'—

'सकल यज्ञांस-मय उग्र विग्रह क्रोड मर्दि दनुजेस उद्धरन उर्वी' (विनय० ५२। २)

लिखा तो इसपर पीयूषकार आदिने कई पृष्ठ रँग डाले। मानसमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने—बराहँ (२। २९६। ४), बराह (१। १२१। ७), (बराहा—२। २३५। ३), बराहु (१। १५६), बराहू—(१। १५५। ५) आदिमें सात बार 'वराह' शब्दका प्रयोग किया है। एक जगह—

'मीन कमठ सूकर नरहरी'में—

'सूकर' शब्द भी अवतारार्थमें प्रयुक्त है।

अवतार-अर्थमें 'धरि बराहबपु एक निपाता' (रा० च० १। १२२। ४)में परम सात्त्विकरूपमें वराह अवतारका वर्णन है तो 'भरत बिबेक बराहँ बिसाला' (रा० च० २। २९६। ४) की 'परम्परित-रूपक'के रूपमें कल्पना उससे भी अद्भुत है। 'मानसपीयूष'कारने यहाँ सभी शब्दोंपर प्रायः २० प्राचीन टीकाकारोंके मत उद्धृत किये हैं, जो अत्यन्त हृदयाह्लादक एवं मननीय हैं।

वस्तुतः 'श्रीमद्भागवत' १। २। ११के—**'ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते'**—से 'विशुद्धबोध' ज्ञान ही परमात्मा 'श्वेतवराह' है। निर्गुण ब्रह्म भी यह 'विवेक' या 'वराह' ही है—

ज्ञानमेकं पराचीनैरिन्द्रियैर्ब्रह्म निर्गुणम्।
अवभात्यर्थरूपेण भ्रान्त्या शब्दादिधर्मिणा॥

वही शब्दधर्मी ज्ञान अर्थरूपसे विश्वप्रपञ्चके रूपमें प्रकट है।

यह विशुद्ध बोधरूपी श्वेतवराह समस्त पापोंके क्षयपूर्वक कुण्डलिनी-जागरण आदिके द्वारा प्रकट होता है—**'ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात् पापस्य कर्मणः।' 'तद्धास्य विजज्ञौ।'** यही सबका प्रकाशक या अवभासक भी है—

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

(मुण्डकोपनि० २। २। १०, कौषीतकिब्राह्मणोप० २। ५। १५, ब्र० सू० शा० भा० १। १। २४, ३। २२ आदिमें उद्धृत) ये ही गोस्वामी तुलसीदासजीके भगवान् राम हैं—

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू॥
बिषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥

तथा—

'ग्यान अखंड एक सीताबर'।

'वदन्ति तत्तत्त्वविदः तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्'।

वस्तुतः इसी दृष्टिसे ज्ञानमोक्षप्रद शुद्ध ब्रह्म भगवान् वराह विधिपूर्वक परमाराध्य हैं।

पुराण-परिवेशमें वराहपुराण

(लेखक—आचार्य पं० श्रीराजबलिजी त्रिपाठी, एम० ए०)

पुराण प्राच्य आर्य-संस्कृतिकी निधि है। इतिहास-पुराणोंमें अनुस्यूत पूर्वपरम्परामें प्रचलित आख्यान और उपाख्यानोंके* भीतर निहित जिन रहस्यात्मक तत्त्वोंका सरल, पर विशद विवेचन किया गया है, वे क्रान्तदर्शी ऋषि-मुनियोंद्वारा अन्विष्ट अथच चिन्तित वास्तव-तथ्य हैं—यह निःसंदिग्ध है। पुराणोंमें जो कुछ है, वह सब ज्ञातव्य है, श्रद्धेय है, मन्तव्य है। पुराणोंसे साधारण जनताका जितना उपकार हुआ है और हो सकता है, उतना हमारे अन्य सांस्कृतिक ग्रन्थोंसे नहीं। वेदोंकी अगमता, शास्त्रोंकी दुरूहता और स्मृतियोंकी जटिलताको पीछे कर उनसे सारतत्त्व निकालना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य ही है; और उनकी अगमता, दुरूहता और जटिलतासे भिड़कर स्वारस्य निकालना लोहेके चनेसे स्वाद निकालनेके समान है। फिर भी इतिहास-पुराणोंमें उन रहस्यात्मक तत्त्वोंका विश्लेषण अथवा विस्तार होनेसे उन्हें सुगमतया आत्मसात् करनेका अनुभव हमारी संस्कृतिमें व्याप्त हो चुका है। निदान, स्वयं भगवान् व्यासदेवने श्रीमद्भागवत (१।४।२९)में कहा है कि वेदोंका यथार्थ महाभारतके द्वारा दर्शित किया गया है।—

'भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः।'

इसी प्रकार महाभारत (१।१।८६)में कहा गया है कि इस महाभारतरूपी पूर्ण चन्द्रमाने श्रुतियोंकी चाँदनी छिटका दी है—ज्योत्स्ना प्रकाशित कर दी है और इसने मनुष्योंकी बुद्धिरूपी कुमुदोंको प्रकाशित कर दिया है —

पुराणपूर्णचन्द्रेण श्रुतिज्योत्स्नाः प्रकाशिताः।
नृबुद्धिकैरवाणां च कृतमेतत्प्रकाशनम्॥

छान्दोग्य० (७।१।२)में **'इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्'** तथा श्रीमद्भागवत(१।४।२९)में **'इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते'** कहकर उक्त तथ्यका समन्वय प्रदर्शित किया गया है।

बात यह है कि वेदोंने विश्वको कल्याण-पथ दिखला भर दिया, परंतु पुराणोंमें पथ-प्राप्तिकी पद्धति धर्माचारको प्रशस्त और प्रसिद्ध (प्रकाशित) किया—

वेदेन दृष्टो जगतां हि मार्गः
पौराणधर्मोऽपि सदा वरिष्ठः।

इसी तत्त्वपर महाभारतकारने आदिपर्व (१।२६७) में—**'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्'**—इतिहास और पुराणोंके द्वारा वेदोंका विस्तार—विवेचन करना चाहिये; इसका सिद्धान्त निर्दिष्ट कर दिया है।

पुराण और वेदोंमें परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। वेदोंमें सूक्तोंद्वारा देवताओंकी स्तुतियाँ हैं तथा यत्र-तत्र तत्त्व-जिज्ञासाके बोधके लिये आख्यायिकाओं अथवा उपाख्यानोंकी भी झलक मिलती है। वेदोंके 'ब्राह्मण-भागमें' यज्ञादिके संदर्भमें कहीं-कहीं कथा-पुराणका प्रसङ्ग संक्षेपमें आया है, परंतु मन्त्रोंके देवों तथा कथा-पुराणके तथ्योंको सुचारुताके साथ विशदता देनेका काम पुराणोंने ही किया है। उसके परिप्रेक्ष्यमें ही हमें पौराणिक वस्तु-विषयको देखने, सुनने और समझनेका प्रयत्न करना चाहिये। इस प्रकार पुराणोंकी सामान्य प्रवृत्ति ज्ञात कर ही वराहपुराणकी विशेष विवृति समझी जा सकती है। पुराणोंके धर्मग्रन्थ होनेसे सनातनधर्मकी यह परिभाषा परिनिष्ठित हो जाती है कि

* स्वयं दृष्टार्थकथनं प्राहुराख्यानकं बुधाः। श्रुतस्यार्थस्य कथनमुपाख्यानं प्रचक्षते॥
(वि० पु० ३।६।१५ की टीकामें श्रीधरस्वामी)

'श्रुतिस्मृतिपुराणप्रतिपादितो धर्मः सनातनधर्मः।' सनातनधर्मका कर्मविपाक स्वर्ग और नरककी पौराणिक उपवर्णनामें अद्वितीय विश्वजनीनता प्राप्त कर चुका है। पौराणिक स्वर्ग और नरकके वर्णन स्पृहाके विषय हैं।

पुराणोंने आख्यान, उपाख्यान और कथाओंके आश्रयसे बिखरी वैदिक तत्त्वराशिको समेटा-सँवारा है। उनसे हमें तत्त्वों, तात्त्विक विषयों और सामाजिक, वैयक्तिक आचार-विचारोंकी दिशाका निर्देशन मिलता है। फलतः हमारी संस्कृतिकी ये अनमोल निधियाँ सिद्धान्त और व्यवहारकी तुलापर समान मानवाली सिद्ध होती हैं। पुराणोंने व्यवहारसंहिताके (धर्मशास्त्रीय) नियमोंको सटीक दृष्टान्त भेंट किये हैं, जो हमारे पथ-प्रदर्शक हैं। उनकी प्रकृत प्रवृत्तिका मूल उद्देश्य यही है। इनमें सिद्धान्तोंका विवेचन व्यवहारोंके आधाररूपमें हुआ है।

पुराणोंमें प्रतिष्ठित चार वर्ण और चार आश्रमसे विभूषित सनातनधर्मकी प्रशस्त विशेषताओंमें सत्य, ज्ञान और दयाके विशिष्ट योगका विशेष महत्त्व है।

श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तो वर्णाश्रमविभूषितः।
सत्यज्ञानदयोपेतो धर्मः श्रेष्ठः सनातनः॥
(म० मा०)

इनका जैसा सुष्ठु तथा सरल निदर्शन पुराणोंमें उपलब्ध है, वैसा अन्यत्र कुत्रापि नहीं। अतः यह निर्विवाद है कि पुराण सनातनधर्मके मौलिक धार्मिक-तत्त्व-ग्रन्थोंका व्यापक प्रतिनिधित्व करते हैं। किंतु पुराणोंकी वर्णन-पद्धतिकी अवगतिके लिये हमें उनकी शैलीका परिचय कर लेना होगा। तभी हम पुराणोंके प्रकृत रहस्यको समझ सकेंगे। इसके समझे बिना पौराणिक रहस्योंको तत्त्वतः समझना सम्भव नहीं है। अतः अनुसंगतः उनकी अल्प चर्चा यहाँ अपेक्षित हो जाती है।

पुराण प्रायः समाधि-बोध्य दार्शनिक विषयोंका वर्णन अन्यापदेशात्मक शैलीसे करते हैं, यथा—धर्माधर्मका सूक्ष्म निर्णय, आत्मा, प्रकृति और कर्मके स्वरूपका निर्वचन इत्यादि। उदाहरणके लिये भागवतादि पुराणोंमें गुम्फित गज-ग्राहके दिव्य सहस्र वर्षोंके युद्धका अन्यापदेशात्मकरूपमें वर्णन उपन्यस्त किया जा सकता है, जो 'जीव' और मोहका शाश्वतिक संघर्ष है। यह समाधिभाषाके आप्तग्रन्थ श्रीमद्भागवतमें और वामनपुराण, विष्णुधर्मोत्तर आदिमें तो अनुस्यूत है ही, प्रकृतपुराणके १४४वें अध्यायमें भी है। किंतु जब समाधिगम्य आध्यात्मिक और आधिदैविक रहस्यको रूपकालंकारमें समेटकर प्रदर्शित करते हैं एवं श्रोताओंकी मति सत्य-तत्त्वमें पहुँचा देते हैं तो वहाँकी उस भाषाको लौकिकी भाषा कहना चाहिये। उदाहरणार्थ—हम जगज्जननीके जन्म, कर्म, विवाह, विकासादिके वृत्तान्तको पुराणोंमें गुम्फित होना कह सकते हैं। जगदम्बा-तत्त्व वस्तुतः अलौकिक एवं समाधिगम्य विषय है, पर पुराणोंमें मध्यमाधिकारियोंके लिये इसे लौकिक पद्धतिसे निरूपित किया गया है। वर्णनके मध्यकी तात्त्विक सूचनाएँ अलौकिकताका (समाधि-गम्यताका) संकेत करती जाती हैं। मनोयोगसे पुराणोंका अध्ययन करनेवालोंको विशेषणों और स्तुतियोंमें उनका वहाँ निदर्शन स्पष्ट प्रतीत होता जाता है। तृतीया परकीया भाषा वहाँ प्रयुक्त हुई है, जहाँ समाधिभाषा और लौकिक भाषाकी पकड़के विषयोंको दृढ़ करनेके लिये भिन्न-भिन्न युगों अथवा भिन्न-भिन्न कल्पोंकी घटनाएँ गाथारूपमें* अभिव्यक्त की गयी हैं। ऐसे स्थलोंपर परमार्थतः परकीयाभाषा-वर्णन ही कहना उचित है। ऐसी गाथाएँ न तो लौकिक कथाएँ हैं और न इति-वृत्तात्मक 'इतिहास' ही। इसलिये दोनों दृष्टियोंसे गाथाओंका मर्म नहीं सूझ सकता। इसके लिये पर-

* १—'गाथास्तु पितृपृथिवीप्रभृतिगीतयः।' (विष्णुपुराण ३।६।१५ की टीकामें श्री श्रीधरस्वामी)

कीया भाषाकी दृष्टि चाहिये। उनके मर्मकी दिशा भगवान् व्यासकी बहुशः व्यवहृत निम्नाङ्कित पङ्क्तिसे संकेतित है—

'अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।'
(श्रीवि० धर्म० १ । १९३ । १)

इस विषयमें भी यह एक पुराना इतिहास—इति (ह) आस—सुना जाता है कि ऐसा था, उद्धृत किया जाता है।

'पुरातन'का तात्त्विक मर्म उपर्युक्त पद्धतिसे पुराभवं-पुराणम् अथवा पुरापि नवं पुराणम्[१] ही समझते और समझाते हैं[२]। इसीलिये वायुपुराणमें कहा गया है।

'यस्मात्पुरा ह्यनतीदं पुराणं तेन तत्स्मृतम्।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥'
(वायुपु० १ । २०३)

अतः पुराण पुरानी परम्पराकी बातें कहते हैं; इसलिये इन्हें 'पुराण' कहते हैं। जो लोग इसकी इस निरुक्ति (निर्वचन) को जानते हैं, वे सभी पापोंसे छूट जाते हैं—मुक्त हो जाते हैं। इसीलिये पुराणोंकी महिमा वेदोंसे भी बढ़कर और अद्वितीय है[३]। ऐसे विश्लेषित महिमामय पुराणोंके परिवेशमें गणनागत बारहवीं संख्यावाले वराहपुराणकी कतिपय विशेषताओंकी विवेचना नहीं, चर्चा—अपेक्षित प्रकृत शेष विषय है। अस्तु!

'मत्स्यपुराणके अनुसार, महावराहके माहात्म्यको अधिकृत कर विष्णुभगवान्ने पृथ्वीसे जो कुछ कहा है, वही वराहपुराण कहा जाता है[५]। उसीके अनुसार उसकी श्लोकसंख्या चौबीस हजार होनी चाहिये थी[६]। और नारदपुराणके अनुसार विष्णुके माहात्म्यवाले उस (वराहपुराण) के दो भाग—(१) पूर्व और (२) उत्तर होने चाहिये। गोकर्ण-माहात्म्यतक पूर्वभाग और पुलस्त्य तथा कुरुराजके संवादमें पौष्कर आदि सभी तीर्थोंका पृथक्-पृथक् विस्तारसे वर्णन प्रभृति उत्तरभागमें दर्शित हैं[७]। किंतु, खेद है कि सम्पूर्ण श्लोक और पृथक्-पृथक् अथवा साथमें भी दो भाग नहीं मिलते।

१—'पुराण' की अमरकोषकी प्रसिद्ध टीका रामाश्रमीमें ये व्युत्पत्तियाँ हैं—

पुराभवम् ('सायंचिरम्—' पा० सू० ४ । ३ । २३) इति टयुटयुलौ। पूर्वकालैक—(२ । १ । ४९) इति सूत्रे निपातनात्तुड्भावः। यद्वा—पुरापि नवं पुराणम्। पुराणप्रोक्तेषु—'(४ । ३ । १०५) इति सूत्रे निपातितम्। यद्वा—पुरा अतीतानागतावर्थावर्णीत। 'अण् शब्दे(भ्वा० प० से०) पचाद्यच्।'

पुराणको 'पञ्चलक्षणम्' भी कहते हैं—पुराणं पञ्चलक्षणम्। (अ० १ । ६ । ५)

२—श्रृणुष्वाहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम्। प्रोक्तां ह्यादिपुराणेषु ब्रह्मणाऽव्यक्तमूर्तिना ॥
(वराहपु० १ । २०)

तथा—

श्रृणुष्वादिपुराणेषु देवेभ्यश्च यथाश्रुतम्। (पद्मपु० १ । ३९ । ११)

३—नारदीयके अनुसार—

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने। वेदाः प्रतिष्ठिता देवि पुराणेनात्र संशयः ॥

४—वराहपुराणके ११२वें अध्यायमें पुराणोंकी गणना है। उसके प्रसङ्गमें भी यह पुराण १२वाँ है।

५—महावराहस्य पुनर्माहात्म्यमधिकृत्य च। विष्णुनाऽभिहितं क्षोण्यै तद्वाराहमिहोच्यते ॥
(मत्स्यपु० ५३ । ३८)

६—मानवस्य प्रसङ्गेन कल्पस्य मुनिसत्तमाः ॥ चतुर्विंशतिसाहस्रं तत्पुराणमिहोच्यते। (वही ३ । ३)

७—ब्रह्मा ने सनत्कुमारसे कहा है—

पुलस्त्यो वक्ष्यते शेषं यदतोऽन्यन्महामुने। सर्वेषामेव तीर्थानामेषां फलविनिश्चयम् ॥
कुरुराज पुरस्कृत्य मुनीनां पुरतो वने। (वराहपु० २१७ । ४ । ५)

उपलब्ध पोथियोंमें १० हजारसे कुछ ऊपर श्लोक[1] तथा २१७ अध्याय हैं। इनमें उक्त संवाद और पौष्कर पुण्यकर्मादिका वर्णन नहीं मिलता। लगता है, पूर्वार्द्ध ही उपलब्ध है—उत्तरार्द्ध नहीं। अन्तिम उपसंहाराध्याय अर्वाचीन है। जिसे काशीके किन्हीं श्रीविश्वेश्वर माधव भट्टने संकलित किया है। हाँ, परम्परामें वराहपुराणसे संदर्भित चातुर्मास्य, त्रयम्बक, भगवद्गीता, वेंकटगिरि, विमान, व्यतीपातके माहात्म्यवाली एवं मृत्तिका-शौच-विधान-प्रभृतिकी छोटी-छोटी पुस्तकोंके श्लोकोंको वराहपुराणाङ्ग मान लेना चाहिये। अनुमान होता है कि उत्तर भाग लुप्त है, उसीमें ये उपनिबद्ध रहे होंगे।

अन्तरङ्ग दृष्टिसे यह पुराण पद्मपुराणके अनुसार (प्रकृतिसे) सात्त्विक पुराणोंमें परिगणित है[2]। इसके वक्ता स्वयं भगवान् वराह हैं और मुख्य श्रोत्री भगवती पृथ्वी हैं, जिन्हें उन्होंने अनन्तजलौघसे उद्धृत किया है। यह भगवत्-शास्त्र है।

पहले समयमें भगवान् नारायणके द्वारा एकार्णवकी अनन्त जलराशिमें निमग्न पृथ्वीके उद्धार किये जानेपर पृथ्वीने उनसे विश्वकल्याणार्थ अनेक प्रश्न किये हैं और उन्होंने पृथ्वीके प्रश्नोंके सम्यक् समाधान प्रस्तुत किये हैं। ये ही प्रश्नोत्तर प्रकृत वराहपुराण है। प्रश्नोत्तरक्रममें पुराणोंके पञ्चलक्षणोंके[3] अनुसार न्यूनातिरिक्त रूपमें पुराण-विषयोंके सरल और रोचक वर्णन हुए हैं। फिर भी तिथि, पर्वों और तीर्थ-माहात्म्योंके वर्णनमें विस्तार तथा अतिरञ्जकता विशेष है। पुराणके आरम्भमें ही पृथिवीको भगवान्के उदरमें विश्वब्रह्माण्डका दर्शन एक अद्भुत घटना-वैशिष्ट्य है।

'गीता-माहात्म्य' यद्यपि प्रकृतपुराणमें अनुपलब्ध है, फिर भी हम उसे उत्तरभागसे संदर्भित और लुप्तांशका एक भाग मानते हैं। गीता-माहात्म्यके उपक्रमसे प्रकृत मान्यता स्पष्ट हो जाती है। उसके दो श्लोक ये हैं—

धरा—भगवन् ! परमेशान भक्तिरव्यभिचारिणी।
प्रारब्धं भुज्यमानस्य कथं भवति हे प्रभो॥
विष्णुः—प्रारब्धं भुज्यमानो हि गीताभ्यासरतः सदा।
स मुक्तः स सुखी लोके कर्मणा नोपलिप्यते॥

पृथ्वीने पूछा—भगवान् परमेश्वर ! जन्म लेकर अपने प्रारब्ध कर्मका भोग करनेवाले (मनुष्य)को आपकी अनन्य भक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है !'

श्रीविष्णुने कहा—'प्रारब्धका भोग करनेवाला यदि गीताभ्यासमें लगा हुआ है तो वह निष्काम कर्म-द्वारा हमारी अनन्य भक्ति ही करता है अतएव वह लोकमें सुखी रहता है तथा लौकिक कर्मोंसे लिप्त नहीं होता है; वह सदा मुक्त है।'

माहात्म्यकी मार्मिकता और महत्ता भी अन्तर्दर्शनीय है। यहाँ हम नमूनेके लिये एक श्लोकको उद्धृत कर उसकी व्याख्या कर रहे हैं—

गीता मे हृदयं पृथ्वि ! गीता मे चोत्तमं गृहम्।
गीताज्ञानमुपाश्रित्य त्रींल्लोकान् पालयाम्यहम्॥

'पृथ्वि ! गीता (श्रीमद्भगवद्गीता) मेरा हृदय है, गीता मेरा उत्तम गृह है। गीता-ज्ञानके ही सहारे मैं तीनों लोकोंका पालन करता हूँ।'

गीता १५। १५के—'**सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टः**'के और १८। ६१ के '**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति**'के अनुसार भगवान् सबके

१–एशियाटिक सोसाइटी कलकत्तेकी प्रकाशित पोथी में १०,७०० तथा वेंकटेश्वर प्रेस बंबईवालीमें १०,५११ हैं।

२–वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवत शुभम्। गारुडं च तथा पाद्मं वराहं शुभदर्शने।
सात्त्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि वै॥ (पद्मपु० २६। २-३)

३–सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥ (वराह० २। ४)

हृदयमें रहते हैं, किंतु भगवान्‌के हृदयमें गीता रहती है। यही नहीं, अपितु गीता ही भगवान्‌का हृदय है। हृदय भक्ति या उपासनाका आधार-प्रतीक है। **'गृह्णाति—इति गृहम्'** कर्मका प्रतीक है। गीतामें भगवान्‌का कर्म निष्काम कर्म है और गीताका 'ज्ञान' निष्कामताके साथ मोक्ष-प्रद है, जिससे तीनों लोकोंका, पूरे विश्वका पालन-पोषण होता है। कर्म, भक्ति और ज्ञान संसारके प्रतिष्ठापक, प्रतिपालक और संचालक है। इनका समुदित रूप गीता-ज्ञान है।

प्रकृत छोटे-से श्लोकमें भगवान्‌ने श्रीमुखसे उपासना, कर्म और ज्ञानके त्रिकाण्डके सुन्दर समन्वयवाली गीताकी उपादेयताका कैसा सरल सुन्दर चित्रण कर दिया है—इसे गीता-त्रिवेणीमें गोता लगानेवाले मनोरमरूपमें देखते हैं। वराहपुराणकी यह एक विशेषता है।

इस प्रकार पुराणोंमें वराहपुराणकी महिमा विशिष्ट है। यह भगवच्छास्त्र है। इसके उपसंहारके २१७ वें अध्यायमें स्वयं ब्रह्माने सनत्कुमारसे कहा है—"यह माङ्गल्य, शिव और श्री—विभूति-जनक है। यह धर्म, अर्थ, काम और यशका साधक, पुण्यप्रद, आयुष्यप्रद और विजयदायी है। कल्याणकारक है। यह पापोंको दूर कर देता है और इसको सुन लेनेपर कभी दुर्गति नहीं होती है। जो मनुष्य इसको कहता अथवा सुनता है, वह सभी पापोंसे छूटकर परमगति प्राप्त करता है।"

उपर्युक्त ब्रह्म-माहात्म्य-दर्शनको उपजीव्य मानकर पौराणिक सूतजीने भी शौनकादि ऋषियोंसे सम्पूर्ण तीर्थों, दानों, अग्निष्टोम और आतिरात्रप्रभृति यज्ञोंसे भी बढ़कर इसके पठन-श्रवणका फल कहा है। भगवान् वराहके हवालेसे यह भी कहा है कि इसका पढ़नेवाला यदि अपुत्र है तो पुत्रवान् और यदि पुत्रवान् हैं तो सुपौत्रवान् हो जाता है। सुननेवालोंके लिये विष्णुके समान गन्ध-पुष्पादिसे इस पुराणका पूजन भी विहित है। पुराण-वाचककी भी यथाशक्ति पूजा करनी चाहिये। इससे मनुष्य सभी पापोंसे विनिर्मुक्त होकर विष्णुसायुज्य प्राप्त करता है।

फलश्रुतिकी ऊपर वर्णित बातोंसे निदर्शित हो जाता है कि 'ब्रह्म' से ब्रह्माण्ड' तक १८ पुराणोंके परिवेशमें बारहवें स्थानपर संनिविष्ट पूर्वापरके विषयोंको संक्षेपमें तत्त्वतः कुक्षिस्थ करनेवाला वराहपुराण भगवत्-शास्त्र होनेसे सर्वथा अद्वितीय है। इसका पठन-श्रवण और पूजन-अर्चन विश्वजनीन है।*

---

* इस लेखमें पृष्ठ ४४१ आदिपर 'परकीया' तथा 'अन्यापदेशात्मक' भाषा शैलीकी बात आयी है। अन्यापदेशका अर्थ अन्योक्ति है। श्रीकण्ठमत-प्रतिष्ठापक चतुरधिकशत-प्रबन्ध-प्रणेता 'अप्पय्य दीक्षित'के भ्रातुष्पुत्र 'नीलकण्ठ'के तथा उनके तीसरे पुत्र 'गीर्वाण दीक्षित'के विभिन्न 'अन्यापदेशशतक' प्रसिद्ध ही हैं। इनके कुछ श्लोक तो परस्पर मिलते भी हैं। 'भल्लटशतक' जिसका अधिकांश 'अप्पय्यजी'ने 'कुवलयानन्द' आदिमें उद्धृत किया है, ऐसा ही है। इनमें 'अन्योक्तियाँ' हैं, पाश्चात्त्य विचारकेलोग पुराणोंको भी myth (Purely fictitious, allegorical, Oxf. Dic. P. 798) या 'अन्यापदेश' युक्त भ्रमसे मिथ्या मान लेते हैं। पर 'शेषाचार्य'ने गीर्वाण दीक्षितके 'अन्यापदेशशतक'की भूमिकामें इस मतका खण्डन किया है। वस्तुतः पुराणोंकी गूढ़ता न समझनेके कारण ही भ्रम होता है; किंतु अब तो पाश्चात्त्य दार्शनिक, ऐतिहासिक विद्वान् भी उनकी कथाओंको रोचक होनेके साथ-ही-साथ सुगम, बोधगम्य एवं उपदेशात्मक मानने लगे हैं।

संक्षिप्त वराहकोश

यास्कीय 'निरुक्त' तथा 'महेश्वर', 'मेदिनीकर', 'हेम' आदिके कोशोंमें 'वराह' शब्दकी अनेक व्युत्पत्तियाँ; व्याख्याएँ की गयीं एवं अर्थ दिये गये हैं। 'निरुक्त, नैघण्टुककाण्ड' १। १०। १३ तथा 'नैगमकाण्ड' ५। ४। १के आरम्भमें 'वराह' शब्दकी प्रथम व्युत्पत्तिमें —वृञ् धातु (स्वादि, परस्मै०)में पाणि० ३। ३। ५९ सूत्र—'ग्रह, वृ, दृ, निश्चिगमश्च' इस सूत्रसे अकार प्रश्लेषसे निष्पन्न 'वर' अर्थात् जल लानेवाले 'मेघ' आदिको वराह कहा गया है। फिर वहीं श्रेष्ठ आहारवालेको भी वराह कहा गया है—**'वरमाहारमाहार्षीः इति च ब्राह्मणम्'** और इसके अनेक भेद तथा वराह अवतारादि अनेक अर्थ किये गये हैं—

'वाराहो नाणके किटौ।

मेघे, मुस्तौ, गिरौ विष्णौ वाराही गृष्टि भेषजे॥ मातर्यपि' (अनेकार्थ सं० ३। ८१२) आदिसे इसके वन्य-ग्राम-शूकर, श्रेष्ठ, वराहविष्णु, मेघ, वृषभ, भेंड़ा, वराह-व्यूह*, औषध, नागरमोथा, एक माप, इस नामका एक प्रसिद्ध राक्षस आदि अनेक अर्थ हैं*। वैसे इस नामके अनेक व्यक्ति, मुनि (महाभारत २। ४। १७), यक्ष तथा राक्षस भी हुए हैं। इस नामके एक 'कोश'-कार भी हुए हैं, जो 'शाश्वत-कोश'के रचयिताके सम-सामयिक थे। (Catalogus Catalogrum) पाणिनि 'उणादि-कोश' तथा 'व्याघ्रादिगण'में इसके उपमादिमें दूसरे भी अर्थ हैं। वराहद्वीप और वराहगिरि भी प्रसिद्ध हैं। विशेष जान-कारीके लिये यहाँ संक्षेपमें उनका एक कोश दिया जा रहा है।

वराहक–(१) हीरा, २–शिशुमार (सूँस)

वराहकन्द–एक ओषधि, वराही कन्द।

वराहकर्ण–(१) एक प्रकारका वाण (२) एक यक्ष, जो कुबेरकी सभामें रहकर उनकी सेवा करता है। (महाभा० २। १०। १६)

वराहकर्णिका–एक अस्त्र।

वराहकर्णी–अश्वगन्धा (Physalis flexuosa)

वराहकल्प–जिसमें भगवान्‌ने पृथ्वीका उद्धार कर उन्हें वराहपुराण सुनाया। वायुपुराण ६। ११, १३, २३ आदिके अनुसार यहीं 'श्वेत-कल्प' भी कहा गया है।†

वराहकवच–स्कन्दपुराणमें प्राप्त होनेवाला भगवान् वराहका एक प्रसिद्ध स्तोत्र।

वराहकान्ता–एक ओषधि (yam)।

वराहकाली–सूर्यमुखी फूल।

वराहाक्रान्ता–ओषधि, लजालू, लजौनी पौधा, शूकरी।

वराहक्षेत्र–नाथपुर या सोरों (द्रष्टव्य—वराहपुराण, अङ्क पृष्ठ ३४०)।

वराह-गायत्री–द्रष्टव्य—पृ० ४४९।

वराहगिरि–वेङ्कटगिरि पर्वत तथा मानसरका केसरा-चल। द्रष्टव्य—स्कन्दपुराणका भूमिवराह-खण्ड।

वराहगृह्यसूत्र–कृष्ण यजुर्वेदकी मैत्रायणी शाखाका धर्मग्रन्थ, जिसमें १६ संस्कारोंका वर्णन है। यह गायकवाड़ सं० सी० से प्रकाशित है।

वराह-ग्राम–महाराष्ट्रके वेलगाँव जिलेका एक कस्बा।

वराह-तीर्थ–कूर्म तथा वराहपुराणमें प्रसिद्ध एक तीर्थ।

वराहदंष्ट्रा–सूकरकी दाढ़।

वराहदत्, दन्त–ऐसा मनुष्य जिसके दाँत वराहके समान हों।

वराहदत्त–एक व्यापारी, जिसकी कथा 'कथासरि-त्सागर' (३७। १००)में आती है।

वराहदानविधि–भविष्यपुराणके उत्तरपर्वका १९४वाँ अध्याय, जिसमें २२ श्लोक हैं।

* (क) वराहः शूकरे विष्णौ मानभेदेऽद्रिमुस्तयोः। वराही मातृभेदे स्याद् विष्वक्सेनप्रियौषधौ॥ (मेदिनी ३३। २२)
(ख) वराही मातृभेदे स्यात् गृष्टिनामौषधेऽपि च।' (विश्वप्रकाश)

† Hazra—'Puranic Records on Hindu Rites and customes. Page 14, Ftnt. 15.

वराहदेव—राजतरङ्गिणीमें निर्दिष्ट एक राजा ।

वराहद्वादशी—माघ शुक्ल द्वादशीका वराह व्रत । 'निर्णयसिन्धु'में ३ वराह-जयन्तियाँ हैं । द्रष्टव्य—वराहपुराणका ४१वाँ अध्याय, प्रस्तुत अङ्कका पृ० १००-१०२ ।

वराहद्वीप—वायुपुराणमें वर्णित एक द्वीप ।

वराहनामाष्टोत्तरशतस्तोत्र—स्कन्दपुराणका एक स्तोत्र।

वराह नगर—बंगालके २४ परगनाका एक प्राचीन एवं प्रसिद्ध व्यापारिक नगर, गङ्गा-भक्ति-तरङ्गिणीमें इसका वर्णन है ।

वराहपत्री—एक लता । (Physalis flexuosa)

वराहपुराण—प्रस्तुत ग्रन्थ।

वराहप्रतिमा—वराह-मूर्ति, द्रष्टव्य—पृष्ठ ४४९-५०

वराहमन्त्र—द्रष्टव्य—पृष्ठ ४४८-४९ ।

वराहमिहिर—भारतके परम प्रसिद्ध ज्योतिषी, जिन्होंने बृहत्संहिता, बृहज्जातक, पञ्चसिद्धान्तिका आदिकी रचना की थी ।

वराहमूल—वह स्थान, जहाँ भगवान्ने पृथ्वीको समुद्रसे बाहर निकाला था ।

वराहवद्री—शूकरद्वारा खोदा गड्ढा ।

वराहव्यूह—प्राचीन युद्धमें एक प्रकारकी सैन्यरचना।*

वराहशिम्बी—वराहभोज्य एक कंद ।

वराहशृङ्ग—पशुपतिनाथ (वराहपुराण ११५)

वराहशैल—वराहगिरि पर्वत वेङ्कटाचल ।

वराहस्तुति—ब्रह्माण्डपुराणका अध्याय ।

वराहस्वामी—कथासरित्सागरमें वर्णित एक औपयासिक राजा ।

वराहायु—सूअरके शिकारमें लगा रहनेवाला व्याधादि ।

वराहोपनिषद्—एक श्रेष्ठ उपनिषद्, जिसके अधिकांश श्लोक योगवासिष्ठमें भी मिलते हैं—

वराहोपानह्—वराहचर्मका जूता ।

वराही—भगवान् वराहसे उत्पन्न एक विशिष्ट देवीकी शक्ति (द्रष्टव्य—दुर्गासप्तशती तथा समयमत)

वराहीनिग्रहाष्टक-अनुग्रहाष्टक आदि (तान्त्रिकोंकी परम प्रधान स्तुति) ।

यहाँ वराहके पर्याय एमूष (शतप० ब्रा० १४।१।२।११†) कोल,‡ शूकर, क्रोड, घोणी आदिसे निर्मित समस्त शब्दोंका संग्रह नहीं किया गया है; क्योंकि—

वराहः सूकरो घृष्टिः कोलः पोत्री किरः किटिः ।
दंष्ट्री घोणी स्तब्धरोमा क्रोडो भूदार इत्यपि ॥

इस अमर २।५।२ तथा रत्नमाला आदिके अनुसार इसके प्रायः २५ पर्याय हैं; अतः इससे कोश बहुत बड़ा हो जायगा । इसी प्रकार कपिलवाराह, नृ-वराह, प्रलय-वराह, भू-वाराह, भूमि-वराह, यज्ञवाराह, श्वेत-वाराह आदि शब्द हैं, जिनमें कुछका विस्तृत वर्णन इस अङ्कमें है और कुछ कल्पों तथा वराह भगवान्की विशिष्ट प्रतिमाओंके नाम हैं ।

(Rao, Hindu Iconography 1-1 Pages 135-45)

---

* दण्डव्यूहेन तन्मार्गे यायात्तु शकटेन वा । वाराहमकराभ्यां वा सूच्या वा गरुडेन वा ॥
(मनुस्मृति ७ । १९७)

कुल्लूकभट्टने इसकी टीकामें—'सूक्ष्ममुखपश्चाद्भागः पृथुमध्यो वराहव्यूहः' कहा है । अर्थात् जिस सेनाका मुखभाग तथा पिछला भाग पतले,—और बीचमें बहुत मोटा हो, उसे 'वाराहव्यूह' कहा गया है । 'कामन्दक-नीतिसार' १९में इनका विस्तार है । 'वैशम्पायन-नीतिप्रकाशिका' ६ । ९में 'वराह' व्यूहको मुख्य 'प्रदरादि' ३० व्यूहोंसे भिन्न कहा है—

'वराहो मकरव्यूहो गारुडः क्रौञ्च एव च । पद्माद्याश्चाङ्गवैकल्यादेतेभ्यस्ते पृथक् स्मृताः ॥'

इससे सत्ययुग एवं द्वापरयुगके मतवैविध्यका भी संकेत प्राप्त होता है ।

† यहाँ भी वराहावतारकी कथा आयी है ।

‡ रामचरितमानस १ । २६९ । १के 'दिसि कुंजरहुँ कमठ अहिकोला' तथा १ । २६०के छन्दमें 'अहि कोल कूरुम कलमले'में भी पद्मपुराण, उत्तरखण्ड २३७ । १८के—

पतितां धरनीं दृष्ट्वा दंष्ट्रयोद्धृत्य पूर्ववत् । संस्थाप्य धारयामास शेषे कूर्मवपुस्तदा ॥

—इस वचनके आधारपर (नानापुराणनिगमागमसम्मतं यत्) बतलाया गया है कि श्रीवराह भगवान्ने हिरण्याक्ष दैत्यका वध कर पृथ्वीको शेषपर स्थापित कर कूर्मको स्वयं धारण किया ।

श्रीवराहपुराणकी अद्भुत विलक्षण महिमा

[एक वीतराग ब्रह्मनिष्ठ संतजी महाराजके चेतावनीयुक्त महत्त्वपूर्ण सदुपदेश]

(प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

अभी उस दिन पिलखुवा हमारे स्थानपर एक बड़े ही महान् उच्चकोटिके वीतराग ब्रह्मनिष्ठ पुराणमर्मज्ञ संतजी महाराज कृपाकर पधारे थे और उन्होंने जो अपने महत्त्वपूर्ण चेतावनीमय सदुपदेश लिखवानेकी कृपा की थी, वे यहाँपर दिये जा रहे हैं। आशा है, 'कल्याण'के धार्मिक पाठक इन्हें ध्यानसे पढ़नेकी कृपा करेंगे। इसमें जो भूलसे कुछ गलती रह गयी हो, वह सब हमारी ही समझेंगे, पूज्यपाद संतजी महाराजकी नहीं।

पुराणोंको कैसे पढ़ना चाहिये ?

प्रश्न—पूज्यपाद महाराजजी ! 'कल्याण'का विशेषाङ्क 'श्रीवराहपुराण' प्रकाशित होने जा रहा है।

पूज्य संतजी—यह तो बड़ी ही प्रसन्नताकी बात है कि 'कल्याण'का विशेषाङ्क 'श्रीवराहपुराण' रूपमें निकलने जा रहा है। परंतु साथमें यदि निम्नलिखित बातोंपर ध्यान दिया जाय तो यह श्रीवराहपुराणका प्रकाशित होना विशेष कल्याणकर एवं पुण्यप्रद कार्य होगा।

१—यह ध्यान रहे कि श्रीवराहपुराण कोई पुस्तक, किताब या Book नहीं है, कोई सामान्य ग्रन्थ भी नहीं है, अपितु यह श्रीवराहपुराण साक्षात् भगवान्‌का श्रीश्रीवाङ्मय-स्वरूप है। अतः इसे बड़ी श्रद्धा-भक्तिकी दृष्टिसे देखना चाहिये और हाथ जोड़कर इसके सामने नतमस्तक होना चाहिये।

२—श्रीवराहपुराणको भूलकर भी कभी गंदे, जूँठे या अपवित्र हाथोंसे नहीं छूना चाहिये। हाथ धोकर तब इसका स्पर्श करना चाहिये।

३—पुराणोंके सुनते-पढ़ते समय सामने उनकी ओर कभी भूलकर भी पैर करके नहीं बैठना चाहिये, अन्यथा बड़ा पाप लगता है।

४—श्रीवराहपुराणको पढ़ते समय भूलकर भी अपनी अँगुलीके ऊपर थूक लगाकर पन्ने नहीं पलटने चाहिये।

५—श्रीवराहपुराणको नीचे पृथ्वीपर नहीं डालना चाहिये, इसे उच्चासनपर विराजमान करना चाहिये।

६—श्रीवराहपुराणको अनधिकारीके हाथोंमें कभी नहीं देना चाहिये।

७—जो पुराण-निन्दक हैं, उन्हें कभी भूलकर भी श्रीवराहपुराण नहीं देना चाहिये।

८—श्रीवराहपुराणको रद्दी समझकर रद्दीमें बेचना बड़ा घोर पाप है और भीषण अपराध है और शास्त्रोंका घोर अपमान करना है।

९—श्रीवराहपुराणको बीड़ी, सिगार, सिगरेट, तम्बाकू पीते हुए कभी नहीं पढ़ना चाहिये।

१०—श्रीवराहपुराणकी बातोंमें कभी भी अविश्वास नहीं करना चाहिये।

११—श्रीवराहपुराणको पूज्य भूदेव ब्राह्मणोंके श्रीमुखसे सुननेसे महान् पुण्योंकी प्राप्ति होती है अतः उनके श्रीमुखसे श्रवण करना चाहिये।

१२—श्रीवराहपुराणको उपन्यासादि सांसारिक पुस्तकों तथा उर्दू, फारसी आदिकी किताबोंके साथ भी नहीं रखना चाहिये और उनके नीचे तो भूलकर भी नहीं।

१३–श्रीवराहपुराणको पढ़कर और सुनकर उनमें जो कुछ लिखा है, यथाशक्ति उसके अनुसार चलनेका प्रयत्न करना चाहिये और उनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये ।

१४–श्रीवराहपुराणको भूलकर उपेक्षाकी दृष्टिसे नहीं देखना चाहिये और उसे यों ही इधर-उधर नहीं डाल देना चाहिये और उसके ऊपर हिसाब-किताब भी नहीं लिखना चाहिये ।

१५–यदि श्रीवराहपुराण अपने पास न रखना हो तो उसे किसी विद्वान् ब्राह्मणको दे देना चाहिये ।

१६–श्रीवराहपुराणको सुन्दर रेशमी वस्त्रमें लपेटकर पूजाके स्थानमें रखना चाहिये और उसपर पुष्प-चन्दनादि चढ़ाना चाहिये ।

१७–बन सके तो श्रीवराहपुराहको विद्वान् ब्राह्मणको दान देना चाहिये और बड़े समारोहके साथ श्रीवराहपुराणकी कथा करानी चाहिये ।

१८–श्रीवराहपुराणके सामने जो गन्दी बातें करते हैं और जो इसे जूते पहनकर पढ़ता है और जो तनिक भी अपशब्दोंका प्रयोग करता है, वह घोर पाप करता है ।

१९–जो अण्डे, मांस, मछली, प्याज, लहसुन, शलजम, शराब आदिका सेवन करते हैं वे इस श्रीवराह-पुराणके स्पर्श करनेके अधिकारी नहीं हैं, उन्हें इससे दूर रहना चाहिये ।

२०–श्रीवराहपुराणकी न कभी निन्दा करनी चाहिये और न कभी निन्दा सुननी चाहिये और न निन्दकोंको इसे सुनानी चाहिये ।

२१–श्रीवराहपुराण घरपर आते ही मारे प्रसन्नताके फूला न समाना चाहिये और अपना परम भाग्योदय हुआ मानना चाहिये ।

भगवान् 'यज्ञवराह'की पूजा एवं आराधन-विधि

[पृष्ठ १६का शेष]

नृसिंहार्कवराहाणां प्रासादप्रवणस्य च ।
सपिण्डाक्षरमन्त्राणां सिद्धादीन्नैव शोधयेत् ॥
स्वप्नलब्धे स्त्रिया दत्ते मालामन्त्रे च त्र्यक्षरे ।
वैदिकेषु च मन्त्रेषु सिद्धादीन्नैव शोधयेत् ॥

(सिद्धसारस्वत तन्त्र, तन्त्रसार १ । १००-१०१, चौखं० सं० पृ० ६)

वेदोंमें कई वराह-मन्त्र निर्दिष्ट हैं, यथा—

'एक दंष्ट्राय विद्महे महावराहाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ।'

आगमोंमें वराहमन्त्रका स्वरूप इस प्रकार है—

'ॐ नमो भगवते वराहरूपाय भूर्भुवःस्वःपतये भूपतित्वं मे देहि च दापय स्वाहा ।'

'शारदातिलक' १५ । १०८ में इस मन्त्रके परशुराम ऋषि तथा इसका छन्द अनुष्टुप् कहा गया है । इनका ध्यान इस प्रकार बतलाया गया है—

आपादं जानुदेशाद्वरकनकनिभं नाभिदेशादधस्ता-
न्मुक्ताभं कण्ठदेशात्तरुणरविनिभं मस्तकान्नीलभासम् ।
ईडे हस्तैर्दधानं रथचरणदरौ खड्गखेटौ गदाख्यां
शक्तिं दानाभये च क्षितिचरणलसद्दंष्ट्रमाद्यं वराहम् ॥

'अर्थात् जिनका घुटनेसे पैरतकका शरीर सुनहले रंगका, नाभिसे नीचेका शरीर मुक्ताके रंगका (उजला लिये मटमैला), कण्ठसे ऊपर बालसूर्यके समान लाल और मस्तक नीले रंगका है तथा जो हाथमें चक्र, खड्ग, खेट, गदा, शक्ति इन अस्त्रोंको तथा अभय एवं वरद मुद्रा धारण

किये हुए हैं, मैं उन भगवान् वराहका ध्यान करता हूँ।'

ऊपरके मन्त्रका एक लाख जप करनेपर पुरश्चरण समाप्त होता है। पुरश्चरण पूरा होनेपर मधुमिश्रित कमलसे हवन करना चाहिये और पीठपर भगवान् वराह विष्णुकी एवं अष्टकोणोंमें चक्र, खेटक (ढाल), गदा, शक्ति, शङ्ख आदि अस्त्रोंकी पूजा करनी चाहिये। इससे साधकको अखण्ड पृथ्वीकी प्राप्ति होती है।

इसी प्रकार भगवान् वराहका स्कन्दपुराणके भूमिवराहखण्ड अध्याय २ में—**'ॐ नमः श्रीवराहाय धरण्युद्धारणाय स्वाहा'**—यह मन्त्र बतलाया गया है। इसके ऋषि संकर्षण, देवता वराह, श्री बीज और पङ्क्ति छन्द निर्दिष्ट हैं। इसके दीक्षा-ग्रहणपूर्वक चार लाख जप करने और मधु-घृत-मिश्रित पायसद्वारा हवन करनेसे सार्वभौम तथा वैष्णवपदकी प्राप्ति होती है। इस मन्त्रका ध्यान इस प्रकार है—

शुद्धस्फटिकशैलाभं रक्तपद्मदलेक्षणम्।
वराहवदनं सौम्यं चतुर्बाहुं किरीटिनम्॥
श्रीवत्सवक्षसं चक्रशङ्खाभयकराम्बुजम्।
वामोरुस्थितया युक्तं त्वया मां सागराम्बरे॥
रक्तपीताम्बरधरं रक्ताभरणभूषितम्।
श्रीकूर्मपृष्ठमध्यस्थशेषमूर्त्यब्जसंस्थितम्॥

(२।२।१४-१६)

तात्पर्य यह कि भगवान् वराहके अङ्गोंकी कान्ति शुद्ध स्फटिक गिरिके समान श्वेत है। खिले हुए लाल कमलदलोंके समान उनके सुन्दर नेत्र हैं, उनका मुख वराहके समान है, पर स्वरूप सौम्य है। उनकी चार भुजाएँ हैं, मस्तकपर किरीट शोभा पाता है और वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न है। उनके हाथोंमें चक्र, शङ्ख, अभयदायिनी मुद्रा और कमल सुशोभित हैं। भगवान् वराहकी बायीं जाँघपर सागराम्बरा पृथ्वीदेवी बैठी हैं। भगवान् वराह लाल, पीले वस्त्र पहने तथा लाल रंगके ही आभूषणोंसे विभूषित हैं। श्रीकच्छपके पृष्ठके मध्यभागमें शेषनागकी मूर्ति है। उसके ऊपर सहस्रदल कमलका आसन है और उसपर भगवान् वराह विराजमान हैं।

भगवान् वराहकी प्रतिमा कैसी हो ?

पूजाके लिये प्रतिमा आवश्यक है। 'अग्निपुराण' अध्याय ४९के अनुसार पृथ्वीके उद्धारक भगवान् वराह (नृ-वराह)की आकृति मनुष्यके समान बनायी जानी चाहिये। उनके दाहिने हाथोंमें गदा और चक्र तथा बायीं ओरके हाथोंमें शङ्ख एवं पद्म सुशोभित हों। अथवा पद्मके स्थानपर पद्मा लक्ष्मी बायीं कोहनीका सहारा लिये हों और पृथ्वी तथा अनन्त उनके चरणोंके अनुगत हों। ऐसी प्रतिमाके संस्थापनसे प्रतिष्ठाताको राज्यकी प्राप्ति होती है और वह भवसागरसे पार पा जाता है—

नराङ्गो वाथ कर्तव्यो भूवराहो गदादिभृत्।
दक्षिणे वामके शङ्खं लक्ष्मीर्वा पद्ममेव वा॥
श्रीर्वामकूर्परस्था तु क्ष्मानन्तौ चरणावुभौ।
वराहस्थापनाद्राज्यं भवाब्धितरणं भवेत्॥

(अग्निपु० ४९। २-३)

'हरिभक्ति-विलास'में भी वराहमूर्तिका लक्षण प्रायः इसी प्रकार निर्दिष्ट है। यथा—'वराहमूर्तिके मुखका विस्तार अष्टकला, कर्ण द्विगोलक, हनुदेश सात अङ्गुल, सृक्किणी दो अङ्गुल, वदन सात अङ्गुल, दोनों दाँत डेढ़ कला, नासिका-विवर तीन जौ, दोनों नेत्र एक जौसे कुछ कम, मन्द मुसकानयुक्त मुख-मण्डल तथा दोनों कान दो रन्ध्रके समान होने चाहिये। कानका मध्यभाग चार कला और उसकी ऊँचाई दो कला होगी। ग्रीवादेश आठ अङ्गुल, ऊँचाई नेत्रके समान, अवशिष्ट सभी अङ्ग नृसिंहदेवके समान होंगे। शेषनाग नृ-वराहदेवके चरण पकड़े हुए हैं। वराह अपनी बाहुसे वसुंधराको धारणकर अवस्थित हैं। इनके वाम भागमें शङ्ख और पद्म, दक्षिण भागमें गदा और चक्र हों। इस प्रकार वराहदेव-मूर्तिकी प्रतिष्ठा करनेसे

भवबन्धन दूर होता है तथा इस लोकमें अनेक प्रकारकी सुख-सम्पदाएँ प्राप्त होती हैं।*'

'भविष्यपुराण' उत्तरखण्डके १९४ वें अध्यायमें 'वराह-दान'का प्रकरण आया है। वहाँ सोनेसे वराहभगवान्‌का मुख, चाँदीसे उनकी दाढ़ बनाकर उनके हाथमें चक्र, गदा एवं पद्मयुक्त प्रतिमा बनानेकी बात निर्दिष्ट है।

यहाँ पृथ्वीको उनकी दाढ़पर ही स्थित बतलाया गया है—और दानके समय निम्नलिखित स्तोत्र पढ़नेका आदेश है—

वराहेश प्रदुष्टानि सर्वपापफलानि च।
मर्द मर्द महादंष्ट्र भास्वत्कनककुण्डल॥
शङ्खचक्रादिहस्ताय हिरण्याक्षान्तकाय च।
दंष्ट्रोद्धृतधरामूर्ते त्रयीमूर्तिमते नमः॥

(भविष्योत्तर० १९४। १४-१५)

और इस प्रतिमादानके फलमें सिद्धलोक-प्राप्तिकी बात कही गयी है—

विप्राय वेदविदुषे नृवराहरूपं
दत्त्वा तिलामलसुवर्णमयं सवस्त्रम्।
उद्धृत्य पूर्वपुरुषान् सकलत्रमित्रः
प्राप्नोति सिद्धभवनं सुरसाधुजुष्टम्॥

(वही २२)

'श्रीविष्णुधर्मोत्तर महापुराण' ३। ७८। १–११के अनुसार भगवान् 'धरणि-वराह', 'नृ-वराह' या 'वराह'-मूर्तिके ऊपर शेषनागको स्थित करना चाहिये। शेषकी आश्चर्ययुक्त दृष्टि धरणीदेवीपर हो तथा उनके हाथोंमें हल, मुसल धारण कराये। उनकी बायीं ओर धरणीदेवी हाथ जोड़कर नमस्कार करती हुई स्थित हों—

नृवराहोऽथ वा कार्यः शेषोपरिगतः विभुः।
शेषश्चतुर्भुजः कार्यश्चारुरत्नफणान्वितः।
आश्चर्योत्फुल्लनयनो देवीवीक्षणतत्परः।
कर्तव्यौ सीरमुसलौ करयोस्तस्य यादव।
सव्येऽरत्निगता तस्य योषिद्रूपा वसुंधरा॥

भगवान् वराहके बायें हाथमें शङ्ख, पद्म तथा दाहिनी ओरके हाथमें चक्र एवं गदा हो। साथमें हिरण्याक्ष भी हो, जिसके सिरपर उनका चक्र चल रहा हो। अनैश्वर्य ही हिरण्याक्ष है, भगवान् इसका संहारकर भक्तको ऐश्वर्यसे पूर्ण करते हैं—

'ऐश्वर्येण वराहेण स निरस्तोऽरिमर्दनः। (वही)

T. A. Gopinath Rao ने Hindu Iconography 1-1 pages 128—45 में इस विस्तृत वर्णनके साथ महाबलीपुरम्, बदामी, राजिम, बेलूर, मद्रास आदिमें प्राचीन कांस्यादिनिर्मित प्रतिमाओंके ७ श्रेष्ठ सुन्दर चित्र भी दिये हैं। ऐसी प्रतिष्ठित मूर्तिकी आराधनासे वे धन-धान्य, पृथ्वी और लक्ष्मी-प्रदान करते हैं—**'प्रयच्छेज्जपपूजाद्यैर्धनधान्यमहीश्रियः।'**

(शारदातिल० १५। ११७)

'शारदा'में इसीके आगे राज्य एवं श्रीप्राप्तिके लिये वराहमन्त्र भी निर्दिष्ट है। (श्लोक—१३५) इसकी 'पदार्थदर्श'-व्याख्यामें अष्टाक्षर भूमि-वराह-मन्त्रकी पद्धति निर्दिष्ट है। मन्त्र है—**'ॐ नमो भुवोवराहाय'।** इस मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि, जगती छन्द, वराह देवता, 'भं' बीज एवं 'ॐ' शक्ति है। इसमें भगवान् वराहके ध्यानका स्वरूप यह है—

कृष्णाङ्गं त्वतिनीलवक्त्रनलिनं पद्मस्थितं स्वाङ्कगं
क्षोणाशक्तिमुदारबाहुभिरथो शङ्खं गदामम्बुजम्।
चक्रं बिभ्रतमुग्रकान्तिमनिशं देवं वराहं भजे
भूलक्ष्मीरतिकान्तिभिः परिवृतं चर्मासिसंदीप्तिभिः॥

'भगवान् धरणि-वराहका स्वरूप कृष्णवर्णका और उनका मुखमण्डल नीले वर्णका है। वे कमलपर आसीन हैं, उनके श्रीअङ्कमें क्षोणा शक्ति (भूदेवी) हैं। वे अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किये हुए हैं। भूदेवी,

* 'मानसोल्लास' (अभिलषितार्थचिन्तामणि ३। १। ७३९–४०) में भी प्रायः ऐसा ही वर्णन है—
नृवराहं प्रवक्ष्यामि सूकरास्येन शोभितम्। गदापद्मधरं धात्रीं दंष्ट्राग्रेण समुद्धृताम्।
बिभ्राणं कूर्परे वामे विस्मयोत्फुल्ललोचनाम्। नीलोत्पलधरां देवीमुपरिष्टात् प्रकल्पयेत्।
तीक्ष्णदंष्ट्राग्रघोणास्यं स्तब्धकर्णोर्ध्वरोमकम्॥

लक्ष्मी, रति, कान्ति ढाल-तलवार लिये उन्हें घेरे हुए खड़ी हैं। हम ऐसे वराहका अहर्निश ध्यान करते हैं।'

तन्त्रग्रन्थोंमें एक 'चक्रवराह'-मन्त्र भी निर्दिष्ट है, जो इस प्रकार है—

परजातमहाराव वराहाङ्गावनेर्धव !
वर्धते योऽन्वहं देवं वन्देऽहं वालिजाधवम्।

साधक शुक्रवारको प्रातः जिस क्षेत्रकी मृत्तिकाको लेकर जल मिलाकर चरुके साथ पकाकर घी-दूधसे हवन करता है, वहाँकी पृथ्वी उसके अधिकारमें हो जाती है।

यज्ञ-वराहकी संक्षिप्त पूजाविधि

१-पाद्य

अर्घेमें जल लेकर भगवान् वराहका ध्यान करे और—

ॐ यद्भक्तिलेशसम्पर्कात् परमानन्दसम्भवः।
तस्मै ते चरणाब्जाय पाद्यं शुद्धाय कल्पये॥
ॐ भूर्भुवः स्वःश्रीमहावराहाय नमः, पाद्यं समर्पयामि।

यह कहकर पाद्य-जल अर्पण करे।

२-अर्घ्य

ॐ तापत्रयहरं दिव्यं परमानन्दलक्षणम्।
तापत्रयविमोक्षाय तवार्घ्यं कल्पयाम्यहम्॥
ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीमहावराहाय अर्घ्यं समर्पयामि।

कहकर अर्घ्य प्रदान करे।

३-आचमन

ॐ उच्छिष्टोऽप्यशुचिर्वापि यस्य स्मरणमात्रतः।
शुद्धिमाप्नोति तस्मै ते पुनराचमनीयकम्॥
ॐ भू० आचमनीयं सम०।

कहकर आचमन-जल अर्पण करे।

४-स्नान

ॐ गङ्गासरस्वतीरेवापयोष्णीनर्मदाजलैः।
स्नापितोऽसि मया देव तथा शान्तिं कुरुष्व मे॥
ॐ भूर्भुवः स्वः वराहाय नमः, स्नानं समर्पयामि।

कहकर स्नान कराये।

५-वस्त्र

ॐ मायाचित्रपटाच्छन्ननिजगुह्योरुतेजसे।
निरावरणविज्ञानवासस्ते कल्पयाम्यहम्॥
ॐ भू० रक्तवस्त्रं समर्प०।

उपवस्त्र, यज्ञोपवीत

ॐ नवभिस्तन्तुभिर्युक्तं त्रिगुणं देवतामयम्।
उपवीतं चोत्तरीयं गृहाण परमेश्वर॥
ॐ भू० यज्ञोपवीतं चोत्तरीयं समर्प०।

६-आभूषण

स्वभावसुन्दराङ्गाय भूमिसत्याश्रयाय ते।
भूषणानि विचित्राणि कल्पयामि सुरार्चित॥
ॐ भू० भूषणानि समर्प०।

७-गन्ध

श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम्।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम्॥
ॐ भू० चन्दनं समर्प०।

(यहाँ अङ्गुष्ठ तथा कनिष्ठिकाके मूलको मिलाकर गन्धमुद्रा दिखानी चाहिये।)

अक्षत

अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ कुङ्कुमाक्ताः सुशोभिताः।
मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वर॥
ॐ भू० अक्षता० सम०।

(अक्षत सभी अँगुलियोंको मिलाकर देना चाहिये।)

८-पुष्प एवं पुष्पमाला

माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो।
मयानीतानि पुष्पाणि गृहाण परमेश्वर॥
ॐ भू० पुष्पमाल्यं सम०।

(तर्जनी-अङ्गुष्ठ मिलाकर पुष्पमुद्रा दिखानी चाहिये।)

९-धूप

वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥
ॐ भू० धूपमाघ्रापयामि।

(तर्जनी-मूल तथा अङ्गुष्ठके संयोगसे धूपमुद्रा बनती है। नासिकाके सामने धूप दिखाकर उसे भगवान् वराहकी बायीं ओर रख देना चाहिये।)

१०-दीप

सुप्रकाशो महादीपः सर्वतस्तिमिरापहः ।
सबाह्याभ्यन्तरज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
ॐ भू० दीपं दर्शयामि ।

११-नैवेद्य

सत्पात्रसिद्धं सुहविर्विविधानेकभक्षणम् ।
निवेदयामि यज्ञेश सानुगाय गृहाण तत् ॥
ॐ भू० नैवेद्यं निवेदयामि ।

(अङ्गुष्ठ एवं अनामिका-मूलके संयोगसे ग्रासमुद्रा दिखानी चाहिये।)

(पीनेका जल)

नमस्ते सर्वयज्ञेश सर्वतृप्तिकरं परम् ।
परमानन्दपूर्ण त्वं गृहाण जलमुत्तमम् ॥
ॐ भू० पानीयं सम० ।

१२-आचमन

उच्छिष्टोऽप्यशुचिर्वापि यस्य स्मरणमात्रतः ।
शुद्धिमाप्नोति तस्मै ते पुनराचमनीयकम् ॥
ॐ भू० नैवेद्यान्त आचमनीयं सम० ।

ताम्बूल

पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम् ।
एलाचूर्णादिकैर्युक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥
ॐ भू० ताम्बूलं सम० ।

१३-फल

इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्तव ।
तेन मे सुफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥
ॐ भू० फलं सम० ।

१४-आरात्रिक

कदलीगर्भसम्भूतं कर्पूरं च प्रदीपितम् ।
आरात्रिकमहं कुर्वे वराह ! वरदो भव ॥
ॐ भू० आरात्रिकं सम० ।

प्रदक्षिणा

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि वै ।
तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणे पदे पदे ॥

(भगवान् वराहकी चार बार प्रदक्षिणा करनी चाहिये।)

१५-पुष्पाञ्जलि

नानासुगन्धपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च ।
पुष्पाञ्जलिं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ॥
ॐ भू० पुष्पाञ्जलिं समर्प० ।

१६-स्तुति

तत्पश्चात् निम्नलिखित स्तोत्रसे स्तुतिकर साष्टाङ्ग प्रणाम कर क्षमा-याचना करे।

सनकादिकृत भगवान् वराहकी स्तुति

जितं जितं तेऽजित यज्ञभावन त्रयीं तनुं स्वां परिधुन्वते नमः ।
यद्रोमगर्तेषु निलिल्युरध्वरास्तस्मै नमः कारणसूकराय ते ॥ १ ॥
रूपं तवैतन्ननु दुष्कृतात्मनां दुर्दर्शनं देव यदध्वरात्मकम् ।
छन्दांसि यस्य त्वचि बर्हिरोमस्वाज्यं दृशि त्वङ्घ्रिषु चातुर्होत्रम् ॥ २ ॥
स्रुक् तुण्ड आसीत् स्रुव ईश नासयोरिडोदरे चमसाः कर्णरन्ध्रे ।
प्राशित्रमास्ये ग्रसने ग्रहास्तु ते यच्चर्वणं ते भगवन्नग्निहोत्रम् ॥ ३ ॥

दीक्षानुजन्मोपसदः शिरोधरं त्वं प्रायणीयोदयनीयदंष्ट्रः ।
जिह्वा प्रवर्ग्यस्तव शीर्षकं क्रतोः सभ्यावसथ्यं चितयोऽसवो हि ते ॥ ४ ॥
सोमस्तु रेतः सवनान्यवस्थितिः संस्थाविभेदास्तव देव धातवः ।
सत्राणि सर्वाणि शरीरसंधिस्त्वं सर्वयज्ञक्रतुरिष्टिबन्धनः ॥ ५ ॥
नमो नमस्तेऽखिलमन्त्रदेवताद्रव्याय सर्वक्रतवे क्रियात्मने ।
वैराग्यभक्त्यात्मजयानुभावितज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नमः ॥ ६ ॥
दंष्ट्राग्रकोट्या भगवंस्त्वया धृता विराजते भूधर भूः सभूधरा ।
यथा वनान्निःसरतो दता धृता मतङ्गजेन्द्रस्य सपत्रपद्मिनी ॥ ७ ॥
त्रयीमयं रूपमिदं च सौकरं भूमण्डले नाथ दता धृतेन ते ।
चकास्ति शृङ्गोढघनेन भूयसा कुलाचलेन्द्रस्य यथैव विभ्रमः ॥ ८ ॥
संस्थापयैनां जगतां सतस्थुषां लोकाय पत्नीमसि मातरं पिता ।
विधेम चास्यै नमसा सह त्वया यस्यां स्वतेजोऽग्निमिवारणावधाः ॥ ९ ॥
कः श्रद्दधीतान्यतमस्तव प्रभो रसां गताया भुव उद्विबर्हणम् ।
न विस्मयोऽसौ त्वयि विश्वविस्मये यो माययेदं ससृजेऽतिविस्मयम् ॥ १० ॥
विधुन्वता वेदमयं निजं वपुर्जनस्तपःसत्यनिवासिनो वयम् ।
सटाशिखोद्धूतशिवाम्बुबिन्दुभिर्विमृज्यमाना भृशमीश पाविताः ॥ ११ ॥
स वै बत भ्रष्टमतिस्तवैषते यः कर्मणां पारमपारकर्मणः ।
यद्योगमायागुणयोगमोहितं विश्वं समस्तं भगवन् विधेहि शम् ॥ १२ ॥

। इति श्रीमद्भागवतान्तर्गतं वराहस्तोत्रं समाप्तम् ।

सनकादि ऋषियोंने कहा—भगवान् अजित ! आपकी जय हो, जय हो । यज्ञपते ! आप अपने वेदत्रयीरूप विग्रहको फटकार रहे हैं, आपको नमस्कार है । आपके रोम-कूपोंमें सम्पूर्ण यज्ञ लीन हैं, आपने पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये ही यह सूकररूप धारण किया है, आपको नमस्कार है । देव ! दुराचारियोंको आपके इस शरीरका दर्शन होना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि यह यज्ञरूप है । इसकी त्वचामें गायत्री आदि छन्द, रोमावलीमें कुश, नेत्रोंमें घृत तथा चारों चरणोंमें होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा—इन चारों ऋत्विजोंके कर्म हैं । ईश ! आपकी थूथनी (मुखके अग्रभाग) में स्रुक् है, नासिकाछिद्रोंमें स्रुवा है, उदरमें इडा (यज्ञीय भक्षणपात्र) है, कानोंमें चमस है, मुखमें प्राशित्र (ब्रह्मभागपात्र) है और कण्ठछिद्रमें ग्रह सोमपात्र हैं । भगवन् ! आपका जो चबाना है, वही अग्निहोत्र है । बार-बार अवतार लेना यज्ञस्वरूप आपकी दीक्षणीय इष्टि हैं, गरदन उपसद (तीन इष्टियाँ) हैं, दोनों दाढ़ें प्रायणीय (दीक्षाके बादकी इष्टि) और उदयनीय (यज्ञसमाप्तिकी इष्टि) हैं, जिह्वा प्रवर्ग्य (प्रत्येक उपसदके पूर्व किया जानेवाला महावीर नामक कर्म) है, सिर सभ्य (होमरहित अग्नि) और आवसथ्य

(औपासनाग्नि) हैं तथा प्राण चिति (इष्टकाचयन) हैं । देव ! आपका वीर्य सोम है, आसन (बैठना)-प्रातः सवनादि तीन सवन हैं, सातों धातु अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम नामकी सात संस्थाएँ हैं तथा शरीरकी संधियाँ (जोड़) सम्पूर्ण सत्र हैं । इस प्रकार आप सम्पूर्ण यज्ञ (सोमरहित याग) और क्रतु (सोमसहित याग) रूप हैं । यज्ञानुष्ठानरूप इष्टियाँ आपके अङ्गोंको मिलाये रखनेवाली मांसपेशियाँ हैं । समस्त मन्त्र, देवता, द्रव्य, यज्ञ और कर्म आपके ही स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है । वैराग्य, भक्ति और मनकी एकाग्रतासे जिस ज्ञानका अनुभव होता है, वह आपका स्वरूप ही है तथा आप ही सबके विद्यागुरु हैं, आपको पुनः-पुनः प्रणाम है । पृथ्वीको धारण करनेवाले भगवन् ! आपकी दाढ़ोंकी नोकपर रक्खी हुई यह पर्वतादिमण्डित पृथ्वी ऐसी सुशोभित हो रही है, जैसे वनमेंसे निकलकर बाहर आये हुए किसी गजराजके दाँतोंपर पत्रयुक्त कमलिनी रक्खी हो । आपके दाँतोंपर रक्खे हुए भूमण्डलके सहित आपका यह वेदमय वराहविग्रह ऐसा सुशोभित हो रहा है, जैसे शिखरोंपर छायी हुई मेघमालासे कुलपर्वतकी शोभा होती है । नाथ ! चराचर जीवोंके सुखपूर्वक रहनेके लिये आप अपनी पत्नी इन जगन्माता पृथ्वीको जलपर स्थापित कीजिये । आप जगत्के पिता हैं और अरणिमें अग्निस्थापनके समान आपने इसमें धारणशक्तिरूप अपना तेज स्थापित किया है । हम आपको और इस पृथ्वीमाताको प्रणाम करते हैं । प्रभो ! रसातलमें डूबी हुई इस पृथ्वीको निकालनेका साहस आपके सिवा और कौन कर सकता था । किंतु आप तो सम्पूर्ण आश्चर्योंके आश्रय हैं, आपके लिये यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । आपने ही तो अपनी मायासे इस अत्याश्चर्यमय विश्वकी रचना की है । जब आप अपने वेदमय विग्रहको हिलाते हैं, तब हमारे ऊपर आपकी गरदनके बालोंसे झरती हुई शीतल जलकी बूँदें गिरती हैं । ईश ! उनसे भीगकर हम जनलोक, तपलोक और सत्यलोकमें रहनेवाले मुनिजन सर्वथा पवित्र हो जाते हैं । जो पुरुष आपके कर्मोंका पार पाना चाहता है, अवश्य ही उसकी बुद्धि नष्ट हो गयी है, क्योंकि आपके कर्मोंका कोई पार ही नहीं है । आपकी ही योगमायाके सत्त्वादि गुणोंसे यह सारा जगत् मोहित हो रहा है । भगवन् ! आप इसका कल्याण कीजिये ।

वराहपुराणोक्त मथुरामण्डलके प्रमुख तीर्थ

(पृष्ठ ४३२ का शेष)

केशवदेवजीका मन्दिर—

यह मथुराका सबसे प्राचीन मन्दिर है । भगवान् कृष्णके प्रपौत्र वज्रनाभने भगवान् केशवकी यह मूर्ति स्थापित की थी । बादमें औरंगजेबके आक्रमणके समय (इस मन्दिरको नष्ट किये जानेके पहले) यह मूर्ति यहाँसे हटाकर कहीं अन्यत्र भेज दी गयी ।* प्राचीन केशव-मन्दिरके स्थानको 'केशव देव-कटरा' कहते हैं । ऐसी मान्यता है कि प्राचीन मथुरा इसी क्षेत्रमें (कटरा

* केशवदेवकी मूर्ति ही क्या, मथुरा (मण्डल)की अनेक मूर्तियाँ बाहर चली गयी हैं—श्रीनाथजी (गोवर्धनसे) मेवाड़में, गोविन्दजी, गोपीनाथजी (वृन्दावनसे)जयपुर, मदनमोहनजी (वृन्दावनसे) करौली, मथुरानाथ (मधुरेशजी)के विग्रहको कोटाके राजवंशने वर्तमान पीढ़ियोंतक बड़े आदर तथा भक्तिपूर्वक रखा । अभी कुछ ही वर्षों पूर्व वल्लभ-सम्प्रदायके वर्तमान आचार्यश्रीने मधुरेशजीको पुनः गोवर्धन (जतीपुरा)-में मधुरेशजीकी हवेलीमें पधराया है । आजकल मधुरेशजी व्रजमें ही विराजमान हैं ।

केशवदेव)में बसा हुआ था । केशवदेव-मन्दिरको पहले क्रमशः सर्वश्रीमहाराज वज्रनाभ, विक्रमादित्य, विजयपाल आदिने निर्मित, पुनर्निर्मित; एवं जीर्णोद्धार कराया था । (Lord Śrī Kṛṣṇa and His Holy birth place, Pages 4—7) कृष्णप्रेमावतार श्रीचैतन्य महाप्रभुका यहाँ आगमन हुआ था तथा आपने भगवान् केशवदेवजीके समक्ष भावाविष्ट होकर विविध नृत्य-विनोद किये थे (चैतन्य-चरितामृत) । यवनोंद्वारा इस प्राचीन ऐतिहासिक केशवदेव-मन्दिरको, नष्ट किये जानेके बाद उस स्थानपर एक विशाल मस्जिद खड़ी कर दी गयी, जिसे 'औरंगजेब-मस्जिद' कहते हैं । बादमें उस मस्जिदके पीछे केशवदेवजीका दूसरा नवीन मन्दिर बन गया है ।

श्रीकृष्णजन्म-भूमि—

केशवदेवके इस मन्दिरके पास ही वर्तमान कृष्ण-जन्मभूमि-मन्दिर है । (वास्तविक कृष्ण-जन्मभूमिके स्थानपर तो इस समय औरंगजेबद्वारा निर्मित मस्जिद बनी हुई है) जिसमें देवकी-वसुदेवजीकी मूर्तियाँ कंसके कारागृहमें हैं । इस स्थानको मल्लपुरा कहते हैं । इसी स्थानमें कंसके प्रसिद्ध मल्ल—चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोसल आदि रहा करते थे । इसके समीप ही पोतराकुण्ड है । प्रसन्नताकी बात है कि अब देशके कर्णधारों और धर्मप्राण धनी-मानी लोगोंके सत्प्रयाससे कुछ वर्षों पूर्व श्रीकृष्ण-जन्म-भूमिका पुनरुद्धार तथा नवनिर्माण-कार्य हुआ तथा हो रहा है, जो सर्वथा प्रशंसनीय है ।* यहाँ श्रीकृष्ण-सेवा-संस्थान-संघकी स्थापना भी हुई है, जिसके द्वारा श्रीकृष्ण-चेतनाका प्रचार-प्रसार एवं व्रज-साहित्य, संस्कृतिकी रक्षा तथा शोध आदिका कार्य भी हो रहा है । श्रीकृष्ण-जन्म-स्थान-संघसे एक धार्मिक मासिक पत्रका प्रकाशन भी होता है जिसमें संस्थानकी गति-विधियोंका विवरण रहता है । जन्मभूमिके पार्श्व (बगल)में भव्य भागवत-मन्दिरका नव-निमार्ण-कार्य भी इस समय चल रहा है, जो कि पूर्ण हो जानेपर बड़े महत्त्वका और सर्वथा दर्शनीय होगा ।

कङ्काली-टीला—

भूतेश्वर महादेवके पास 'कङ्काली-टीलेपर 'कंकाली-देवी (कंसकाली)का मन्दिर है । कङ्कालीदेवी वह कही जाती हैं, जिसे देवकीकी कन्या समझकर कंसने मारना चाहा था, पर वह उसके हाथसे छूटकर आकाशमें चली गयी थी । कंकाली-टीलेकी खुदाईसे पुरातत्त्व-सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ प्राप्त हुई थीं ।

महाविद्या या विन्ध्येश्वरीदेवी—

मथुराके पश्चिममें जन्मभूमिसे थोड़ी दूरपर एक ऊँचे टीलेपर शिखरयुक्त मन्दिरके भीतर महाविद्या, महामाया और महामेधाकी मूर्तियाँ हैं । वराहपुराणके अनुसार ये देवियाँ श्रीकृष्णकी रक्षा करनेको सदा तत्पर रहती थीं । कंसको मारनेकी अभिलाषा रखनेवाले श्रीकृष्ण, बलराम और गोपोंने देवीके संकेतसे यहाँ मन्त्रणा की थी । तबसे इन्हें सिद्धिदा, भोगदा और 'सिद्धेश्वरी' भी कहा जाता है । इस मन्दिरके नीचे सरस्वतीनाला तथा आगे चलकर सरस्वती-कुण्ड है, जहाँ सरस्वतीजीका प्राचीन मन्दिर है ।

* पूज्य श्रीमालवीयजी महाराजकी इच्छानुसार श्रीयुगलकिशोरजी बिड़लाने १९५१ ई० में 'श्रीकृष्णजन्मस्थान-ट्रस्टकी स्थापना की थी, जिसके अध्यक्ष श्रीगणेश वासुदेव मावलंकर बनाये गये । ट्रस्टका मुख्य उद्देश्य श्रीकृष्ण-स्मारकका निर्माण करके 'कटरा-केशवदेव'का पुनरुद्धार करना तथा इस पावन स्थानपर एक ऐसी संस्थाकी स्थापना करना था, जो भारतीय धर्म-दर्शन और संस्कृतिके केन्द्रके रूपमें हो तथा भगवान् श्रीकृष्णके सार्वभौम जीवन-दर्शनसे अनुप्राणित हो ।

श्रीद्वारकाधीशजी—

मथुराके प्रधान और दर्शनीय मन्दिरोंमें द्वारकाधीश-मन्दिरका प्रथम स्थान है । इसे ग्वालियरराज्यके खजानची सेठ गोकुलदास पारखजीने सं० १८७० वि०में बनवाया था । यह मन्दिर असकुण्डाघाटके (निकट) सामने मथुराके मुख्य राजमार्गपर स्थित है और अत्यन्त सुन्दर उच्चशिखरसे युक्त (लम्बाई-चौड़ाईमें) सबसे बड़ा है। यहाँ श्रीभगवान्‌की सेवा, अर्चा वल्लभसम्प्रदायकी पद्धतिके अनुसार बड़े भाव और अनुरागसे होती है । द्वारकाधीश भगवान् श्रीकृष्णकी श्यामल, मनोहर मूर्तिके दर्शन—'अवसि देखिए देखन जोगू'—बड़े नयनाभिराम और चित्ताकर्षक होते हैं । मथुरावासी द्वारकाधीशजीके इस विग्रहको प्रेमपूर्वक 'राजाधिराज' नामसे पुकारते हैं । जिस राजमार्ग (बाजार)में यह मन्दिर है, उसकी भी 'राजाधिराज मार्ग'के नामसे प्रसिद्धि है ।

गतश्रम-नारायण—

विश्रान्तघाटके समीप, द्वारकाधीश-मन्दिरकी दाहिनी ओर यह मन्दिर है । इसमें भगवान् श्रीकृष्णकी मूर्तिके एक ओर श्रीराधा तथा दूसरी ओर कुब्जाकी मूर्तियाँ हैं । यहाँ श्रीकृष्णने (कंसको मारनेके पश्चात्) श्रम निवारण किया था । इसलिये यह मन्दिर 'गतश्रम-नारायण'के नामसे प्रसिद्ध है ।

गोविन्दजीका मन्दिर—

मानिकचौक वराह-मन्दिरसे कुछ आगे पत्थरके नक्काशीके कामसे युक्त गोविन्दजीका सुन्दर मन्दिर है ।

बिहारीजीका मन्दिर—

यह मन्दिर स्वामीघाट (संयमनतीर्थ)पर गोविन्दजीके मन्दिरके बिल्कुल समान है ।

गोवर्धननाथजीका मन्दिर—

इसी घाटपर स्थित द्वारकाधीशजीके मन्दिरके बाद लम्बाई-चौड़ाई और विस्तारमें इस मन्दिरका दूसरा क्रम है । इसकी स्थापत्यकलासे आकर्षित होकर बहुधा विदेशी-पर्यटक इसके छायाचित्र (फोटो) लेने आया करते हैं ।

असकुण्डाघाटपर हनुमान्‌जी, नृसिंहजी, वराहजी, गणेशजीके सुन्दर मन्दिर हैं ।

विश्रामघाट—

मथुराका यही प्रधान तीर्थ है । इसे विश्रान्त या विश्रान्तिघाट भी कहते हैं । भगवान् श्रीकृष्णने कंस-वधके पश्चात् यहाँ विश्राम किया था । इसीसे इसका नाम विश्रामघाट हुआ या यहाँ सांसारिक प्राणियोंको विश्रान्ति मिलती है, इस कारण भी यह विश्रान्तिघाट है । यहाँ कृष्णबलदेवजी, राधादामोदरजी, मुरलीमनोहरजी, यमुनाजी, धर्मराज तथा अन्य कई छोटे मन्दिर हैं । प्रातःकाल तथा सायंकाल, नित्यप्रति यहाँ श्रीयमुनाजीकी आरती होती है । उस समय बड़ा आनन्द आता है । सायंकालीन आरतीकी शोभा अधिक दर्शनीय होती है । कार्तिक शुक्ल द्वितीया (यमद्वितीया) तथा कार्तिक शुक्ल दशमीको जब राम-कृष्ण कंसको मारकर यहाँ विश्राम करने आते हैं, विशेष मेला होता है । घाटके पास ही श्रीवल्लभाचार्यजीकी बैठक है ।

रामजी द्वारेमें श्रीराममन्दिर तथा अष्टभुजी गोपालकी मूर्ति है । यहाँ रामनवमीको बहुत बड़ा मेला लगता है । तुलसी-चौतरेपर श्रीनाथजीकी बैठक है* । वहीं शत्रुघ्नजीका मन्दिर है, जिन्होंने लवणासुरको मारकर मथुराकी रक्षा की थी । इसके पास ही गोपालमन्दिर है ।

होली-दरवाजेके पास वज्रनाभद्वारा प्रतिष्ठापित कंस-निकन्दन भगवान्‌का मन्दिर है । महोलीकी पौरमें

* गोवर्धनसे आकर प्रथम रात्रिमें श्रीनाथजी (का विग्रह) यहीं विराजमान हुए थे और अब काँकरोली (मेवाड़) में विराजमान हैं ।

पद्मनाभजीका मन्दिर है। ये भी व्रजनाभके पधराये हुए हैं। डोरीबाजारमें गोपीनाथजी तथा वियामण्डीमें श्रीसीतारामजी तथा जानकीजीवनजीके मन्दिर हैं। आगे चलकर दीर्घविष्णुजीका मन्दिर है। यह राजा पटनी-मलका बनवाया हुआ है।*

सीतलापाइसामें मथुरादेवी और गजापाइसामें दाऊजीके एक चरणका चिह्न है। रामदासकी मण्डीमें मथुरानाथ भगवान् तथा मथुरानाथेश्वर महादेवके मन्दिर हैं। बंगालीघाटपर वल्लभसम्प्रदायके चार प्रसिद्ध मन्दिर—बड़े मदनमोहनजी, छोटे मदनमोहनजी, दाऊजी तथा गोकुलेशजीके मन्दिर हैं। नगरके बाहर ध्रुवटीलेपर ध्रुवजीका मन्दिर तथा चरणचिह्न हैं। यह स्थान निम्बार्कसम्प्रदायका है। पहले यहाँ निम्बार्काचार्य-पूज्य श्रीसर्वेश्वर तथा विश्वेश्वर शालग्राम भी थे, जो एक विशेष घटनावश इस समय क्रमशः सलेमाबाद और छत्तीसगढ़में विराजमान हैं।

सप्त-ऋषि टीलेपर अरुन्धतीसहित सप्तऋषियोंकी प्रतिमाएँ हैं। यह स्थान विष्णुस्वामी सम्प्रदायके विरक्तों-का है। आगे चामुण्डा-मन्दिर है, जो ५१ शक्तिपीठोंमें परिगणित है। यहाँ सतीके केश गिरे थे, ऐसी मान्यता है। आगे अम्बरीष-टीला है। जहाँ राजा अम्बरीषने तप किया था। टीलेपर हनुमान्जीका मन्दिर है।

श्रीभगवद्गीता-मन्दिर—

मथुरा-वृन्दावन-मार्गपर (मथुरासे लगभग २ मील दूर उत्तर) विस्तृत क्षेत्रमें 'बिड़ला-शैली'में (सेठ युगलकिशोरजी बिड़लाद्वारा) बनवाया हुआ भव्य गीता-मन्दिर है। 'बिड़ला-मन्दिर'के नामसे इसकी प्रसिद्धि है। इसमें गीतागायक (भगवान् श्रीकृष्ण)की संगमरमरकी विशाल तथा सुन्दर मूर्ति है तथा सम्पूर्ण गीता, सुन्दर (संगमरमर) शिलाओंपर स्थान-स्थानपर उत्कीर्ण है। मन्दिरके प्राङ्गणमें लाल पत्थरका ऊँचा और विशाल गीतास्तूप है, उसपर भी बहुत सुन्दर अक्षरोंमें पूरी गीताजी लिखी हुई हैं। मन्दिर दर्शनीय तथा मथुराके मन्दिरोंमें नवीनतम है। मन्दिरके ठीक सामने ही 'बिड़ला-धर्मशाला' है, जिसका प्रबन्ध इस मन्दिरसे ही होता है।

मथुरा-प्रदक्षिणा—

मथुरामें स्नान, देवदर्शन तथा परिक्रमा—ये तीन ही मुख्य कर्म हैं, जिनके विषयमें पुराणोंमें बड़ी महिमा मिलती है।† प्रत्येक एकादशी और कार्तिकमें अक्षय

---

* वराहपुराणमें मथुराके जिन मन्दिरोंका वर्णन है, उनमेंसे कालवश अधिकांश नष्ट हो गये हैं। बादमें कितनोंको राजा पटनी-मलने सं० १८९५ वि० में पुनः बनवाया था, जैसा कि चौबच्चास्थित 'वीरभद्रेश्वर'के प्राचीन मन्दिर (के पुनर्निर्माणकार्य)की प्रशस्तिमें लिखा है—

सुविश्रुतं यज्ञवपुः पुराणे श्रीवीरभद्रेश्वरमन्दिरं यत्। अदृश्यतां कालवशादवाप्तं राज्ञा नवं तत्पटनीमलेन॥
निर्माणधर्मज्ञवरेण भूयः कृता प्रतिष्ठा विधिपूर्वकं हि।
बाणाङ्कनागेन्दुक (१८९५) मिते च वर्षे। वैशाखशुक्लत्रिकु (१३) संख्यतिथ्याम्॥

† **स्नान—**

यमुनासलिले स्नातः शुचिर्भूत्वा जितेन्द्रियः। समभ्यर्च्याच्युतं सम्यक् प्राप्नोति परमां गतिम्॥
(वराहपुराण १५७।५)

अवगाह्य च पीत्वा च पुनात्यासप्तमं कुलम्। (मत्स्यपुराण)
अहो! अभाग्यं लोकस्य न पीतं यमुनाजलम्। गोगोपगोपिकासङ्गे यत्र क्रीडति कंसहा॥
यमुनाजलकल्लोले क्रीडते देवकीसुतः। तत्र स्नात्वा महादेवि सर्वतीर्थफलं लभेत्॥
(पद्मपु० हरगौरीसं०)

नवमीको मथुरा-परिक्रमा सामूहिक रूपसे की जाती है। देवशयनी और देवोत्थापनी एकादशीको मथुरा-वृन्दावनकी सम्मिलित परिक्रमा होती है। कोई-कोई इसमें गरुड-गोविन्दको भी सम्मिलित कर लेते हैं। वैशाख शुक्ल पूर्णिमाको भी रात्रिमें प्रदक्षिणा की जाती है। परिक्रमाके स्थानोंमें चौबीस घाट भी सम्मिलित हैं, परिक्रमाका क्रम इस प्रकार है—

विश्रामघाट, गतश्रमनारायण-मन्दिर, कंसखार, सती-बुर्ज, चर्चिकादेवी, योगघाट, पिप्पलेश्वर महादेव, योगमार्ग-वटुक, प्रयागघाट, वेणीमाधव-मन्दिर, श्यामघाट, दाऊजी मदनमोहनजी, गोकुलनाथजीके मन्दिर, कनखलतीर्थ, तिन्दुकतीर्थ, सूर्यघाट, ध्रुवक्षेत्र, ध्रुवटीला, सप्तर्षिटीला, (इसमेंसे श्वेत यज्ञीय भस्म निकलता है) कोटितीर्थ, रावणटीला, बुद्धतीर्थ, वलिटीला, (इसमेंसे काला यज्ञभस्म निकलता है) यहाँ राजा बलि और वामन भगवान्‌के दर्शन हैं। रंगभूमि, रङ्गेश्वर महादेव, सप्तसमुद्रकूप, शिवताल*, बलभद्रकुण्ड, भूतेश्वर महादेव, पोतराकुण्ड, ज्ञानवापी, जन्मभूमि, केशवदेवमन्दिर, कृष्णकूप, कुब्जाकूप, महाविद्या (विन्ध्येश्वरीदेवी) सरस्वती नाला, सरस्वती-कुण्ड, सरस्वती-मन्दिर, चामुण्डा-शक्तिपीठ, उत्तरकोटि-तीर्थ, गणेशतीर्थ, गोकर्णेश्वर महादेव, गौतमऋषिकी समाधि, सेनापतिघाट, सरस्वती-सङ्गम, दशाश्वमेधघाट, अम्बरीषटीला, चक्रतीर्थ, कृष्णगङ्गा, कलिञ्जर महादेव, सोमतीर्थ, गौघाट, घण्टाकर्ण (घण्टाभरण) मुक्तितीर्थ, कंसकिला, ब्रह्मघाट, वैकुण्ठघाट, धारापतन, वासुदेवघाट,† असिकुण्डा, वराह-क्षेत्र, द्वारकाधीशजीका मन्दिर, मणिकर्णिका घाट, महाप्रभु वल्लभाचार्यजीकी बैठक,‡ विश्रामघाट। अब लोग उत्तर-दक्षिणके कई तीर्थोंको दूरस्थ होनेके कारण प्रायः छोड़ देते हैं। बस, मथुरामें बड़े-बड़े दर्शनीय मन्दिर और स्थान ये ही हैं। छोटे-छोटे तो बहुत हैं।

मथुरापुरीके कुछ विशिष्ट तीर्थ और उनका माहात्म्य

विश्रान्तितीर्थ—विश्रान्तितीर्थ या विश्रामघाटका परिचय पिछले पृष्ठोंमें (मथुराके मन्दिर तथा दर्शनीय

यमुनासलिले स्नातः पुरुषो मुनिसत्तम। ज्येष्ठामूले सिते पक्षे द्वादश्यां समुपोषितः॥ (विष्णुपु० ८। ३३)

दर्शन—

दीर्घविष्णुं समालोक्य पद्मनाभं स्वयम्भुवम्। मथुरायां सुकृदेवि सर्वाभीष्टमवाप्नुयात्॥

विश्रान्तिसंज्ञकं दृष्ट्वा दीर्घविष्णुं च केशवम्। सर्वेषां दर्शनं पुण्यमेभिर्दृष्टैः फलं लभेत्॥ (वराहपुराण)

ऊर्जस्य शुक्लद्वादश्यां स्नात्वा वै यमुनाजले। मथुरायां हरिं दृष्ट्वा प्राप्नोति परमां गतिम्॥ (विष्णुपुराण)

प्रदक्षिणा—

मथुरां समनुप्राप्य यस्तु कुर्यात् प्रदक्षिणम्। प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुंधरा॥
(वराहपुराण १५९। १४)

ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च गोघ्नो भग्नव्रतस्तथा। मथुरां तु परिक्रम्य पूतो भवति मानवः॥
(वराहपुराण १५८। ३६)

एवं प्रदक्षिणां कृत्वा नवम्यां शुक्लकौमुदे। सर्वं कुलं समादाय विष्णुलोके महीयते॥
(वराहपु० १६०। ८०)

* शिवताल भी राजा पटनीमलका बनवाया हुआ है। पहले यह एक साधारण कुण्ड था। अब पाषाणका बना हुआ बहुत विशाल है।

† इसको ही स्वामी घाट कहते हैं।

‡ श्रीवल्लभाचार्यजीने जिन जिन स्थानोंपर श्रीमद्भागवतके सप्ताहका पारायण किये हैं, उन स्थानोंको आचार्योंकी 'बैठक' संज्ञा दी गयी है।

स्थानके संदर्भमें) दिया जा चुका है । यहाँ केवल विश्रान्तितीर्थकी महिमापर प्रकाश डालना ही अभीष्ट है । वराहपुराणमें भगवान् वराह पृथ्वीके प्रति कहते हैं—

विश्रान्तिसंज्ञकं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
यस्मिन् स्नाते नरो देवि मम लोके महीयते ॥

'हे देवि ! विश्रान्ति नामक तीर्थ तीनों लोकोंमें अति प्रसिद्ध (प्रशंसनीय) है । जहाँ स्नान करनेपर मनुष्य मेरे लोकमें पूजित होता है ।'

विश्रामघाटपर स्नान, तर्पण, पिण्डदान तथा गोदान-का विशेष महत्त्व है । इतना ही नहीं, यदि मनुष्य प्रमादवश पापकर्मोंमें लिप्त होता है तो विश्रान्तितीर्थमें स्नानमात्रसे ही उसके पाप तत्क्षण भस्म हो जाते हैं ।* इस प्रकार यह समस्त सिद्धियोंका देनेवाला भगवान् हरिका त्रैलोक्य-उजागर अनुपम तीर्थ है† ।

श्रीव्रज-मण्डल मूल है, मथुरा तीरथकान्त ।
तीन लोकमें गाइये जै जै श्री विश्रान्त ॥

असिकुण्ड-तीर्थ—एक तो यहाँ वराह-संज्ञा, दूसरी नारायणी, तीसरी वामनी और चौथी लांगुली शुभमयी शक्तियाँ हैं । जो मनुष्य असिकुण्डमें स्नान करके इन देवताओं (यहींपर वराहजी, नृसिंहजी, गणेशजी तथा हनुमान्‌जीके सुन्दर मन्दिर हैं) का दर्शन करता है वह चतुःसमुद्र-पर्यन्त पृथ्वीका राज्य प्राप्त करता तथा मथुराके समस्त तीर्थोंका फल प्राप्त करता है ।‡ असिकुण्डका वर्तमान नाम असकुंडा है ।

संयमन-तीर्थ—(स्वामीघाट)—इसका दूसरा नाम वसुदेव घाट भी है । सुनते हैं, इसी मार्गसे वसुदेवजी श्रीकृष्णको मथुरासे गोकुल ले गये थे । यह मथुराके सामने है । इसीसे इसको व्रज-भाषामें समुइघाट भी कहते हैं, जिसका नाम अब 'स्वामीघाट' प्रचलित हो गया है ।

तीर्थश्रेष्ठ संयमन तीनों लोकमें प्रसिद्ध तीर्थ है । वराहपुराणमें उल्लेख है कि वहाँ स्नान करनेपर मनुष्य भगवान्‌के धामको प्राप्त करता है ।§

कृष्णगङ्गा-तीर्थ—कृष्णगङ्गा-घाटपर कलिंजर महादेवजी, गङ्गाजी तथा दाऊजी महाराजके मन्दिर हैं । इसे 'कृष्णगङ्गोद्भवतीर्थ' भी कहते हैं । मनुष्य पञ्चतीर्थ-अभिषेकसे जो फल प्राप्त करता है, उस फलसे प्रतिदिन दसगुना अधिक कृष्णगङ्गातीर्थ प्रदान करता है । यथा—

पञ्चतीर्थाभिषेकाच्च यत्फलं लभते नरः ।
कृष्णगङ्गा दशगुणं दिशते तु दिने दिने ॥
(वराहपुराण)

चक्रतीर्थ—मथुरामण्डलमें यह तीर्थ अत्यन्त विख्यात है । इसमें स्नानमात्र करनेसे मनुष्य ब्रह्म-

---

* यदि कुर्यात् प्रमादेन पातकं तत्र मानवः । विश्रान्तिस्नानमात्रेण भस्मीभवति तत्क्षणात् ॥
(स्कन्दपु० मथुरामा०)

† व्रजभाषाके कविवर हरलालजीने विश्रामघाटकी महिमाके विषयमें (मथुरामाहात्म्यके अनुसार) वर्णन किया है—

प्रगट मधुपुरी-धाममें कालिन्दीके कूल ।
तीरथ श्रीविस्रान्तजू सकलसिद्धि कौ मूल ॥
कंस मारि, कुल-सोक हरि, लियौ तहाँ विस्राम ।
सोई क्लान्तमन सान्त करि, भ्रान्ति हरो घनस्याम ॥
प्रात समै अरु साँझको नित-प्रति आरति होइ ।
तहँ आवत सब देवता, अति आनंद-समोद ॥
धूरि-कोटके मध्यमें, मथुरापुरी प्रमान ।
ता मधि श्रीविस्रामजू, रहैं सदा भगवान् ॥

‡ एका वराहसंज्ञा च तथा नारायणी परा । वामनी च तृतीया वै चतुर्थी लाङ्गली शुभा ॥
चतुःसागरपर्यन्ता क्रान्ता तेन धरा भुवम् । तीर्थानां मथुराणां च सर्वेषां फलमश्नुते ॥
(वराहपुराण)

§ ततः संयमनं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् । तत्र स्नातो नरो देवि मम लोके स गच्छति ॥
(वराहपुराण)

हत्याके पापसे भी सर्वथा मुक्त हो जाते हैं।* वर्तमान चक्रतीर्थ वृन्दावनरोडपर (टाँगा अड्डेके पास) यमुना-किनारेपर है।

ध्रुवतीर्थ—यह परम पवित्र स्थान ध्रुव-क्षेत्र कहलाता है। यहाँ ध्रुवजीने तपस्याकी शुद्ध इच्छासे तप किया था। मनुष्य यहाँ स्नानमात्रसे ध्रुवलोकको प्राप्त होकर पूजित होता है। ध्रुवतीर्थमें जप, होम, दान, तपस्या, श्राद्ध आदि करनेका वराहपुराणमें बड़ा माहात्म्य बतलाया है—

ध्रुवतीर्थे तु वसुधे यः श्राद्धं कुरुते नरः।
पितॄन् संतारयेत् सर्वान् पितृपक्षे विशेषतः॥

'हे वसुंधरे! ध्रुवतीर्थमें जो मनुष्य श्राद्ध करता है, वह समस्त पितृलोकका उद्धार कर देता है। अतः यहाँ विशेषकर पितृ-पक्षमें श्राद्धादि करना अत्युत्तम है।†

अक्रूरतीर्थ—यहाँ सूर्यग्रहणके समय स्नान करनेसे मनुष्य राजसूय एवं अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। श्रीकृष्णचन्द्रने अक्रूरजीको यहाँ (मथुरामें) अपने दिव्य-दर्शनसे कृतार्थ किया था। यहाँ गोपीनाथजीका मन्दिर है और वैशाख शुक्ल नवमीको मेला लगता है। यह स्थान मथुरासे उत्तर दो कोस दूर वृन्दावनमार्गसे हटकर ईशानकोणमें है।

मथुरा (व्रज)मण्डलके द्वादश वन भी महान् तीर्थ माने जाते हैं। ये सभी वन व्रज-परिक्रमाके अन्तर्गत आते हैं, जिनका वर्णन प्रसङ्गानुसार आगेके पृष्ठोंमें किया जायगा। व्रज-परिक्रमा (८४ कोसपर्यन्त) प्रतिवर्ष वर्षा, शरद् तथा फाल्गुनमें मथुरासे आरम्भ होती है। इसे 'व्रजयात्रा' भी कहते हैं।

मथुराके उत्सव-पर्व तथा मेले—झूलन, जन्माष्टमी, अन्नकूट, होली, फूलडोल आदि उत्सव तथा यमद्वितीया, गोचारण, अक्षयनवमी (मथुरा-वृन्दावनकी युगल-परिक्रमा), देवोत्थान एकादशी (पञ्चक्रोसी-परिक्रमा) तथा कंसका मेला आदि अधिक प्रसिद्ध हैं।

मथुरामें ठहरनेके स्थान (धर्मशालाएँ)—मथुरा एक बड़ा तीर्थ होनेके कारण यहाँ यात्री बहुत आते हैं। धनी-मानी, दानी पुरुषोंने यहाँ यात्रियोंके ठहरनेके लिये स्थान-स्थानपर अनेक धर्मशालाएँ बनवायी हैं। जिनमें राजा तिलोईकी धर्मशाला (जिसमें लगभग दो हजार यात्रियोंके ठहरनेकी जगह है) बंगाली घाटपर; राजा अवागढ़की धर्मशाला (जिसमें लगभग तीन-चार हजार आदमी ठहर सकते हैं) नगरके मध्यमें; श्रीहरमुखराम दुलीचन्दकी धर्मशाला स्वामीघाटपर; हरदयाल विष्णुदयालकी धर्मशाला प्रधान सड़कपर तथा मंगल-गिरधारीकी धर्मशाला छत्ताबाजारमें प्रमुख हैं। बाबू कल्याणसिंह भार्गवकी बनवायी हुई पत्थरोंकी संगीन, बड़ी सुन्दर धर्मशाला मथुरासे बाहर (वृन्दावन दरवाजेसे आगे चलकर) है। इसमें उच्चश्रेणी और निम्नश्रेणीके यात्रियोंके ठहरनेका अलग-अलग प्रबन्ध है, किंतु नगरसे दूर होनेके कारण उच्चश्रेणीके यात्री यहाँ कम ठहरते हैं। इसके अतिरिक्त माहेश्वरियोंकी धर्मशाला, हाथरसवालोंकी धर्मशाला, कलकत्तावालोंकी धर्मशाला, सिन्धी-धर्मशाला, बीकानेरियोंकी धर्मशाला, भाटियोंकी धर्मशाला, पंजाबियोंकी धर्मशाला आदि लगभग सौसे ऊपर (धर्मशालाएँ) हैं। श्रीकृष्ण-जन्मभूमिपर (कटरा केशवदेवके पास) डालमिया-संस्थानकी ओरसे बनवाया

* देखें—वराहपुराण- (अध्याय १६१-१६२) तथा 'कल्याण'का प्रस्तुत 'संक्षिप्त-वराहपुराणाङ्क' पृष्ठसंख्या-२९४-२९५ तक)

† ध्रुवतीर्थमें श्राद्ध और पिण्डदानकी महिमाके विषयमें वराहपुराण (अ० १८० से १८२)में विस्तारसे वर्णन है। द्रष्टव्य-'कल्याण'का 'संक्षिप्त-वराहपुराणाङ्क' पृ० सं० ३३०से ३३४ तक [illegible]

हुआ, आधुनिक ढंगका, सुरुचिपूर्ण 'अतिथि-गृह' है जो दूर-दूरसे (विदेशोंसे भी) आये हुए यात्रियोंको ठहरनेकी सुविधा देता है।

इनके अतिरिक्त पण्डोंके यहाँ ठहरनेका भी प्रबन्ध रहता है। यहाँके पण्डे चतुर्वेदी ब्राह्मण हैं, जो 'चौबे' कहलाते हैं।

पुरातत्त्व-विभागका संग्रहालय—मथुरा तथा व्रजप्रदेशके इतिहासपर प्रकाश डालनेवाला यह भी एक विशिष्ट और दर्शनीय स्थान है। इसमें मथुरा तथा उसके आस-पासकी खुदाईसे प्राप्त अनेक ऐतिहासिक मूर्तियों तथा वस्तुओंका अच्छा संग्रह है। इसे अजायबघर (म्यूजियम) कहते हैं। इतिहासके विद्यार्थियों तथा शिल्प-कला-प्रेमियोंके अध्ययनके लिये यहाँ पर्याप्त सामग्री है।

मथुरा अति प्राचीन नगर होनेपर भी नया-सा मालूम होता है। इसका कारण यह है कि विदेशी आक्रमणोंके समय यह दो बार उजाड़ा जा चुका है। जिस स्थानपर वर्तमान नगर बसा है, वहाँ पहले पुराना नगर था। यह अबकी बार तीसरी बार बसाया गया है। यवनों और विदेशी आक्रमणकारियों (शक, हूण, कुषाण आदि)ने इस नगरीको निर्ममतापूर्वक कई बार खूब लूटा और तोड़ा-फोड़ा है। उन दुर्विचारी लोगोंने यहाँकी उस विश्ववन्द्य महान् संस्कृतिको (जिसने भारतको ही नहीं, अपितु समस्त विश्वको संसारके अन्यतम दर्शन, ज्ञान, भक्ति और भारतकी शान्तिदायक सनातन चिन्तन-परम्पराका परमोज्ज्वल, शीतल प्रकाश देकर अन्ततः संसारका हित-साधन ही किया) आघात पहुँचाकर स्वयं अपना ही अहित किया है। देश, धर्म और संस्कृतिके द्रोही उन अविवेकी लोगोंने धर्म और संस्कृतिके प्रति जो अन्याय (अक्षम्य अपराध) किया है, उसके लिये इतिहासने उन्हें कभी क्षमा नहीं किया। मथुराको नष्ट करनेवाले उन विदेशी लुटेरों और आततायियोंके अस्तित्व और अवशिष्ट-चिह्नोंका आज कहीं भी कोई पता नहीं है। उन (शक, हूण आदि)के वे बड़े-बड़े महान् साम्राज्य अब न जाने पृथ्वीके किस गर्तमें समाकर सदाके लिये कहाँ विलीन हो गये ! कोई नहीं जानता। किंतु मथुरा या व्रजप्रदेश तो आज भी वही है। उसकी स्थिति भी वही है। अपने उसी स्थानपर अवस्थित भारतीय धर्म, दर्शन, साहित्य और संस्कृतिके सुयशकी धवल ध्वजा भी आज उसी गौरव और महिमाके साथ फहरा रही है। यह भूमि जिस प्रकार आजसे पाँच हजार वर्ष पूर्व गौरवमयी और वन्दनीय थी, उतनी ही आज भी है। आज व्रज-संस्कृति और साहित्य दिन-प्रतिदिन उन्नयनकी ओर है। क्यों न हो; जिसको स्वयं भगवान् चाहते हैं—उसे फिर कौन नहीं चाहता—सभी चाहते हैं। भगवान्‌की उस प्रिय वस्तुको मिटानेकी असफल चेष्टा या दुःसाहस तो कदाचित् कोई अज्ञानी ही कर सकता है। पद्मपुराण, पातालखण्डमें भगवान्‌के वचन हैं—

> अहो न जानन्ति नरा दुराशयाः
> पुरीं मदीयां परमां सनातनीम्।
> सुरेन्द्रनागेन्द्रमुनीन्द्रसंस्तुतां
> मनोरमां तां मथुरां पुरातनीम्॥
> (७३ । ४३)

'आश्चर्य है कि दुष्ट हृदयके लोग मेरी इस परम सुन्दर, सनातन-पुरी (मथुरा-नगरी)को नहीं जानते, जिसकी सुरेन्द्र, नागेन्द्र तथा मुनीन्द्रोंने स्तुति की है और जो मेरा ही स्वरूप है।'

वस्तुतः मथुरा और व्रजको जो असाधारण महत्त्व प्राप्त हुआ, वह लीलापुरुषोत्तम भगवान्

श्रीकृष्णकी जन्मभूमि और क्रीडाभूमि होनेके कारण ही । श्रीकृष्ण भागवत-धर्मके महान् प्रतिपादक, रक्षक और प्रसारक हुए । समस्त विश्वके लिये उन्होंने गीताके उद्घोषद्वारा शान्ति और मनुष्यमात्रके आत्मकल्याणार्थ जो दिव्य संदेश दिया, वह प्रकाश-स्तम्भकी भाँति चिरकालतक विश्वके जनमनका मार्गदर्शन करता रहेगा ।

श्रीकृष्णके इस आदर्श (भागवत या भगवदीय) धर्मने कोटि-कोटि भारतीयोंका अनुरञ्जन किया, साथ ही कितने ही विदेशी भी इसके द्वारा प्रभावित हुए और होते जा रहे हैं* । उसके लोकरञ्जक स्वरूपने कोमल भावनाओंकी जो छाप जन-मानसपटलपर लगा दी है, वह अमिट है । (क्रमशः)

मथुराकी तात्त्विक महिमा

मथ्यते तु जगत्सर्वं ब्रह्मज्ञानेन येन वा ।
तत्सारभूतं यद्यस्यां मथुरा सा निगद्यते ॥

(अथर्ववेदीय गोपालतापनी-उपनिषद्)

''जिस ब्रह्मज्ञान-[एवं भक्तियोग-]से समस्त जगत् मथा जाता है अर्थात् ज्ञानी [और भक्तों]का जहाँ संसार लय हो जाता है, वह सारभूत ज्ञान [और भक्ति] जिसमें सदा विद्यमान रहते हैं, वह (पुरी) मथुरा कहलाती है ।'

समस्त विश्वका मथा हुआ जो सारभूत 'ज्ञान-नवनीत' (मक्खन) अर्थात् 'ब्रह्मज्ञान' है—वही मथुरा है । अथवा मथित उक्त ज्ञान जहाँ हो, वह ब्रह्मज्ञानमयी पुरी मथुरा है । मथुराका नामान्तर 'मधुरा' है । ब्रह्मविद्या या आत्मविद्याकी वैदिक संज्ञा 'मधु-विद्या' है; क्योंकि जो रस व मिठास इस (विद्या)में है, वह अन्यत्र नहीं । उस देवमधु-(ब्रह्मविद्या या पराभक्ति-)का माधुर्य जहाँ प्रभूतमात्रामें प्रादुर्भूत हो, वही मधुर देश—मधुप्रदेश है । इसीलिये मथुराको 'मधुरा' या 'मधुपुरी' भी कहा जाता है ।

* वर्तमानमें 'हरे राम हरे कृष्ण'का उद्घोष विदेशोंमें सुननेको मिल रहा है । यूरोप और अमेरिकाके अनेक प्रमुख देशोंमें (स्वामी ए० सी० भक्तिवेदान्ततीर्थकी प्रेरणाद्वारा) श्रीकृष्ण-भावना-प्रसार-अन्ताराष्ट्रिय-संघ-(International Shri Krishna Conscious Organisation)की अनेक केन्द्रीय शाखाएँ (Centers) स्थापित हो चुकी हैं । इन केन्द्रोंके द्वारा श्रीकृष्ण-भक्ति तथा भगवन्नाम-संकीर्तनका प्रचार-प्रसार विदेशोंमें हो रहा है । प्रत्येक केन्द्रमें श्रीकृष्ण-मन्दिरोंकी स्थापनाएँ भी हुई हैं । उदाहरणार्थ एक मन्दिर वृन्दावनमें रमणरेतीके पास 'श्रीकृष्ण-बलराम-मन्दिर'के नामसे अभी कुछ वर्षों पूर्व ही बना है । वहाँके प्रायः सभी कार्यकर्ता विदेशी (यूरोपियन) हैं । इस कारण इसकी प्रसिद्धि 'अंग्रेजोंके मन्दिर'के नामसे है । यहाँ रहनेवालोंका भारतीय संस्कृतिके अनुरूप रहन-सहन, वेष-भूषा, परिचर्या, सद्भाव और संयमपूर्ण साधनारत जीवन देखकर बड़ा सुखद आश्चर्य और साथ ही अपनी संस्कृतिके प्रति गौरवका अनुभव होता है—अपने देशके सर्वथा विपरीत धर्म, दर्शन और परिस्थितिमें जीनेवाले, इन लोगोंने (भारतीय संस्कृति-से अत्यधिक प्रभावित एवं उसपर न्योछावर होकर ही) अपनेमें कितना परिवर्तन कर लिया है । वस्तुतः भारतीय संस्कृति और दर्शनके प्रति किसीकी भी सच्ची अनन्य निष्ठा होनेपर, ऐसा (परिवर्तन) होना कोई असम्भव नहीं है ।

भगवान् श्रीवराहका अवतार

(लेखक—पं० श्रीशिवकुमारजी शास्त्री, व्याकरणाचार्य, दर्शनालङ्कार)

अनन्त ब्रह्माण्डोंके अभिन्न निमित्तोपादानकारण, प्रत्यगभिन्न चैतन्य, प्रज्ञानघन, भगवान् श्रीविष्णु सर्वकल्याणार्थ रचित प्रपञ्चकी उचित स्थितिके लिये स्वयमेव विविध रूपोंसे अवतीर्ण होकर विपद्ग्रस्त दीन-हीन जीवोंकी रक्षा करते हैं। अशान्त व्याकुल जीवोंको अभय देकर सृष्टिकी स्थितिमें बाधक उपद्रवी, उद्दण्ड, दुर्दान्त, अभिमानी जीवोंका दमन करते हैं। करुणावरुणालय भगवान्‌की यह जीवोंपर अकारण करुणा उनकी भगवत्ता एवं सर्वसमर्थताका परम प्रमाण है। सर्वसामर्थ्यसम्पन्न भगवान्‌का अवतरण, विविध विचित्र अचिन्त्य अतर्क्य कारणोंको लेकर ही होता है। उनके अवतरणका स्पष्ट प्रयोजन उनकी लीलाओंका सूक्ष्म रहस्य योगीन्द्र-मुनीन्द्र विवेकी चतुर पुरुषोंको भी बुद्धिगम्य नहीं है। सत्-श्रद्धा, सद्विश्वास ही भगवत्प्राप्तिमें एक सम्बल है। किस कार्यके लिये किस रूपका धारण करना उचित है, यह सब भगवदिच्छापर आधारित है। जिस कार्यके लिये जो रूप अपेक्षित है, सर्वान्तर, सर्वेश्वर, सर्वनियन्ता, सर्वकर्मसाक्षी श्रीभगवान् उसी रूपमें सम्मुखीन हो जाते हैं। प्रलयमें राजा सत्यव्रतकी रक्षाके लिये मत्स्यावतारसे अतिरिक्त क्या अवतार उचित होता, सर्वप्रथम जलमें निमग्न पृथ्वीके समुद्धारके लिये वराहरूपसे श्रेष्ठ कौन अवतार उपयुक्त होता। सूकरमें घ्राणशक्तिकी तीव्रता सर्वविदित है और दर्शनोंमें पृथ्वीको गन्धवती बताया गया है। गन्धत्व पृथ्वीका अवच्छेदक है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—इन गुणोंमें 'गन्ध' पृथ्वीका अपना गुण है। जलमें निमग्न पृथ्वीके उद्धारमें भगवान् विष्णुका दिव्य वराह-रूप ही सुतरां श्लाघ्य है।

अन्य रूपोंकी अपेक्षा पृथ्वीको छिन्न-भिन्न करनेको समुद्यत हिरण्याक्ष-जैसे दुर्दान्त, असह्यविक्रम, महाभिमानी दैत्यके विनाशके लिये श्रीवराहरूप कितना हृदयंगम तथा उपयुक्त है, यह विचारणीय है। श्रीवराह-रूपधारी श्रीभगवान्‌ने पृथ्वीका उद्धार कर जलके ऊपर उसे स्थापित कर उसमें अपनी आधारशक्तिका सञ्चार किया—**'स गामुदस्तात् सलिलस्य गोचरे विन्यस्य तस्यामदधात् स्वसत्त्वम्।'** (श्रीमद्भा० ३। १८। ८) इसीलिये संसारके कल्याणके लिये सम्पूर्ण यज्ञोंके अध्यक्ष उन भगवान्‌ने ही रसातल पहुँची हुई पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये सूकररूप धारण किया—

द्वितीयं तु भवायास्य रसातलगतां महीम्।
उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः॥
(श्रीमद्भा० १। ३। ७)

अनन्त भगवान्‌ने प्रलयके जलमें निमग्न पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये सम्पूर्ण यज्ञमय वराह-शरीर धारण करते हुए महासमुद्रके भीतर ही पार्थिव शक्तिका उद्धार करते हुए लड़नेके लिये आये हुए आदिदैत्य हिरण्याक्षको अपनी दाढ़ोंसे उसी प्रकार विदीर्ण कर दिया, जिस प्रकार इन्द्रने अपने वज्रसे पर्वतोंके पक्षोंका छेदन किया था—

यत्रोद्यतः क्षितितलोद्धरणाय बिभ्रत्
क्रौडीं तनुं सकलयज्ञमयीमनन्तः।
अन्तर्महार्णव उपागतमादिदैत्यं
तं दंष्ट्रयाद्रिमिव वज्रधरो ददार॥
(श्रीमद्भा० ३। ७। १)

प्रमुख दस अवतारोंमें भगवान्‌का वराहावतार जगत्‌के संरक्षणको लेकर विशिष्ट महत्त्व रखता है। जगत्‌की स्थिति पृथ्वीके बिना कैसे सम्भव है और गन्धगुणवती पृथ्वीका समुद्धार भगवान् वराहको छोड़कर

और कौन करेगा ! 'वराहपुराण'में भगवान् वराहके दिव्य चरित्रोंका विशद वर्णन पढ़कर हम सब सफल-जीवन होंगे। यह सब सनातन-धर्मके परम संरक्षक-प्रचारक कल्याणमय मार्गमें प्रवृत्त करनेवाले 'कल्याण'-जैसे पत्रकी कृपाका फल है।

भगवन्! अजित्! आपकी जय हो! जय हो! यज्ञपते! अपने वेदत्रयी रूप शरीरको फटकारनेवाले आपको नमन है। आपके रोमकूपोंमें समस्त वैदिक यज्ञ छिपे हैं। पृथ्वीके उद्धारके लिये सूकररूप धारण करनेवाले आपको हमारा नमस्कार है—

जितं जितं तेऽजित यज्ञभावन
त्रयीं तनुं स्वां परिधुन्वते नमः।
यद् रोमगर्तेषु निलिल्युरध्वरा-
स्तस्मै नमः कारणसूकराय ते॥
(श्रीमद्भा० ३। १३। ३४)

ऋषियोंके इन शब्दोंसे हम तो भगवान् दिव्य वराहके श्रीचरणोंमें जीवनके वर दिनोंकी याचना करते हुए एकमात्र शिरसा नमन ही जानते हैं।

सनातन आदि ऋषियोंद्वारा की गयी भगवान् श्रीवराहकी स्तुति

जयेश्वराणां परमेश केशव प्रभो गदाशङ्खधरासिचक्रधृक्।
प्रसूतिनाशस्थितिहेतुरीश्वरस्त्वमेव नान्यत्परमं च यत्पदम्॥
पादेषु वेदास्तव यूपदंष्ट्र दन्तेषु यज्ञाश्चितयश्च वक्त्रे।
हुताशजिह्वोऽसि तनूरुहाणि दर्भाः प्रभो यज्ञपुमांस्त्वमेव॥
विलोचने रात्र्यहनी महात्मन् सर्वाश्रयं ब्रह्म परं शिरस्ते।
सूक्तान्यशेषाणि सटाकलापो घ्राणं समस्तानि हवींषि देव॥
स्रुक्तुण्ड सामस्वरधीरनाद प्राग्वंशकायाखिलसत्रसंधे।
पूर्तेष्टधर्मश्रवणोऽसि देव सनातनात्मन् भगवन् प्रसीद॥
पदक्रमाक्रान्तभुवं भवन्तमादिस्थितं चाक्षर विश्वमूर्ते।
विश्वस्य विद्मः परमेश्वरोऽसि प्रसीद नाथोऽसि परावरस्य॥
दंष्ट्राग्रविन्यस्तमशेषमेतद् भूमण्डलं नाथ विभाव्यते ते।
विगाहतः पद्मवनं विलग्नं सरोजिनीपत्रमिवोढपङ्कम्॥
द्यावापृथिव्योरतुलप्रभाव यदन्तरं तद्वपुषा तवैव।
व्याप्तं जगद्व्याप्तिसमर्थदीप्ते हिताय विश्वस्य विभो भव त्वम्॥
परमार्थस्त्वमेवैको नान्योऽस्ति जगतः पते। तवैष महिमा येन व्याप्तमेतच्चराचरम्॥
यदेतद् दृश्यते मूर्त्तमेतज्ज्ञानात्मनस्तव। भ्रान्तिज्ञानेन पश्यन्ति जगद्रूपमयोगिनः॥
ज्ञानस्वरूपमखिलं जगदेतदबुद्धयः। अर्थस्वरूपं पश्यन्तो भ्राम्यन्ते मोहसम्प्लवे॥

ये तु ज्ञानविदः शुद्धचेतसस्तेऽखिलं जगत्। ज्ञानात्मकं प्रपश्यन्ति त्वद्रूपं परमेश्वर॥
प्रसीद सर्व सर्वात्मन् वासाय जगतामिमाम्। उद्धरोर्वीममेयात्मञ् शं नो देह्यब्जलोचन॥
सत्त्वोद्रिक्तोऽसि भगवन् गोविन्द पृथिवीमिमाम्। समुद्धर भवायेश शं नो देह्यब्जलोचन॥
सर्गप्रवृत्तिर्भवतो जगतामुपकारिणी। भवत्वेषा नमस्तेऽस्तु शं नो देह्यब्जलोचन॥

(श्रीविष्णुपुराण १।४।३१—४४)

'हे ब्रह्मादि ईश्वरोंके भी परम ईश्वर! हे केशव! हे शङ्ख-गदाधर! हे खड्ग-चक्रधारी प्रभो! आपकी जय हो! आप ही संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और नाशके कारण हैं तथा आप ही ईश्वर हैं और जिसे परम पद कहते हैं, वह भी आपसे अतिरिक्त और कुछ नहीं है। हे यूपरूपी दाढ़ोंवाले प्रभो! आप ही यज्ञपुरुष हैं, आपके चरणोंमें चारों वेद हैं, दाँतोंमें यज्ञ हैं, मुखमें (श्येन, चित आदि) चितियाँ हैं। हुताशन (यज्ञाग्नि) आपकी जिह्वा है तथा कुशाएँ रोमावलि हैं। हे महात्मन्! रात और दिन आपके नेत्र हैं तथा सबका आधार-भूत परब्रह्म आपका सिर है। हे देव! वैष्णव आदि समस्त सूक्त आपके सटाकलाप (स्कन्धके रोम-गुच्छ) हैं और समग्र हवि आपके प्राण हैं। हे प्रभो! स्रुक् आपका तुण्ड (थूथनी) है, सामस्वर धीर-गम्भीर शब्द है, प्राग्वंश (यजमानगृह) शरीर है तथा सत्र आपके शरीरकी संधियाँ हैं। हे देव! इष्ट (श्रौत) और पूर्त (स्मार्त) धर्म आपके कान हैं। हे नित्यस्वरूप भगवन्! प्रसन्न होइये। हे अक्षर! हे विश्वमूर्ते! अपने पादप्रहारसे भूमण्डलको व्याप्त करनेवाले आपको हम विश्वके आदिकारण समझते हैं। आप सम्पूर्ण चराचर जगत्के परमेश्वर और नाथ हैं, अतः प्रसन्न होइये। हे नाथ! आपकी दाढ़ोंपर रखा हुआ यह सम्पूर्ण भूमण्डल ऐसा प्रतीत होता है, मानो कमलवनको रौंदते हुए गजराजके दाँतोंसे कोई कीचड़में सना हुआ कमलका पत्ता लगा हो। हे अनुपम प्रभावशाली प्रभो! पृथिवी और आकाशके बीचमें जितना अन्तर है, वह आपके शरीरसे ही व्याप्त है। हे विश्वको व्याप्त करनेमें समर्थ तेजयुक्त प्रभो! आप विश्वका कल्याण कीजिये। हे जगत्पते! परमार्थ (सत्य वस्तु) तो एकमात्र आप ही हैं, आपके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है। यह आपकी ही महिमा (माया) है, जिससे यह सम्पूर्ण चराचर जगत् व्याप्त है। यह जो कुछ भी मूर्तिमान् जगत् दिखायी देता है, ज्ञानस्वरूप आपका ही रूप है। अजितेन्द्रिय लोग भ्रमसे इसे जगत्-रूप देखते हैं। इस सम्पूर्ण ज्ञानस्वरूप जगत्को बुद्धिहीन लोग अर्थरूप देखते हैं। अतः वे निरन्तर मोहमय संसार-सागरमें भटका करते हैं। हे परमेश्वर! जो लोग शुद्धचित्त और विज्ञान-वेत्ता हैं, वे इस सम्पूर्ण संसारको आपका ज्ञानात्मक स्वरूप ही देखते हैं। हे सर्व! हे सर्वात्मन्! प्रसन्न होइये। हे अप्रमेयात्मन्! हे कमलनयन! संसारके निवासके लिये पृथिवीका उद्धार करके हमको शान्ति प्रदान कीजिये। हे भगवन्! हे गोविन्द! इस समय आप सत्त्वप्रधान हैं, अतः हे ईश! जगत्के उद्भवके लिये आप इस पृथिवीका उद्धार कीजिये और हे कमलनयन! हमको शान्ति प्रदान कीजिये। आपके द्वारा यह सर्गकी प्रवृत्ति संसारका उपकार करनेवाली हो। हे कमलनयन! आपको नमस्कार है, आप हमको शान्ति प्रदान कीजिये।

भद्रमतिद्वारा भगवान् वराहकी स्तुति

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय नमो नमस्तेऽखिलपालकाय ।
नमो नमस्तेऽमरनायकाय नमो नमो दैत्यविमर्दनाय ॥
नमो नमः कारणवामनाय नारायणायामितविक्रमाय ।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥
नमः पयोराशिनिवासकाय नमोऽस्तु लक्ष्मीपतयेऽव्ययाय ।
नमोऽस्तु सूर्याद्यमितप्रभाय नमो नमः पुण्यगतागताय ॥
नमो नमोऽर्केन्दुविलोचनाय नमोऽस्तु ते यज्ञफलप्रदाय ।
नमोऽस्तु यज्ञाङ्गविराजिताय नमोऽस्तु ते सज्जनवल्लभाय ॥
नमो नमः कारणकारणाय नमोऽस्तु शब्दादिविवर्जिताय ।
नमोऽस्तु तेऽभीष्टसुखप्रदाय नमो नमो भक्तमनोरमाय ॥
नमो नमस्तेऽद्भुतकारणाय नमोऽस्तु ते मन्दरधारकाय ।
नमोऽस्तु ते यज्ञवराहनाम्ने नमो हिरण्याक्षविदारकाय ॥
नमोऽस्तु ते वामनरूपभाजे नमोऽस्तु ते क्षत्रकुलान्तकाय ।
नमोऽस्तु ते रावणमर्दनाय नमोऽस्तु ते नन्दसुताग्रजाय ॥
नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते सुखदायिने । श्रितार्तिनाशिने तुभ्यं भूयो भूयो नमो नमः ॥

(स्कन्दपुराण २ । २० । ७५, ७७–८३)

'सबके कारणरूप भगवान् आपको नमस्कार है ! नमस्कार है । सबका पालन करनेवाले आपको नमस्कार है, नमस्कार है । समस्त देवताओंके स्वामी आपको नमस्कार है, नमस्कार है । दैत्योंका संहार करनेवाले आपको नमस्कार है, नमस्कार है । जिन्होंने किसी विशेष हेतुसे वामनरूप धारण किया, जो नारस्वरूप जलमें निवास करनेके कारण नारायण कहलाते हैं, जिनके विक्रमकी कोई सीमा नहीं है तथा जो शार्ङ्गधनुष, चक्र, खड्ग और गदा धारण करते हैं, उन भगवान् पुरुषोत्तमको हमारा बार-बार नमस्कार है । क्षीरसिन्धुमें निवास करनेवाले भगवान्‌को नमस्कार है । अविनाशी लक्ष्मीपतिको नमस्कार है । जिनके अनन्त तेजकी तुलना सूर्य आदिसे भी नहीं हो सकती, उन भगवान्‌को नमस्कार है तथा जो पुण्य-कर्मपरायण पुरुषोंको स्वतः प्राप्त होते हैं, उन कृपालु श्रीहरिको बार-बार नमस्कार है । सूर्य और चन्द्रमा जिनके नेत्र हैं, जो सम्पूर्ण यज्ञोंका फल देनेवाले हैं, यज्ञाङ्गोंसे जिनकी शोभा होती है तथा जो साधु पुरुषोंके परम प्रिय हैं, उन भगवान् श्रीनिवासको बार-बार नमस्कार है । जो कारणके भी कारण, शब्दादि विषयोंसे रहित, अभीष्ट सुख देनेवाले तथा भक्तोंके हृदयमें रमण करनेवाले हैं, उन भक्तवत्सल भगवान्‌को नमस्कार है । अद्भुत कारणरूप आपको नमस्कार है, नमस्कार है । मन्दराचल पर्वत धारण करनेवाले कच्छपरूपधारी आपको हमारा नमस्कार है । यज्ञवराहरूपमें प्रकट होनेवाले आपको नमस्कार है । हिरण्याक्षको विदीर्ण करनेवाले आपको नमस्कार है । वामनरूपधारी आपको नमस्कार है । क्षत्रियकुलका अन्त करनेवाले परशुरामरूपमें आपको नमस्कार है । रावणका मर्दन करनेवाले श्रीरामरूपधारी आपको नमस्कार है तथा नन्दनन्दन श्रीकृष्णके बड़े भाई बलरामरूपमें आपको नमस्कार है । कमलाकान्त ! आपको नमस्कार है । सबको सुख देनेवाले आपको नमस्कार है । भगवन् ! आप शरणागतोंकी पीडाका नाश करनेवाले हैं । आपको बारंबार नमस्कार है ।'

पृथ्वीद्वारा भगवान् यज्ञ-वराहकी प्रार्थना

'उत्तर-कुरु'वर्षमें भगवान् यज्ञपुरुष वराहमूर्ति धारण करके विराजमान हैं । वहाँके निवासियोंके सहित साक्षात् पृथ्वीदेवी उनकी अविचल भक्तिभावसे उपासना करती और परमोत्कृष्ट मन्त्रका जप करती हुई स्तुति करती हैं—

ॐ नमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते ।

यस्य स्वरूपं कवयो विपश्चितो गुणेषु दारुष्विव जातवेदसम् ।
मथ्नन्ति मथ्ना मनसा दिदृक्षवो गूढं क्रियार्थैर्नम ईरितात्मने ॥
द्रव्यक्रियाहेत्वयनेशकर्तृभिर्मायागुणैर्वस्तुनिरीक्षितात्मने ।
अन्वीक्षयाङ्गातिशयात्मबुद्धिभिर्निरस्तमायाकृतये नमो नमः ॥
करोति विश्वस्थितिसंयमोदयं यस्येप्सितं नेप्सितमीक्षितुर्गुणैः ।
माया यथायो भ्रमते तदाश्रयं ग्राव्णो नमस्ते गुणकर्मसाक्षिणे ॥
प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे यो मां रसाया जगदादिसूकरः ।
कृत्वाग्रदंष्ट्रे निरगादुदन्वतः क्रीडन्निवेभः प्रणतास्मि तं विभुमिति ॥

(श्रीमद्भागवत ५ । १८ । ३५–३९)

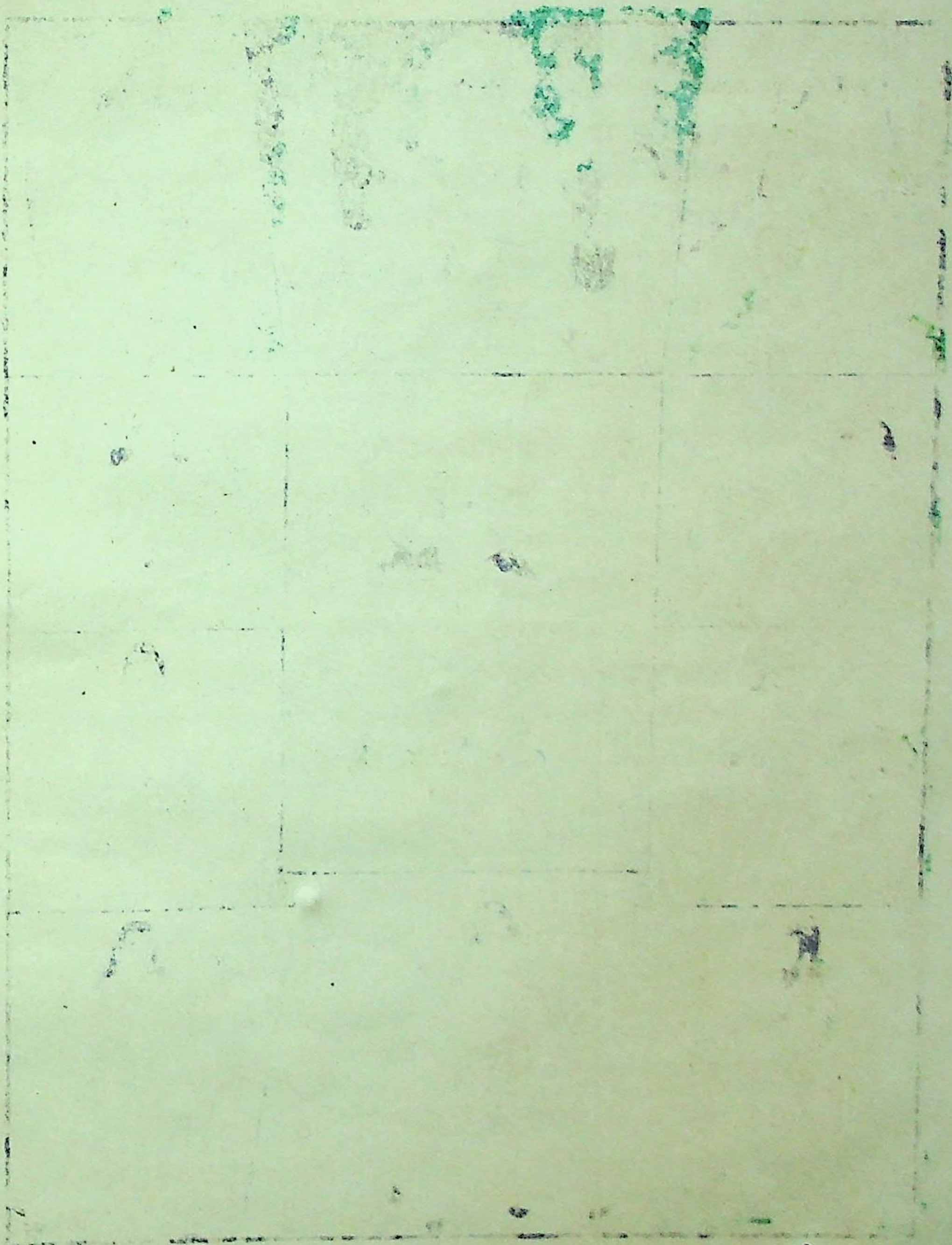
'जिनका तत्त्व मन्त्रोंसे जाना जाता है, जो यज्ञ और क्रतुरूप हैं तथा बड़े-बड़े यज्ञ जिनके अङ्ग हैं—उन ओङ्कारस्वरूप शुक्लकर्ममय त्रियुगमूर्ति पुरुषोत्तम भगवान् वराहको हमारा बार-बार नमस्कार है ।'

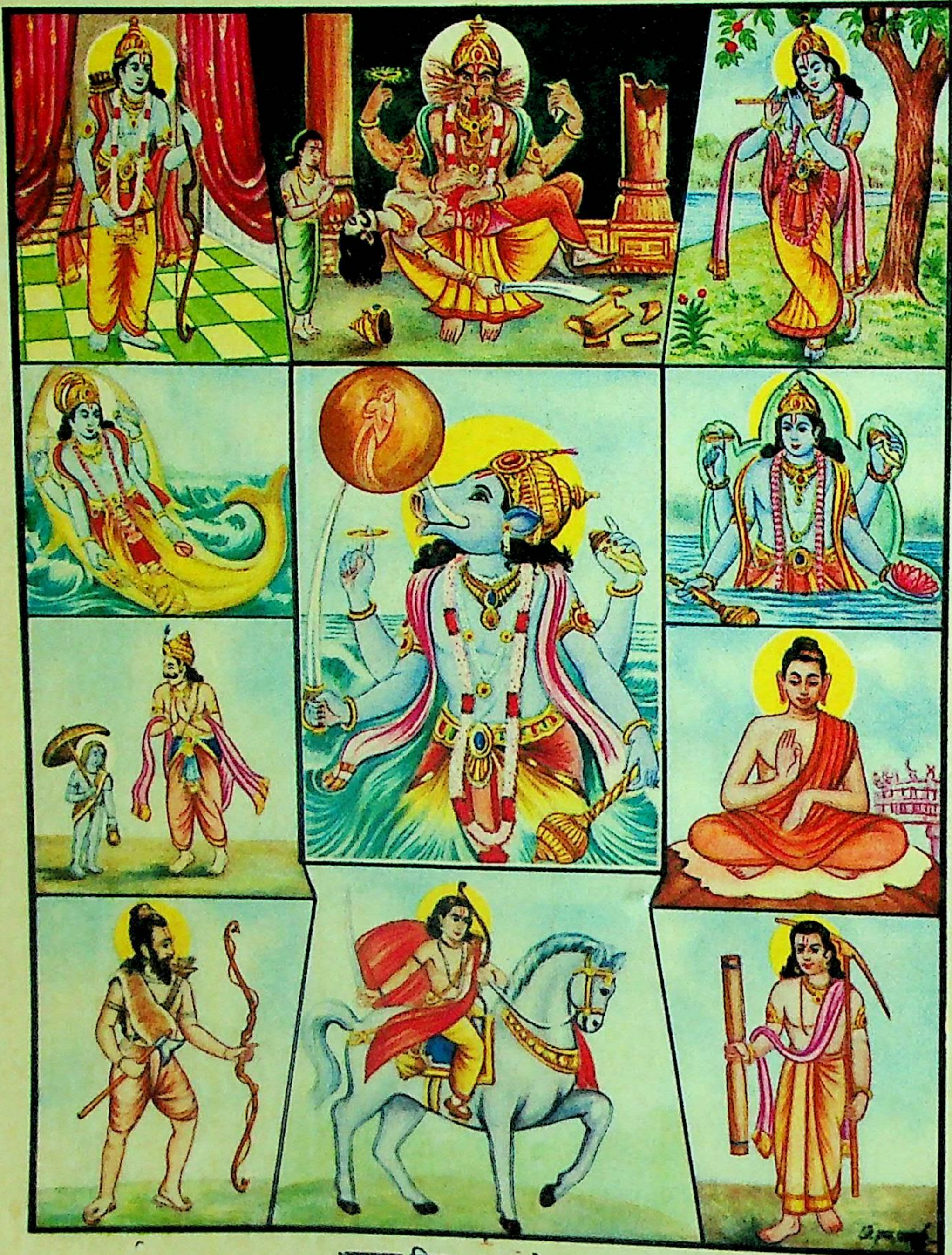
'ऋत्विजगण जिस प्रकार अरणिरूप काष्ठखण्डोंमें छिपी हुई अग्निको मन्थनद्वारा प्रकट करते हैं, उसी प्रकार कर्मासक्ति एवं कर्मफलकी कामनासे छिपे हुए जिनके रूपको देखनेकी इच्छासे परमप्रवीण पण्डितजन अपने विवेकयुक्त मनरूप मन्थनकाष्ठसे शरीर एवं इन्द्रियादिको बिलो डालते हैं । इस प्रकार मन्थन करनेपर अपने स्वरूपको प्रकट करनेवाले आपको नमस्कार है । विचार तथा यम-नियमादि योगाङ्गोंके साधनसे जिनकी बुद्धि निश्चयात्मिका हो गयी है—वे महापुरुष द्रव्य (विषय), क्रिया (इन्द्रियोंके व्यापार), हेतु (इन्द्रियाधिष्ठाता देवता), अयन (शरीर), ईश, काल और कर्ता (अहंकार) आदि मायाके कार्योंको देखकर जिनके वास्तविक स्वरूपका निश्चय करते हैं, ऐसे मायिक आकृतियोंसे रहित आपको बार-बार नमस्कार है । जिस प्रकार लोहा जड होनेपर भी चुम्बककी संनिधिमात्रसे चलने-फिरने लगता है, उसी प्रकार जिन सर्वसाक्षीकी इच्छामात्रसे—जो अपने लिये नहीं, बल्कि समस्त प्राणियोंके लिये होती है—प्रकृति अपने गुणोंके द्वारा जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करती रहती है, ऐसे सम्पूर्ण गुणों एवं कर्मोंके साक्षी आपको नमस्कार है । आप जगत्के कारणभूत आदि सूकर हैं । जिस प्रकार एक हाथी दूसरे हाथीको पछाड़ देता है, उसी प्रकार गजराजके समान क्रीडा करते हुए आप युद्धमें अपने प्रतिद्वन्द्वी हिरण्याक्ष दैत्यको दलित करके मुझे अपनी दाढ़ोंकी नोकपर रखकर रसातलसे प्रलयपयोधिके बाहर निकले थे । मैं आप सर्वशक्तिमान् प्रभुको बार-बार नमस्कार करती हूँ ।'

दशावतारस्तोत्रम्

आदाय वेदाः सकलाः समुद्रान्निहत्य शङ्खासुरमत्युदग्रम् ।
दत्ताः पुरा येन पितामहाय विष्णुं तमाद्यं भज मत्स्यरूपम् ॥
दिव्यामृतार्थं मथिते महाब्धौ देवासुरैर्वासुकिमन्दराभ्याम् ।
भूमेर्महावेगविघूर्णितायास्तं कूर्ममाधारगतं स्मरामि ॥
समुद्रकाञ्ची सरिदुत्तरीया वसुंधरा मेरुकिरीटभारा ।
दंष्ट्राग्रतो येन समुद्धृता भूस्तमादिकोलं शरणं प्रपद्ये ॥
भक्तार्तिभङ्गक्षमया धिया यः स्तम्भान्तरालादुदितो नृसिंहः ।
रिपुं सुराणां निशितैर्नखाग्रैर्विदारयन्तं न च विस्मरामि ॥
चतुःसमुद्राभरणा धरित्री न्यासाय नालं चरणस्य यस्य ।
एकस्य नान्यस्य पदं सुराणां त्रिविक्रमं सर्वगतं स्मरामि ॥
त्रिःसप्तवारं नृपतीन् निहत्य यस्तर्पणं रक्तमयं पितृभ्यः ।
चकार दोर्दण्डबलेन सम्यक् तमादिशूरं प्रणमामि भक्त्या ॥
कुले रघूणां समवाप्य जन्म विधाय सेतुं जलधेर्जलान्तः ।
लङ्केश्वरं यः शमयांचकार सीतापतिं तं प्रणमामि भक्त्या ॥
हलेन सर्वानसुरान् विकृष्य चकार चूर्णं मुसलप्रहारैः ।
यः कृष्णमासाद्य बलं बलीयान् भक्त्या भजे तं बलभद्ररामम् ॥
पुरा पुराणानसुरान् विजेतुं सम्भावयन् चीवरचिह्नवेषम् ।
चकार यः शास्त्रममोघकल्पं तं मूलभूतं प्रणतोऽस्मि बुद्धम् ॥
कल्पावसाने निखिलैः खुरैः स्वैः संघट्टयामास निमेषमात्रात् ।
यस्तेजसा निर्दहतीति भीमो विश्वात्मकं तं तुरगं भजामः ॥
शङ्खं सुचक्रं सुगदां सरोजं दोर्भिर्दधानं गरुडाधिरूढम् ।
श्रीवत्सचिह्नं जगदादिमूलं तमालनीलं हृदि विष्णुमीडे ॥
क्षीराम्बुधौ शेषविशेषतल्पे शयानमन्तःस्मितशोभिवक्त्रम् ।
उत्फुल्लनेत्राम्बुजमम्बुजाभमाद्यं श्रुतीनामसकृत्स्मरामि ॥
प्रीणयेदनया स्तुत्या जगन्नाथं जगन्मयम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणामाप्तये पुरुषोत्तमम् ॥

इति श्रीशारदातिलके सप्तदशे पटले दशावतारस्तवः ।





भगवान् विष्णु - वराह के दशावतार

दस अवतारोंकी जयन्ती-तिथियाँ

भगवान् नारायणने मत्स्यरूप धारणकर प्रलयकालीन अगाध उदधिसे हमारे शाश्वत धर्मके प्रतीक और सारी सृष्टिके तत्त्व-प्रतिपादक वाङ्मय-विश्व वेदोंकी रक्षा की और वराह बनकर जलप्लावन-निमग्न माता भूमि-देवीका उद्धार किया। इसी प्रकार उन्होंने अपनी कमठ-पीठपर भू-मण्डल धारणकर हमें सर्वश्रेष्ठ आश्रय दिया है। हमारी सारी सत्ता इसी भूप्रदेशपर अवलम्बित है। हम 'पृथ्वी-पुत्रों'के लिये उद्धृत भू-माताने विविध प्रश्नोंसे हमारी कल्याण-परम्पराकी जो पद्धति पुरस्कृत की है, वह उस वराह-पुराणकी देन है, जिसके प्रवक्ता स्वयं भगवान् वराह हैं। 'पञ्चलक्षण' पुराणके सर्ग-प्रतिसर्गकी श्रृङ्खलामें वह परात्पर परब्रह्म भगवान् विश्व-व्यवस्थाकी लोक-मङ्गल-भावनासे समय-समयपर इस भूमण्डलपर स्वयं अवतरित होते हैं। उनके—उन निखिल नियन्ताके अवतरणकी सभी तिथियाँ हमारे लिये पावन-पर्व हैं। हम उन तिथियोंपर व्रत-उपवास करते और महोत्सव मनाते हैं। चैत्र शुक्ल नवमीको 'श्रीरामनवमी' और भाद्रपदकी कृष्णाष्टमीको 'श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी'के रूपमें हम भगवान् राम-कृष्णकी जयन्तियाँ सोत्साह प्रतिवर्ष विशेष रूपसे मनाते हैं। इसी प्रकार और भी जयन्तियाँ हैं, जो यथास्थान मनायी जाती हैं। भगवान्‌की ये जयन्तियाँ अनेक हैं। उनमेंसे भगवान्‌के दशावतारकी दस जयन्तियाँ प्रमुख हैं, जिनसे परिचित होना और उन्हें आत्म-कल्याणार्थ यथाशक्य पूजन-यजन, व्रत-उपवास, भगवदाराधन इत्यादि-द्वारा मनाना सबका आवश्यक कर्तव्य है। जयन्ती-तिथियाँ ये हैं—

नाम	तिथि	समय	अवतरण-स्थल
१–श्रीमत्स्यजयन्ती	चैत्र शुक्ला तृतीया	मध्याह्नोत्तर	पुष्पभद्रातट
२–श्रीकूर्मजयन्ती	वैशाख शुक्ला पूर्णिमा (मतान्तरसे वैशाख-अमावस्या)	सायंकाल	समुद्र
३–श्रीवराहजयन्ती*	भाद्रशुक्ला पञ्चमी	मध्याह्नोत्तर	हरिद्वार या वराहक्षेत्र
४–श्रीनृसिंहजयन्ती	वैशाख शुक्ला चतुर्दशी	सायंकाल	मूलस्थान या मुलतान
५–श्रीवामनजयन्ती	भाद्र शुक्ला द्वादशी	मध्याह्न	प्रयाग
६–श्रीपरशुरामजयन्ती	वैशाख शुक्ला तृतीया	मध्याह्न (मतान्तरसे सायंकाल)	जमनियाँगाँव
७–श्रीरामचन्द्रजयन्ती	चैत्र शुक्ला नवमी	मध्याह्न	अयोध्या
८–श्रीकृष्णजयन्ती	भाद्र कृष्णा अष्टमी	मध्यरात्रि	मथुरा
९–श्रीबुद्धजयन्ती	पौष शुक्ला सप्तमी	सायंकाल	गया
१०–श्रीकल्किजयन्ती	भाद्रपद शुक्ला तृतीया	सायंकाल	सम्भलगाँव

* निर्णयसिन्धुप्रोक्त वराहपुराणानुसार—'नभस्य शुक्लपञ्चम्यां वराहस्य जयन्तिका' यही वराहजयन्ती है। धर्मसिन्धु और निर्णयसिन्धुके अनुसार क्रमशः भाद्र शुक्ल तृतीया (अपराह्न) एवं श्रावण शुक्ल षष्ठी तथा चैत्र कृष्ण नवमी भी वराहजयन्ती मान्य है।

गो-वध-निषेध-विधि (कानून)का अभिनन्दन

भारतने सदासे ही गोधनको धार्मिक महत्त्व दिया है। प्रकृतिसे ही कृषि-प्रधान देशके लिये गाय-बैलोंकी उपयोगिताकी दृष्टिसे भी हमने शुभाशंसी वैदिक मन्त्रोंमें 'दोग्ध्री धेनुओं' और 'वोढा अनड्वाहों' (बैलों)के लिये दैनन्दिन प्रार्थना की है। गीता, गङ्गा, गायत्री और गायें हमारे देशकी गौरव-विभूतियाँ हैं। गायें तो हमारी वैदिक सनातन परम्परामें 'रुद्रोंकी माता, वसुओंकी दुहिता और आदित्योंकी स्वसा' होनेके साथ ही **'अमृतस्य नाभिः'** भी हैं। वे सर्वथा संरक्षणीय एवं पूज्य हैं। वेदोंमें गायोंको अवध्य बतलानेवाला 'अघ्न्या' शब्द शताधिक बार आया है। वराहपुराणके भी अन्तिम अध्यायोंमें गायकी महिमा वर्णित है। गोकुल, गोविन्द, गोपाल और दिव्य गोलोककी महिमासे शास्त्र-पुराण भरे पड़े हैं। सब गौसे सम्बद्ध हैं।

राष्ट्रिय स्वास्थ्य और दीर्घ-जीवनके लिये भी इनकी उपयोगिता निर्विवाद है। धार्मिक दृष्टिसे परलोकके लिये तो ये कल्याण-प्रसवयित्री ही हैं। इसीलिये धार्मिक जन गोदान करनेके बाद 'आगे-पीछे और अगल-बगल गायोंसे भरे रहने'की प्रार्थना करते हैं। गोरक्षिणी और पिंजरापोल-जैसी संस्थाओंकी स्थापनाके मूलमें भी गोरक्षा-गोसंवर्धन-की भावना निहित है। सरकारकी ओरसे भी राष्ट्रके अर्थ-व्यवस्था, कृषि, व्यापार-प्रभृतिके लिये उपयोगी पशु-धनके संरक्षण-संवर्द्धनकी व्यवस्था प्रशंसनीय है। केन्द्रीय सरकारके निर्देशाभिप्रायसे भारत-संघकी सरकारों-द्वारा अब पूर्णतः 'गोवध-निषेध-विधि' (कानून)के पारित हो जानेसे उपर्युक्त सभी प्रकारकी भावनाओंकी सफलता-को अधिक बल मिलेगा। अतः इस स्तुत्य कार्यके लिये सभी सरकारें—विशेषतः माननीय प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी हमारी तथा जनताकी बधाई और धन्यवाद-की पात्र हैं।

साथ ही गो-वध-बंदीके लिये पूर्व एवं वर्तमान प्रयत्नरत कार्यकर्ता (व्यक्ति तथा संस्थाएँ) गोभक्तजन, साधु-महात्मा—विशेष कर श्रद्धेय संत विनोबा भावेजी धन्यवादार्ह एवं अभिनन्दनीय हैं।

'कल्याण'ने गोसंरक्षण और गोसंवर्द्धनके उद्देश्यसे गो-अङ्क प्रकाशितकर सबका ध्यान इस ओर आकृष्ट किया था। इसलिये इस अभिप्रेत सफलताके अवसरपर हम गोरक्षा-कार्यमें संलग्न सभी व्यक्तियों और संस्थाओंका सादर अभिनन्दन करते हैं।

अब हमारे पाठकोंका कर्तव्य है कि वे अधिकाधिक श्रद्धासे गोसेवा करें और गायके प्रति आदरकी दृष्टि रखकर उसे सुखी बनायें। परंतु, इधर देशमें गोचर-भूमिका नितान्त अभाव हो गया है। सभीसे प्रार्थना है कि वे पूर्ववत् गोचर-भूमिकी भी रक्षाका ध्यान रक्खें।

भूमिद्वारा भगवान् वराहकी स्तुति

नमस्ते देवदेवेश वराहवदनाऽच्युत। क्षीरसागरसंकाश वज्रशृङ्ग महाभुज॥
उद्धृताऽस्मि त्वया देव कल्पादौ सागराम्भसः। सहस्रबाहुना विष्णो धारयामि जगन्त्यहम्॥
उद्यद्भानुप्रतीकाश पादपद्म नमो नमः। बालचन्द्राभ दंष्ट्राग्रमहाबल पराक्रम॥
दिव्यचन्दनलिप्ताङ्ग तप्तकाञ्चनकुण्डल। इन्द्रनीलमणिद्योति हेमाङ्गदविभूषित॥
सर्वविद्यामयाकार शब्दातीत नमो नमः। आनन्दविग्रहाऽनन्त कालकाल नमो नमः॥

(स्कन्दपुराण २। १। ८५, ८६, ८८, ८९, ९२)

मङ्गल-कामना एवं शान्तिपाठ

शरणं त्वां गतो नाथ संसारार्णवतारक ।
दिशः पश्य अधः पश्य व्याधिभ्यो रक्ष नित्यशः ।
प्रसीद स्वस्य राष्ट्रस्य राज्ञः सर्वबलस्य च ॥
गर्भिणीनां च वृद्धानां व्रीहीणां च गवां तथा ।
ब्राह्मणानां च सततं शान्तिं कुरु शुभं कुरु ॥
अन्नं कुरु सुवृष्टिं च सुभिक्षमभयं तथा ।
राष्ट्रं प्रवर्द्धतु विभो शान्तिर्भवतु नित्यशः ॥
देवानां ब्राह्मणानां च भक्तानां कन्यकासु च ।
पशूनां सर्वभूतानां शान्तिर्भवतु नित्यशः ॥

(वराह-पु० १९२ । ८, ९ । १२)

संसार-सागरसे उद्धार करनेवाले प्रभो ! हम आपकी शरण आये हैं, (आप सर्वथा प्रसन्न हों)। आपकी दिव्य रक्षा-दृष्टि चतुर्दिक् बनी रहे, आधि-व्याधियोंसे हमारी सदैव रक्षा करते रहें । हमारे राष्ट्र, शासन और सब प्रकारके (त्रिविध) सैन्य-बलोंपर आपकी विजयिनी वरद-दृष्टि सतत बनी रहे । गायों, गर्भिणी स्त्रियों और वृद्धजनों (असक्त-दीन-हीन जनों) तथा ब्राह्मणों (विद्वानों) पर आपकी शुभ, अनुग्रह-दृष्टि सदैव रहे—आप इन सबपर प्रसन्न रहें । हमारे देशके धन-धान्य (सम्पदा) की श्रीवृद्धि करते रहें । आप सर्वत्र सुवृष्टि (समयोपयोगी वर्षा) करें । पर्याप्त अन्न तथा और सुभिक्ष प्रदान करें । हमारे अन्नके भण्डार भरते रहें । सर्वतः अभय-दान दें । हे विभो ! आप हमारे राष्ट्रका संवर्द्धन करें एवं सर्वत्र ही (विश्वभरमें) शुभ-शान्ति, व्याप्त रहे, पुनः—देव, ब्राह्मण, भक्त, संत-महात्मा, कन्याओं, पशु-पक्षियों, अर्थात् समस्त जीव-जगत्पर सदैव शान्ति बरसती रहे । (सभी सर्वत्र सुख-चैनसे रहें !) ।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!



क्षमा-प्रार्थना और नम्र निवेदन

अबसे छः वर्ष पूर्व (जनवरी १९७१ में) 'कल्याण'के विशेषाङ्कके रूपमें 'अग्निपुराण-गर्गसंहिता-नरसिंहपुराण' (सम्मिलित) विशेषाङ्क प्रकाशित हुआ था। इसके पश्चात् क्रमशः 'श्रीरामाङ्क', 'श्रीविष्णु-अङ्क', श्रीगणेश-अङ्क', 'श्रीहनुमान्-अङ्क', 'श्रीभगवत्कृपा-अङ्क' आदि स्वतन्त्र स्फुट विषयोंपर ही विशेषाङ्क प्रकाशित होते रहे। इस प्रकार विगत पाँच वर्षोंमें पुराण विषयपर कोई विशेषाङ्क प्रकाशित न हो सका। इस अन्तरालमें 'कल्याण'पर प्रीति रखनेवाले कृपालु महानुभावों, शुभचिन्तकों तथा प्रेमीपाठकोंकी ओरसे किसी पुराणपर विशेषाङ्क प्रकाशित करनेका प्रेमाग्रह (पत्रोंद्वारा) बराबर बना रहा। 'श्रीवराहपुराण'की गणना परम सात्त्विक पुराणोंमें हैं। यह विचारकर एवं 'कल्याण'के प्रेमी पाठकों तथा हितैषियोंकी कृपापूर्ण प्रेरणासे उत्साहित होकर जन-साधारणके लिये दुर्लभ इस पुराण-रत्नको कल्याणके ५१वें वर्ष (सन् १९७७) के विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित करनेका निर्णय लिया गया।

इस प्रकार कल्याणकी पूर्वपरम्परानुसार ही वराह-पुराणका यह संक्षिप्त रूप आपकी सेवामें प्रस्तुत है।

इस अङ्कद्वारा श्रीवराहरूपधारी साक्षात् भगवान् नारायणका जैसा भी बन पड़ा है, स्तवन-अर्चन मात्र किया गया है। यह अर्चना कितने विधि-विधानपूर्वक, कितनी सरस, कितनी सुवासित और कितनी भावपूर्ण हुई है, इसका निर्णय हमारे ('कल्याण'के) विज्ञ, सहृदय पाठक-पाठिकाएँ ही करेंगे।

इस अङ्कमें जो कुछ त्रुटियाँ हैं वे सब हमारी अल्पज्ञताके कारण ही हैं, जो अच्छाइयाँ और उपयोगिता है, उसका श्रेय भगवान्के पावनचरित्रों, दिव्य लीलाओं और इस पुराणकी लोक-कल्याणकारी कथा-वस्तुको एवं 'कल्याण'को अपना माननेवाले, उसपर सदा अपनी प्रीति और कृपा रखनेवाले उन पूज्यपाद आचार्यों, संत-महात्माओं तथा विद्वान्-मनीषियोंको है, जिनका अनुग्रह-भरा सत्परामर्श तथा आत्मीयतापूर्ण मार्गदर्शन हमें सदा अनायास सुलभ होता रहा है। इसके लिये हम उन सभी उदारमना पूज्यजनों एवं आदरणीय महानुभावोंके चरणोंमें सादर नमनपूर्वक अपनी हार्दिक कृतज्ञता अभिव्यक्त करते हैं।

वस्तुतः, 'कल्याण'का काम भगवान्का काम है। इसीलिये 'कल्याण' सबकी अपनी वस्तु है, सभीका इसपर अधिकार है। सब कुछ करने या करानेवाले तो एक-मात्र स्वयं भगवान् ही हैं। हम लोग तो निमित्तमात्र हैं। सौभाग्यसे इस कार्यमें हमें जो थोड़ा समय लगाने और रुचि लेनेसे भगवत्स्मृति हो जाती है, वही हमारे लिये परम लाभ है। इसे हम भगवान्की अहैतुकी कृपा मानते हैं।

'कल्याण'पर कृपा-प्रेम रखनेवाले कई विद्वानों, लेखकों और विचारकोंने विषयानुरूप अपनी अमूल्य रचनाएँ (लेख, निबन्ध, कविता आदि) भेजकर इस अङ्कको और अधिक उपयोगी बनानेमें जो सहयोग किया है, इसके लिये हम उन सभी महानुभावोंके प्रति अत्यन्त आभारी हैं और जिन सम्मान्य लेखकोंके लेख, निबन्धादि विलम्बसे प्राप्त होने अथवा स्थानाभावके कारण, चाहते हुए भी विशेषाङ्कमें नहीं दिये जा सके, इस हेतु हम उन सभी मान्यजनोंसे विनीत क्षमा-प्रार्थना करते हैं।

इसके प्रस्तुतीकरणमें हमारे सम्पादन-विभागके विद्वानों-ने जो परिश्रम किया है उसीका प्रतिफलन इस रूपमें आपके समक्ष है।

अन्तमें हम अत्यन्त विनम्रभावसे भगवान्की यह वस्तु—पुराणपुरुषोत्तमरूप (भगवान्वराहका पुराणरूपी श्रीविग्रह) 'संक्षिप्त श्रीवराह-पुराणाङ्क' वराह-वपुधारी भगवान् श्रीहरि-विष्णुको ही समर्पित करते हैं—

'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये'

विनीत—
मोतीलाल जालान
प्रकाशक एवं ([redacted]) सम्पादक

श्रीहरिः

‘कल्याण’के नियम

उद्देश्य–भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है ।

नियम

(१) भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वर-परक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें । लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है । अमुद्रित लेख बिना माँगे नहीं लौटाये जाते । **लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं हैं ।**

(२) ‘कल्याण’ विशेषाङ्कका डाकव्ययसहित अग्रिम मूल्य भारतवर्षमें १४.०० रुपये और भारतवर्षसे बाहरके लिये रु० २९.२० (२ पौंड) नियत है । सजिल्द विशेषाङ्कका भारतमें रु० १६.०० तथा विदेशके लिये सजिल्दका ३१.२० पैसे (२ पौण्ड १५ पेंस) है ।

(३) ‘कल्याण’का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ होकर दिसम्बरमें समाप्त होता है, अतः जनवरीसे ही ग्राहक बनाये जाते हैं । वर्षके किसी भी महीनेमें ग्राहक बनाये जा सकते हैं और जनवरीके अङ्कके बाद निकले हुए तबतकके सब [illegible] उन्हें बिना मूल्य दिये जाते हैं । पर ‘कल्याण’ के बीचके [illegible]ा अङ्कसे ग्राहक नहीं बनाये जाते; छः या तीन महीनेके लिये भी ग्राहक नहीं बनाये जाते ।

(४) **इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें प्रकाशित नहीं किये जाते ।**

(५) कार्यालयसे ‘कल्याण’ दो-तीन बार जाँच करके प्रत्येक ग्राहकके नामसे भेजा जाता है । यदि किसी मासका अङ्क समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखा-पढ़ी करनी चाहिये । वहाँसे जो उत्तर मिले, वह हमें भेज देना चाहिये । डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति बिना मूल्य मिलनेमें अड़चन हो सकती है ।

(६) पता बदलनेकी सूचना कम-से-कम १५ दिन पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये । **लिखते समय ग्राहक-संख्या, पुराना या नया, नाम, पता साफ-साफ लिखने चाहिये ।** महीने-दो-महीनेके लिये पता बदलवाना हो तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये । पता बदलनेकी सूचना न मिलनेपर अङ्क पुराने पतेसे चले जानेकी अवस्थामें दूसरी प्रति बिना मूल्य न भेजी जा सकेगी ।

(७) जनवरीसे बननेवाले ग्राहकोंको रंग-बिरंगे चित्रोंवाला जनवरीका अङ्क (चालू वर्षका विशेषाङ्क) दिया जायगा । विशेषाङ्क ही जनवरीका अर्थात् वर्षका पहला अङ्क होगा । फिर प्रतिमासके क्रमसे फरवरीसे दिसम्बरतक ११ साधारण अङ्क बिना मूल्य प्राप्त होंगे । किसी अनिवार्य कारणवश ‘कल्याण’ बंद हो जाय तो जितने अङ्क मिले हों, उतनेमें ही संतोष करना चाहिये; क्योंकि केवल विशेषाङ्कका ही मूल्य १४.०० रुपये हैं । बाकी ११ अङ्क बिना मूल्य हैं ।

आवश्यक सूचनाएँ

(८) ‘कल्याण’में किसी प्रकारका कमीशन या ‘कल्याण’ की एजेन्सी किसीको देनेका नियम नहीं है ।

(९) ग्राहकोंको अपना नाम-पता स्पष्ट लिखनेके साथ-साथ **ग्राहक-संख्या** अवश्य लिखनी चाहिये । पत्रमें आवश्यकताका उल्लेख सर्वप्रथम करना चाहिये ।

(१०) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है । एक बातके लिये दुबारा पत्र देना हो तो उसमें पिछले पत्रकी तारीख तथा वि[illegible] भी देना चाहिये ।

(११) **ग्राहकोंको चंदा [illegible]आर्डरद्वारा भेजना चाहिये ।** वी० पी० से अङ्क बहुत देरसे जा पाते हैं ।

(१२) **प्रेस-विभाग, ‘कल्याण’ व्यवस्था-विभाग तथा सम्पादन-विभागको अलग-अलग समझकर अलग-अलग पत्रव्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये ।** ‘कल्याण’के साथ पुस्तकें और चित्र नहीं भेजे जा सकते । प्रेससे १.०० रु० से कमकी वी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती ।

(१३) चालू वर्षके विशेषाङ्कके बदले पिछले वर्षोंके विशेषाङ्क नहीं दिये जाते ।

(१४) **मनीआर्डरके कूपनपर रुपयोंकी संख्या, रुपये भेजनेका उद्देश्य, ग्राहक-नम्बर (नये ग्राहक हों तो ‘नया’ लिखें), पूरा पता आदि सब बातें साफ-साफ लिखनी चाहिये ।**

(१५) प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनीआर्डर आदि **व्यवस्थापक-‘कल्याण’, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**के नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि **सम्पादक-‘कल्याण’, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**के नामसे भेजने चाहिये ।

(१६) स्वयं आकर ले जाने या एक साथ एकसे अधिक अङ्क रजिस्ट्रीसे या रेलसे मँगानेवालोंसे चंदा कम नहीं लिया जाता ।

व्यवस्थापक—**‘कल्याण,’ पत्रालय-गीताप्रेस (गोरखपुर)**

सत्कर्मोंका महत्त्व

तपसा प्राप्यते स्वर्गस्तपसा प्राप्यते यशः। आयुःप्रकर्षो भोगाश्च भवन्ति तपसैव तु ॥
ज्ञानविज्ञानमारोग्यं रूपसौभाग्यसम्पदः। तपसा प्राप्यते भोगो मनसा नोपदिश्यते ॥
एवं प्राप्नोति पुण्येन मौनेनाज्ञां महामुने। उपभोगांस्तु दानेन ब्रह्मचर्येण जीवितम् ॥
अहिंसया परं रूपं दीक्षया कुलजन्म च। फलमूलाशिनो राज्यं स्वर्गः पर्णाशिनां भवेत् ॥
पयोभक्ष्या दिवं यान्ति जायते द्रविणाढ्यता। गुरुशुश्रूषया नित्यं श्राद्धदानेन संततिः ॥
स्वयं त्रिषवणाद् ब्रह्म त्वपः पीत्वेष्टलोकभाक्। आमिषस्य प्रतीहाराद् भवत्यायुष्मती प्रजा ॥
गन्धमाल्यनिवृत्त्या तु मूर्तिर्भवति पुष्कला। अन्नदानेन च नरः स्मृतिं मेधां च विन्दति ॥

छत्रप्रदानेन गृहं वरिष्ठं रथं ह्युपानद्युगसम्प्रदानात्।
वस्त्रप्रदानेन सुरूपता च धनैश्च पुत्रैश्च भृता भवन्ति ॥
वस्त्रान्नपानीयरसप्रदानात् प्राप्नोति तानन्नरसप्रपानान्।
स्रग्धूपगन्धान्यनुलेपनानि पुष्पाणि गृह्याणि मनोरमाणि ॥
धूपप्रदानेन तथा गवां च लोकानवाप्नोति नरो वसूनाम् ॥

(वराहपु०, अ० २०७)

धर्मराज बोले—तपस्या करनेसे स्वर्ग सुलभ होता है, तपस्यासे दीर्घ आयु और भोगकी वस्तुएँ मिलती हैं। ज्ञान-विज्ञान, आरोग्य, रूप, सौभाग्य, सम्पत्ति—ये सभी तपस्यासे प्राप्त होते हैं। केवल मनमें संकल्प कर लेनेमात्रसे कोई भी सुख-भोग प्राप्त नहीं हो जाता। मौनव्रत पालन करनेसे अव्याहत आज्ञा-शक्ति प्राप्त होती है। दान करनेसे उपभोगकी सामग्रियाँ तथा ब्रह्मचर्यके पालनसे दीर्घ जीवन प्राप्त होता है। अहिंसाके फलस्वरूप सुन्दर रूप तथा दीक्षा ग्रहण करनेसे उत्तम कुलमें जन्म मिलता है। फल और मूल खाकर निर्वाह करनेवाले प्राणी राज्य एवं केवल पत्तेके आहारपर रहनेवाले व्यक्ति स्वर्ग प्राप्त करते हैं। पयोव्रत करनेसे स्वर्ग तथा गुरुकी सेवामें रत रहनेसे प्रचुर लक्ष्मी प्राप्त होती है। श्राद्ध तथा दान करनेके प्रभावसे पुरुष पुत्रवान् होते हैं। जो प्रातः, मध्याह्न और सायंकालमें त्रिकाल स्नानका अभ्यासी है, वह ब्रह्मको प्राप्त करता है। केवल जल पीकर तपस्या करनेवाला अपना अभीष्ट प्रात कर लेता है। मांस-त्यागी व्यक्तिकी संतान दीर्घायु होती है। चन्दन और मालासे रहित तपस्वी मानव सुन्दर स्वरूपवाला होता है। अन्नका दान करनेसे मानव बुद्धि और स्मरणशक्तिसे सम्पन्न होता है। छाता दान करनेसे उत्तम गृह, जूतादानसे रथ तथा वस्त्र दान करनेसे प्राणी सुन्दर रूप, प्रचुर धन एवं पुत्रोंसे सम्पन्न होते हैं। अन्न, वस्त्र, जल और रस प्रदान करनेसे व्यक्तिको दूसरे जन्ममें वे सभी सुलभ होते हैं। जो ब्राह्मणोंको पुष्प, धूप और चन्दन दान करता है, वह अगले जन्ममें सुन्दर पुष्पयुक्त गृह प्राप्त करता है। धूप तथा गौओंके दानसे मानव वसुओंके लोकमें रहनेका सौभाग्य प्राप्त करता है।